

जैनाचार्य – जैनधर्मदिवाकर – पूज्यश्री – घासीलालजी – महाराज –

विरचितया मुनितोषण्याख्यया व्याख्यया समलङ्कृत

हिन्दीगुर्जरभाषानुवादसहितम् ।

आवश्यकसूत्रम् ।

AVASHYAKASUTRAM

नियोजकः—

संस्कृत-प्राकृतज्ञ-जैनागमनिष्णात-प्रियव्याख्यानि-
पण्डितमुनिश्री-कन्हैयालालजी महाराजः ।



प्रकाशकः—

अ भा श्वे स्था जैनशास्त्रोच्चारसमितिप्रमुख
श्रेष्ठिश्री शान्तिलाल – मङ्गलदासभाई – महोदय.

मु राजकोट (सौराष्ट्र)



द्वितीय संस्करणम् – १०००

मूल्यम् – रु ७-८-०

પ્રાપ્તિ સ્થાન
શ્રી અભાયે સ્થાનકવાસી
જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ
શ્રીન લોજ પાસે, રાજકોટ

*

બીજી આવૃત્તિ	પ્રત ૧૦૦૦
વીર સવત	૨૪૮૪
વિક્રમ સવત	૨૦૧૪
ઇન્વી સન્	૧૯૫૮

*

મુદ્રક અને મુદ્રણસ્થાન
જયતિનાથ દેવચંદ મહેતા
જયભારત પ્રેસ,
ગરેડીઆ કુવા રોડ
ચાકમારકીટ પાસે, રાજકોટ

प्राक्ग्रन्थ

रोग से आक्रान्त मनुष्य के लिये जैसे औषध सेवन नितान्त आवश्यक है, उसी प्रकार भवरोग से सतप्त प्राणियों के लिये सामायिक आदि क्रियाएँ आवश्यक हैं । क्यों कि बिना इनके आत्मामें निर्मलता नहीं आ सकती, और अनिर्मल आत्मा कभी भी भवरोग से मुक्त नहीं हो सकता ।

ये सामायिक आदि मनुष्यों के लिये अवश्यकर्तव्य होने के कारण आवश्यक कहलाते हैं, और इनका ग्रन्थन इस आगममें किया गया है अतः यह आगम भी 'आवश्यक' कहलाता है ।

इस 'आवश्यक सूत्र' की परमोपयोगिता देखकर पूज्यश्री घासीलालजी म सा. ने इस पर, संस्कृतमें विस्तृत प्रस्तावना सहित 'सुनितोषणी' नामक टीका लिखी है । यह टीका अत्यन्त सरल होने के कारण साधारण संस्कृतज्ञों के लिये भी सुबोध है । सर्वसाधारण के लाभार्थ इस टीकाका हिन्दी और गुजराती भाषा में अनुवाद भी किया गया है । इस लिये सभी वर्ग के जिज्ञासुओं के लिये यह उपादेय है ।

इस आवश्यकसूत्र की प्रथम आवृत्तिका प्रकाशन श्री श्वे. स्था जैन शास्त्रोद्धार समिति (राजकोट) ने सन् १९५१ ई में किया था । प्रथम आवृत्ति की सभी प्रतियाँ वितरित हो चुकी हैं, अतः इस सूत्र की यह द्वितीय आवृत्ति प्रकाशित की गयी है । आत्मार्थी जन इससे पूर्णतया लाभ उठावें यही हमारी आकांक्षा है ।

निवेदक

मगनलाल उगनलाल शेट

मानद मंत्री,

श्री अ भा श्वे स्था जैनशा समिति
राजकोट.

એક અપીલ

આપ ગચ્છપતિ હો કે સઘપતિ હો
સાધુ મહાત્મા હો કે શ્રાવક હો

પરંતુ

આ શુભકાર્યમા મદદ કરવાની આપની ચોકકસ ફરજ છે
કારણ કે આપણી સમાજના ઉત્થાનના આવા ભગીરથ
કાર્યમા આપનો જોડલો વધુ સહકાર મળશે તેટલું
કાર્ય વહેલું પૂર્ણ થશે

ઘડી ઘડી આવા સતનો ભેટો થવો દુર્લભ છે

૩૨ સૂત્રો જટ્ટીથી તૈયાર કરાવી લેવાય તેની કાળજી રાખવાની છે

અને તેથીજ આપશ્રીને અપીલ કરવામા આવી છે

સમગ્ર સમાજનું કાર્ય થતું હોય ત્યાં સામ્રદાયકનાદ

કે પ્રાતવાદ નજ હોવો જોઈએ

ડા. ૧૦,૦૦૦ આપનાર આદ્ય સુરજીભીશ્રી,
સમિતિના પ્રમુખ, દાનવીર શેઠશ્રી



શેઠ શાતિલાલ મગજદાસભાઈ
અમદાવાદ

શ્રી-વર્ધમાન-અમણ-સઘના આચાર્યશ્રી
પૂજ્ય આત્મારામજી મહારાજશ્રીએ

આ પે લ

સ મ મ તિ પ ત્ર



ઉ પ રા ત

પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ-રચિત

બીજા સૂત્રોની ટીકા માટે તેઓશ્રીના મતબ્યે



તે મ જ

અન્ય મહાત્માઓ, મહાસતીજીઓ, અદ્યતન-પદ્ધતિવાળા ઠાણેજના પ્રેક્ષિસરો

તે મ જ

શાસ્ત્રજ્ઞ આવકોના અભિપ્રાયો

ઠે ત્રીન લોજ પાસે
ગરેહીયા કુવારોડ
રાજકોટ સૌરાષ્ટ્ર

શ્રી અખિલ ભારત શ્વે સ્થા. જૈન-
શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ.

(श्री दशवैकालिकसूत्रका सम्मतिपत्र)

॥ श्रीवीरगौतमाय नमः ॥

सम्मति-पत्रम्

मए पडियमुणि-हेमचदेण य पडिय मूलचन्दवासवारापत्ता
पडिय-रयण-मुणि-घासीलालेण विरइया सकय-हिंदी-भाषाहिं जुत्ता
सिरि-दसवेयालिय-नाम सुत्तस्स आचारमणिमजूसा वित्ती अवलो-
इया, इमा मणोहरा अत्थि, एत्थ सदाण अइसयजुत्तो अत्थो
वणिणओ विउजणाण पाययजणाण य परमोवयारिघा इमा वित्ती
दीसइ ! आचारविसए वित्तीकत्तारेण अइसयपुब्ब उल्लेहो कडो,
तहा अहिंसाए सरूव जे जहा तहा न जाणति तेसिं इमाए वित्तीए
परमलाहो भविस्सइ, कत्तुणा पत्तेयविसयाण फुडरूवेण वण्णण
कड, तहा मुणिणो अरहत्ता इमाए वित्तीए अवलोयणाओ अइसय-
जुत्ता सिज्झइ ! सकयछाया सुत्तपयाण पयच्छेओ य सुबोहदायगो
अत्थि, पत्तेयजिण्णासुणो इमा वित्ती दट्ठवा । अम्हाण समाजे
एरिसविज्ज-मुणिरयणाण सब्भावो समाजस्स अहोभग्ग अत्थि, किं ?
उत्तविज्जमुणिरयणाण कारणाओ जो अम्हाण समाजो सुत्तप्पाओ,
अम्हकेर साहिच्च च लुत्तप्पाय अत्थि तेसिं पुणोवि उदओ भविस्सइ
जस्स कारणाओ भवियप्पा मोक्खस्स जोग्गो भवित्ता पुणो
निब्बाण पाविहिइ अओह आचारमणि-मजूसाए कत्तुणो पुणो
पुणो घन्नवाय देमि- ॥

वि स १९९० फाल्गुन-
शुक्लपौर्णमासी मङ्गले
(अलवर स्टेट)

इइ-

उचज्झाय-जइण मुणी,आचारामो
(पचनईओ)

जैनागमवेत्ता जैनधर्मदिवाकर उपाध्याय श्री १००८ श्री आत्मारामजी
महाराज तथा न्याय व्याकरण के ज्ञाता परम पण्डित मुनिश्री १००७
श्री हेमचन्द्रजी महाराज, इन दोनो महात्माओंका दिया हुआ
श्री उपासकदशाङ्ग सूत्रका प्रमाण पत्र निम्न प्रकार है—

सम्मइवत्तं

सिरि-वीरनिव्वाण सवच्छर २४५८ आसोई
(पुण्णमासी) १५ सुक्कारो लुहियाणाओ ।

मए मुणिहेमचदेण य पडियरयणमुणिसिरि-घासीलालविणिम्मिया सिरिउवा-
सगसुत्तस्स अगारधम्मसजीवणीनामिया वित्ती पडियमूलचन्दवासाओ अज्जोवत्त
सुया, समीईण, इय वित्ती जहाणाम तहा गुणेवि धारेइ, सच्च, अगाराण तु इमा
जीवण (सजमजीवण) दाई एव अत्थि । वित्तिक्कुणा मूलसुत्तस्स भावो उज्जु-
सेलीओ फुडीकओ, अहय उवासयस्स सामण्विसेसवम्मो, णयसियवायवाओ,
कम्मपुरिसट्ठवाओ, समणोवासयस्स धम्मदढत्ता य, इच्चाद्विसया अस्सि फुडरीइओ
वणिया, जेण ककुणो पडिहाए सुट्ठुप्पयारेण परिचओ होइ, तह इइहासदिट्ठिओवि
सिरिसमणस्स भगवओ महावीरस्स समए वट्ठमाण-भरहवासस्स य ककुणा विसय-
प्पयारेण चित्त चित्तित, पुणो सकयपाढीण, वट्ठमाणकाले हिन्दीणामियाए भासाए
भासीण य परमोवयारो कडो, इमेण ककुणो अरिहत्ता दीसइ, ककुणो एय कज्ज
परमप्पससणिज्जमत्थि । पत्तेयजणस्स मज्झत्थभावाओ अस्स सुत्तस्स अवलोयणमईव
लाहप्पय, अविउ सावयस्स तु (उ) इम सत्थ सव्वस्समेव अत्थि, अओ ककुणो
अणेगकोडीसो धन्नवाओ अत्थि, जेहिं, अच्चतपरिस्समेण जइणजणतोवरि असीमो-
वयारो ऋडो, अहय सावयस्स वारस नियमा उ पत्तेयजणस्स पढणिज्जा अत्थि,
जेसिं पहावओ वा गहणाओ आया निव्वाणाहिगारी भवइ, तहा भवियव्वयावाओ
पुरिसकारपरक्कमवाओ य अवस्समेव दसणिज्जो, त्रिउहुणा इमीसे वित्तीए पत्तेय-
विसयस्स फुडसद्देहिं वण्णण कय, जइ अन्नोवि एव अम्हाण पसुत्तप्पाए समाजे विज्ज
भवेज्जा तया नाणस्स चरित्तस्स तहा सघस्स य खिण्ण उदयो भविस्सइ, एव ह मन्ने ॥

भवईओ—

उवज्झाय-जइणमुणि-आयाराम,—पचनईओ,

सम्मतिपत्र

(भाषान्तर)

श्री वीर निर्वाण स० २४५८ आसोज
शुक्ला (पूर्णिमा) १५ शुक्रवार लुधियाना

मैंने और पंडितमुनि हेमजन्दजीने पंडितरत्नमुनिश्री घासीलाल-जीकी रची हुई उपासकदशाग सूत्रकी गृहस्थधर्मसजीवनी नामक टीका पंडित मूलचन्द्रजी व्याससे आचोपान्त सुनी है। यह वृत्ति यथानाम तथागुणवाली-अच्छी बनी-है। सच यह गृहस्थोंके तो जीवनदात्री-सयमरूप जीवनको देनेवाली ही है। टीकाकारने मूलसूत्र के भावको सरल रीतिसे वर्णन किया है, तथा श्रावकका सामान्य धर्म क्या है? और विशेष धर्म क्या है? इसका खुलासा इस टीकामें अच्छे ढंगसे बतलाया है। स्याद्वादका स्वरूप कर्म-पुरुषार्थ-वाद और श्रावकको धर्मके अन्दर दृढ़ता किस प्रकार रखना, इत्यादि विषयोंका निरूपण इसमें भलीभाँति किया है। इससे टीकाकारकी प्रतिभा खूब झलकती है। ऐतिहासिक दृष्टिसे श्रमण भगवान् महावीरके समय जैनधर्म किस जाहोजलाली पर था? और वर्तमान समय जैन धर्म किस स्थितिमें पहुँचा है? इस विषयका तो ठीक चित्र ही चित्रित कर दिया है। फिर संस्कृत जाननेवालोंको तथा हिन्दीभाषाके जाननेवालोंको भी पुरा लाभ होगा, क्योंकि टीका संस्कृत है उसकी सरल हिन्दी करदी गई है। इसके पढ़नेसे कर्ताकी योग्यताका पता लगता है कि वृत्तिकारने समझानेका कैसा अच्छा प्रयत्न किया है। टीकाकारका यह कार्य परम प्रशंसनीय है। इस सूत्रको अभ्यस्थ भावसे पढ़ने वालोंको परम लाभकी प्राप्ति होगी। क्या कहें श्रावको (गृहस्थों) का तो यह सूत्र सर्वस्व ही है, अतः टीकाकारको कोटिश धन्यवाद दिया जाता है, जिन्होंने अत्यन्त परिश्रमसे जैन जनताके ऊपर असीम उपकार किया है। इसमें श्रावकके चारह नियम प्रत्येक पुरुषके पढ़ने योग्य हैं, जिनके प्रभावसे अथवा यथायोग्य ग्रहण करनेसे आत्मा मोक्षका अधिकारी होता है। तथा भवितव्यतावाद और पुरुषकार-

पराक्रमवाद हरएकको अवश्य देखना चाहिये । कहातक कहें इस टीकामें प्रत्येक विषय सम्यक् प्रकारसे बताये गये हैं । हमारी सुसप्राय (सोई हुईसी) समाजमें अगर आप जैसे योग्य विद्वान् फिर भी कोई होंगे तो ज्ञान चारित्र तथा श्रीसघका शीघ्र उदय होगा, ऐसा मैं मानता हूँ—

आपका

उपाध्याय जैनमुनि आत्माराम पजावी.



इसी प्रकार लाहोरमें विराजते हुए पण्डितवर्य विद्वान् मुनिश्री १००८
श्री भागचन्दजी महाराज तथा प मुनिश्री त्रिलोकचन्दजी
महाराजके दिये हुए, श्री उपासकदशाङ्ग सूत्रके
प्रमाणपत्रका हिन्दी सारांश निम्न प्रकार है—

श्री श्री स्वामी घासीलालजी महाराज कृत श्री उपासकदशाङ्ग सूत्रकी सस्कृत टीका व भाषाका अवलोकन किया, यह टीका अतिरमणीय व मनोरञ्जक है, इसे आपने बड़े परिश्रम व पुरुषार्थसे तैयार किया है सो आप धन्यवादके पात्र हैं । आप जैसे व्यक्ति-योकी समाजमें पूर्ण आवश्यकता है । आपकी इस लेखनीसे समाजके विद्वान् साधुवर्ग पढ़कर पूर्ण लाभ उठावेंगे, टीकाके पढ़नेसे हमको अत्यानन्द हुआ, और मनमें ऐसे विचार उत्पन्न हुए कि हमारी समाजमें भी ऐसे २ सुयोग्य रत्न उत्पन्न होने लगे—यह एक हमारे लिये बड़े गौरवकी बात है ।

वि. स १९८९ मा आश्विन
कृष्ण १३ वार भौम लाहोर

श्री ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्र की 'अनगार धर्माऽमृतवर्षिणी' टीका पर
 जैनदिवाकर साहित्यरत्न जैनागमरत्नाकर परमपूज्य श्रद्धेय
 जैनाचार्य श्री आत्मारामजी महाराजका
 सम्मतिपत्र

लुधियाना, ता. ४-८-५१.

मैने आचार्यश्री घासीलालजी म द्वारा निर्मित 'अनगार-धर्माऽमृत वर्षिणी' टीका वाले श्री ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्रका मुनि श्री रत्नचन्द्रजीसे आद्योपान्त श्रवण किया ।

यह नि.सन्देह कहना पडता है कि यह टीका आचार्यश्री घासीलालजी म ने बडे परिश्रम से लिखी है । इसमें प्रत्येक शब्दका प्रामाणिक अर्थ और कठिन स्थलो पर सार-पूर्ण विवेचन आदि कई एक विशेषतायें है । मूल स्थलोंको सरल बनानेमें काफी प्रयत्न किया गया है, इससे साधारण तथा असाधारण सभी सस्कृतज्ञ पाठकों को लाभ होगा ऐसा मेरा विचार है ।

मै स्वाभ्यासप्रेमी सज्जनों से यह आशा करूँगा कि वे वृत्तिकारके परिश्रम को सफल बनाकर शास्त्रमें दीगई अनमोल शिक्षायों से अपने जीवनको शिक्षित करते हुए परमसाध्य मोक्षको प्राप्त करेंगे ।

श्रीमान्जी जयवीर

आपकी सेवामें पोष्ट द्वारा पुस्तक भेज रहे हैं और इसपर आचार्य-श्रीजी की जो सम्मति है वह इस पत्रके साथ भेज रहे है पहुचने पर समाचार देंगे ।

श्री आचार्यश्री आत्मारामजी म ठाने ६ सुख शान्तिसे विराजते हैं । पूज्य श्री घासीलालजी म सा ठाने ४ को हमारी ओरसे वन्दना अर्जकर सुखगाता पूछें ।

पूज्य श्री घासीलालजी म जी का लिखा हुआ (विषादसूत्र) महाराजश्रीजी देखना चाहते है इसलिये १ कॉपी आप भेजने की कृपा करें, फिर आपको वापिस भेज देंगे । आपके पास नहीं हो तो जहा से मिले वहासे १ कॉपी जरूर भिजवाने का कष्ट करें, उत्तर जल्द देनेकी कृपा करें । योग्य सेवा ग्रितते रहें ।

लुधियाना ता ४-८-५१

निवेदक
 प्यारेलाल जैन

जैनागमवारिधि-जैनधर्मदिवाकर - उपाध्याय - पण्डित - मुनि
श्रीआत्मारामजी महाराज (पजाब) का आचाराङ्गसूत्र की
आचारचिन्तामणि टीका पर

सम्मति-पत्र ।

मैंने पूज्य आचार्यवर्य श्रीघासीलालजी (महाराज)की बनाई हुई
श्रीमद् आचाराङ्गसूत्र के प्रथम अध्ययन की आचारचिन्तामणि टीका
सम्पूर्ण उपयोगपूर्वक सुनी ।

यह टीका-न्याय सिद्धान्त से युक्त, व्याकरण के नियम से निबद्ध
है । तथा इसमें प्रसङ्ग २ पर क्रम से अन्य सिद्धान्त का संग्रह भी
उचित रूप से मालूम होता है ।

टीकाकारने अन्य सभी विषय सम्यक् प्रकार से स्पष्ट किये हैं,
तथा प्रौढ विषयों का विशेषरूप से संस्कृत भाषा में स्पष्टतापूर्वक
प्रतिपादन अधिक मनोरंजक है, एतदर्थ आचार्य महोदय धन्यवाद
के पात्र हैं ।

मैं आशा करता हूँ कि-जिज्ञासु महोदय इसका भलीभाँति
पठन द्वारा जैनागम-सिद्धान्तरूप अमृत पी-पी कर मन को
हर्षित करेंगे, और इसके मनन से दक्ष जन चार अनुयोगों का
स्वरूपज्ञान पावेंगे । तथा आचार्यवर्य इसी प्रकार दूसरे भी जैनागमों
के विशद विवेचन द्वारा श्वेताम्बर-स्थानकवासी समाज पर महान
उपकार कर यशस्वी बनेंगे ।

वि स २००२
मृगसर सुदि १

जैनमुनि-उपाध्याय आत्माराम
लुधियाना (पजाब)

—: ❀ :—

शुभमस्तु ॥

श्रीकानेरवाला समाजभूषण शास्त्रज भेरुदानजी शेठिआनो अभिप्राय



आप जो शास्त्रका कार्य कर रहे हैं यह बड़ा उपकारका कार्य है ।
इससे जैनजनता को काफी लाभ पहुँचेगा,

(ता. २८-३-५६ ना पत्रमाथी)

॥ श्रीः ॥

जैनागमवारिधि- जैनधर्मदिवाकर-जैनाचार्य-पूज्य-श्री आत्मारामजी-
महाराजना पञ्चनद-(पजाव)स्थानामनुत्तरोपपातिकसूत्राणा-
मर्थबोधिनीनामकटीकायामिदम्-

सम्मतिपत्रम्

आचार्यवर्यैः श्री घासीलालमुनिभिः सङ्कलिता अनुत्तरोपपातिकसूत्राणामर्थ-
बोधिनीनाम्नी सस्कृतवृत्तिरूपयोगपूर्वक सकलाऽपि स्वशिष्यमुखेनाऽश्रावि मया, इय
द्वि वृत्तिर्मुनिवरस्य वैदुष्य प्रकटयति । श्रीमद्भिर्मुनिभिः सूत्राणामर्थान् स्पष्टयितु
यः प्रयत्नो व्यग्रायि तदर्थमनेकशो धन्यवादानर्हन्ति ते । यथा चेय वृत्तिः
सरला सुबोधिनी च तथा सारवत्यपि । अस्याः स्वाध्यायेन निर्वाणपदममीप्सु-
भिर्निर्वाणपदमनुसरद्भिर्ज्ञान-दर्शन-चारित्र्येषु प्रयतमानैर्मुनिभिः श्रावकैश्च ज्ञान-
दर्शन-चारित्र्याणि सम्यक् सम्प्राप्याऽन्येऽप्यात्मानस्तत्र प्रवर्तयिष्यन्ते ।

आशासे श्रीमदाशुकविर्मुनिवरो गीर्वाणवाणीजुषा विदुषा मनस्तोषाय
जैनागमसूत्राणा सारावबोधाय च अन्येषामपि जैनागमानामित्थ सरलाः
सुस्पष्टाश्च वृत्तीर्विधाय तास्तान् सूत्रग्रन्थान् देवगिरा सुस्पष्टयिष्यति ।

अ-ते च “मुनिवरस्य परिश्रम सफलयितु सरला सुबोधिनीं चेमा
सूत्रवृत्तिं स्वाध्यायेन सनाथयिष्यन्त्यवश्य सुयोग्या हसनिभा पाठकाः ।”
इत्याशास्ते—

विक्रमानन्द २००२ }
श्रावणकृष्णा प्रतिपदा }
लुधियाना. }

उपाध्याय आत्मारामो जैनमुनिः ।

ऐसेही —

मध्यभारत सैलाना-निवासी श्रीमान् रतनलालजी डोसी
श्रमणोपासक जैन लिखते हैं कि —

श्रीमान् की की हुई टीकावाला उपासकदशांग सेवक के दृष्टि-
गत हुआ, सेवक अभी उसका मनन कर रहा है यह ग्रन्थ सर्वांग-
सुन्दर एवम् का उपकारक है ।

निरयावलिकामूत्रका सम्मतिपत्र
 आगमवारिधि-सर्वतन्त्रस्वतन्त्र-जैनाचार्य-पूज्यश्री
 आत्मारामजी महाराजकी तरफ का आया हुवा
 सम्मतिपत्र

लुधियाना. ता ११ नवम्बर ४८

श्रीयुत गुलाबचन्दजी पानाचदजी । सादर जयजिनेन्द्र ॥

पत्र आपका मिला ! निरयावलिका विषय पूज्यश्रीजीका स्वास्थ्य ठीक न होने से उनके शिष्य प. श्री हेमचन्द्रजी महाराजने सम्मति पत्र लिख दिया है आपको भेज रहे हैं ! कृपया एक कोपी निरयावलिका की और भेज दीजिये और कोई योग्य सेवा कार्य लिखते रहें ? !

भवदीय.

गुजरमल बलवतराय जैन

॥ सम्मतिः ॥

(लेखक जैनमुनि प श्री हेमचन्द्रजी महाराज)

सुन्दरबोधिनीटीकया समलङ्कृत हिन्दी-गुर्जरभाषानुवादसहित च श्रीनिरयावलिकासूत्र मेधाविनामल्पमेधसा चोपकारक भविष्यतीति सुदृढ मेऽभिमतम्, सस्कृतटीकेय सरला सुबोधा सुललिता चात एव अन्वयनाम्नी चाप्यस्ति । सुविशदत्वात् सुगमत्वात् प्रत्येकदुर्वोधपद-व्याख्यायुतत्वाच्च टीकैषा सस्कृतसाधारणज्ञानवतामप्युपयोगिनी भाविनीत्यभिप्रैमि । हिन्दी-गुर्जरभाषानुवादावपि एतद्भाषाविज्ञाना महीयसे लाभाय भवेतामिति सम्यक् सभावयामि ।

जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर पूज्यश्री घासीलालजी महाराजाना परि श्रमोऽय प्रशसनीयो धन्यवादार्हाश्च ते मुनिसत्तमा । एवमेव श्री-समीरमल्लजी श्री कन्हैयालालजी मुनिवरेण्ययोर्नियोजनकार्यमपि श्लाघ्य, तावपि च मुनिवरौ धन्यवादार्हा स्तः ।

सुन्दरप्रस्तावनाविषयानुक्रमादिना समलङ्कृते सूत्ररत्नेऽस्मिन् यदि शब्दकोपोऽपि दत्तः स्यात्तर्हि वरतर स्यात् । यतोऽस्यावश्यकतां सवऽप्यवेपकविद्यासोऽनुभवन्ति ।

पाठकाः सूत्रस्यास्याभ्ययनायापनेन लेखकनियोजकमहोदयाना परि न्ययिष्यन्तीत्याशास्महे । इति ।

॥ श्रीः ॥

जैनागमवारिधि- जैनधर्मदिवाकर-जैनाचार्य-पूज्य-श्री आत्मारामजी-
महाराजना पञ्चनद-(पजाव)स्थानामनुत्तरोपपातिकसूत्राणा-
मर्थबोधिनीनामकटीकायामिदम्-

सम्मतिपत्रम्

आचार्यवर्यैः श्री घासीलालमुनिभिः सङ्कलिता अनुत्तरोपपातिकसूत्राणामर्थ-
बोधिनीनाम्नी सस्कृतवृत्तिरूपयोगपूर्वक सकलाऽपि स्वशिष्यमुखेनाऽश्रावि मया, इय
हि वृत्तिर्मुनिवरस्य वैदुष्य प्रकटयति । श्रीमद्भिर्मुनिभिः सूत्राणामर्थान् स्पष्टयितु
यः प्रयत्नो व्यधायि तदर्थमनेकशो धन्यवादानर्हन्ति ते । यथा चेय वृत्तिः
सरला सुबोधिनी च तथा सारवत्यपि । अस्याः स्वाध्यायेन निर्वाणपदममीप्सु-
भिर्निर्वाणपदमनुसरद्भिर्ज्ञान-दर्शन-चारित्र्येषु प्रयतमानैर्मुनिभिः श्रावकैश्च ज्ञान-
दर्शन-चारित्र्याणि सम्यक् सम्प्राप्याऽन्येऽप्यात्मानस्तत्र प्रवर्तयिष्यन्ते ।

आशासे श्रीमदाशुक्रविर्मुनिवरो गीर्वाणवाणीजुषा विदुषा मनस्तोषाय
जैनागमसूत्राणा सारावबोधाय च अन्येषामपि जैनागमानामित्थ सरला
सुस्पष्टाश्च वृत्तीर्विधाय तास्तान् सूत्रग्रन्थान् देवगिरा सुस्पष्टयिष्यति ।

अ-ते च “मुनिवरस्य परिश्रम सफलयितु सरला सुबोधिनी चेमा
सूत्रवृत्तिं स्वाध्यायेन सनाथयिष्यन्त्यवश्य सुयोग्या हसनिभा पाठका ।”
इत्याशास्ते—

विक्रमाब्द २००२ }
श्रावणकृष्णा प्रतिपदा }
लुधियाना }

उपाध्याय आत्मारामो जैनमुनिः ।

ऐसेही —

मध्यभारत सैलाना-निवासी श्रीमान् रतनलालजी डोसी
श्रमणोपासक जैन लिखते हैं कि :—

श्रीमान की की हुई टीकावाला उपासकदशाग सेवक के दृष्टि-
गत हुआ, सेवक अभी उसका मनन कर रहा है यह ग्रन्थ सर्वांग-
सुन्दर एवं उच्चकोटि का उपकारक है ।

(१०) सेलाना-ता. २९-११-३६ का पत्र, शास्त्रों के ज्ञाता श्रीमान्
रत्नलालजी डोसी.

(११) खीचन-ता. ९-११-३६ का पत्र, पंडितरत्न न्यायतीर्थ सुश्रावक
धीयुत् माधवलालजी

.. ० ...

ता २५-११-३६

सादर जय जिनेन्द्र

आपका भेजा हुआ उपासक दशाग सूत्र तथा पत्र मिला यहां विरा-
जित प्रवर्तक वयोवृद्ध श्री १००८ श्री ताराचंदजी महाराज पण्डित श्री
किशनलालजी महाराज आदि ठाणा १४ शुख शांती में विराजमान हैं
आपके वहां विराजित जैनशास्त्राचार्य पूज्यपाद श्री १००८ श्री
घासीलालजी महाराज आदि ठाणा नव से हमारी वन्दना अर्ज कर
सुख शांति पूछे आपने उपासकदशाग सूत्र के विषय में यहां
विराजित मुनिवरों की सम्मती मगाई उसके विषय में वक्ता
श्री सोभागमलजी महाराज ने फरमाया है कि वर्तमान में स्थानकवासी
समाज में अनेकानेक विद्वान मुनि महाराज मौजूद हैं मगर जैनशास्त्र
की वृत्ति रचने का साहस जैसा घासीलालजी महाराज ने किया है वैसा
अन्य ने किया हो ऐसा नजर नहीं आता दूसरा यह शास्त्र अत्यन्त
उपयोगी तो यों हैं संस्कृत प्राकृत हिन्दी और गुजराती भाषा होने से
चारों भाषा वाले एक ही पुस्तक से लाभ उठा सकते हैं जैन समाज
में ऐसे विद्वानों का गौरव बढ़े यही शुभ कामना है आशा है कि
स्थानकवासी सघ विद्वानों की कटार करना सीखेगा।

योग्य लिखें शेष शुभ

भवदीय

जमनालाल रामलाल कीमती

*

आगरा से:—

श्री जैनदिवाकर प्रसिद्धवक्ता जगद्वल्लभ मुनि श्री चोथमलजी
महाराज व पंडितरत्न सुन्याख्यानी गणीजी श्री प्यारचन्द जी
महाराज ने इस पुस्तक को अतीव पसन्द की है।

श्री उपासकदशाङ्ग सूत्र परत्वे जैन समाजना अग्रगण्य जैनधर्मभूषण
महान विद्वान सतोए तेमज विद्वान श्रावकोए सम्मतिओ समर्पी छे
तेमना नामो नीचे प्रमाणे छे

- (१) लुधियाना- सम्बत् १९८९, आश्विन पूर्णिमा का पत्र, श्रुतज्ञान के भडार आगमरत्नाकर जैनधर्मदिवाकर श्री १००८ श्री उपाध्याय श्री आत्मारामजी महाराज, तथा न्यायव्याकरणवेत्ता श्री १००७ तच्छिष्य श्री मुनि हेमचन्दजी महाराज
- (२) लाहौर-वि० स० १९८९ आश्विन वदि १३ का पत्र, पण्डित रत्न श्री १००८ श्री भागचन्दजी महाराज तथा तच्छिष्य पण्डित रत्न श्री १००७ श्री त्रिलोकचन्दजी महाराज
- (३) खिचन से ता. ९-११-३६ का पत्र, क्रियापात्र स्थविर श्री १००८ श्री भारतरत्न श्री समरथमलजी महाराज
- (४) वालाचोर-ता. १४-११-३६ का पत्र, परम प्रसिद्ध भारतरत्न श्री १००८ श्री शतावधानीजी श्री रतनचन्दजी महाराज
- (५) घम्बई-ता १६-११-३६ का पत्र, प्रसिद्ध कवीन्द्र श्री १००८ श्री कवि नानचन्द्रजी महाराज
- (६) आगरा-ता १८-११-३६, जगत् बल्लभ श्री १००८ श्री जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज, गुणवन्त गणीजी श्री १००७ श्री साहित्यप्रेमी श्री प्यारचन्दजी महाराज
- (७) हैद्राबाद (दक्षिण) ता २५-११-३६ का पत्र, स्थिरपदभूषित भाग्यवान पुरुष श्री ताराचन्दजी महाराज तथा प्रसिद्ध वक्ता श्री १००७ श्री सोभागमलजी महाराज
- (८) जयपुर-ता २६-११-३६ का पत्र, सप्रदाय के गौरवर्धक शात-स्वभावी श्री १००८ श्री पूज्य श्री खूचन्दजी महाराज
- (९) अम्पाला-ता २९-११-३६ का पत्र, परम प्रतापी पञ्चाव केशरी श्री १००८ श्री पूज्य श्री रामजी महाराज

(१०) सेलाना-ता. २९-११-३६ का पत्र, शास्त्रों के ज्ञाता श्रीमान् रत्नलालजी डोसी.

(११) खीचन-ता. ९-११-३६ का पत्र, पंडितरत्न न्यायतीर्थ सुश्रावक श्रीयुत् माधवलालजी

.. ० ..

ता २५-११-३६

सादर जय जिनेन्द्र

आपका भेजा हुआ उपासक दशाग सूत्र तथा पत्र मिला यहां विराजित प्रवर्तक वयोवृद्ध श्री १००८ श्री ताराचदजी महाराज पण्डित श्री किशनलालजी महाराज आदि ठाणा १४ सुख शांति में विराजमान हैं आपके वहां विराजित जैनशास्त्राचार्य पूज्यपाद श्री १००८ श्री घासीलालजी महाराज आदि ठाणा नव से हमारी वन्दना अर्ज कर सुख शांति पूछे आपने उपासकदशाग सूत्र के विषय में यहां विराजित मुनिवरों की सम्मती मगाई उसके विषय में वक्ता श्री सोभागमलजी महाराज ने फरमाया है कि वर्तमान में स्थानकवासी समाज में अनेकानेक विद्वान मुनि महाराज मौजूद हैं मगर जैनशास्त्र की वृत्ति रचने का साहस जैसा घासीलालजी महाराज ने किया है वैसा अन्य ने किया हो ऐसा नजर नहीं आता दूसरा यह शास्त्र अत्यन्त उपयोगी तो यों हैं सस्कृत प्राकृत हिन्दी और गुजराती भाषा होने से चारों भाषा वाले एक ही पुस्तक से लाभ उठा सकते हैं जैन समाज में ऐसे विद्वानों का गौरव बढे यही शुभ कामना है आशा है कि स्थानकवासी सघ विद्वानों की कदर करना सीखेगा।

योग्य लिखें शेष शुभ

भवदीय

जमनालाल रामलाल कीमती

*

आगरा से—

श्री जैनदिवाकर प्रसिद्धवक्ता जगद्वल्लभ मुनि श्री चोथमलजी महाराज व पंडितरत्न सुव्याख्यानी गणीजी श्री प्यारचन्द जी महाराज ने इस पुस्तक को अतीव पसन्द की है।

श्रीमान् न्यायतीर्थ पण्डित

माधवलालजी खीचन से लिखते हैं कि:-

उन पंडितरत्न महाभाग्यवत पुरुषों के सामने उनकी अगाध-
तत्त्वगवेषणा के विषय में मैं नगण्य क्या सम्मति दे सकता हूँ।

परन्तु :-

मेरे दो मित्रों ने जिन्होंने इसको कुछ पढ़ा है बहुत सराहना की
है वास्तव में ऐसे उत्तम व सबके समझाने योग्य ग्रन्थों की बहुत
आवश्यकता है और इस समाज का तो ऐसा ग्रन्थ ही गौरव बढ़ा
सकते हैं-ये दोनों ग्रन्थ वास्तव में अनुपम हैं ऐसे ग्रन्थरत्नों के
सुप्रकाश से यह समाज अमावास्या के घोर अन्धकार में दीपावली का
अनुभव करती हुई महावीर के अमूल्य वचनों का पान करती हुई
अपनी उन्नति में अग्रसर होती रहेगी।

-: ❀ :-

ता २९-११-३६

अम्बाला (पंजाब)

पत्र आपका मिला श्री श्री १००८ पंजाब केशरी पूज्य श्री काशी-
रामजी महाराज की सेवा में पढ़ कर सुना दिया। आपकी भेजी हुई
उपासकदशाङ्ग सूत्र तथा गृहिधर्मकल्पतरु की एक प्रति भी प्राप्त
हुई। दोनों पुस्तकें अति उपयोगी तथा अत्यधिक परिश्रम से लिखी
हुई हैं, ऐसे ग्रन्थरत्नों के प्रकाशित करवाये की बड़ी आवश्यकता है।
इन पुस्तकों से जैन तथा अजैन सबका उपकार हो सकता है। आपका
यह पुरुषार्थ सराहनीय है।

आपका

शशिभूषण शास्त्री

अध्यापक जैन हाई स्कूल

अम्बाला शहर

शान्त स्वभावी वैराग्य मूर्ति तत्त्व वारिधि, धैर्यवान श्री जैनाचार्य पूज्यवर श्री श्री १००८ श्री खूबचन्दजी महाराज साहेबने सूत्र श्री उपासक दशाङ्गजी को देखा । आपने फरमाया कि पण्डित मुनि घासीलालजी महाराज ने उपासक दशाङ्ग सूत्रकी टीका लिखने में बड़ा ही परिश्रम किया है । इस समय इस प्रकार प्रत्येक सूत्रोकी सशोधक पूर्वक सरल टीका और शुद्ध हिन्दी अनुवाद होने से भगवान निग्रन्थो के प्रवचनों के अपूर्व रस का लाभ मिल सकता है



वालाचोर से भारतरत्न शतावधानी पण्डित मुनि श्री १००८ श्री रतनचन्दजी महाराज फरमाते हैं कि :-

उत्तरोत्तर जोता मूल सूत्रनी सस्कृतटीकाओ रचवामा टीकाकारे स्तुत्य प्रयास कर्गो छे, जे स्थानकवासी समाज माटे मगरुही लेवा जेवु छे, बली कराचीना श्री सवे सारा कागलमा अने सारा टाइपमा पुस्तक छपावी प्रगट कर्गु छे जे एक प्रकारनी साहित्य सेवा बजावी छे.



बम्बई शहर में विराजमान कवि मुनि श्री नानचन्दजी महाराजने फरमाया है कि पुस्तक सुन्दर है प्रयास अच्छा है ।



खीचन से स्थविर क्रिया पात्र मुनि श्री रतनचन्दजी महाराज और पण्डितरत्न मुनि सम्रथमलजी महाराज श्री फरमाते हैं कि—विद्वान महात्मा पुरुषोका प्रयत्न सराहनीय है क्या जैनागम श्रीमद् उपासक दशाङ्ग सूत्र की टीका, एव उसकी सरल सुबोधनी शुद्ध हिन्दी भाषा बड़ी ही सुन्दरता से लिखी है ।



શ્રમણ સઘના પ્રચાર મત્રી પંજળ કેશરી મહારાજ શ્રી પ્રેમચંદ્ર મહારાજ
જેઓશ્રી "રાજકોટમા પધારેલા હતા ત્યારે તેઓના તરફથી શાસ્ત્રોને માટે
મળેલો અભિપ્રાય

*

શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ તરફથી પૂજ્યપાદ શાસ્ત્ર વારિધિ પડિતરાજ સ્વામીશ્રી
ઘાસીલાલજી મહારાજદ્વારા શાસ્ત્રોદ્ધારનું જે કાર્ય થઈ રહ્યું છે તે કાર્ય જૈન સમાજ
તેમા ખાસ કરીને સ્થાનકવાસી જૈન સમાજને માટે મૂળભૂત મૌલિક સંસ્કૃતિની
જડને મજબૂત કરવાવાળું છે

એટલા ખાતર આ કાર્ય અતિ પ્રશસનીય છે માટે દરેક વ્યક્તિએ તેમા
યથાશક્તિ લોગ દેવાની ખાસ આવશ્યકતા છે અને તેથી એ ભગીરથ કાર્ય જલ્દીથી
જલ્દી સંપૂર્ણપણે પાર પાડી શકાય અને જનતા શ્રુતજ્ઞાનનો લાભ મેળવી શકે

*

દરીયાપુરી સ પ્રદાયના પૂજ્ય આચાર્યશ્રી ઇશ્વરલાલજી મહારાજ સાહેબના

સૂત્રો સંબંધે વિચારો

નમામિ વીર ગિરી સાર ધીર

પૂજ્ય પાદ જ્ઞાન પ્રવરશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ તથા પડિતશ્રી કનૈયાલાલજી
મહારાજ આદિ થાણા છની સેવામા-

અમદાવાદ શાહુપુર ઉપાશ્રયથી મુનિ દયાનંદજીના ૧૦૮ પ્રણિપાત

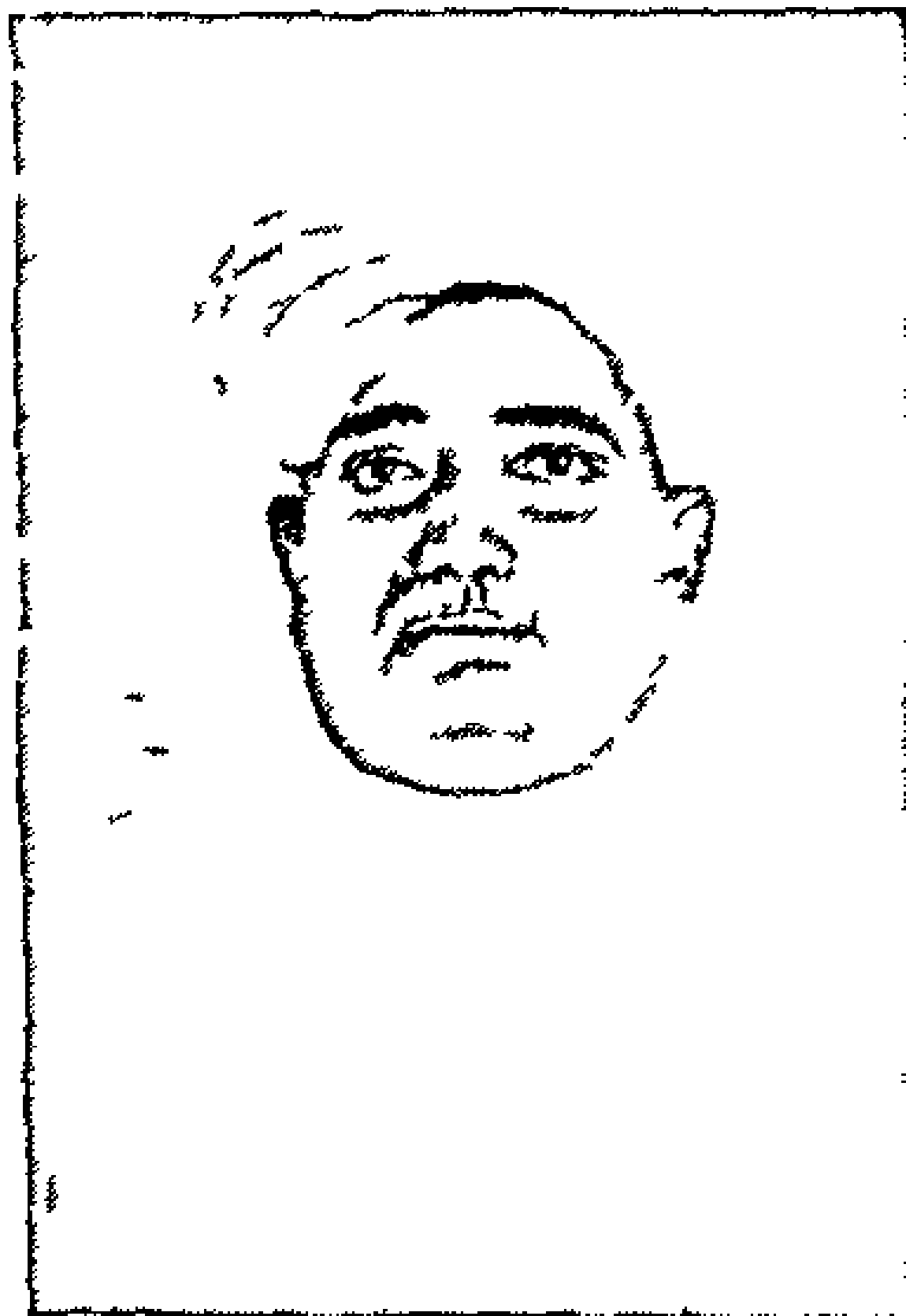
આપ સર્વે થાણાઓ સુખ સમાધિમા હશે નિરતર ધર્મધ્યન ધર્મરાધનમા
લીન હશે.

સૂત્ર પ્રકાશન કાર્ય ત્વરીત થાય એવી ભાવના છે દશવૈકલિક તથા આચારાગ
એક એક ભાગ અહીં છે ટીકા ખૂબ સુદર, સરળ અને પડિતજનોને સુપ્રિય થઈ
પડે તેવી છે સાથે સાથે ટીકા વીનાના મુળ અને અર્થ સાથે પ્રકાશન થાય તો
આવકગણ તેનો વિશેષ લાભ લઈ શકે અને પૂજ્ય આચાર્ય ગુરુદેવને આખે મોતીયો
ઉતરાવ્યો છે અને સારૂ છે એજ

આસો શુદ્ધ ૧૦, મંગળવાર તા ૨૫-૧૦-૫૫

પુન પુન શાતા ઇન્છતો,
દયા મુનિના પ્રણિપાત

૩૧. ૬,૦૦૦ આપનાર આદ્ય મુરુબીશ્રી,



(સ્વ) શેઠ હરખચંદ કાલીદાસ વાઝીયા

ભાણુવડ

શ્રમણ સઘના પ્રચાર મંત્રી પંજાબ કેશરી મહારાજ શ્રી પ્રેમચંદ્ર મહારાજ જેઓશ્રી રાજકોટમાં પધારેલા હતા ત્યારે તેઓના તરફથી શાઓને માટે મળેલો અભિપ્રાય

*

શાઓદ્ધાર સમિતિ તરફથી પૂજ્યપાદ શાસ્ત્ર વારિધિ પડિતરાજ ક્વામીશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજદ્વારા શાઓદ્ધારનું જે કાર્ય થઈ રહ્યું છે તે કાર્ય જેન સમાજ તેમાં ખાસ કરીને સ્થાનકવાસી જેન સમાજને માટે મૂળભૂત મૌલિક સંસ્કૃતિની જડને મજબૂત કરવાવાળું છે

એટલા ખાતર આ કાર્ય અતિ પ્રશસનીય છે માટે દરેક વ્યક્તિએ તેમાં યથાશક્તિ ભાગ લેવાની ખાસ આવશ્યકતા છે અને તેથી એ ભગીરથ કાર્ય જલ્દીથી જલ્દી સંપૂર્ણપણે પાર પાડી શકાય અને જનતા શ્રુતજ્ઞાનનો લાભ મેળવી શકે

*

દરીયાપુરી સ પ્રદાયના પૂજ્ય આચાર્યશ્રી ઇશ્વરલાલજી મહારાજ સાહેબના

સૂત્રો સંબંધે વિચારો

નમામિ વીર ગિરી સાર ધીર

પૂજ્ય પાદ જ્ઞાન પ્રવરશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ તથા પડિતશ્રી કનૈયાલાલજી મહારાજ આદિ થાણા છત્રી સેવામાં—

અમદાવાદ શાહપુર ઉપાશ્રયથી મુનિ દયાનંદજીના ૧૦૮ પ્રશ્નિપાત

આપ સર્વે થાણાઓ સુખ સમાધિમાં હશે નિરતર ધર્મધ્યન ધર્મારાધનમાં લીન હશે।

સૂત્ર પ્રકાશન કાર્ય ત્વરીત થાય એવી ભાવના છે દશવૈકલિક તથા આચારાગ એક એક ભાગ અહીં છે ટીકા ખૂબ સુદર, સરળ અને પડિતજનોને સુપ્રિય થઈ પડે તેવી છે સાથે સાથે ટીકા વીનાના મુળ અને અર્થ સાથે પ્રકાશન થાય તે આવકગણ તેનો વિશેષ લાભ લઈ શકે અને પૂજ્ય આચાર્ય ગુરુદેવને આખે મોતીયો ઉતરાવ્યો છે અને સારૂ છે એજ

આસો શુદ્ધ ૧૦, મંગળવાર તા ૨૫-૧૦-૫૫

પુન પુન શાતા ઇચ્છતો,
દયા મુનિના પ્રશ્નિપાત.

*

દરીયાપુરી મ પ્રદાયના પડિત રત્ન ભાઈચદ જી મહારાજનો અભિપ્રાય
શ્રી

રાણપુર તા ૧૬-૧૨-૧૯૫૫

પૂજ્યપાદ જ્ઞાનપ્રવર પડિતરત્ન પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ આદિમુનિવરોની
વામાં આપ સર્વ સુખ સમાધીમાં હશે.

સૂત્ર પ્રકાશનનું કામ સુદર થઈ રહ્યું છે તે જાણી અત્યંત આનંદ આપના
મશીત થયેલા ઠેટલાક સૂત્રો લેયા. સુદર અને સરલ સિદ્ધાંતના ન્યાયને પુષ્ટિ કરતી
કા પડિતરત્નોને સુપ્રિય થઈ પડે તેવી છે સૂત્ર પ્રકાશનનું કામ ત્વરિત પૂર્ણ થાય
ને ભાવિ આત્માઓને આત્મકથ્યાણુ કરવામાં સાધનભૂત થાય એજ અર્થર્થના

હી પડિતરત્ન જાળખ્રદ્ધચારી
પૂ શ્રી ભાઈચદ મહારાજની
આજ્ઞાનુસાર શાન્તિમુનિના
પાયવદન સ્વીકારશે.

*

તા ૧૧-૫-૫૬

વીરમગામ

ગરબાધિપતિ પૂજ્ય મહારાજ શ્રી જ્ઞાનચંદ્રજી મહારાજના સ પ્રદાયના
માર્ગી, ક્રિયાપાત્ર, પડિતરત્ન, મુનિશ્રી ગમરથમલજી મહારાજનો અભિપ્રાય.

ખીચનથી આવેલ તા ૧૧-૨-૫૬ના પત્રથી ઉપિત

પૂજ્ય આચાર્ય ઘાસીલાલજી મહારાજના દમ્ભક જે સૂત્રોનું લખાણ સુદર
મરણ લાપામાં વાય છે તે આદિત્ય, પડિત મુનિશ્રી ગમરથમલજી મહારાજ,
ય એહો મળવાને માંગે સૂત્રો જેમાં ગ્રામ્યા નથી છતાં જેટલું આદિત્ય નેશું
તે બહુ જ સાદું અને મનન સાધ્ય લખાણેનું છે તે લખાણ ગ્રામ્ય આજ્ઞાને
રૂપ લાગે તે આ આદિત્ય દેવ પ્રદાણુ જોયેને સાચવા ચોગ્ય છે આમ
નકવાસી ગમરથની તરફ, પ્રજાપતિ અને કમળાની તરફ ગ્રામ્યાનુદાન છે
માર્ગ શ્રી અપૂર્વ પદ્મિશ્રમ લઈ પ્રમાણ રૂપ મહાન હિમાલય છે છે

હી. દીપનદાસ ગૃજીવજી આજી

તા ૧૧-૫-૫૬

—

ફરી શાસ્ત્રોદ્ધારક પૂજ્યશ્રી ધાસીલાલજી મહારાજને એમની આ સેવા અને પરમ કલ્યાણકારક પ્રવૃત્તિને માટે વારંવાર અભિનંદન છે શાસનનાયક દેવ તેમના શરિરાદીને સશક્ત અને દીર્ઘાયુ રાખી સમાજ ધર્મની વધુ ને વધુ સેવા કરી શકે હૈં અસ્તુ

આતુર્ભાસ સ્થળ લીબડી } લિ
આ ૨૦૧૦ શ્રાવણ વદ ૧૩ શુક્ર } સદાનંદી જૈનમુનિ છોટાલાલજી

*

શ્રી વર્ધમાન સપ્રદાયના પૂજ્ય શ્રી પુનમચંદ્રજી મહારાજનો અભિપ્રાય

શાસ્ત્ર વિશારદ પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ધાસીલાલજી મહારાજશ્રીએ જૈન આગમો ઉપર જે સંસ્કૃત ટીકા વગેરે રચેલ છે તે માટે તેઓશ્રી ધન્યવાદને પાત્ર છે તેમણે આગમો ઉપરની સ્વતંત્ર ટીકા રચીને સ્થાનકવાસી જૈન સમાજનું ગૌરવ વધાર્યું છે આગમો ઉપરની તેમની સંસ્કૃત ટીકા ભાષા અને ભાવની દૃષ્ટિએ ઘણીજ સુદર છે સંસ્કૃત રચના માધુર્ય તેમજ અલંકાર વગેરે ગુણોથી સુકત છે વિદ્વાનોએ તેમજ જૈન સમાજના આચાર્યો, ઉપાધ્યાયો વગેરે એ શાસ્ત્રો ઉપર રચેલી આ સંસ્કૃત રચનાની કદર કરવી જોઈએ અને દરેક પ્રકારનો સહકાર આપવો જોઈએ

આવા મહાન કાર્યમાં પરિતરત પૂજ્ય શ્રી ધાસીલાલજી મહારાજ જે પ્રયત્ન કરી રહ્યા છે તે અલોકિક છે તેમનું આગમ ઉપરની સંસ્કૃત ટીકા વગેરે રચવાનું ભગીરથ કાર્ય શીઘ્ર સફળ થાય એજ શુભેચ્છા સાથે

અમદાવાદ

તા' ૨૨-૪-૫૬ રવિવાર

મહાવીર જયતિ

મુનિ પૂર્ણચંદ્રજી

*

ખજાત સપ્રદાયના મહાસતી શારદાબાઈ સ્વામીનો અભિપ્રાય

લખતર તા ૨૫-૪-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાતીલાલભાઈ મગળદાસભાઈ

પ્રમુખ સાહેબ અખિલ ભારત જ્વે સ્થા જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ

મુ. અમદાવાદ

અમે અત્રે દેવગુરૂની કૃપાએ સુખરૂપ છીએ વિમા આપની સમિતિ દ્વારા પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ધાસીલાલજી મહારાજ સાહેબ જે સૂત્રોનું કાર્ય કરે છે તે પૈકીના સૂત્રોમાંથી ઉપાસક હયાગ સૂત્ર, આચારાગ સૂત્ર, અનુત્તરોપપાતિક સૂત્ર,

લીબડી સપ્તદાયના સદાનદી સુનિશ્રી છોટાલાલજી મહારાજનો અભિપ્રાય

શ્રી વીતરાગદેવે-જ્ઞાનપ્રચારને તીર્થ કર નામ ગોત્ર બાધવાનું નિમિત્ત કહેલ છે જ્ઞાન પ્રચાર કરનાર, કરવામા સહાય કરનાર, અને તેને અનુમોદન આપનાર જ્ઞાનાવર્ણિય કર્મને ક્ષય કરી-કેવળ જ્ઞાનને પ્રાપ્ત કરી પરમપદના અધિકારી બને છે શાસ્ત્રજ્ઞ-પરમ શાન્ત, અને અપ્રમાદિ પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ પોતે અવિશ્રાન્તપણે જ્ઞાનની ઉપાશના અને તેની પ્રભાવના અનેક વિકટ પ્રસંગોમા પણ કરી રહ્યા છે તે માટે તેઓશ્રી અનેકશ ધન્યવાદના અધિકારી છે વદનિય છે-તેમની જ્ઞાન પ્રભાવનાની ધગશ ઘણા પ્રમાદિઓને અનુકરણીય છે જેમ પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ પોતે જ્ઞાનપ્રચાર માટે અવિશ્રાન્ત પ્રયત્ન કરે છે તેમજ-શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના કાર્યવાહકો પણ એમા સહાય કરીને જે પવિત્ર સેવા કરી રહેલ છે તે પણ ખરેખર ધન્યવાદના પૂર્ણ અધિકારી છે

એ સમિતિના કાર્યકરોને મારી એક સૂચના છે કે -

શાસ્ત્રોદ્ધારક પ્રવર પડિત અપ્રમાદિ સત ઘાસીલાલજી મહારાજ જે શાસ્ત્રોદ્ધારનું કામ કરી રહેલ છે તેમા સહાય કરવા માટે-પડિતો વિગેરેના માટે જે ખર્ચ થઈ રહેલ છે તેને પહોચી વળવા માટે સારૂ સરણુ ફંડ જોઈએ એના માટે મારી એ સૂચના છે કે - શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના મુખ્ય કાર્યવાહકો,-જો બની શકે તો પ્રમુખ પોતે અને બીજા બે ત્રણ જણાઓ ગુજરાત, સૌરાષ્ટ્ર અને કચ્છમા પ્રવાસ કરી મેમ્બરો બનાવે અને આર્થિક સહાય મેળવે

જો કે અત્યારની પરિસ્થિતિ વિષમ છે વ્યાપારીઓ, ધધાદારીઓને પોતાના વ્યવહાર સાચવવા પણ મુશ્કેલ બન્યા છે છતાં જો સલાવિત ગૃહસ્થો પ્રવાસે નીકળે તો જરૂર કાર્ય સફળ કરે એવી મને શ્રદ્ધા છે

આર્થિક અનુકુળતા થવાથી શાસ્ત્રોદ્ધારનું કામ પણ વધુ સરલતાથી થઈ શકે પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ જ્યાં સુધી આ તરફ વિચરે છે ત્યાં સુધીમા એમની જ્ઞાન શક્તિનો જેટલો લાભ લેવાય તેટલો લઈ લેવો કદાચ સૌરાષ્ટ્રમા વધુ વખત રહેવાથી તેમને હવે બહાર વિહરવાની ઈચ્છા થતી હોય તો શાન્તિભાઈ શેઠ જેવાએ વિનંતી કરી અમદાવાદ પધરાવવા અને ત્યાં-અનુકુળતા મુજબ બે-ત્રણ વર્ષની સ્થિરતા કરાવીને તેમની પાસે શાસ્ત્રોદ્ધારનું કામ પૂર્ણ કરાવી લેવું જોઈએ

યોગા વખતમા જામજોધપુરમા શાસ્ત્રોદ્ધાર કમીટી મળવાની છે તે વખતે ઉપરની સૂચના વિચારાય તો ઠીક

ફરી શાસ્ત્રોદ્ધારક પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજને એમની આ સેવા અને પરમ કલ્યાણકારક પ્રવૃત્તિને માટે વારંવાર અભિનંદન છે. શાસનનાયક દેવ તેમના શરિરાદીને સશક્ત અને દીર્ઘાયુ રાખી સમાજ ધર્મની વધુ ને વધુ સેવા કરી શકે
ૐ અસ્તુ

ચાતુર્માસ સ્થળ લીબડી	}	લિ
સા ૨૦૧૦ શ્રાવણ વદ ૧૩ શુક્ર		સદાનદી જૈનમુનિ છોટાલાલજી

*

શ્રી વર્ધમાન સપ્રદાયના પૂજ્ય શ્રી પુનમચંદ્રજી મહારાજનો અભિપ્રાય

શાસ્ત્ર વિશારદ પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજશ્રીએ જૈન આગમો ઉપર જે સંસ્કૃત ટીકા વગેરે રચેલ છે ને માટે તેઓશ્રી ધન્યવાદને પાત્ર છે તેમણે આગમો ઉપરની સ્વતંત્ર ટીકા રચીને સ્થાનકવાસી જૈન સમાજનું ગૌરવ વધાર્યું છે આગમો ઉપરની તેમની સંસ્કૃત ટીકા ભાષા અને ભાવની દૃષ્ટિએ ઘણીજ સુદૃઢ છે સંસ્કૃત રચના માધુર્ય તેમજ અલંકાર વગેરે ગુણોથી સુકત છે વિદ્વાનોએ તેમજ જૈન સમાજના આચાર્યો, ઉપાધ્યાયો વગેરે એ શાસ્ત્રો ઉપર રચેલી આ સંસ્કૃત રચનાની કદર કરવી જોઈએ અને દરેક પ્રકારનો સહકાર આપવો જોઈએ

આવા મહાન કાર્યમાં પરિતરત્ન પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ જે પ્રયત્ન કરી રહ્યા છે તે અલોકિક છે તેમનું આગમ ઉપરની સંસ્કૃત ટીકા વગેરે રચવાનું ભગીરથ કાર્ય શીઘ્ર સફળ થાય એજ શુભેચ્છા સાથે

અમદાવાદ

તા ૨૨-૪-૫૬ રવિવાર

મહાવીર જયતિ

મુનિ પૂર્ણચંદ્રજી

*

ખભાત સપ્રદાયના મહાસતી શારદાબાઈ સ્વામીનો અભિપ્રાય

લખતર તા ૨૫-૪-૫૬

શ્રીમાન ચેઠ શાતીલાલભાઈ મગળદાસભાઈ

પ્રમુખ સાહેબ અખિલ ભાગત શ્રવે સ્થા જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ

મુ. અમદાવાદ

અમો અત્રે દેવગુરૂની કૃપાએ સુખરૂપ છીએ વિમા આપની સમિતિ દ્વારા પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ સાહેબ જે સૂત્રોનું કાર્ય કરે છે તે પૈકીના સૂત્રોમાંથી ઉપાસક દશાગ સૂત્ર, આચારાગ સૂત્ર, અનુત્તરોપપાતિક સૂત્ર,

દશવૈકલિક સૂત્ર વિગેરે સૂત્રો જોયા તે સૂત્રો સ્વસ્કૃત હિંદી અને ગુજરાતી ભાષા
જોમા હોવાને કારણે વિદ્વાન અને સામાન્ય જનોને ઘણું જ લાભદાયક છે તે
માયન ઘણું જ સુદર અને મનોરંજન છે આ કાર્યમા પૂજ્ય આચાર્યશ્રી જે અઘાત
પુરુષાર્થે કાર્ય કરે છે તે માટે વારંવાર ધન્યવાદને પાત્ર છે આ સૂત્રોથી સમાજને
ઘણું લાભનું કારણ છે

હવે સમાન બુદ્ધિવાળા આત્માઓ સ્વપરના ભેદથી નિખાલસ ભાવનાએ
અવલોકન કરશે તો આ સાહિત્ય સ્થાનકવાસી સમાજ માટે અપૂર્વ અને ગૌરવ
લેવા જેવું છે માટે દરેક ભવ્ય આત્માઓને સૂચન કરું છું કે આ સૂત્રો પોતપોતાના
ઘરમા વસાવાની સુદર તકને ચૂકશો નહિ કારણ આવા શુદ્ધ પવિત્ર અને સ્વપરપરા
ને પુણીરૂપ સૂત્રો મળવા બહુ મુશ્કેલ છે આ કાર્યને આપશ્રી તથા સમિતિના અન્ય
કાર્યકરો જે શ્રમ લઈ રહ્યા છે તેમા મહાન નિર્જરનું કારણ જોવામા આવે છે
તે બદલ ધન્યવાદ એજ

શ્રી ગારદાબાઈ સ્વામી

ખલાત સપ્રદાય

*

ખરવાળા સપ્રદાયના વિદુષી મહાસતીજી મોઘીબાઈ

સ્વામીનો અભિપ્રાય

ધધુકા તા ૨૭-૧-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાન્તીલાલ મગજદાસભાઈ

પ્રમુખે અં ભાં પ્રવેં સ્થાં જૈનશાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ

મુ રાજકોટ

અત્રે બિરાજતા ગું ગુંના બહાર મહાસતીજી વિદુષી મોઘીબાઈ સ્વામી
તથા હીરાબાઈ સ્વામી આદિ ઠાણા બન્ને સુખયાતામા બિરાજે છે આપને સૂચન છે
કે અપ્રમત અવસ્થામા રહી નિવૃત્તિ ભાવને મેળવી ધર્મધ્યાન કરશોજી એજ આશા છે

વિશેષમા અમને પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના
રચેલા સૂત્રો બાઈ પોપટ ધનજીભાઈ તરફથી ભેટ તરીકે મળેલા તે સૂત્રો તમામ
આઘોડિપાન વાચ્યા મનન કર્યા અને વિચાર્યા છે તે સૂત્રો સ્થાનકવાસી સમાજને
અને વીતરાગ માર્ગની ખૂબજ હિન્તત બનાવનાર છે તેમા આપણી ધ્રુવ એટલી
ન્યાય રૂપથી ભરેલી છે તે આપણા સમાજ માટે ગૌરવ લેવા જેવું છે હવે સમાન

આત્માઓ જ્ઞાન ઝરણાઓથી આત્મરૂપ વાડીને વિકસીત કરશે ધન્ય છે આપને અને સમિતિના કાર્યકરોને જે સમાજ ઉત્થાન માટે કોઈની પણ પરવા કર્યા વગર જ્ઞાનનું દાન ભવ્ય આત્માઓને આપવા નિમિત્તરૂપ થઈ રહ્યા છે. આવા સમર્થ વિદ્વાન પાસેથી સંપૂર્ણ કાર્ય પુરૂ કરાવશે તેવી આશા છે.

એજ લિ ઝરવાળા સપ્રદાયના વિદુષી
મહાસતીજી મોઘીબાઈ સ્વામી
ના દુરમાનથી લી ખોડીદાસ ગણેસભાઈ-ધધુકા
સ્થાનકવાસી જૈન સઘના પ્રમુખ

*

અદ્યતન પદ્ધતિને અપનાવનાર વડોદરા કોલેજના એક વિદ્વાન
પ્રોફેસરનો અભિપ્રાય

સ્થાનકવાસી સપ્રદાયના મુનિશ્રી ધાસીલાલજી મહાગજ જૈનશાસ્ત્રોના સંસ્કૃત ટીકાખંડ, ગુજરાતીમાં અને હિન્દીમાં ભાષાતરો કરવાના ઘણા વિકટ કાર્યમાં વ્યાસ થયેલા છે શાસ્ત્રો પૈકી જે શાસ્ત્રો પ્રસિદ્ધ થયા છે તે હું જોઈ શક્યો છું, મુનિશ્રી પોતે સંસ્કૃત, અર્ધભાગધી હિન્દી ભાષાઓના નિષ્ણાત છે, એ એમનો ટુકો પરિચય કરતા સહજ જણાઈ આવે છે શાસ્ત્રોનું સંપાદન કરવામાં તેમને પોતાના, શિષ્ય-વર્ગનો અને વિશેષમાં ત્રણ પડિતોનો સહકાર મળ્યો છે, તે જોઈ મને આનંદ થયો. સ્થાનકવાસી સપ્રદાયના અગ્રેસરોએ પડિતોનો સહકાર મેળવી આપી મુનિશ્રીના કાર્યને સરળ અને શિષ્ટ બનાવ્યું છે સ્થાનકવાસી સમાજમાં વિદ્વતા ઘણી એછી છે તે દિગંજર, મૂર્તિપૂજક શ્રવેતાળર વગેરે જૈનદર્શનના પ્રતિનિધિઓના ઘણા સમયથી પરિચયમાં આવતા હું વિરોધના ભય વગર, કહી શકું પૂ મહારાજનો આ પ્રયાસ સ્થાનકવાસી સપ્રદાયમાં પ્રથમ છે એવી મારી માન્યતા છે સંસ્કૃત સ્પષ્ટીકરણો સારા આપવામાં આવ્યા છે ભાષાં શુદ્ધ છે એમ હું ચેષ્ઠસ કહી શકું છું ગુજરાતી ભાષાતરો પણ શુદ્ધ અને સરળ થયેલા છે મને વિશ્વાસ છે કે મહારાજ શ્રીના આ સ્તુત્ય પ્રયાસને જૈનસમાજ ઉત્તેજન આપશે અને શાસ્ત્રોના ભાષાતરોને વાચનાલયમાં અને કુટુંબોમાં વસાવી શકાય તે પ્રમાણે વ્યવસ્થા કરશે

પ્રતાપગજ, વડોદરા

કામદાર કેશવલાલ હિમતરામ,
એમ એ

દશવૈકલિક સૂત્ર વિગેરે સૂત્રો જોયા તે સૂત્રો સંસ્કૃત હિંદી અને ગુજરાતી ભાષાઓમાં હોવાને કારણે વિદ્વાન અને સામાન્ય જનોને ઘણું જ લાભદાયિક છે તે પ્રાચીન ઘણું જ સુદર અને મનોરંજન છે આ કાર્યમાં પૂજ્ય આચાર્યશ્રી જે અઘાત પુરુષાર્થે કાર્ય કરે છે તે માટે વારંવાર ધન્યવાદને પાત્ર છે આ મૂત્રોથી સમાજને ઘણું લાભનું કારણ છે

હવે સમાન બુદ્ધિવાળા આત્માઓ સ્વપરના ભેદથી નિખાલસ ભાવનાઓ અવલોકન કરશે તો આ સાહિત્ય સ્થાનકવાસી સમાજ માટે અપૂર્વ અને ગૌરવ લેવા જેવું છે માટે દરેક ભવ્ય આત્માઓને સૂચન કરું છું કે આ સૂત્રો પોતપોતાના ધરમાં વસાવાની સુદર તકને ચૂકશે નહિ કારણ આવા શુદ્ધ પવિત્ર અને સ્વપરપરાને પુણીરૂપ સૂત્રો મળવા બહુ મુશ્કેલ છે આ કાર્યને આપશ્રી તથા સમિતિના અન્ય કાર્યકરો જે શ્રમ લઈ રહ્યા છે તેમાં મહાન નિર્જરાતું કારણ જોવામાં આવે છે તે બદલ ધન્યવાદ એજ

શ્રી ગારદાબાઈ સ્વામી

ખજાત સ પ્રદાય

*

બરવાળા સ પ્રદાયના વિદુષી મહાસતીજી મોઘીબાઈ

સ્વામીનો અભિપ્રાય

ધ ધ્રુકા તા ૨૭-૧-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાન્તીલાલ મગજદાસબાઈ

પ્રમુખ અં ભાં શ્વેં સ્થાં જૈનશાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ

મુ રાજકોટ

અત્રે બિરાજતા શુભ શુભના બહાર મહાસતીજી વિદુષી મોઘીબાઈ સ્વામી તથા હીરાબાઈ સ્વામી આદિ ઠાણા બન્ને સુખચાતામાં બિરાજે છે આપને સૂચન છે કે અપ્રમત અવસ્થામાં રહી નિવૃત્તિ ભાવને મેળવી ધર્મધ્યાન કરશેજી એજ આશા છે

વિશેષમાં અમને પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના રચેલા સૂત્રો બાઈ પોપટ ધનજીબાઈ તરફથી ભેટ તરીકે મળેલા તે સૂત્રો તમામ આયોડિપાન વાચ્યા મનન કર્યા અને વિચાર્યા છે તે સૂત્રો સ્થાનકવાસી સમાજને અને વીતરાગ માર્ગની પૂજ્ય ઉન્નત બતાવનાર છે તેમાં આપણી શ્રદ્ધા એટલી ન્યાય રૂપથી ભરેલી છે તે આપણા સમાજ માટે ગૌરવ લેવા જેવું છે હવે સમાન

આ સૂત્રો જોતા પહેલીજ નજરે મહારાજશ્રીનો સ સ્કૃત, અર્ધભાગધી, હિન્દી તથા ગુજરાતી ભાષાઓ ઉપરનો અસાધારણ કાબુ જણાઈ આવે છે એક પણ ભાષા મહારાજશ્રીથી અજાણી નથી આપણે જાણીએ છીએ કે એ સૂત્રો ઉચ્ચ અને પ્રથમ કોટિના છે તેની વસ્તુ ગંભીર, વ્યાપક અને જીવનને તલસ્પર્શી છે આટલા ગહન અને સર્વશ્રાદ્ધ સૂત્રોનું ભાષાતર પૂ ધાસીલાલજી મહારાજ જેવા ઉચ્ચ કોટિના મુનિરાજને હાથે થાય છે તે આપણા અહોભાગ્ય છે યત્રવાદ અને ભૌતિકવાદના આ જમાનામાં જ્યારે ધર્મભાવના ઓસરતી જાય છે એવે વખતે આવા તત્ત્વજ્ઞાન આધ્યાત્મિકતાથી ભરેલા સૂત્રોનું સરળ ભાષામાં ભાષાતર દરેક જાણસુ, મુમુક્ષુ અને સાધકને માર્ગદર્શક થઈ પડે તેમ છે જૈન અને જૈનેતર, વિદ્વાન અને સાધારણ માણસ, સાધુ અને શ્રાવક દરેકને સમજણ પડે તેવી સ્પષ્ટ, સરળ અને શુદ્ધ ભાષામાં સૂત્રો લખવામાં આવ્યા છે મહારાજશ્રીને જ્યારે જોઈએ ત્યારે તેમના આ કાર્યમાં સકળાયેલા જોઈએ છીએ એ ઉપરથી મુનિશ્રીના પરિશ્રમ અને ધગશની કદરૂપના કરી શકાય તેમ છે તેમનું જીવન સૂત્રોમાં વણાઈ ગયું છે

મુનિશ્રીના આ અસાધારણ કાર્યમાં પોતાના શિષ્યોનો તથા પડિતોનો સહકાર મળ્યો છે મને આશા છે કે જો દરેક મુમુક્ષુ આ પુસ્તકોને પોતાના ઘરમાં વસાવશે અને પોતાના જીવનને સાચા મુખને માર્ગે વાળશે તો મહારાજશ્રીએ ઉઠાવેલો શ્રમ સંપૂર્ણપણે સફળ થશે

પ્રો. રમિકલાલ કસ્તુરચંદ ગાધી

એમ એ એલ એલ બી

ધર્મેન્દ્રસિંહજી કોલેજ

રાજકોટ (સૌરાષ્ટ્ર)

*

સુખદ અને ઘાટકોપરમાં મળેલી સભાએ સિનાસર કોન્ફરન્સ તથા

સાધુ સ મેલનમાં મોકલાવેલ ઠગવ

હાલ જે વખતે શ્રી જ્વેતાળર સ્થાનકવાસી જૈન સઘ માટે આગમ-સંશોધન અને સ્વતંત્ર ટીકાવાળા શાસ્ત્રોદ્ધારની અતિ આવશ્યકતા છે અને જે મહાનુભાવોએ આ વાત દીર્ઘ દ્રષ્ટિથી પહેલી પોતાના મગજમાં લઈ તે પાર પાડવા મહેનત લઈ રહ્યા છે તેવા મુનિ મહારાજ પડિતરત્ન શ્રી ધાસીલાલજી મહારાજ કે જેઓને સાદી અધિવેશનમાં સર્વાનુમતે સાહિત્ય મંત્રી નીમ્યા છે તેઓશ્રીની દેખરેખ નીચે આ ભા જ્વે સ્થા જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ જે એક મોટી વગવાળી કમિટી છે તેની મારફતે કામ થઈ રહ્યું છે જેને પ્રધાનાચાર્યશ્રી તથા પ્રચાર મંત્રીશ્રી

મુખ્યની બે કોલેજોના પ્રોફેસરોનો અભિપ્રાય

મુખર્ષ તા ૩૧-૩-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાંતીલાલ મગજદાર

પ્રમુખ શ્રી અખિલ ભારત શ્વે સ્થા જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ,
રાજકોટ

પૂજ્યાચાર્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજે તૈયાર કરેલા આચારાગ, દશવૈકલિક આવશ્યક, ઉપાસકદશાગ વગેરે સૂત્રો અમે જોયા આ સૂત્રો ઉપર સંસ્કૃતમાં ટીકા આપવામાં આવી છે અને સાથે સાથે હિન્દી અને ગુજરાતી ભાષાતરો પણ આપવામાં આવ્યા છે, સંસ્કૃત ટીકા અને ગુજરાતી તથા હિન્દી ભાષાતરો જોના આચાર્યશ્રીના આ ત્રણે ભાષા પરના એકસરખા અસાધારણ પ્રભુત્વની સચોટ અને સુરેખ છાપ પડે છે આ સૂત્ર ગ્રંથોમાં પાને પાને પ્રગટ થતી આચાર્યશ્રીની અપ્રતિમ વિદ્વતા મુગ્ધ કરી દે તેવી છે ગુજરાતી તથા હિન્દીમાં થયેલા ભાષાતરમાં ભાષાની શુદ્ધિ અને સરળતા નોંધપાત્ર છે એથી વિદ્વદ્જન અને સાધારણ માણસ ઉભયને સતોષ આપે એવી એમની લેખિનીની પ્રતીતિ થાય છે ૩૨ સૂત્રોમાંથી હજુ ૧૩ સૂત્રો પ્રગટ થયા છે બીજા ૭ સૂત્રો લખાઈને તૈયાર થઈ ગયા છે આ બધા ૪ સૂત્રો જ્યારે એમને હાથે તૈયાર થઈને પ્રગટ થશે ત્યારે જૈન સૂત્ર-સાહિત્યમાં અમૂલ્ય સપત્તિરૂપ ગણાશે એમાં સંશય નથી આચાર્યશ્રી આ મહાન કાર્યને જૈન સમાજનો-વિશેષતઃ સ્થાનકવાસી સમાજનો સંપૂર્ણ સહકાર સાપડી રહેશે એવી અમે આશા રાખીએ છીએ

પ્રો રમણલાલ ચીમનલાલ શાહ
સેટ ઝેવિયર્સ કોલેજ મુખર્ષ
પ્રો તારા રમણલાલ શાહ
સોશીયા કોલેજ, મુખર્ષ.

*

રાજકોટની ધર્મેન્દ્રસિંહજી કોલેજના પ્રોફેસર સાહેબનો
અભિપ્રાય.

જયમહાલ

જગનાથ પ્લોટ

રાજકોટ, તા ૧૮-૪-૫૬

પૂજ્યાચાર્ય ૫ મુનિ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ આજે જૈન સમાજ માટે એક એવા કાર્યમાં વ્યાપ્ત થયેલા છે કે જે સમાજ માટે બહુ ઉપયોગી થઈ પડ્યો. મુનિશ્રીએ તૈયાર કરેલા આચારાગ, દશવૈકલિક, શ્રી વિપ્રકથિત વિ મે જોયા

આ સૂત્રો જોતા પહેલીજ નજરે મહારાજશ્રીનો સંસ્કૃત, અર્ધભાગધી, હિન્દી તથા ગુજરાતી ભાષાઓ ઉપરનો અસાધારણ કાબુ જણાઈ આવે છે એક પણ ભાષા મહારાજશ્રીથી અજાણી નથી આપણે જાણીએ છીએ કે એ સૂત્રો ઉચ્ચ અને પ્રથમ કોટિના છે તેની વસ્તુ ગંભીર, વ્યાપક અને જીવનને તલસ્પર્શી છે આટલા ગહન અને સર્વશાસ્ત્ર સૂત્રોનું ભાષાતર પૂં ધાસીલાલજી મહારાજ જેવા ઉચ્ચ કોટિના મુનિરાજને હાથે થાય છે તે આપણા અહોભાગ્ય છે યત્રવાદ અને ભૌતિકવાદના આ જમાનામાં જ્યારે ધર્મભાવના ઓસરતી જાય છે એવે વખતે આવા તત્ત્વજ્ઞાન આધ્યાત્મિકતાથી ભરેલા સૂત્રોનું સરળ ભાષામાં ભાષાતર દરેક જણાસુ, મુમુક્ષુ અને સાધકને માર્ગદર્શક થઈ પડે તેમ છે જૈન અને જૈનેતર, વિદ્વાન અને સાધારણ માણસ, સાધુ અને શ્રાવક દરેકને સમજણ પડે તેવી સ્પષ્ટ, સરળ અને શુદ્ધ ભાષામાં સૂત્રો લખવામાં આવ્યા છે મહારાજશ્રીને જ્યારે જોઈએ ત્યારે તેમના આ કાર્યમાં સંકળાયેલા જોઈએ છીએ એ ઉપરથી મુનિશ્રીના પરિશ્રમ અને ધગશની કંટપના કરી શકાય તેમ છે તેમનું જીવન સૂત્રોમાં વણાઈ ગયું છે

મુનિશ્રીના આ અસાધારણ કાર્યમાં પોતાના શિષ્યોનો તથા પડિતોનો મહકાર મળ્યો છે મને આશા છે કે જો દરેક મુમુક્ષુ આ પુસ્તકોને પોતાના ઘરમાં વસાવશે અને પોતાના જીવનને સાચા સુખને માર્ગે વાળશે તો મહારાજશ્રીએ ઉઠાવેલો શ્રમ સંપૂર્ણપણે સફળ થશે

મો. રસિકલાલ કર્તુરચ દ ગાધી

એમ એ એલ એલ બી

ધર્મેન્દ્રસિંહજી કેલેજ

રાજકોટ (સૌરાષ્ટ્ર)

*

સુખઈ અને ઘાટકોપરમાં મળેલી સભાએ લિનાસર કેન્ફરન્સ તથા

સાધુ સ મેલનમાં મોકલાવેલ ઠરાવ

હાલ જે વખતે શ્રી જ્વેતાજીર સ્થાનકવાસી જૈન સઘ માટે આગમ-સંશોધન અને સ્વતંત્ર ટીકાવાળા શાસ્ત્રોદ્ધારની અતિ આવશ્યકતા છે અને જે મહાનુભાવોએ આ વાત દીર્ઘ દ્રષ્ટિથી પહેલી પોતાના મગજમાં લઈ તે પાર પાડવા મહેનત લઈ રહ્યા છે તેવા મુનિ મહારાજ પડિતરત્ન શ્રી ધાસીલાલજી મહારાજ કે જેઓને સાદી અધિવેશનમાં સર્વાતુમતે સાહિત્ય મંત્રી નીમ્યા છે તેઓશ્રીની દેખરેખ નીચે આ જ્વે સ્થા જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ જે એક મોટી વગવાળી કમિટી છે તેની મારફતે કામ થઈ રહ્યું છે જેને પ્રધાનાચાર્યશ્રી તથા પ્રચાર મંત્રીશ્રી

મુખ્યની બે કોલેજોના પ્રોફેસરોનો અભિપ્રાય

મુખર્ષ તા ૩૧-૩-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાંતીલાલ મગળદાસ

પ્રમુખ . શ્રી અખિલ ભારત શ્વે સ્થા જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ,
રાજકોટ

પૂજ્યાચાર્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજે તૈયાર કરેલા આચારાગ, દશવૈકલિક આવશ્યક, ઉપાસકદશાગ વગેરે સૂત્રો અમે જોયા આ સૂત્રો ઉપર સંસ્કૃતમાં ટીકા આપવામાં આવી છે અને સાથે સાથે હિન્દી અને ગુજરાતી ભાષાતરો પણ આપવામાં આવ્યા છે, સંસ્કૃત ટીકા અને ગુજરાતી તથા હિન્દી ભાષાતરો જોતા આચાર્યશ્રીના આ ત્રણે ભાષા પરના એકસરખા અસાધારણ પ્રભુત્વની સચોટ અને સુરેખ છાપ પડે છે આ સૂત્ર ગ્રંથોમાં પાને પાને પ્રગટ થતી આચાર્યશ્રીની અપ્રતિમ વિદ્વતા મુગ્ધ કરી દે તેવી છે ગુજરાતી તથા હિન્દીમાં થયેલા ભાષાતરમાં ભાષાની શુદ્ધિ અને સરળતા નોંધપાત્ર છે એથી વિદ્વદ્જન અને સાધારણ માણસ ઉભયને સંતોષ આપે એવી એમની લેખિનીની પ્રતીતિ થાય છે ૩૨ સૂત્રોમાંથી હજુ ૧૩ સૂત્રો પ્રગટ થયા છે બીજા ૭ સૂત્રો લખાઈને તૈયાર થઈ ગયા છે આ બધા ૪ સૂત્રો જ્યારે એમને હાથે તૈયાર થઈને પ્રગટ થશે ત્યારે જૈન સૂત્ર-સાહિત્યમાં અમૂલ્ય સંપત્તિરૂપ ગણાશે એમાં સંશય નથી આચાર્યશ્રી આ મહાન કાર્યને જૈન સમાજનો-વિશેષતઃ સ્થાનકવાસી સમાજનો સંપૂર્ણ સહકાર સાપડી રહેશે એવી અમે આશા રાખીએ છીએ

પ્રો. રમણલાલ ચીમનલાલ શાહ

સેટ ઝેવિયર્સ કોલેજ મુખર્ષ

પ્રો. તારા રમણલાલ શાહ.

સોપ્રીયા કોલેજ, મુખર્ષ

*

રાજકોટની ધર્મેન્દ્રસિંહજી કોલેજના પ્રોફેસર સાહેબનો

અભિપ્રાય

જયમહાલ

જગનાથ પ્લોટ

રાજકોટ, તા ૧૮-૪-૫૬

પૂજ્યાચાર્ય પ મુનિ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ આજે જૈન સમાજ માટે એક એવા કાર્યમાં વ્યાપ્ત થયેલા છે કે જે સમાજ માટે ગહુ ઉપયોગી થઈ પડ્યો મુનિશ્રીએ તૈયાર કરેલા આચારાગ, દશવૈકલિક, શ્રી વિષ્ણુકથા વિ એ જોયા

નવાઇ નથી અને પૂ શ્રી ઘાસીલાલજીના જનાવેલા સૂત્રો જોતા સૌ કોઇને ખાત્રી થાય તેમ છે કે દામોદરદાસભાઈએ તેમજ સ્થાનકવાસી સમાજે જેવી આશા શ્રી ઘાસીલાલજી મ પાસેથી રાખેલી તે જરાજર ફળીભૂત થયેલ છે

શ્રી વર્ધમાન શ્રમણસઘના આચાર્ય શ્રી આત્મારામજી મહારાજે શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના સૂત્રો માટે ખાસ પ્રશંસા કરી અનુમતિ આપેલ છે તે ઉપરથી જ શ્રી ઘાસીલાલજી મ ના સૂત્રોની ઉપયોગિતાની ખાત્રી થશે

આ સૂત્રો વિદ્યાર્થીને, અભ્યાસીને તેમજ સામાન્ય વાચકને સર્વને એક સરખી રીતે ઉપયોગી થઇ પડે છે વિદ્યાર્થીને તેમજ અભ્યાસીને મૂળ તથા સંસ્કૃત ટીકા વિશેષ કરીને ઉપયોગી થાય તેમ છે ત્યારે સામાન્ય હિન્દી વાચકને હિન્દી અનુવાદ અને ગુજરાતી વાચકને ગુજરાતી અનુવાદથી આપુ સૂત્ર સરળતાથી સમજાય જાય છે

કેટલાકોને એવો ભ્રમ છે કે સૂત્રો વાચવાનું આપણુ કામ નહિ, સૂત્રો આપણને સમજાય નહિ આ ભ્રમ તદ્દન ખોટો છે ખીજા કોઈપણ શાસ્ત્રીય પુસ્તક કરતા સૂત્રો સામાન્ય વાચકને પણ ઘણી સરળતાથી સમજાઈ જાય છે સામાન્ય માણસ પણ સમજી શકે તેટલા માટે જ લ મહાવીરે તે વખતથી લોક ભાષામા (અર્ધ માગધી ભાષામા) સૂત્રો જનાવેલા છે એટલે સૂત્રો વાચવા તેમજ સમજવામા ઘણા સરળ છે

માટે કોઈ પણ વાચકને એનો ભ્રમ હોય તો તે કાઢી નાખવો અને ધર્મનું તેમજ ધર્મના સિદ્ધાંતોનું સાચુ જ્ઞાન મેળવવા માટે સૂત્રો વાચવાને ચૂકવુ નહિ એટલુ જ નહિ પણ જરૂરથી પડેલા સૂત્રોજ વાચવા

સ્થાનકવાસીઓમા આ શ્રી સ્થા જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિએ જે કામ કર્યું છે અને કરી રહી છે તેવુ કોઈ પણ સંસ્થાએ આજ સુધી કર્યું નથી સ્થા જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના છેલ્લા રિપોર્ટ પ્રમાણે ખીજા છ સૂત્રો લખાયેલ પડ્યા છે, જે સૂત્રો-અનુયોગદ્વાર અને ઠાણાગ સૂત્રો-લખાય છે તે પણ થોડા વખતમા તૈયાર થઈ જશે તે પછી બાકીના સૂત્રો હાથ ધરવામા આવશે

તૈયાર સૂત્રો જલ્દી છપાઈ જાય એમ ઇચ્છીએ છીએ અને સ્થા બધુએ સમિતિને ઉત્તેજન અને સહાયતા આપીને તેમના સૂત્રો ધરમા વસાવે એમ ઇચ્છીએ છીએ

‘જૈન સિદ્ધાન્ત’ પત્ર - મે ૧૯૫૫

તથા અનેક અનુભવી મહાનુભાવોએ પોતાની પસંદગીની મહોર છાપ આપી છે અને છેલ્લામા છેલ્લા વડોદરા યુનિવર્સિટીના પ્રોફેસર કેશવલાલ કામદાર એમ એ એ પોતાનું સવિસ્તર પ્રમાણપત્ર આપ્યું છે તે શાસ્ત્રોદ્ધાર કમિટીના કામને આ સંમેલન તથા કેન્ફરન્સ હાર્દિક અભિનંદન આપે છે અને તેમના કામને જ્યાં જ્યાં અને જે જે જરૂર પડે-પડિતની અને નાણાની-પોતાની પાસેના ફંડમાથી અને જાહેર જનતા પાસેથી મદદ મળે તેવી ઇચ્છા ધરાવે છે

આ શાસ્ત્રો અને ટીકાઓને જ્યારે આટલી બધી પ્રશંસાપૂર્વક પસંદગી મળી છે ત્યારે તે કામને મદદ કરવાની આ કેન્ફરન્સ પોતાની ફરજ માને છે અને જે કાંઈ ત્રુટી હોય તે પ ૨ શ્રી ધાસીલાલજી મહારાજની સાનિધ્યમાં જઈ બતાવીને સુધારવા પ્રયત્ન કરવો આ કામને ટલે ચઢાવવા જેવું કોઈપણ કામ સત્તા ઉપરના અધીકારીઓના વાણી કે વર્તનથી ન થાય તે જોવા પ્રમુખ સાહેબને ભલામણ કરે છે

(સ્થા જૈન પત્ર તા ૪-૫-૫૬)

*

સ્વતંત્ર વિચારક અને નિકર લેખક ‘જૈન સિદ્ધાંત’ના તત્ત્વીશ્રી શેઠ નગીનદાસ ગીરધરલાલનો અભિપ્રાય

શ્રી સ્થાનકવાસી શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ સ્થાપીને પૂ શ્રી ધાસીલાલજી મહારાજને સૌરાષ્ટ્રમાં બોલાવી તેમની પાસે બત્રીસે સૂત્રો તૈયાર કરવાની હિલચાલ ચાલતી હતી ત્યારે તે હિલચાલ કરનાર શાસ્ત્રજ્ઞ શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઈ સાથે મારે પત્રવ્યવહાર ચાલેલો ત્યારે શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઈએ તેમના એક પત્રમાં મને લખેલું કે—

“આપણા સૂત્રોના મૂળ પાઠ તપાસી શુદ્ધ કરી સંસ્કૃત સાથે તૈયાર કરી શકે તેવા સ્થાનકવાસી સંપ્રદાયમાં મુનિશ્રી ધાસીલાલજી મ સિવાય મને કોઈ વિશેષ વિદ્વાન મુનિ જોવામાં આવતા નથી લાખી તપાસને અતે મેં મુનિ શ્રી ધાસીલાલજીને પસંદ કરેલા છે”

શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઈ પોતે વિદ્વાન હતા શાસ્ત્રજ્ઞ હતા તેમ વિચારક પણ હતા આવડો તેમજ મુનિઓ પણ તેમની પાસેથી શીક્ષા વાચના લેતા, તેમ જ્ઞાન ચર્ચા પણ કરતા એવા વિદ્વાન શેઠશ્રીની પસંદગી યથાર્થ જ હોય એમાં

નવાઈ નથી અને પૂ શ્રી ધાસીલાલજીના બનાવેલા સૂત્રો જોતા સૌ કોઈને ખાત્રી થાય તેમ છે કે દામોદરદાસભાઈએ તેમજ સ્થાનકવામી સમાજે જેવી આશા શ્રી ધાસીલાલજી મ પામેથી રાખેલી તે બરાબર ફળીભૂત થયેલ છે

શ્રી વર્ધમાન શ્રમણસઘના આચાર્ય શ્રી આત્મારામજી મહારાજે શ્રી ધાસીલાલજી મહારાજના સૂત્રો માટે ખાસ પ્રશ્નસા કરી અનુમતિ આપેલ છે તે ઉપરથી જ શ્રી ધાસીલાલજી મ ના સૂત્રોની ઉપયોગિતાની ખાત્રી થશે

આ સૂત્રો વિદ્યાર્થીને, અભ્યાસીને તેમજ સામાન્ય વાચકને સર્વને એક સરખી રીતે ઉપયોગી થઈ પડે છે વિદ્યાર્થીને તેમજ અભ્યાસીને મૂળ તથા સંસ્કૃત ટીકા વિશેષ કરીને ઉપયોગી થાય તેમ છે ત્યારે સામાન્ય હિન્દી વાચકને હિન્દી અનુવાદ અને ગુજરાતી વાચકને ગુજરાતી અનુવાદથી આપુ સૂત્ર સરળતાથી સમજાય જાય છે

કેટલાકોને એવો ભ્રમ છે કે સૂત્રો વાચવાનું આપણુ કામ નહિ, સૂત્રો આપણને સમજાય નહિ આ ભ્રમ તદ્દન ખોટો છે બીજા કોઈપણ શાસ્ત્રીય પુસ્તક કરતા સૂત્રો સામાન્ય વાચકને પણ ઘણી સરળતાથી સમજાઈ જાય છે સામાન્ય માણસ પણ સમજી શકે તેટલા માટે જ ભ મહાવીરે તે વખતથી લોક ભાષામા (અર્થ માગધી ભાષામા) સૂત્રો બનાવેલા છે એટલે સૂત્રો વાચવા તેમજ સમજવામા ઘણા સરળ છે

માટે કોઈ પણ વાચકને એનો ભ્રમ હોય તો તે કાઢી નાખવો અને ધર્મનું તેમજ ધર્મના સિદ્ધાંતોનું સાચુ જ્ઞાન મેળવવા માટે સૂત્રો વાચવાને ચૂકવુ નહિ એટલુ જ નહિ પણ જરૂરથી પડેલા સૂત્રોજ વાચવા

સ્થાનકવાસીઓમા આ શ્રી સ્થા જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિએ જે કામ કર્યું છે અને કરી રહી છે તેવુ કોઈ પણ સંસ્થાએ આજ સુધી કર્યું નથી સ્થા જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના છેલ્લા રિપોર્ટ પ્રમાણે બીજા છ સૂત્રો લખાયેલ પડ્યા છે, બે સૂત્રો-અનુયોગદ્ધાર અને ઠાણાગ સૂત્રો-લખાય છે તે પણ થોડા વખતમા તૈયાર થઈ જશે તે પછી બાકીના સૂત્રો હાથ ધરવામા આવશે

તૈયાર સૂત્રો જલ્દી છપાઈ જાય એમ ઇચ્છીએ છીએ અને સ્થા બધુઓ સમિતિને ઉત્તેજન અને સહાયતા આપીને તેમના સૂત્રો ધરમા વસાવે એમ ઇચ્છીએ છીએ

‘જૈન સિદ્ધાન્ત’ પત્ર - મે ૧૯૫૫

શ્રુત ભક્તિ

(પૂ આચાર્ય શ્રી ઇશ્વરલાલજી મે સા ની આજ્ઞા અનુસાર લખનાર)

દ સ. ના જૈન મુનિ શ્રી દયાનંદજી મહારાજ

તા ૨૩-૬-૫૬ શાહપુર, અમદાવાદ

આજે લગભગ ૨૦ વર્ષથી શ્રદ્ધેય પરમપૂજ્ય, જ્ઞાન દિવાકર પ મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મ ચરમ તીર્થંકર ભગવાન મહાવીરના અનુત્તર અનુપમ ન્યાય ચુકત, પૂર્વાપર અવિરોધ, સ્વપર કયાણુકારક, ચરમ શીતળ વાણીના ઘોતક એવા શ્રી જિનાગમ પર પ્રકાશ પાડે છે તેઓશ્રી પ્રાચીન, પૌર્વાત્ય સંસ્કૃતાદિ અનેક ભાષાના પ્રખર પડિત છે અને જિન વાણીનો પ્રકાશ સંસ્કૃત, ગુજરાતી અને હિન્દીમાં મૂળ શબ્દાર્થ, ટીકા, વિસ્તૃત વિવરણ સાથે પ્રકાશમાં લાવે છે એ જૈન સમાજ માટે અતિ ગૌરવ અને આનંદનો વિષય છે

ભ૦ મહાવીર અત્યારે આપણી પાસે વિદ્યમાન નથી પરંતુ તેમની વાણી રૂપે અક્ષરદેહ ગણુધર મહારાજોએ શ્રુત પરપરાએ સાચવી રાખ્યો શ્રુત પરપરાથી સચવાતું જ્ઞાન જ્યારે વિસ્મૃત થવાનો સમય ઉપસ્થિત થવા લાગ્યો ત્યારે શ્રી દેવર્દિગણિ ક્ષમાશ્રમણે વલ્લીપુર-વળામાં તે આગમોને પુસ્તકો રૂપે આરંભ કર્યો આજે આ સિદ્ધાંતો આપણી પાસે છે તે અર્ધ માગધી પાલી ભાષામાં છે અત્યારે આ ભાષા ભગવાનની, દેવોની તથા જનગણની ધર્મ ભાષા છે તેને આપણા શ્રમણો અને શ્રમણીઓ તથા મુમુક્ષુ શ્રાવક શ્રાવિકાઓ, મુખપાઠ કરે છે, પરંતુ તેનો અર્થ અને ભાવ ઘણા થોડાઓ સમજે છે

જિનાગમ એ આપણા શ્રદ્ધેય પવિત્ર ધર્મસૂત્રો છે એ આપણી આખો છે તેનો અભ્યાસ કરવો એ આપણી સૌની-જૈન માત્રની ફરજ છે તેને સત્ય સ્વરૂપે સમજાવવા માટે આપણા સહભાગ્યે જ્ઞાન દિવાકર શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજે સત્સંકલ્પ કર્યો છે અને તે લિખિત સૂત્રોને પ્રગટાવી શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતી દ્વારા જ્ઞાન પરણ વહેતી કરી છે આવા અનુપમ કાર્યમાં સકળ જૈનોનો સહકાર અવશ્ય હોવો ઘટે અને તેનો વધારેમાં વધારે પ્રચાર થાય તે માટે પ્રયત્નો કરવા ઘટે

ભ૦ મહાવીરને ગણુધર ગૌતમ પૂછે છે કે હું ભગવાન, સૂત્રની આરાધના કરવાથી શું ફળ પ્રાપ્ત થાય છે ? ભગવાન તેનો પ્રતિ ઉત્તર આપે છે કે શ્રુતની આરાધનાથી જીવોના અજ્ઞાનનો નાશ થાય છે અને તેઓ સસારના કલેશોથી નિવૃત્તિ ગેળવે છે અને સસાર કલેશોથી નિવૃત્તિ અને અજ્ઞાનનો નાશ થતા મોક્ષ ફળની પ્રાપ્તિ થાય છે

આવા જ્ઞાન કાર્યમાં મૂર્તિપૂજક જૈનો, દિગંબરો અને અન્ય ધર્મીઓ હજારો અને લાખો રૂપીયા ખર્ચે છે હિન્દુ ધર્મમાં પવિત્ર મનાતા ધ્રુવ ગીતાના મેકડો નહિ પણ હજારો ટીકા તથા દુનિયાની લગભગ સર્વ ભાષાઓમાં પ્રગટ થયા છે ઇસાઈ ધર્મના પ્રચારકો તેમના પવિત્ર ધર્મગ્રંથ બાઇબલના પ્રચારાર્થે તેનું જગતની સર્વ ભાષાઓમાં ભાષાંતર કરી, તેને પઠન કરના પશુ ઘણી ઓછી કિંમતે વેચી ધર્મ-

સૂત્રોનો પ્રચાર કરે છે સુસ્લીમ લોકો પશુ તેમના પવિત્ર મનાતા ગ્રંથ કુરાનનું ચંપુ અનેક ભાષાઓમાં ભાષાતર કરી સમાજમાં પ્રચાર કરે છે આપણે પૈસા પરનો મોહ ઉતારી ભગવાનના સિદ્ધાંતોનો પ્રચાર કરવા માટે તન, મન, ધન સમર્પણ કરવા જોઈએ અને સૂત્ર પ્રકાશનના કાર્યને વધુ ને વધુ વેગ મળે તે માટે સક્રિય પ્રયત્નો કરવા જોઈએ આવા પવિત્ર કાર્યમાં સાપ્રદાયિક મતભેદો સૌએ ભૂલી જવા જોઈએ અને શુદ્ધ આશયથી ચતા શુદ્ધ કાર્યને અપનાવી લેવું જોઈએ સમિતિના નિયમાનુસાર રૂ. ૨૫૫૭ ભરી સમિતિના સભ્ય બનવું જોઈએ ધાર્મિક અનેક ખાતાઓના મુકાબલે સૂત્ર પ્રકાશનનું-જ્ઞાન પ્રચારનું આ ખાતું સર્વશ્રેષ્ઠ ગણાવું જોઈએ

આ કાર્યને વેગ આપવાની સાથે સાથે એ આગમો-ભગવાનની એ મહાવાણીનું પાન કરવા પશુ આપણે હરહંમેશ તત્પર રહેવું જોઈએ જેથી પરમ શાન્તિ અને જીવન સિદ્ધિ મેળવી શકાય (સ્થા જૈન તા ૫-૭-૫૬)

શ્રી અ ભા સ્વે સ્થા જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના પ્રમુખશ્રી વગેરે

રાણપુર

પરમ પવિત્ર સૌતજીની પુણ્ય ભૂમિ પર જ્યારથી શાન્ત-શાસ્ત્રવિશારદ અપ્રમાદિ પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ધાસીલાલજી મહારાજના પુનિત પગલા થયા છે ત્યારથી ઘણા લાખા કાળથી લાગુ પડેલ જ્ઞાનાવરણિય કર્મના પડળ ઉતારવાનો શુભ પ્રયાસ ચાલ રહ્યો છે અને જે પ્રવચનની પ્રભાવના તેઓશ્રી કરી રહ્યા છે તે અનંત ઉપકારક કાર્યમાં તમે જે અગ્રૂર્વ સહાય આપી રહ્યા છો તે માટે તમે સર્વમે ધન્ય છે અને એ શુભ પ્રવૃત્તિના શુભ પરિણામોનો જનતા લાભ દેશે છે મને તો સમજાય છે કે સાધુજી છઠે ગુણસ્થાનકે હોય છે પણ પૂજ્ય શ્રી ધાસીલાલજી મહારાજ તે બહુધા સાતમે અપ્રમત ગુણસ્થાનકે જ રહે છે એવા અપ્રમત માત્ર પાત્ર-માત્ર માધુર્યો જે સ્થાનકવાસી જૈન સમાજમાં હોય તો સમાજનું શ્રેય થતા જરાએ વાર ન લાગે સમાજ કાશમાં સ્થા જૈન સપ્રદાયનો દિવ્ય પ્રભાકર જળહળી નીકળે ૫ જુ વો દિન

શ્રી શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને મહારી એક નમ્ર સૂચના છે કે-પૂજ્યશ્રીની વૃદ્ધા વસ્થા છે, અને કાર્યપ્રણાલિકા યુવાનોને શરમાવે તેવી છે તેમને ગામોગામ વિહાર કરવા અને શાસ્ત્રોદ્ધારનું કાર્ય કરવું તેમાં ઘણી શારીરિક-માનસિક અને વ્યવહારિક મુશ્કેલી વેઠવી પડે છે તો કેાઈ યોગ્ય સ્થળ કે જ્યાના શ્રાવકો લકિતવાળા હોય, વાડાના રાગના વિષથી અલીપ્ત હોય એવા કેાઈ સ્થળે શાસ્ત્રોદ્ધારનું કાર્ય પૂર્ણ થાય ત્યાં સુધી સ્થીરતા કરી શકે એના માટે પ્રબળ કરવો જોઈએ બીજા કેાઈ એવા સ્થળની અનુકુળતા ન મળે તો છેવટ અમદાવાદમાં યોગ્ય સ્થળે રહેવાની સગવડતા કરી અપાય તો વધુ સારૂ મહારી આ સૂચના પર ધ્યાન આપવા ફરી યાદ આપુ છું ફરીવાર પૂજ્ય આચાર્યશ્રીને અને તેમના સત્કાર્યના સહાયકોને મારા અભિનંદન પાઠવું છું તે સ્વીકારશોજી

લિ સદાનંદી જૈનમુનિ જાગલાવજી

“જૈન સિદ્ધાંતના” તત્ત્વોશ્રીનો અભિપ્રાય.

સ્થાનકવાસીઓમા પ્રમાણભૂત સૂત્રો બહાર પાડનારી આ એકની એક સ્થા છે અને એના આ છેલ્લા રિપોર્ટ ઉપરથી જણાય છે કે તેણે ઘણી સારી પ્રગતિ કરી છે તે જોઈ આનંદ થાય છે

મૂળ પાઠ, ટીકા, હિન્દી તથા ગુજરાતી અનુવાદ સહિત સૂત્રો બહાર પાડવા એ કાંઈ સહેલું કામ નથી એ એક મહાભારત કામ છે અને તે કામ આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ ઘણી સફળતાથી પાર પાડી રહી છે તે સ્થાનકવાસી સમાજ માટે ઘણા ગૌરવનો વિષય છે અને સમિતિ ધન્યવાદને પાત્ર છે

સમિતિ તરફથી નવ સૂત્રો બહાર પડી ચૂક્યા છે, હાલમા ત્રણ સૂત્રો છપાય છે નવ સૂત્રો લખાઈ ગયા છે અને જ બુદ્ધોપ પ્રજ્ઞસિ તથા નદીસૂત્ર તૈયાર થઈ રહ્યા છે

હાલમા મત્રી શ્રી સાકરચંદ બાઈચંદ સમિતિના કામમા જ તેમનો આખો વખત ગાળે છે અને સમિતિના કામકાજને ઘણો વેગ આપી રહ્યા છે તેમની ખત માટે ધન્યવાદ

અને આ મહાભારત કામના મુખ્ય કાર્યકર્તા તો છે વયોવૃદ્ધ પंडित મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ મૂળ પાઠનું સંશોધન તથા સંસ્કૃત ટીકા તેઓશ્રી જ તૈયાર કરે છે મુનિશ્રીનો આ ઉપકાર આખાય સ્થા જૈન સમાજ ઉપર ઘણો મહાન છે એ ઉપકારનો બદલો તો વાળી શકાય તેમજ નથી

પરંતુ આ સમિતિના મેમ્બર બની, તેના બહાર પડેલા સૂત્રો ઘરમા વસાવી તેનું અધ્યયન કરવામા આવે તો જ મહારાજશ્રીનું થોડું ત્રણ અંદા કર્યું ગણાય

ભગવાને કહ્યું છે કે પઠમ ણાણ તઓ દયા પહેલું જ્ઞાન પછી દયા, દયા ધર્મને યથાર્થ સમજવો હોય તો ભગવાનની વાણીરૂપ આપણા સૂત્રો વાચવાજ જોઈએ તેનું અધ્યયન કરવું જોઈએ અને તેનો ભાવાર્થ યથાર્થ સમજવો જોઈએ

એટલા માટે આ શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિના સર્વ સૂત્રો દરેક સ્થા જૈને પોતાના ઘરમા વસાવવાજ જોઈએ સર્વ ધર્મજ્ઞાન આપણા સૂત્રોમાજ સમાયેલું છે અને સૂત્રો સહેલાઈથી વાંચીને સમજી શકાય છે, માટે દરેક સ્થા જૈન આ સૂત્રો વાંચી એ ખાસ જરૂરનું છે

“જૈન સિદ્ધાંત” ડીસેમ્બર- ૫૯



શ્રી ઉપાશક દશાગ સૂત્રને માટે અભિપ્રાય.

મૂળ સૂત્ર તથા પૂ મુનિશ્રી ઘાસીલાલજીએ બનાવેલ સંસ્કૃત છાયા તથા ટીકા અને હિંદી તથા ગુજરાતી-અનુવાદ સહિત

પ્રકાશક-અ ભા શ્વે સ્થાનકવામી જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ, ગરેડીઆ કુવા શાહ, શ્રીન લોજ પામે, રાજકોટ (સૌરાષ્ટ્ર) પૃષ્ઠ ૬૧૬ બીજી આવૃત્તિ બેવડું (મોટું) કદ પાકુ પુઠું જેકેટ સાથે સને ૧૯૫૬ કિમત ૮-૮-૦

આપણા મૂળ બાર અગ સૂત્રોમાનું ઉપાશકદશાગ એ સાતમું અગ સૂત્ર છે, એમા ભગવાન મહાવીરના દશ ઉપાસકો શ્રાવકોના જીવનચરિત્રો આપેલા છે તેમા પહેલું ચરિત્ર આનંદ શ્રાવકનું આવે છે

આનંદ શ્રાવકે જૈન ધર્મ અગીકાર કર્યો અને બારવ્રત ભગવાન મહાવીર પાસે અગીકાર કરી પ્રતિજ્ઞા (પ્રત્યાખ્યાન) લીધા તેનું સવિસ્તર વર્ણન આવે છે તેની અતર્ગત અનેક વિષયો જેવા કે, અભિગમ, લોકાલોકસ્વરૂપ, નવતત્ત્વ, નરક દેવલોક વગેરેનું વર્ણન પણ આવે છે

આનંદ શ્રાવકે બાર વ્રત લીધા તે બારે વ્રતની વિગત અતિચારની વિગત વગેરે બધું આપેલું છે તે જ પ્રમાણે બીજા નવ શ્રાવકોની પણ વિગત આપેલ છે

આનંદ શ્રાવકની પ્રતિજ્ઞામા અરિહત્ત ચેડ્યાઈ શબ્દ આવે છે મૂર્તિપૂજકો મૂર્તિપૂજા સિદ્ધ કરવા માટે તેનો અર્થ અરિહત્તતુ ચૈત્ય (પ્રતિમા) એવો કરે છે પણ તે અર્થ તદ્દન ખોટો છે અને તે જગ્યાએ આગળ પાછળના સ બધા પ્રમાણે તેનો એ ખોટો અર્થ બધા બેસતો જ નથી તે મુનિશ્રી ઘાસીલાલજીએ તેમની ટીકામા અનેક રીતે પ્રમાણ આપી સાબિત કરેલ છે અને અરિહત્ત ચેડ્યાઈ નો અર્થ સાધુ થાય છે તે બતાવી આપેલ છે

આ પ્રમાણે આ સૂત્રમાથી શ્રાવકના શુદ્ધ ધર્મની માહિતી મળે છે તે ઉપરાંત તે શ્રાવકોની ઋદ્ધિ, રહેઠાણ, નગરી વગેરેના વર્ણનો ઉપરથી તે વખતની સામાજિક સ્થિતિ, રીતરિવાજ રાજ્યવસ્થા વગેરે બાબતોની માહિતી મળે છે

એટલે આ સૂત્ર દરેક શ્રાવકે અવશ્ય વાંચવું જોઈએ એટલું જ નહિ પણ વારંવાર અધ્યયન કરવા માટે ધરમા વસાવવું જોઈએ

પુસ્તકની શરૂઆતમા વર્ધ્ધમાન શ્રમણ સધના આચાર્યશ્રી આત્મારામજી મહારાજનું સમતિ પત્ર તથા બીજા સાધુઓ તેમજ શ્રાવકોના સમતિ પત્રો આપેલા છે, તે સૂત્રની પ્રમાણભૂતતાની ખાત્રી આપે છે

“જૈન સિદ્ધાંત” જાન્યુઆરી, ૫૭



“જૈન સિદ્ધાંતના” તત્ત્વોશ્રીનો અભિપ્રાય.

સ્થાનકવાસીઓમાં પ્રમાણભૂત સૂત્રો બહાર પાડનારી આ એકની એક સંસ્થા છે અને એના આ છેલ્લા રિપોર્ટ ઉપરથી જણાય છે કે તેણે ઘણી સારી પ્રગતિ કરી છે તે જોઈ આનંદ થાય છે.

મૂળ પાઠ, ટીકા, હિન્દી તથા ગુજરાતી અનુવાદ સહિત સૂત્રો બહાર પાડવા એ કાંઈ સહેલું કામ નથી એ એક મહાભારત કામ છે અને તે કામ આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ ઘણી સફળતાથી પાર પાડી રહી છે તે સ્થાનકવાસી સમાજ માટે ઘણું ગૌરવનો વિષય છે અને સમિતિ ધન્યવાદને પાત્ર છે.

સમિતિ તરફથી નવ સૂત્રો બહાર પડી ચૂક્યા છે, હાલમાં ત્રણ સૂત્રો છપાય છે નવ સૂત્રો લખાઈ ગયા છે અને જ બુદ્ધીય પ્રજ્ઞાસિ તથા નદીસૂત્ર તૈયાર થઈ રહ્યા છે.

હાલમાં મત્રી શ્રી સાકરચંદ્ર ભાઈચંદ્ર સમિતિના કામમાં જ તેમનો આખો વખત ગાળે છે અને સમિતિના કામકાજને ઘણો વેગ આપી રહ્યા છે તેમની ખત માટે ધન્યવાદ.

અને આ મહાભારત કામના મુખ્ય કાર્યકર્તા તો છે વયોવૃદ્ધ પंडિત મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ મૂળ પાઠનું સંશોધન તથા સંસ્કૃત ટીકા તેઓશ્રી જ તૈયાર કરે છે મુનિશ્રીનો આ ઉપકાર આખાય સ્થા જૈન સમાજ ઉપર ઘણો મહાન છે એ ઉપકારનો બદલો તો વાળી શકાય તેમજ નથી.

પરંતુ આ સમિતિના એમ્બર બની, તેના બહાર પડેલા સૂત્રો ઘરમાં વસાવી તેનું અધ્યયન કરવામાં આવે તો જ મહારાજશ્રીનું થોડું ઝણું અદા કર્યું ગણાય.

ભગવાને કહ્યું છે કે પઠમ ણાણ તઓ દયા પહેલું જ્ઞાન પછી દયા, દયા ધર્મને યથાર્થ સમજવો હોય તો ભગવાનની વાણીરૂપ આપણા સૂત્રો વાચવાજ જોઈએ તેનું અધ્યયન કરવું જોઈએ અને તેનો ભાવાર્થ યથાર્થ સમજવો જોઈએ.

એટલા માટે આ શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિના સર્વ સૂત્રો દરેક સ્થા જોને પોતાના ઘરમાં વસાવવાજ જોઈએ સર્વ ધર્મજ્ઞાન આપણા સૂત્રોમાંજ સમાયેલું છે અને સૂત્રો સહેલાઈથી વાંચીને સમજી શકાય છે, માટે દરેક સ્થા જૈન આ સૂત્રો વાંચી એ ખાસ જરૂરનું છે.

“જૈન સિદ્ધાંત” ડીસેમ્બર-૫૯



૧૧- આ સાલે પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના સુશિષ્ય 'પ' મુનિશ્રી કન્હૈયા લાલજી મહારાજ મલાડ મુકામે ચતુર્માસ ગિરાજે છે અને તેઓશ્રી શાસ્ત્રોના મેમ્બરો કરવા માટે અધ્યાગ પ્રયત્ન કરીને પ્રવચનની સેવા બજાવી રહ્યા છે અને અત્યાર સુધીમા મુળઈ તેમજ પરાઓના લગભગ ૪૦ જેટલા ગૃહસ્થો લાઈફ મેમ્બર બની ગયા છે અને મુળઈમા લગભગ ૩૦૦ જેટલા મેમ્બરો થાય તે ધૃષ્ટવા યોગ્ય છે શ્રીમત ગૃહસ્થો હજારો રૂપિયા પોતાના ઘર ખર્ચમા તેમજ મોજશોખના કામોમા તેમજ વ્યવહારિક કામોમા વાપરી રહ્યા છે તો આવા શાસ્ત્રોદ્ધાર જેવા પવિત્ર કાર્યમા રૂપિયા વાપરશે તો ધર્મની સેવા કરી ગણાશે અને બદલામા ઉત્તમ આગમસાહિત્યની એક લાયબ્રેરી બની જશે જેનું વાચન કરવાથી આત્માને શાંતિ મળશે અને શાસ્ત્રઆજ્ઞા પ્રમાણે વર્તવાથી જીવન સફળ થશે.

સેક્ટર સર્ટીફિકેટો ઉપરાંત હાલમાં મળેલા

કેટલાક તાબા અભિગ્રાએ

શાસ્ત્રોદ્ધારના કાર્યને વેગ આપો

તત્ત્વીસ્થાનેથી (જૈનજ્યોતિ) તા. ૧૫-૬-૫૭

પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ દ્વારા ૪ હાલમાં અમદાવાદ મુકામે સરસપુરના સ્થા. જૈન ઉપાશ્રયમાં બિરાજમાન છે તેઓશ્રી શાસ્ત્રોદ્ધારનું કાર્ય ખૂબ જ અત્યંત અને ઉત્સાહથી વૃદ્ધવયે પણ કરી રહ્યા છે તેઓશ્રી વૃદ્ધ છે છતાં પણ આખો દિવસ શાસ્ત્રની ટીકાઓ લખી રહ્યા છે આજ સુધીમાં તેમણે લગભગ ૨૦ જેટલા શાસ્ત્રોની ટીકાઓ લખી નાખી છે અને બાકીના સૂત્રોની ટીકા જેમ અને તેમ જલદી પૂર્ણ કરવી તેવા મનોરથ સેવી રહેલ છે સ્થા. જૈન સમાજમાં શાસ્ત્રો ઉપર સંસ્કૃત ટીકા લખવાનો આ પ્રથમ જ પ્રયાસ છે અને તે પ્રયાસ સંપૂર્ણ અને એવી અમે શાસનદેવ પ્રત્યે પ્રાર્થના કરીએ છીએ આજ સુધી ઘણા મુનિવરોએ શાસ્ત્રોનું કામ શરૂ કરેલ છે પણ કોઈએ પૂર્ણ કરેલ નથી પૂજ્યશ્રી અમુલબાગવીજી મહારાજે બત્રીસે શાસ્ત્રો ઉપર હિન્દી અનુવાદ કરેલ અને સંપૂર્ણ બનેલ ત્યારબાદ આચાર્ય શ્રી આત્મારામજી મહારાજશ્રીએ હિન્દી ટીકા કેટલાક શાસ્ત્રો ઉપર લખેલ પણ ઘણા શાસ્ત્રો બાકી રહી ગયા પૂજ્ય હસ્તિમલજી મહારાજે એક બે શાસ્ત્રો ઉપરની ટીકાઓના અનુવાદો કરેલ પૂજ્ય શ્રી જવાહિરલાલ મહારાજશ્રીએ સૂયગઢગ સૂત્ર ટીકા સહિત હિન્દી અનુવાદ સાથે કરેલ શ્રી સૌભાગ્યમલજી મહારાજે આચારાગની હિન્દી ટીકા લખેલ પણ સંપૂર્ણ શાસ્ત્રો ઉપર સંસ્કૃત ટીકા હજી સુધી સ્થા. જૈન સાધુઓ તરફથી થયેલ નથી બ્યારે પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજશ્રીએ ૨૦ શાસ્ત્રો ઉપર સંસ્કૃત ટીકા તેના હિન્દી ગુજરાતી અનુવાદ કરાવેલ છે આથી હવે અશા બધાય છે કે તેઓશ્રી બત્રીસે બત્રીસ શાસ્ત્રો ઉપર સંસ્કૃત ટીકા લખવામાં સફળ થશે અને શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિએ આજ સુધી ૧૦ થી ૧૨ શાસ્ત્રો છપાવી પણ દીધા છે અને હજી પણ તે શાસ્ત્રો વિશેષ જલદી છપાય તે માટે શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ સંપૂર્ણ પ્રયત્ન કરી રહેલ છે તે ધ યવાદને પાત્ર છે

જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના રૂ. ૨૫૧૭ બરીને લાઇફ મેમ્બર થનારને શાસ્ત્રો તમામ, શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ તરફથી ભેટ મળે છે આ રીતે એક પથ અને ઢોઢાજ બંને રીતે લાભ થાય તેમ છે રૂ. ૨૫૧ માં ૫૦૦ રૂપિયાની કિંમતના શાસ્ત્રો મળે એ પણ મોટો લાભ છે અને પ્રવચનની પ્રભાવના કરવાનો ધર્મલાભ પણ મળે છે

૧) આ સાથે 'પૂજ્યશ્રી ધાસીલાલજી 'મહારાજના' સુશિષ્ય 'પ. મુનિશ્રી કન્ડૈયા-
લાલજી મહારાજ મલાડ મુકામે ચાતુર્માસ ગિરાજે છે અને તેઓશ્રી શાસ્ત્રોના
મેમ્બરો કરવા માટે અથાગ પ્રયત્ન કરીને પ્રવચનની સેવા બજાવી રહ્યા છે અને
અત્યાર સુધીમા મુળધ તેમજ પરાઓના લગભગ ૪૦ જેટલા ગૃહસ્થો લાઈફ
મેમ્બર બની ગયા છે અને મુળધમા લગભગ ૩૦૦ જેટલા મેમ્બરો થાય તે
પૂરવવા યોગ્ય છે શ્રીમત્ ગૃહસ્થો હજારો રૂપિયા પોતાના ઘર ખર્ચમા તેમજ
મેમ્બરોશોખના કામોમા તેમજ વ્યવહારિક કામોમા વાપરી રહ્યા છે તે આવૃ
શાસ્ત્રોદ્ધાર જેવા પવિત્ર કાર્યમા રૂપિયા વાપરશે તે ધર્મની સેવા કરી ગણાશે
અને બદલામા ઉત્તમ આગમસાહિત્યની એક લાયબ્રેરી બની જશે જેનું વાચન
કરવાથી આત્માને શાંતિ મળશે અને શાસ્ત્રઆજ્ઞા પ્રમાણે વર્તવાથી જીવન સફળ થશે.

શતાવધાની મુનિશ્રી જયતિલાલજી મહારાજશ્રીનો અમદાવાદનો પત્ર “સ્થાનકવાસી જૈન” તા ૫-૬-૫૭ના અકમા છપાયેલ છે જે નીચે મુજબ છે

સૂત્રોના મૂળ પાઠોમા ફેરફાર હોઈ શકે ખરો ?

તા ૭-૮-૫૭ના રોજ અત્રે બિરાજતા શાસ્ત્રોદ્ધારક આચાર્ય મહારાજશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ પાસે, મારા ઉપર આવેલ એક પત્ર લઈને હું ગયો હતો, તે સમયે મારે પૂ મ સા સાથે જે વાતચીત થઈ તે સમાજને જાણ કરવા સારૂ લખુ છું

‘શાસ્ત્રોનું કામ એક ગહન વસ્તુ છે અપ્રમાદી થઈ તેમા અવિરત પ્રયત્નો કરવા જોઈએ સંપૂર્ણ શાસ્ત્રોનું જ્ઞાન તેમજ દરેક પ્રકારની ખાસ ભાષાઓનું જ્ઞાન હોય તોજ આગમોદ્ધારકનું કાર્ય સફળતાથી થાય છે આ પ્રકારનો પ્રયત્ન હાલ અમદાવાદ ખાતે સરસપુર જૈન સ્થાનકમા બિરાજતા પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ કરી રહ્યા છે શાસ્ત્ર લેખનનું આ કાર્ય થઈ રહ્યું છે, તેમા અનેક વ્યક્તિઓને અનેક પ્રકારની શકાઓ થાય છે તેમા શાસ્ત્રોના મૂળ પાઠોમા ફેરફાર થાય છે ? કરવામા આવે છે ? એવો પ્રશ્ન પણ કેટલાકને થાય છે અને તેવો પ્રશ્ન થાય ને સ્વાભાવિક છે, કેમકે અમુક મુનિરાજો તરફથી પ્રગટ થયેલા સૂત્રોના મૂળ પાઠોમા ફેરફાર થયેલા છે જેથી આ કાર્યમા પણ સમાજને શકા થાય

પણ ખરી રીતે જોતા, અત્યારે જે શાસ્ત્રોદ્ધારનું કામ ચાલી રહ્યું છે તે વિષે સમાજને ખાત્રી આપવામા આવે છે કે, શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ તરફથી અત્યાર સુધીમા પ્રગટ થયેલા આગમોના મૂળ પાઠોમા જરાપણ ફેરફાર કરવામા આવેલ નથી અને ભવિષ્યમા જે સૂત્રો પ્રગટ થશે તેમા ફેરફાર થશે નહિ તેની સમાજ નોંધ લે

લી

શતાવધાની શ્રી જયત મુનિ-અમદાવાદ

ડા. ૫,૨૫૧ આપનાર આદ્ય સુરભીશ્રી,



કોઠાની હરગોવીદભાઈ જેચંદ
ગજદોર

“શ્રી અખિલ ભારત શ્વેતામ્બર સ્થાનકવાસી જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિનો દુક પરિચય”

સ્થાનકવાસી સમાજની આ એકની એક સમ્મતા છે કે જેણે અત્યાર સુધીમા તેર સૂત્રો છપાવી બહાર પાડી દીધા છે સાત સૂત્રો છપાય છે અને બીજાં કેટલાક છાપવા માટે તૈયાર થઈ ચૂક્યા છે

આ પ્રમાણે આ સ્થાને મહાન્ પ્રગતિ માધી છે તેનો દુક પરિચય આ પત્રિકામા આપેલ છે તે વાચી જઈ સર્વ સ્થા જૈન ભાઈબહેનોએ આ સ્થાને યથાશક્તિ મદદ કરી તેના કાર્યને હજી વિશેષ વેગવાન બનાવવાની જરૂર છે

ખાલી ઘડો વાગે ઘણો એમ સ્થા કોન્ફરન્સ જેમ ખોટા બણ્યા પુકનારી સ્થાની કોઈ કિંમત નથી, ત્યારે નક્કર કામ કરનારી આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને દરેક પ્રકારે ઉત્તેજન આપવાની દરેક સ્થાનકવાસી જૈનની અનિવાર્ય ફરજ છે

અને આ સર્વ સૂત્રો તૈયાર કરનાર પૂજ્ય મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજનો સ્થાનકવાસી સમાજ ઉપર ઘણો મહાન ઉપકાર છે વયોવૃદ્ધ હોવા છતાં તેઓશ્રી જે મહેનત લઈ સૂત્રો તૈયાર કરાવે છે તેવું કામ હજી સુધી બીજા કોઈએ કર્યું નથી અને બીજી કોઈ કરી શકશે કે નહિ તે પણ શકાલર્થુ છે પૂજ્ય મુનિશ્રીના આ મહાન્ ઉપકારનો કિંચિત બદલો સમાજે આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને બની શકતી સહાય કરીને વાળવાનો છે સ્થાનકવાસી સમાજ જ્ઞાનની કદર કરવામા પાછો હોઈ તેમ નથી એવી અમે આશા રાખીએ છીએ

“ જૈનસિદ્ધાન્ત ” પત્ર ઓક્ટોબર ૧૯૫૭

“શ્રી અખિલ ભારત જ્વેતામ્બર સ્થાનકવાસી જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિનો ટુંક પરિચય”

સ્થાનકવાસી સમાજની આ એકની એક સમ્મતા છે કે જેણે અત્યાર સુધીમા તેર સૂત્રો છપાવી બહાર પાડી દીધા છે સાત સૂત્રો છપાય છે અને બીજા કેટલાક છાપવા માટે તૈયાર થઈ ચૂક્યા છે

આ પ્રમાણે આ સસ્થાએ મહાન્ પ્રગતિ સાધી છે તેનો ટુંક પરિચય આ પત્રિકામા આપેલ છે તે વાચી જઈ સર્વ સ્થા જૈન ભાઈબહેનોએ આ સસ્થાને યથાશક્તિ મદદ કરી તેના કાર્યને હજુ વિશેષ વેગવાન બનાવવાની જરૂર છે

ખાલી ઘડો વાગે ઘણો એમ સ્થા કોન્ફરન્સ જેમ ખોટા બણુગા પુકનારી સસ્થાની કોઈ કિંમત નથી, ત્યારે નક્કર કામ કરનારી આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને દરેક પ્રકારે ઉત્તેજન આપવાની દરેક સ્થાનકવાસી જૈનની અનિવાર્ય ફરજ છે

અને આ સર્વ સૂત્રો તૈયાર કરનાર પૂજ્ય મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજનો સ્થાનકવાસી સમાજ ઉપર ઘણો મહાન ઉપકાર છે વયોવૃદ્ધ હોવા છતાં તેઓશ્રી જે મહેનત લઈ સૂત્રો તૈયાર કરાવે છે તેવું કામ હજુ સુધી બીજા કોઈએ કર્યું નથી અને બીજું કોઈ કરી શકશે કે નહિ તે પણ શકાભર્યું છે પૂજ્ય મુનિશ્રીના આ મહાન્ ઉપકારનો કિંચિત બદલો સમાજે આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને બની શકતી સહાય કરીને વાળવાનો છે સ્થાનકવાસી સમાજ જ્ઞાનની કદર કરવામા પાછો હોઈ તેમ નથી એવી અમે આશા રાખીએ છીએ

“જૈનસિદ્ધાન્ત” પત્ર ઓક્ટોબર ૧૯૫૭

શ્રી દશવૈકાલિક તથા ઉપાસક દશાગ સૂત્રો ।

ગુજરાતી ભાષામાં અનુવાદ થયેલા પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ વિરચિત શ્રી ઉપરોક્ત બે સૂત્રો જૈન ધર્મ પાળતા દરેક ધરમા હોવા જ જોઈએ તે વાચવાથી શ્રાવક ધર્મ અને શ્રમણ ધર્મના આચારનું જ્ઞાન પ્રાપ્ત થઈ શકે છે અને શ્રાવકો પોતાની નિરવધ અને એષણિય સેવા શ્રમણ પ્રત્યે બજાવી શકે છે વર્તમાનકાળે શ્રાવકોમાં તે જ્ઞાન નહિ હોવાને લીધે અધશ્રદ્ધાએ શ્રમણ વર્ગની વૈયાવચ્ચ તો કરી રહેલ છે પરંતુ ‘કલ્પ શુ અને અકલ્પ શુ’ એનું જ્ઞાન નહિ હોવાને લીધે પોતે સાવધ સેવા અર્પી પોતાના સ્વાર્થને ખાતર શ્રમણ વર્ગને પોતાને સહાયક થવામાં ઘસડી રહ્યા છે અને શ્રમણ વર્ગની પ્રાય કુસેવા કરી રહ્યા છે તેમાથી બચી લાભનું કારણ થાય અને શ્રમણને યથાતથ્ય સેવા અર્પી તેમને પણ જ્ઞાનદર્શન ચારિત્રની આરાધના કરવામાં સહાયક થઈ પોતાના જ્ઞાનદર્શન ચારિત્રની આરાધના કરી સુગતિ મેળવી શકે શ્રમણની યથાતથ્ય સેવા કરવી તે અવશ્ય ગૃહસ્થની ફરજ છે

પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મ શાસ્ત્રોદ્ધારનું અનુવાદન ત્રણ ભાષામાં રૂડી રીતે કરી રહ્યા છે અને રૂપિયા ૨૫૧૭ લરી મેમ્બર થનારને રૂા ૪૦૦-૫૦૦ લગભગ ની કીંમતના બત્રીસે આગમો ફ્રી મળી શકે છે તો તે રૂા ૨૫૧૭ લરી મેમ્બર થઈ બત્રીસે આગમો દરેક શ્રાવકધરે મેળવવા જોઈએ બત્રીસે શાસ્ત્રોના લગભગ ૪૮ પુસ્તકો મળશે તો તે લાભ પોતાની નિર્જ્ઞા માટે પુન્યાનુબધી પુન્ય માટે જરૂર મેળવે ઉપરોક્ત બે સૂત્રોની કીંમત સમિતિ કંઈક ઓછી રાખે તો હરકોઈ ગામમાં શ્રીમત હોય તે સૂત્રો લાવી અરધી કીંમતે, મફત અથવા પૂરી કીંમતે લેનારની સ્થિતિ જોઈ દરેક ધરમા વસાવી શકે

—એક ગૃહસ્થ

નોંધ-ઉપરની સૂચનાને અમે આવકારીએ છીએ આવા સૂત્રો દરેક ધરમા વસાવવા યોગ્ય તેમજ દરેક શ્રાવકે વાચવા યોગ્ય છે તત્ત્રિ-

“રત્નજ્યોત” પત્ર

તા. ૧-૧૦-૫૭

૩૧ ૫,૦૦૧ આપનાર આદિ સુરજીશ્રી,



(૨૫) શેઠ ધારસીભાઈ જીવણભાઈ
સોલાપુર

પૂજ્ય આચાર્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજનાં
બનાવેલાં સૂત્રો
કાશ્મીર થી કન્યાકુમારી
તેમજ કરાંચી થી કલકત્તા

સુધી
દરેક સ્થળે હોગથી વચાય છે
કારણ કે
આવી રીતે શાસ્ત્રો તૈયાર કરવાનું અતોષ્ટુ કાર્ય
હજી મુગે કોઈ કરી શક્યું નથી
*

શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સમાજ

ઉપરાંત

શ્રી દેરાવાસી મપ્રદાયના મહાન આચાર્યશ્રી રામવિજયસૂરીજી
તથા અન્ય મુનિવરોએ

તેમજ

તેરાપથી મહાસભા કલકત્તાવાળાએ આ સૂત્રો અપનાવ્યા છે

*

દેશ-પરદેશના મેમ્બરો સૂત્રો વાંચી જૈન ધર્મના શ્રુતજ્ઞાનનો અણુમોલો
લાભ લઈ રહ્યા છે

હમણાજ લડનની ઇન્ડીઆ એપ્રીસ લાઈબ્રેરીએ આ સૂત્રો મંગાવ્યા છે

*

આપ રૂપીઆ ૨૫૧-૦-૦ મોકલી મેમ્બર તરીકે નામ નોંધાવી હપ્તે હપ્તે
લગભગ રૂપીઆ પાંચસો સુધીની કિંમતના શાસ્ત્રો વિના મૂલ્યે મેળવી શકો છો

વધુ વિગત માટે લખો

૪ શ્રીન લોજ પાસે,
ગરેડીઆબુવા રોડ
રાજકોટ

મંત્રિ
શ્રી અખિલ ભારત સ્વે સ્થા. જૈન
શાસ્ત્રોદ્ધાર મંમિતિ

आवश्यकसूत्रस्य विषयानुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ
१ प्रस्तावना	१ - ४०
२ नमस्कारमन्त्रव्याख्या	४१- ६७
३ सामायिकम्	६८-११७
४ चतुर्विंशतिस्तवः	११८-१४५
५ वन्दना	१४६-१५६
६ प्रतिक्रमणम्	१५७-२८५
७ कायोत्सर्गः	२८६-२९९
८ प्रत्याख्यानम्	३००-३२२
९ हिन्दीपरिशिष्ट	३२३-३२८
१० गुजराती परिशिष्ट	३२९-३३५

इति



॥ श्री वीतरागाय नमः ॥



जैनाचार्य-जैनधर्म-दिवाकर-पूज्यश्री घासीलालजीमहाराजेन

आवश्यकसूत्रस्य मुनितोषण्याख्या व्याख्या वितन्यते—

इह हि जन्मजरामरणाऽऽविद्याधिजनितदुःखपटलसकुले क्षणक्षण-
विलक्षणव्यवहारेऽनन्तविस्तारेऽसारेऽपि सारवदाभासमाने ससारे सर्व एव
प्राणिनः सुखप्राप्तिं दुःखाभिहर्तिं च कामयमानाः सदरीदृश्यन्ते, किन्तु सुख-
दुःखोत्पत्तिकारणज्ञानमन्तरेण तन्न समव्रत्यतो दुःखहेतुभूतान् 'मिथ्यात्वा-
ऽविरति कषाय-प्रमादा ऽशुभयोग-हिंसाऽऽरम्भेर्ष्या-राग-द्वेषप्रभृत्यन्तः— शत्रुसमूहान्

श्री आवश्यकसूत्र की मुनितोषणी नामकी व्याख्या की हिन्दी—

प्रस्तावना

जन्म—जरा—मरण—आधि—व्याधि के दुःखों से भरे हुए,
प्रतिक्षण विलक्षण व्यवहार वाले, असार होने पर भी सार सहित
मालूम होने वाले इस अनन्त ससार में, सब जीव सुख चाहते हैं और
दुःख का नाश करना चाहते हैं। किन्तु जब तक सुख और दुःख
के कारणों का ज्ञान न हो, तब तक सुख की प्राप्ति और दुःख का
नाश नहीं हो सकता। इसलिये मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, प्रमाद,
अशुभ योग, हिंसा, आरम्भ, ईर्ष्या, राग, द्वेष आदि दुःखों के

प्रस्तावना

આ અખિલ સસાર, જન્મ, જરા, મરણ, આધિ, અને વ્યાધિરૂપ દુખથી
ભરેલો છે, પ્રતિક્ષણ ચલિત સ્વરૂપથી દૃશ્યમાન થાય છે, તો પણ આવા ક્ષણ
ભરુર જગતમાં સર્વ જીવો સુખની વાંચના રાખે છે અને દુખના નાશની
આકાંક્ષા ધરાવે છે

પરંતુ જ્યાં સુધી વાસ્તવિક સુખ દુખનું મૂળકારણ ન જણાય ત્યાં સુધી
સુખની પ્રાપ્તિ અને દુખનો નાશ થવો અસંભવિત છે એટલા માટે દુખના
કારણભૂત મિથ્યાત્વ અવિરતિ (સાસારિકસુખમાંથી ન નિવર્તવું) કષાય
(ક્રોધ માન માયા લોભ) પ્રમાદ (સત્કાર્યોમાં આગસ રાખવો) અશુભયોગ
(મન વચન કાયાને ખોટી રીતે પ્રવર્તવવા) હિંસા, આરભ (પોતાના સુખ માટે

સમ્યગ્ વિજ્ઞાય તન્નાશો સત્યેવ દુઃસ્વાદિમુક્તાત્માનઃ સાન્દ્રાનન્દસન્દોહસન્દાનિતા મોક્ષલક્ષ્મીમધિગન્તુમર્હન્તિ । તદેવ લક્ષ્મીકૃત્ય સમસ્તજાગતિકજન્તુજાતદ્વિતાય પરમકારુણિકેન વીતરાગેણ ભગવતા શ્રીમદ્દાવીરેણાઽવિતથપથભૂતાભ્યા સમ્યગ્જ્ઞાન ક્રિયાભ્યામેવ સકલસુખનિદાનમોક્ષપ્રાપ્તિઃ પ્રતિપાદિતા ।

સમ્યગ્જ્ઞાન હિ નાઽઽત્મશુદ્ધિમન્તરેણ કદાપિ સમ્ભવતિ, આત્મશુદ્ધિશ્ચ ક્રિયા વિના સર્વથૈવાઽસમ્ભવિની, નહ્યોપધિસેવન વિના રોગોપશ્ચાદિજ્ઞાનમાત્રેણાઽ-
કારણ અન્તરગ શત્રુઓં કો ભલીભાંતિ જાનકર, નાશ કરને પર હી દુઃસ્વ સે છુટકારા પાને વાલે અનન્ત અવિનાશી આત્મિક આનન્દ યુક્ત-મોક્ષ લક્ષ્મી કો પ્રાપ્ત હોતે હૈં । ઇસી કારણ સમસ્ત સસારી, પ્રાણિયોં કે હિત કે લિયે, પરમ દયાલુ, વીતરાગ ભગવાન્ શ્રી મદ્દાવીર ને સમ્યગ્જ્ઞાન ઔર સમ્યક્ ક્રિયા સે હી મોક્ષ કી પ્રાપ્તિ હોના વતલાયા હૈ ।

સમ્યગ્જ્ઞાન આત્મા કી શુદ્ધિ કે વિના કદાપિ નહિં હો સકતા, ઔર આત્મા કી શુદ્ધિ વિના ક્રિયા કે વિલકુલ અસમ્ભવ હૈ । વિના ઔષધ સેવન કિયે, કેવલ જાન લેને સે આરોગ્ય કી પ્રાપ્તિ નહોં

અન્ય જીવોને હુણવા) ઇર્ષ્યા, રાગ, દ્વેષ, આદિ અતરગ શત્રુઓને બાણી તેના નાશ કરવાથીજ અવિનાશી આત્મિક સુખની પ્રાપ્તિ થાય છે

એટલા માટે સમસ્ત પ્રાણીઓના હિત માટે પરમકૃપાળુ મદ્દાવીરદેવે સમ્યક્જ્ઞાન, અને સમ્યક્ ક્રિયાથી મોક્ષની પ્રાપ્તિ બતાવી છે

એકાત જ્ઞાન કે એકાત ક્રિયાથી મોક્ષની પ્રાપ્તિ થતી નથી ઋષિ-મુની ઓએ કહ્યું છે કે

‘ જ્ઞાનક્રિયાભ્યામ્ મોક્ષ ’

અર્થાત્-સમ્યક્ જ્ઞાન અને ક્રિયાથીજ મોક્ષની પ્રાપ્તિ થઈ શકે છે

જેમ ગાડીવાનને અમુક રસ્તાની માહિતી છે પણ જો તે રસ્તે બળદને દોરીને નહિ લઈ બાય તો તે સ્થળે ગાડીવાન પહોચી શકતો નથી, તેવી રીતે મોક્ષરૂપી નગરમા પહોચવાનો રસ્તો બળદે પણ તે બાણી તથારૂપ ક્રિયા ન થાય તો ઇન્દ્રિય રથળે પહોચી શકાતુ નથી. તેમ જ્ઞાન મેળવવા છતાં યથાયોગ્ય ક્રિયા ન થાય તો આત્મિક સુખની પ્રાપ્તિ થવી અશક્ય છે

રોગ્યલાભઃ, કિન્તુ રોગનિદાનજ્ઞાનપૂર્વકતદીયૌષધિસેવનેનૈવ, તથૈવ ન ક્રિયા વિના જ્ઞાનમાત્રેણ પાપક્ષયઃ સમસ્તિ ભવિતુમ્, અપિતુ જ્ઞાનપૂર્વકક્રિયયૈવેતિ ।

કિન્તુ મોક્ષસ્યાવ્યવહિતકારણમપિ ક્રિયૈવ, સત્યપિ કેવલજ્ઞાને પૂર્ણયથા-
ખ્યાતચારિત્રરૂપક્રિયાયા અભાવે મોક્ષાભાવાત્, તદ્ભાવે ચ તદ્ભાવાત્, અતઃ
સમ્યક્ચારિત્રરૂપાયાઃ ક્રિયાયાઃ સદ્ભાવ એવાઽર્જિતસ્ય કર્મણો નિર્જરણસમભવેન

હો સકતી । હાँ, જ્યારે રોગ કે કારણ કા ઓર ઔષધ કા જ્ઞાન
હો જાયગા ત્યારે જો ઔષધ કા સેવન ક્રિયા જાય તો રોગ મિટ
સકતા હૈ । ઇસી પ્રકાર ક્રિયા કે વિના અકેલે જ્ઞાન સે હી કર્મો કા
ક્ષય નહી હો સકતા, ઘલ્લિક જ્ઞાનપૂર્વક ક્રિયા સે હોતા હૈ ।

દૂસરી વાત યહ હૈ કિ મોક્ષ કા અવ્યવહિત કારણ ક્રિયા હી હૈ,
ક્યોંકી કેવલજ્ઞાન કે હો જાને પર મી પૂર્ણ યથાખ્યાત ચારિત્ર રૂપ ક્રિયા
કે અભાવ સે મોક્ષ નહી હોજાતા । જ્યારે પૂર્ણ યથાખ્યાત ચારિત્ર હો જાતા
હૈ ત્યારે તત્કાલ હી મોક્ષ કી પ્રાપ્તિ હો જાતી હૈ । અતઃ સમ્યક્ચારિત્ર
રૂપ ક્રિયા સે હી પહેલે ઘડે હુએ કર્મો કી નિર્જરા હોકર અન્ત મે સમસ્ત

જેમ રોગનું નિદાન જાણ્યા પછી ઔષધનું યથાનિયમ સેવન ન થાય તો
રોગ જાતો નથી તેમ સામાજિક દુખનું ઝારણુ સમ્યક્ પ્રકારે જાણ્યા છતાં
જો તે દુખના નિવારણુ રૂપ ક્રિયા ન થાય તો દુખનો અંત આવતો નથી
એટલા જ માટે જ્ઞાન અને ક્રિયા એ બંનેની આવશ્યકતા છે આ ઉભય પદને
અંગ્રેજીમાં knowledge and action નોલેજ અને એક્શન કહે છે

ખીજો શાસ્ત્રીય દાખલો એ છે કે કેવળ જ્ઞાન (Perfect knowledge
પરફેક્ટ નોલેજ) થયા પછી પણ પૂર્ણ યથાખ્યાત (Perfect પરફેક્ટ) ચારિત્રના
અભાવથી આત્મા સિદ્ધગતિને પામતો નથી

સમ્યક્ ચારિત્ર એટલે સમ્યક્ ક્રિયારૂપ વહન આ સમ્યક્ ક્રિયારૂપ વહનથી
આત્મા પોતાના કર્મોની નિર્જરા (છૂટકારો) કરે છે આ નિર્જરા કરતા કરતા
પોતાની શક્તિ વધારે પ્રમાણમાં કેળવે છે આટલી શક્તિ કેળવતા કેવળ જ્ઞાન
થાય છે છતાં અમુક કર્મોની સત્તા રહી જવાથી, આત્માને તે કર્મોની નિર્જરા
માટે ઘણા વધારે પ્રમાણમાં શક્તિ વધારવાની આવશ્યકતા જણાય છે આવા
પ્રકારની જોશબંધ ક્રિયારૂપ વહનને લેને શાસ્ત્રકારો ‘યથાખ્યાતચારિત્ર’ ના

કૃત્સ્તકર્માત્યન્તવિમુક્તસ્યાઽઽત્મનોઽસદ્ગતયા અપગતલેપવન્ધાઽલાયૂવત્, વન્ધચ્છેદા-
દેરણ્ઢવીજવદ્ ઝ ઋગતિસ્વભાવાદગ્નિશિલાવચ્ચ સ્વયમેવાઽઽલોકાન્તમૂર્ચગમન-
મુપપદ્યતે ।

इत्थ चाभिनवपापकर्माऽसम्बन्धाय चिरकालप्रवृत्तमिथ्यात्वाऽविरति-
कषाय-प्रमाद-योगादिजनितकर्मकलापप्रणाशाय च सम्यक्श्रद्धान-सम्यग्ज्ञान-
वद्भिरपि निरन्तर सम्यक्चारित्र्याऽऽचारणपरायणैरेव भवितव्यमिति निर्णये
तादृशचारित्र्यपवित्रकर्मप्रतिपादकमिद- ‘ भावावश्यकसूत्र ’ सादरमालोक्याऽना-

કર્મોંસે સર્વથા છૂટ કર આત્મા નિસ્સગ હોને સે, જિસકા લેપ પાની કે
યોગ સે છૂટ ગયા હો એસી તૃંબી કી तरह, વધ કા વિનાશ હો જાને સે
एरण्ड के बीज की भाँति, ऊर्ध्वगमन करने का स्वभाव होने से अग्नि
की लौ की नाई स्वय ही लोक के अन्त तक ऊर्ध्वगमन करता है ।
इसलिये नवीन कर्मों का बन्ध रोकने के लिये तथा चिरकाल से लगे
हुए मिथ्यात्व अविरति प्रमाद कषाय योग से उत्पन्न होने वाले कर्मों के
समूह का नाश करने के लिये सम्यग्दृष्टि और सम्यग्ज्ञानी जनों को
भी सम्यक् चारित्र्य में परायण रहना चाहिए । यह निश्चय हो जाने
पर इस प्रकार के चारित्र्यरूप पवित्र कर्त्तव्य को प्रतिपादन करने
वाला यह ‘ आवश्यक ’ नामक शास्त्र आदर के साथ पढ़ कर शीघ्र ही

નામે ઓળખે છે આ ક્રિયારૂપ વહુન છેવટનું વહુન છે, અને આ વહુન પ્રાપ્ત થયે
સર્વ કર્મોંનો ક્ષય થવો જોઈએ, જે સર્વ કર્મોંનો ક્ષય થયે અનંત આત્મિક સુખ
ઉદ્ભવે છે

જેમ લેપ લગાડેલ તુળીપાત્ર પાણીના યોગથી લેપમાથી મુક્ત થાય છે
ને જેમ તે તુળીપાત્ર પાણીની સપાટીએ તરે છે તેમ આત્મા કર્મરૂપી રજથી
ચારિત્ર વડે મુક્ત થઈ સસારની સપાટી પર રહે છે, જેને અગ્રેણમા Surface of
the world (સરદેશ ઓફ ધી વર્લ્ડ) કહે છે

નવા કર્મોંના બંધનની રૂકાવટ માટે અને લાળા વખતથી વ્યાપ્ત એવા
મિથ્યાત્વ અવિરતિ, પ્રમાદ, કષાય અને યોગથી ઉત્પન્ન થતા કર્મોંના
નાશને માટે સમ્યક્ દૃષ્ટિ અને સમ્યક્ જ્ઞાનીઓએ પણ સમ્યક્ ચારિત્રમા પરાયણ
રહેવું જોઈએ

યાસતો વ્રટિતિ સ્વક્રીયાઽવશ્યકર્મણિ વિજ્ઞાતે તદનુષ્ઠાનાય પ્રવર્તિતવ્યમુભયલોક-
સાધનસામગ્રીસકલનચાતુરીચળૈર્વિચક્ષણૈઃ ।

અસ્મિન્ શાસ્ત્રે નિમ્નોક્તાઃ ક્રિયાઃ પ્રતિપાદિતાઃ— (૧) સામાયિકમ્
(સાવધયોગનિવૃત્તિઃ), (૨) ચતુર્વિંશતિસ્તવઃ (૨૪ જિનસ્તુતિઃ), (૩) વન્દનમ્
(ગુરુવન્દના), (૪) પ્રતિક્રમણમ્ (પ્રાયશ્ચિત્તમ્), (૫) કાયોત્સર્ગઃ, (૬) પ્રત્યા-
ખ્યાન ચ ।

યા સ્વામીષ્ઠાઽન્યાનમીષ્ઠભૂતા ક્રિયા સા સાવધયરૂપતાન્નાઽમન્દાઽનન્દ

સરલતા પૂર્વક આવશ્યક ક્રિયાઈ જાન કર હૃદ-લોક-પરલોક કો
સાધન કરને કી સામગ્રી ફરકટી કરને મેં કુશલજનોં કો ઉનકે અનુષ્ઠાન
કરને મે પ્રવૃત્તિ કરના ચાહિય ।

હસ શાસ્ત્ર મે નિમ્ન-કહીદુઈ ક્રિયાઓં કા પ્રતિપાદન કિયા
ગયા હૈ—(૧) સામાયિક (સાવધ યોગ કી નિવૃત્તિ) (૨) ચતુર્વિંશતિ
સ્તવ (૨૪ જિનસ્તુતિ) (૩) વન્દના (ગુરુવન્દના) (૪) પ્રતિક્રમણ
(પ્રાયશ્ચિત્ત) (૫) કાયોત્સર્ગ ઓર (૬) પ્રત્યાખ્યાન ।

જો ક્રિયા અપને હૃષ્ટ ઓર દૂસરે કે અનિષ્ટ કે લિધે કી
જાતી હૈ, વહ સાવધયરૂપ હોને સે અનન્ત અનુપમ આત્મિક આનન્દ

ઉપરોક્ત નિશ્ચય એ ચારિત્રરૂપ પવિત્ર કર્તવ્યને પ્રતિપાદન કરવાવાળા
આવશ્યક સૂત્રનું સમ્યક્જ્ઞાની અને સમ્યક્દૃષ્ટિ જીવોએ માદર પઠન કરવું જોઈએ,
અને સૂત્રોક્ત ક્રિયાનું યથોચિત અનુષ્ઠાન અવશ્ય થવું જોઈએ

સદરહુ શાસ્ત્રમા નીચે પ્રમાણે ક્રિયાઓનું પ્રતિપાદન કર્યું છે (૧) સામાયિક
(સાવધ કાર્યની નિવૃત્તિ) (૨) ચતુર્વિંશતિસ્તવન—૨૪ તિર્થંકરોની સ્તુતિ
(૩) વન્દના (શુદ્ધવદણા) (૪) પ્રતિક્રમણ=થઈ ગયેલ પાપરૂપ ક્રિયાઓને જોઈ
જવી અને ફરીથી તેવા પ્રકારની ક્રિયા નહિ કરવાનું પ્રતિબંધન કરવું અને થયેલ
પાપ બદલ હૃદયપૂર્વક પશ્ચાત્તાપ કરવો (૫) કાયોત્સર્ગ (કાયાને વ્યુત્સર્ગ કરવો
કાયાના અગોપાગને સ્થિર રાખવાની ક્રિયા) (૬) પ્રત્યાખ્યાન—(પરચળાણુ-અમુક
કાર્યો કરવાની બધી કરવી)

જે ક્રિયા પોતાના હૃષ્ટ અને અન્યના અનિષ્ટ માટે કરાય છે તે
પાપકારી હોવાથી અનુપમ આત્મિક સુખ પ્રાપ્ત કરાવનારી નથી પરંતુ આત્માને

સન્દોહસજનનાય પ્રભવતિ, પ્રત્યુતાઽધોગતિનયનાયૈવ જાયતે । યા તુ સ્વકલ્યાણ-
પ્રાર્થનપૂર્વક-સમસ્તજન્તુજાતશાતામિલાપગર્મિતા, મૈત્રી પ્રમોદ-કારુણ્ય માધ્યસ્થ્ય-
ભાવનારૂપજાગરયોત્તરોત્તર-વૈરાગ્યવૃદ્ધિકારિણી, સૈવ નિરવગ્રરૂપતયા વાસ્ત-
વિકાઽઽત્માનન્દાસ્વાદસમ્પાદિકા ભવતીત્યસ્યાઃ પઙ્કિથાઽવશ્યકરૂપક્રિયાયા
સાધુ-સાધ્વી શ્રાવક-શ્રાવિકાણામુભયકાલમવશ્યકરણીયત્વાદિદ-‘ ભાવાવશ્યક ’-
મિતિ કથ્યતે, યથોક્તમ્—

કો દેને વાલી નહી, વલ્લિક અધોગતિ મેં લેજાને વાલી હૈ । જો અપને
કલ્યાણ કી પ્રાર્થના કે સાથ સમસ્ત પ્રાણિયોં કે કલ્યાણ કી ઇચ્છા
સે યુક્ત, મૈત્રી, પ્રમોદ, કારુણ્ય, માધ્યસ્થભાવના-રૂપ જાગૃતિ સે
ઉત્તરોત્તર વૈરાગ્ય બઢાને વાલી હોતી હૈ, વહી ક્રિયા સચે સુખ કા
આસ્વાદન કરા સકતી હૈ । છહ પ્રકાર કી યહ આવશ્યક ક્રિયા
સાધુ માધ્વી શ્રાવક ઓર શ્રાવિકા કો દોનોં સમય અવશ્ય હી
કરને યોગ્ય હૈ, ઇસલિયે ઇસે ‘આવશ્યક’ કહતે હૈ । કહા બી હૈ—

અધોગતિમા વહન કરનારી છે

જો તેમજ પરકલ્યાણ કરવાના ઇરાદાપૂર્વક મૈત્રી, પ્રમોદ, કારુણ્ય
અને માધ્યસ્થ્ય ભાવનારૂપ ક્રિયાનું આચરણ કરવામા આવે તો તે ભાવનાના
પ્રસાદથી આત્મા ઉત્તરોત્તર વૈરાગ્યમય થાય છે, એટલુંજ નહી, પણ અતુલ્ય સુખનો
આસ્વાદન અગીકાર કરી શકે છે મહાત્માઓએ કહ્યું છે કે —

સત્ત્વેષુ મૈત્રીં શુણ્ણિષુ પ્રમોદ કિલ્ણ્ટેષુ જીવેષુ દયાપરત્વમ્,

માધ્યસ્થ્યભાવ વિપરીતવૃત્તૌ, સદા મમાત્મા વિદધાતુ દેવ

અર્થાત્—દરેક જીવો તરફ મૈત્રીભાવ રાખવા, દરેક વ્યક્તિમા શુણ્ણ શોધીને
તેની તરફ આનંદિત થવું, હુ ખી જીવો તરફ કૃપાદૃષ્ટિ રાખવી, વિપરીત આચરણ
કરનારી વ્યક્તિઓ તરફ મધ્યસ્થભાવે જોવું

ઉપરોક્ત ચાર પ્રકારની ભાવના જો ક્રિયારૂપે અગીકાર થાય તો શાશ્વત
સુખ તરફ અનુકંમે વહન થાય છે

છ પ્રકારની આવશ્યક ક્રિયા સાધુ સાધ્વી, શ્રાવક અને શ્રાવિકાઓ અવશ્ય
આચરવા યોગ્ય છે, તે આવશ્યકતાને લઈ મજકુર સૂત્ર-સિદ્ધાંતને આપણે
‘ આવશ્યક સૂત્ર ’ નામે ઓળખીએ છીએ

“समणेण सावएण य, अवस्सकायव्व हवइ जम्हा ।

अतो अहोनिसस्स य, तम्हा ‘आवस्सय’ नाम ॥१॥” इति ।

यच्च सूत्रमिदमावश्यकमित्यारयायते, तत्प्रतिपाद्य-प्रतिपादकाऽभेदाऽभिप्रा-
यादित्यवगन्तव्यम् । आवश्यक हि नैवोपयोगमन्तरा केवलं शुरुवद्-आरब्धमान
सम्यक्तया फलप्रद, किन्तु सोपयोग स्वात्मनि तद्वत्विषयपरिणमनपूर्वकं विधीय-
मानं सल्लोकोत्तरफलप्रदमत एवेद-लोकोत्तरभावावश्यकमिति कथ्यते ।
यथोक्तं भगवता—

“जण्ण इमे समणे वा समणी वा सावए वा साविआ वा तच्चित्ते तम्मणे
तल्लेस्से तदज्झवसिए तत्तिव्वज्झवसाणे तदट्ठोउत्ते तदप्पियकरणे तव्भावणाभाविए

समणेण सावएण य, अवस्सकायव्व हवइ जम्हा ।

अतो अहोनिसस्स य, तम्हा ‘आवस्सय’ नाम ॥

इन क्रियाओं को ‘आवश्यक’ कहने का कारण बतलाया जा
चुका है । किन्तु इस सूत्र को भी आवश्यक कहते हैं । वह इसलिये कि
यहाँ प्रतिपाद्य-जिसका प्रतिपादन किया जाय (आवश्यक), और
प्रतिपादक (शास्त्र) के अभेद की विवक्षा है ।

बिना उपयोग लगाये तोतारटन्ती कर लेने से आवश्यक का
वास्तविक फल नहीं होता, किन्तु उपयोग के साथ, उनके विषय को
आत्मा के साथ एकमेक करते हुए जो आवश्यक किया जाता है
वही लोकोत्तर फल देने वाला लोकोत्तर भावावश्यक कहलाता है ।
भगवान् ने कहा है—

“जण्ण इमे समणे वा समणी वा सावओ वा साविआ वा

ने डोअ पणु क्किया उपयोगपूर्वकं आचरवामा आवे तो न तेनु वास्त
विक इण प्राप्त थअ सके छे जादी ‘पढा पोपटलाअ सन्नराम’ ते सूत्र अनुसार
पोपटीआ शाननी भाअक मुअथी ओली नवु, तेथी अअ अर्थ सरतो नथी ने
उपयोग अने भावपूर्वकं आवश्यक क्कियाओनु आचरण थाय तो न तेथी उप
लक्षित आनंद प्राप्त थाय छे

भगवाने कह्यु छे के—

‘ने डोअ साधु साध्वी, श्रावक श्राविका तच्चित्ते तन्मये, तल्लेस्से, तदध्य

મન્દોહસજનનાય પ્રભવતિ, પ્રત્યુતાઽધોગતિનયનાયૈવ જાયતે । યા તુ સ્વકલ્યાણ-
પ્રાર્થનપૂર્વક-સમસ્તજન્તુજાતશાતાભિલાપગર્ભિતા, મૈત્રી-પ્રમોદ-કારુણ્ય માધ્યસ્થ્ય-
ભાવનારૂપજાગરયોત્તરોત્તર-વૈરાગ્યવૃદ્ધિકારિણી, સૈવ નિરવગ્રરૂપતયા વાસ્ત-
વિકાઽઽત્માનન્દાસ્વાદસમ્પાદિકા ભવતીત્યસ્યાઃ પઙ્કિષ્ઠાઽવશ્યકરૂપક્રિયાયા
સાધુ સાધ્વી-શ્રાવક-શ્રાવિકાણામુભયકાલમવશ્યકરણીયત્વાદિદ-‘ આવશ્યક ’-
મિતિ કથ્યતે, યથોક્તમ્—

કો દેને વાલી નહી, વલ્લિક અધોગતિ મે લેજાને વાલી હૈ । જો અપને
કલ્યાણ કી પ્રાર્થના કે સાથ સમસ્ત પ્રાણિયોં કે કલ્યાણ કી ઇચ્છા
સે યુક્ત, મૈત્રી, પ્રમોદ, કારુણ્ય, માધ્યસ્થ્યભાવના-રૂપ જાગૃતિ સે
ઉત્તરોત્તર વૈરાગ્ય બઢાને વાલી હોતી હૈ, વહી ક્રિયા સચ્ચે સુખ કા
આસ્વાદન કરા સકતી હૈ । છહ પ્રકાર કી યહ આવશ્યક ક્રિયા
સાધુ સાધ્વી શ્રાવક ઓર શ્રાવિકા કો દોનોં સમય અવશ્ય હી
કરને યોગ્ય હૈ, ઇસલિયે ઇસે ‘આવશ્યક’ કહતે હૈ । કહા મી હૈ—

અધોગતિમા વહન કરનારી છે

જો તેમજ પરકલ્યાણ કરવાના ઇરાદાપૂર્વક મૈત્રી, પ્રમોદ, કારુણ્ય
અને માધ્યસ્થ્ય ભાવનારૂપ ક્રિયાનુ આચરણ કરવામા આવે તો તે ભાવનાના
પ્રસાદથી આત્મા ઉત્તરોત્તર વૈરાગ્યમય થાય છે, એટલું જ નહી, પણ અતુલ્ય સુખનો
આસ્વાદન અગીકાર કરી શકે છે મહાત્માઓએ કહ્યું છે કે —

સર્વેષુ મૈત્રીં શુણિષુ પ્રમોદ કિલષ્ટેષુ જીવેષુ દયાપરત્વમ્,

માધ્યસ્થ્યભાવ વિપરીતવૃત્તૌ, સદા મમાત્મા વિદધાતુ દેવ

અર્થાત્—દરેક જીવો તરફ મૈત્રીભાવ રાખવા, દરેક વ્યક્તિમા શુણ શોધીને
તેની તરફ આનંદિત થવું, દુ ખી જીવો તરફ કૃપાદૃષ્ટિ રાખવી, વિપરીત આચરણ
કરનારી વ્યક્તિઓ તરફ મધ્યસ્થભાવે જોવું

ઉપરોક્ત ચાર પ્રકારની ભાવના જો ક્રિયારૂપે અગીકાર થાય તો શાશ્વત
સુખ તરફ અનુકંમે વહન થાય છે

છ પ્રકારની આવશ્યક ક્રિયા સાધુ સાધ્વી, શ્રાવક અને શ્રાવિકાએ અવશ્ય
આચરવા યોગ્ય છે, તે આવશ્યકતાને લઈ મજ્જુર સૂત્ર-સિદ્ધાંતને આપણે
‘ આવશ્યક સૂત્ર ’ નામે ઓળખીએ છીએ

“સમણેણ સાવણં ય, અવસ્સકાયવ્વં હવઙ્ગં જમ્હા ।

અતો અહોનિસસ્સ ય, તમ્હા ‘આવસ્સય’ નામ ॥૧॥” ઇતિ ।

યન્ન સૂત્રમિદમાવશ્યકમિત્યાહ્યાયતે, તત્પ્રતિપાત્ર પ્રતિપાદકાઽભેદાઽભિપ્રા-
યાદિત્યવગન્તવ્યમ્ । આવશ્યકં હિ નૈવોપયોગમન્તરાં કેવલ શુક્રવદ્-આરટ્યમાન
સમ્યક્તયા ફલપ્રદઃ; કિન્તુ સોપયોગ સ્વાત્મનિ તદ્વતવિષયપરિણમનપૂર્વક વિધીય-
માન સહોક્તોત્તરફલપ્રદમત એવદ-લોકોત્તરભાવાવશ્યકમિતિ રુદ્ધ્યતે ।
યથોક્ત ભગવતા—

“જણ્ણં ઇમે સમણે વા સમણી વા સાવણં વા સાવિયા વા તચ્ચિત્તે તમ્મણે
તહેસ્સે તદજ્ઞવસિણં તત્તિવ્વજ્ઞવસાણે તદદ્વોવઉત્તે તદપ્પિયકરણે તવ્ભાવણાભાવિણં

સમણેણ સાવણં ય, અવસ્સકાયવ્વં હવઙ્ગં જમ્હા ।

અતો અહોનિસસ્સ ય, તમ્હા ‘આવસ્સય’ નામ ॥

इन क्रियाओं को ‘आवश्यक’ कहने का कारण बतलाया जा
चुका है । किन्तु इस सूत्र को भी आवश्यक कहते हैं । वह इसलिये कि
यहाँ प्रतिपाद्य—जिसका प्रतिपादन किया जाय (आवश्यक), और
प्रतिपादक (शास्त्र) के अभेद की विवक्षा है ।

विना उपयोग लगाये तो तारटन्ती कर लेने से आवश्यक का
वास्तविक फल नहीं होता, किन्तु उपयोग के साथ, उनके विषय को
आत्मा के साथ एकमेक करते हुए जो आवश्यक किया जाता है
वही लोकोत्तर फल देने वाला लोकोत्तर भावावश्यक कहलाता है ।
भगवान् ने कहा है—

“જણ્ણં ઇમે સમણે વા સમણી વા સાવણં વા સાવિયા વા

જો કેઈ પણ ક્રિયા ઉપયોગપૂર્વક આચરવામા આવે તો જ તેનું વાસ્ત-
વિક ફળ પ્રાપ્ત થઈ શકે છે બાકી ‘પઢો પોપટભાઈ રાજારામ’ તે સૂત્ર અનુસાર
પોપટીઆ જ્ઞાનની માફક મુખથી બોલી જલુ, તેથી કાઈ અર્થ સરતો નથી જો
ઉપયોગ અને ભાવપૂર્વકજ આવશ્યક ક્રિયાઓનુ આચરણ થાય તોજ તેથી ઉપ-
લક્ષિત આનંદ પ્રાપ્ત થાય છે

ભગવાને કહ્યું છે કે—

‘જો કેઈ સાધુ સાધ્વી, શ્રાવક શ્રાવિકા તચ્ચિત્તે તન્મયે, તલેસે, તદ્ધ્ય

અણત્થ કત્થઇ મળ અકરેમાળે ઉમ્મઓકાલ આવસ્સય કરેતિ, સેત્ત લોગુત્તરિય ભાવાવસ્સય ॥”

નન્વેવ તર્હિ ઉપયોગાદિક વિનાઽઽવશ્યક ન કર્તવ્યમિતિ નોદ્યાવનીયમ્, વીતરાગમાર્ગે ક્રિયાયા વિરક્તિ (હિંસાદિત્યાગ) રૂપત્વાત્, સત્યૌપધસેવનવદાવ શ્યક સર્વેષા કર્તવ્યમેવ, યથાઽયથાવિધાનમપિ સેવ્યમાન સત્યૌપધમારોગ્યાયૈવ પ્રભવતિ, તદ્વત-પથ્યાઽપથ્યાદિવિચારણા-તદનુકૂલવર્તના-પૂર્વક સેવ્યમાન તુ તદેવૌપધ સમધિક્કુણાન્ પ્રદર્શયતિ ।

તચ્ચિત્તે તમ્મળે તલ્હેસ્સે તદજ્ઞવસિણ તત્તિવ્વજ્ઞવસાળે તદટ્ટોવડત્તે તદપ્પિયકરણે તવ્ભાવણાભાવિણ અણત્થ કત્થઇ મળ અકરેમાળે ઉમ્મઓ કાલ આવસ્સય કરેતિ, સે ત્ત લોગુત્તરિય ભાવાવસ્સય ॥”

યહૉ યહ પ્રશ્ન ઊઠતા હૈ કિ, યદિ ઉપયોગપૂર્વક આવશ્યક કરને સે હી અલૌકિક ફલ કી પ્રાપ્તિ હોતી હૈ, તો ક્યા વિના ઉપયોગ કે આવશ્યક કરના હી નહીં ચાહિણ ? લેકિન બાત ઈસી નહીં હૈ । વીતરાગ કે માર્ગ મે ક્રિયાઈ વિરક્તિ (હિંસા આદિ કે ત્યાગ) રૂપ હૈ, ઇસલિણ સત્ય ઔપધ કે સમાન ઉનકા સેવન અવશ્ય કરના ચાહિણ । વિના પથ્ય કે સત્ય ઔપધ કા સેવન કરને સે કુછ ન કુછ આરોગ્ય લાભ હોતા હી હૈ । ઔર યદિ પથ્ય અપથ્ય કા વિચાર રખ કર ઉસકે અનુસાર પ્રવૃત્તિ કી જાય તો અધિક લાભ હોતા હૈ । ઇસી પ્રકાર ઉપયોગ પૂર્વક આવશ્યક કરને સે સમસ્ત કર્મોં કી નિર્જરા હોતી હૈ, વસાળે તહ્લાવે આવશ્યક ક્રિયા કરશે તો નિશ્ચયપણે લોકોત્તરભાવને પ્રાપ્ત કરશે ’

અહિં આ પ્રશ્ન ઉપસ્થિત થાય છે કે જો ઉપયોગ અને ભાવપૂર્વક આવશ્યક ક્રિયાઓ કરવામા આવે તોજ અલૌકિક ફળની પ્રાપ્તિ થાય છે, તો ફરી પ્રશ્ન થાય છે કે વિના ઉપયોગે આવશ્યક ક્રિયા ન કરવી ? પ્રત્યુત્તરમા જણાવે છે કે સાકર અધારામા ખાય તો પણ મિઠાશ આપે છે અને પ્રકાશમા વિચાર - કરીને આસ્વાદન લેતા લેતા તે સાકર ખવાય તો અનેરો આનંદ અને શારીરિક વૃદ્ધિ થાય છે આ ઉપરથી એમ સમજાય છે કે ઉપયોગ પૂર્વક સાકર ન ખવાય તો પણ તેનો મીઠાશ શુભ જતો નથી તેમજ આવશ્યક ક્રિયાઓ કદાચ ઉપયોગપૂર્વક ન કરવામા આવે

ઉપયોગાદિપૂર્વક હિ ક્રિયાઽનુષ્ઠાન સર્વકર્મનિર્જરાકર ભવતિ, યઃ કથિદુ-
પયોગાદિવિરહિતોઽપિ ક્રિયાનુષ્ઠાને પ્રવૃત્તસ્તસ્યાપિ યદા કદાચિન્સમ્યક્ક્રિયા
વિદધાન કમપિ દૃષ્ટા તીવ્રવૈરાગ્યપ્રાપ્ત્યા યથાર્થવૈરાગ્યસ્ય ક્ષણમાત્રમધ્યવસાયેન
સર્વકર્મનિર્જરાસમ્ભવસ્તસ્માદાવશ્યક કરણીયમેવ સર્વેષામિતિ નિર્વિવાદમ્ ।

પદધ્યયનાત્મકસ્યાઽઽવશ્યકસ્ય દ્વિતીય નામ ‘ પ્રતિક્રમણ ’ મિત્યસ્તિ
તત્ર કિં કારણમ્ ? ઉચ્યતે પ્રતિક્રમણશબ્દઃ પ્રાયશ્ચિત્તપર્યાયો વર્તતે । પ્રાયશ્ચિત્ત
હિ પાપપ્રક્ષયમ્ પ્રધાનકારણમસ્તિ યથા ત્રિવિધોપસ્કરપરિષ્કૃતમપિ વ્યજ્ઞનાદિક

ઔર યદિ ઉપયોગ કે વિના કરે તો મી સમ્ભવ હૈ કિ કમી દૂસરોં કો
સમ્યક્ પ્રકાર ક્રિયા કરતે દેખ કર ઉસે તીવ્ર વૈરાગ્ય કી પ્રાપ્તિ હો
જાય ઔર તીવ્ર વૈરાગ્ય ક્ષણ મર મી હૃદયમે ટિક જાય તો વેડા
પાર હુઆ સમક્ષિણ । ઇસલિયે સમી કો નિત્ય પ્રતિ આવશ્યક
કરના આવશ્યક હૈ ।

આવશ્યક સૂત્ર કે છહ અધ્યયન હૈ । ઇસકા દૂસરા નામ પ્રતિક્રમણ
હૈ । ઇસકા કારણ યહ હૈ—પ્રતિક્રમણ કા અર્થ હૈ પ્રાયશ્ચિત્ત ।
પ્રાયશ્ચિત્ત પાપ કે પ્રક્ષય કા પ્રધાન કારણ હૈ । યદિ અનેક પ્રકાર કે
મસાલોં સે યુક્ત મી વ્યજ્ઞન (સાગ તથા દાલ આદિ) હૈં, પરન્તુ ઉનમેં
લવણ ન હોવે તો વે સ્વાદુ નહીં હોતે, અપિતુ ફીકે લગતે હૈ । ઇસી

તો પણ તે ક્રિયાઓમા રહેલ અહિંસા, સવર, કાયોત્સર્ગ વદન આદિ
શુભોનો લાભ છે જ, પણ તે આવશ્યક ક્રિયાઓ ઉપયોગ અને ભાવપૂર્વક આચર
વામા આવે તો પ્રકાશમા ખવાઓલ સાકરની માકક અલૌકિક અને અનુપમ
આનંદ પ્રાપ્ત કરાવે છે અને સમસ્ત કર્મોની નિર્જરા થાય છે

જો ઢોઢ ઉપયોગ વગર ક્રિયા કરે તો પણ એવો સભવ છે કે અન્યને
ફા પ્રકારે ક્રિયા કરતો જોઈ તેને તીવ્ર વૈરાગ્યની પ્રાપ્તિ થાય અને એ તીવ્ર
વૈરાગ્ય એક ક્ષણભર હૃદયમા સ્થિર થાય તો ભવબ્રમણ નો અંત આવે, એમ
સમજવું, તેથી પ્રત્યેક ભવ્યને હુમેશ આશ્યક કરવો જરૂરી છે

આવશ્યક સૂત્રના છ અધ્યયન છે તેનું બીજું નામ પ્રતિક્રમણ
છે, અને તેનું કારણ એ છે કે પ્રતિક્રમણનો અર્થ પ્રાયશ્ચિત્ત છે, અને પ્રાયશ્ચિત્ત
એટલે પાપનો વિશેષ પ્રકારે ક્ષય કરવાનું મુખ્ય કારણ જેમ વિવિધ મશાલાથી

લવણમન્તરેણ ન સુસ્વાદાઈ તથા તપશ્ચર્યા-ગુરુસ્તુતિ-પ્રત્યાર્થાનાદિકા સર્વાઽપિ ક્રિયા પ્રાયશ્ચિત્ત (પશ્ચાત્તાપરૂપ) ત્રિના નૈવ નિતાન્તસુખફલ પ્રાપયિતુ ક્ષમા, તદ્વિપયક પ્રતિક્રમણાર્થ ચતુર્થમધ્યયનમસ્મિન્નસ્તીત્યસ્ય શાસ્ત્રસ્ય ' પ્રતિક્રમણ ' મિતિ નામાન્તર જાતમ્ ।

યદ્યપિ સમૃત્તિગર્તનિપતિતાના પ્રાણિના યદા તદા યેન કેન ચિત્પ્રકારેણ પાપપટ્કલેપો દુર્નિવાર્યસ્તથાપિ તસ્ય પાપસ્ય તત્ક્ષણમેવ પશ્ચાત્તાપેનાઽઽલોચના ક્રિયેત ચેત્તદા ભુક્તતત્ક્ષણચાન્તવિપવત્ તદુદયેઽપિ જીવઃ પાપજનિતતીવ્રદુઃસ્વભાગ્ ન ભવેત્, તત્ક્ષણકૃતપ્રાયશ્ચિત્તેન દુઃસ્વનિદાનકર્મણા પ્રકૃતિસ્થિત્યનુભાગ પ્રદેશ-

પ્રકાર તપશ્ચર્યા, ગુરુસ્તુતિ, પ્રત્યાર્થાના આદિ સમસ્ત ક્રિયાઈ પ્રાયશ્ચિત્ત (પશ્ચાત્તાપ રૂપ) કે ત્રિના આત્મીય-આનન્દપ્રદ નહીં હોતીં । યદ્ પશ્ચાત્તાપ-પ્રતિક્રમણ ઇસ શાસ્ત્ર મે પ્રતિપાદિત કિયા ગયા હૈ, અતઃૈવ ઇસ સમૂચે સૂત્ર કા ભી નામ પ્રતિક્રમણ પડ ગયા હૈ ।

ઇસ સસારરૂપી સ્વદ્રઢે મેં ગિરે હુઈ જીવ કભી ન કભી, કિસી પ્રકાર પાપકર્મરૂપી કીચડ મેં ફાંસ હી જાતે હેં । ઈસી અવસ્થા મે યદિ તત્કાલ હી ડસ પાપ કર્મ કા પશ્ચાત્તાપ કરકે ડસકી આલોચના કર લી જાવે તો સ્વાયે હુઈ વિપ કોં તત્કાલ વમન કર દેને કી તરહ ડસ પાપ કર્મ કે ઉદય હોને પર ભી તીવ્ર દુ સ્વ નહીં ભોગના પડતા । ક્યોંકિ તત્કાલ પ્રાયશ્ચિત્ત કર લેને સે ડસકે અનુભાગ

ભરપુર સાક-ઢાળ નિમક (સખરસ) ના અભાવે સ્વાદિષ્ટ બનતુ નથી અને નીરસ લાગે છે તેમ તપશ્ચર્યા, ગુરુ સ્તુતિ, પરશ્ચર્યાણુ વિગેરે ક્રિયાઓ પ્રાયશ્ચિત્ત વગર આત્મિક આનંદ આપનાર થઈ શકતી નથી આ પ્રતિક્રમણનું આ શાસ્ત્રમા પ્રતિપાદન કરવામા આવે છે એથી આ આખા સૂત્રનું નામ પ્રતિ ક્રમણ પડી ગયુ છે

આ સસાર રૂપ ખાડામા પડી ગયેલ જીવ ક્યારે ન ક્યારે કોઇને કોઇ પાપકર્મ રૂપ કીચડમા ફસાઈ જાય છે એવી અવસ્થામા જો તત્કાલ તે પાપકર્મનું પશ્ચાત્તાપ કરીને આલોચના કરવામા આવે તો એવી રીતે ખવાઈ ગયેલુ ઝેરનું તરત વમન કરવામા આવે તો, તેની વિધાતક અસર થતી નથી તેવી રીતે તે પાપ કર્મનો ઉદય ઉપસ્થિત થતા તેનું તીવ્ર દુ ખ ભોગવણુ પડતુ

वन्त्रेषु न्यूनत्व-शिथिलत्वसम्भवात् । यथा तत्कालविरचितभित्त्यादीना तद्वत्-
सन्धिवन्धशिथिलीकरणे तत्पातने च नैव प्रयासबाहुल्यमपेक्ष्यते किन्तु काल-
प्राचुर्ये सति तत्पातने तच्छिथिलीकरणे च प्रचुरपरिश्रमाऽपेक्षासम्भवस्तथैव
दुःखहेतुभूतकर्मणा तद्विवसे तत्क्षणे एव यदि पश्चात्तापः क्रियेत तर्हि नैव तानि
भविष्यत्काले स्वोदयेऽपि प्रभूतदुःखप्रदानि जायेरन् प्रत्युताऽऽत्मा लघुकर्मत्वात्
ऊर्ध्वगामी सञ्जायेत । यथा मखलीपुत्रो गोशालकः पश्चात्तापप्रायश्चित्तेन स्वकृत-
घनकर्माणि क्षपयित्वा द्वादशे देवलोके देवत्वमवाप, एव प्रसन्नचन्द्रराजर्षिः
सप्तमनरकप्रापकाणि कर्माणि वदध्वाऽपि पश्चात्तापेन घनघातककर्मविनाशनपूर्वक

बध आदि में न्यूनता और शिथिलता हो जाती है । जैसे तत्काल बनाई
हुई दीवार को ढीली करने या गिराने में अधिक परिश्रम नहीं करना
पड़ता, किन्तु बहुत दिनों बाद उसे ढीली करने या गिराने में बहुत
परिश्रम करना पड़ता है । वैसे ही दुःख के कारण भूत कर्म (कार्य) का
उसी दिन, उसी क्षण ही पश्चात्ताप कर लिया जाय तो उसके उदय
आने पर वह अधिक दुःखदायक नहीं होता, बल्कि आत्मा लघुकर्मी
होकर ऊर्ध्वगामी बनता है । मखलीपुत्र गोशालक पश्चात्ताप-प्रायश्चित्त
करके, किये हुए घोर कर्मोंको पश्चात्तापसे नाश कर बाहरवें देवलोक में
देव हुआ । राजर्षि प्रसन्नचन्द्र सातवें नरक में पहुँचानेवाले कर्मोंको
मन के परिणामोंसे घाँघ करके भी पश्चात्ताप के द्वारा घनघातिकर्मों

नथी કારણકે પાપનું તાત્કાલિક પ્રાયશ્ચિત્ત કરવાથી તેના અનુભાગ-બધ વગેરેમા
મદતા આવી જાય છે જેવી રીતે નવી ચણેલી દિવાલને તાત્કાલિક ઢીલી કરવામા
અને પાડવામા વિશેષ પરિશ્રમની જરૂર પડતી નથી પરંતુ તૈયાર થયા બાદ ઘણા
દિવસો પછી તેને ઢીલી કરવા માટે અને પાડવા માટે ઘણોજ પરિશ્રમ કરવો પડે છે
જેવી રીતે હું ખના કારણરૂપ થએલ પાપકર્મનું તેજ દિવસે તેજ ક્ષણે પ્રાયશ્ચિત્ત
કરવામા આવે તો તે પાપકર્મનો ઉદયવિપાક આવ્યે ઉદય કે વિપાક વિશેષ
પ્રમાણમા હું ખદાયક બનતા નથી, પરંતુ આત્મા કર્મથી હળવો બની ઉચ્ચગતિ
દેવગતિમા જાય છે મખલીપુત્ર ગોશાલક પોતે કરેલા ઘોર પાપ કર્મોનું પ્રાય
શ્ચિત્ત કરી પશ્ચાત્તાપથી પાપકર્મોના ઉદયનો નાશ કરી બારમા દેવલોકે દેવ થયા
રાજર્ષિ પ્રસન્નચન્દ્રે મનના દુષ્ટ પરિણામો વડે સાતમી નરકે પડેાચાડનાર પાપ

वन्त्रेषु न्यूनत्व-शिथिलत्वसम्भवात् । यथा तत्कालविरचितभित्त्यादीना तद्वत्-
सन्धिवन्धशिथिलीकरणे तत्पातने च नैव प्रयासबाहुल्यमपेक्ष्यते किन्तु काल-
प्राचुर्ये सति तत्पातने तच्छिथिलीकरणे च प्रचुरपरिश्रमाऽपेक्षासम्भवस्तथैव
दुःखहेतुभूतकर्मणा तद्विवसे तत्क्षणे एव यदि पश्चात्तापः क्रियेत तर्हि नैव तानि
भविष्यत्काले स्वोदयेऽपि प्रभूतदुःखप्रदानि जायेरन् प्रत्युताऽऽत्मा लघुकर्मत्वात्
ऊर्ध्वगामी सञ्जायेत । यथा मखलीपुत्रो गोशालकः पश्चात्तापप्रायश्चित्तेन स्वकृत-
घनकर्माणि क्षपयित्वा द्वादशे देवलोके देवत्वमवाप, एव प्रसन्नचन्द्रराजर्षिः
सप्तमनरकप्रापकाणि कर्माणि वद्ध्वाऽपि पश्चात्तापेन घनघातकर्मविनाशनपूर्वक

वध आदि में न्यूनता और शिथिलता हो जाती है । जैसे तत्काल बनाई
हुई दीवार को ढीली करने या गिराने में अधिक परिश्रम नहीं करना
पड़ता, किन्तु बहुत दिनों बाद उसे ढीली करने या गिराने में बहुत
परिश्रम करना पड़ता है । वैसे ही दुःख के कारण भूत कर्म (कार्य) का
उसी दिन, उसी क्षण ही पश्चात्ताप कर लिया जाय तो उसके उदय
आने पर वह अधिक दुःखदायक नहीं होता, बल्कि आत्मा लघुकर्मी
होकर ऊर्ध्वगामी बनता है । मखलीपुत्र गोशालक पश्चात्ताप-प्रायश्चित्त
करके, किये हुए घोर कर्मोंको पश्चात्तापसे नाश कर बाहरवें देवलोक में
देव हुआ । राजर्षि प्रसन्नचन्द्र सातवें नरक में पहुँचानेवाले कर्मोंको
मन के परिणामोंसे बाँध करके भी पश्चात्ताप के द्वारा घनघातिकर्मों

नथी कारणके पापनु तात्कालिक प्रायश्चित्त करवाथी तेना अनुलाग-अध वगेरेभा
भदता आधी ज्ञय छे जेवी रीते नवी अणुली दिवालने तात्कालिक ढीली करवाभा
अने पाडवाभा विशेष परिश्रमनी जर पडती नवी परतु तैयार थया जाह धणु
दिवसे। पछी तेने ढीली करवा भाटे अने पाडवा भाटे धणुअ परिश्रम करवे। पडे छे
जेवी रीते हु जना कारणइय थयेल पापकर्मनु तेज दिवसे तेज क्षणे प्रायश्चित्त
करवाभा आवे तो ते पापकर्मने। उदयविपाक आन्ये उदय डे विपाक विशेष
प्रमाणभा हु अहायक जनता नथी, परतु आत्मा कर्मथी हुजवे। जनी उदयगति
देवगतिभा ज्ञय छे मअत्रीपुत्र गोशालक पोते करेला घोर पाप कर्मनु प्राय
श्चित्त करी पश्चात्तापथी पापकर्मने। उदयने। नाश करी जारभा देवलोके देव थया
राजर्षि प्रसन्नचन्द्रे मनना हुष्ट परिणामे। वडे सातमी नरके पडायाउनार पाप

સઘઃ કેવલાઽઽલોકમાસાઘ મોક્ષમગચ્છત્, તત્ત એવ પાપપ્રાયશ્ચિત્તસ્ય પ્રાધાન્યે નાઽસ્ય નામાપિ 'તિક્રમણ' મિતિ જાતમ્ ।

નન્વેત્ પ્રતિક્રમણસ્ય (પહાવશ્યકાત્મકસ્ય) પાપનિવર્ત્તકત્વે પ્રમાણિતે પ્રતિક્રમણવેત્તુણા તન્નાશોપાયજ્ઞાતત્વાત્પાપાચરણપ્રવૃત્તિર્ન શઙ્કાવદા નાપિ પરિહાર્યેતિ ચેન્મૈવમ્—યથા કસ્યચિત્પાર્શ્વે વિપાપહરણોપધ વર્ત્તતે તેન કિં વિપ મક્ષ્યતે ? એવ વસ્ત્રધાવનોપયોગિક્ષારાદિસામગ્રીસદ્ભાવેઽપિ રજક, કિં સ્વવસ્ત્રાણિ પદ્ધાદિલેપેન

કો નષ્ટ કરકે, કેવલજ્ઞાન પાણે ઓર મોક્ષ કો પ્રાપ્ત હુણે । પાપ કે પ્રાયશ્ચિત્ત કી પ્રધાનતા કે કારણ ઇસ શાસ્ત્ર કા નામ 'પ્રતિક્રમણ' હૈ ।

યદિ કોઈ યત્ તર્ક કરને લગે કિ જબ હત્ અધ્યયન રૂપ પ્રતિક્રમણ કરને સે હી પાપોં સે છુટકારા મિલ જાતા હૈ તો જો પ્રતિક્રમણ કે જાનને વાલે હૈ વે પાપોં મે પ્રવૃત્તિ કરને સે ક્યોં ઝિઝ્ઝકેગે ઓર ક્યોં પાપોં કા ત્યાગ કરેગે ? ક્યોંકિ ઉન્હેં પાપોં સે છુટકારા પાને કા ઉપાય માલૂમ હૈ, જબ ચાહેંગે તબ પ્રતિક્રમણ કરકે ઉનસે છુટી પા લેંગે । ંસા વિચાર કરના મી ઠીક નહીં હૈ । ક્યોંકિ જિસકે પાસ વિપ ઉતારને કી ઓષધિ હોતી હૈ, વત્ જાન-બૂઝકર કમી વિષ ખાતા હૈ ? કયા કપડે સાફ કરને કે લિયે સાબુન ક્ષાર આદિ પદાર્થ જિનકે પાસ મૌજૂદ હોતે હૈં, વે લોગ કમી જાન બૂઝકર અપને કપડે કીચડ મે લથેડ લેતે હૈં ? કયા કોઈ સમજદાર

કર્મે ળાધેલ હતા છતા પ્રાયશ્ચિત્ત દ્વારા તે સર્વ ધનધાતી કર્મેની નાશ કરી કેવળજ્ઞાન પ્રાપ્ત કરી મોક્ષ પ્રાપ્ત કર્યો પાપના પ્રાયશ્ચિત્તની પ્રધાનતાના કારણે આ શાસ્ત્રનું નામ પ્રતિક્રમણ છે

જો કોઈ એવો તર્ક ઉઠાવે કે જ્યારે હું અધ્યયન રૂપ પ્રતિક્રમણ કરવાથી પાપમાથી મુક્ત થાય છે તો જેઓ પ્રતિક્રમણ જાણનારાઓ છે તેઓ પાપમય પ્રવૃત્તિ કરવાથી શા માટે પાછા હુઠે ? અથવા પાપ કર્મેની ત્યાગ શા માટે કરે ? તેઓને તો પાપમાથી મુક્તિ મેળવવાનો ઉપાય હાથમા છે, જ્યારે ઇચ્છા કરે ત્યારે પ્રતિક્રમણ કરી મુક્તિ મેળવી શકે આવો તર્ક ઉઠાવવો ઠીક નથી, કારણ કે જેની પાસે ઝેર ઉતારવાની ઓષધિ છે તેઓ જાણી છુઝીને ઠઠી ઝેર ખાય છે ? વળી જેઓની પાસે કપડા સાફ કરવા માટે સાબુ, ક્ષાર વગેરે પદાર્થો છે તેઓ

મલિનીકરોતિ ? યદ્વા ગૃહે વહ્વ્યઃ સમ્માર્જન્યઃ સન્તીતિકૃત્વા કિં વહિઃપ્રદેશ-
દાનીય વૂલ્યાદિક ગૃહે વિશિષ્યતે ? અપિતુ ન, કિન્તુ યદિ પ્રમાદાદિવશાદનભિજ્ઞ-
તયા વા વિષભક્ષણાદિ કૃત ભવેત્તર્હિ તત્પ્રયોગેણ તન્નિવારણમભિમત વિપશ્ચિતા
તદેવ શ્રેયસ્કર ચ, અન્યથા તાદૃશાનુચિતાઽઽચરણવિરૂપિતમૌર્ખ્યસ્ય નિન્દા-
દુઃખાદિભાગિત્વ સમાસાદિત ભવત્યતો નૈવ ભાવનીય જૈનેન્દ્રપ્રવચનાનુશીલનશીલૈઃ।

તત્ત્વ પ્રતિક્રમણ પશ્ચધા ભવતિ—(૧) દૈવસિક, (૨) રાત્રિક, (૩) પાક્ષિક,
(૪) ચાતુર્માસિક, (૫) સાવત્સરિક ચેતિ ।

ઘર વિચાર કરકે કિ ઘર મેં વહુતેરી સમાર્જનિયા-(બુઆરિયાં) પડી હૈં,
વાહર સે કૂડા કચરા ફકટ્ટા કરકે ઘરમે ફેલાતા હૈ ? નહીં, કદાપિ
નહીં । હૈં, પ્રમાદ વગ યા અનજાન મેં વિષ કા ભક્ષણ હો જાય તો ઉસ
દવા કા પ્રયોગ કરકે ઉસકા પ્રતિકાર કરના સમજદારી હૈ, ઓર હસી મેં
ભલાઈ હૈ । અન્યથા અપને અનુચિત આચરણ સે સૂર્વતા પ્રગટ હોગી ઓર
નિન્દા તથા દુઃખ કા પાત્ર બનના પડેગા । ફસલિયે જિનેન્દ્ર ભગવાન્ કે
પ્રવચન રૂપી પ્રશમ પીયૂષ (અમૃત) કે પિપાસુઓં કો એસી ભાવના મન મેં
ન લાની ચાહિયે ।

પ્રતિક્રમણ પાંચ પ્રકાર કા હૈ—૧ દિવસ સમ્બન્ધી ૨-રાત્રિ સમ્બન્ધી
૩-પાક્ષિક (પરવાડા) સમ્બન્ધી ૪-ચાતુર્માસ-સમ્બન્ધી ૫-સવત્સર-

શુ બાણી જોઈને પોતાના કપડા કાદવમા નાખી ગદા કરે છે ? ઘરમા સાફસુફી
કરવા માટે ઘણી સાવરણી છે એવો ખ્યાલ કોઈ સમજદાર મનુષ્ય કરી શુ
બહારથી પોતાના ઘરમા કચરો એકઠો કરશે ? નહિ, કદાપિ નહિ હા, કદાચ
પ્રમાદથી અથવા અજ્ઞાન દશામા વિષ ખાવામા આવે તો તેના ઉતારનો
પ્રયોગ કરીને વિષનો પ્રતિકાર કરવો, તેજ ખરી સમજ છે અને તેજ શિષ્ટ રાહ
છે આ સમજનું અનુસરણ ન કરે તો પોતાના અયોગ્ય આચરણથી પોતાની
મૂર્ખાઈ બહાર આવે છે, અને પોતાને નિંદા અને દુખનું પાત્ર બનવું પડે છે
માટેજ જીનેન્દ્ર ભગવાનના પ્રવચન રૂપ શાન્ત અમૃતના પાન કરનારાઓમા આવી
અશિષ્ટ ભાવના આવવી ન જોઈએ, આવો કુતર્ક આવવો ન જોઈએ

પ્રતિક્રમણ પાંચ પ્રકારના છે—(૧) દિવસ-સળધી (૨) રાત્રિ-સળધી (૩)
પાક્ષિક-સળધી (૪) ચાતુર્માસ-સળધી (૫) સવત્સર-સળધી દિવસ દરમ્યાન

સઘઃ કેવલાઽલોકમાસાઘ મોક્ષમગચ્છત્, તત એવ પાપપ્રાયશ્ચિત્તસ્ય પ્રાધાન્યે નાઽસ્ય નામાપિ 'તિક્રમણ' મિતિ જાતમ્ ।

નન્વેત્ પ્રતિક્રમણસ્ય (પહાવશ્યકાત્મકસ્ય) પાપનિવર્ત્તકત્વે પ્રમાણિતે પ્રતિક્રમણવેત્તુના તન્નાશોપાયજ્ઞાતત્વાત્પાપાચરણપ્રવૃત્તિર્ન શઙ્કાવદા નાપિ પરિહાર્યેતિ ચેન્મૈવમ્—યથા કસ્યચિત્પાશ્વે વિપાપહરણોપધ વર્તતે તેન કિં વિપ મક્ષ્યતે ? એવ વસ્ત્રધાવનોપયોગિક્ષારાદિસામગ્રીસદ્ભાવેઽપિ રજકઃ કિં સ્વવસ્ત્રાણિ પદ્માદિલેપેન

કો નષ્ટ કરકે, કેવલજ્ઞાન પાળે અને મોક્ષ કો પ્રાપ્ત હુએ । પાપ કે પ્રાયશ્ચિત્ત કો પ્રધાનતા કે કારણ હસ શાસ્ત્ર કા નામ 'પ્રતિક્રમણ' હૈ ।

યદિ કોઈ યદ્ તર્ક કરને લગે કિ જબ હદ્ અધ્યયન રૂપ પ્રતિક્રમણ કરને સે હી પાપો સે છુટકારા મિલ જાતા હૈ તો જો પ્રતિક્રમણ કે જાનને વાલે હૈ વે પાપો મે પ્રવૃત્તિ કરને સે ક્યો શિદ્ધકેગે અને ક્યો પાપો કા ત્યાગ કરેગે ? ક્યોંકિ ઉન્હે પાપો સે છુટકારા પાને કા ઉપાય માલૂમ હૈ, જબ ચાહેગે તબ પ્રતિક્રમણ કરકે ઉનસે છુટી પા લેગે । એસા વિચાર કરના મી ઠીક નહી હૈ । ક્યોંકિ જિસકે પાસ વિપ ઉતારને કી ઓપધિ હોતી હૈ, વદ્ જાન-બૂઝકર કમી વિપ રાતા હૈ ? કયા કપડે સાફ કરને કે લિયે સાબુન ક્ષાર આદિ પદાર્થ જિનકે પાસ મૌજૂદ હોતે હૈ, વે લોગ કમી જાન-બૂઝકર અપને કપડે કીચડ મેં લથેડ લેતે હૈ ? કયા કોઈ સમજદાર

કર્મો બાધેલ હતા છતા પ્રાયશ્ચિત્ત દ્વારા તે સર્વ ધનધાતી કર્મોનો નાશ કરી કેવળજ્ઞાન પ્રાપ્ત કરી મોક્ષ પ્રાપ્ત કર્યો પાપના પ્રાયશ્ચિત્તની પ્રધાનતાના કારણે આ શાસ્ત્રનું નામ પ્રતિક્રમણ છે

જો કેઇ એવો તર્ક ઉઠાવે કે જ્યારે છ અધ્યયન રૂપ પ્રતિક્રમણ કરવાથી પાપમાથી મુક્ત થાય છે તો જેઓ પ્રતિક્રમણ બાણનારાઓ છે તેઓ પાપમય પ્રવૃત્તિ કરવાથી શા માટે પાછા હુકે ? અથવા પાપ કર્મોનો ત્યાગ શા માટે કરે ? તેઓને તો પાપમાથી મુક્ત મેળવવાનો ઉપાય હાથમા છે, જ્યારે ઇચ્છા કરે ત્યારે પ્રતિક્રમણ કરી મુક્ત મેળવી શકે આવો તર્ક ઉઠાવવો ઠીક નથી, કારણ કે જેની પાસે ઝેર ઉતારવાની ઓપધિ છે તેઓ બાણી બુઝીને કદી ઝેર ખાય છે ? વળી જેઓની પાસે કપડા સાફ કરવા માટે સાબુ, ક્ષાર વગેરે પદાર્થો છે તેઓ

સમ્પાદનેઽપિ સર્વે પર્વમહોત્સવાદિતિથિષુ ચ્વળ્લઘ્વાત્રઘૃતપૂરા-ઽપ્પ લપનશ્રીપ્રમૃતીન્
વિશિષ્ટાન્ ભોજ્યપદાર્થસમારાન્ સમ્પાદયન્તિ । યથા વા લોકે લોકા અનુદિન
ભવન સમાર્જયન્તોઽપિ દીપાવલ્યાદિપર્વસુ તત્ત્વ ઇતઃ કોણકાદિગતાઽજ્ઞાતસફલાવ-
કરસમાર્જનેન સવિશેષ મૃદ્ધગતકચવરાદિશુદ્ધિં વિદધતીતિ સુપ્રસિદ્ધમેવ, ઉક્તશ્ચાત્ર

“જહ ગેહ પડદિવસ પિ સોહિય, તહવિ પવ્વસધીસુ ।
સોહિજ્જહ સવિસેસ, એવ ઇહ યાવિ નાયવ્વ ॥ ૧ ॥”

ઘેવર, માલપૂઆ, લપસી આદિ વિશિષ્ટ પકવાન તૈયાર કિયે જાતે હૈં, અથવા જૈસે લોગ પ્રતિદિન મકાન કી સફાઈ કરતે હૈં તો મી દીપાવલી આદિ ત્યોહારોં પર અચ્છી તરહ કોને-આતર તક જ્ઞાડ ખુદાર કર સફાઈ કરતે હૈં, વૈસે હી દૈવસિક ઓર રાત્રિક પ્રતિક્રમણ કર લેને પર મી અનામોગ (અનજાને) લજ્જા મન્દપરિણામ આદિ કારણોંસે યા અજ્ઞાન કે કારણ યદિ પૂરી શુદ્ધિ ન હો તો પાક્ષિક આદિ પ્રતિક્રમણોં મેં, લગે હુણે ઉન-ઉન અતિચાર-અનાચાર કા સ્મરણ કરને સે વિરક્તિ (હિંસા આદિ કે ત્યાગ) કી અધિક ભાવના હોતી હૈ ઓર મલીમ્મંતિ પાપ કી શુદ્ધિ હો જાતી હૈ । કહા મી હૈ—

“જહ ગેહ પડદિવસ પિ સોહિય, તહવિ પવ્વસધીસુ ।
સોહિજ્જહ સવિસેસ, એવ ઇહ યાવિ નાયવ્વ ॥ ૧ ॥”

જાનાવવામા આવે છે તેમ છતાં પણ તહેવાર અને ઉત્સવના દિવસે ખીર, માલ પુવા, લાપસી, મીઠાઈ વગેરે પકવાન તૈયાર કરવામા આવે છે, અને જેવી રીતે મનુષ્યો હમેશા પોતાના મકાનની સફાઈ રાખે છે તો પણ દિવાળી વગેરે તહેવારો ઉપર વિશેષ પ્રકારે ખૂણે ખાએથી પણ સાફસુપ્તી કરે છે, એવીજ રીતે દેવસિક અને રાત્રિક પ્રતિક્રમણ કરી લેતા અજ્ઞાણ પણે, શરમથી મદ પરિણામ આદિ કારણોથી અથવા અજ્ઞાનથી જો પાપોની પૂર્ણ શુદ્ધિ ન હોય તો પાક્ષિક વગેરે પ્રતિક્રમણોમા ભૂતકાળમા લાગેલા અતિચાર અનાચાર (પાપો) ના સ્મરણ કરવાથી હિંસા વગેરેના ત્યાગની અધિક ભાવના જાગૃત થાય છે, અને સંપૂર્ણ પણે રૂઢી રીતે પાપની શુદ્ધિ થાય છે કહ્યું પણ છે—

“જહ ગેહ પડદિવસપિ સોહિય, તહવિ પવ્વસધીસુ
સોહિજ્જહ સવિસેસ, એવ ઇહ યાવિ નાયવ્વ ॥ ૧ ॥

તત્ર દિવસસજાતપાપસ્ય દૈવસિકેન, રાત્રિસજાતપાપસ્ય રાત્રિકેણ, એવ પક્ષ ચતુર્માસ સવત્સરસજાતપાપસ્ય ક્રમાત્ પાક્ષિકેણ ચાતુર્માસિકેન સાવત્સરિકેણ પ્રતિક્રમણેન શુદ્ધિર્વિધાતવ્યા ભવ્યભાવનશીલૈઃ ।

નત્ર પ્રતિક્રમણસ્ય દૈવસિક-રાત્રિકોભયભેદેનૈવ સર્વપાપપ્રક્ષયદ્વારા શુદ્ધિ-સમ્ભવઃ, પ્રતિદિવસસજાતપાપસ્ય દિનાન્તે દૈવસિકેન, રાત્રિકૃતસ્ય ચ રાત્ર્યન્તે રાત્રિકેણ પ્રતિક્રમણેન શુદ્ધિસમ્ભવાત્, કિં પુનઃ પાક્ષિક ચાતુર્માસિક સાવત્સરિક-પ્રતિક્રમણૈઃ પ્રયોજનમ્ ? इति चेदत्रोच्यते-लोके यथोभयकाल प्रतिदिवसमशनादि-

सम्बन्धी । दिन में लगे पापों की दैवसिक से, रात्रिमें लगे हुए पापों की रात्रिक से, इसी प्रकार पक्ष, चतुर्मास और सम्बत्सर (वर्ष) में लगे हुए पापों की शुद्धि क्रमशः पाक्षिक चातुर्मासिक और सावत्सरिक प्रतिक्रमण से भव्य जीवों को करनी चाहिए ।

यहाँ यह प्रश्न होता है कि प्रतिक्रमण के दैवसिक और रात्रिक भेद ही ठीक हैं । इन्हींके द्वारा समस्त पापों से छुटकारा पाया जा सकता है । दिनमें जो पाप लगेंगे उनकी दिन के अन्तमें किये जाने वाले दैवसिक प्रतिक्रमण से और रात्रि में लगे हुए पापों की रात्रिके अन्त में किये जानेवाले रात्रिक प्रतिक्रमण से शुद्धि हो जाएगी । फिर पाक्षिक, चातुर्मासिक और सावत्सरिक प्रतिक्रमणों की क्या आवश्यकता है ? इसका समाधान यह है—कि जैसे लोकव्यवहार में प्रतिदिन दो बार भोजन बनाया जाता है, फिर भी त्योहार और उत्सव के समय खीर,

થએલા પાપોનું દેવસિકથી, રાત્રિમાં થએલા પાપોનું રાત્રિકથી, આ પ્રમાણે પખ વાડિયા, ચાતુર્માસ અને સવત્સર દરમ્યાન થએલા પાપોની શુદ્ધિ અતુકમે પાક્ષિક ચાતુર્માસિક અને સાવત્સરિક પ્રતિક્રમણથી ભવ્ય જીવોએ કરવી જોઈએ

અહીં એક એવો પ્રશ્ન ઉઠે છે કે પ્રતિક્રમણના દેવસિક અને રાત્રિક ભેદ યોગ્ય છે અને એનાથીજ સમગ્ર પાપોથી મુક્ત થઈ શકે છે દિવસ દરમ્યાન જે પાપ થય તેની શુદ્ધિ દિવસને અંતે દેવસિક પ્રતિક્રમણથી અને રાત્રિ દરમ્યાન થએલા પાપોની શુદ્ધિ રાત્રિને અંતે રાત્રિક પ્રતિક્રમણથી થાય છે, તે પછી પાક્ષિક ચાતુર્માસિક અને સાવત્સરિક પ્રતિક્રમણ કરવાની શી જરૂર છે ?

આ તર્કનું સમાધાન એ છે કે જેવી રીતે લોક વહેવારમાં બે વાર ભોજન

કૃતાતીચારવિસ્મરણાદિદોષવાહુલ્યપ્રસન્નઃ, તતઃ દૈવસિકાદિપ્રતિક્રમણમવશ્ય-
મેવાનુષ્ઠેયમ્ । અન્યદપિ શ્રૂયતામ્—

યથા કોઽપિ મૃદુલપલ્લવિતકલમ્બઃ પ્રચન્ડમાર્તઙ્ડાઽઽતપેન મ્લનો ન કેવલ-
મેકવારસલિલસિશ્વનેન કિન્ત્વનેકશઃ સલિલસેકેન પૂર્વાવસ્થામાપ્નોતિ તથૈવાઽ-
ત્રાઽપિ વોચમ્ । અન્યચ્ચ—

પૂર્વે તુ આત્મસયમે તીવ્રોપયોગસ્યાઽસ્વઙ્ડપરિણત્યાઽવિચલાવસ્થયા પાપલેપોઽ-
સમાવ્યઃ, યદિ પ્રમાદાદિના પાપસર્પર્કસ્તદા તત્ક્ષણ એવ પશ્ચાત્તાપાદિના તસ્ય

પાપ કી વિશુદ્ધિ કે લિએ દૈવસિકાદિ પ્રતિક્રમણ અવશ્ય કરના
ચાહિળ । ફિરમી ઉદાહરણ યહ હૈ ।

જૈસે લહલહાતા હુઆ પૌધા ધૂપસે મુરઝા જાય તો એક વાર
જલ સીંચને સે હી હરામરા નહી હો સકતા ! વારમ્વાર જલ સીંચને
કી આવશ્યકતા હોતી હૈ । ડસી પ્રકાર વ્રતરૂપી પૌધા અતિચારરૂપી
ધૂપસે મુરઝા ગયા તો હસે પૂર્વાવસ્થામેં વારમ્વાર પ્રતિક્રમણરૂપ જલ-
સિશ્વન કી આવશ્યકતા હૈ અત એવ દૈવસિક રાત્રિક આદિ સમી
પ્રતિક્રમણ કરને યોગ્ય હૈં । અથવા—

પ્રથમ તો ચાહિએ કિ તીવ્ર ઉપયોગ કી અસ્વઙ્ડ પરિણતિ ઔર
અવિચલ અવસ્થા દ્વારા પાપકા લેપ મી ન લગને દેં । યદિ પ્રમાદા-

અનેક દોષોનો પ્રસંગ આવે છે એ કારણથી ઉપર કહેવામા આવેલા પાપની
વિશુદ્ધિને માટે દૈવસિકાદિ પ્રતિક્રમણ અવશ્ય કરવું જોઈએ ફરી પણ સામળો !

જેવી રીતે લીલાછમ રહેલા છોડવાળો (વૃક્ષના છોડવા) તાપથી તદ્દન
સૂકાઈ જાય તો એક વખત પાણી સીંચન કરવાથી તે લીલાછમ જેવા થઈ
શકતા નથી, પરન્તુ તે છોડવાળોને વારવાર પાણીનું સીંચન કરવાની આવશ્ય
કતા રહે છે એ પ્રમાણે વ્રતરૂપી છોડ અતિચાર રૂપી તાપથી તદ્દન સૂકાઈ ગયા
તો તેને પૂર્વે જે નિયતિમા હતા તેવી સ્થિતિમા લાવવા માટે વારવાર પ્રતિક્રમણ રૂપ
પાણીનું સિંચન કરવાની આવશ્યકતા છે એટલા માટે દૈવસિક રાત્રિક આદિ સર્વ
પ્રતિક્રમણ કરવા યોગ્ય છે અથવા—

પ્રથમ તો ઇચ્છીએ કે તીવ્ર ઉપયોગની અખડ પરિણતિ અને અવિચલ
અવસ્થા દ્વારા પાપનો લેપ પણ લાગવાજ નહિ દેવો જોઈએ પરન્તુ જો કે

તથૈવ પ્રતિવાસર દૈવસિકરાત્રિકપ્રતિક્રમણમુખ્યકાલમાવશ્યકકરણે ડપિ અનામોગલજ્ઞામન્દપરિણામાદિકારણપ્રશેનાડનભિજ્ઞતયા વા યદિ સમ્યક્શુદ્ધિર્ન જાયેત તદા તેન પાક્ષિકાદિપુ તત્તદતિચારસ્મરણેન સમધિકૈરાગ્યભાવનાપુરસ્સરા પાપશુદ્ધિઃ સમીચીના ભવતિ, તતઃ પાક્ષિકાદિપ્રતિક્રમણમપિ કર્ણીયમેવેતિ સિદ્ધમ્ ।

અસ્તુ તાવત્, કિન્તુ સાવત્સરિકપ્રતિક્રમણ યત્ર કર્તવ્યત્વેન વિહિત તત્ર કિમન્યૈદૈવસિકાદિભિઃ પ્રયોજનમ્ ? સવત્સરસંજ્ઞાતપાપત્રાતાના સવત્સરાન્તે સાવત્સરિકપ્રતિક્રમણેન ક્ષય સ્યાદેવેતિ ચેત્, ઉચ્યતે-દૈવસિકાદિપ્રતિક્રમણ વિધાનેન સત્રઃ-સલગ્નમલમલિનસત્રોધૌતવસ્ત્રવત્સત્રઃકૃતપાપપરિશુદ્ધિઃ સત્ર ઇવ સજાયતે, તેન ચ ચારિત્રશુદ્ધિર્વિશિષ્ટતરા ભવતિ, કાલાતિક્રમે સતિ પ્રતિક્રમણેન

અતઃ પાક્ષિક આદિ પ્રતિક્રમણ મ્હી અવશ્ય કરના ચાહિયે ।

પ્રશ્ન-જલ સાવત્સરિક પ્રતિક્રમણ કરને કા વિધાન કર દિયા તો દૈવસિક આદિ પ્રતિક્રમણ કી ક્યા આવશ્યકતા હૈ ? વર્ષ મરમેં જો પાપ લગેગે ઉનકા વર્ષકે અન્તમે સાવત્સરિકપ્રતિક્રમણસે ક્ષય હો હી જાયગા ।

ઉત્તર-ઘહ હૈ કિ જિસ પ્રકાર કપડે પર લગે હુણ દાગ કો તત્કાલ ધોનેસે વહ સાફ હો જાતા હૈ ડસી પ્રકાર દૈવસિકાદિ પ્રતિક્રમણ કરનેસે લગે હુણ પાપકી તત્કાલ પરિશુદ્ધિ હો જાતી હૈ, જિસસે ચારિત્રશુદ્ધિ અત્યન્ત વિશિષ્ટ હોતી હૈ । સમય કે ચીત જાને પર જો પ્રતિક્રમણ કિયા જાય તો લગે હુણ દોષો કા વિસ્મરણ હો જાના આદિ અનેક દોષોં કા પ્રસંગ આતા હૈ, અતઃ ડપર કી ડપર

માટે પાક્ષિક વગેરે પ્રતિક્રમણે અવશ્ય કરવા જોઈએ

પ્રશ્ન - જ્યારે સાવત્સરિક પ્રતિક્રમણ કરવાનો નિર્દેશ કરવામા આવ્યો છે તો પછી દૈવસિક, રાત્રિક પ્રતિક્રમણ કરવાની શી જરૂર છે ? વર્ષ દરમ્યાન જે પાપો થાય તેનું નિવારણ વર્ષને અંતે સાવત્સરિક પ્રતિક્રમણ કરવાથી થઈ જાય છે

ઉત્તર-એ છે કે -જેવી રીતે કપડા ઉપર લાગેલા ડાઘને તત્કાલ ધોઈ નાખવાથી તે કપડું સાફ થઈ જાય છે તે પ્રમાણે દૈવસિકાદિ પ્રતિક્રમણ કરવાથી જે ડોઈ પાપ લાગેલા હોય તેની તત્કાલ શુદ્ધિ થઈ જાય છે જેના વડે ચારિત્ર શુદ્ધિ અત્યંત વિશુદ્ધ થઈ જાય છે સમય વીતી ગયા પછી જે પ્રતિક્રમણ કરવામા આવે તો જે ડાઈ દોષો લાગેલા હોય તેનું વિસ્મરણ (બૂલી જવું) થવું આદિ

मुकुटदिवसे एतावदेतावद्रव्य दास्यामी”ति तेनाऽस्माद्ऋणदानदिवसात्पर पञ्चमे मामि सकुसीदसकलद्रव्यशोऽन भविष्यतीति, तत्राऽधमर्णस्य नाय भावस्तिष्ठति यदन्तिमसमये पूर्णे सत्येव मया सर्वं प्रदेयमिति किन्तु यथाऽवसर शीघ्रमेव ऋणविशोधनाया मया प्रयासः कर्त्तव्य इति, अतो यदि नियमितसमयात्प्रागेव ऋण विशोभ्येत तदाऽधमर्णस्य महती शोभा सजायते । प्रथमे नियतसमये ऋण-विशोधने साधारणी शोभा, द्वितीये मज्जमा, तृतीये किञ्चिद्गूना, चतुर्थे न्यूना, एव पूर्णे पञ्चमे मासि तु सकुसीद सर्वं द्रव्यमवश्यमेव देय येन व्यवहारो न भुट्येत । किन्तु पूर्णे ऽप्यवयौ यत्रधर्म्णः साकल्येन ऋण न परिशोधयेत् तदाऽवश्य व्यव-

किश्तवन्दी कर दी कि- “मै इतने इतने दिनोंमें इतना इतना ऋण चुका कर इतने दिनोंमें ऊरिन हो जाऊंगा ।” ऐसी दशामें किसी भले कर्जदार का यह भाव नहीं होता कि जब किश्तवन्दी का समय पूरा होगा तबही हम सब चुका देंगे, किन्तु जितना जल्दी हो सकता है पहली बार ही ऋण चुका देना चाहेगा, तो तदनुसार यदि नियमित किश्त के समयसे पहले ही ऋण पूरा चुका दे तो उसकी ससार में शोभा होती है । अगर दूसरी किश्त पर सब ऋण चुका दे तो कुछ कम शोभा होती है, एव तीसरी किश्तपर चुकावे तो उससे कम, चौथीवारमें उससे भी कम शोभा होती है । आखिर पांचवी बार चुकाना तो उसको बिल्कुल लाजिमी है । यदि इस समयभी न चुकावेगा तो साख शोभामें हानि और

हुत्तानी भूदत जाधी दीधी डे - “हु अमुक दिवसोमा अमुक-अमुक चुकावीने आटला दिवसोमा मुकत थछ जर्छश” आवी न्थितिमा डोछ पणु समजदार हेणुदारनी ओवी लावना थती नथी डे न्यारे भूदत जाधीने समय पूरे थरे त्यारे- हु सर्व प्रकारनु करज चुकावी आपीश ? परतु नेटलु वडेलु करज चुकावी शकथ तेटली उतावणथी करज चुकववा जनतु करशे तो ससारमा तेनी शोला देभाशे अथवा तो भीण भूदत उपर तमाम करज चुकावी आपशे तो प्रथम करता शोला थोडी ओछी देभाशे त्रीण भूदत उपर चुकवशे तो भीण करता पणु शोला ओछी, ओथी भूदत पर चुकवशे तो तेथी पणु ओछी शोला देभाशे छेवटे पाचमी भूदत पर करज चुकावतु ते तो करजदार भाटे ओकदम अयोग्य छे तो पणु ने ते

નાશો વિધેયઃ । તત્ક્ષણ એ પશ્ચાત્તાપાભાવે દિવસાન્તે રાત્ર્યન્તે પક્ષાન્તે ચતુર્માસાન્તે ચ ક્રમેણ પ્રતિક્રમણેન પાપક્ષયો વિધાતવ્યઃ । યદિ ચ પ્રગાઢપ્રમાદાદિ-
વશાત્ પૂર્વોક્તસમયેષુ પશ્ચાત્તાપાદિ સમાચરિત ન ભવેત્ તદા સવત્સરાન્તે તત્કલ્પમેવ
શુદ્ધાન્તઃકરણેન સવત્સરસમુદ્ભૂતપાપાનિ સ્માર સ્માર પ્રતિક્રમણમવશ્યમાચરણીયમ્,
અન્યથા પાપાના વજ્રલેપાયિતત્વમેવાડપદ્ધેત । અત્ર દૃષ્ટાન્તઃ—

યથા કેનચિન્નરેણ ઋણવિશોધનસમયો નિયતીકૃતો યથા—“અહ મમુકા-

દિવશ પાપકા સપર્ક હો જાય તો ઉસી ક્ષણ પશ્ચાત્તાપાદિ દ્વારા
ઉસકા નાશ કર દેના ચાહિયે । અગર ઉસ વક્ત પશ્ચાત્તાપાદિ ન
હો સકા તો દિન, રાત્રિ, પક્ષ, એવ ચતુર્માસ કે અન્તમેં અનુક્રમ
સે પ્રતિક્રમણ દ્વારા પાપ કા ક્ષય કર દેના જરૂરી હૈ, યદિ પ્રગાઢ
પ્રમાદ આદિકે કારણ પૂર્વોક્ત સમય ચૂક ગયા હો અર્થાત્ પૂર્વનિર્દિષ્ટ
સમયમે અતિચાર શોધન નહીં કિયા ગયા હો તો સવત્સર (વર્ષ)
કે અન્તમે તો મનુષ્યકો શુદ્ધઅન્તઃકરણ હો કર વર્ષભર કે લગે
હુએ પાપોં કો યાદ કર-કર કે પ્રતિક્રમણ અવશ્ય કરનાહી ચાહિયે ।
એસા ન કિયા જાય તો લગે હુએ પાપ વજ્રલેપ જૈસે હો જાવેંગે,
અર્થાત્ પાપ સે અપને કો છુડાના મુશ્કિલ પડેગા । ઇસ પર દૃષ્ટાન્ત
કહતે હૈ—

જૈસે કિસી મનુષ્યને ઋણ ચુકાને કે લિએ પાચ વાર કી

પ્રમાદ આદિ દોષોના વશ થવાથી પાપનો સપર્ક થઈ જાય તો તેજ સમયે
પશ્ચાત્તાપાદિ દ્વારા તેનો નાશ કરી દેવો જોઈએ અથવા તો તે સમયે પશ્ચાત્તાપાદિ
ન કરી શકાય તો દિવસ, રાત્રિ, પક્ષ, એ પ્રમાણે ચતુર્માસના અન્તમા અનુક્રમથી
પ્રતિક્રમણ દ્વારા પાપનો નાશ કરી દેવો જોઈએ, એ જરૂરી વસ્તુ છે

જો વિશેષ, બલવાન પ્રમાદ આદિના કારણે આગળ જે સમય કહ્યો છે
તે ભૂલી જવાય તો, અર્થાત્ આગળ કહેલા સમયે પ્રતિક્રમણની ક્રિયા નહિ બની
શકે તો સવત્સર (વર્ષ)ના અતમા મનુષ્યોએ શુદ્ધ અત કરણ થઈને એક વર્ષ
મુધીમા જે પાપ લાગેલા હોય તેને યાદ કરીને પ્રતિક્રમણ અવશ્ય કરવું જોઈએ એ
પ્રમાણે કરવામા ન આવે તો લાગેલા પાપ વજ્રલેપ જેવા થઈ જશે, અર્થાત્—
પાપથી પોતાને બચવાનું મુશ્કેલ થઈ પડશે તે માટે દૃષ્ટાન્ત કહે છે કે —

માની લેશોકે —કોઈ મનુષ્યને ઋણ—(દેણ—કરજ)ચૂકાવવા માટે પાચ

सुकुदिवसे एतावदेतावद्रव्य दास्यामी”ति तेनाऽस्माद्ऋणदानदिवसात्पर पञ्चमे मासि सकुसीदसकलद्रव्यशोधन भविष्यतीति, तत्राऽधमर्णस्य नाय भावस्तिष्ठति यदन्तिमसमये पूर्णे सत्येव मया सर्वं प्रदेयमिति किन्तु यथाऽवसर शीघ्रमेव ऋणविशोधनाया मया प्रयासः कर्त्तव्य इति, अतो यदि नियमितसमयात्प्रागेव ऋण विशोधयेत् तदाऽधमर्णस्य महती शोभा सजायते । प्रथमे नियतसमये ऋण-विशोधने सागरणी शोभा, द्वितीये मध्यमा, तृतीये किञ्चिद्दूना, चतुर्थे न्यूना, एव पूर्णे पञ्चमे मासि तु सकुसीद सर्वं द्रव्यमवश्यमेव देय येन व्यवहारो न त्रुट्येत । किन्तु पूर्णे ऽप्यवधौ यद्यधमर्णः साकल्येन ऋण न परिशोधयेत् तदाऽवश्य व्यव-

किश्तबन्दी कर दी कि- “मै इतने इतने दिनोंमें इतना इतना ऋण चुका कर इतने दिनोंमें ऊरिन हो जाऊँगा।” ऐसी दशामें किसी भले कर्जदार का यह भाव नहीं होता कि जब किश्तबन्दी का समय पूरा होगा तबही हम सब चुका देंगे, किन्तु जितना जल्दी हो सकता है पहली बार ही ऋण चुका देना चाहेगा, तो तदनुसार यदि नियमित किश्त के समयसे पहले ही ऋण पूरा चुका दे तो उसकी ससार में शोभा होती है । अगर दूसरी किश्त पर सब ऋण चुका दे तो कुछ कम शोभा होती है, एव तीसरी किश्तपर चुकावे तो उससे कम, चौथीवारमें उससे भी कम शोभा होती है । आखिर पाचवी बार चुकाना तो उसको बिलकुल लाजिमी है । यदि इस समयभी न चुकावेगा तो साख शोभामें हानि और

हुत्तानी भूदत जाधी दीधी डे - “हु अमुक दिवसोभा अमुक-अमुक चुकावीने आटला दिवसोभा मुकत थछ न्छश” आवी न्थितिमा डोछ पणु समजदार देणुदारनी ओवी लावना थती नथी डे न्यागे भूदत जाधीने समय पूरे थशे त्यारेण हु सर्व प्रकारनु करण चुकावी आपीश ? परतु नेटहु वडेहु करण चुकावी शकय तेटली उतावणथी करण चुकववा णनतु करशे तो ससारमा तेनी शोला देणाशे अथवा तो णीणु भूदत उपर तमाम करण चुकावी आपशे तो प्रथम करता शोला थोडी ओछी देणाशे त्रीणु भूदत उपर चुकवशे तो णीणु कन्ता पणु शोला ओछी, थोथी भूदत पर चुकवशे तो तेथी पणु ओछी शोला देणाशे छेवटे पायभी भूदत पर करण चुकावतु ते तो करणदार भाटे ओकडम अयोग्य छे तो पणु ने ते

હારસ્તુચેત પ્રતિષ્ઠાઘાનિથ જાયેત, રાજદ્વારે સાતિશય દણ્ડનીયથ ભવેત્ । એવ પ્રતિક્રમણવિષયેઽપિ વોદ્ધવ્યમ્ ।

નતુ ઇયમાવશ્યકક્રિયા શ્રાવકશ્રાવિકાણા સર્વેષામેવ કરણીયેતિ તુ યુક્તમ્ ગૃહસ્થત્વેન તેષા પાપસમ્ભવાત્, જિનેન્દ્રશાસનપ્રતિપાલકાના સાધૂના તુ સર્વસાવધયોગનિવૃત્ત્યભ્યુપગમેન મનોવાકાયપટત્તયો વિશુદ્ધા એવ ભવન્તિ કથ પુનસ્તેષા પાપસમ્ભવો યેન દૈવસિકાદિપ્રતિક્રમણૈસ્તેષામપિ તચ્છુદ્ધિઃ કર્તવ્યા ભવેત્ ? ઇતિ ચેદત્રોચ્યતે—

યથા તાલકનિયન્ત્રિતરૂપાટાવરુદ્ધગૃહેઽપિ યેન કેનચિત્પ્રકારેણ રજઃ-

લોકનિન્દા હોગી, તથા ન્યાયાલયમે દણ્ડ પાવેગા । યહી બાત પ્રતિક્રમણ કે વિષયમેં સમજ્ઞના ચાહિયે ।

પ્રશ્ન યહ હૈ કિ આવશ્યક ક્રિયા સબ શ્રાવક શ્રાવિકાઓ કો તો કરની ચાહિયે, ક્યોંકિ વે ગૃહસ્થ હૈ ઓર ગૃહસ્થ હોને સે પાપ લગને કી સમ્ભાવના હૈ, કિન્તુ જિનેન્દ્ર ભગવાન કે શાસન કા પાલન કરને વાલે સાધુ ઓર સાધ્વી તો સાવધ કે સર્વથા ત્યાગી હોતે હૈં, ઉનકે મન વચન ઓર કાય કી પ્રવૃત્તિ વિશુદ્ધ હી હોતી હૈ, ઇન્હેં પાપ કેસે લગ સકતા હૈ કિ જિસકે કારણ દૈવસિક આદિ પ્રતિક્રમણ કરકે ઉન્હેં ભી પાપ કી શુદ્ધિ કરના આવશ્યક હો ? ।

ઇસકા સમાધાન યહ હૈ કિ જૈસે બિલકુલ વન્દ મકાન મેં

સમયે પણ કરજ ચૂકાવી નહિ શકે તો પ્રતિષ્ઠાની હાનિ સાથે લોકનિન્દા થશે તેમજ ન્યાયની અદાલતમા દડ થશે, એજ પ્રમાણે પ્રતિક્રમણના વિષયમા સમજણુ જોઇએ

આ આવશ્યક ક્રિયા સર્વ શ્રાવક શ્રાવિકાઓએ તો કરવીજ જોઇએ કારણ કે તે ગૃહસ્થ છે, અને ગૃહસ્થ હોવાથી પાપ લાગવાનો સભવ છે, પરંતુ જિનેન્દ્ર ભગવાનના શાસનનુ પાલન કરનારા સાધુ અને સાધ્વી તો સાવધના સર્વથા ત્યાગી હોય છે, તેમના મન, વચન અને કાયાની પ્રવૃત્તિ વિશુદ્ધજ હોય છે તેમને પાપ કેવી રીતે લાગી શકે છે ? કે જે કારણથી દૈવસિક આદિ પ્રતિક્રમણ કરીને તેમણે પણ પાપની વિશુદ્ધિ કરવી જરૂરી હોય ?

તેનુ સમાધાન એ છે કે જે પ્રમાણે એકદમ બંધ કરેલા મકાનમા પણ

प्रवेशो जायत एव तथैवैतेषा सम्प्रति यथाख्यातचारित्रासभवात् साधूनामपि प्रमादसभवाच्च सूक्ष्मयादरातिचारसभव एव, एतदेवाऽभिप्रेत्य— ‘प्रथमान्तिमजिन-साधूनामुभयकाल प्रतिक्रमणमवश्यमेव कर्तव्यमिति भगवताऽऽज्ञप्तम्, तथा चोक्तम्—

“सपडिक्कमणो धम्मो, पुरिमस्स य पच्छिमस्स य जिणस्स ।

मज्झिमयाण जिणाण, कारणजाए पडिक्कमण ॥१॥” इति ।

(आव नि.)

अपि च अतिचारसभवाभावेऽपि प्रतिक्रमणकरणेन तज्जनिताऽऽत्मशुद्धेः प्रावर्त्य त्वश्य सभवति तृतीयवैत्रौपधिवत्, यथा—

भी किसी न किसी प्रकार धूल घुस ही जाती है वैसे ही साधुओं के पूर्ण यथाख्यात चारित्र न हो सकने से और प्रमाद का अस्तित्व होने से सूक्ष्म या स्थूल अतिचार लग ही जाते हैं । इसी लिए जिनेश्वर भगवान की आज्ञा है कि—प्रथम और अन्तिम तीर्थकरो के साधुओं को उभयकाल प्रतिक्रमण अवश्य करना चाहिए ।

कहा भी है—

सपडिक्कमणो धम्मो, पुरिमस्स य पच्छिमस्स य जिणस्स ।

मज्झिमयाण जिणाण, कारणजाए पडिक्कमण ॥१॥

(आ. नि)

दूसरी बात यह है कि अतिचार न लगने पर भी प्रतिक्रमण करने से तज्जन्य आत्मशुद्धि की प्रवृत्ता अवश्य होती है । तीसरे वैद्य की

ઢાધને ઢાઈ પ્રકારે ધૂળ ઘુસી જાય છે તેવીજ રીતે સાધુઓને પૂર્ણ રીતે યથાખ્યાત ચારિત્ર નહિ ઢાઈ શકવાથી અને પ્રમાદનું અસ્તિત્વ હોવાથી સૂક્ષ્મ અથવા સ્થૂલ અતિચાર લાગીજ નાય છે એટલા માટે જિનેશ્વર ભગવાનની આજ્ઞા છે કે પ્રથમ અને અન્તિમ તીર્થકરોના સાધુઓએ બંને સમય પ્રતિક્રમણ અવશ્ય કરવું જોઈએ—

કહ્યું છે કે —

સપડિક્કમણો ધમ્મો, પુરિમસ્સ ય પચ્છિમસ્સ ય જિણસ્સ ।

મજ્જિમયાણ જિણાણ, કારણજાણ પડિક્કમણ ॥ ૧ ॥ (આ.નિ)

બીજી વાત એ છે કે—અતિચાર નહિ લાગે તો પણ પ્રતિક્રમણ કરવાથી

હારસ્ત્રુટ્યેત પ્રતિષ્ઠાહાનિશ્ચ જાયેત, રાજદ્વારે સાતિશય દણ્ડનીયશ્ચ ભવેત્ । એવ પ્રતિક્રમણવિષયેઽપિ વોદ્ધવ્યમ્ ।

નનુ ઇયમાવશ્યકક્રિયા શ્રાવકશ્રાવિકાણા સર્વેપામેવ કરણીયેતિ તુ યુક્તમ્ ગૃહસ્થત્વેન તેષા પાપસમ્ભવાત્, જિનેન્દ્રશાસનપ્રતિપાલકાના સાધૂના તુ સર્વસાવધયોગનિવૃત્ત્યભ્યુપગમેન મનોવાકાયપ્રવૃત્તયો વિશુદ્ધા એવ ભવન્તિ કથ પુનસ્તેષા પાપસમ્ભવો યેન દૈવસિકાદિપ્રતિક્રમણૈસ્તેષામપિ તચ્છુદ્ધિઃ કર્તવ્યા ભવેત્ ? ઇતિ ચેદત્રોચ્યતે—

યથા તાલકનિયન્ત્રિતરૂપાટાવરુદ્ધગૃહેઽપિ યેન કેનચિત્પ્રકારેણ રજઃ-

લોકનિન્દા હોગી, તથા ન્યાયાલયમે દણ્ડ પાવેગા । યહી વાત પ્રતિક્રમણ કે વિષયમે સમજના ચાહિયે ।

પ્રશ્ન યહ હૈ કિ આવશ્યક ક્રિયા સવ શ્રાવક શ્રાવિકાઓ કો તો કરની ચાહિયે, ક્યોંકિ વે ગૃહસ્થ હૈં ઓર ગૃહસ્થ હોને સે પાપ લગને કી સમ્ભાવના હૈ, કિન્તુ જિનેન્દ્ર ભગવાન કે શાસન કા પાલન કરને વાલે સાધુ ઓર સાધ્વી તો સાવધ્ય કે સર્વથા ત્યાગી હોતે હૈં, ઉનકે મન વચન ઓર કાય કી પ્રવૃત્તિ વિશુદ્ધ હી હોતી હૈ, ઇન્હેં પાપ કેસે લગ સકતા હૈ કિ જિસકે કારણ દૈવસિક આદિ પ્રતિક્રમણ કરકે ઉન્હેં ભી પાપ કી શુદ્ધિ કરના આવશ્યક હો ? ।

ઇસકા સમાધાન યહ હૈ કિ જૈસે બિલકુલ બન્દ મકાન મે

સમયે પણ કરજ ચૂકાવી નહિ શકે તો પ્રતિષ્ઠાની હાનિ સાથે લોકનિન્દા થશે તેમજ ન્યાયની અદાલતમા દડ થશે, એજ પ્રમાણે પ્રતિક્રમણના વિષયમા સમજણુ જોઇએ

આ આવશ્યક ક્રિયા સર્વ શ્રાવક શ્રાવિકાઓએ તો કરવીજ જોઇએ કારણ કે તે ગૃહસ્થ છે, અને ગૃહસ્થ હોવાથી પાપ લાગવાનો સંભવ છે, પરંતુ જિનેન્દ્ર ભગવાનના શાસનનુ પાલન કરનારા સાધુ અને સાધ્વી તો સાવધના સર્વથા ત્યાગી હોય છે, તેમના મન, વચન અને કાયાની પ્રવૃત્તિ વિશુદ્ધજ હોય છે તેમને પાપ કેવી રીતે લાગી શકે છે ? કે જે કારણથી દૈવસિક આદિ પ્રતિક્રમણ કરીને તેમણે પણ પાપની વિશુદ્ધિ કરવી જરૂરી હોય ?

તેનું સમાધાન એ છે કે - જે પ્રમાણે એકદમ બંધ કરેલા મકાનમા પણ

नाशयति, रोगाभावेऽपि सेवित सदाऽऽगन्तुकाऽऽतङ्कान् निवारयति शरीरकान्तिं
सर्वर्द्धयति, रसायनस्यास्याऽपराप्यद्भुतचमत्कारजननी शक्तिर्विद्यते यदस्य सेवने
पुना रोगशङ्काऽपि न सभवतीति”। राजा च तत्सर्वं निगम्य तृतीयवैद्योपदिष्ट-
मेवौषधं तनयाय प्रादापयत्। एव साधुभिरप्यात्मनीनमेतादृशं क्रियोषधं सेवनीय-
येन तद्वत्कर्मरोगसक्षयपूर्वकमागन्तुर्कर्मरोगावरोधपुरस्सरमात्मशुद्धिः सजायते।
अनेन दैवसिकादिकमपि प्रतिक्रमणं साधूनामप्यवश्यमासेव्यम्, पापसद्भावे
तत्क्षयस्य तदभावे चाऽऽत्मिकविशुद्धेरवश्यम्भावात्।

और अद्भुत है। ऐसी दवा और कहीं नहीं मिल सकती। यह
शारीरिक रोगोंको जड़से नष्ट कर देती है और रोग न होने पर
आगे आने वाले रोगोंको रोकती है, तथा शरीर की कान्ति बढ़ाती
है। इसमें एक और चमत्कार यह है कि इसका सेवन कर लिया
तो भविष्यमें आने वाले रोगों की आशंका ही नहीं रहती।” राजाने
यह सब सुनकर तीसरे वैद्य की रसायन ही अपने लड़के को दिलवाई।

साधुओंको भी ऐसी क्रिया रूपी औषध का सेवन करना
चाहिये कि जिससे लगे हुए कर्मोंका नाश और आगामी कर्मोंका निरोध
हो कर आत्मशुद्धि हो। अतएव साधुओंको दैवसिक आदि प्रतिक्रमण
अवश्य करना चाहिए, क्योंकि इससे पाप लगने पर उसका नाश
होता है और पाप न भी लगा हो तो आत्मशुद्धि अवश्य होती है।

रसायण ખીને કેઈ સ્થળે મળી શકતું નથી આ રસાયણ શારીરિક રોગોને
જડ-મૂળથી નષ્ટ કરી શકે છે અને રોગ ન હોય અને તે રસાયણનો ઉપયોગ કરવામાં
આવે તો ખીન્ન રોગોને થતા અટકાવે છે તથા શરીરની કાન્તિ વધારે છે, અને
તેમાં એક ખીન્ન ચમત્કાર એ છે કે -તેનું સેવન કરવામાં આવે તો ભવિષ્યમાં રોગ
થવાની શકાજ રહેતી નથી રાત્રીએ આ સર્વ વાત સાંભળી ત્રીજા વૈદ્યની દવા
(રસાયણ) જ પોતાના પુત્રને અપાવી

સાધુઓએ પણ એવી ક્રિયારૂપી ઔષધીનું સેવન કરવું જોઈએ કે
જેનાથી લાગેલા કર્મોના નાશ થાય અને આગામી કર્મોના નિરોધ (અટકાવ)
થઈને આત્મશુદ્ધિ થાય એટલા કારણથી સાધુઓએ દૈવસિક આદિ પ્રતિક્રમણ
અવશ્ય કરવું જોઈએ, કારણકે પાપ લાગે તો પણ તેનો નાશ થઈ જાય છે અને
પાપ નહિ લાગ્યા હોય તો આત્મશુદ્ધિ અવશ્ય થાય છે

કચ્છિન્નરપતિર્વિગ્નાન્ આહૂય પ્રોક્તવાન્- “યદ્ ભવદ્વિસ્તથા ત્રિધીયતા
યથા મમ પ્રાણપ્રિયસ્યાદ્વિતીયસ્ય તનયસ્ય શરીરે આયત્યા રોગસ્પર્શોઽપિ ન
સમભવેત્” इत्याकर्ण्य तन्मभ्यादेको वैद्यः समभ्यधात्- “मत्पार्श्वे एवविध
रसायन विन्यते यद् रोगसद्भावे सेवित सत् तत्क्षणमेव त नाशयति, रोगा-
भावे तत्सेवन तु नूतनरोगोत्पत्तये जायते” इति । द्वितीयेनोक्तम्-“मदौषध
रोगसद्भावे त विनाशयति, रोगाभावे तत्सेवने तु न कञ्चिद्गुण दोष वा प्रदर्शयति” ।
तदनन्तर तृतीयो वैद्य सामोदमवादीत्-“हे राजन् ! अतिप्रशस्यमद्भुत च मम
रसायन, नचैतादृग्रसायनमन्यत्र क्वाप्युपलभ्यते, यदिद देहस्थितानातङ्कान् समूल

औषधि की तरह । किसी एक राजाने वैद्यों को बुलाकर कहा-“आप
लोग कोई ऐसा उपाय कीजिए कि मेरे प्राणोंसे भी प्यारे लडके को
भविष्यमे रोग छू भी न सके ।” राजाकी बात सुनकर एक वैद्य बोला-
“मेरे पास ऐसी दवा है कि रोग होने पर उसका सेवन किया जाय तो
पलभरमे उस रोग को मिटा देती है, और रोग न होने पर सेवन
किया जाय तो नवीन रोग उत्पन्न कर देती है ।” दूसरे वैद्यने कहा-
“मेरे पास ऐसी दवा है कि रोग हो तो उसे फौरन दबा देती है
और रोग न हो तो न कुछ गुण करती है न अवगुण ।” इसके
बाद तीसरे वैद्य प्रसन्नतासे बोले-“महाराज ? मेरी दवा अति प्रशसनीय

તબજન્ય આત્મશુદ્ધિની પ્રબલતા અવશ્ય થાય છે ત્રીજા વૈદ્યની ઔષધિ પ્રમાણે
ઉદાહરણને ખુલાશો એ છે કે-કોઈ એક રાજાએ વૈદ્યને બોલાવીને કહ્યું કે-
આપ લોક કોઈ એવો ઉપાય કરો કે મારા પ્રાણથી અધિક બહાલા પુત્રને
ભવિષ્યમા રોગ સ્પર્શ પણ ન કરી શકે ? રાજાની આ પ્રમાણે વાત સાંભળીને
એક વૈદ્ય બોલ્યો કે-“મારી પાસે એવું રસાયણ છે કે-રોગ થાય તો તે રસા
યણનું સેવન કરવામા આવે તો એક પલમા તે રસાયણ રોગને મટાડી શકે છે,
અને રોગ ન હોય છતાય સેવન કરવામા આવે તો નવો રોગ ઉત્પન્ન કરી આપે
છે બીજા વૈદ્યે કહ્યું કે-મારી પાસે એવી દવા છે કે રોગ હોય તો એકદમ તેને
દબાવી દે છે, અને રોગ ન હોય અને દવાનો ઉપયોગ કરાય તો નથી શુભ કરતી
કે નથી અવગુણ કરતી ત્યાર પછી ત્રીજા વૈદ્યે પ્રસન્નતાથી કહ્યું કે મહારાજ !
મારી પાસે જે રસાયણ છે તે ગદુજ વખાણવા યોગ્ય અને અદ્ભુત છે, આરુ

यथा न खलु कोऽपि “श्रावकोऽयम्” इति ज्ञात्वा अभक्ष्यमकल्प्य वा किञ्चिदपि वस्तु समर्पयति, श्रावककुलोत्पन्नत्वेनैव तस्याऽकल्प्यवस्तुजातत्यागित्वप्रसिद्धेः, तथैवाऽत्रापि ज्ञातव्यम् ।

उत्तर—अव्रती हो या व्रती, प्रतिक्रमण सबको पूरा करना चाहिए इसमें कोई दोष नहीं आसकता, क्योंकि अव्रती प्रतिक्रमण करेगा तो प्रतिक्रमण का महत्त्व समझनेसे व्रत नहीं ग्रहण करनेका उसे पश्चात्ताप होगा तथा “व्रत ग्रहण करने की क्या जरूरत है ? इनमें क्या धरा है ?” इत्यादि मिथ्या श्रद्धा का पश्चात्ताप होगा, इससे अन्तःकरणमें निर्मलता आदि अनेक आत्मगुण प्रकट होंगे। इसलिए, तथा व्रतधारी को ग्रहण किये हुए व्रतो में लगनेवाले अतिचारोंका, तथा यदि उसने पूरे व्रत न लिये हों तो नहीं लिये हुए व्रतोंको ग्रहण करने में किये हुए प्रमाद और व्रत विषयक विपरीत श्रद्धा के विषयमें पश्चात्ताप होगा इसलिए व्रती या अव्रती सबको प्रतिक्रमण करना ही चाहिए, क्योंकि अव्रती भी श्रावक है और श्रावक होनेसे ही उन्हें प्रतिक्रमण करने का अधिकार हो ही जाता है ।

उत्तर—अव्रती (व्रत धारण नहि करना) होय अथवा व्रती (व्रत धारण करना) होय એ સૌએ પૂરેપૂરું પ્રતિક્રમણ કરવું જોઈએ, અને એ પ્રમાણે કરવામાં હોય પ્રકારનો દોષ આવી શકતો નથી કારણ કે અવ્રતી પ્રતિક્રમણ કરશે તો પ્રતિક્રમણનું મહત્ત્વ સમજવાથી વ્રત ગ્રહણ નથી કરી શક્યો તેનો પશ્ચાત્તાપ થશે તથા ‘વ્રત ગ્રહણ કરવાની શું જરૂર છે ? તેમાં શું લાભ છે ?’ વગેરે ખોટી શ્રદ્ધાનો પશ્ચાત્તાપ થશે અને તે પશ્ચાત્તાપ કરવાથી અતઃકરણમાં નિર્મલતા આદિ અनेક આત્મગુણો પ્રગટ થશે, એ માટે તથા વ્રતધારીએ જે વ્રતો ધારણ કરેલા હશે તે વ્રતોમાં જે જે અતિચારો લાગી શકે છે તે અતિચારોનો તથા કદાચ પૂરા વ્રતો ગ્રહણ નહિ કર્યા હોય તો આજ સુધી વ્રત-ગ્રહણ નહિ કરવામાં કહેલો જે પ્રમાદ તેમજ વ્રત વિષેની વિપરીત શ્રદ્ધા તે વિષે પશ્ચાત્તાપ થશે, એટલા માટે વ્રતી અથવા તો અવ્રતીએ પ્રતિક્રમણ કરવું જોઈએ અવ્રતી પણ શ્રાવક છે અને શ્રાવક હોવાથીજ તેને પ્રતિક્રમણ કરવાનો અધિકાર મળીજ નાય છે

નનુ પૂર્વં યદભિદ્ધિતમ્—“સાધુ સાધ્વી શ્રાવક-શ્રાવિકાણામિદં ષડધ્યયના-
ત્મકમાવશ્યકમવશ્ય કરણીય” મિતિ તદ્વ્રતિનામવ્રતિના વા ? इति जिज्ञासाया
प्रत्यातिसाधारण्येन सर्वेषामेव तेषां तत्करणीयमिति सिध्यति सूत्रे प्रतिपदोक्ततया
तत्तन्नामाऽनुपादानात्, परं तदन्तर्वर्त्ति प्रतिक्रमणार्थं, चतुर्थमध्ययनं तु प्रत
सलयाचारशुद्धिमेव प्रतिपादयति ततस्तत्करणमव्रतिनामयोग्यमेव, व्रतिष्वपि भिन्नं
प्रतधारिणो भवन्तीति कथं तेषामिदं सपूर्णमध्ययनं युज्यते ? इति चेद्, अत्रो
च्यते—अव्रतिनो व्रतिनो वा भवन्तु नाम तथाऽपि न कोऽपि दोषलेशः समुदेतु
क्षमः, अव्रतिना तद्ग्रहणं तच्छूद्धाविपर्यासादिविषयकं. व्रतिना गृहीतेषु व्रतेषु
सलयातिचारात्मकः अगृहीतानां चावशिष्टव्रतानां तद्ग्रहणप्रमाद-तच्छूद्धाविपर्या-
सादिविषयकश्च पापपश्चात्ताप, करणीय एव, श्रावकत्वेनैव तेषां तत्करणाधिकारात्।

પ્રશ્ન—આપને પહેલે કહા હૈ કિ—યહ ષડધ્યયનરૂપ આવશ્યક
સાધુ સાધ્વી શ્રાવક ઓર શ્રાવિકાઓંકો અવશ્ય કરના ચાહિયે,
ક્યોંકિ સૂત્રમેં ‘વ્રતીકો કરના ચાહિયે યા અવ્રતીકો ?’ એસા વિશેષ
કથન નહીં કિયા ગયા હૈ, ઇસસે માલૂમ હોતા હૈ કિ વ્રતી ઓર અવ્રતી
દોનોંકોહી કરના ચાહિયે, કિન્તુ ઇસમે ચોથા અધ્યયન પ્રતિક્રમણ કા હૈ
યહ વ્રતોંમે લગે હુણ અતિચારોકી શુદ્ધિ કે લિયે કિયા જાતા હૈ ।
એસી અવસ્થામેં અવ્રતી જીવ પ્રતિક્રમણ કરકે શુદ્ધિ કિસ કી કરેગા ?
અવ રહે વ્રતી સો ડનમેં મી કોઈ કિસી વ્રતકા ધારી હોતા હૈ, કોઈ
કિસી વ્રતકા, ડન સવ કે લિયે એકહી પ્રતિક્રમણ (પૂરા કા પૂરા)
કૈસે ઉપયુક્ત હો સકતા હૈ !

પ્રશ્ન—આપે પ્રથમ કહ્યું કે— આ છ અધ્યયનરૂપ આવશ્યક સાધુ સાધ્વી
અને શ્રાવક-શ્રાવિકાઓએ અવશ્ય કરવા જોઈએ, કારણ કે સૂત્રમાં વ્રતધારીઓને કરવા
જોઈએ કે અવ્રતીઓને ? એવું વિશેષ કથન કહેવામાં આવ્યું નથી તેથી જાણી
શકાય છે કે—વ્રતી અને અવ્રતી સૌએ આવશ્યક કરવું જોઈએ, પરંતુ તેમાં એથી
અધ્યયન પ્રતિક્રમણનું છે તે વ્રતોમાં લાગેલા અતિચારોની શુદ્ધિને માટે કહેલું
છે, એવી અવસ્થામાં અવ્રતી જોયોએ પ્રતિક્રમણ કરવું બંધ છે, જ્યારે તેઓને
વ્રતજ નથી તો પ્રતિક્રમણ કરીને શુદ્ધિ કેની કરશે ? હવે વ્રતી વિષે કહેવાનું
રહ્યું તો તેમાં કોઈ કયા વ્રતના ધારી અને કોઈ કયા વ્રતના ધારી હોય છે, એ
સર્વ માટે એકજ પ્રતિક્રમણ કેવી રીતે ઉપયોગી થઈ શકે ?

यथा न खलु कोऽपि “श्रावकोऽयम्” इति ज्ञात्वा अभक्ष्यमकल्प्य वा किञ्चिदपि वस्तु समर्पयति, श्रावककुलोत्पन्नत्वेनैव तस्याऽकल्प्यवस्तुजातत्यागित्वप्रसिद्धेः, तथैवाऽत्रापि ज्ञातव्यम् ।

उत्तर—अव्रती हो या व्रती, प्रतिक्रमण सबको पूरा करना चाहिए इसमें कोई दोष नहीं आसकता, क्योंकि अव्रती प्रतिक्रमण करेगा तो प्रतिक्रमण का महत्त्व समझनेसे व्रत नहीं ग्रहण करनेका उसे पश्चात्ताप होगा तथा “व्रत ग्रहण करने की क्या जरूरत है ? इनमें क्या धरा है ?” इत्यादि मिथ्या श्रद्धा का पश्चात्ताप होगा, इससे अन्तःकरणमें निर्मलता आदि अनेक आत्मगुण प्रकट होंगे। इसलिए, तथा व्रतधारी को ग्रहण किये हुए व्रतो में लगनेवाले अतिचारोंका, तथा यदि उसने पूरे व्रत न लिये हो तो नहीं लिये हुए व्रतोंको ग्रहण करने में किये हुए प्रमाद और व्रत विषयक विपरीत श्रद्धा के विषयमें पश्चात्ताप होगा इसलिए व्रती या अव्रती सबको प्रतिक्रमण करना ही चाहिए, क्योंकि अव्रती भी श्रावक है और श्रावक होनेसे ही उन्हें प्रतिक्रमण करने का अधिकार हो ही जाता है ।

उत्तर—अव्रती (व्रत धारण नहि करना) होय अथवा व्रती (व्रत धारण करना) होय એ મોઁ પૂરેપૂરું પ્રતિક્રમણ કરવું જોઈએ, અને એ પ્રમાણે કરવામા ડોડ પ્રકારનો દોષ આવી શકતો નથી કારણ કે અવ્રતી પ્રતિક્રમણ કરશે તો પ્રતિક્રમણનું મહત્ત્વ સમજવાથી વ્રત ગ્રહણ નથી કરી શક્યો તેનો પશ્ચાત્તાપ થશે તથા ‘વ્રત ગ્રહણ કરવાની શું જરૂર છે ? તેમા શું લાભ છે ?’ વગેરે ખોટી શ્રદ્ધાનો પશ્ચાત્તાપ થશે અને તે પશ્ચાત્તાપ કરવાથી અત કરણમા નિર્મલતા આદિ અनेક આત્મગુણો પ્રગટ થશે, એ માટે તથા વ્રતધારીએ જે વ્રતો ધારણ કરેલા હશે તે વ્રતોમા જે જે અતિચારો લાગી શકે છે તે અતિચારોનો તથા કદાચ પૂર્ણ વ્રતો ગ્રહણ નહિ કર્યા હોય તો આજ સુધી વ્રત-ગ્રહણ નહિ કરવામા કહેલો જે પ્રમાદ તેમજ વ્રત વિષેની વિપરીત શ્રદ્ધા તે વિષે પશ્ચાત્તાપ થશે, એટલા માટે વ્રતી અથવા તો અવ્રતીએ પ્રતિક્રમણ કરવું જોઈએ અવ્રતી પણ શ્રાવક છે અને શ્રાવક હોવાથીજ તેને પ્રતિક્રમણ કરવાનો અધિકાર મળીજ નાય છે

યદ્વા-“અખણ્ડિત સૂત્રમુચ્ચારણીય” મિત્યનુશાસનાત્, મૂત્રેઽક્ષરમાત્રસ્યાર્થા
 હીનતયાઽધિકૃતયા મોચ્ચારણે “હીનાક્ષર અત્યક્ષર” इत्यादिना ज्ञानाऽऽशातना
 ऽऽख्यापनाच्च मूत्रमखण्डमेव पठनीयम्, अन्यथा यद् यद् व्रतं गृहीतमस्ति तत्तद्विषय
 कपाठमेव तस्मान्निस्सार्य पठने तु हीनाक्षरात्यक्षराग्रनेकदोषाः सभवन्ति
 सर्वेषां तादृशयोग्यताया असम्भवात् । सत्यामपि योग्यतायामेवकरणेऽन्येषां
 मीर्ष्यादिसम्भवः ‘यदहमप्येव कथं न करोमी’ ति, तेन च यथोक्तमूत्रशैल्य
 विभ्रससम्भवात्, तत्तपाठवैषम्याच्चाऽतिशयेनातिचारसम्भवस्तस्मात् सर्वैरखण्डतयै
 मूत्रोच्चारण करणीयमिति सिद्धम् ।

अथवा शास्त्रों में कहा गया है कि-‘अखण्डित सूत्रमुच्चारणीयम्
 अर्थात् सूत्र अखण्डित बोलना चाहिए । इस कथन से यह सिद्ध
 कि खण्डित सूत्र बोलना ठीक नहीं है । जिसने जो व्रत लिया
 वह यदि उसी व्रतका पाठ निकाल कर पढ़े तो ‘हीनाक्षर’ ‘अत्यक्षर’
 आदि बोलने के अनेक दोष लगेंगे । क्योंकि सबमें ऐसी योग्यता
 नहीं होती कि वे उस-उस पाठ को शुद्ध रीति से निकाल कर प
 सकें । जिन थोड़े से व्यक्तियों में ऐसी योग्यता है वे यदि ऐसा करें
 तो दूसरे अज्ञ जन उनका अनुकरण करने लगेंगे । क्योंकि अधिकांश
 लोग अनुकरणप्रिय होते हैं । इससे उपरोक्त सूत्र-पठन-शैली में
 बहुत बाधा पहुँचेगी । अतएव श्रुतपठन के अतिचार टालने के लिए
 आवश्यकता है कि सूत्र अखण्डित पढ़ा जाय ।

અથવા શાસ્ત્રોમાં કહેલું છે કે —

“અખણ્ડિત મૂત્રમુચ્ચારણીયમ્” અર્થાત્ સૂત્ર અખણ્ડિત બોલવું જોઈએ—
 વાક્યથી એ સિદ્ધ થાય છે કે ખણ્ડિત સૂત્ર બોલવું તે ઠીક નથી જેણે જે વ્રત લીધું
 તે જ એજ વ્રતનો પાઠ કાઢીને વાંચે તે “હીનાક્ષર અત્યક્ષર” આદિ અनेक दोष
 लागશે, કારણ કે સર્વમાં એવી યોગ્યતા નથી કે તે સર્વ પાઠનો શુદ્ધ રી
 ઉચ્ચારણ કરી શકે જે થોડીએક વ્યક્તિઓમાં એવી યોગ્યતા છે તે જ એ પ્રમાણ
 કરશે તે બીજા અજ્ઞાણ માણસો તેનું અનુકરણ કરવા લાગી જશે

કારણ કે મોટા ભાગના માણસોને અનુકરણ પ્રિય છે તે કારણથી ઉપ
 કહેલ સૂત્ર-પઠન-શૈલીમાં બહુજ હરકત આવશે એ કારણથી શ્રુત અભ્યાસ
 અતિચાર નિવારણ માટે જરૂર છે કે સૂત્ર અખણ્ડિત વાંચવું

અસ્ત્વેવ દોષપ્રતિવિધાન તથાપિ સ્વાધ્યાયજન્ય જ્ઞાનાવરણીયકર્મક્ષયકર મહત્ફલ ત્વત્રતિનામન્યનિવાર્યમેવ । ઉક્તશ્ચ ઉત્તરાધ્યયનસૂત્રે—

“સજ્ઞાણ મતે ! જીવે કિં જળયઈ ? ગોયમા ! સજ્ઞાણ નાણાવરણિજ્ઞ કમ્મ સ્વેઈ” ઇતિ । એવ ચાઽત્રતિનામપિ તત્કર્તુ યુજ્યત એવેત્યલમ્ ।

સામાયિકમ્ (૧)

નનુ ‘સામાયિકાલ્પ્યમન્યયન’—મિત્યત્ર કઃ સામાયિકશબ્દાર્થઃ ?

સમસ્ય=સમભાવસ્ય આયઃ=લાભો યસ્મિન્ તત્ સમાય તદેવ સામાયિકમ્,

રહી અત્રતી જીવોં કી વાત સો પ્રતિક્રમણ કરને સે ઉન્હે જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કા ક્ષયરૂપ સ્વાધ્યાયજન્ય મહત્ફલ હોગા હી । ઉત્તરાધ્યયન મેં કહા બી હૈ—“સજ્ઞાણ મતે ! જીવે કિં જળયઈ ? ગોયમા ! સજ્ઞાણ જીવે નાણાવરણિજ્ઞ કમ્મ સ્વેઈ ।” અર્થાત્—શ્રી ગૌતમસ્વામીને પૂછા—“પ્રભો ! સ્વાધ્યાય સે જીવ કો કયા ફલ મિલતા હૈ ?” ભગવાન બોલે—“ગૌતમ ! સ્વાધ્યાય સે જીવ જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કા ક્ષય કરતા હૈ ।” અતઃ પ્રતિક્રમણ અત્રતી જીવોં કો બી કરના હી ચાહિયે ।

સામાયિક (૧)

પ્રશ્ન—સામાયિકાધ્યયન આપ કહતે હૈં, સો ‘સામાયિક’ શબ્દ કા અર્થ કયા હૈ ?

ઉત્તર—જિસમે સમ-સમતાભાવ કા, આય-લાભ હો, ઉસે

હવે અત્રતી જીવોની વાત કહીએ તો તે પ્રતિક્રમણ કરવાથી તેને જ્ઞાનાવરણીય કર્મના ક્ષયરૂપ સ્વાધ્યાયજન્ય મહાન ફળ થશેજ ઉત્તરાધ્યયન સૂત્રમા કહ્યુ છે કે — “સજ્ઞાણ મતે ! જીવે કિં જળયઈ ? ગોયમા ! સજ્ઞાણ જીવે નાણાવરણિજ્ઞ કમ્મ સ્વેઈ” અર્થાત્—શ્રી ગૌતમ સ્વામીએ પૂછ્યુ “પ્રભો ! સ્વાધ્યાયથી જીવોને શુ ફળ મળે છે ? ભગવાને કહ્યુ કે ગૌતમ ! સ્વાધ્યાયથી જીવ જ્ઞાનાવરણીય કર્મનો ક્ષય કરે છે આ કારણથી પ્રતિક્રમણ અત્રતી જીવોએ પણ કરવુ જ જોઈએ

સામાયિક

પ્રશ્ન—સામાયિકાધ્યયન આપ કહો છો તે ‘સામાયિક’ શબ્દનો અર્થ શુ છે ?

ઉત્તર—જેમા સમ-સમતા ભાવનો આય-લાભ હોય તેને સામાયિક કહે છે

યદ્વા—“અખણ્ડિત સૂત્રમુચ્ચારણીય” મિત્યનુશાસનાત્, મૂત્રેઽક્ષરમાત્રસ્યાપિ હીનતયાઽધિકૃતયા પ્રોચારણે “હીનાક્ષર અત્યક્ષર” इत्यादिना ज्ञानाऽऽज्ञातना ऽऽख्यापनाच्च मूत्रमखण्डमेव पठनीयम्, अन्यथा यद् यद् व्रतं गृहीतमस्ति तत्तद्विषय- कपाठमेव तस्मान्निस्सार्य पठने तु हीनाक्षरात्यक्षराग्रनेकदोषाः सम्भवन्ति, सर्वेषां तादृशयोग्यताया असम्भवात् । सत्यामपि योग्यतायामेवकरणेऽन्येषां मीर्ष्यादिसम्भवः ‘यदहमप्येव कथं न करोमी’ ति, तेन च यथोक्तमૂत्रशैल्या विभ्वससम्भवात्, तत्तपाठत्रैपम्याच्चाऽतिशयेनातिचारसम्भवस्तस्मात् सर्वैरखण्डतयैव सूत्रोच्चारणं करणीयमिति सिद्धम् ।

अथवा शास्त्रों में कहा गया है कि—‘अखण्डित सूत्रमुच्चारणीयम्’ अर्थात् सूत्र अखण्डित बोलना चाहिए । इस कथन से यह सिद्ध है कि खण्डित सूत्र बोलना ठीक नहीं है । जिसने जो व्रत लिया है वह यदि उसी व्रतका पाठ निकाल कर पढ़े तो ‘हीनाक्षर’ ‘अत्यक्षर’ आदि बोलने के अनेक दोष लगेंगे । क्योंकि सबमें ऐसी योग्यता नहीं होती कि वे उस-उस पाठ को शुद्ध रीति से निकाल कर पढ़ सकें । जिन थोड़े से व्यक्तियों में ऐसी योग्यता है वे यदि ऐसा करेंगे तो दूसरे अज्ञ जन उनका अनुकरण करने लगेंगे । क्योंकि अधिकांश लोग अनुकरणप्रिय होते हैं । इससे उपरोक्त सूत्र-पठन-शैली में बहुत बाधा पहुँचेगी । अतएव श्रुतपठन के अतिचार टालने के लिये आवश्यकता है कि सूत्र अखण्डित पढ़ा जाय ।

અથવા શાસ્ત્રોમાં કહેલું છે કે —

“અખણ્ડિત સૂત્રમુચ્ચારણીયમ્” અર્થાત્ સૂત્ર અખણ્ડિત બોલવું જોઈએ—આ વાક્યથી એ સિદ્ધ થાય છે કે ખણ્ડિત સૂત્ર બોલવું તે ઠીક નથી જેણે જે વ્રત લીધું છે તે જો એજ વ્રતનો પાઠ કાઢીને વાંચે તે “હીનાક્ષર અત્યક્ષર” આદિ અनेક દોષ લાગશે, કારણ કે સર્વમાં એવી યોગ્યતા નથી કે તે સર્વ પાઠનો શુદ્ધ રીતે ઉચ્ચારણ કરી શકે જે થોડીએક વ્યક્તિઓમાં એવી યોગ્યતા છે તે જો એ પ્રમાણે કરશે તે ખીજા અજ્ઞાણ માણસો તેનું અનુકરણ કરવા લાગી જશે

કારણ કે મોટા ભાગના માણસોને અનુકરણ પ્રિય છે તે કારણથી ઉપર કહેલ સૂત્ર-પઠન-શૈલીમાં બહુજ દરકત આવશે એ કારણથી શ્રુત અભ્યાસના અતિચાર નિવારણ માટે જરૂર છે કે સૂત્ર અખણ્ડિત વાંચવું

“ચતુવીસત્થણ મતે ! જીવે કિં જણયઈ ? ગોયમા ! ચતુવીસત્થણ દસણવિસોહિં જણયઈ ।” इति ।

दर्शनशुद्ध्या च जीव आत्मस्वरूप लभते, यथा भृङ्गगृहस्थितः कीटविशेषः स्वस्यौघदशायामपि तन्उद्दहदसस्कारेण भृङ्गता प्रतिपद्यते तथैव जीवोऽपि भक्त्युद्रेकेण परम्परया शुद्धस्वरूप लभतेऽतो द्वितीयमावश्यकं चतुर्विंशतिस्तव-
ख्यमस्ति । २ ।

चाहिये । इससे वीतराग प्रभु में जीव की भक्ति होती है । भक्ति से दर्शन की विशुद्धि होती है ।

कहा भी है “चउवीસત્થણ મતે ! જીવે કિં જણયઈ ? ચउवीસત્થણ દસણવિસોહિં જણયઈ ।”—અર્થાત્ શ્રી ગૌતમ સ્વામીને પૂછા—ભગવન્ ! ચતુર્વિંશતિસ્તવ કા જીવ કો કયા ફલ હોતા હૈ ? ભગવાન્ ને ઉત્તર દિયા—દર્શનવિશુદ્ધિ હોતી હૈ । દર્શનવિશુદ્ધિ સે આત્મા કો શુદ્ધ સ્વરૂપ કી પ્રાપ્તિ હોતી હૈ । જૈસે મૌરે કે ઘર મે રહા હુઆ કીડા અપની ઓઘદશા મે મી ઉસકે શબ્દ કે દહ સસ્કાર સે મૌરા બન જાતા હૈ, ઉસી પ્રકાર જીવ ચતુર્વિંશતિસ્તવ દ્વારા પરમ્પરા સે અપને શુદ્ધ સ્વરૂપ કો પ્રાપ્ત કરતા હૈ । અતઃ દૂસરા ચતુર્વિંશતિસ્તવ હૈ ।

ચતુર્વિંશતિસ્તવ (૨)

સામાયિક પછી ચોવીમ જિનેન્દ્ર દેવોની સ્તુતિ કરવી જોઈએ, એ વડે વીતરાગ પ્રભુમા જીવોને ભક્તિ થાય છે, અને ભક્તિથી દર્શનની વિશુદ્ધિ થાય છે

કહ્યું પણ છે કે — ચउवीસત્થણ મતે ! જીવે કિં જણયઈ ? ચउवीસ-
ત્થણ દસણવિસોહિં જણયઈ । અર્થાત્ શ્રી ગૌતમે પૂછ્યું—ભગવન્ ! ચતુર્વિંશતિસ્તવ
(સ્તવન) કરવાથી જીવને શુદ્ધ થાય છે ? ભગવાને ઉત્તર આપ્યો કે દર્શનવિશુદ્ધિ થાય
છે દર્શનવિશુદ્ધિથી આત્માને શુદ્ધ સ્વરૂપની પ્રાપ્તિ થાય છે જેવી રીતે ભમ
રીના ઘરમા રહેલો કીડો પોતાની ઓઘદશામા પણ તેના શબ્દના દહ સસ્કારથી
ભમરી બની જાય છે જેને ‘કીટ ભૂગી ન્યાય કહે છે’ તે પ્રમાણે જીવ ચતુ
ર્વિંશતિસ્તવથી પરમ્પરાથી પોતાના શુદ્ધ સ્વરૂપને પ્રાપ્ત કરે છે તેથી બીજું
સ્થાન ચતુર્વિંશતિસ્તવનું છે

અર્થાત્ પ્રાણિમાત્રે સમભાવપૂર્વક સાવચળ્યાપારવિરતિસમ્પાદકમ્ , ઉક્તઞ્ચ—
“સામાઙ્ગ્યેણ ભતે ! જીવે કિં જળયઈ ? સામાઙ્ગ્યેણ સાવજ્જજોગ
વિરઈ જળયઈ”

સમભાવેન ચિત્તસ્થૈર્ય ભવતિ, તસ્મિન્ન સત્યેય સકલાઃ ક્રિયા યથોક્તવિધિના
સમ્પદ્યન્તે, તસ્માત્ પ્રથમમિદં સામાયિકાધ્યયનમુપન્યસ્તમ્ ।

ચતુર્વિંશતિસ્તવઃ (૨)

તદનન્તર ચતુર્વિંશતિજિનસ્તુતિઃ કર્તવ્યા, સા ચ જીવસ્ય પરમાત્મનિ
સદ્ધર્મિકિં જનયતિ, તયા ચ દર્શનશુદ્ધિઃ સજાયતે, ઉક્તઞ્ચ—

સમાય કહતે હૈં ઓર ઉસીકો સામાયિક કહતે હૈં । અર્થાત્ પ્રાણી-
માત્ર મેં સમતા ધર કર સમસ્ત સાવચ વ્યાપાર કા ત્યાગ કરના ।
કહા મી હૈ—“સામાઙ્ગ્યેણ ભતે ! જીવે કિં જળયઈ ? સામાઙ્ગ્યેણ
સાવજ્જજોગવિરઈ જળયઈ ।” અર્થાત્ શ્રીગૌતમ સ્વામીને પૂછા પ્રમો !
સામાયિકસે જીવ કો કયા ફલ હોતા હૈ ! ભગવાન્ ને ઉત્તર દિયા—
‘હે ગૌતમ ! સામાયિક સે સાવચ યોગ કી નિવૃત્તિ હોતી હૈ ઓર
સમભાવ ઉત્પન્ન હોતા હૈ, સમભાવ સે ચિત્ત મે સ્થિરતા આતી હૈ,
ઓર ચિત્ત કી સ્થિરતા સે હી સમસ્ત ક્રિયાઈ વિધિ કે અનુસાર
સમ્પાદિત હોતી હૈં । અતઃ પહેલે-પહેલ સામાયિક અધ્યયન કહા ગયા હૈ ।

ચતુર્વિંશતિસ્તવ (૨)

સામાયિક કે અનન્તર ચૌવીસ જિનેન્દ્રોં કી સ્તુતિ કરની

અર્થાત્—પ્રાણી માત્રમા સમતાભાવ રાખીને સમસ્ત સાવચ (પાપમય) વ્યાપારનો
ત્યાગ કરવો.

હ્યુ પણુ છે કે — “સામાઙ્ગ્યેણ ભતે ! જીવે કિં જળયઈ ? ગોયમા !
સામાઙ્ગ્યેણ સાવજ્જજોગવિરઈ જળયઈ”

અર્થાત્—શ્રી ગૌતમ ગણધરે પૂછયુ કે હે પ્રમો ! સામાયિક કરવાથી જીવને
શુ ફળ થાય છે ? ભગવાને ઉત્તર આપ્યો કે હે ગૌતમ ! સામાયિક કરવાથી સાવચ
યોગની નિવૃત્તિ થતા સમભાવ ઉત્પન્ન થાય છે અને સમભાવથી સાવચ ક્રિયાની નિવૃત્તિ
થાય છે, તેથી ચિત્તમા સ્થિરતા આવે છે, અને ચિત્તની સ્થિરતાથી સમસ્ત ક્રિયાઓ
વિધિ-અનુસાર પ્રાપ્ત થાય છે એ કારણથી પ્રથમ સામાયિક અધ્યયન કહેલુ છે

“ચત્વીસત્થણ મતે ! જીવે કિં જણયઈ ? ગોયમા ! ચત્વીસત્થણ દસણવિસોર્હિં જણયઈ ।” ઇતિ ।

દર્શનશુદ્ધ્યા ચ જીવ આત્મસ્વરૂપ લભતે, યથા મૃદ્ગગૃહસ્થિતઃ કીટવિશેષઃ સ્વસ્યૌઘદશાયામપિ તન્નહ્વદદૃશસસ્કારેણ મૃદ્ગતા પ્રતિપત્યતે તથૈવ જીવોઽપિ મત્ત્યુદ્રેકેણ પરમ્પરયા શુદ્ધસ્વરૂપ લભતેઽતો દ્વિતીયમાવશ્યક ચતુર્વિંશતિસ્તવા-રયમસ્તિ । ૨ ।

ચાહિયે । હમસે વીતરાગ પ્રભુ મેં જીવ કી ભક્તિ હોતી હૈ । ભક્તિ સે દર્શન કી વિશુદ્ધિ હોતી હૈ ।

કહા મી હૈ “ચત્વીસત્થણ મતે ! જીવે કિં જણયઈ ? ચત્વીસત્થણ દસણવિસોર્હિં જણયઈ ।” — અર્થાત્ શ્રી ગૌતમ સ્વામીને પૂછા— ભગવન્ ! ચતુર્વિંશતિસ્તવ કા જીવ કો કયા ફલ હોતા હૈ ? ભગવાન્ ને ઉત્તર દિયા—દર્શનવિશુદ્ધિ હોતી હૈ । દર્શનવિશુદ્ધિ સે આત્મા કો શુદ્ધ સ્વરૂપ કી પ્રાપ્તિ હોતી હૈ । જૈસે મૌરે કે ઘર મે રહા હુઆ કીડા અપની ઓઘદશા મે મી ઉસકે શબ્દ કે દૃઢ સસ્કાર સે મૌરા બન જાતા હૈ, ઉસી પ્રકાર જીવ ચતુર્વિંશતિસ્તવ દ્વારા પરમ્પરા સે અપને શુદ્ધ સ્વરૂપ કો પ્રાપ્ત કરતા હૈ । અતઃ દૂસરા ચતુર્વિંશતિસ્તવ હૈ ।

ચતુર્વિંશતિસ્તવ (૨)

સામાયિક પછી ચોવીમ જિનેન્દ્ર દેવોની સ્તુતિ કરવી જોઈએ, એ વડે વીતરાગ પ્રભુમા જીવોને ભકિત થાય છે, અને ભકિતથી દર્શનની વિશુદ્ધિ થાય છે

કહ્યું પણ છે કે — ચત્વીસત્થણ મતે ! જીવે કિં જણયઈ ? ચત્વીસ-ત્થણં દસણવિસોર્હિં જણયઈ । અર્થાત્ શ્રી ગૌતમે પૂછ્યું—ભગવન્ ! ચતુર્વિંશતિસ્તવ (સ્તવન) કરવાથી જીવને શુદ્ધ થાય છે ? ભગવાને ઉત્તર આપ્યો કે દર્શનવિશુદ્ધિ થાય છે દર્શનવિશુદ્ધિથી આત્માને શુદ્ધ સ્વરૂપની પ્રાપ્તિ થાય છે જેવી રીતે ભમરીના ઘરમા રહેલો કીડો પોતાની ઓઘદશામા પણ તેના શબ્દના દૃઢ સસ્કારથી ભમરી બની જાય છે જેને ‘કીટ ભૂગી ન્યાય કહે છે’ તે પ્રમાણે જીવ ચતુર્વિંશતિસ્તવથી પરમ્પરાથી પોતાના શુદ્ધ સ્વરૂપને પ્રાપ્ત કરે છે તેથી બીજું મ્થાન ચતુર્વિંશતિસ્તવનું છે

વન્દનમ્ (૩)

પાપપર્યાલોચન તુ વન્દનપૂર્વક ગુરુસમક્ષમેવ કરણીયમિતિ તૃતીય વન્દના રુચ્યમધ્યયનમુક્તમ્ । વન્દનકેન ઠિ જીવસ્યોચ્ચગોત્રાદિવન્ધો જાયતે, તથોક્તમ્—

“વદ્વણ્ણ મત્તે ! જીવે કિં જણયહ ? વદ્વણ્ણ જીવે નીયાગોય સ્વેહ ઉચ્ચાગોય કમ્મ નિવધહ, સોહમ્મ ચ ણ અપ્પહિહયઆણાફલ નિવત્તેહ દાહિણભાવ ચ ણ જણયહ” ઇતિ વન્દનારુચ્ય તૃતીયમધ્યયનમુક્તમ્ ।

વન્દના (૩)

પાપ કી આલોચના વન્દનાપૂર્વક ગુરુ કે સામને હી કરની યાહિય, યહ વાત વત્તાને કે લિયે તીસરા વન્દના નામક અધ્યયન હૈ । વન્દના સે ઉચ્ચ ગોત્ર કા વન્ધ તથા અન્યાન્ય ફલ હોતે હૈ । કહા મી હૈ—“વદ્વણ્ણ મત્તે ! જીવે કિં જણયહ ? વદ્વણ્ણ જીવે નીયાગોય સ્વેહ ઉચ્ચાગોય કમ્મ નિવધહ, સોહમ્મ ચ ણ અપ્પહિહય આણાફલ નિવત્તેહ, દાહિણભાવ ચ ણ જણયહ” અર્થાત્ ગૌતમસ્વામી ને પૂછા—પ્રમો ! વન્દના સે જીવ કો કયા ફલ હોતા હૈ ? મગવાન્ ને ઉત્તર દિયા—વન્દના સે નીચ ગોત્ર કા ક્ષય હોતા હૈ, ઉચ્ચ ગોત્ર કા વન્ધ હોતા હૈ, સૌમાન્ય ઓર અપ્રતિહત આજ્ઞા ફલ કો પ્રાપ્ત કરતા હૈ, તથા દાક્ષિણ્ય (અનુકૂલતા) કી પ્રાપ્તિ હોતી હૈ । યહ તીસરા અધ્યયન હુઆ ।

વદ્વણ્ણ (૩)

પાપની આલોચના વદ્વણ્ણપૂર્વક ગુરુની સમીપેજ કરવી જોઈએ, એ વાત બતાવવા માટે ત્રીજી વદ્વણ્ણ નામક અધ્યયન છે વદ્વણ્ણ વડે કરીને ઉચ્ચ ગોત્રનો બંધ તથા અન્યાન્ય ફળ પ્રાપ્ત થાય છે કહ્યું છે કે —

વદ્વણ્ણ મત્તે ! જીવે કિં જણયહ ? વદ્વણ્ણ જીવે નીયાગોય સ્વેહ ઉચ્ચાગોય કમ્મ નિવન્ધહ, સોહમ્મ ચ ણ અપ્પહિહય આણાફલ નિવત્તેહ, દાહિણભાવ ચ ણ જણયહ” અર્થાત્ શ્રી ગૌતમ સ્વામીએ પૂછ્યું—હે પ્રભો ! વદ્વણ્ણ કરવાથી જીવને શુ ફલ થાય છે ? મગવાને ઉત્તર આપ્યો—ગૌતમ ! વદ્વણ્ણ કરવાથી નીચ ગોત્રનો ક્ષય થાય છે, અને ઉચ્ચ ગોત્રનો બંધ થાય છે, સૌમાન્ય અને અપ્રતિહત આજ્ઞા ફલને પ્રાપ્ત કરે છે તથા દાક્ષિણ્ય (અનુકૂલતા) ની પ્રાપ્તિ થાય છે આ ત્રીજી અધ્યયન થયું

प्रतिक्रमणम् (४)

वन्दनानन्तर पापप्रायश्चित्त कर्त्तव्यतयोल्लिखित, दिवसे रात्रौ वा यथा कथञ्चित् कोऽप्यतिचारः सलग्नस्तत्प्रकाशन-तदनुतापन तन्निन्दादिविधानेन प्रतिक्रमण विधेय भव्यैः, अनेन व्रतगतच्छिद्राच्छादन जायते, तेनाऽऽगन्तुकाऽऽस्रव-जलमात्मनि न प्रविशतीत्यादि बहुविध फल जीवो लभते, तथा चोक्तम्—

“पङ्क्तिमणेण भते ! जीवे किं जणयइ ? पङ्क्तिमणेण वयच्छिद्दाइ
पुण जीवे निरुद्धासवे असवलचरित्ते अट्टसु पवयणमायासु

(४)

करने का विधान किया गया है।
भी अतिचार लगा हो
उसकी निन्दा आदि
प्रतिक्रमण करने से
वाला आस्रव
पाता। इत्यादि
रते। जीवे किं
छेउहे पुण जीवे
वउत्ते अपुहत्ते

अथवा रात्रीमे
नेने पश्चात्ताप
तिष्ठमणु करवाथी
आस्रवइपी जल
मान थाय छे,

पिहेइ,
वउत्ते

अपुहत्ते

अपुहत्ते

વન્દનમ્ (૩)

પાપપર્યાલોચન તુ વન્દનપૂર્વક ગુરુસમક્ષમેવ કરણીયમિતિ તૃતીય વન્દના-
રુચ્યમધ્યયનમુક્તમ્ । વન્દનકેન हि जीवस्योच्चगोत्रादिवन्धो जायते, तथोक्तम्—

“વદળણ મતે ! જીવે કિં જળયઈ ? વદળણ જીવે નીયાગોય સ્વેઈ
ઉચ્ચાગોય કમ્મ નિવધઈ, સોહગ્ગ ચ ણ અપ્પહિદ્ધયઆણાફલ નિવત્તેઈ દાહિણભાવ
ચ ણ જળયઈ” इति वन्दनारुच्य तृतीयमध्ययनमुक्तम् ।

વન્દના (૩)

પાપ કી આલોચના વન્દનાપૂર્વક ગુરુ કે સામને હી કરની
ચાહિયે, યહ વાત વતાને કે લિયે તીસરા વન્દના નામક અધ્યયન
હૈ । વન્દના સે ઉચ્ચ ગોત્ર કા વન્ધ તથા અન્યાન્ય ફલ હોતે હૈ ।
કહા મી હૈ—“વદળણ મતે ! જીવે કિં જળયઈ ? વદળણ જીવે
નીયાગોય સ્વેઈ ઉચ્ચાગોય કમ્મ નિવધઈ, સોહગ્ગ ચ ણ અપ્પહિદ્ધય
આણાફલ નિવત્તેઈ, દાહિણભાવ ચ ણ જળયઈ” અર્થાત્ ગૌતમસ્વામી
ને પૂછા-પ્રમો ! વન્દના સે જીવ કો ક્યા ફલ હોતા હૈ ? ભગવાન
ને ઉત્તર દિયા-વન્દના સે નીચ ગોત્ર કા ક્ષય હોતા હૈ, ઉચ્ચ ગોત્ર
કા વન્ધ હોતા હૈ, સૌભાગ્ય ઓર અપ્રતિહત આજ્ઞા ફલ કો પ્રાપ્ત
કરતા હૈ, તથા દાક્ષિણ્ય (અનુકૂલતા) કી પ્રાપ્તિ હોતી હૈ । યહ તીસરા
અધ્યયન હુઆ ।

વદના (૩)

પાપની આલોચના વદનાપૂર્વક ગુરુની સમીપેજ કરવી જોઈએ, એ વાત
બતાવવા માટે ત્રીજી વદના નામક અધ્યયન છે વદના વડે કરીને ઉચ્ચ
ગોત્રનો બંધ તથા અન્યાન્ય ફળ પ્રાપ્ત થાય છે કહ્યું છે કે —

વદળણ મતે ! જીવે કિં જળયઈ ? વદળણ જીવે નીયાગોય સ્વેઈ ઉચ્ચાગોય
કમ્મ નિવન્ધઈ, સોહગ્ગ ચ ણ અપ્પહિદ્ધય આણાફલ નિવત્તેઈ, દાહિણભાવ ચ ણ જળયઈ”
અર્થાત્ શ્રી ગૌતમ સ્વામીએ પૂછ્યું—હે પ્રભો ! વદના કરવાથી જીવને શુ ફલ થાય છે ?
ભગવાને ઉત્તર આપ્યો—ગૌતમ ! વદના કરવાથી નીચ ગોત્રનો ક્ષય થાય છે, અને ઉચ્ચ
ગોત્રનો બંધ થાય છે, સૌભાગ્ય અને અપ્રતિહત આજ્ઞા ફળને પ્રાપ્ત કરે છે તથા
દાક્ષિણ્ય (અનુકૂલતા) ની પ્રાપ્તિ થાય છે આ ત્રીજી અધ્યયન થયું

પ્રતિક્રમણમ્ (૪)

વન્દનાનન્તર પાપપ્રાયશ્ચિત્ત કર્તવ્યતયોલ્લિખિત, દિવસે રાત્રી વા યથા કથશ્ચિત્ કોઽપ્યતિચારઃ સલગ્નસ્તત્પ્રકાશન-તદનુતાપન તન્નિન્દાદિવિધાનેન પ્રતિક્રમણ વિધેય મન્યૈઃ, અનેન વ્રતગતચ્છિદ્રાચ્છાદન જાયતે, તેનાઽઽગન્તુકાઽઽસ્રવ-જલમાત્મનિ ન પ્રવિશતીત્યાદિ પહુવિધ ફલ જીવો લભતે, તથા ચોક્તમ્—

“પલિક્રમણેણ મતે ! જીવે કિં જળયડ ? પલિક્રમણેણ વયચ્છિદ્વાઈ પિહેઈ, પિહિયવયન્છિદે પુણ જીવે નિરુદ્ધાસવે અસવલચરિત્તે અટ્ઠસુ પવયણમાયાસુ

પ્રતિક્રમણ (૪)

વન્દના કે બાદ પ્રાયશ્ચિત્ત કરને કા વિધાન કિયા ગયા હૈ । દિન મે યા રાત મે કિસી મી પ્રકાર જો કોઈ મી અતિચાર લગા હો ઉસે પ્રકટ કરકે, ઉસકા પશ્ચાત્તાપ કરકે તથા ઉસકી નિન્દા આદિ કરકે મન્ય જીવોં કો પ્રતિક્રમણ કરના ચાહિયે । પ્રતિક્રમણ કરને સે વ્રતોં મેં લગે હુઈ દોષ મિટ જાતે હૈ । આગે આને વાલા આસ્રવ રૂપી જલ આત્મા રૂપી નૌકા મે પ્રવેશ નહી કર પાતા । હત્યાદિ અનેક લાભ હોતે હૈ । કહા મી હૈ—“પલિક્રમણેણ મતે ! જીવે કિં જળયડ ? પલિક્રમણેણ વયચ્છિદ્વાઈ પિહેઈ, પિહિયવયન્છિદે પુણ જીવે નિરુદ્ધાસવે, અસવલચરિત્તે અટ્ઠસુ પવયણમાયાસુ ઉવઉત્તે અપુહત્તે સુપ્પણિહિઈ વિહરઈ । ”

પ્રતિક્રમણ (૪)

વદના પછી પ્રાયશ્ચિત્ત કરવાનું વિધાન કરેલું છે દિવસમા અથવા રાત્રીએ કેઈ પણ પ્રકારનો જે અતિચાર લાગ્યો હોય તે પ્રગટ કરીને તેનો પશ્ચાત્તાપ કરીને તથા તેની નિંદા કરીને ભવ્ય જીવોએ પ્રતિક્રમણ કરવું જોઈએ પ્રતિક્રમણ કરવાથી પ્રતોમા લાગેલા દોષોનું નિવારણ થાય છે, આગળ આવવાવાળા આશ્રવરૂપી જલ આત્મારૂપી નૌકામા પ્રવેશ કરવા પામતા નથી । હત્યાદિ અનેક લાભ થાય છે, કહ્યું છે કે —

પલિક્રમણેણ મતે ! જીવે કિં જળયડ ? પલિક્રમણેણ વયચ્છિદ્વાઈ પિહેઈ, પિહિયવયન્છિદે પુણ જીવે નિરુદ્ધાસવે અસવલચરિત્તે, અટ્ઠસુ પવયણમાયાસુ ઉવઉત્તે અપુહત્તે સુપ્પણિહિઈ વિહરઈ ।

उवउत्ते अपुहत्ते सुपणिहिण विहरड” ।

तस्मादिदं प्रतिक्रमणारण्यं चतुर्थमावश्यकमभिहितम् ।

कायोत्सर्गः (५)

पूर्वक्रियया मानસિકી વાચિકી ચ શુદ્ધિઃ સજ્ઞાતા, તદનન્તર કાયિકી શુદ્ધિરાવશ્યકીતિ કાયમર્થાન્કાયમમત્વ ત્યક્ત્વાડડત્મન્યેવ રમણ જાયતે તેન

હે ભદન્ત ! પ્રતિક્રમણ કરને સે કિમ ફલ કી પ્રાપ્તિ હોતી હૈ? હે ગૌતમ !-પ્રતિક્રમણ, વ્રતોં કે છિદ્રોં કો રોકતા હૈ, વ્રતોં કે છિદ્ર રુકજાને સે જીવ આસ્રવરહિત હોતા હૈ, આસ્રવ રુક જાને સે ચારિત્ર નિર્મલ હોતા હૈ, ચારિત્ર નિર્મલ હોને સે અષ્ટ^૧ પ્રવચન માતા મેં ઉપયોગવાન્ (સમિતિ ગુપ્તિ કે આરાધન મેં સાવધાન) હોતા હૈ, જિસસે સયમ મેં તત્પરતા હોતી હૈ, ઓર મન, વચન, કાયા કે યોગ અસદ્માર્ગ સે રુક જાતે હેં, અતઃવ વહ સમાધિભાવયુક્ત હો કર વિચરતા હૈ ।

यह प्रतिक्रमण नामक चौथा अध्ययन हुआ ।

कायोत्सर्ग (५)

પહલે કી ક્રિયાઓં સે માનસિક ઓર વાચિક શુદ્ધિ હુઈ ।

હે ભદન્ત ! પ્રતિક્રમણ કરવાથી કયા ફળનો પ્રાપ્ત થાય છે ?

હે ગૌતમ ? પ્રતિક્રમણ વ્રતોના છિદ્રોને રોકે છે વ્રતોના છિદ્રો રોકાઈ જવાથી જીવ આસ્રવરહિત થાય છે આસ્રવ રોકાઈ જવાથી ચારિત્ર નિર્મળ થાય છે અને ચારિત્ર નિર્મળ હોવાથી આઠ પ્રવચનમા ઉપયોગવાન (સમિતિ ગુપ્તિની આરાધનામા સાવધાન) જાને છે, તેથી સયમમા તત્પરતા વધે છે અને મન વચન કાયાના યોગ અસત્ય માર્ગથી રોકાઈ જાય છે જેથી તે સમાધિભાવવાળો થઈ વિચરે છે

આ પ્રતિક્રમણ નામનું ચોથું અધ્યયન થયું

કાયોત્સર્ગ

પ્રથમની ક્રિયાઓ વડે માનસિક અને વાચિક શુદ્ધિ થઈ તેના પછી કાયિક શુદ્ધિ કરવી જરૂરની છે કાયા ધર્મનો આધાર તથા નિમિત્ત ત્યારે જાની શકે

ટિ. ૧-પાંચ સમિતિ ઓર ત્રીન ગુપ્તિ મિલકર આઠ પ્રવચનમાતા હૈ ।

ચાતીતપ્રત્યુત્પન્નપ્રાયશ્ચિત્તવિશુદ્ધ્યાદિભિઃ પ્રાણી સુખી ભવતિ, ઉક્તશ્ચાત્ર—

“કાઠસગ્ગેણ ભત્તે ! જીવે કિં જણયઈ ? કાઠસગ્ગેણ તીયપહુપ્પન્ન-પાયચ્છિત્ત વસોહેઈ, વિસુદ્ધપાયચ્છિત્તે ય જીવે નિવ્વુયહિયે ઓહરિયમરુવ્વ-ભારવહે પસત્થજ્ઞાણોવગે સુહસુહેણ વિહરઈ” ।

इत्यतोऽस्य पञ्चमाध्ययनस्य ‘कायोत्सर्ग’ इति नाम ।

इसके पश्चात् कायिक शुद्धि करना आवश्यक है । काय धर्म का आधार और निमित्त तब ही बन सकता है जब उसमें आत्मीयता-ममता न रहे । शरीर में ममता न होने को ही कायोत्सर्ग कहते हैं । यह कायोत्सर्ग धर्मसाधक होने से कायिकशुद्धिरूप है । अतएव कायिकशुद्धि करने के लिये कायोत्सर्ग नामक पाँचवाँ अध्ययन कहा गया है । इससे अतीत अनागत तथा वर्तमान -कालीन प्रायश्चित्त की विशुद्धि आदि होती है और इससे आत्मा सुखी होती है ।

कहा भी है—“કાઠસસગ્ગેણ ભત્તે ! જીવે કિં જણયઈ ? કાઠસસગ્ગેણ તીયપહુપ્પન્નપાયચ્છિત્ત વસોહેઈ, વિસુદ્ધપાયચ્છિત્તે ય જીવે નિવ્વુયહિયે ઓહરિયમરુવ્વભારવહે પસત્થજ્ઞાણોવગે સુહસુહેણ વિહરઈ । ”

हे भगवन् ! काठस्सग (कायोत्सर्ग) करने से किस फलकी प्राप्ति होती है ! हे गौतम ! कायोत्सर्ग से अतीत अनागत और

છે કે —જ્યારે કાયામા આત્મીયતા-મમતા ન રહે, એટલે કે શરીરમા મમતા-રહિતપણુ તેનેજ કાયોત્સર્ગ કહે છે તે કાયોત્સર્ગ ધર્મસાધક હોવાથી તે કાયિક શુદ્ધિરૂપ છે એટલા માટે કાયિક શુદ્ધિ કરવા અર્થે કાયોત્સર્ગ નામનું પાઠ્યમુ અધ્યયન કહ્યું છે તેથી અતીત અનાગત અને વર્તમાન કાલની પ્રાયશ્ચિત્તવિશુદ્ધિ વગેરે થાય છે, અને તેથી આત્મા સુખી થાય છે

હું પણ છે કે — “કાઠસસગ્ગેણ ભત્તે ! જીવે કિં જણયઈ ? કાઠસસગ્ગેણ તીયપહુપ્પન્નપાયચ્છિત્ત વસોહેઈ, વિસુદ્ધપાયચ્છિત્તે ય જીવે નિવ્વુયહિયે ઓહરિયમરુવ્વભારવહે પસત્થજ્ઞાણોવગે સુહસુહેણ વિહરઈ । ”

હે ભગવાન્ ! કાઠસગ (કાયોત્સર્ગ) કરવાથી કયા ફળની પ્રાપ્તિ થાય છે ? હે ગૌતમ ! કાયોત્સર્ગથી અતીત અનાગત અને વર્તમાનમા લાગેલા અતિચારોની

પ્રત્યાખ્યાનમ્ (૬)

પ્રત્યાખ્યાન નામ ઇચ્છાનિરોધઃ । સર્વાઃ ક્રિયાઃ સ્વીકૃતાશ્ચેત્તર્હિ ઇચ્છા-
નિરોધોઽપ્યવશ્ય કરણીયઃ । સુવર્ણાદિભૂષણાનામુજ્જ્વલીકરણક્રિયેવ પ્રત્યાખ્યાન
મિદ વિશિષ્ટાત્મશક્તેરાવિષ્કરણાય પ્રભવતિ, અતો યથાશક્તિ પ્રત્યાખ્યાન
કરણીયમેવ, આસ્રવદ્વારનિરોધાદિવિશિષ્ટફલપ્રતિપાદકમ્, ઉક્તઞ્ચ—

પચ્ચક્ષાણેણ મતે ! જીવે કિં જળયઈ ? પચ્ચક્ષાણેણ આસ્રવદારાઈ
નિરુમ્મઈ, પચ્ચક્ષાણેણ ઇચ્છાનિરોદ્ધ જળયઈ, ઇચ્છાનિરોદ્ધગ્ણ જીવે સન્નિવલ્લેસુ
વર્તમાન મે લગે હુણ અતિચારોં કી શુદ્ધિ હોતી હૈ ઓર હૃદય
વિશુદ્ધ હોતા હૈ, હૃદય વિશુદ્ધ હોને સે આત્મા કર્મભાર સે હલકા
હોકર પ્રશસ્તધ્યાનયુક્ત વનતા હૈ, ઓર સમાધિભાવમે વિચરણ
કરતા હૈ ।

પ્રત્યાખ્યાન (૬)

પ્રત્યાખ્યાન ઇચ્છા કે નિરોધ કો કહતે હૈં । જબ પૂર્વોક્ત સમી
ક્તિયાઈ સ્વીકાર કરલીં તો ઇચ્છા કા મી નિરોધ અવશ્ય કરના ચાહિયે ।
જૈસે સફાઈ કરને સે સોનેકે આભૂષણ કી ઉજ્જ્વલતા વઢતી હૈ, વૈસે
હી પ્રત્યાખ્યાન સે આત્મા મેં વિશિષ્ટ શક્તિ કા પ્રાદુર્ભાવ હોતા હૈ ।
અતઃ આશ્રવ દ્વાર કે નિરોધ આદિ વિશિષ્ટ ફલકો દેને વાલા
પ્રત્યાખ્યાન કરના હી ચાહિયે । કહા મી હૈ—“પચ્ચક્ષાણેણ મતે !
જીવે કિં જળયઈ ? પચ્ચક્ષાણેણ આસ્રવદારાઈ નિરુમ્મઈ, પચ્ચક્ષાણેણ

શુદ્ધિ થાય છે અને હૃદય વિશુદ્ધ બને છે હૃદય વિશુદ્ધ થવાથી આત્મા કર્મભારથી
હલકો થઈ પ્રશસ્તધ્યાની બને છે અને સમાધિભાવમા વિચરણ કરે છે

પ્રત્યાખ્યાન (૬)

ધૃષ્ટિાનેા નિરોધ કરવો તેને પ્રત્યાખ્યાન કહે છે, જ્યારે પૂર્વ કહેલી
તમામ ક્રિયાઓનેા સ્વીકાર કરી લીધો તો પછી ધૃષ્ટિાનેા નિરોધ પણ અવશ્ય
કરવો જોઈએ જેવી રીતે સફાઈ કરવાથી સોનાના આભૂષણોની ઉજ્જ્વલતા વધે છે, તેવીજ
રીતે પ્રત્યાખ્યાનથી આત્મામા વિશિષ્ટ શક્તિ ઉત્પન્ન થાય છે એટલા માટે આસ્રવ-
દ્વારના નિરોધ આદિ વિશિષ્ટ ફલને આપવાવાળા પ્રત્યાખ્યાન પ્રતને કરવું જ
જોઈએ કહ્યું છે કે — “પચ્ચક્ષાણેણ મતે ! જીવે કિં જળયઈ ? પચ્ચક્ષાણેણ

વિણીયતળ્હે સીઝભૂણ વિહરડ ।”

इति पटुमावश्यक प्रत्याख्यानस्य समुपन्यस्तम् ।

एतद्धि पटुध्ययनात्मकमावश्यक (प्रतिक्रमण) सर्वेषामुभयकाल करणीय-
मेव । तत्रापि साग्रनामनिवार्यतया कर्त्तव्यमेतत् । यथाऽतिस्वच्छवस्त्रेषु कालि-
मापातशङ्का, रनिना च लुण्ठाकाद्यातङ्को विशेषरूपेण जञ्जन्यते तथैव, शुद्धचारित्र-

इच्छानિरोह जणયડ, इच्छानિरोहगए ण जीवे सच्चदब्बेसु विणीयतण्हे
सीडभूए विहरड ।”

हे भદન્ત ! પચ્ચક્ષણ (પ્રત્યાખ્યાન) કરને સે કિસ ફલ કી પ્રાપ્તિ હોતી હૈ । હે ગૌતમ ! પ્રત્યાખ્યાન કરને સે આત્મવદ્ધાર રુક જાતે હૈં ઓર ઇચ્છા કા નિરોધ હોતા હૈ, ઇચ્છા કે નિરોધ સે આહારાદિ મેં તૃષ્ણા રુક જાતી હૈ, ઓર તૃષ્ણાવરોધ સે આત્મા બાહ્ય તથા આભ્યન્તરિક સન્તાપ સે રહિત હોતી હૈ ।

यह प्रत्याख्यान नामक छट्ठा आवश्यक हुआ ।

યે ઝઠોં આવશ્યક યદ્યપિ સમી કો ઉભય કાલ કરના ચાહિય, તો મી સાધુઓં કે લિયે ઉભય કાલ કરના અનિવાર્ય હૈ । જૈસે અત્યન્ત સ્વચ્છ કપડે પર ધબ્બા લગને કી આશકા રહતી હૈ યા ધનવાનોં કો લુટેરોં કા હર વિશેષ રૂપ સે રહતા હૈ, ડસી પ્રકાર

આસવદારા નિરુમડ, પચ્ચક્ષણેણ ઇચ્છાનિરોહ જણયડ, ઇચ્છાનિરોહગए ण
जीवे सच्चदब्बेसु वीणीयतण्हे सीडभूए विहरड. ”

હે ભદન્ત ! પચ્ચક્ષણ (પ્રત્યાખ્યાન) કરવાથી કયા ફલની પ્રાપ્તિ થાય છે ?
હે ગૌતમ ! પ્રત્યાખ્યાન કરવાથી આસવદ્ધાર રોકાઈ જાય છે અને ઇચ્છાનિરોધ
થાય છે, ઇચ્છાનિરોધથી આહારાદિમા તૃષ્ણા રોકાઈ જાય છે તેમજ તૃષ્ણાવરોધથી
આત્મા બાહ્ય આભ્યન્તરિક સન્તાપથી રહિત થઈ જાય છે

આ પ્રત્યાખ્યાન નામનું છટું આવશ્યક પૂર્ણ થયું

આ છ આવશ્યક જો કે સર્વને ઉભય કાળ કરવા જોઈએ, તો પણ સાધુઓ
માટે તો જાનને કાળ કરવું અનિવાર્ય છે જેમ કે સ્વચ્છ કપડા ઉપર કાંઈ લાગવાની
શકા રહે છે અથવા તો ધનવાનને લુટારાનો ભય વિશેષ રહે છે તેવી રીતે શુદ્ધ-ચારિત્ર
ધારી જ્ઞાન આદિ ગુણોથી વિભૂષિત સાધુઓને પાપનો ભય બહુજ રહે છે એ માટે

પ્રત્યાખ્યાનમ્ (૬)

પ્રત્યાખ્યાન નામ ઇચ્છાનિરોધઃ । સર્વાઃ ક્રિયાઃ સ્વીકૃતાશ્ચેતર્ઙ્ગે ઇચ્છા-
નિરોધોઽપ્યવશ્ય કરણીયઃ । સુવર્ણાદિભૂષણાનામુજ્જ્વલીકરણક્રિયેવ પ્રત્યાખ્યાન-
મિદ વિશિષ્ટાત્મશક્તેરાવિષ્કરણાય પ્રભવતિ, અતો યથાશક્તિ પ્રત્યાખ્યાન
કરણીયમેવ, આસ્રવદ્વારનિરોધાદિવિશિષ્ટફલપ્રતિપાદકમ્, ઉક્તશ્ચ—

પચ્ચક્ષાણેણ ભત્તે ! જીવે કિં જળયઈ ? પચ્ચક્ષાણેણ આસ્રવદારાઈ
નિરુભઈ, પચ્ચક્ષાણેણ ઇચ્છાનિરોહ જળયઈ, ઇચ્છાનિરોહગ્ણ ણ જીવે સન્નદન્વેસુ
વર્તમાન મે લગે હુણ અતિચારોં કી શુદ્ધિ હોતી હૈ ઓર હૃદય
વિશુદ્ધ હોતા હૈ, હૃદય વિશુદ્ધ હોને સે આત્મા કર્મભાર સે હલકા
હોકર પ્રશસ્તધ્યાનયુક્ત વનતા હૈ, ઓર સમાધિભાવમેં વિચરણ
કરતા હૈ ।

પ્રત્યાખ્યાન (૬)

પ્રત્યાખ્યાન ઇચ્છા કે નિરોધ કો કહતે હૈં । જબ પૂર્વોક્ત સર્ભી
ક્રિયાઈ સ્વીકાર કરલી તો ઇચ્છા કા ભી નિરોધ અવશ્ય કરના ચાહિણ ।
જૈસે સફાઈ કરને સે સોનેકે આભૂષણ કી હજ્જ્વલતા વઢતી હૈ, વૈસે
હી પ્રત્યાખ્યાન સે આત્મા મે વિશિષ્ટ શક્તિ કા પ્રાદુર્ભાવ હોતા હૈ ।
અતઃ આસ્રવ દ્વાર કે નિરોધ આદિ વિશિષ્ટ ફલકો દેને વાલા
પ્રત્યાખ્યાન કરના હી ચાહિણ । કહા ભી હૈ—“પચ્ચક્ષાણેણ ભત્તે !
જીવે કિં જળયઈ ? પચ્ચક્ષાણેણ આસ્રવદારાઈ નિરુભઈ, પચ્ચક્ષાણેણ

શુદ્ધિ થાય છે અને હૃદય વિશુદ્ધ બને છે હૃદય વિશુદ્ધ થવાથી આત્મા કર્મભારથી
હલકો થઈ પ્રશસ્તધ્યાની બને છે અને સમાધિભાવમાં વિચરણ કરે છે

પ્રત્યાખ્યાન (૬)

ઇચ્છાનો નિરોધ કરવો તેને પ્રત્યાખ્યાન કહે છે, જ્યારે પૂર્વ કહેલી
તમામ ક્રિયાઓનો સ્વીકાર કરી લીધો તો પછી ઇચ્છાનો નિરોધ પણ અવશ્ય
કરવો ભેદથી તેવી રીતે સફાઈ કરવાથી સોનાના આભૂષણોની હજ્જ્વલતા વધે છે, તેવીજ
રીતે પ્રત્યાખ્યાનથી આત્મામાં વિશિષ્ટ શક્તિ ઉત્પન્ન થાય છે એટલા માટે આસ્રવ-
દ્વારના નિરોધ આદિ વિશિષ્ટ ફલને આપવાવાળા પ્રત્યાખ્યાન પ્રતને કરવું જ
ભેદથી કહ્યું છે કે — “પચ્ચક્ષાણેણ ભત્તે ! જીવે કિં જળયઈ ? પચ્ચક્ષાણેણ

तदानीं धर्ममन्तरेण नान्यः कोऽपि तस्य शरणीभूय तदार्त्तिं दूरयितुं प्रभवति ।
तस्मिन् क्षणे स पूर्वकृतातिचारादीनि स्मार स्मार बहुधा पश्चात्ताप विधत्ते ।

अङ्कुरतामापादितः कालान्तरेण दृढमूलश्च पापवृक्षः पश्चाद्दुरुत्पाटनीयो
भवति, अतः पूर्वं बीजमेव न वपनीयमिति प्रथमा बुद्धिमत्ता ।

यदि कथञ्चिदुत्तमपि भवेत् तर्हि तत्क्षण एव तन्मूलोन्मूलनाय प्रयत्न-
नीयमिति द्वितीया ।

एवमपि नो चेत्तर्हि पश्चात्तापादिना तच्छैथिल्यं त्ववश्यं विधेयम्, येन
प्रवृद्धोऽपि दुःखफलकः पापवृक्षो निस्सारत्वेन कालान्तरे दुःखलक्षणकटुफलं जन-

हुआ समस्त ससार में शरण खोजता है तब धर्म के सिवा और
कोई भी शरण नहीं होता, न कोई उसकी चिल्लाहट मिटा
सकता है । उस समय वह पहले किए हुए अतिचार आदि का
स्मरण कर-करके अत्यन्त पश्चात्ताप करता है ।

अङ्कुरित हुआ तथा कुछ कालमें दृढ जड़वाला होकर वह
पापवृक्ष फिर बड़े कष्टसे उखाड़ने योग्य होता है, इसलिए बीज न
होना पहली श्रेणी की बुद्धिमत्ता है । यदि असावधानी से बोया
गया हो तो तत्काल समूल उखाड़ने के लिए प्रयत्न करना दूसरे
दर्जे की बुद्धिमत्ता है । यदि यह भी न हो सके तो पश्चात्ताप
आदि करके उसे शिथिल तो अवश्य कर देना चाहिए, जिससे
कि दुःखरूप फल देनेवाला पापवृक्ष निस्सार होजाने के कारण

રમા શરણુને શોધે છે ત્યારે ધર્મ વિના બીજુ ડોઈ શરણુ નથી થતુ તેમજ તેના
ભયને ધર્મ વિના ડોઈ મટાડી શકતુ નથી તે સમયે તેણે પ્રથમ કરેલા અતિચારો
આદિનુ ંમરણુ કરી કરીને અત્યન્ત પશ્ચાત્તાપ કરે છે

અ કુરિત થયેલ તથા થોડા સમયમા દૃઢમૂળવાળુ બનીને તે પાપવૃક્ષ
ફરીને મોટા કષ્ટથી ઉખડી શકે તેવુ થઈ જાય છે એટલા માટે પ્રથમ બીજરૂપે
થવા ન દેવું તે પહેલી શ્રેણીની બુદ્ધિમત્તા છે જે અસાવધાનતાથી બીજ વાવી દેવામા
આવ્યુ હોય તો તત્કાલ મૂલસહિત ઉખેડી નાખવાનો યત્ન કરવો તે બીજુ શ્રેણીની
બુદ્ધિમત્તા છે એ પ્રમાણે ન બની શકે તો પશ્ચાત્તાપ આદિ કરીને તે પાપને શિથિલ
તો અવશ્ય કરવું જ નોંધએ કે જેથી કરીને દુ ખરૂપ રલ આપનાવાળુ પાપવૃક્ષ

ધારિણા જ્ઞાનાદિગુણગણશાલિના સાધુના સાતિશય પાપમય જાયતે, અતસ્તદ્રક્ષણો પાયભૂતે કર્મણિ તેપામયધાનદાનમાવશ્યકમિત્યત્ર તેપા પ્રતિક્રમણવિધિરુપદર્શિતઃ, અતોઽસ્ય 'સાધુપ્રતિક્રમણ, - સા-આવશ્યક' એતિ નામત્રેય જાતમિતિ ॥

અસ્ય હેતુમર્થે ચ સમ્યગવગમ્ય સ્વસ્વપાપાના સક્ષયાય શૈથિલ્યાપાદનાય ચ સર્વેરેવ ભવ્યભાવનશીલૈર્ભવ્યૈઃ પ્રયતનીય, યતો વીતરાગપ્રણીતતયા સર્વપ્રાણિના તત્પાલન શ્વોવસીયસાધાયકમિતિ ।

इह खलु निखिले जगतीतले जीवो यदाऽधिकाऽधिकाऽऽधिव्याधि वाधाविकलान्तःकरणः 'त्रायस्व त्रायस्वे' -ति समाक्रोशन् शरणं गवेपयति,

શુદ્ધ-ચારિત્રધારી, જ્ઞાન આદિ ગુણોં સે વિભૂષિત સાધુઓં કો પાપોં કાં વહુત ડર રહતા હૈ । અતઃ ઉન્હેં રોકને કી ક્રિયા મેં સાધુઓં કો સાવધાન રહના વહુત આવશ્યક હૈ । પ્રસ્તુત સૂત્ર મેં સાધુઓં કો પ્રતિક્રમણ કી વિધિ બતાઈ ગઈ હૈ, ઇસલિએ ઇસકા નામ 'સાધુ-પ્રતિક્રમણ' ઓર 'સાધુ-આવશ્યક' હૈ ।

આવશ્યક કા હેતુ ઓર અર્થ સમ્યક્ રીતિસે જાનકર અપને-અપને પાપોં કા ક્ષય કરને અથવા શિથિલ કરને કે લિએ સર્ભો ભવ્યપ્રાણિયોં કો પ્રયત્ન કરના ચાહિએ, ક્યોં કિ યહ પ્રતિક્રમણ વીતરાગ પ્રણીત હોને સે સર્વ પ્રાણિયોં કો ઇસ પ્રતિક્રમણ કરને રૂપ વીતરાગ કી આજ્ઞા કા પાલન કરના કલ્યાણ કા સાધક હૈ ।

જીવ આધિવ્યાધિ આદિ વાધાઓં સે અત્યન્ત વ્યાકુલ હૃદય હોકર જબ “બચાઓ, બચાઓ, રક્ષા કરો” ઇસ પ્રકાર ચિલ્લાતા

પાપોને શેકવાની કિયામા સાધુઓએ સાવધાન રહેવું ધણુજ જરૂરી છે પ્રસ્તુત સૂત્રમા સાધુઓના પ્રતિક્રમણની વિધિ બતાવી છે એટલા માટે તેનું નામ “સાધુ પ્રતિક્રમણ” અને “સાધુ-આવશ્યક” છે

આવશ્યકનો હેતુ અને અર્થ સમ્યક્ રીતે જાણી કરીને પોતાના પાપનો ક્ષય કરવા અથવા શિથિલ કરવા માટે સૌ ભવ્ય પ્રાણીઓએ પ્રયત્ન કરવો જોઈએ, કારણ કે આ પ્રતિક્રમણ વીતરાગપ્રણીત હોવાથી સર્વ પ્રાણીઓએ આ પ્રતિક્રમણ રૂપ વીતરાગની આજ્ઞાનું પાલન કરવું તે કલ્યાણનું સાધક છે

જીવ આધિ-વ્યાધિ આદિ બધી પીડાઓથી અત્યન્ત-વ્યાકુલ-હૃદય થઇને બચાવો ! બચાવો ! રક્ષા કરો !” એ પ્રમાણે ભય પામતો થકો સમસ્ત સસા

તદાનીં ધર્મમન્તરેણ નાન્યઃ કોઽપિ તસ્ય શરણીભૂય તદાત્તિ દૂરયિતું પ્રભવતિ ।
તસ્મિન્નશ્વ ક્ષણે સ પૂર્વકૃતાતિચારાદીનિ સ્માર સ્માર વહુધા પશ્ચાત્તાપ વિધત્તે ।

અકુરતામાપાદિતઃ કાલાન્તરેણ દૃઢમૂલશ્ચ પાપવૃક્ષઃ પશ્ચાદ્દુરુત્પાટનીયો
ભવતિ, અતઃ પૂર્વે વીજમેવ ન વપનીયમિતિ પ્રથમા બુદ્ધિમત્તા ।

યદિ કથશ્ચિદુત્તમપિ ભવેત્ તર્હિ તત્ક્ષણ એવ તન્મૂલોન્મૂલનાય પ્રયત-
નીયમિતિ દ્વિતીયા ।

એવમપિ નો ચેત્તર્હિ પશ્ચાત્તાપાદિના તચ્છૈથિલ્ય ત્વચ્ચ વિધેયમ્, યેન
પ્રવૃદ્ધોઽપિ દુઃસ્વફલકઃ પાપવૃક્ષો નિસ્સારત્વેન કાલાન્તરે દુઃસ્વલક્ષણકટુફલં જન-

હુઆ સમસ્ત સસાર મેં શરણ સ્વોજતા હૈ તવ ધર્મ કે સિવા ઓર
કોઈ મી શરણ નહી હોતા, ન કોઈ ડસકી ચિલ્લાહટ મિટા
સકતા હૈ । ડસ સમય વહ પહેલે કિણ હુણ અતિચાર આદિ કા
સ્મરણ કર-કરકે અત્યન્ત પશ્ચાત્તાપ કરતા હૈ ।

અકુરિત હુઆ તથા કુઝ કાલમેં દૃઢ જડવાલા હોકર વહ
પાપવૃક્ષ ફિર વડે કપ્ટસે ડસ્વાડને યોગ્ય હોતા હૈ, ડસલિણ વીજ ન
હોના પહેલી શ્રેણી કી બુદ્ધિમત્તા હૈ । યદિ અસાવધાની સે વોયા
ગયા હો તો તત્કાલ સમૂલ ડસ્વાડને કે લિણ પ્રયત્ન કરના દૂસરે
દર્જે કી બુદ્ધિમત્તા હૈ । યદિ યહ મી ન હો સકે તો પશ્ચાત્તાપ
આદિ કરકે ડસે શિથિલ તો અવશ્ય કર દેના ચાહિણ, જિસસે
કિ દુઃસ્વરૂપ ફલ દેનેવાલા પાપવૃક્ષ નિસ્સાર હોજાને કે કારણ

રમા શરણુને શોધે છે ત્યારે ધર્મ વિના ખીણુ કોઈ શરણુ નથી થતુ તેમજ તેના
ભયને ધર્મ વિના કોઈ મટાડી શકતુ નથી તે સમયે તેણે પ્રથમ ડરેલા અતિચારો
આદિનું સ્મરણ કરી કરીને અત્યન્ત પશ્ચાત્તાપ કરે છે

અકુન્તિ થયેલ તથા થોડા સમયમા દૃઢમૂળવાળુ ળનીને તે પાપવૃક્ષ
ફરીને મોટા કપ્ટથી ઉખડી શકે તેવુ થઈ જાય છે એટલા માટે પ્રથમ ખીજરૂપે
થવા ન દેવું તે પહેલી શ્રેણીની બુદ્ધિમત્તા છે જે અસાવધાનતાથી ખીજ વાવી દેવામા
આવ્યુ હોય તો તત્કાલ મૂલસહિત ઉખેડી નાખવાનો યત્ન કરવો તે ખીણુ શ્રેણીની
બુદ્ધિમત્તા છે એ પ્રમાણે ન ળની રાકે તો પશ્ચાત્તાપ આદિ કરીને તે પાપને શિથિલ
તો અવશ્ય કરવું જ જોઈએ કે જેથી કરીને દુઃખરૂપ ફલ આપવાવાળુ પાપવૃક્ષ

યિતુ ન પ્રભવેત્ પ્રત્યુત સમૂલ શીર્યેત । એવ ચાઽઽત્મનો નિસ્સહાયઽવસ્થા માભૂદિત્યેતદર્થ પ્રતિક્રમણમેવ શરણીકુર્વાણૈઃ ક્રિયાઽવરણપરાયણાન્ત'કરણૈરવશ્ય ભવિતવ્ય ભવ્યૈઃ, યેન ऐहिकाऽऽमुष्मिन्सुखान्यनुभवितुमर्हताऽधिगम्येत ।

પ્રતિક્રમણાઽપરપર્યાયમિદમાવશ્યકમવશ્યમનુષ્ઠેય નિજવ્રતમલ્ખણીકર્તૃકા મેન સાધુના । અનુષ્ઠાન ચેદમિતિકર્ત્તવ્યતાપરિજ્ઞાનમન્તરેણાઽસમ્ભવિ, તત્ત્વ (ઇતિકર્ત્તવ્યતાપરિજ્ઞાન) ગૂઢાર્થકાના સૂત્રાણા સરલવ્યાખ્યયૈવ સમ્ભવતિ સુકુમારમતીનામિદાનીન્તનજનાનામ્ ।

દુઃખરૂપી કઢુવા ફલ દેને મેં સમર્થ ન હો સકે, થલ્કિ શિથિલ હોતા જાય ।

આત્મા નિસ્સહાય ન હો ફસલિયે પ્રતિક્રમણ કી શરણ મેં જાનેવાલે ભવ્યો કો અન્તઃકરણસે ક્રિયા કરને મેં પરાયણ અવશ્ય હોના ચાહિયે, જિસ સે ઇસ લોક ઓર પરલોક-સમ્બન્ધી સુખોં કી પ્રાપ્તિ હો સકે ।

યદ પ્રતિક્રમણ, દૂસરા નામ આવશ્યક અપને વ્રતોં કો અલ્ખણિત રાખને વાલે સાધુ કો અવશ્ય કરના ચાહિયે । યદ અનુષ્ઠાન કર્ત્તવ્યજ્ઞાન કે વિના નહીં હો સકતા । આજકલકે અલ્પ-બુદ્ધિવાલોં કો કર્ત્તવ્યજ્ઞાન તવ હી હો સકતા હૈ, જબ ગૂઢ અર્થવાલે સૂત્રોં કી સરલ વ્યાખ્યા કર દી જાય ।

નિસ્સાર થઈ જાય, જેથી હુ ખ રૂપી કડવા ફળ આપવા સમર્થ થઈ શકે નહિ અને શિથિલ થઈ જાય

આત્મા નિ સહાય ન થઈ જાય એટલા માટે પ્રતિક્રમણના શરણુમા જવા વાળા ભવ્ય જીવોએ ક્રિયા કરવામા પરાયણ અત કરણુવાળા અવશ્ય થવુ જોઈએ, જેથી આ લોક અને પરલોક સબધી સુખોની પ્રાપ્તિ થઈ શકે

આ પ્રતિક્રમણ કે જેનું નામ આવશ્યક છે તેને પોતાના વ્રત રૂપ ગણીને અપ્રહિત વ્રત ધારણ કરવાવાળા સાધુઓએ અવશ્ય કરવુ જોઈએ

આ અનુષ્ઠાન કર્ત્તવ્યજ્ઞાન વિના થઈ શકતુ નથી આજકાલના અલ્પબુદ્ધિ વાળાઓને કર્ત્તવ્યજ્ઞાન ત્યારેજ થાય છે કે જ્યારે ગૂઢ અર્થવાળા સૂત્રોની સરલ વ્યાખ્યા કરી આપવામા આવે

यद्यप्यस्य प्रतिक्रमणस्य भूयस्यो व्याख्या लोचनगोचरतामश्नन्ति, किन्तु सूक्ष्मेक्षिकया निसमीक्षितासु तासु नैकाऽपि सरला मन्दमतिबोधजनिका च व्याख्या समुपलभ्यते, अतः कोमलबुद्धीनामनायासेन झटित्यर्थाऽवबोधसंजननाय मया सूत्राऽऽशयाऽनुसन्धानपुरस्सर 'मुनितोपणी'-नामवेया टीकेय विरचिता । एतस्या प्रायो विषयास्तु प्रमाणीभूतेभ्यः शास्त्रेभ्यः संगृहीता एव, नह्यसंगृह्य विषयान् अत्रत्वे प्राचीनाना महर्षीणामभिप्राय प्रकटीकर्तुं पटिष्ठः कोऽपि भूमिष्ठ उप-

यद्यपि प्रतिक्रमण की बहुतेरी टीकाएँ (व्याख्याएँ) दृष्टि-गोचर होती हैं, किन्तु उनमें मन्दमतिवाले भव्यों को बोध करानेवाली सरल व्याख्या कोई नहीं है, इसलिए कोमल बुद्धिवालों को बिना विशेष परिश्रम के शीघ्र अर्थ-ज्ञान कराने के लिए मैंने सूत्रों का आशय ध्यानमें रखकर इस आवश्यक सूत्र की मुनितोपणी नामकी टीका बनाई है, इस टीकामें विषयो का संग्रह प्रामाणिक शास्त्रों से किया गया है, क्योंकि बिना विषयों के संग्रह किये प्राचीन महर्षियोंका अभिप्राय प्रकट करने में आजकलके विद्वान्

જો કે પ્રતિક્રમણની ઘણીજ ટીકાઓ (વ્યાખ્યાઓ) જોવામાં આવે છે પરંતુ તે સર્વ ટીકાઓમાં મદ મતિવાળા લબ્ધ હોવાને બોધ થઇ શકે તેવી સરલ વ્યાખ્યા કોઈ જોવામાં આવતી નથી એવો મનમાં વિચાર કરીને કોમલબુદ્ધિવાળાઓને વિના વિશેષ પરિશ્રમે શીઘ્ર અર્થજ્ઞાન કરાવવા મેં સૂત્રોના આશયને ધ્યાનમાં રાખીને આ આવશ્યક સૂત્રની મુનિતોપણી નામની ટીકા બનાવી છે

આ ટીકામાં વિષયોને સંગ્રહ પ્રામાણિક શાસ્ત્રોમાંથી કરવામાં આવ્યો છે, કારણ કે વિષયોને સંગ્રહ કર્યા વિના પ્રાચીન મહર્ષિઓના અભિપ્રાયો

યિતુ ન પ્રભવેત્ પ્રત્યુત સમૂલ શીર્યેત । એવ ચાઽઽત્મનો નિસ્સહાયઽવસ્યા
માભૂદિત્યેતદર્થે પ્રતિક્રમણમેવ શરણીકુર્વાણૈઃ ક્રિયાઽઽચરણપરાયણાન્ત કર્ણૈરવશ્ય
ભવિતવ્ય ભવ્યૈઃ, યેન એહિકાઽઽમુષ્મિકસુખાન્યનુભવિતુમર્હતાઽધિગમ્યેત ।

પ્રતિક્રમણાઽપરપર્યાયમિદમાશ્યકમવશ્યમનુષ્ઠેય નિજવ્રતમલ્ખણ્ડીકર્તુકા
મેન સાધુના । અનુષ્ઠાન ચેદમિતિકર્ત્તવ્યતાપરિજ્ઞાનમન્તરેણાઽસમ્ભવિ,
તચ્ચ (ઇતિકર્ત્તવ્યતાપરિજ્ઞાન) ગૂઢાર્થકાના સૂત્રાણા સરલવ્યાખ્યયૈવ સમ્ભવતિ
સુકુમારમતીનામિદાનીન્તનજનાનામ્ ।

દુઃલ્પરૂપી કહુવા ફલ દેને મેં સમર્થ ન હો સ્કે, થલ્કિ શિથિલ
હોતા જાય ।

આત્મા નિસ્સહાય ન હો ફસલિયે પ્રતિક્રમણ કી શરણ મેં
જાનેવાલે ભવ્યો કો અન્તઃકરણસે ક્રિયા કરને મેં પરાયણ અવશ્ય
હોના ચાહિયે, જિસ સે ફસ લોક ઓર પરલોક-સમ્બન્ધી સુખોં કી
પ્રાપ્તિ હો સકે ।

યહ પ્રતિક્રમણ, દૂસરા નામ આવશ્યક અપને વ્રતોં કો
અલ્પલ્પિત રલ્ખને વાલે સાધુ કો અવશ્ય કરના ચાહિયે । યહ
અનુષ્ઠાન કર્ત્તવ્યજ્ઞાન કે વિના નહીં હો સકતા । આજકલકે અલ્પ
બુદ્ધિવાલોં કો કર્ત્તવ્યજ્ઞાન તલ્પ હી હો સકતા હૈ, જલ્પ ગૂઢ અર્થવાલે
સૂત્રોં કી સરલ વ્યાખ્યા કર દી જાય ।

નિસ્સાર થઈ જાય, જેથી હુ ખૂં રૂપી કડવા ફળ આપવા સમર્થ થઈ શકે નહિ અને
શિથિલ થઈ જાય

આત્મા નિ સહાય ન થઈ જાય એટલા માટે પ્રતિક્રમણના શરણુમા જવા
વાળા ભવ્ય જીવોએ ક્રિયા કરવામા પરાયણ અત કરણુવાળા અવશ્ય થવુ જોઈએ,
જેથી આ લોક અને પરલોક સળધી સુખોની પ્રાપ્તિ થઈ શકે

આ પ્રતિક્રમણ કે જેનું નામ આવશ્યક છે તેને પોતાના વ્રત રૂપ ગણીને
અખડિત વ્રત ધારણ કરવાવાળા સાધુઓએ અવશ્ય કરવુ જોઈએ

આ અનુષ્ઠાન કર્ત્તવ્યજ્ઞાન વિના થઈ શકતુ નથી આજકાલના અલ્પબુદ્ધિ
વાળાઓને કર્ત્તવ્યજ્ઞાન ત્યારેજ થાય છે કે જ્યારે ગૂઢ અર્થવાળા સૂત્રોની સરલ
વ્યાખ્યા કરી આપવામા આવે

॥ त्रीतरागायनमः ॥



॥ अथाऽऽवश्यकसूत्र सटीकम् ॥

सिरिच्छमाणदेव, जिणणाह कम्मपडलमलरहियं
भीमभवगहणविबभम,—भयत्तमणजीवमग्गणैयार ॥१॥

लद्धिमत्त महातेय, जिणसासणदीवयं ।

चउपणाणसमावन्न नच्चा गणहर वरं ॥२॥

सदत्थसारसजुत्त, घासीलालो मुणी वडं ।

वित्तिमावस्सयस्साह, कुणेमि मुणितोसणिं ॥३॥

कर्ममलसे रहित, ससाररूप भयङ्कर अटवी में परिभ्रमण के भय से व्याकुल भव्य जीवों को मोक्षमार्ग पर लाने वाले जिनेश्वर श्री वर्द्धमान स्वामीको ॥ १ ॥ तथा—जिनशासनके प्रदीपक, चार ज्ञान के धारक, 'आमोसहि' आदि लब्धियों^१ को धारण करने वाले, महा तेजस्वी, सर्वश्रेष्ठ श्री गणवर भगवान को नमस्कार करके ॥ २ ॥ मैं घासीलाल मुनि आवश्यक सूत्र की शब्दार्थसारगर्भित मुनि-तोपणी नामक टीका को करता हूँ ॥३॥

कर्ममल विनाश, ससाररूपी लय कर अटवीमा परिभ्रमण करवाना लयथी व्याकुल भव्य जीवोंने मोक्षमार्गमा लाववावाणा जिनेश्वर श्रीवर्द्धमान स्वामीने (१) तथा जिनशासनना प्रदीपक, चार ज्ञान धारण करवावाणा, "आमोसहि" वगैरे लब्धियोंने^१ धारण करवावाणा, महान तेजस्वी सर्वश्रेष्ठ श्री गणधर भगवानने नमस्कार करीने (२) हु घासीलाल मुनि आवश्यकसूत्रनी शब्दार्थसारगर्भित मुनितोपणी नामनी टीका यथापुद्धिथी करे छु (३)

^१ लब्धि स्पष्ट करने से ही सब प्रकार की व्याधियों का दूर हो जाना, इत्यादि प्रकार की आत्मशक्ति को लब्धि कहते हैं ।

^१ लब्धि=स्पर्श करवा मात्राथीय दरेक प्रकारना शक्ति हर थय लय, आवा प्रकारनी आत्मशक्तिने लब्धि कहे छे

लभ्यते, तथापि यथाशक्ति पर्यालोच्य जैनागमसिद्धान्तानुसारेण कतिपये वि
अत्र स्पष्टीकृत्य प्रदर्शिताः सन्ति ।

समर्थ नहीं हो सकते ! तो भी कितनेक विषय अपनी शक्ति
अनुसार विचार कर जैनसिद्धान्तानुसार स्पष्ट कर के दिखत
गये हैं ।

प्रगट करवाभा आज्ञासना विद्वानो समर्थ थर्छ शकता नथी तो पणु के
विषय पोतानी शक्ति-अनुसार विचार करी जैनसिद्धातानुसार स्पष्ट क
अताव्या छे

‘खुत्तो’=कृत्वा^१ । अथवा ‘तिखुत्तो’ इति पाठमाश्रित्य ‘त्रि कृत्वः’^२ इति सस्कृतम्, तथा च सति आदक्षिणप्रदक्षिणमिति क्रियाविशेषणतया समर्थनीयम् । ‘वदामि’= वन्दे=वाचा स्तौमि रत्नाधिक, ‘नमसामि’=नमस्यामि=प्रणमामि-कायेन नम्रीभवा-मीत्यर्थः । “सकारेमि”=सत्करोमि अभ्युत्थानादिना, “सम्मानेमि”=सम्मान-यामि वस्त्रभक्तादिना, कीदृशम् रत्नाधिकमित्याह-“कल्याण”=कल्याणम्-कल्यो=मोक्षः कर्मजनितसकलोपाधिरहितत्वात् तम् आ=समन्तान्नयति=प्रापयतीति, अथवा कल्येन=ज्ञानदर्शनचारित्र्यलक्षणेनाऽऽरोग्येण आणयति=जीवयति-ससारमोहजाला-नलज्वालामालावलीढान् मृद्धान् प्राणिनः प्रशमयतीति वा कल्याणम् । “मगल”

पूर्वक स्तुति करता हूँ, तीन बार उठ-बैठ पाच अंग श्रुका कर नमस्कार करता हूँ, अभ्युत्थान आदि से सत्कार करता हूँ, वस्त्र भक्त (अन्न) आदि से सम्मान करता हूँ, क्योंकि आप कल्याणस्वरूप हैं, अर्थात् कल्य=मोक्ष को देने वाले, अथवा कल्य=ज्ञानदर्शन चारित्र्यरूप आरोग्य से जन्मजरामरणसताप-सतप्त भव्य जीवों को अपने सदुपदेश-द्वारा शान्ति देने वाले हैं, और मङ्गलम्बरूप हैं, क्योंकि ससार के

नभावीने नमस्कार करे छु अभ्युत्थान विगेरेथी सत्कार करे छु वस्त्र भक्त (अन्न) विगेरेथी सम्मान करे छु कारणके आप कल्याणस्वरूप छे, अर्थात् कल्य=मोक्ष आपवा वाणा अगर कल्य=ज्ञानदर्शन चारित्र्यरूप आरोग्यथी, जन्म, जरा, मृत्युना दु अथी तपेला भव्य जीवोने पोताना सदुपदेशद्वारा शान्ति आपवावाणा छे अने मगल

१ कृत्वे’-त्यस्य ‘खुत्तो’ इत्यार्षत्वात् । न च ‘तिखुत्तो’ इत्यस्य ‘त्रि कृत्व’ इति सस्कृतमिति वाच्यम्, सुजन्तात्कृत्वसुचो दुर्लभत्वात् । ‘तिखुत्तो’ इति पाठेऽपि द्वित्रिचतुर्भ्यः सुचा कृत्वसुचो बाधात्, उत्थितायाः प्रदक्षिणमित्यस्य सकर्मकक्रियाऽऽकाङ्क्षाया दुष्परिहरत्वाच्च । २- आर्षत्वात्कृत्वसुच एव समाधानात् ।

२—‘चिती सज्ञाने’ इति धातोः ‘स्त्रिया क्तिन्’ (पा० ३। ३। ९४) इति भावे क्तिन् ।

३—वर्णद्वयादित्वाद्वाह्यणादेराकृतिगणत्वाद्वा स्वार्थे ण्यञ् ‘यस्येति च’ (पा० ६। ४। १४८) इतीकारलोपः, अत्र पक्षे ‘चेइय’ इत्यार्षत्वात् । यद्वा ‘चिञ् चयने’ इत्यस्मादेव प्राग्वत् क्तिनादौ चैत्यमिति । धातूनामनेकार्थत्वा-चोक्तोऽर्थः । दृष्टं हि परिचिनोतीत्यादौ चिञो ज्ञानार्थकत्वम् । उपसर्गाणा धो-तकृत्वमभिप्रेत्य धातूनामेव तत्तदर्थप्रतिपादकत्वसिद्धान्तात् ।

इह पठभ्ययनात्मक श्रमणावश्यकं प्रारंभितं, यस्यादौ पञ्चनमस्कारात्मकं मङ्गलं वक्ष्यमाणेभ्यो हेतुभ्यो नियमेन कर्तव्यमिति तदर्थं गुरोराज्ञां ग्रहीतव्या, सा च वन्दनापूर्विकैरेति प्रथमं गुरुवन्दनोच्यते—

॥ मूलम् ॥

तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं वदामि नमसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाण मगल देवय चेइय पज्जुवासामि मत्थएण वंदामि ॥ सू० १ ॥

॥ उाया ॥

त्रि. कृत्वा आदक्षिणप्रदक्षिणं वन्दे नमस्यामि सत्करोमि सम्मानयामि कल्याण मङ्गलं देवत चैत्यं पर्युपासे मस्तकेन वन्दे ॥ सू० १ ॥

॥ टीका ॥

ति=त्रिः, त्रीन्^१ वारानित्यर्थः । आयाहिणपयाहिण=अञ्जलिपुटं बद्ध्वा तं बद्धाञ्जलिपुटं दक्षिणकर्णमूलत आरभ्य ललाटप्रदेशेन वामकर्णान्तिकेन चक्राकारं त्रि. परिभ्राम्य ललाटप्रदेशे स्थापनरूपम् आदक्षिणप्रदक्षिणम् ।

यहा पर छह अध्ययनवाला श्रमणावश्यक सूत्र प्रारम्भ करना है, जिसके आदि में आगे कहेजाने वाले हेतुओं से पञ्चनमस्काररूप मङ्गल करना जरूरी है, अतएव उसके लिए गुरु महाराजकी आज्ञा लेनी चाहिए, वह आज्ञा वन्दनापूर्वक ही ली जाती है, इसलिए पहले गुरुवन्दना कहते हैं—

‘तिक्खुत्तो’ इत्यादि । हे गुरुमहाराज ! मैं अञ्जलिपुटको तीन बार दाहिने हाथ की ओर से प्रारम्भ करके फिर दाहिने हाथ की ओर तक घुमाकर अपने ललाट प्रदेश पर रखता हुआ प्रदक्षिणा

અહિં છ અધ્યયનવાળા શ્રમણાવશ્યક સૂત્ર પ્રારંભ કરવું છે જેની શરૂઆતમાં આગળ કહેવામાં આવનાર હેતુઓથી પચ-નમસ્કારરૂપ મંગલ કરવું જરૂર છે, તે માટે ગુરુ મહારાજની આજ્ઞા લેવી જોઈએ તે આજ્ઞા વદનાપૂર્વક જ લેવાય છે, તે માટે પ્રથમ ગુરુવદના કહે છે

‘તિક્કુત્તો’ ઇત્યાદિ’ હે ગુરુ મહારાજ ! અજ્જલિપુટને (બે હાથજોડીને) ત્રણ વખત જમણા હાથ તરફથી આરંભીને ફરી જમણા હાથ સુધી ફેરવીને પોતાના લલાટપ્રદેશ ઉપર રાખીને પ્રદક્ષિણાપૂર્વક સ્તુતિ કરે છું ત્રણ વખત ઉઠી બેસી અને પાંચ અંગ

૧—‘દ્વિત્રિચતુર્થ્યઃ સુચ્’ ઇતિ ક્રિયાઽભ્યાસત્તિગણને સુચ્ ।

इमा पट्टिका त्रिरुचार्य त्रिवन्दना च विधाय गुरोः सकाशात्सविनय पडा-
वश्यकाऽऽज्ञा याचेत, तदनु-“इच्छामि ण भते ! तुम्हेहि अब्भणुत्ताए समाणे
देवसिय पडिक्कमण ठाएमि, देवसियनाणदसणचरित्तवअइयारचित्तणट्ठ करेमि
काउस्सग्ग” इति पट्टिका पठित्वा नमस्कारमन्त्रोच्चारणपूर्वकमावश्यक समारम्भ-
णीयमिति नमस्कारमन्त्रमाह—

॥ मूलम् ॥

णमो अरिहताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो
उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूण ॥ सू० २ ॥

॥ छाया ॥

नमः अरिहद्भ्यः, नमः सिद्धेभ्यः, नमः आचार्येभ्यः, नम उपाध्यायेभ्यः,
नमो लोके सर्वसाधुभ्यः ॥ सू० २ ॥

इस (तिक्खुत्तो के) पाठ को तीन बार पढ़कर एव तीन बार
ऊठ बैठ कर पचाग-नमन-पूर्वक वन्दना करके विनयपूर्वक गुरुसे
आवश्यक-प्रतिक्रमण करने की आज्ञा मागे । बादमें ‘इच्छामि ण भते’
का पाठ पढ़कर पहले नमस्कार-मन्त्रोच्चारणपूर्वक आवश्यक का
आरम्भ करना चाहिए, अतएव पहले नमस्कार मन्त्र कहते हैं—

‘नमो अरिहताण’ चार घनघातिक कर्मों का नाश करके
अनन्त केवलज्ञान केवलदर्शन को प्राप्त करने वाले, अरिहन्त को
नमस्कार हो । यहाँ नमः शब्द का अर्थ नमस्कार होता है, वह दो
प्रकार का है—(१) द्रव्यनमस्कार और (२) भावनमस्कार । उनमें

आ तिव्खुत्ता ना पाठने त्रणु वण्णत भएणीने तथा त्रणु वण्णत उठी भेसीने पथाग
नमनपूर्वक वन्दना करीने विनयपूर्वक गुरुदेव पासैथी आवश्यक-प्रतिक्रमण करवानी
आज्ञा भागवी पछी ‘इच्छामि ण भते’ ने पाठ भएणीने प्रथम नमस्कार मन्त्रोच्चारण
पूर्वक आवश्यकने आरभ करवे नेछंअ, अे भाटे प्रथम नमस्कार मन्त्र कडे छे
‘नमो अरिहताण’ चार घन घातिक कर्मेनि नाश करीने अनन्त केवलज्ञान केवलदर्शनने
प्राप्त करवावाणा अरिहन्त भगवानने नमस्कार थाय अडि नमः शब्दने अर्थ

१ प्रह्वीभावार्थकात् नम्रधातोरौणादिकेऽसिप्रत्यये ‘स्वरादिनिपातमव्ययम्’
(१-१-३७) इति पाणिनिवचनेनाव्ययत्वम् ।

म=भयसम्बन्धि बन्धन, तन्नियन्धन दुःखं वा गालयति=नाशयतीति, यद्वा मद्गयते=प्राप्यते स्वर्गो मोक्षो वाऽनेनेति मद्गः=धर्मः, त लाति=गृह्णातीति मद्गलः=श्रुतचारित्रधर्मधारकस्तम् । “देवय” देवतैर देवत धर्मदेवमित्यर्थः । ‘चेइय’ चैत्यम्, चेतन चित्तिः=सम्यग्ज्ञानम्, तदेव चैत्यम् । चैत्यशब्दस्य ज्ञानार्थकत्वमुक्त बोधप्राप्तये कुन्दकुन्दस्वामिनाऽपि—

बुद्ध ज वोहतो, अप्पाणं वेइयाइ अण्ण च ।

पचमहवयसुद्धं, णाणमय जाण चेदिहरं” ॥ इति ।

राजप्रश्रीयसूत्रे मलयगिरिभिरपि—“कल्याण मगल देवय चेइय”

इत्यस्य व्याख्याया—‘कल्याण’—कल्याणकारित्वात्, मगल—दुरितोपशमनकारित्वात्, देवत=देव त्रैलोक्याधिपतित्वात्, चैत्य—सुप्रशस्तमनोहेतुत्वा’—दिति । भागवते तु चैत्यशब्देन न केवल ज्ञानमेव, अपितु पूर्णज्ञानवानात्मा गृहीतोऽस्ति, तथाहि—“अहङ्कारस्ततो रुद्रश्चित्तचैत्यस्ततोऽभवत्” (तृतीय स्कन्धे. पञ्चिंशतितमे अयाये श्लो. ६१) इति, विराटरूपस्य ब्रह्मणो हृदयात् अहङ्कार उत्पन्नस्तस्माद्बुद्धस्तथा चित्तमुत्पन्न, चित्ताच्च चैत्य इत्यर्थः । चैत्यः=क्षेत्रज्ञः, इति तट्टीकाया श्रीधरस्वामी । ‘क्षेत्रज्ञ आत्मा पुरुषः’ इत्यमरः । एवमेवात्रैव स्कन्धेऽध्याये च (श्लो० ७०) प्रोक्तम्—“चित्तेन हृदय चैत्य. क्षेत्रज्ञः प्राविशद्यदा । विराट् तदैव पुरुषः सलिलादुदतिष्ठत” इति तदस्यास्तीति चैत्यस्तं सम्यग्ज्ञानवन्तमित्यर्थः । चैत्यशब्दो नानार्थकः स चेहाऽप्रपञ्चितोऽपि प्रसङ्गादन्यत्र निरूपयिष्यते । ‘पज्जुवासामि’ पर्युपासे=सविधि सेवे । “मत्थएण वदामि” मस्तकेन=मस्तक नमयित्वेत्यर्थः, वन्दे=अभिवादये ॥ सू० १ ॥

दुःखोंका अन्त करनेवाले हैं, अथवा मद्ग-मोक्ष प्राप्ति के साधनभूत श्रुतचारितरूप धर्म को धारण करने वाले, एव धर्मदेवस्वरूप है, और चैत्य अर्थात् ज्ञानवान् हैं, अतएव मनवचन काय से मैं आपकी सेवा तथा शिर झुकाकर वन्दना करता हूँ ॥ सू० १ ॥

स्वइय छे, कारण छे ससारना हु जेने अत लाववावाणा छे अथवा मग=मोक्ष-प्राप्तिना साधनभूत श्रुत-चारित्रइय धर्मने धारण करवावाणा छेटले छे धर्मदेव स्वइय छे, अने चैत्य अर्थात् ज्ञानवाणा छे छेटले मन वचन अने कायायी हु आपनी सेवा अने मस्तक नमावीने वदना छे छु (सू० १)

१ अर्ग आदित्वादय ।

प्रातिहार्यरूपायाः^१ सेवायाः शाश्वतिकनिरतिशयसुखस्य चार्हति=योग्या भवन्तीत्य-
हन्तस्तेभ्यः^२ । अथवा 'अरहद्भ्यः'^३ इतिच्छाया, रागादिनिदानभूतप्रकृष्टविषय-
सम्बन्धेऽपि वीतरागत्वादिरूप भाव न रहन्ति=न त्यजन्तीन्यरहन्तस्तेभ्य इत्यर्थः ।
'अरुहताण' इति पाठे 'अरोहद्भ्यः'^४ इतिच्छाया, इह पक्षे प्रक्षीणनिखिलकर्मबीजतया
कदाऽप्यनुत्पद्यमानेभ्य इत्यर्थः, यदुक्तमौपपातिकमूत्रे—“वीयाण* अग्निदग्धाण,
पुनरपि अकुरुप्पत्ती ण भवइ, एवामेव सिद्धाण कम्मवीए दग्घे पुनरपि जम्मुप्पत्ती
न भवइ” इति । भगवन्तोऽहन्तोऽपि हि क्षित्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रिसकायषट्क

भव्यो को निर्भय मार्ग बताकर शिवपुरी में पहुचाने वाले, अथवा
भव्यजनों से किये जानेवाले गुणवर्णन अभिवादन आदि के तथा
इन्द्रादिक देवताओं से किये हुए अष्टमहाप्रातिहार्यों से युक्त और
शाश्वतिक निरतिशय सुख को पानेवाले, या (अरहद्भ्यः)=रागादिके
कारणभूत प्रकृष्ट विषयों का सम्बन्ध रहते हुए भी वीतरागत्वरूप
अपने स्वभाव को कभी नहीं छोड़ने वाले, अथवा (अरोहद्भ्यः)
कर्मबीज के दग्ध होजाने के कारण फिर से कभी जन्म नहीं लेने
वाले अरिहन्तों को नमस्कार हो ।

युक्त होने शाश्वतिक निरतिशय सुखने भोगवावाणा, अथवा (अरहद्भ्यः) रागादिना
कारणुत्थी उत्कृष्ट विषयेना सम्बन्ध रहता था पण वीतरागत्व रूप पोताना स्वरूपने
छोड़ने नहीं छोड़ना, अथवा अरोहद्भ्यः कर्मबीज गणीयवाना कारणे इरीथी केछ
वधत जन्म नहीं लेवावाणा अरिहन्तोंने नमस्कार हो।

अरिहन्त भगवान स्वयं वटकायनी रक्षा करता करता भीजने 'मा हण मा हण'
आवा प्रकारने उपदेश देवावाणा तथा भयकर अवपर पराधी उत्पन्न थयेले

१ अशोकवृक्ष* सुरपुष्पवृष्टिर्दिव्यध्वनिश्चामरमासन च ।

भामण्डल दुन्दुभिरातपत्र, सत्प्रातिहार्याणि जिनेश्वराणाम् ॥१॥

२ योग्यतार्थकादकर्मकात् 'अर्ह' धातोर्लटः शत्रादेशः ।

३ त्यागार्थक—'रह'—धातोः शत्रन्तस्य नञा समासः ।

४— प्रादुर्भावार्थकस्य रुहधातो शत्रन्तस्य नञा समास आर्षत्वाद्गुणा-
भावश्च । व्याख्यानान्तराणि सभवन्त्यपि क्लृप्त्वादनुपयुक्तत्वाच्चोपेक्षितानि ।

* छाया—बीजानामग्निदग्धाना पुनरप्यङ्कुरोत्पत्तिर्न भवति, एवमेव
सिद्धाना कर्मबीजे दग्धे पुनरपि जन्मोत्पत्तिर्न भवति ।

॥ ટીકા ॥

‘નમો અરિહતાણ, નમોઽરિહદ્યઃ=ધનઘાતિકર્મચતુષ્ટયહન્ત્રભ્યઃ । અત્ર ‘નમઃ’ શબ્દસ્ય દ્રવ્ય (હસ્તપાદાદિપશ્ચાદ્)–માત્ર (માનાદિ)–સદ્કોચાર્થકનિષાતરૂપત્વાન્માનાદિત્યાગપુરસ્સરથુદ્ગમનઃસન્નિવેશપૂર્વકઃ પશ્ચાદ્નમસ્કારોઽસ્તિત્વત્પર્યઃ । નમસ્કાર્યાનાહ–‘અરિહતાણ’^૧ ઇત્યાદિના ।

‘અરિહદ્યઃ’ અરીન્=જ્ઞાનાવરણીય–દર્શનાવરણીય–મોહનીયાઽન્તરાયરૂપાણિ ઘાતિકર્મ્માણિ ઘ્નન્તિ=નાશયન્તીત્યરિહન્તઃ^૨ તેભ્યઃ । ‘અરિહતાણ’ ઇતિ પાઠે ‘અર્હદ્યઃ’ ઇતિચ્છાયા, અત્ર પક્ષે વિકટભયપરમ્પરાઽટવીપર્યટનપરિશ્રાન્તિ નિતાન્તરુદ્ધાન્ત પ્રાણિજાત નિર્ભયમાર્ગપ્રદર્શનેન તદિષ્ટા નિર્વૃત્તિ (મોક્ષ)–પુરિં નેતુ, યદ્વા ભવ્યજનકર્તૃકગુણવર્ણનાઽભિવાદનાદે સુરનિકરસમ્પાદિતાઽશોકાગ્રષ્ટક-

દ્રવ્યનમસ્કાર દો હાથ દો ઘુટને એક શિર, હન પાચ અગોં કો જુકાના । ભાવનમસ્કાર–માન આદિ કા પરિત્યાગ કરના ।

જ્ઞાનાવરણીય દર્શનાવરણીય મોહનીય ઔર અન્તરાય, હન ઘાતિકર્મરૂપ શત્રુઓં કા નાશ કરને વાલે, અથવા (અર્હદ્યઃ) ભયદૂર સસારરૂપ અટવી મે વાર-વાર ભ્રમણ કરને સે વ્યાકુલ

નમસ્કાર થાય છે તે બે પ્રકારના છે–(૧) દ્રવ્ય નમસ્કાર અને (૨) ભાવ નમસ્કાર એમા દ્રવ્યનમસ્કાર બે હાથ બે ઘુટી એક માથુ આ પાચે અગોને જુકાવવા ભાવનમસ્કાર, માન વિગેરેનો પરિત્યાગ કરવો

જ્ઞાનાવરણીય દર્શનાવરણીય મોહનીય અને અતરાય આ ઘાતિકર્મરૂપ શત્રુએ નો નાશ કરવાવાળા, અથવા ‘અર્હદ્યઃ’ ભયકર સસારરૂપ અટવીમા વારવાર ભ્રમણ કરવાથી વ્યાકુલ ભયોને નિર્ભયમાર્ગ બતાવીને શિવપુરીમા પહોંચાડવાવાળા, અથવા ભવ્ય લોકોથી કરાએલા શુભવર્ણન અભિવાદન વિગેરેના તથા ઇદ્રાદિક દેવતાઓએ કરેલા અષ્ટમહાપ્રાતિહાર્યથી

૧ નિરુક્તોક્તરીત્યા સત્યાદિશબ્દવત્પૂપોદરાદિત્વાત્સાધના વોખ્યા । ઉક્તશ્ચ– “વર્ણાગમો વર્ણવિપર્યયશ્ચ, દ્વૌ ચાપરૌ વર્ણવિકારનાશૌ । ધાતોસ્તદર્થાતિશયેન યોગસ્તદુચ્યતે પશ્ચવિધ નિરુક્તમ્” ઇતિ, “યાત્રતામેવ ધાતૂના લિઙ્ગ રુદિગત ભવેત્ । અર્થશ્રાપ્યમિત્રેયસ્ય,– સ્તાવદ્ભિર્ગુણવિગ્રહ ” ઇતિ ચ ।

प्रातिहार्यरूपायाः^१ सेवायाः शाश्वतिकनिरतिशयसुखस्य चार्हति=योग्या भवन्तीत्य-
र्हन्तस्तेभ्यः^२ । अथवा 'अरहद्भ्यः'^३ इतिच्छाया, रागादिनिदानभूतप्रकृष्टविषय-
सम्बन्धेऽपि वीतरागत्वादिरूप भाव न रहन्ति=न त्यजन्तीन्यरहन्तस्तेभ्य इत्यर्थः ।
'अरुहताण' इति पाठे 'अरोहद्भ्यः'^४ इतिच्छाया, इह पक्षे प्रक्षीणनिखिलकर्मबीजतया
कदाऽप्यनुत्पद्यमानेभ्य इत्यर्थः, यदुक्तमौपपातिकसूत्रे—“वीयाण* अग्निदग्धाण,
पुनरपि अकुरूपपत्ती ण भवइ, एवामेव सिद्धाण कम्मयीए दइढे पुनरपि जम्मुपपत्ती
न भवइ” इति । भगवन्तोऽर्हन्तोऽपि हि क्षित्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसकायपदक

भव्यों को निर्भय मार्ग बताकर शिवपुरी में पहुचाने वाले, अथवा
भव्यजनों से किये जानेवाले गुणवर्णन अभिवादन आदि के तथा
इन्द्रादिक देवताओं से किये हुए अष्टमहाप्रातिहार्यों से युक्त और
शाश्वतिक निरतिशय सुख को पानेवाले, या (अरहद्भ्यः)=रागादिके
कारणभूत प्रकृष्ट विषयों का सम्बन्ध रहते हुए भी वीतरागत्वरूप
अपने स्वभाव को कभी नहीं छोड़ने वाले, अथवा (अरोहद्भ्यः)
कर्मबीज के दग्ध होजाने के कारण फिर से कभी जन्म नहीं लेने
वाले अरिहन्तों को नमस्कार हो ।

युक्त अने शाश्वतिक निरतिशय सुखने भोगवावाणा, अथवा (अरहद्भ्यः) रागादिना
कारणुधी उत्कृष्ट विषयेनो सम्बन्ध रहितो थका पणु वीतरागत्व रूप पोताना स्वरूपने
कथारेथ नही छोडनार, अथवा अरोहद्भ्यः कर्मबीज णणीजवाना कारणे इरीथी डोछ
वन्त जन्म नहि लेवावाणा अरिहन्तोने नमस्कार हो।

अरिहन्त भगवान स्वयं पट्टकायनी रक्षा करता करता भीजने 'मा हण मा हण'
आवा प्रकारने उपदेश देवावाणा तथा भयकर भवपरपराधी उत्पन्न थम्बे

१ अशोकवृक्षः सुरपुष्पवृष्टिर्दिव्यध्वनिश्चामरमासन च ।

भामण्डल दुन्दुभिरातपत्र, सत्प्रातिहार्याणि जिनेश्वराणाम् ॥१॥

२ योग्यतार्थकादकर्मकात् 'अर्ह' धातोर्लट्. शत्रादेशः ।

३ त्यागार्थक-‘रह’-धातोः शत्रन्तस्य नञा समासः ।

४- प्रादुर्भावार्थकस्य रुहवातो शत्रन्तस्य नञा समास आर्पत्वाद्गुणा-
भावश्च । व्याख्यानान्तराणि सभवन्त्यपि क्लृप्त्वादनुपयुक्तत्वाच्चोपेक्षितानि ।

* छाया-बीजानामग्निदग्धाना पुनरप्यङ्कुरोत्पत्तिर्न भवति, एवमेव
सिद्धाना कर्मबीजे दग्धे पुनरपि जन्मोत्पत्तिर्न भवति ।

રક્ષન્તરતદર્થે 'મા હળ મા હળ' इत्यादिवाक्यैः सर्वानुपदिशन्ति भीष्मभवपरम्परो-
द्भूतप्रभूतभीतिभूमभीरुभूताऽद्भुतानन्दसन्दोहकन्दलीयमानाऽपुनरावृत्तिविशिष्टनिर्-
तिपुर्यस्तितथपथ प्रदर्शयन्तीति चैषा नमस्करणीयस्त्वमर्हताम् ।

‘નમો સિદ્ધાણ’ इति, नमः सिद्धभ्यः, असैत्सुः=साधनीयाऽखिलकार्यसाधनेन
परिनिष्ठितार्था अभूवन्निति, असेधिषु=शाश्वतिकृतयाऽपवर्गम् अनन्तचतुष्टयरूप
मङ्गल च प्रापन्निति या सिद्धाः ॥^१ सिद्धत्व च सिद्धाना न दीपनिर्वाणवदभावरूप
किन्तु सद्भावस्वरूपमत एव चक्रवर्त्यादिमनुष्यानामभ्याऽनुत्तरविमानपर्यन्तैर्देवैरपि

अरिहन्त भगवान स्वय पट्काय की रक्षा करते हुए दूसरों
को ‘मा हण मा हण’ इस प्रकार का उपदेश देने वाले, तथा भयङ्कर
भवपरम्परासे उत्पन्न महाभय के कारण व्याकुल भव्यों को अलौकिक
आनन्द के मूलभूत, पुनरावृत्ति (आवागमन)-रहित मोक्षपुरी के
पवित्र मार्ग को दिखलाने वाले हैं, अतएव ये नमस्कार के
योग्य हैं (१) ।

‘नमो सिद्धाण’ समस्त कर्त्तव्यों की सिद्धि होने के कारण
कृतकृत्य, तथा शाश्वतिक मोक्षसुख और अनन्तचतुष्टयरूप मङ्गल
को प्राप्त हुए सिद्धों को नमस्कार हो ।

सिद्धों का सिद्धत्व दीपक बुझ जाने की तरह अभावस्वरूप
नहीं, किन्तु सद्भावस्वरूप है, अतएव मनुष्यों में चक्रवर्ती से लेकर

મહાભયના કારણથી વ્યાકુલ ભવ્યોને અલૌકિક આનન્દના મૂળભૂત, પુનરાવૃત્તિ
(આવાગમન)-રહિત મોક્ષપુરીના પવિત્ર માર્ગને બતાવવાવાળા છે, એટલે એ
નમસ્કાર કરવાને યોગ્ય છે

‘નમો સિદ્ધાણ’ સકલ કાર્યની સિદ્ધિ હોવાથી કૃતકૃત્ય તથા શાશ્વતિક મોક્ષ
સુખ અથવા અનન્ત-ચતુષ્ટયરૂપ મંગલને પ્રાપ્ત કરેલા સિદ્ધોને નમસ્કાર હો

સિદ્ધોનું સિદ્ધત્વ દીપકના ઠરી જવાની જેમ અભાવસ્વરૂપ નહિ પણ સદ્ભાવ
સ્વરૂપ છે એટલા માટે મનુષ્યોમા ચક્રવર્તીથી લઇને અનુત્તર વિમાન સુધી દેવતા
ઓને પણ હુલ્લેલ તથા બીજા સુખોની અપેક્ષાએ એના સુખો અનન્ત ગણ્યા છે, કારણ

૧-‘પિધુ સરાદ્ધો’ इत्यस्मादनिटो दैवादिकात्, ‘पिध गत्वाम्’
इत्यस्मात्सेटो भौवादिकात्, ‘पिधू शास्त्रे माङ्गल्ये च’ इत्यस्माद्देटो भौवादिकाद्वा
कर्त्तरि क्त. । व्युत्पत्त्यन्तराणि यथामत्यूहनीयानि ।

सुदुर्लभ सुग्वान्तरानन्तगुणित भवति तेषां सुख, सर्वकालसमयावच्छिन्नतया सभावितमनन्तवर्गवर्गवर्गित लोकालोकाकाशयोरनन्तप्रदेशेषु परिपूर्णतयाऽनन्त-मपि कदाचित्स्याद्देवादिसुख, तथापि न जातु सिद्धसुखेन तुलाश्रित, तस्यापरिच्छि-न्नपरिमाणतया क्वचिदपि समावेशाभावात् । तच्चोक्तमौपपातिकमूत्रे—

“णवि* अत्थि माणुसाणं, तं सोक्ख णवि य सव्वदेवाण ।
ज सिद्धाण सोक्ख, अव्वावाहं उवगयाणं ॥ १३ ॥
ज देवाण सोक्ख, सव्वच्चापिडिय अणतगुण ।
ण य पावइ मुत्तिसुह, णताहि वग्गवग्गूहि ॥ १४ ॥
सिद्धस्स सुहो रासी, सव्वच्चापिडिओ जइ हवेजा ।
सोऽणतवग्गभइओ सव्वागासे ण माइजा ॥ १५ ॥” इति ।

अनुत्तर विमान पर्यन्त देवों को भी दुर्लभ, तथा अन्य सुखों की अपेक्षा इनका सुख अनन्त गुण है, कारण यह कि देवादिकों के सुख कदाचित् सर्वकाल में स्थायी अनन्त वर्गों के भी वर्गों से गुणित तथा लोक-अलोकस्वरूप दोनों आकाशों के अनन्त प्रदेशों में भरपूर होकर अनन्त भी हो जायें तो भी सिद्धों के सुखों की धरापरी नहीं हो सकती, क्योंकि अपरिमित होने से सिद्धों के सुख अपार है ।

એ છે કે દેવાદિકોના સુખો કદાચિત્ સર્વકાળમા સ્થાયી અનત વર્ગોના પણ વર્ગોથી ગુણિત તથા લોક-અલોકરૂપ બન્ને આકાશોના અનત પ્રદેશોમા ભરપૂર થઈને અનત પણ થઈ જાય તો પણ સિદ્ધોના સુખોની ધરાધરી થઈ શકતી નથી, કારણ કે અપરિમિત હોવાથી સિદ્ધોના સુખ અપાર છે

* નાપ્યસ્તિ મનુષ્યાણા તત્સૌરય નાપિ ચ સર્વદેવાનામ્ ।
યત્સિદ્ધાના સૌખ્યમ્, અવ્યાવાધમુપગતાનામ્ ॥ ૧૩ ॥
યદેવાના સૌરય, સર્વાદ્યાપિણ્ડિતમનન્તગુણમ્ ।
ન ચ પ્રાપ્નોતિ મુક્તિસુખ, અનન્તાભિર્વર્ગવર્ગિતાભિ (અદ્યાભિઃ) ॥ ૧૪ ॥
સિદ્ધસ્ય સૌખ્યરાશિઃ, સર્વાદ્યાપિણ્ડિતો યદિ ભવેત્ ।
સોऽનન્તવર્ગમક્તઃ સર્વાકાશે ન માયાત્ ॥ ૧૫ ॥ ઇતિચ્છાયા ।

एतेनैव नमस्करणीयत्वमपि सिद्धानां सिद्धम्, अविनाशरानन्तज्ञानदर्शन
सुखवीर्याक्षयस्थितिप्रभृतिप्रगुणगुणगणगुम्फिताद्गतया ध्यानादिवशाद्भव्यात्मा
नन्दोद्रेकोद्भावरुत्वेनोपकारित्वात् ।

‘नमो आयरियाण’ इति, नम आचार्येभ्यः, आ=समन्तात् मर्यादया वा
चर्यन्ते परिचर्यन्ते शिष्यादिभिरित्याचार्याः^१ । आचार=ज्ञानदर्शनचारित्र्यतपोवीर्यरूप
ग्राहयन्तीति, आचिन्वन्ति=बृहयन्ति शिष्याणां ज्ञानादीनीति, आचारयन्ति=सम्पा
दयन्ति शिष्यैरागमोक्तविधीनिति वाऽऽचार्याः^२ । अथवा आ=मर्यादया चरन्ति=
गच्छन्तीति, आचारैर्वा चरन्तीत्याचार्याः^३ । यद्यपि शिल्पाचार्य-कलाचार्य-

सिद्धों को इसलिये नमस्कार किया गया है कि वे अपने
अविनाशी अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख, अनन्तवीर्य,
अनन्त अक्षय स्थान आदि उत्कृष्ट गुणोंसे आत्मानन्द के उद्भावरु
होकर भव्य जीवों के उपकारक हैं । (२)

‘नमो आयरियाण’ आ=मर्यादापूर्वक शिष्यों से सेवित अथवा
शिष्यों को ज्ञान दर्शन चारित्र्य तप तथा वीर्यरूप आचार की शिक्षा
देनेवाले, या उनके ज्ञानादि आचार को बढ़ानेवाले, अथवा ज्ञानाचार
आदि की मर्यादामें चलनेवाले आचार्य को नमस्कार हो ।

यों तो शिल्पाचार्य कलाचार्य और धर्माचार्य के भेदसे

सिद्धोंने એટલા માટે નમસ્કાર કરવામા આવેલ છે કે એ પોતાના અવિનાશી
અનંતજ્ઞાન, અનંતદર્શન, અનંત સુખ, અનંત વીર્ય, અનંત અક્ષયસ્થાન વિગેરે ઉત્તમ
ગુણોથી આત્મિક આનંદના ઉદ્ભાવક થઈને ભવ્ય જીવો માટે ઉપકારક છે

(૨) ‘નમો આયરિયાણ’ ‘આ’=મર્યાદાપૂર્વક શિષ્યોથી સેવાએલા અથવા શિષ્યોને
જ્ઞાન, દર્શન, ચારિત્ર, તપ તથા વીર્યરૂપ આચારની શિક્ષા દેવાવાળા અથવા
તેમના જ્ઞાનાદિ આચારને વધારવાવાળા અથવા જ્ઞાનાચાર વિગેરેની મર્યાદામા
ચાલવાવાળા આચાર્યને નમસ્કાર થાય

એમ તો શિલ્પાચાર્ય કલાચાર્ય અને ધર્માચાર્યના ભેદથી આચાર્યના

૧ આદુપસર્ગપૂર્વકાત્ ચરધાતો કર્મણિ ણ્યત્ ઉપધાદિ ।

૨ સત્યાદિશબ્દવન્નિરુક્તોક્તરીત્યા પૃષોદરાદિપાઠાત્પદસિદ્ધિ ।

૩ આદુપસર્ગપૂર્વકાત્ ચરધાતોર્ગાહલકાત્કર્ત્તરિ ણ્યત્પત્યય ।

धर्माचार्यभेदेनाऽऽचार्यत्रैविध्यतथाऽप्यर्हत्सिद्धसाहचर्यान्मःपदसान्निभ्यान्नात्र धर्मा-
चार्याणामेव ग्रहणम् । तच्च^१ च सूत्रार्थज्ञातृत्वार्थवाचकत्व-गच्छमेधीभूत-
त्व-गणचिन्तारहितत्व-स्त्रीकथा-राजकथा-देशकथा-भक्तकथा-सम्यक्त्वशैथिल्य-
कथावर्जकत्व, तथा नवविधब्रह्मचर्यगुप्तिगारकत्व-पञ्चेन्द्रियसवरणकारकत्व-कषा-
यचतुष्टयरहितत्व-पञ्चमहाव्रतोपेतत्व- पञ्चविधाचारपालकत्व- पञ्चसमितिसमित-
त्व-गुप्तित्रयगुप्तत्वरूपपट्टिशद्गुणवत्त्व, सारणा-वारणा-धारणा - नोदना - प्रति-
नोदनावत्त्व च । तत्र सारणा=विस्मृतसामाचारिकेभ्यो मुनिभ्यः, 'मुने ! भवतेद

आचार्य के तीन भेद हैं, तो भी 'अरिहत' 'सिद्ध' तथा 'नमो' पद के साहचर्य से यहाँ पर धर्माचार्य का ही ग्रहण है । जो सूत्रार्थ को जाने, शिष्यों को प्रवचन का मर्म समझावे, गच्छमें मेढी (खलिहान का खभा) समान हो, गण की चिन्ता से रहित हो, सम्यक्त्व को शिथिल करनेवाली कथा का वर्जन करे, तथा नौ बाँड ब्रह्मचर्यधारण (९), पाँच इन्द्रियों को जीतना (१४), चार कषायों का परित्याग (१८), पाँच महाव्रतों (२३) और पाँच आचारों का पालन (२८) पाँच समिति (३३) और तीन गुप्तियों का धारण (३६), इन उत्तीस गुणों से तथा सारणा, वारणा, धारणा, चोयणा, पडिचोयणा से युक्त हो ।

उनमें सारणा-प्रमादवश सामाचारीमें भूले हुए मुनिको

त्रयु लेह छे तो पणु 'अरिहत' 'सिद्ध' तथा 'नमो' पदना साहचर्यथी अर्हिया धर्माचार्यनुं न अहण छे नेओ। सूत्रना अर्थने नहणु शिष्योने प्रवचननुं रुस्य समनने गच्छमा मेधि समान गणुनी चिंताथी रहित होय सम्यक्त्व शिथिल थाय ओवी कथानुं वर्जन करे तथा नवबाड ब्रह्मचर्यनुं पालन, (९) पाये इन्द्रियोने छतवी (१४) थारे कषायोने त्याग (१८) पाय महाव्रतो (२३) तथा पाय आचारोनुं पालन (२८) पाय समिति (३३) अने त्रयु गुप्तिओनुं धारणु करवु आ छत्रीस (३६) गुणोथी तथा सारणा, वारणा, धारणा, चोयणा अने पडिचोयणाथी युक्त होय

तेमा सारणा=प्रमादथी सामाचारीमा भूलेला मुनिने योग्य ज्ञान आयवु

१ धर्माचार्यत्वम् ,

સમ્યદનાનુષ્ઠિતમેવ કર્તવ્ય' - મિત્યાદિરીત્યોપદેશદાનમ્ । વારણા=કુસત્તિ
પ્રમૃતિપ્રવૃત્તશિષ્યપતિપેધનમ્ 'एव न कदापि कर्तव्य'-મિતિ, ઇયચ^૧ દ્વિવિધા
દ્રવ્યતો ભાવતશ્ચ, યથા કથિત્ત્વૌઠશ્ચિન્નિત્સકો ઋચિન્નિત્સકાન્ કૌશ્ચિદ્રોગિણો
વારયતિ-'યુષ્માભિરોપમ્'નુકૂલપથ્યાદારાદિના વર્તિતવ્યમિતરથા રોગો દુશ્ચિ
ન્નિત્સ. સ્યા'ન્નિતિ, ઇમ ચિન્નિત્સકહિતોપદેશ પ્રેમ્ણા શ્રુત્વા યે તથા પથ્યેન વર્તન્તે
તે તતો રોગાન્મુક્ત્વા સુખિનો ભવન્તિ, યે ચ જિહ્વાલોહુપિનો વૈશ્વવચનમનાદૃત્ય
યથારુચિ વિદધતે તે તેનૈવાપથ્યસેવનેન મદદલિતદેહા નિરુપાયા મૃત્યુમુખ પ્રવિશન્તિ,

ઉચિત શિક્ષા દેના । વારણા=અકૃત્ય સેવનસે રોકના । યદ્દો
પ્રકારકી હૈ । (૧) દ્રવ્યવારણા ઓર (૨) ભાવવારણા, ઉનમેં
દ્રવ્યવારણા જૈસે-કોઈ વૈદ્ય રોગી કો કહતા હૈ-'અમુક દવામેં
અમુક અમુક વસ્તુ પથ્ય હૈ હસકા સેવન કરો ઓર અમુક અમુક
વસ્તુ કુપથ્ય હૈ હસે છોડો, નહી તો રોગ દૂર નહીં હોગા' ઇત્યાદિ,
જો રોગી વૈદ્ય કે હસ વચન કો હિતવુદ્ધિ સે સુનકર હસકે અનુકૂલ
પથ્ય સેવન કરતા હૈ વદ્દુસ રોગ સે મુક્ત હો કર સુખ કો
પ્રાપ્ત કરતા હૈ, ઓર જો વૈદ્ય કે વચન કા અનાદર કર અપની
હઠ્ઠાસે વર્તતા હૈ વદ્દુનાના પ્રકાર કે કષ્ટોં કો ભોગતા હુઆ
મૃત્યુ તક કો ભી પ્રાપ્ત હો જાતા હૈ ।

વારણા=નહિ કરવા લાયક કામથી રોકવું તે બે પ્રકારની છે (૧) દ્રવ્યવારણા અને
(૨) ભાવવારણા

દ્રવ્યવારણા—જેમ કોઈ વૈદ્ય રોગીને કહે કે 'અમુક દવામાં અમુક વસ્તુ
ખાવા લાયક છે તેનું સેવન કરો અને અમુક વસ્તુ ખાવા લાયક નથી તેથી તેને
છોડો નહિતર રોગ મટશે નહિ' વિગેરે, જે દર્દી વૈદ્યનું આ વચન હિત-બુદ્ધિથી
સામળીને તેને અનુકૂળ યોગ્ય પથ્યનું સેવન કરે છે તે તેના રોગથી છુટીને
સુખ મેળવે છે, અથવા જે વૈદ્યનું વચન પાળ્યા વિના પોતાની મરજી પ્રમાણે
વર્તે છે તે અનેક પ્રકારના હુ બોને ભોગવતો થકો મૃત્યુ સુધી પહોંચી જાય છે

૧ વારણા ।

૨ સશ્યાલ્પન ।

સૈવા દ્રવ્યવારણા, ભાવવારણા તુ દૃષ્ટાન્તસ્યૈવોપનયો યથા-કૌશ્વિત્કર્મરોગગ્રસ્તૌ-
સ્તતો મુક્તિકામાન્ પ્રાણિન આચાર્યવૈદ્યો વારયતિ-‘યુષ્માભિઃ સર્વદા પ્રવચ-
નોપધગ્રહણપૂર્વક જ્ઞાનાચારાદિપથ્યસેવકર્મભવિતવ્યમિતરથા પ્રમાદાદિરોગોઽય
દુશ્ચિકિત્સ’ સ્યા’દિતિ, તેષુ યે તથા જ્ઞાનાચારાદિપથ્યપાલનેન વર્તન્તે તે તસ્મા-
દ્રોગાદ્વિમુચ્ય સુખમશ્રુવતે, યે ચેન્દ્રિયારામાઃ કામભોગાદિરુપમપથ્ય ન ત્યજન્તિ
તે ભૂયો ભૂયો જન્મ-જરા-મરણાનિ પ્રાપ્નુવન્તીતિ । ધારણા=વિષયાન્તરનિવૃત્તિ-
પુરસ્સર મનસ. સયમમાર્ગે સ્થિરીકરણમ્ । નોદના (ચોયણા)=સામાચારીતો વહિ.
પ્રવર્તમાનાના સામાચારી પાલયિતુ પ્રવર્તના । પ્રતિનોદના (પઢિચોયણા) ચ

ભાવવારણા-દૃષ્ટાન્ત કા ઉપનય સ્વરૂપ હૈ, જૈસે કર્મરોગસે
પીડિત મોક્ષાભિલાષી પ્રાણિયોંકો આચાર્યરૂપ વૈદ્ય ઉપદેશ દેતે હૈ-
‘ઇસ પ્રવચનરૂપ ઔપધ મેં જ્ઞાનાચાર આદિ પથ્ય હૈ ઇસ કા સેવન
કરના ચાહિયે ઔર વિષય ભોગાદિ કુપથ્ય હૈ ઉસે છોડના ચાહિયે,
અન્યથા કર્મરોગ કા મિટના અસમ્ભવ હૈ’ ઇત્યાદિ, જો ઇસ વચન
કે અનુસાર નિયમસે ચલતા હૈ વહ ઉસ કર્મ રોગ સે મુક્ત હોકર
શિવસુખ કો પાતા હૈ, ઔર જો આચાર્ય કે વચન કા અનાદર કર
સ્વચ્છન્દ પ્રવૃત્તિ કરતા હૈ વહ નાના પ્રકાર કે દુ સ્વોં કો ભોગતા
હુઆ વારવાર જન્મ જરા મરણ પાતા હૈ ।

ધારણા-મનકો અન્ય ૨ વિષયોં સે હટા કર સયમ માર્ગ મે
સ્થિર કરના । ચોયણા=સામાચારી સે બાહર પ્રવૃત્તિ કરને વાલોં કો

ભાવવારણા—દૃષ્ટાન્તનું ઉપનય સ્વરૂપ છે જેવી રીતે કર્મજન્ય રોગથી પીડિત
મોક્ષાભિલાષી પ્રાણિઓને આચાર્યરૂપ વૈદ્ય ઉપદેશ આપે છે ‘આ પ્રવચનરૂપ ઔપધમા
જ્ઞાનાચાર આદિ પથ્ય છે તેનું સેવન કરવું જોઈએ અને વિષયભોગ વિગેરે કુપથ્ય છે
તેને છોડી દેવા જોઈએ નહિતર કર્મજન્ય રોગ મટવા કઠિન છે’ ઇત્યાદિ જે આ
વચન અનુસારે નિયમથી ચાલે છે તે કર્મરોગથી મુક્ત થઈને શિવસુખને પ્રાપ્ત
કરે છે, અને જે આચાર્યના વચનોને અનાદર કરીને સ્વચ્છન્દ પ્રવૃત્તિ કરે છે તે
અનેક પ્રકારના દુ ખોને ભોગવતો વારવાર જન્મ જરા અને મરણ પામે છે

ધારણા=મનને ખીજ-ખીજ વિષયોમાથી હટાવીને સયમમાર્ગમા સ્થિર
કરવું ચોયણા=સામાચારીથી બહાર પ્રવૃત્તિ કરવાવાળાને ફરીથી સામાચારીમા પ્રવૃત્ત

पौनःपुन्येन सामाचारीस्खलिताना धिग्निगित्यादिपरुषमर्त्सनापूर्वकप्रगाढप्रेरणा ।
 आचार्यस्य 'गणी'—त्यपि नाम, गणः=साधुसमुदायः सोऽस्त्यस्येति व्युत्पत्तेर्गणी,^१
 तस्य गणिन सम्पदः प्रसङ्गतो लक्ष्यन्ते, ता अष्टौ—(१) आचारसम्पत्, (२)
 श्रुतसम्पत्, (३) शरीरसम्पत्, (४) वचनसम्पत्, (५) वाचनासम्पत्, (६) मति
 सम्पत्, (७) प्रयोगसम्पत्, (८) सग्रहसम्पत्चेति । एता अपि प्रत्येक चतुर्विधा, त
 थाहि—आचारसम्पच्चतुर्धा यथा—(१) समयपुत्रयोगयुक्तत्व, (२) जात्यादिमदर-
 हितत्वम्, (३) अनियतविहारित्व, (४) वृद्धवन्मनःकायनिर्विकारत्व चेति ।

फिर से सामाचारी में प्रवृत्त करना । पडिचोयणा=बारबार सामाचारी
 से स्खलितों को रुक्ष वचनों से फटकार कर सामान्यारी में प्रवृत्त
 करना ।

आचार्य को गणी भी कहते हैं, उनकी आठ सपदाँ हैं—

(१) आचारसम्पदा, (२) श्रुतसम्पदा, (३) शरीरसम्पदा, (४)
 वचनसम्पदा, (५) वाचनासम्पदा, (६) मतिसम्पदा, (७) प्रयोगसम्पदा
 (८) सग्रहसम्पदा ।

[१] आचारसम्पदा के चार भेद हैं — (१) चारित्र्यमें निरन्तर
 समाधियुक्त रहना, (२) जात्यादिमद का परित्याग (३) अप्रतिषन्ध
 विहार, (४) वृद्ध के समान इन्द्रियादिविकार रहित होना ।

करवा पडिचोयणा= बारबार सामाचारीमा लूळ करनारने इक्ष वचनोथी छिटकारीने
 सामाचारीमा प्रवृत्त करवा

आचार्यने गणी પણ કહે છે, આચાર્યની આઠ સપદા છે (૧) આચાર
 સપદા, (૨) શ્રુતસમ્પદા, (૩) શરીરસપદા, (૪) વચનસપદા, (૫) વાચના
 સમ્પદા, (૬) મતિસમ્પદા, (૭) પ્રયોગસપદા, (૮) સગ્રહસમ્પદા

(૧) આચારસમ્પદાના ચાર ભેદ છે—(૧) ચારિત્રમા હમેશા સમાધિ-
 યુક્ત રહેવું (૨) જાતિ વગેરેના મદનો પરિત્યાગ, (૩) અપ્રતિષન્ધ-વિહાર,
 (૪) વૃદ્ધ સમાન ઇન્દ્રિયાદિ-વિકાર-રહિત થવું

૧ 'ગણી' इत्यत्र गणशब्दात् 'अत इनिठनौ' (५।२।१५) इति
 पाणिनिवचनेन मत्वर्थीय इति ।

श्रुतसम्पच्चतुर्द्धा यथा—(१) बहुश्रुतत्व, (२) परिचितमूत्रत्व, (३) परिज्ञातो-
त्सर्गापवादत्वम् (४) उदात्तानुदात्ताग्रनुसन्धानपूर्वक्यथोचितवर्णोच्चारयित्व
चेति । तत्र बहुश्रुतत्व—यदा यावन्ति मूत्राणि तदा तावत्सर्वपरिज्ञातृत्वम्,
परिचितमूत्रत्व=स्वनामादिवत्कदाप्यविस्मृतमूत्रत्वम् । शरीरसम्पच्चतुर्द्धा यथा—
(१) समचतुरस्रसस्थानत्वम्, (२) सम्पूर्णद्गोपाङ्गत्वम्, (३) प्रतिपूर्णैन्द्रिय-
त्वम्, (४) स्थिरसहनत्व चेति । वचनसम्पच्चतुर्द्धा यथा—(१) आदेय-
वचनत्व, (२) मधुरवचनत्व, (३) मध्यस्थवचनत्व, (४) स्फुटवचनत्व चेति ।
वाचनासम्पच्चतुर्द्धा यथा—(१) पात्रकुपात्रविवेचकत्व, (२) कृतपूर्वसूत्रार्थ—

[२] श्रुतसम्पदा के चार भेद हैं— (१) जिस समय जितने
सूत्र हों उन सब का ज्ञान रखना । (२) अपने नामकी तरह सूत्रों
को कभी न भूलना । (३) उत्सर्ग अपवादका ज्ञान रखना । (४)
उदात्त अनुदात्त आदि स्वरों के अनुसन्धान पूर्वक वर्णों का शुद्ध
उच्चारण करना ।

[३] शरीरसम्पदा के चार भेद— (१) समचतुरस्र सस्थान का
होना, (२) अगउपागों से अविकल होना, (३) सत्र इन्द्रियों से
परिपूर्ण होना, (४) दृढ सहननका होना ।

[४] वचनसम्पदा के चार भेद— (१) आदेय वचन होना,
(२) मधुर वचन होना, (३) मध्यस्थ वचन होना, (४) स्फुट वचन होना ।

[५] वाचना सम्पदा के चार भेद— (१) शिष्यों में पात्र

श्रुतसम्पदाना चार भेद छे (१) जे समये जेटला सूत्र होय ते सर्वनु
ज्ञान राखवु, (२) पोताना नामनी जेम सूत्राने कही पणु नहि भूलना (३)
उत्सर्ग-अपवादनु ज्ञान राखवु, (४) उदात्त-अनुदात्त आदि स्वरोना अनुसन्धान
पूर्वक वणोनि शुद्ध उच्चार करवो

(३) शरीरसम्पदाना चार भेद— (१) समचतुरस्र सस्थाननु होवु
(२) अग-उपागोथी अविकल थवु, (३) सर्व इन्द्रियोथी परिपूर्णपणु (४) दृढ
सहनननु होवु

(४) वचनसम्पदाना चार भेद— (१) आदेय वचन (२) मधुर वचन
(३) मध्यस्थ वचन, (४) स्फुट वचन

(५) वाचनासम्पदाना चार भेद— (१) शिष्योभा पात्र-कुपात्रपणुने

परिपाकाय शिष्याय सूत्रार्थप्रदातृत्वं, (३) सूत्राभ्ययनार्थमुत्साहदातृत्वं
(४) पूर्वापरार्थसागत्यनिपुणत्वं चेति । मतिसम्पच्चतुर्धा यथा—(१) अवग्रहः (सामान्येन पदार्थनिर्णयः), (२) ईहा (विशेषविमर्शः), (३) अवायः (निश्चयः)
(४) धारणा (कालान्तरायास्मरण) चेति । प्रयोगसम्पच्चतुर्धा यथा—(१) वादविषयकस्वसामर्थ्यज्ञान, (२) परिपत्परिज्ञान, (३) क्षेत्रपरिज्ञान, (४) वस्तुपरिज्ञान^१ चेति । सग्रहसम्पच्चतुर्धा यथा—(१) गणस्थालवृद्धादिमुनिनि

कुपात्र का विचार करना, (२) पूर्व पढ़ाए हुए सूत्रार्थ का परिपाक होने पर आगे पढ़ाना, (३) सूत्र पढ़नेके लिए उत्साह देना, (४) सूत्रार्थ की पूर्वापर सगति करने में निपुण होना ।

[६] मतिसम्पदा के चार भेद— (१) अवग्रह (सामान्य रूपसे पदार्थों का निर्णय करना), (२) ईहा (विशेष रूप से जानना), (३) अवाय (पदार्थ का ठीक निश्चय करना), (४) धारणा (कालान्तर में नहीं भूलना) ।

[७] प्रयोगसम्पदा के चार भेद— (१) वादमें अपने सामर्थ्यका ज्ञान रखना, (२) परिपद् का ज्ञान रखना, (३) क्षेत्र का ज्ञान रखना, (४) राजा मन्त्री आदि का ज्ञान रखना ।

[८] सग्रहसम्पदा के चार भेद— (१) गणमें रहे हुए बाल विचार करवो, (२) प्रथम लघुवेला सूत्रना अर्थनो परिपाक तथा पछी आगण अभ्यास करवो, (३) सूत्रनो अभ्यास करवामा उत्साह आपवो, (४) सूत्रार्थनी पूर्वापर सगति करवामा निपुण थवु

(६) मतिसम्पदाना चार लेह— (१) अवग्रह—सामान्य रूपथी पदार्थनो निर्णय करवो (२) ईहा विशेषरूपथी जानवु, (३) अवाय—पदार्थनो परापर निश्चय करवो (४) धारणा—कालान्तरमा पणु भूलवु नहि

(७) प्रयोग सम्पदाना चार लेह (१) वाद करवा वभते पोताना सामर्थ्यनु ज्ञान राखवु, (२) परिपदनु ज्ञान राखवु, (३) क्षेत्रनु ज्ञान राखवु (४) राजा, मन्त्री वगैरेनु ज्ञान राखवु

(८) सग्रह सम्पदाना चार लेह— (१) गणुमा रहेला जाल वृद्ध आदि

१— प्रयोगसम्पत्त=वादमेधा ।

२— वस्तुपरिज्ञान=राजामात्यादिपरिज्ञानम् ।

ર્વાહયોગ્યક્ષેત્રાદિનિરીક્ષણવિષયા, (૨) વાલ્ગ્લાનાદિયોગ્યસસ્તારકાદિવ્યવસ્થા-
કરણવિષયા, (૩) યથાકાલ સ્વાધ્યાયાદ્યનુષ્ઠાનવિષયા, (૪) યથાયોગ્ય-
વિનયવિષયા ચેતિ । આસામષ્ટવિધસમ્પદા વિસ્તરતો વ્યાર્યા મત્કૃદશાશ્રુત-
સ્કન્ધમૂત્રસ્ય ટીકાયા વિલોકનીયા ।

एत एवोक्तलक्षणा आचार्याः (१) प्रवचनप्रभावकोपदेश-(२) वादाधिकरणकशा-
भतिक्रय-(३) निमित्तज्ञान-(४) तपस्वित्वा-(५) ऽञ्जनसिद्धि-(६) लब्धिसिद्धि-
(७) कर्मसिद्धि-(८) विद्यासिद्धि-(९) मन्त्रसिद्धि-(१०) योगसिद्ध्या-(११)
ऽऽगमसिद्धि-(१२) युक्तिसिद्धय-(१३) ऽभिप्रायसिद्धि-(१४) गुणसिद्धय-
(१५) ऽर्थसिद्धि-(१६) कर्मक्षयसिद्धि-रूपैर्विशिष्टैः षोडशभिर्गुणैरप्युपलक्षिता

વૃદ્ધ આદિ મુનિયોંકે નિર્વાહયોગ્ય ક્ષેત્ર આદિકા નિરીક્ષણ કરના,
(૨) વાલ-ગ્લાન આદિકે યોગ્ય શય્યા-સથારા આદિ કી વ્યવસ્થા
કરના, (૩) યથાકાલ સ્વાધ્યાય આદિ કરના, (૪) યથાયોગ્ય વડોં
કા વન્દન આદિ વિનય કરના ।

ये ही उक्तगुणसम्पन्न आचार्य जय-(१) प्रवचनप्रभावक उपदेश
देना, (२) वादमें मद जय, (३) निमित्तज्ञान, (४) तपस्या, (५)
अञ्जनसिद्धि, (६) लब्धिसिद्धि, (७) कर्मसिद्धि, (८) विद्यासिद्धि, (९)
मन्त्रसिद्धि, (१०) योगसिद्धि, (११) आगमसिद्धि, (१२) युक्तिसिद्धि,
(१३) अभिप्रायसिद्धि, (१४) गुणसिद्धि, (१५) अर्थसिद्धि, (१६)
कर्मक्षयसिद्धि, इन सोलह विशेष गुणों से युक्त होते हैं तब

મુનિયોના નિર્વાહ યોગ્ય ક્ષેત્ર આદિનો તપાસ કરવો, (૨) બાલ, ગ્લાન આદિના
યોગ્ય શય્યા સથારા આદિની વ્યવસ્થા કરવી, (૩) યથાસમય સ્વાધ્યાય આદિ
કરવા (૪) મોટા હોય તેનો યથાયોગ્ય વિનય અને વદનાદિ કરવું

ઉપર પ્રમાણે કહેલા ગુણથી પૂર્ણ હોય તેવા આચાર્ય ત્યારે (૧) પ્રવચન
પ્રભાવક ઉપદેશ આપે છે (૨) વાદમાં વિજય મેળવે છે, (૩) નિમિત્તજ્ઞાન,
(૪) તપસ્યા, (૫) અજ્ઞનસિદ્ધિ, (૬) લબ્ધિસિદ્ધિ, (૭) કર્મસિદ્ધિ, (૮) વિદ્યાસિદ્ધિ,
(૯) મન્ત્રસિદ્ધિ, (૧૦) યોગસિદ્ધિ, (૧૧) આગમસિદ્ધિ, (૧૨) યુક્તિસિદ્ધિ
(૧૩) અભિપ્રાયસિદ્ધિ, (૧૪) ગુણસિદ્ધિ, (૧૫) અર્થસિદ્ધિ (૧૬) કર્મક્ષયસિદ્ધિ
આ મેળા વિશેષ ગુણથી યુક્ત હોય છે ત્યારે તે “યુગપ્રધાનાચાર્ય”

परिपाकाय शिष्याय सूत्रार्थप्रदातृत्व, (३) सूत्राभ्ययनार्थमुत्साहदातृत्व
(४) पूर्वापरार्थसागत्यनिपुणत्व चेति । मतिसम्पच्चतुर्धा यथा—(१) अवग्रहः (सामान्येन पदार्थनिर्णयः), (२) ईहा (विशेषप्रिमर्शः), (३) अवायः (निश्चयः)
(४) धारणा (कालान्तरायाविस्मरण) चेति । प्रयोगसम्पच्चतुर्धा यथा—(१) वादविषयकस्वसामर्थ्यज्ञान, (२) परिषत्परिज्ञान, (३) क्षेत्रपरिज्ञान, (४) वस्तुपरिज्ञान^२ चेति । सग्रहसम्पच्चतुर्धा यथा—(१) गणस्थगालवृद्धादिमुनिनि

कुपात्र का विचार करना, (२) पूर्व पढाए हुए सूत्रार्थ का परिपाक होने पर आगे पढाना, (३) सूत्र पढनेके लिए उत्साह देना, (४) सूत्रार्थ की पूर्वापर सगति करने में निपुण होना ।

[६] मतिसम्पदा के चार भेद— (१) अवग्रह (सामान्य रूपसे पदार्थों का निर्णय करना), (२) ईहा (विशेष रूप से जानना), (३) अवाय (पदार्थ का ठीक निश्चय करना), (४) धारणा (कालान्तर में नहीं भूलना) ।

[७] प्रयोगसम्पदा के चार भेद— (१) वादमें अपने सामर्थ्यका ज्ञान रखना, (२) परिषद् का ज्ञान रखना, (३) क्षेत्र का ज्ञान रखना, (४) राजा मन्त्री आदि का ज्ञान रखना ।

[८] सग्रहसम्पदा के चार भेद— (१) गणमें रहे हुए बाल विचार करवो, (२) प्रथम लघुवेला सूत्रना अर्थनो परिपाक तथा पछी आगण अख्यास कराववो, (३) सूत्रनो अख्यास करवाभा उत्साह आपवो, (४) सूत्रार्थनी पूर्वापर सगति करवाभा निपुण्य थवु

(६) मतिसम्पदाना चार लेह— (१) अवग्रह-सामान्य रूपधी पदार्थनो निर्णय करवो (२) ईहा विशेषरूपधी लघुवु, (३) अवाय-पदार्थनो परापर निश्चय करवो (४) धारणा-कालान्तरभा पणु भूलवु नहि

(७) प्रयोग सम्पदाना चार लेह (१) वाद करवा वधते पोताना सामर्थ्यनु ज्ञान राखवु, (२) परिषदनु ज्ञान राखवु (३) क्षेत्रनु ज्ञान राखवु (४) राजा, मन्त्री वगैरेनु ज्ञान राखवु

(८) सग्रह सम्पदाना चार लेह— (१) गणुभा रहैला गाल-वृद्ध आदि

१- प्रयोगसम्पत्=वादमेधा ।

२- वस्तुपरिज्ञान=राजामात्यादिपरिज्ञानम् ।

गणधरास्तमेव परम्पराऽऽयात शिष्यान्ध्यापयन्ति ये ते उपाध्याया उच्यन्ते इति सारः । अपिवा आधेः=मनोव्यथाया आयः=लाभः आध्यायः, उपहतः=नाशित आध्यायो यैस्ते उपाध्यायाः=प्रवचनतत्त्वोपदेशेन मुनिहृदयसन्तोषका इत्यर्थः, अतएव नमस्कारार्हाः, ज्ञानदर्शनचारित्र्ययुक्तत्वाच्च ।

‘ नमो लोए सव्वसाहूण ’ इति, नमो लोके सर्वसाधुभ्यः । साधयन्ति साधुवन्ति वाऽभिलषितार्थं निर्वाणसाधकान् योगान्, यद्वा सम्यग्ज्ञानदर्शन-चारित्ररूपरत्नत्रयवलेनाऽपवर्गमिति, अथवा निरुक्तव्युत्पत्त्या भूतेषु समता ध्या-यन्तीति दधत इति, मोक्षमार्गं प्रति गच्छता सहायका भवन्तीति वा ‘साधवः’, अत्र ‘सर्व’ पदेन सार्द्धद्वीपद्वयरूपलोकस्था गृह्यन्ते, ते च ते साधवश्च, यद्वा

तीर्थङ्करो से उपदिष्ट और सूत्ररूपमें गणधरो से रचित परम्परा से प्राप्त द्वादशाङ्ग के पढाने वाले, अथवा प्रवचन का पाठ देकर आधि-मनकी व्यथा के आय=प्राप्तिको उप=उपहत अर्थात् दूर करने वाले उपाध्याय को नमस्कार हो । ज्ञानदर्शनचारित्र से युक्त तथा सूत्र पढाने के कारण उपकारी होनेसे उपाध्याय नमस्कार के योग्य हैं ।

‘ नमो लोए सव्वसाहूण ’—अभिलषित अर्थ को, निर्वाणसाधक योगो को अथवा सम्यग् ज्ञान-दर्शन-चारित्ररूप रत्नों से मोक्षको साधनेवाले, अथवा सब प्राणियों पर समभाव रखनेवाले, या मोक्षा-भिलाषी भव्यों के सहायक, तथा अढाई द्वीपरूप लोकमें रहनेवाले

करोथी उपदेशायेला अने सूत्ररूपमा गणधरोथी रखायेला परम्पराथी प्राप्त द्वादशाङ्ग ने। अभ्यास करावना, अथवा प्रवचनने। पाठ आपीने आधि=मनकी व्यथाना आय=प्राप्तिने उप=उपहत अर्थात् दूर करवावाणा उपाध्यायने नमस्कार थाय ज्ञान, दर्शन अने चारित्र्यी युक्त तथा सूत्रने। अभ्यास कराववाना कारणे उपकारी होवाथी उपाध्याय नमस्कार करवा योग्य छे

‘ नमो लोए सव्वसाहूण ’—अभिलषित अर्थने, निर्वाणसाधक योगीने, अथवा सम्यग् ज्ञान दर्शन चारित्र रूप रत्नोंथी मोक्षने साधवावाणा अथवा सब प्राणीओ। उपर समभाव राखवावाणा अथवा मोक्षना अभिलाषी भव्येने सहायक तथा अढी द्वीप-रूप लोकमा रहेवावाणा सर्व

भवन्ति, तदा युगप्रधानाचार्या उच्यन्ते । ते चाचार्या यथा तीव्रभानौ भाना-
वस्तमिते प्रदीपो घटपटादिपदार्थजात स्वभासा भासयति तमश्च व्यपोहति तथा
भगवति तीर्थकरे सिद्धगतिं समाप्ते भुवनत्रयस्य तत्त्वार्थप्रकाशनेन मिथ्यात्वादिक
निजप्रतिभया व्यपगमयन्तीत्यतो नमस्करणीयत्वमेषाम् ।

‘ नमो उवज्झायाण ’ इति ‘ नम उपाध्यायेभ्यः ’ उप=समीपम् एत्याधी-
यते येभ्यस्ते उपाध्यायाः । यद्वा उपस्य सामीप्यार्थकत्वादधीत्यस्य चाऽऽधि-
क्यार्थकत्वात् उप=समीपम् अधि=आधिक्येन ईयते=प्राप्यते येषां ते^२ तथा ।
अथवा उपाधीयते=समीपावस्थानेन स्मर्यते सूत्रतो जिनभाषित मुनिभिर्येभ्यस्ते^३-
तथा । यद्वादशाङ्गस्वरूप स्वाध्यायमादावर्थतस्तीर्थकरा उपदिदिशुस्तदनु च सूत्रतो

‘ युगप्रधानाचार्य ’ कहलाते हैं ।

जैसे तीव्र किरणोंवाले सूर्यके अस्त हो जाने पर दीपक अपने प्रकाश से घट-पट आदि पदार्थों को प्रकाशित करता और अन्धकार को हटाता है उसी तरह तीर्थङ्कर भगवान के मोक्ष पधार जाने पर आचार्य महाराज तीनों लोक के जीवादि पदार्थोंका प्रकाश करते (स्वरूप बताते) हुए मिथ्यात्व आदि को हटाते हैं, इसलिए उपकारी होने के कारण वे वन्दन करने योग्य हैं ।

‘ नमो उवज्झायाण ’-समीपमें आये हुए मुनियों को अर्थरूपमें

કહેવાય છે

જેવી રીતે તીવ્ર કિરણોવાળો સૂર્ય અસ્ત પામી જાય છે ત્યારે દીપક [દીવો] પોતાના પ્રકાશથી ઘટ-પટ વગેરે પદાર્થોને પ્રકાશિત કરે છે અને અધકારને દૂર કરે છે તેવી રીતે તીર્થંકર ભગવાનના મોક્ષ ગયા પછી આચાર્ય મહારાજ ત્રણેય લોકના જીવાદિ પદાર્થોને પ્રકાશ કરીને [સ્વરૂપ બતાવીને] મિથ્યાત્વ આદિને દૂર કરે છે એટલા માટે ઉપકારી હોવાના કારણે તેઓ નમસ્કાર કરવા યોગ્ય છે

‘ નમો ઉવજ્ઞાયાણ ’ પોતાના સમીપમાં રહેલા મુનિઓને અર્થરૂપમાં તીર્થ

૧-‘ इङ् अभ्ययने ’ अस्मात् ‘ इङश्च ’ (३ । ३ । २१) इति वचनेनाऽऽपादाने घञ् ।

૨-‘ यद्वा ‘ उपाध्याया ’ उपाऽधिपूर्वकात् ‘ इण् गतौ ’ अस्मात् ‘ अकर्त्तरि च कारके सज्ञायाम् ’ (६ । ४ । २८) इति वचनबलेन बाहुलकाद्वाऽधिकरणे घञ् ।

૩-अथवा ‘ इक् स्मरणे ’ अस्मात्पूर्वोक्तोपसर्गद्वयविशिष्टात्माग्वद् घञ् ।

‘નમો સિદ્ધાણ નમો લોએ સવ્વસાહૂણ’ ઇત્યુભયાત્મક એવ નમસ્કાર ઉચ્ચેત ન તુ પશ્ચવિધાત્મક, સાધુત્વાવચ્છિન્નતયાઽર્હદાચાર્યાદીના સાધુજ્વન્તર્ભાવાત્, સિદ્ધાના ચ કૃતકૃત્યતયા સાધુગ્રહણેનાઽગ્રહણાત્ । ન દ્વિતીયમ્, એવ સતિ હિ ‘નમો ઉસમસ્સ’ ‘નમો અજિઅસ્સ’ ઇત્યાત્રેકૈકશો નામગ્રહણપૂર્વકમેવોક્તિર્યુક્તા, તતશ્ચ નમસ્કારાઽનન્ત્ય પ્રાપ્નોતિ, અર્હતા સિદ્ધાના ચ સમયભેદેનાઽનન્ત્યાત્, એવાચાર્યોપાધ્યાયસાધુનામપીતિ સર્વથા પશ્ચવિધાત્મકો નમસ્કારો ન યુજ્યત ઇતિ, અત્રોચ્યતે—અર્હદાદિષુ નિયમેન સાધુગુણસદ્ભાવાત્સાધુત્વ, સાધુષુ ત્વર્હત્વા-

હો ચુકે હૈ, ઇસલિએ સાધુ-પદસે ગ્રહણ નહીં હોસકને કે કારણ ‘નમો સિદ્ધાણ’ ઓર અરિહન્ત આચાર્ય ઉપાધ્યાયોં મેં સાધુપન રહને કે કારણ ‘નમો લોએ સવ્વસાહૂણ’ ઇતના હી કહના આવશ્યક થા । યદિ વિસ્તારસે કિયા ગયા માનેં તો ‘નમો ઉસમસ્સ’ ‘નમો અજિઅસ્સ’ ઇત્યાદિ પ્રકાર સે સવ તીર્થઢૂર અરિહન્તોં કા, તથા ‘નમો એગસમયસિદ્ધાણ’ ‘નમો દુસમયસિદ્ધાણ’ ઇત્યાદિ પ્રકારસે યાવત્ સખ્યાત અસખ્યાત અનન્તસમય સિદ્ધોં કા એવ આચાર્યાદિકોં કા અલગ ૨ નામ ગ્રહણ કરને સે અનન્ત ભેદ હો જાયંગે, અત એવ યહ પચ નમસ્કાર ન સક્ષેપસે કહ સકતે હૈ ઓર ન વિસ્તારસે ।

ઉત્તર-માના કિ અરિહન્ત આચાર્ય આદિ ભી સાધુ હૈં પરન્તુ સામાન્યતયા સાધુ શબ્દસે નમસ્કાર કરને પર સિર્ફ સાધુનમસ્કારકા

પદ્ધતી અહણુ નહિ થઈ શકવાના કારણે ‘નમો સિદ્ધાણ’ અને અરિહન્ત આચાર્ય ઉપાધ્યાયોમા સાધુપણુ રહેવાના કારણે ‘નમો લોએ સવ્વસાહૂણ’ એટલુ જ કહેણુ જરૂરી હતુ જે તમે વિસ્તારથી કહેવામા આવ્યુ છે એમ માનશે તો ‘નમો ઉસમસ્સ’ ‘નમો અજિઅસ્સ’ ઇત્યાદિ પ્રકારથી સર્વ તીર્થ કર અરિહન્તોના તથા ‘નમો એગસમયસિદ્ધાણ’ ‘નમો દુસમયસિદ્ધાણ’ ઇત્યાદિ પ્રકારથી તમામ સખ્યાત અસખ્યાત અનન્તસમય સિદ્ધોના, એ પ્રમાણે આચાર્યાદિના જુદા-જુદા નામ અહણુ કરવાથી અનત ભેદ થઈ જશે એ કારણથી આ પાંચ નમસ્કાર સક્ષેપથી છે અથવા તો વિસ્તારથી છે એમ કહી શકાશે નહિ

ઉત્તર—માની ત્યો કે અરિહન્ત આચાર્ય આદિ પણ સાધુ છે, પરન્તુ સામાન્ય રીતે સાધુ શબ્દથી નમસ્કાર કરવાથી માત્ર સાધુનમસ્કારનું જ ક્ષણ થાય

‘સર્વસ્ય=સર્વજ્ઞસ્ય (અર્હતઃ) સાધવઃ સર્વસાધવઃ । અથવા પ્રાકૃતે સર્વ-સાર્વજન્યોઃ ‘સન્વ’ इतिरूपसत्त्वात् सार्वस्य=सर्वज्ञस्येत्यादि प्राग्वत् तेभ्य इत्यर्थः । સાધવો હિ શબ્દરૂપગન્ધરસસ્પર્શપશ્ચક્રકામગુણનિવૃત્તા વિશુદ્ધચારિત્રેણ વિવિધાભિગ્રહાદિ નિયમેશ્વ સયુક્તા’ મોક્ષગુણસાધકા ઉપદેશદ્વારા સર્વપ્રાણિહિતકારિણશ્ચ, અતएव नमस्कृताः । आह-सूत्रप्रवृत्तिर्द्विधा सक्षेपतो विस्तरतो वा, सक्षेपतो यथा-सामायिकसूत्रम्, विस्तरतो यथा-द्वादशाङ्गगणितकः तत्रेदं नमस्कारात्मकं सूत्रं किं सक्षेपमधिकृत्य वर्तते विस्तरं वा ? नात्र, तथा सति हि

સર્વજ્ઞ યા સર્વજ્ઞ કે સાધુઓં કો નમસ્કાર હો ।

શબ્દ-રૂપ-ગન્ધ-રસ ઓર સ્પર્શ, ઇન પાચ કામગુણોં સે નિવૃત્ત ઓર વિશુદ્ધ ચારિત્ર તથા અનેક અભિગ્રહોં સે યુક્ત, એવ આત્મ કલ્યાણ કે લિયે મોક્ષગુણ કે સાધક તથા ઉપદેશ દ્વારા પ્રાણી માત્ર કે હિતકારી હોને સે સાધુ નમસ્કાર કે યોગ્ય હૈ ।

યહા પ્રશ્ન ઉઠતા હૈ કિ-સૂત્રની પ્રવૃત્તિ યા તો સક્ષેપસે હોતી હૈ, જૈસે સામાયિક સૂત્ર, યા વિસ્તાર સે-જૈસે-દ્વાદશાંગ ગણિપિટક, સો યહ નમસ્કાર કયા સક્ષેપસે કિયા ગયા હૈ યા વિસ્તારસે ? યદિ કહેં કિ સક્ષેપસે કિયા ગયા હૈ તો સિદ્ધ ભગવાન્ કૃતકૃત્ય

અથવા સર્વજ્ઞના સાધુઓને નમસ્કાર કરે છું.

શબ્દ-રૂપ-ગન્ધ-રસ અને સ્પર્શ આ પાચ કામગુણોથી નિવૃત્ત અને વિશુદ્ધ ચારિત્ર તથા અનેક અભિગ્રહોથી યુક્ત એ પ્રમાણે આત્મકલ્યાણ માટે મોક્ષ ગુણના સાધક તથા ઉપદેશ દ્વારા પ્રાણી માત્રના હિતકારી હોવાથી સાધુ નમસ્કાર કરવા યોગ્ય છે

અહિં એક પ્રશ્ન ઉઠે છે કે-સૂત્રની પ્રવૃત્તિ સક્ષેપથી હોય છે, જેવી રીતે-સામાયિક સૂત્ર અથવા તો વિસ્તારથીજેમ કે દ્વાદશાંગ ગણિપિટક, તો આ નમસ્કાર સક્ષેપથી કહેવામા આવ્યો છે કે વિસ્તારથી ? જો કહેશે કે સક્ષેપથી કહેવામા આવ્યો છે તો સિદ્ધ ભગવાન કૃતકૃત્ય થયેલા છે એટલા માટે સાધુ

૧- देवादिशब्दस्य देवदत्तादिपरत्ववत् “विनापि प्रत्यय पूर्वोत्तपदयोर्वा लोपो वाच्यः” (३ । २ । ८८) इति कात्यायनवार्त्तिकानुशासनबलात् सर्वपद सर्वज्ञपर तेन सर्वस्य=सर्वज्ञस्येत्यर्थः ।

આહ—ક્રમ આનુપૂર્વી, સા ચ દ્વિવિધા—પૂર્વાનુપૂર્વી પશ્ચાદાનુપૂર્વી ચ, ક્રમેણ પ્રથમમારભ્યાન્તાનુધાવન પૂર્વાનુપૂર્વી, વ્યુત્ક્રમેણાન્તમારભ્ય પ્રથમાનુધાવન પશ્ચાદાનુપૂર્વી, તત્રાયમર્હદાદિનમસ્કારક્રમો ન પૂર્વાન્વયી કૃતસકલકૃત્યાના ‘સિદ્ધાણ ણમોકાર કરેતિ’ (આચા૦ દ્વિ. શ્રુ. ૧૫ મા. અ.) इत्यादिनाऽर्हद्विरपि नमस्कार्यतया सर्वाभ्यर्हितत्वेन प्राक् प्रयोज्याना सिद्धानामादावनभिधानात् । नापि पश्चादानुपूर्वी, तथा सति हर्हदादिपञ्चके सर्वाप्रधानभूतानादी साधूस्तत उपाध्यायस्तत आचार्यस्ततोऽर्हतः प्रतिपाद्य सिद्धाना प्रतिपादन युज्यते न तु यथोक्त, तस्मान्नेय पूर्वानुपूर्वी नापि पश्चानुपूर्वीति ।

પ્રશ્ન—આનુપૂર્વી (ક્રમ) દો પ્રકાર કી હૈ, એક પૂર્વાનુપૂર્વી ઔર દૂસરી પશ્ચાદાનુપૂર્વી, પ્રધાન ક્રમકો પૂર્વાનુપૂર્વી કહતે હૈ ઔર અપ્રધાન ક્રમકો પશ્ચાદાનુપૂર્વી, ઉનમૈં યહ નમસ્કાર યદિ પૂર્વાનુપૂર્વી સે કિયા ગયા માને તો ‘અરિહતાણ’ સે પહેલે ‘સિદ્ધાણ’ કહના ચાહિયે, ક્યોંકિ કૃતકૃત્ય હોને તથા અરિહન્તોંસે નમસ્કાર કિયે જાને કે કારણ સિદ્ધ ભગવાન અરિહન્તોં સે બી શ્રેષ્ઠ હૈ, યદિ પશ્ચાદાનુપૂર્વી સે માને તો સવ સે પ્રથમ સાધુ, તવ ઉપાધ્યાય, અનન્તર આચાર્ય, તદનન્તર અરિહન્ત, વાદમૈં સિદ્ધ કો નમસ્કાર કિયા જાના ચાહિયે, ન કિ ઉક્ત રીતિસે, અતઃ યહ નમસ્કાર આનુપૂર્વી (ક્રમ) સે રહિત હૈ, ઇત્યાદિ ।

પ્રશ્ન—આનુપૂર્વી (ક્રમ) બે પ્રકારની છે એક પૂર્વાનુપૂર્વી અને બીજી પશ્ચાદાનુપૂર્વી પ્રધાન ક્રમને પૂર્વાનુપૂર્વી કહે છે, અને અપ્રધાન ક્રમને પશ્ચાદાનુપૂર્વી કહે છે, તેમા આ નમસ્કારને જો પૂર્વાનુપૂર્વીથી કરેલા છે એમ માનશો તો અરિહતાણ વી પહેલા સિદ્ધાણ કહેવું જોઈએ કારણ કે કૃતકૃત્ય થવાથી તેમજ અરિહન્તોંએ તેમને નમસ્કાર કરેલા છે તે કારણથી સિદ્ધ ભગવાન અરિહન્તોંથી પણ શ્રેષ્ઠ છે હવે જો પશ્ચાદાનુપૂર્વીથી માનશો તો સૌથી પ્રથમ સાધુ, તે પછી ઉપાધ્યાય, અનન્તર આચાર્ય, ત્યાર પછી અરિહન્ત અને છેવટે સિદ્ધને નમસ્કાર કરવો જોઈએ નહિ કે ઉપર પ્રથમ કહેવા પ્રમાણે એ કારણથી આ નમસ્કાર—પદ્ધતિ આનુપૂર્વી (ક્રમ)થી રહિત છે વગેરે

૧—‘અભ્યર્હિતચ’ ઇતિ (કા. શ્રા ૧.૪.૧૨) વચનેનાઽભ્યર્હિતસ્ય પૂર્વપયોગવિધાનાત્ ।

દયો ભજનીયાઃ (કચિત્સમગ્રન્તિ કચિન્ન), ઇતિ સામાન્યતઃ સાધુશબ્દેન નમસ્કારેઽર્હન્નમસ્કારજન્યસ્ય વિશિષ્ટફલસ્ય પ્રાપ્તિર્ન જાતુ સમગ્રતિ, નહિ નરસામાન્ય નમસ્કારેણ રાજાદિનમસ્કારજન્ય વિશિષ્ટ ફલ કચિદપિ દૃષ્ટવ્યમ્ । નરસામાન્યગ્રહણેન વિશિષ્ટરાજાદિપરિજ્ઞાનસ્ય તત્પ્રસાદસ્ય ચૈકાન્તમસમ્ભવાદિતિ સામાન્યતો નમસ્કારદ્વૈરિય વિશિષ્ટફલાનુત્પાદકત્વાદુપેક્ષ્ય પञ्ચવિધો નમસ્કાર આશ્રિત ઇતિ સક્ષેપત્ત ઇત્યય નમસ્કારો ન વિસ્તરત્ત ઇતિ ।

હી ફલ હોતા હૈ, અરિહન્ત આચાર્ય આદિ કે નમસ્કાર કા નહીં, ક્યોંકિ નમસ્કાર એસે શબ્દો સે કિયા જાતા હૈ જિનસે નમસ્કરણીયમેં રહે હુએ અસાધારણ ગુણોંકા બોધ હોસકે, અરિહન્ત આચાર્ય આદિમેં રહે હુએ ગુણોંકા બોધ અરિહન્ત આચાર્ય આદિ શબ્દોં સે હી હોસકતા હૈ, સાધુશબ્દોં સે કદાપિ નહીં ! જૈસે કોઈ યહ જાનકર કિ રાજા ભી તો મનુષ્ય હી હૈ, મનુષ્ય શબ્દસે રાજાકો નમસ્કાર કરના ચાહે તો વહ રાજાકે નમસ્કાર કા ફલ નહીં પ્રાપ્ત કર સકતા હૈ, રાજાકે નમસ્કારકે લિએ ઉસકા પરિચાયક શબ્દ ચાહિયે, અત્ત એવ જિતને શબ્દોં કે વિના વિશેષ-વિશેષ અવસ્થા મેં રહે હુએ અરિહન્ત સિદ્ધ આદિકોં કા ગ્રહણ હોના અસમ્ભવ યા, ઉતને શબ્દોંકા ગ્રહણ કરનેપર ભી યહ પચ નમસ્કાર સક્ષેપસે હી હૈ વિસ્તારસે નહીં ।

છે-મળે છે પણ આચાર્ય આદિના નમસ્કારનું ફળ મળતું નથી, કારણ કે - નમસ્કાર એવા શબ્દોથી કરવામા આવે છે કે જેના વડે નમસ્કરણીયમા રહેલા અસાધારણ ગુણોનો બોધ થઈ શકે અરિહન્ત, આચાર્ય આદિમા રહેલા ગુણોનો બોધ અરિહન્ત આચાર્ય વગેરે શબ્દોથીજ થઈ શકે છે, પરંતુ સાધુ શબ્દથી કદાપિ થઈ શકશે નહિ જેમ કેઈ માને કે રાજા પણ મનુષ્ય છે મનુષ્ય શબ્દથી રાજાને નમસ્કાર કરવા ઇચ્છા કરે તો તે માણસ રાજાને નમસ્કાર કરવાનું ફળ પ્રાપ્ત કરી શકશે નહિ રાજાને નમસ્કાર કરવા માટે રાજાના નામનો પરિચય કરાવનાર શબ્દનોજ ઉપયોગ કરવો જોઈએ એ કારણથી જેટલા શબ્દો વિના વિશેષ-વિશેષ અવસ્થામા રહેલા અરિહન્ત સિદ્ધ આદિ સૌનું પ્રહણ કરવું અસમ્ભવ છે એટલા શબ્દોનું પ્રહણ કરતા છતાય આ પચનમસ્કાર સક્ષેપથીજ છે, વિસ્તારથી નહિ

છદ્ધસ્થતીર્થઙ્કરાદિક્રમમપેક્ષામહે, કિં તર્હિ ? સમુત્પન્નજ્ઞાનદર્શનધરાઽર્હદાદિક્રમમેવ, તસ્માત્તીર્થપ્રવર્ત્તકત્વાદેશનયાઽપારસસારપારાવારોત્તારણેન ભવ્યેભ્યઃ સિદ્ધગતિ-પદત્વાન્નાર્હન્ત એવાઽભ્યર્હન્તીત્યેપામેવ યુક્તઃ પ્રથમો નમસ્કારઃ ।

નનુ તર્હ્યાચાર્યોપદેશતોઽપિ કદાચિદ્ભવ્યૈર્હતામવગતેરાચાર્યાદિરેવ ક્રમો વિધેયો નાર્હદાદિઃ, ન ચ તથા વિહિતોઽસ્તિ, તસ્માદ્ યો યસ્યોપદેશકસ્તસ્ય તદપેક્ષયાઽભ્યર્હિતત્ત્વેન પ્રાગુપાદાનમિતિ ત્વદુક્તમયુક્તમ્, તથા સતિ હિ ગૌતમા-દિગણધરાદિભિર્હદેશનયા સિદ્ધાના, ગૌતમાદિગિણ્યોપશિષ્યાદિભિશ્ચ સ્વસ્વગુરુપ-દેશતઃ સિદ્ધાદીના પરિજ્ઞાનાદ્ગણધરાણામર્હદાદિસ્તચ્છિષ્યાદીના ચાઽઽચાર્યાદિઃ ક્રમ આપ્યેતેતિ પૂર્વપક્ષિસમાક્ષેપઃ ।

નહીં સકતે હૈં, હસલિયે નમસ્કાર મન્ત્ર સે કહે હુએ અરિહન્ત પદસે કેવલી અરિહન્તોંકા હી ગ્રહણ હૈ, જો કિ સિદ્ધ ભગવાનકે સ્વરૂપ કા ખી ઉપદેશ દેકર ભવ્યોં કે અત્યન્ત ઉપકારી હૈ, અતઃ યહ નમસ્કાર પૂર્વાનુપૂર્વી સે કિયે જાને કે કારણ ક્રમશૂન્ય નહીં હૈ ।

પ્રશ્ન—જૈસે અરિહન્તકે ઉપદેશસે સિદ્ધ ભગવાનકા જ્ઞાન ભવ્યોં કો હોતા હૈ વૈસેહી આચાર્યકે ઉપદેશસે અરિહન્તોંકા જ્ઞાન હોના સમ્ભવ હૈ, ઁસી અવસ્થામેં અરિહન્તકી ખી અપેક્ષા આચાર્ય હી કો પ્રથમ નમસ્કાર હોના ચાહિયે, અતઃ ઉપદેશક કે ક્રમસે યહ નમસ્કાર કિયા ગયા હૈ, ઁસા કહના ઉચિત નહીં ।

જ્ઞાન ઉત્પન્ન થયેલુ નથી તેથી તેઓને અરિહન્ત અથવા સિદ્ધ શબ્દથી કહી શકાય જ નહિ એટલા માટે નમસ્કાર મત્રમા કહેલા અરિહન્ત પદથી કેવલી અરિહન્તોનુ જ અહુણુ થઈ શકે, જે અરિહન્ત, સિદ્ધ ભગવાનના સ્વરૂપને ઉપદેશ આપીને ભવ્ય હોવાને અત્યન્ત ઉપકારી છે એ કારણથી આ નમસ્કાર પૂર્વાનુપૂર્વીથી કરવામા આવ્યા છે તેથી ક્રમશૂન્ય નથી

પ્રશ્ન—જે પ્રમાણે અરિહન્તના ઉપદેશથી ભવ્ય હોવાને સિદ્ધ ભગવાનનું જ્ઞાન થાય છે, તેવીજ રીતે આચાર્યના ઉપદેશથી અરિહન્તોનું જ્ઞાન થવા સભવ છે એવી સ્થિતિમા અરિહન્તની અપેક્ષાએ પણ આચાર્યને જ પ્રથમ નમસ્કાર થવો જોઈએ એ કારણથી ઉપદેશકના ક્રમથી આ નમસ્કાર કરવામા આવ્યા છે એમ કહેવુ તે યોગ્ય નથી

તત્રોચ્યતે—નમસ્કારમૂત્રમ્નિદ નાનુપૂર્વીમતિર્તતે પૂર્વાનુપૂર્વ્યાઃ સદ્ભાવાત્, યદુક્તમ્—‘અભ્યર્હિતત્વેનાદૌ સિદ્ધામિધાન યુક્તમ્’ इति, તન્મન્દમ્, અર્હદુપદેશે- નૈવ સિદ્ધાવગતેરર્હતામેવ તદપેક્ષયાઽપ્યભ્યર્હિતત્વાત્ કૃતસકલકૃત્યત્વસ્ય ચો ભયત્ર સામ્યાત્, અર્હન્નમસ્કાર્યત્વ તુ ન હેતુઃ, યતો ભૂતા માત્રિનશ્ચાનન્તાઃ સિદ્ધા અપિ કદાચિચ્છદ્ધસ્થાવસ્થાયા કૃતાર્હન્નમસ્કારા एव । ‘छद्मस्था’ सन्तो भगवन्तोऽर्हन्तो नमस्कुर्वन्ति चेद्गुणाधिकान् सिद्धान्नमस्कुर्वन्तु नाम, નૈતાવતા ન’ કિશ્ચિદાચ્છિન્નતે કેવલોત્પત્તાવેવાર્હત્વપ્રાપ્તિસ્તદાનીમર્હત્વાસત્ત્વાત્ । ન ઠિ ત્રય

ઉત્તર—નમસ્કાર કરને વાલે ભવ્યોં કે લિષ સિદ્ધિ ભગવાન કી અપેક્ષા વ્યવહારનયસે અરિહન્ત હી મેં પ્રધાનતા હૈ, -કારણ યહ કિ સિદ્ધોં કા ભી જ્ઞાન ભવ્યોં કો અરિહન્તોં કે હી ઉપદેશસે હોતા હૈ, સાથ હી તીર્થપ્રવર્ત્તક હોને સે અપની દેશના દ્વારા ભવ્યોં કો ભવસમુદ્રસે પારકર સિદ્ધગતિ તક પહુંચાનેવાલે અરિહન્ત હી હૈં, રહી વાત કૃતકૃત્યતા ઓર અરિહન્તસે સિદ્ધોંકો નમસ્કાર કિયે જાને કી, સો દોનો મેં બરાબર હૈ, ક્યોંકિ અરિહન્તકા ભી કોઈ કર્ત્તવ્ય વાકી નહી રહ પાયા હૈ ઓર અનન્ત સિદ્ધોં મેં સે ભાવી (હોને-વાલે) સિદ્ધ ભી છદ્મસ્થ અવસ્થા મેં અરિહન્તકો નમસ્કાર કરતે હી હૈં, અતઃપચ છદ્મસ્થ અવસ્થામે અરિહન્ત સિદ્ધોં કો ઓર ભાવિ સિદ્ધ અરિહન્તોં કો નમસ્કાર કરતે હૈં, ક્યોંકિ ઉસ અવસ્થામે કેવલજ્ઞાન ઉત્પન્ન ન હોને કે કારણ ઉનકો અરિહન્ત યા સિદ્ધ શબ્દ સે કહ હી

ઉત્તર—નમસ્કાર કરવાવાળા ભવ્ય જીવો માટે સિદ્ધ ભગવાનની અપેક્ષા વ્યવહારનયથી અરિહન્તોની પ્રધાનતા છે કારણ કે સિદ્ધોનું પણ જ્ઞાન ભવ્ય જીવોને અરિહન્તોના ઉપદેશથી થાય છે તેમજ તીર્થપ્રવર્ત્તક હોવાથી પોતાના ઉપદેશ દ્વારા ભવ્ય જીવોને ભવ સમુદ્રથી પાર ઉતારીને સિદ્ધગતિ સુધી પહોંચાડનારા અરિહન્ત જ છે હવે કૃતકૃત્યની અને અરિહન્તો સિદ્ધોને નમસ્કાર કરે છે તે વિષેની વાત કરવી રહી તે બન્નેમા બરાબર છે, કારણ કે અરિહન્તને પણ કોઈ કર્ત્તવ્ય ણાડી રહ્યું નથી અને અનન્ત સિદ્ધોમાથી ભાવિમા થવાવાળા સિદ્ધ પણ છદ્મસ્થ અવસ્થામા અરિહન્તને નમસ્કાર કરે છે જ એ કારણથી છદ્મસ્થાવસ્થામા અરિહન્ત સિદ્ધોને અને ભાવિ સિદ્ધો અરિહન્તોને નમસ્કાર કરે છે કારણ કે તે અવસ્થામા કેવલ

पकृष्टत्वबोधनपूर्वकपरनिष्ठोत्कृष्टत्वपकारकज्ञानानुकूलः शिरोनमनादिलक्षणो व्यापारविशेषः । 'सर्वपापप्रणाशनः' सर्वपापप्रणाशनः, सर्वाणि=निखिलानि अष्टावपीत्यर्थः, प=पङ्क्तिमर्थान्मलिनभावमापयन्ति=प्रापयन्तीति, पे=पातालेऽर्थान्नरकाद्यधोगतौ आपयन्ति=प्रापयन्तीति, प=क्षेमम्, आ=समन्तात् पिबन्ति=शोषयन्तीति, नरकादिकुगतिषु जीवान् पातयन्तीति, क्लृप्तभाव-रजोभिरात्मान् 'पाशयन्ति'=मलिनयन्तीति वा 'पापानि'=ज्ञानावरणीयादि-कर्माणि, तेषां प्र=परिपूर्ण 'नाशन'=वि वसक, 'च' किञ्च, 'सर्वेसि' सर्वेषां 'मगलाण' मङ्गलानां=द्रव्यभावभेदभिन्नानां, निर्द्वारणे पृष्टी, तेन सर्वेषु मङ्गले-ष्वित्यर्थः, 'पदम' प्रथम=मुख्यमिति यावत् मङ्गल 'हवइ' भवति-अस्तीत्यर्थः ॥१॥

॥ इति नमस्कारमन्त्रव्याख्या ॥

अपेक्षा अन्य को अन्तःकरण से उत्कृष्ट समझते हुए शिर आदि पाच अंगों को झुकाना) आत्मा को मलिन करने वाले, अथवा नरकादि कुगति में पहुँचाने वाले, या आत्मकल्याण का नाश करनेवाले सब (आठों) पापों (ज्ञानावरणीयादि कर्मों) का नाश करने वाला, तथा द्रव्य-भावरूप सर्व मंगलों में श्रेष्ठ मंगलस्वरूप है ॥१॥

॥ इति नमस्कारमन्त्रव्याख्या ॥

'एसो' इत्यादि आ पञ्च-परमेष्ठि-नमस्कार (पेतानी अपेक्षा अन्यने अन्तःकरणे उत्कृष्ट समझने भस्तक आदि पांचे अंगोने नभावषु), आत्माने मलिन करवावाणा अथवा नरकादि कुगतिमा लध जनारा, अथवा आत्मकल्याण नाश करवावाणा सर्व(आठ)पाप(ज्ञानावरणीयादि कर्मों)ना नाश करना तथा द्रव्य-भाव-रूप सर्वमंगलोमा श्रेष्ठ मंगल-स्वरूप छे ॥ १ ॥

॥ इति नमस्कार-मन्त्र-व्याख्या ॥

१- पाशुः=वृलिः । 'पाशुर्न न द्वयोरज' इत्यमरः, सोऽस्यास्तीति पाशुमान्, पाशुमन्त कुर्वन्ति पाशयन्ति, 'तत्करोति तदाचष्टे' इति णिच्चीष्टवद्भावाद्धिमन्तोर्लुगिति मत्तुपो लुक् तत्तष्टिलोपः ।

२- पापशब्दस्य तज्जनके लक्षणयाऽत्र कर्माष्टकपरत्वम् ।

३- 'नाशन' नन्नादित्वात्कर्त्तरि ल्यु ।

અત્રાભિધીયતે—યોઽયમુપદેશક્રમોઽપેક્ષિતસ્તત્ર સર્વપ્રાથમ્યમર્હતામેવ, ગણધરેભ્યો હર્હતામેવ પ્રથમમુપદેશ', તદિતરે ગુર્માચાર્યાદયસ્તુ કેવલમર્હદુપદિષ્ટસ્યૈવાનુવદન્તેતિ યત્રપિ તદુપદેશેન સિદ્ધાદયો જ્ઞાયન્તે તથાપિ તસ્મિન્નુપદેશે તે ન સ્વતન્ત્રા અપિ તર્હદુપદેશાધીના ણ્વેતિ પ્રોક્તોઽર્હદાદિક્રમ इत्यास्ता વિસ્તરઃ॥
इत्थं नमस्कृत्य तत्फलमाह—

॥ मूलम् ॥

एसो पचनमुक्कारो, सर्वपापप्पणासणो ।

मगलाण च सर्वेसिं, पढम हवइ मगल ॥१॥

॥ छाया ॥

एष पञ्चनमस्कार, सर्वपापप्रणाशन' ।

मङ्गलाना च सर्वेषा, प्रथम भवति मङ्गलम् ॥१॥

(टीका)

‘एसો’—एष=प्रागुक्तस्वरूप. ‘पचनमुक्कारो’ पञ्चनमस्कार’, पञ्ચાનામ્=અર્હત્સિદ્ધાચાર્યોપાયાયસર્વસાધુરૂપાણા પરમેષ્ઠિના નમસ્કારઃ=સ્વનિષ્ઠા-

ઉત્તર—આચાર્ય આદિ કા ઉપદેશ ગણધરોં કે પ્રતિ અરિહન્ત ભગવાનસે કિયે ગયે પ્રથમ ઉપદેશ કા હી અનુવાદ હૈ સ્વતન્ત્ર નહીં, હસલિયે આચાર્ય આદિ કે ઉપદેશસે જો અરિહન્તકા જ્ઞાન હોતા હૈ ઉસમેં ભી કારણ અરિહન્ત હી હૈં, અત એવ અરિહન્તકો નમસ્કાર પહેલે કિયા ગયા હૈ ।

अब नमस्कारका फल कहते हैं—

‘एसो’ इत्यादि । यह पंचपरमेष्ठियोंका नमस्कार (अपनी

ઉત્તર—આચાર્ય આદિનો ઉપદેશ ગણધરો પ્રતિ અરિહન્ત ભગવાને કરેલા પ્રથમ ઉપદેશનો જ અનુવાદ છે, સ્વતન્ત્ર નથી એ કારણથી આચાર્ય આદિના ઉપદેશથી જે અરિહન્તનું જ્ઞાન થાય છે તેમા પણ અરિહન્ત જ કારણ રૂપ છે એટલે અરિહન્તને પ્રથમ નમસ્કાર કરવામા આવ્યા છે હવે નમસ્કારનું ફળ કહે છે

૧— નમ.પૂર્વકાત્ કૃગાતોર્ભાવે ઘજ, ‘સાક્ષાત્પ્રભૃતીનિ ચ’ (૧।૪।૭૪) इति नम.शब्दस्य गतिसञ्ज्ञाया ‘कुगतिप्रादय’ (२।२।१८) इति समासे ‘नमस्पुरसोर्गत्यो’ (८।३।४०) इति नम शब्दस्य विसर्गस्य सत्वम् ।

॥ टीका ॥

भन्दते=कल्याण सुख वा प्रापयतीति ^१भदन्तः, यद्वा भव=ससार-
मन्तयति=दूरीकरोतीति,^२ अथवा भवस्य=ससारस्याऽन्तो =ऽवसान येनेति
^३भवान्तः । यद्वा भयस्य=जन्मजरामरणरूपस्यान्तो=नाशो येनेन्त भयान्तः
स एव ^४भदन्त इति वा, अपि वा भय ददतीति भयदा भोगास्तानन्तयतीति
^५भदन्तः, यद्वा दान्त=दमित भय येन स भयदान्त स एव ^६भदन्तः । किंवा भान्ति=
दीप्यन्ते-समुल्लसन्तीत्यर्थात् स्वस्वविषयेष्विति भानि=इन्द्रियाणि तानि दान्तानि येन
स भदान्तः स एव ^७भदन्तः, अथ च भाति=सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्र्यैर्दीप्यते इति

‘करेमि भते’ इत्यादि । हे भदन्त=कल्याण तथा सुखको
देने-वाले, अथवा हे भवान्त=ससार का अन्त करनेवाले, अथवा
हे भयान्त=जन्मजरामरणरूप भय तथा इहलोकादि सात भयों का
अन्त करनेवाले, अथवा हे भयदान्त=अर्थात् कामभोगों का नाश
करनेवाले, या भयद=भयका दमन करनेवाले, अथवा हे भदान्त=
भ-इन्द्रियगण, उसका दमन करनेवाले, अथवा हे भान्त=सम्यग्-

करेमि भते इत्यादि हे भदन्त=कल्याण तथा सुखने देवावाणा, अथवा
हे भवान्त=ससारने। अत करवावाणा, अथवा हे भयान्त=जन्म जरा मरण इय
लय तथा इहलोकादि सात लयने। अत करवावाणा, हे भयदान्त=अर्थात् काम
भोगोने। नाश करवावाणा, अथवा हे भदन्त=भ- अटके इन्द्रियगणुनु दमन

१-‘भदन्तः’-अन्तर्भावितण्यर्थात् ‘भदि कल्याणे सुखे च’ अस्मादीणादि-
केऽन्तप्रत्यये पृपोदरादिपाठाद्वातुनकारलोपः ।

२-भवान्तः (भदन्तः) ‘कर्मण्यण्’ (पा० ३।२।१) इत्यण्, शकन्वा-
देराकृतिगणत्वात्पररूपे पृपोदरादिपाठादस्य दः ।

३-‘भवान्तः’-व्यधिकरणपदो बहुव्रीहि पररूपादेशो प्राग्वत् ।

४-‘भयान्तः’-पृपोदरादित्वात्सिद्धः ।

५-‘भयदान्तः’-कर्मण्यणन्तभयदान्तशब्दस्य पृपोदरादित्वाद्भदन्त इति ।

६-‘यद्वा-‘भयदान्तः’ निष्ठान्तस्य परनिपात आहिताग्न्यादिपाठाद्, यलोपो
ह्रस्वश्च पृपोदरादिकृतः ।

७-‘भदान्तः’-निष्ठान्तपरनिपातः प्राग्वत्, पृपोदरादित्वादाकारस्य ह्रस्वः ।

। અથ પ્રથમાધ્યયનમ્ ।

નહાકૃષ્ટાયા ભૂમૌ નિપુણેન કેનાપિ કૃપીચ્છેન વીજમુખ્યતે ઇતિ હેતોઃ
પ્રોક્તેભ્યશ્ચ હેતુભ્યોઽર્હદાદિપશ્ચક નમસ્કૃત્ય શિષ્યઃ સામાયિક ચિકીર્ષન્નાહ—

॥ મૂલમ્ ॥

કરેમિ ^૧ભંતે ! સામાયિક, સર્વં સાવજ્ઞ જોગ પચ્ચક્ખામિ
યાવજ્જીવાણ, તિવિહ તિવિહેણ મણેણં વાયાણ કાણ્ણ ન કરેમિ
ન કારવેમિ કરતપિ અન્ન ન સમણુજાણામિ, તસ્સ ભંતે !
પહિક્કમામિ નિંદામિ ગરિહામિ અપ્પાણ વોસિરામિ ॥સૂ૦ ૧॥

॥ છાયા ॥

કરોમિ ભદન્ત ! સામાયિક, સર્વ સાવત્ર યોગ પ્રત્યાખ્યામિ યાવજ્જીવયા,
ત્રિવિધ ત્રિવિધેન મનસા વાચા કાયેન ન કરોમિ ન કારયામિ કુર્વન્તમપ્યન્ય ન
સમનુજાનામિ, તસ્ય ભદન્ત ! પ્રતિક્રામામિ નિન્દામિ ગર્હામિ આત્માન
વ્યુત્સજામિ ॥ ૧ ॥

જેસે કોઈ ભી ચતુર કિસાન પરત (બિન-જોતી) જમીનમે
વીજ નહીં બોતા, ઓર કોઈ યદિ બોચે ભી તો વહ વીજ વ્યર્થ જાતા
હૈ, વૈસેહી પચપરમેષ્ઠી-નમસ્કાર સે હૃદયક્ષેત્ર કો પવિત્ર કિયે વિના
સામાયિક સફલ નહીં હો સકતી ! અતઃપ્ર શિષ્ય પહેલે નમસ્કાર
કરકે સામાયિક કરતા હૈ—

જેમ કેઈ ચતુર ખેડુત ખેડ્યા વિનાની જમીનમા બી વાવતો નથી અને
વાવે તો તે બીજ નકામું બાય છે તેમ પચ-પરમેષ્ઠી-નમસ્કારથી હૃદયરૂપી
જમીનને પવિત્ર કર્યા વિના સામાયિક સફળ નથી થઈ શકતી ! તેટલા માટે શિષ્ય
પ્રથમ નમસ્કાર કરે છે

૧-પ્રાકૃતશૈલ્યા ‘અત ઇત્સો પુસિ, (૮।૪।૨૮૭) ઇતિ પ્રાકૃતસૂત્રેણૈકારાદેશે
‘ભંતે’ ઇતિ સિદ્ધમ્ ।

समाचरामि । एव प्रतिज्ञाय सामायिकविधिस्वरूपमाह—‘सर्व’ इत्यादिना, न
वदितु योग्यम्=अवयम् अवयेन=सकलतीर्थकरणपरादिविगर्हितेन (पापेन)
सह वर्तत इति सावद्यो=निन्यः, युज्यत इति योजनमिति वा योगः=
कायिक - वाचिक-मानसिकव्यापारः, त सावद्य योग प्रत्याख्यामि=

चिन्तामणि कल्पवृक्ष कामधेनु स्पर्शमणि आदि से भी उत्कृष्ट,
ससाररूपी गहन वनमें भटकते हुए जीवों के सारे दुःखोंका नाश
करने वाले सम्यग्ज्ञान दर्शन चारित्रसे युक्त आत्मस्वरूप की
प्राप्तिरूप सामायिक करता हूँ । अत एव यावज्जीवन (जीवन भर के
लिए) मैं सर्व सावद्य व्यापार का तीन करण तीन योग से त्याग

कल्पवृक्ष, कामधेनु, स्पर्शमणि विगेरेथी पणु अतिश्रेष्ठ जगतइपी लय कर अटवीभा
लटकता प्राणीओना गधा दु ओने। नाश करनार, सम्यग्ज्ञान दर्शन चारित्रथी
युक्त आत्मस्वरूपनी प्राप्तिइय सामायिक कइ छु ओटला भाटे यावज्जीव
(जि हगीबर) हु हरेक सावद्य व्यापारने। त्रणु करण त्रणु योगथी त्याग कइ छु

*—समताभाव की प्राप्ति हुए बिना रागद्वेषका क्षय नहीं होसकता,
रागद्वेष का क्षय हुए बिना केवलज्ञान केवलदर्शन की प्राप्ति नहीं होसकती, और
केवलज्ञान केवलदर्शन की प्राप्ति हुए बिना मुक्ति नहीं मिल सकती, इसलिए मोक्ष
का मूल कारण सामायिक ही है, अतएव इसे केवल सासारिक सुख के देनेवाले
चिन्तामणि पारसमणि आदि से भी उत्तम कहा है ।

× समता भावनी प्राप्ति बिना रागद्वेषने। क्षय थतो नथी अने रागद्वेषना
क्षय बिना केवलज्ञान केवलदर्शननी प्राप्ति थती नथी अने केवलज्ञान केवलदर्शननी
प्राप्ति बिना मुक्ति भलती नथी मोक्षतु भूणसाधन सामायिक न छे, ओथी सामायिक,
केवल सासारिक सुख आपनार चिन्तामणि पारसमणि आदिथी पणु उत्तम कहेल छे

१—‘अवयम्’—ननुपपदाद्वदे ‘वद सुपि क्यप् च (३।१।१७६)
इति प्राप्तौ यत्क्यपौ प्रवाध्य “अवयपण्यवर्या गर्हपणितव्यानिरोपेणु (३।१।
१०१) इतिनिपातनाद्गर्हया यत् । यत्तु ‘वदितु योग्य वत्, न नयमवत्’—मिति
व्याख्यान तद्व्याकरणतत्त्वानवबोधमूलकमेव, ननुपपदादेव वदधातोर्यत्प्रत्ययनि-
पातनस्य प्रागुक्तत्वात् ।

२—योगः—‘युजिर् योगे’ अस्माद्वन् ।

३—प्रत्याख्यामि=प्रत्याङ्पूर्वकस्य रथा ‘प्रत्यने’ इत्यस्य रूपम् ।

भान्तः स एव भदन्तः, (एव यथामति व्युत्पत्त्यन्तरेऽपि निरुक्तोक्तशकटा यनादिमतिपादितरीत्या साधनप्रक्रिया बोद्धव्या ।) तत्सम्बोधने-हे भदन्त ! = हे भगवन् ! अह, समो = रागद्वेषरहितस्तस्याऽऽयो = गमन प्रवृत्तिरिति यावत्, अथ वा समाना = सम्यग्ज्ञानादिरत्नत्रयस्य आयो = लाभः, यद्वा समानि = ज्ञानादीनि तेषु तैर्वा आयो = गमनम्, अपि वा समो = रागद्वेषान्तरस्पृष्टान्तःकरण = स्ववन्निखिलभूत दर्शी विशुद्ध आत्मा तुच्छितानल्पचिन्तामणिकल्पतरुकामत्रेनुभिर्गहनभवगहन परिभ्रमणजसलेशकेशनाशकैरपूर्वेर्ज्ञानदर्शनादिभिः सृष्टत्वात् तस्याऽऽयः = प्राप्तिः - स्वात्मविशुद्धीकरणमिति यावत्, समायः २स एव ३सामायिक, तत् करोमि =

ज्ञान दर्शन चारित्र्यसे देदीप्यमान ! भगवन् ! (गुरुमहाराज !) मैं सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन सम्यक्चारित्र्यरूप रत्नत्रयकी प्राप्ति, अथवा रागद्वेषसे रहित, समस्त जीवों को अपने समान देखनेवाले तथा

करवावाणा, अथवा हे भान्त = सम्यग्ज्ञान दर्शन चारित्र्यी सुशोभित हे भगवन् ! (शुभभट्ट राज !) हे सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन अने सम्यक्चारित्र्य रूप रत्नत्रयकी प्राप्ति अथवा राग अने द्वेषही रहित, दरेक प्राणीने भारी जेभ जेवावाणे तथा चिंतामणि,

१- 'भान्तः'—'भा दीप्तौ' अस्मादीणादिकोऽन्तः प्रत्यय , सिद्धिः पृषोदरादित्वादेव ।

२- 'शैत्य हि यत्सा प्रकृतिर्जलस्य' इत्यादिषु यथेच्छमुद्देश्यगत विधेयगत वा लिङ्गमादाय त्यदादिप्रयोगस्य सुप्रसिद्धत्वादत्र समायशब्दगत पुस्त्वमादाय 'स' इति । तदुक्त- 'किं यत्तत्सास्त्रालाङ्गूलकुदखुरविपाण्यर्थरूप स शब्दः' इति पस्पशाह्निकभाष्यप्रतीकमादाय कैयटे- 'उद्दिश्यमानप्रतिनिर्दिश्यमानयोरेकत्वमापादयन्ति सर्वनामानि पर्यायेण तत्तल्लिङ्गमुपाददते इति कामचारतः स शब्द इति पुल्लिङ्गेन निर्देशः' इति ।

३- 'विनयादिभ्यष्टक् (५ । ४ । ३४) इत्यत्रत्यगणे समायशब्दस्य पाठात्स्वार्थे ठक्, तस्यैकादेश कित्वादादिवृद्धिः । यत्तु कचिदुक्त- 'विनयादिषु 'समय' शब्द एव पठ्यते न तु समायशब्दस्तस्मादत्रैकदेशविकृतस्याऽनन्यत्वात्समयशब्देन समायशब्दस्यापि ग्रहणम्' । यद्वा 'विनयादेराकृतिगणत्वाद्गति' तदुभयमप्यसारम्, समयशब्दवत्समायशब्दस्यापि विनयादिगणे प्रतिपदोक्तपाठाद्विनयादेराकृतिगणत्वे प्रमाणाभावाच्च ।

त्यादिना प्रतिपदमेवोक्तम्, एव सति त्रिविधेनेत्युपादान पुनरुक्तं भवति । यद्वा त्रिविधेनेति विशेषण मनसेत्यादेरेव सभवति, ततश्च त्रिविधेन मनसा, त्रिविधया वाचा, त्रिविधेन कायेनेत्यन्वये मनोवाक्याना प्रत्येकं त्रैविध्यं प्राप्नोति, तच्चानिष्टं, नद्यत्र मनभादीनि प्रत्येकं त्रैविध्यमर्हन्ति किं तर्हि ? तद्व्यापारा एवेति चेन्न, तदभावे हि मनसा वाचा कर्मणेत्येतावन्मात्रोक्तौ 'न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्य न समनुजानामी'—त्यनेन सह "यथासद्द्रव्यमनुदेशः समानाम्" (१।३।१०) इति वचनानुरोपेन "आग्रन्तौ टकितौ" (१।१।४६) इत्यादिवत्, "शत्रु मित्र विपत्तिं च जय रञ्जय भञ्जये"—त्यादिवत् 'एचोऽय-

'मनसा' (मनसे) 'वाचा' (वचनसे) 'कायेन' (कायसे) कहने से पुनरुक्ति (कहे हुएको पुनः कहना) होती है । या (तीन प्रकारसे) यह विशेषण 'मन, वचन, काय' का ही होसकता है । यदि ऐसा मान लिया जाय तो इसका अर्थ होगा कि 'तीन प्रकारके काय से' आरम्भ न करें । अर्थात् मन वचन काय के तीन तीन भेद होंगे । ऐसा अर्थ शास्त्रविरुद्ध है, शास्त्रों में भगवानने मन आदि के तीन तीन भेद नहीं बताये हैं, किन्तु मन आदि के व्यापारों को तीन प्रकार का बताया है ।

उत्तर—यह शका ठीक नहीं है । यदि 'त्रिविधेन' न कहकर केवल 'मनसा वाचा कायेन' कह देते तो अर्थ ठीक नहीं बैठता, क्यों कि जैसे कोई कहे कि 'हेय और उपादेयको त्यागो और

वाचा (वचनथी) कायेन (कायाथी) कडेवाथी पुनरुक्ति (कडेवाने करी कडेवु) थाय छे आ 'त्रय प्रकारे' छे विशेषण 'मन, वचन, काया'नु न्हि छे शक्य छे ले अम मानवामा आवे तो अनेो अर्थ अवेो थशे के 'त्रय प्रकारना मनथी, त्रय प्रकारना वचनथी अने त्रय प्रकारनी कायाथी' आरल न करे अर्थात् मन, वचन, कायाना पण त्रय त्रय लेद जनशे, अवेो अर्थ शास्त्रविरुद्ध छे शास्त्रमा लगवाने मन आदिना त्रय लेद जताव्या नथी, परंतु मन आदिना व्यापारेने ते त्रय प्रकारना जताव्या छे

उत्तर—अशक्य जराजरनथी ले त्रिविधेन न कहीने केवल मनसा वाचा कायेन कहु छे त तो अर्थ जराजर जध जेसत नहि, कारण के केछि जेम कडे के 'हेय अने उपादेयने त्यागो अने अहुण करे' तो अे वाक्यमा कमानुसार छेयनी

સર્વથા પરિત્યજામીત્યર્થઃ । યદ્વા ‘પ્રત્યાચક્ષે’ इतिञ्छाया, अस्याप्यर्थः प्राग्वदेव, केवल धातुरेवातिरिच्यते—‘चक्षिष् व्यक्ताया वाची’-ति । कियत्कालार्थं प्रत्याख्यामी ? त्याह—‘यावज्जीवये’-ति, अत्र यावच्छब्दः परिमाणार्थको मर्यादार्थकोऽवधारणार्थकश्चाऽव्ययः । जीवन=जीवा,^१ तथा जीव्या^२ जीवामित्यर्थः, यावन्मम जीवनपरिमाण तावत्प्रत्याख्यामीति जीवन मर्यादीकृत्यार्थान्न केवल मरणकाल एवाऽपि तु ततः प्रागपि प्रत्याख्यामीति, जीवन एव न तु तदुत्तरार्थमपि प्रत्याख्यामीत्यर्थः । कीदृशं त योग प्रत्याख्यामी ? त्याह ‘त्रिविध’-मिति-तिस्रो विधाः=प्रकारा यस्य त कृतकारितानुमतरूप मनोवा कायव्यापारम् । तत्र कृत=स्वतन्त्रेणाऽऽत्मना सम्पादित, कारितम्=अन्यद्वारा सम्पादितम्, अनुमत=सावद्यव्यापारमारभमाणस्य ‘त्वया सम्यक् क्रियते, एवमेव क्रियता’-मित्यादिना, यद्वा चक्षुषा दृष्टस्यापि तूष्णीमवस्थानेन निषेधाग्रकरणात्प्रोत्साहितम् । त्रिविधेन=प्रकारत्रयविशिष्टेन कारणभूतेन, केन तेने ?-त्याह—‘मनसा’ वाचा कायेनेति । ननु त्रिविधेनेत्यनेन यत्प्रकारत्रय गृह्यते तत् मनसे-

करता हूँ । तीन करण ये हैं— कृत कारित-अनुमोदित । कृत अपनी इच्छासे स्वयं करना, कारित दूसरे व्यक्ति से कराना, अनुमोदित-जो सावद्य व्यापार कर रहा हो उसे अच्छा समझना । तीन योग ये हैं—(१) मन, (२) वचन, (३) काय ।

प्रश्न—सूत्रमें ‘त्रिविधेन’ (तीन प्रकार से) कहा ही है फिर

ત્રણ કરણ આ છે—(૧) કૃત, (૨) કારિત, (૩) અનુમોદિત

કૃત—પોતાની ઇચ્છાથી પોતે કરવું

કારિત—બીજી વ્યક્તિ પાસે કરાવવું

અનુમોદિત—જે સાવધ વ્યાપાર કરી રહ્યો હોય, તેને સારૂ જાણવું

ત્રણ યોગ આ છે (૧) મન, (૨) વચન, (૩) કાયા

પ્રશ્ન—સૂત્રમાં ત્રિવિધેન (ત્રણ પ્રકારે) કહેલું જ છે, પછી મનસા=(મનથી),

૧—જીવા—‘જીવ પ્રાણધારણે’ અસ્માત્ ‘ગુરોશ્ચ હલ’ (૩ । ૩ । ૧૦૩) इति वचनेन स्त्रियामकारप्रत्यये स्त्रीत्वाद्वाप्, ‘ईहा, ऊहा’ इत्यादिवत् ।

૨—‘જીવ્યા’ —‘તતોઽન્યત્રાપિ દૃશ્યતે’ इति वचनबलात्यावच्छब्दयोगे द्वितीयाया प्राप्तवप्यार्षत्वात्तृतीया ।

તત્પ્રકારાન્ દર્શયિતુ વિશેષતઃ આહ-મનસેત્યાદીતિ નાસ્તિ પૌનરુક્ત્યમ્ । કેચિત્-
'મનસા વા વાચા વા કાયેન વે'-તિ વિકલ્પસગ્રહાર્થં ત્રિવિધેનેત્યુક્તમિત્યૂચિરે । ન
કારયामीત્યત્રાઽન્યેનેતિ શેષઃ પૂરણીયઃ । ન સમનુજામિ=નાનુમન્યે । 'તસ્યેતિ
તસ્માત્ સાવ્યયોગાદિત્યર્થઃ । 'મતે' इति भदन्तेति सम्प्रोक्तं प्राग्वदेव, पूर्वा-
नुवृत्त्यैवार्थसिद्धौ पुनः 'मते' इत्युक्तिः प्रारम्भवत् पर्यवसानमपि गुर्वामन्त्रण-
पूर्वकमेव कर्तव्यमिति सूचनाय । यद्वा पुनरुच्चारणयत्नेनाऽनुवृत्तिरेव लभ्यते,

કરૂં, પરન્તુ વે ત્રીન પ્રકાર કૌન-કૌનસે હૈં ? એસી જિજ્ઞાસા હોને પર
વિશેષરૂપસે બતાવિયા કિ "મનસા વાચા કાયેન" ચે ત્રીન પ્રકાર
હૈં, હસલિયે પુનરુક્તિ આદિ કોઈ દોષ નહીં હૈ ।

અથવા મન, વચન ઓર કાયકે નિમિત્તસે હોનેવાલે ત્રીન
ભેદોં કા સગ્રહ કરને કે લિયે 'ત્રિવિધેન' પદ રખા હૈ ।

વ્યાકરણ મેં 'મતે' શબ્દ અનેક પ્રકાર સે સિદ્ધ હોતા હૈ,
હસલિયે હસકે અર્થ મી વહુતસે હૈ । જૈસે (૧) કલ્યાણ ઓર
સુખકો દેનેવાલે, (૨) સસાર કા અન્ત કરનેવાલે, (૩) જિનકી
સેવા-ભક્તિ કરને સે સસારકા અન્ત હો જાતા હૈ વે, (૪) જન્મ-જરા
મરણકે ભયકા નાશ કરનેવાલે-નિર્ભય, (૫) ભોગોં કો ત્યાગ
દેનેવાલે, (૬) ભય કો દમન કરનેવાલે, (૭) ઇન્દ્રિયોંકા દમન
કરનેવાલે, (૮) સમ્યગ્જ્ઞાન, સમ્યગ્દર્શન, ઓર સમ્યક્ચારિત્ર સે

પ્રકાર કયા કયા છે ? એવી જિજ્ઞાસા થતા વિશેષરૂપે બતાવી આપ્યું કે મનસા વાચા
કાયેન એ ત્રણ પ્રકાર છે એથી કરીને પુનરુક્તિ આદિ કોઈ દોષ થતો નથી

અથવા મન વચન અને કાયના નિમિત્તે થનારા ત્રણ ભેદોનો સગ્રહ
કરવાને માટે ત્રિવિધેન શબ્દ રાખ્યો છે

વ્યાકરણમાં મતે શબ્દ અનેક પ્રકારે સિદ્ધ થાય છે તેથી એના અર્થ
ઘણા છે, જેવા કે (૧) કલ્યાણ અને સુખને આપનાર, (૨) સસારનો અન્ત કરનાર,
(૩) જેની સેવાભક્તિ કરવાથી સસારનો અન્ત આવી જાય છે તે, (૪) જન્મ જરા
મરણના ભયનો નાશ કરનાર, (૫) ભોગોને ત્યાગ કરનાર, ભયનું દમન કરનાર-
નિર્ભય, (૬) ઇન્દ્રિયોનું દમન કરનાર, (૮) સમ્યગ્જ્ઞાન સમ્યગ્દર્શન અને સમ્યક્

યાયાનઃ' (૬ । ૧ । ૭૮) इत्यादिप्रदा क्रमिकान्यये 'मनसा न करोमि, वाचा न कारयामि, कायेन कुर्वन्तमप्यन्य न समनुजानामी'—त्यनभीष्टोऽर्थ आपद्येत, तद्वारणार्थं त्रिविधेनेत्युक्तं, तेन मनसा न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्य न समनुजानामि, वाचा न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्य न समनुजानामि, एव कायेन न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्य न समनुजानामीत्यर्थो भवति । यद्वा पूर्वं सामान्यतस्त्रिविधेनेत्युक्त्वा केन त्रिविधेनेति जिज्ञासाया

ग्रहण करो ।' तो इस वाक्य में क्रमसे 'हेद्य' के साथ 'त्यागो' का सम्बन्ध हो जाता है और 'उपादेय' के साथ 'ग्रहण करो' का । इसी प्रकार 'चोलपट्टा चद्दर पहनो, ओढो' कहने से यह अर्थ होता है कि 'चोलपट्टा पहनो और चद्दर ओढो', इसी प्रकार 'त्रिविधेन' (तीन प्रकार से) पद न रखते तो ऐसा अनिष्ट अर्थ हो जाता कि मनसे न करे, वचनसे न करावे और कायसे अनुमोदना न करे । इस अनिष्ट अर्थ का परिहार करने के लिए 'त्रिविधेन' पद रखने से यह अर्थ हुआ कि—(१) मनसे न करूँ, (२) न कराऊँ (३) न करते हुए को भला जानूँ । (४) वचन से न करूँ, (५) न कराऊँ, (६) न करते हुए को भला जानूँ । (७) काय से न करूँ, (८) न कराऊँ, (९) न करनेवाले को भला जानूँ ।

अथवा पहले सामान्यरूप से कहा है कि तीन प्रकार से न

સાથે 'ત્યાગો'નો સંબંધ થઇ જાય છે અને 'ઉપાદેયની' સાથે 'ગ્રહણ કરો'નો એજ રીતે 'ચોલપટ્ટો ચાદર પહેરો ઓઢો' કહેવાથી એ અર્થ થાય છે કે ચોલપટ્ટો પહેરો અને ચાદર ઓઢો એ રીતે ત્રિવિધેન (ત્રણ પ્રકારે) શબ્દ ન રાખ્યો હોત તો એવો અનિષ્ટ અર્થ થઇ જાત કે મનથી ન કરો, વચનથી ન કરાવો અને કાયાથી ન અનુમોદના કરો અનિષ્ટ અર્થનો પરિહાર કરવાને માટે ત્રિવિધેન શબ્દ આપ્યો છે, એમ ત્રિવિધેન શબ્દ આપવાથી એવો અર્થ થયો કે—(૧) મનથી ન કરૂં, (૨) ન કરાવુ, (૩) ન કરનારને ભલો જાણુ, (૪) વચનથી ન કરૂં, (૫) ન કરાવુ, (૬) ન કરનારને ભલો જાણુ, (૭) કાયાથી ન કરૂં, (૮) ન કરાવુ (૯) ન કરનારને ભલો જાણુ

અથવા પહેલા સામાન્ય રૂપે કહ્યું છે કે 'ત્રણ પ્રકારે ન કરૂં' પરંતુ તે ત્રણ

સ્તદર્થત્વાભાવેન ન તત્પ્રયોગ इदम्, कुप्यति कस्मै चिद्वित्याद्यसाध्वेवे'—તિ। 'નિન્દામિ, ગર્હામિ' इत्यनयोस्तस्येत्यनेन प्रागुक्तेन सम्बन्धस्तेन सावयवयोगसम्बन्धिनीं स्वसाक्षिकीं गुरुसाक्षिकी च निन्दा करोमीति निर्गलितोऽर्थः, तस्येत्यत्र सम्बन्धसामान्ये पण्ठ्याः प्रागुक्तत्वात्। यद्वा 'आत्मान'—मित्यस्यैव मध्यमणिन्यायाद्देहली-दीपन्यायाद्वा व्युत्सृजामीत्यनेन निन्दामि, गर्हामि' इत्याभ्या च सम्बन्धस्तेन सावयवयोगकारिणमात्मान जुगुप्से, व्युत्सृजामि=विविधभावनया विशिष्य वा परित्यजामीत्यर्थः ॥सू० १॥

સાક્ષી સે હોતી હૈ । અથવા નિન્દા સાધારણ કુત્સાકો કહતે હૈ
ઔર ગર્હા અત્યન્ત નિન્દા કો કહતે હૈ ।

इसका अर्थ यह होता है कि—हे भगवन् ! अतीत काल में सावद्य व्यापार करनेवाले आत्मा (आत्मपरिणति) को अनित्य आदि भावना भाकर त्यागता हूँ, निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ । जैसे घर की देहलीपर दीपक रखने से भीतर भी प्रकाश होता है और बाहर भी प्रकाश होता है, इसीको 'देहली दीपक' न्याय कहते हैं, कहा भी है—'परै एक पद बीच मे, दुहु दिम लागै सोय । सो है दीपक—देहरी, जानत है सय कोय ॥१॥ बीच में मणि जड देने से दोनों ओर मणिका प्रकाश होता है, यह 'म यमणि' न्याय कहलाता है, इसी प्रकार 'अप्पाण' का दोनों के साथ सम्बन्ध होता है । अर्थात् सावद्य व्यापारवाली आत्मा को त्यागता हूँ और उसकी निन्दा करता हूँ तथा गर्हा करता हूँ ॥सू० १॥

ગર્હા ગુરુસાક્ષીએ થાય છે, અથવા નિન્દા સાધારણ કુત્સાને કહે છે અને ગર્હા અત્યન્ત નિન્દાને કહે છે

આનો અર્થ એ થાય છે કે હે ભગવન્ ! અતીત કાળમાં હું (સાવદ્ય વ્યાપાર) કરનાર આત્મા (આત્મપરિણતિ) ને અનિત્ય આદિ ભાવના ભાવીને ત્યાગુ છું, નિન્દા છું, ગર્હુ છું, જેમ ઘરની દેહલી (ઉપર) પર દીવો રાખવાથી અંદર પણ પ્રકાશ થાય છે અને બહાર પણ પ્રકાશ થાય છે તેને 'દેહલી-દીપક ન્યાય' કહે છે કહ્યું છે કે—'પરે એક પદ બીચમે, દુહુ દિસ લાગે સોય સો હું 'દીપક—દેહરી,' જાનત હું સખ કોય (૧)' વચમાં મણિ જડી દેવાથી બેઉ બાજુ મણિનો પ્રકાશ થાય છે તેને 'મધ્યમણિ-ન્યાય' કહે છે એજ રીતે

યતઃ કેવલમનુવૃત્તિમાત્રેણ ન કિમપિ કાર્યં ભવતિ નિનૂચારણાદિપ્રયત્નેનૈવ,
તદુક્તઃ વૈયાકરણૈઃ—“અનુવર્તન્તે ચ નામ ત્રિધયો ન ચાનુવર્તનાદેવ ભવન્તિ,
કિં તર્હિ” યત્નાદ્ભવન્તિ, સ ચાય યત્નઃ પુનરુચારણમ્” ઇતિ । અથવા સ્વસ્યાપિ
ભદન્તત્વાદાત્મન એવેદમામન્ત્રણ સાધ્યાનીકરણાય । યદ્વા ભૂયઃ સમ્બોધનેન ગુરુ
પ્રતિ ભક્ત્યુદ્દેકોઽભિવ્યજ્યતે । પ્રતિક્રામામિ=પ્રતિનિવર્ત્તે, પૃથગ્ભવામીતિ યાવત્ ।
યત્ર કચિદ્દીકાસુ ‘પલ્લિધમામિ’ ઇત્યસ્ય ‘પ્રતિક્રામામિ’ ઇતિન્જાયોપલભ્યતે
સા પ્રામાદિક્થેવ “ક્રમઃ પરસ્મૈપદેષુ” (૭ । ૩ । ૭૬) ઇતિ વચનવલ્લેન
ક્રમેરુપધાદીર્ઘસ્ય દુર્નિવારત્વાત્ । નિન્દામિ=જુગુપ્સે । ગર્હૈ=જુગુપ્સ ઇત્યેવાર્થઃ । નનુ
તર્હિ નિન્દાગર્હયો ‘કુત્સા નિન્દા ચ ગર્હણા’ ઇતિ કોપરીત્યા પર્યાયત્વેન પૌનરુત્ત્ય
વજ્રલેપાયિતમેવેતિ ચેન્ન, યત સ્વસાક્ષિકી નિન્દા, ગુરુસાક્ષિકી ચ ગર્હૈતિ પરસ્પર
ભવતિ ભૂયાન્ ભેદઃ । યદ્વા ‘નિન્દા=સાધારણી કુત્સા, ગર્હા=સૈવાતિભૂયસી’—તિ
પરસ્પરમર્થભેદાન્નાસ્તિ પર્યાયતા, યથા—પ્રવૃદ્ધ એવ કોપઃ ક્રોધો ન સાધારણ
ઇતિ કોપવ્રોધયોઃ પર્યાયત્વાભાવેન ક્રુધ્યર્થત્વાભાવાત્કુબ્ધાતુયોગે ચતુર્થો નેષ્યતે,
તદુક્ત—‘ક્રુધદ્રુહેર્પ્યામુયાર્થાના યમ્પ્રતિ કોપ (૧ । ૪ । ૩૭) ઇત્યત્ર શબ્દેન્દુ-
શેખરે નાગેશેન—‘નહ્યકુપિત. ક્રુચતીતિ ભાષ્યેણ પ્રરુઢકોપ એવ ક્રોધ ઇતિ કુપે

દીપનેવાલે । ઇન સબ કો ‘ભતે’ કહતે હૈં । ઇસી પ્રકાર ઔર અર્થ
ભી સમજાને ચાહિએ । ‘ભદન્ત’ ! ઇસ સમ્બોધનસે યહ પ્રગટ હોતા
હૈ કિ સમસ્ત ક્રિયાઈ ગુરુમહારાજ કી સાક્ષીસે હી કરની ચાહિએ ।

હે ભગવન્ ! મૈં સાવત્રયોગસે નિવૃત્ત હોતા હૂં, નિન્દા
કરતા હૂં ઔર ગર્હાં કરતા હૂં । કોશોં મૈં નિન્દા ઔર ગર્હાં શબ્દ
કા એક હી અર્થ હૈ, ઇસલિએ પુનરુક્તિ હોતી હૈ, એસા નહી સમજાના
ચાહિએ, કયો કિ નિન્દા આત્મસાક્ષી સે હોતી હૈ ઔર ગર્હાં ગુરુ

આરિત્રથી દીક્ષિમાન એ બધાને ભતે કહે છે, એજ રીતે બીજા અર્થો પણ સમજી
લેવા ‘ભદન્ત’ એ સબોધનથી એમ પ્રગટ થાય છે કે બધી ક્રિયાઓ ગુરુ
મહારાજની સાક્ષીએ જ કરવી જોઈએ

હે ભગવાન્ ! હું દૃઢથી નિવૃત્ત થાઉ છું, નિન્દા કરું છું અને ગર્હાં
કરું છું શબ્દકોશોમા ‘નિન્દા અને ગર્હાં’ શબ્દનો એક જ અર્થ છે, તેથી પુન
રુક્તિ થાય છે, એમ ન સમજવું, કારણ કે નિન્દા આત્મસાક્ષીએ થાય છે અને

स्तदर्थत्वाभावेन न तत्रयोग इदम्, कुप्यति कस्मै चिदित्याद्यसाध्वेवे'—ति। 'निन्दामि, गर्हामि' इत्यनयोस्तस्येत्यनेन प्रागुक्तेन सम्बन्धस्तेन सावत्रयोगसम्बन्धिनीं स्वसाक्षिकीं गुरुसाक्षिकी च निन्दा करोमीति निर्गलितोऽर्थः, तस्येत्यत्र सम्बन्धसामान्ये पण्ड्याः प्रागुक्तत्वात्। यद्वा 'आत्मान'—मित्यस्यैव मध्यमणिन्यायादेहली-दीपन्यायाद्वा व्युत्सृजामीत्यनेन निन्दामि, गर्हामि' इत्याभ्या च सम्बन्धस्तेन सावत्रयोगकारिणमात्मान जुगुप्से, व्युत्सृजामि=विविधभावनया विशिष्य वा परित्यजामीत्यर्थः ॥सू० १॥

साक्षी से होती है। अथवा निन्दा साधारण कुत्साको कहते हैं और गर्हा अत्यन्त निन्दा को कहते हैं।

इसका अर्थ यह होता है कि—हे भगवन्! अतीत काल में सावद्य व्यापार करनेवाले आत्मा (आत्मपरिणति) को अनित्य आदि भावना भाकर त्यागता हूँ, निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ। जैसे घर की देहलीपर दीपक रखने से भीतर भी प्रकाश होता है और बाहर भी प्रकाश होता है, इसीको 'देहली दीपक' न्याय कहते हैं, कहा भी है—'परै एक पद बीच मे, दुहु दिम लागे मोय। सो है दीपक—देहरी, जानत है सब कोय ॥१॥ बीच में मणि जड देने से दोनों ओर मणिका प्रकाश होता है, यह 'मध्यमणि' न्याय कहलाता है, इसी प्रकार 'अप्पाण' का दोनों के साथ सम्बन्ध होता है। अर्थात् सावद्य व्यापारवाली आत्मा को त्यागता हूँ और उसकी निन्दा करता हूँ तथा गर्हा करता हूँ ॥सू० १॥

गर्हा गुरुसाक्षीએ વાય છે, અથવા નિદા સાધારણ કુત્સાને કહે છે અને ગર્હા અત્યંત નિદાને કહે છે

આનો અર્થ એ થાય છે કે હે ભગવન્! અતીત કાળમાં દડ (સાવધ વ્યાપાર) કરનાર આત્મા (આત્મપરિણતિ) ને અનિત્ય આદિ ભાવના ભાવીને ત્યાગ છું, નિંદુ છું, ગર્હુ છું, જેમ ઘરની દેહેલી (ઉપર) પર દીવો રાખવાથી અંદર પણ પ્રકાશ થાય છે અને બહાર પણ પ્રકાશ થાય છે તેને 'દેહલી-દીપક ન્યાય' કહે છે કહ્યું છે કે—'પરે એક પદ બીચમે, દુહુ દિસ લાગે મોય મો હું 'દીપક—દેહરી,' જાનત હું સબ કોય (૧)' વચમાં મણિ જડી દેવાથી બેઉ બાજુ મણિનો પ્રકાશ થાય છે તેને 'મધ્યમણિ-ન્યાય' કહે છે એજ રીતે

યત્ કેવલમનુગ્રહિમાત્રેણ ન કિમપિ કાર્યં ભવતિ કિન્તુચારણાદિપ્રયત્નેનૈવ, તદુક્તઃ ત્રૈયાકરણૈઃ—“અનુવર્તન્તે ચ નામ વિધયો ન ચાનુવર્તનાદેવ ભવન્તિ, કિં તર્હિ” યત્નાદ્ભવન્તિ, સ ચાય યત્નઃ પુનરુચારણમ્” ઇતિ । અથવા સ્વસ્યાપિ ભદન્તત્વાદાત્મન એવેદમામન્ત્રણ સાધ્યાનીકરણાય । યદ્વા શ્રૂયઃ સમ્બોધનેન ગુરુ પ્રતિ ભક્ત્યુદ્દેશોઽભિવ્યજ્યતે । પ્રતિક્રામામિ=પ્રતિનિવર્તે, પૃથગ્ભવામીતિ યાવત્ । યત્ર કચિદ્દીકાશુ ‘પલિષ્ઠામિ’ इत्यस्य ‘प्रतिक्रामामि’ इति न्यायोपलभ्यते सा પ્રામાદિચ્ચેવ “ક્રમઃ પરસ્મૈપદેષુ” (૭ । ૩ । ૭૬) ઇતિ વચનવલ્લેન ક્રમેરુપધાદીર્ઘસ્ય દુર્નિવારતાત્ । નિન્દામિ=જુગુપ્સે । ગર્હ=જુગુપ્સ इत्येवार्थः । નતુ તર્હિ નિન્દાગર્હયો ‘કુત્સા નિન્દા ચ ગર્હણા’ ઇતિ કોપરીત્યા પર્યાયત્વેન પૌનરુક્ત્ય વજ્રલેપાયિતમેવેતિ ચેન્ન, યત્. સ્વસાક્ષિકી નિન્દા, ગુરુસાક્ષિકી ચ ગર્હંતિ પરસ્પર ભવતિ શ્રૂયાન્ ભેદઃ । યદ્વા ‘નિન્દા=સાધારણી કુત્સા, ગર્હ=સૈવાતિશ્રૂયસી’—તિ પરસ્પરમર્થભેદાન્નાસ્તિ પર્યાયતા, યથા—પ્રવૃદ્ધ એવ કોપઃ ક્રોધો ન સાધારણ ઇતિ કોપક્રોધયોઃ પર્યાયત્વાભાવેન ક્રુધ્યર્થત્વાભાવાત્કુબ્ધાતુયોગે ચતુર્થો નેવ્યત્, તદુક્ત—‘ક્રુધદ્રુહેર્ણ્યાસૂયાર્થાના યમ્પ્રતિ કોપ (૧ । ૪ । ૩૭) इत्यत्र शब्देन्दु- शेखरे नागेशेन—‘नह्यकुपित. कृयतीति भाष्येण प्ररूढकोप एव क्रोध इति कुपे

દીપનેવાલે । ઇન સઘ કો ‘ભતે’ કહતે હૈં । ઇસી પ્રકાર ઔર અર્થ બી સમજાને યાહિયે । ‘ભદન્ત’ । ઇસ સમ્બોધનસે યહ પ્રગટ હોતા હૈં કિ સમસ્ત ક્રિયાઈ ગુરુમહારાજ કી સાક્ષીસે હી કરની યાહિયે ।

હે ભગવાન્ ! મૈં સાવત્રયોગસે નિવૃત્ત હોતા હૂં, નિન્દા કરતા હૂં ઔર ગર્હાં કરતા હૂં । કોશોં મે નિન્દા ઔર ગર્હાં શબ્દ કા એક હી અર્થ હૈ, ઇસલિયે પુનરુક્તિ હોતી હૈ, ઁસા નહીં સમજાના યાહિયે, ક્યો કિ નિન્દા આત્મસાક્ષી સે હોતી હૈ ઔર ગર્હાં ગુરુ-

ચારિત્રથી દીક્ષિમાન એ બધાને ભતે કહે છે, એજ રીતે બીજા અર્થો પણ સમજા લેવા ‘ભદન્ત’ એ સમ્બોધનથી એમ પ્રગટ થાય છે કે બધી ક્રિયાઓ શરૂ મહારાજની સાક્ષીએ જ કરવી જોઈએ

હે ભગવાન્ ! હું દૃઢથી નિવૃત્ત થાઉં છું, નિન્દા કરું છું અને ગર્હાં કરું છું શબ્દકોશોમા ‘નિન્દા અને ગર્હાં’ શબ્દનો એક જ અર્થ છે, તેથી પુનરુક્તિ થાય છે, એમ ન સમજવું, કાન્ય કે નિન્દા આત્મસાક્ષીએ થાય છે અને

गुप्तीना, चतुर्णां कषायाणा, पञ्चाना महाव्रताना, पण्णा जीवनिकायाना, सप्ताना पिण्डैपणाना,—मष्टाना प्रवचनमातृणा, नवाना ब्रह्मचर्यगुप्तीना, दशविधे धमणधर्मे श्रमणाना योगाना यत्स्वण्डित यद्विराधित तस्य मिथ्या मे दुष्कृतम् ॥ सू० २ ॥

॥ टीका ॥

‘ ठामि ’ स्थातु चित्तैकाग्रतयेति शेषः, कर्तुमित्यर्थः । ‘ काउत्सर्ग ’ कायोत्सर्ग, कायस्य=शरीरस्य उत्सर्ग=तदेकतानतापूर्वकैकदेशावस्थितिभ्यान्मौन-व्यतिरिक्तयावत्क्रियाकलापसम्बन्धमधिकृत्य सर्वावेच्छेदेन परित्यागम्—अतिचार-सशुद्धये व्युत्सर्जन, ममत्वापवर्जन वा ‘ इच्छामि=वाञ्छामि । तत्रादौ वक्ष्यमाण-रीत्या दोषान् पर्यालोचयति—‘ जो ’ इति । यः=कायोत्सर्गः मया=कर्तृभूतेन ‘ देविसओ ’=दिवसेन निर्वृत्तो दैवसिक^२, दिवमपद रात्रेरप्युपलक्षक तेन

हे भदन्त ! मैं चित्तकी स्थिरता के साथ एक स्थान पर स्थिर रहकर ध्यान मौन के सिवाय अन्य सभी व्यापारों का परित्यागरूप कायोत्सर्ग करता हूँ, परन्तु इसके पहले शिष्य अपने दोषों की आलोचना करता है—‘ जो मे ’ इत्यादि । जो मुझसे प्रमादवश दिवससम्बन्धी तथा रात्रिसम्बन्धी समयमर्यादा का उल्लङ्घनरूप

हे भदन्त ! हे चित्तनी स्थिरतानी साथे एक स्थान उपर स्थिर थधने ध्यान मौन सिवाय अन्य थधा कामेनो त्यागउप कायोत्सर्ग कइ छु परतु येना थडेला शिष्य पोताना दोषोनी आलोचन करे छे “ जो मे थत्यादि ” जे भारथी आजसवश दिवससणधी तथा रात्रिसणधी समयमर्यादाने।

१— ‘ ठामि ’ कर्तुमित्यर्थ । धातूनामनेकार्थत्वात् ‘ स्था ’ धातुः करोत्यर्थः, आर्षत्वाद् ‘ मिप् ’ प्रत्ययः । तुमुन्नर्थ, आर्षेषु हि प्रयोगेषु बाहुलकेन सर्वे त्रिधयो विकल्प्यन्ते, यदुक्तम्—‘ कचित्प्रवृत्तिः कचिदप्रवृत्तिः, कचिद्विभाषा कचिदन्यदेव । विधेर्विधान बहुधा समीक्ष्य, चतुर्विध बाहुलक उदन्ति ” ॥१॥ इति, किञ्च—“ सुप्तिदुपग्रहलिङ्गनराणा, कालहलच्स्वरकर्तृयडा च । व्यत्ययमिच्छति शास्त्रकृदेपा, सोऽपि च सिध्यति बाहुलकेन ॥२॥ ” इति, तत्र उपग्रहः= परस्मैपदाऽऽत्मनेपदे, नरः=प्रथमादिपुरुषत्रयम् । कालः=कालवाचकः प्रत्ययः । कर्तृशब्दः कारकत्वाव-च्छिन्नोपलक्षकस्तेन कारकवाचिना कृत्तद्धिताना विपर्ययः । यद्विति यदो यशब्दादारभ्य लिङ्याशिष्यद्विडति इकारेण प्रत्याहारः । स्पष्ट शिष्टम् ।

२ “ तेन निर्वृत्तम् ” (५ । १ । ७८) इति ठरू ।

સાવોઃ સર્વવિરતિરુપ સામાયિક યાવજીવન ભવત્યવશ્યકર્તવ્ય^૧, તસ્મિન્ન સતિ પ્રમાદાદિનાઽતિચારાઃ સમ્ભવન્તીતિ સામાયિકનિરૂપણોત્તરમગ્રે કાયોત્સર્ગપ્રતિજ્ઞાપૂર્વક શિષ્યઃ પ્રથમ દોષાન્ પર્યાલોચયતિ—

॥ મૂલમ્ ॥

इच्छामि ठामि काउस्सग्ग जो मे देवसिओ अईआरो कओ काइओ वाइओ माणसिओ उस्सुत्तो उम्मग्गो अकप्पो अकरणिज्जो दुज्झाओ दुव्विचित्तिओ अणायारो अणिच्छियव्वो असमणपाउगो नाणे तह दसणे चरित्ते सुए सामाइए, तिण्ह गुत्तीण, चउण्ह कसायाण, पचण्ह महव्वयाण, छण्ह जीवनिकायाणं, सत्तण्ह पिंडेसणाण, अट्टण्ह पवयणमाऊण, नवण्ह वभचेरगुत्तीण, दसविहे समणधम्ममे समणाण जोगाण ज खडिय जं विराहिय तस्स मिच्छा मि दुक्कड ॥सू० २॥

॥ છાયા ॥

इच्छामि स्थातु कायोत्सर्गं यो मया दैवसिकोऽतीचारः कृतः कायिको वाचिको मानसिक उत्सूत्र उन्मार्गोऽकल्पोऽकरणीयो दुर्ध्यातो दुर्विचिन्तितोऽनाचारोऽनेष्टव्योऽश्रमणप्रायोग्यो ज्ञाने तथा दर्शने चारित्रे श्रुते सामायिके, तिसृणा

મુનિયોં કી સર્વવિરતિરુપ સામાયિક યાવજીવન હોતી હૈ, ઉસમેં પ્રમાદ આદિ સે અતિચાર કી સભાવના રહતી હૈ, અતઃપૂર્વ સામાયિક કા નિરૂપણ કરકે અબ ઇસકે આગે શિષ્ય કાયોત્સર્ગ-પૂર્વક અતિચાર કી આલોચના કરને કે લિયે પ્રથમ કાયોત્સર્ગ કી પ્રતિજ્ઞા કરકે દોષોં કી આલોચના કરતા હૈ—‘इच्छामि ठामि काउस्सग्ग’ इत्यादि ।

અપ્પાણ નો ખેઉની સાથે સળધ થાય છે અર્થાત્ સાવધવ્યાપારવાળા આત્માને ત્યાગુ છુ અને તેની નિંદા કરુ છુ, તથા ગર્હા કરુ છુ (સૂ. ૧)

મુનિયોની સર્વવિરતિરૂપ સામાયિક યાવજીવન હોય છે એમા પ્રમાદ આદિથી અતિચારની સભાવના રહે છે, એટલા માટે સામાયિક નિરૂપણ કરીને તે પછી શિષ્ય કાયોત્સર્ગપૂર્વક અતિચારની આલોચના કરવા માટે પ્રથમ કાયોત્સર્ગની પ્રતિજ્ઞા કરીને દોષોની આલોચના કરે છે इच्छामि ठामि काउस्सग्ग વિગેરે

‘दुज्ज्ञाओ’—इत्यादिना, ‘दुज्ज्ञाओ’ दुर्ध्यातः, दुष्टो दुःस्थो वा ध्यातो दुर्ध्यातः=विरुद्धध्यानिसपन्नः कपायफलपितान्तःकरणैकाग्रताऽऽर्त्तरौद्ररूपः, यद्वा आर्षत्वादत्र भावे क्तः पुस्त्व च, तेन दुष्टध्यानरूप इत्यर्थः, अत एव ‘दुर्विचिन्तिओ’ दुःखेन दुष्टो वा विचिन्तितो=दुर्विचिन्तित=अनवस्थितचित्त-तया तत्त्वपरिभ्रशनपूर्वकाऽशुभचिन्तनोपेतः, अतएव ‘अणायारो’ अनाचारः=सयममार्गेण प्रचलता सयमिनामनाचरितव्यः । यतोऽनाचरितव्योऽतएव ‘अणिच्छियव्वो’ अनेष्टव्यः=चेतसाऽपि लेशतोऽप्यनभिलषणीयः, यतश्चैवमतः ‘असमणपाउग्गो’ न योग्योऽयोग्यः प्रकर्षेणाऽयोग्यः प्रायोग्यः श्रमणाना श्रमणैर्वा प्रायोग्य=श्रमणप्रायोग्यः न श्रमणप्रायोग्योऽश्रमणप्रायोग्यः—श्रमणानामयोग्य इत्यर्थः, मुनिभिरननुष्ठेय इति यावत् । अत्र व्युत्क्रमव्याख्यानं तु सूत्रक्रमविरोधादनुभवविरोधाच्चोपेक्षितव्यमेव । किंकिंविषयकोऽतिचारः ? इत्याह—‘नाणे’ इत्यादिना, ‘नाणे’ ज्ञाने=पदार्थपरिवोधलक्षणे, ‘दसणे’ दर्शने=प्रवचनाभिरोचनस्वरूपे, ‘चरित्ते’ चारित्र्ये=आश्रवनिरोधरूपे ‘नाणे’ इत्यादिषु वैषयिकाधारे सप्तमी, मोक्षे इच्छाऽस्तीत्यादिवत्, तेन ज्ञानविषयको दर्शनविषयक-आरित्रविषयकश्चेति फलति । विशेषेणोच्यते—‘सुए’ इति, ‘सुए’ श्रुते=मत्यादिज्ञानस्वरूपे, श्रुतग्रहणस्य मत्यादिज्ञानोपलक्षकत्वात् मत्यादिज्ञानविषयक इत्यर्थः, यद्वा ‘सुए’ इत्यस्य श्रुते=धर्मेऽर्थाच्छास्त्रपठनादिरूप इत्येवार्थो न तु मत्यादिज्ञान इति, अतिचारश्चात्राऽकाले सूत्रपठनादिरूपः । अधुना चारित्रातिचार-

कहते हैं—‘दुज्ज्ञाओ’—दुर्ध्यानकपाययुक्त अन्तःकरण की एकाग्रतासे आर्त्तरौद्रध्यानरूप, ‘दुर्विचिन्तिओ’—दुर्विचिन्तित-चित्त की असावधानता से वस्तु के अयथार्थ स्वरूपका चिन्तनरूप, ‘अणायारो’—अनाचार—सयमियो को अनाचरणीय, ‘अणिच्छियव्वो’—अनेष्टव्य सर्वथा अवाञ्छनीय तथा ‘असमणपाउग्गो’—अश्रमणप्रायोग्य—साधुओं के आचरणके अयोग्य

दुज्ज्ञाओ—दुर्ध्यान—कपाययुक्त अतःकरण की ऐकाग्रतायी आर्त्तरौद्रध्यानरूप
दुर्विचिन्तिओ—दुर्विचिन्तित-चित्त की असावधानतायी वस्तुना अयथार्थस्वरूपमा
चित्तनरूप अणायारो—अनाचरणीय सयमियोने अनाचरणीय अणिच्छियव्वो अनेष्टव्य—
इमेशा नहि दुष्टध्यायोग्य तथा असमणपाउग्गो—अश्रमणप्रायोग्य—साधुओना
आचरणने अयोग्य होय तेमज्ज्ञानमा, दर्शनमा, चारित्रमा तथा विशेषरूपयी श्रुत

દિવસકૃતો રાત્રિકૃતયેત્યર્થઃ । ‘અઈઆરો’ અતિક્રમ્ય ચારઃ=ચરણમતી-
 ચારઃ=સયમમર્યાદાતો ગૃહિતપરત્તન-સયમમર્યાદામુદ્ગ્રહ્ય ગમનમિતિ યાવત્,
 ‘કઓ’ કૃતો વિહિત इत्यર્થः । કીદૃશઃ સ દૈવસિકોડતીચારઃ ? इत्यत आह-
 ‘કાઈઓ વાઈઓ માણસિઓ’ इति, કાયે ભવઃ, કાયે જાતઃ, કાયેન નિર્વૃત્તો વા
 ‘કાયિક. । એવં વાચિકો માનસિક इत्युभयत्रापि बोध्यम्, કાયજાતો વાગ્જાતો
 મનોજાત इति निष्कर्षः । ‘ઉસ્સુત્તો’ સૂત્રમુચ્ચિત્ત્યોત્ક્રમ્ય વા સૂત્રાદૂર્ન્વૈ વા સજાત
 ઉત્સૂત્રઃ સૂત્રોલ્લહુનેન નિષ્પન્નોડર્થાત્તીર્થકરગણધરાગ્રાપ્તોપદિષ્ટપ્રવચનપરિત્યાગેનો
 ક્લૂતઃ । અતએવ ‘ઉમ્મગ્ગો’ માર્ગાદુદ્ગત ઉન્માર્ગઃ ક્ષાયોપશમિકભાવપ્રઠાણપૂર્વકો
 દાયિકભાવપોસક્રમઃ (ક્રાન્તઃ) । ‘અકપ્પો’ કલ્પ.=કરણચરણવ્યાપારરૂપ
 આચારઃ, ન કલ્પોડકલ્પ. કરણચરણવ્યાપારરહિત इत्यર્थः । યદ્વા ‘અકલ્પ્યઃ’
 इतिच्छाया तस्य कल्पयितु योग्य =कल्प्यो मुनिधर्मः न कल्प्योऽकल्प्यो=मुन्याचार
 विशृङ्खलित अतएव ‘अकरणिज्जो’ અકરણીય =મુનિભિરનાચરણીય’ ॥ ઉક્તા
 કાયિક-વાચિક-યોસ્તીચારયોર્મેદા., સમ્પ્રતિ માનસિકસ્યાડતિચારસ્ય તાનાહ-

અતિચાર કિયા ગયા હો, ચાહે વહ કાયસમ્બન્ધી, વચનસમ્બન્ધી,
 મનસમ્બન્ધી, ‘ઉસ્સુત્તો’ ઉત્સૂત્રરૂપ અર્થાત્ તીર્થકર ગણધર આદિકે
 ઉપદિષ્ટ પ્રવચનકે વિરુદ્ધ પ્રરૂપણાદિરૂપ, ‘ઉમ્મગ્ગો’-ઉન્માર્ગરૂપ અર્થાત્
 ક્ષાયોપશમિક ભાવકા ઉલ્લહુન કરકે ઔદયિક ભાવમે પ્રવૃત્તિરૂપ,
 ‘અકપ્પો’-અકલ્પ(લ્પ્ય)=કરણચરણરૂપ આચાર રહિત, ‘અકરણિજ્જો’-
 અકરણીય અર્થાત્ મુનિયોંકે નહી કરને યોગ્ય હો । ય સબ ઉપર
 કહે હુણ કાયિક તથા વાચિક અતિચાર હૈ, અવ માનસિક અતિચાર

ઉલ્લઘનરૂપ અતિચાર કરાયો હોય, આહે તો એ શરીરસંબન્ધી વચનસંબન્ધી-મન
 સંબન્ધી, ઉસ્સુત્તો-ઉત્સૂત્રરૂપ અર્થાત્ તીર્થકર ગણધર વિગેરે ઉપદિષ્ટ પ્રવચનની વિરુદ્ધ
 પ્રરૂપણાદિ, ઉમ્મગ્ગો ઉન્માર્ગરૂપ અર્થાત્ ક્ષાયોપશમિક ભાવનું ઉલ્લઘન કરીને ઔદયિક
 ભાવમા પ્રવૃત્તિરૂપ, અકપ્પો અકલ્પ્ય, કરણચરણરૂપ આચારરહિત અને અકરણિજ્જો
 અકરણીય અર્થાત્ મુનિઓને નહિ કરવા લાયક હોય ઉપર કહેલ એ બધા કાયિક
 તથા વાચિક અતિચાર છે હવે માનસિક અતિચાર કહે છે-

૧ ‘કાયિક. । “તવ્રભવ (૪ । ૩ । ૫૩) इति, “તવ્રજાત.”
 (૪ । ૩ । ૨૫) इति, “તેન નિર્વૃત્તમ્” (૫ । ૧ । ૭૮) इति वा ठक् ।

‘दुज्झाओ’—इत्यादिना, ‘दुज्झाओ’ दुर्ध्यातः, दुष्टो दुःस्थो वा ध्यातो दुर्ध्यातः=विरुद्धध्यानसपन्नः कषायकलुषितान्तःकरणैकाग्रताऽऽर्त्तरोद्रूपः, यद्वा आर्षत्वादत्र भावे क्तः पुस्त्व च, तेन दुष्टध्यानरूप इत्यर्थः, अत एव ‘दुर्विचिन्तिओ’ दुःखेन दुष्टो वा विचिन्तितो=दुर्विचिन्तितः=अनवस्थितचित्त-तया तत्त्वपरिभ्रशनपूर्वकाऽशुभचिन्तनोपेतः, अतएव ‘अणायारो’ अनाचारः=सयममार्गेण प्रचलता सयमिनामनाचरितव्यः । यतोऽनाचरितव्योऽतएव ‘अणिच्छियव्वो’ अनेष्टव्यः=चेतसाऽपि लेशतोऽप्यनभिलषणीयः, यतश्चैवमतः ‘असमणपाउग्गो’ न योग्योऽयोग्यः प्रकर्षेणाऽयोग्यः प्रायोग्यः श्रमणानां श्रमणैर्वा प्रायोग्यः=श्रमणप्रायोग्यः न श्रमणप्रायोग्योऽश्रमणप्रायोग्यः—श्रमणानामयोग्य इत्यर्थः, मुनिभिरननुष्ठेय इति यावत् । अत्र व्युत्क्रमव्याख्यानं तु सूत्रक्रम-विरोधादनुभवविरोधाच्चोपेक्षितव्यमेव । किंकिंविषयकोऽतिचारः ? इत्याह—‘नाणे’ इत्यादिना, ‘नाणे’ ज्ञाने=पदार्थपरिवोचलक्षणे, ‘दसणे’ दर्शने=प्रवचनाभिरोचनस्वरूपे, ‘चरित्ते’ चारित्र्ये=आश्रवनिरोधरूपे ‘नाणे’ इत्यादिषु वैषयिकागारे सप्तमी, मोक्षे इच्छाऽस्तीत्यादिवत्, तेन ज्ञानविषयको दर्शनविषयक-चारित्र्यविषयकश्चेति फलति । विशेषेणोच्यते—‘सुए’ इति, ‘सुए’ श्रुते=मत्यादिज्ञानस्वरूपे, श्रुतग्रहणस्य मत्यादिज्ञानोपलक्षकत्वात् मत्यादिज्ञानविषयक इत्यर्थः, यद्वा ‘सुए’ इत्यस्य श्रुते=उर्मेऽर्थाच्छास्त्रपठनादिरूप इत्येवार्थो न तु मत्यादिज्ञान इति, अतिचारश्चात्राऽकाले सूत्रपठनादिरूपः । अधुना चारित्र्यातिचार-

कहते हैं—‘दुज्झाओ’—दुर्ध्यानकषाययुक्त अन्तःकरण की एकाग्रतासे आर्त्तरोद्र ध्यानरूप, ‘दुर्विचिन्तिओ’—दुर्विचिन्तित-चित्त की असावधानता से वस्तु के अर्थार्थ स्वरूपका चिन्तनरूप, ‘अणायारो’—अनाचार—सयमियों को अनाचरणीय, ‘अणिच्छियव्वो’ अनेष्टव्य-सर्वथा अवाञ्छनीय तथा ‘असमणपाउग्गो’—अश्रमणप्रायोग्य—साधुओं के आचरणके अयोग्य

दुज्झाओ—दुर्ध्यान—कषाययुक्त अतःकरण की ओकाग्रताथी आर्त्तरोद्र ध्यानरूप
दुर्विचिन्तिओ—दुर्विचिन्तित-चित्त की असावधानताथी वस्तुना अर्थार्थस्वरूपमा
चित्तनरूप अणायारो—अनाचरणीय सयमियेने अनाचरणीय अणिच्छियव्वो—अनेष्टव्य—
इमेशा नडि उच्छवायोग्य तथा असमणपाउग्गो—अश्रमणप्रायोग्य—साधुओंना
आचरणने अयोग्य होय तेमज्ज्ञानमा, दर्शनमा, चारित्र्यमा तथा विशेषरूपथी श्रुत

माह—‘सामादृष्ट’ इति, सामायिके=सामायिकविषयकः, प्राग्व्याख्यातः सामायिकपदार्थः, अत्र सामायिकपदेन सम्यक्त्वसामायिक-चारित्रसामयिकयोर्ग्रहणं, तत्र वक्ष्यमाणरूपः शङ्कादिः सम्यक्त्वसामायिकातिचारविषयः, चारित्रसामायिकातिचारो भेदत्रयात्मक इति बोधयितुमाह—‘तिष्ठ गुप्तीण’ इति, तिसृणा गुप्तीना, निर्धारणे पृष्ठी, तेन तिसृणा गुप्तीना मय इत्यर्थः, एवमग्रेऽपि, गुप्तिश्च मोक्षाभिलाषुकयोगनिरोधरूपा ‘चतुष्टय कसायाण’ चतुर्णां कपायाणां=भव-महीरुहसेचकानां क्रोधमानादीनाम्, ‘पचष्टय महव्याण’ पञ्चानां महाव्रतानां=प्राणातिपातमृपावादाऽदत्ताऽऽदानानुपरतिस्वरूपाणां, ‘छष्टय जीविकायाण’ पण्णा जीविकायानां=पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रयकायिकानाम्, ‘सप्तष्टय पिण्डेषणाण’ सप्तानां पिण्डेषणानामससृष्टाप्रभृतीनाम्, ताश्च यथा—१ अससृष्टा २ ससृष्टा, ३ ससृष्टाऽससृष्टा, ४ अल्पलेपा, ५ अवगृहीता, ६ प्रगृहीता, ७ उज्जितधर्मिका चेति, आसा प्रत्येक स्वरूपाण्याचाराङ्गमूत्रतो ज्ञेयानि । ‘अष्टष्टय प्रवचनमातृणां’ अष्टानां प्रवचनमातृणां=समितिपञ्चक-गुप्तित्रयरूपाणाम् । ‘नवष्टय वभचेरगुप्तीण’ नवानां ब्रह्मचर्यगुप्तीनां=वसतिकथादिरूपाणाम् । एतदन्तानां सर्वेषां ‘योऽतिचारः कृतः’ इति पूर्वणान्वयः । ‘दशविधे’ दशविधे ‘समणधर्मे’ श्रमणधर्मे क्षान्त्यादिरूपे ‘समणाण’ श्रमणानां=श्रमणसम्बन्धिना

हो, एव ज्ञानमे, दर्शनमें, चारित्रमें तथा विशेषरूप से श्रुतधर्म में, सम्यक्त्वरूप तथा चारित्ररूप सामायिकमें, तथा उसके भेदरूप योगनिरोधात्मक तीन गुप्तियों में, चार कपायो में, पाच महाव्रतों में, छह जीविकायों में, (१) अससृष्टा, (२) ससृष्टा, (३) ससृष्टाऽससृष्टा, (४) अल्पलेपा, (५) अवगृहीता, (६) प्रगृहीता, तथा (७) उज्जितधर्मिका रूप सात पिण्डेषणाओं में, पाचसमिति तीन गुप्तिरूप आठ प्रवचनमाताओं में, ब्रह्मचर्य की नौ वाडों में, दश प्रकार के श्रमणधर्म

धर्मों, सम्यक्त्वरूप तथा चारित्ररूप सामायिकता तथा ज्ञाना भेदरूप योगनिरोधात्मक त्रय गुप्तिधर्मों, चार कपायों, पाच महाव्रतों, छह जीविकायों, (१) अससृष्टा (२) ससृष्टा (३) ससृष्टाऽससृष्टा (४) अल्पलेपा (५) अवगृहीता (६) प्रगृहीता (७) उज्जितधर्मिकारूप सात पिण्डेषणधर्मों, पाचसमिति त्रयगुप्तिरूप आठ प्रवचनमाताधर्मों, ब्रह्मचर्य की नव वाडों, दश प्रकार के श्रमणधर्मों अहं

‘જોગણ’ યોગના વ્યાપારાણા શ્રદ્ધાન-પ્રરૂપણ-સ્પર્શનસ્વરૂપાણા=શ્રમણ-સમ્બન્ધિવ્યાપારમધ્યે इत्यर्थः, ‘જ’ યત્ ‘વિરાહિય’ વિરાધિત=સર્વતોભાવેન સ્વણ્ડિત=સ્વલિત, ‘તસ્સ’ તસ્ય=વાચિકાદિરૂપસ્ય દૈવસિકસ્યાતિચારસ્ય સ્વણ્ડ-નસ્ય વિરાધનસ્ય ચ-તત્સમ્બન્ધીત્યર્થઃ, (યત્તદો નિત્યસમ્બન્ધેન ‘તસ્સ’ ઇતિ તચ્છબ્દેન પ્રાગુક્તાના યચ્છબ્દનિર્દિષ્ટાના સર્વેષા સગ્રહાત્, વહુષુ પુસ્તકેષુ દૃશ્ય-માન વિપરીતવ્યાખ્યાન સૂત્રાક્ષરાનનુગુણત્વાદુપેક્ષ્યમેવ, નચૈકેન તચ્છબ્દેન ‘જો મે દેવસિઓ’ ‘જ સ્વહિય’ ‘જ વિરાહિય’ ઇતિ યચ્છબ્દત્રયસ્યાऽऽકાઙ્ક્ષા કથ પૂર્યેત ? પ્રતિયચ્છબ્દ તચ્છબ્દોપાદાનસ્યાऽऽવશ્યકત્વાત્, અતएव ‘ય ય કામયતે કામ ત તમાપ્નોતિ લીલયા’ ઇત્યાદૌ તચ્છબ્દદ્વયોપાદાન સગચ્છત ઇતિ વાચ્યમ્, બુદ્ધિવિષયતાવચ્છેદકત્વોપલક્ષિતધર્માવચ્છિન્ને તચ્છબ્દશન્ને, પ્રકૃતે ચ સર્વેષામેવ યચ્છબ્દોપાદાના તાદૃશધર્માવચ્છિન્ન (બુદ્ધિવિષય) ત્વાત્, અતएव ‘યત્રત્પાપ પ્રતિજહિ જગન્નાથ ? નમ્રસ્ય તન્મે’ ઇત્યાદૌ યત્રદિત્યાભ્યા યચ્છબ્દાભ્યા યેન કેન ચિદ્રૂપેણ સ્થિત સર્વાત્મક પાપરૂપ વસ્તુ વિવક્ષિત તથાભૂતસ્ય તસ્ય તચ્છબ્દેન પરા-મર્શસ્તસ્માન્નાત્ર સાકાઙ્ક્ષત્વ દોષ ઇત્યુક્ત કાવ્યપ્રકાશ-રસગદ્યાધરસાહિત્યદર્પણા-દિપ્તિવિતિ તત્રૈવ કળેદત્યાઽવલોકનીયમ્ ।) ‘દુક્કડ’ દુષ્કૃત=પાપમ્ ‘મિ’ મયિ વિષયસપ્તમીય તેન મદ્વિષય इत्यर्थः । ‘મિચ્છા’ મિથ્યા=નિષ્ફલમ્ અભાવરૂપમિતિ યાવત્, ભવત્તિવિતિ શેષ । યત્તુ ‘મિ’ इत्यस्य ‘મે’ इतिच्छायया व्याख्यान તદ્વ્યાકરણવિરોધાત્સૂત્રતાત્પર્યવિરોધાच्च हेयमेव ।

કે અન્દર શ્રદ્ધાપ્રરૂપણા-સ્પર્શનારૂપ શ્રમણયોગોં મેં સે, જિસ કિસી કી દેશસે સ્વણ્ડના યા સર્વથા વિરાધના હુઈ હો उन सब पूर्वोक्त अतिचारों से मुझे लगा हुआ पाप निष्फल हो ॥

‘મિ’ હસકી ‘મે’ ऐसी छाया करके जो व्याख्यान किया गया है वह व्याकरण तथा सूत्रतात्पर्य से विरुद्ध होने के कारण सर्वथा त्याज्य है ।

શ્રદ્ધા-પ્રરૂપણા-સ્પર્શનારૂપ શ્રમણયોગોમાથી જેની કોઈની દેશથી ખડના અથવા સર્વથા વિરાધના થઈ હોય તે સર્વ પૂર્વે કહેલા અતિચારોથી મને લાગેલા પાપ નિષ્ફળ થાય

મિ-એની મે એવી છાયા કરીને જે વ્યાખ્યાન કરેલું છે તે વ્યાકરણ

माह-‘सामाङ्ग’ इति, सामायिके=सामायिकविषयकः, प्राग्व्याख्यात’ सामायिकपदार्थः, अत्र सामायिकपदेन सम्यक्त्वसामायिक-चारित्रसामायिकयोर्ग्रहण, तत्र वक्ष्यमाणरूपः शङ्कादिः सम्यक्त्वसामायिकातिचारविषयः, चारित्रसामायिकातिचारो भेदत्रयात्मक इति बोधयितुमाह-‘तिष्ठ गुत्तीण’ इति, तिष्ठणा गुप्तीना, निर्धारणे पट्टी, तेन तिसृणा गुप्तीना मय इत्यर्थः, एवमग्रेऽपि, गुप्तिश्च मोक्षाभिलाषुकयोगनिरोधरूपा ‘चतुण्ह कसायाण’ चतुर्णां कपायाणा=भव-महीरुहसेचकानां क्रोधमानादीनाम्, ‘पचण्ह महञ्चयाण’ पञ्चानां महाव्रताना=प्राणातिपातमृपावादाऽदत्ताऽऽदानानुपरतिस्वरूपाणां, ‘छण्ह जीवनिक्कायाण’ षण्णां जीवनिक्कायाना=पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रयकायिकानाम्, ‘सत्तण्ह पिण्डेसणाण’ सप्तानां पिण्डैषणानामससृष्टाप्रभृतीनाम्, ताश्च यथा-१ अससृष्टा २ ससृष्टा, ३ ससृष्टाऽससृष्टा, ४ अल्पलेपा, ५ अवगृहीता, ६ प्रगृहीता, ७ उज्झितधर्मिका चेति, आसा प्रत्येक स्वरूपाण्याचाराङ्गमूत्रतो ज्ञेयानि । ‘अट्ठण्ह पवयणमाऊण’ अष्टानां प्रवचनमातृणां=समितिपञ्चक-गुप्तित्रयरूपाणाम् । ‘नवण्ह वभचेरगुत्तीण’ नवानां ब्रह्मचर्यगुप्तीनां=वसतिकथादिरूपाणाम् । एत दन्तानां सर्वेषां ‘योऽतिचार’ कृतः’ इति पूर्वणान्वयः । ‘दमविहे’ दशविधे ‘समणधम्मे’ श्रमणधर्मे क्षान्त्यादिरूपे ‘समणाण’ श्रमणानां=श्रमणसम्बन्धिना

हो, एव ज्ञानमें, दर्शनमें, चारित्रमें तथा विशेषरूप से श्रुतधर्म में, सम्यक्त्वरूप तथा चारित्ररूप सामायिकमें, तथा उसके भेदरूप योगनिरोधात्मक तीन गुप्तियों में, चार कपायों में, पांच महाव्रतों में, छह जीवनिक्कायों में, (१) अससृष्टा, (२) ससृष्टा, (३) ससृष्टाऽससृष्टा, (४) अल्पलेपा, (५) अवगृहीता, (६) प्रगृहीता, तथा (७) उज्झित धर्मिका रूप सात पिण्डैषणाओं में, पांचसमिति तीन गुप्तिरूप आठ प्रवचनमाताओं में, ब्रह्मचर्य की नौ बाड़ों में, दश प्रकार के श्रमणधर्म

धर्मों में, सम्यक्त्वरूप तथा चारित्ररूप सामायिक में तथा केना लेख्य योगनिरोधात्मक त्रय गुप्तिओं में, चार कपायों में, पांच महाव्रतों में, छह जीवनिक्कायों में, (१) अससृष्टा (२) ससृष्टा (३) ससृष्टाऽससृष्टा (४) अल्पलेपा (५) अवगृहीता (६) प्रगृहीता (७) उज्झितधर्मिकारूप सात पिण्डैषणाओं में, पांचसमिति त्रयगुप्तिरूप आठ प्रवचनमाताओं में, ब्रह्मचर्य की नौ बाड़ों में, दश प्रकार के श्रमणधर्मों में अष्ट

‘जोगाण’ योगाना व्यापाराणा श्रद्धान-प्ररूपण-स्पर्शनस्वरूपाणा=श्रमण-सम्बन्धिव्यापारमध्ये इत्यर्थः, ‘ज’ यत् ‘विराहिय’ विराधित=सर्वतोभावेन खण्डित=स्खलित, ‘तस्स’ तस्य=वाचिकादिरूपस्य दैवसिक्कस्यातिचारस्य खण्डनस्य विराधनस्य च-तत्सम्बन्धीत्यर्थः, (यत्तदोर्नित्यसम्बन्धेन ‘तस्स’ इति तच्छब्देन प्रागुक्ताना यच्छब्दनिर्दिष्टाना सर्वेषा सग्रहात्, बहुषु पुस्तकेषु दृश्यमान विपरीतव्याख्यान सूत्राक्षराननुगुणत्वादुपेक्ष्यमेव, नचैकेन तच्छब्देन ‘जो मे देवसिओ’ ‘ज खडिय’ ‘ज विराहिय’ इति यच्छब्दत्रयस्याऽऽकाङ्क्षा कथं पूर्येत ? प्रतियच्छब्द तच्छब्दोपादानस्याऽऽवश्यकत्वात्, अतएव ‘य य कामयते काम त तमाप्नोति लीलया’ इत्यादौ तच्छब्दद्वयोपादान सगच्छत इति वाच्यम्, बुद्धिविषयतावच्छेदकत्वोपलक्षितधर्मावच्छिन्ने तच्छब्दशक्तेः, प्रकृते च सर्वेषामेव यच्छब्दोपात्ताना तादृशधर्मावच्छिन्न (बुद्धिविषय) त्वात्, अतएव ‘यत्तत्पाप प्रतिजहि जगन्नाथ ? नम्रस्य तन्मे’ इत्यादौ यत्तदित्याभ्या यच्छब्दाभ्या येन केन चिद्रूपेण स्थित सर्वात्मक पापरूप वस्तु विवक्षित तथाभूतस्य तस्य तच्छब्देन परामर्शस्तस्मान्नात्र साकाङ्क्षत्वं दोष इत्युक्त काव्यप्रकाश-रसगङ्गाधरसाहित्यदर्पणादिष्विति तत्रैव कणेहत्याऽवलोकनीयम् ।) ‘दुक्कड’ दुष्कृत=पापम्, ‘मि’ मयि विषयसप्तमीय तेन मद्विषय इत्यर्थः । ‘मिच्छा’ मिथ्या=निष्फलम् अभावरूपमिति यावत्, भवत्विति शेष । यत्तु ‘मि’ इत्यस्य ‘मे’ इतिच्छायाया व्याख्यान तद्व्याकरणविरोधात्सूत्रतात्पर्यविरोधाच्च हेयमेव ।

के अन्दर श्रद्धाप्ररूपणा स्पर्शनारूप श्रमणयोगो में से, जिस किसी की देशसे खण्डना या सर्वथा विराधना हुई हो उन सब पूर्वोक्त अतिचारो से मुझे लगा हुआ पाप निष्फल हो ॥

‘मि’ इसकी ‘मे’ ऐसी छाया करके जो व्याख्यान किया गया है वह व्याकरण तथा सूत्रतात्पर्य से विरुद्ध होने के कारण सर्वथा त्याज्य है ।

श्रद्धा-प्ररूपणा-स्पर्शनाइय श्रमणयोगोभाथी जेनी डोडनी देशथी भडना अथवा सर्वथा विराधना थड होय ते सर्व पूर्वो कडेला अतिचारोथी भने लागेला पाप निष्फल थाय

मि-जेनी मे जेवी छाया करीने जे व्याख्यान करेलु छे ते व्याकरण

કેચિત્ ‘મિચ્છામિ’ इति पद ‘मि’ ‘छा’ ‘मि’ इत्येव विभज्य
 प्रथमेन ‘मि’ इत्यनेन कायनम्रत्त च, ‘छा’ इत्यनेनासयमयोगरूपदोषच्छादन,
 चरमेण ‘मि’ इत्यनेन ‘चारित्ररूपमर्यादास्थितोऽह’-मित्येवरूप, तथा ‘दुष्कृत’
 इत्यत्र ‘दु’ इत्यनेन दुगुच्छामि=‘दुष्कृतकर्मकारिणमात्मान निन्दामि’ इत्येवरूप
 ‘क’ इति वर्णेन ‘कृत’-मिति, ‘ड’ इति वर्णेन ‘उपशमेनातिक्रामामि’
 अर्थात् द्रव्यभावनम्रत्तचारित्रमर्यादास्थितोऽह दुष्कृतकर्मकारिणमात्मान निन्दामि,
 कृत च दुष्कृत कर्म उपशमेन परित्यजामीत्येवमर्थं व्याचक्षते ‘प्रत्येकानतिरिक्तः
 समुदायः’ इति न्यायेन पदस्यार्थवत्त्वे वर्णानामप्यर्थवत्ताऽङ्गीकारादितरथा पद-

કઈ એક ‘મિચ્છામિ’ इस पदका ‘मि’ - ‘छा’ ‘मि’
 ऐमा पदच्छेद करके “-‘मि’=कायिक और मानसिक अभिमानको
 छोड़कर ‘छा’=असयमरूप दोष को ढक कर ‘मि’=चारित्र की मर्यादा
 में रहा हुआ मैं, ‘दु’ ‘क’ ‘ड’ - ‘दु’=सावद्यकारी आत्माकी निन्दा
 करता हूँ, ‘क’=किये हुए सावद्यकर्म को ‘ड’=उपशमद्वारा त्यागता
 हूँ, अर्थात् द्रव्य-भावसे नम्र तथा चारित्रमर्यादा में स्थित होकर
 मैं सावद्य क्रियाकारी आत्मा की निन्दा करता हूँ और किये हुए
 दुष्कृत (पाप) को उपशमभावसे हटाता हूँ” इस प्रकार अर्थ करते
 हैं । ऐसा अर्थ करना कोई असंगत नहीं है, प्रत्युत सर्वथा उचित
 ही है, क्योंकि-‘समुदाय प्रत्येक से भिन्न नहीं होता’ इस न्याय से
 जब पद की सार्थकता स्वीकार की जाय तो प्रत्येक वर्ण की भी

તથા સૂત્રના તાત્પર્યથી વિરુદ્ધ હોવાને કારણે એકદમ ત્યાજ્ય છે એટલાક “મિચ્છામિ”
 એ પદમા “મિ ‘છા’ મિ” એ પ્રમાણે પદચ્છેદ કરીને ‘મિ’ કાયિક અને માનસિક
 અભિમાનને છોડી “છા”=અસયમરૂપ દોષને ઢાકીને “મિ” ચારિત્રની મર્યાદામા રહેવો
 હું ‘દુ’ ‘ક’ ‘ડ’ “દુ”=સાવધકારી આત્માની નિન્દા કરૂં છું “ક” કરેલા
 પાપકર્મનો “ડ” ઉપશમદ્વારા ત્યાગ કરૂં છું, અર્થાત્ દ્રવ્યભાવથી નમ્ર તથા
 ચારિત્રમર્યાદામા સ્થિત થઈને હું સાવધક્રિયાવાન આત્માની નિન્દા કરૂં છું
 અને કરેલા પાપને ઉપશમભાવથી હટાવું છું-એ પ્રમાણે અર્થ કરે છે આ
 પ્રમાણે અર્થ કરવો તે કોઈ પ્રકારે અસંગત નથી પરંતુ સર્વથા ઉચિત જ છે,
 કારણ કે સમુદાય પ્રત્યેકથી ભિન્ન નથી-આ ન્યાય પ્રમાણે

સ્યાપિ વર્ણસમુદાયાત્મકત્વેનાઽઽનર્થક્યાઽપત્તેઃ, તદુક્તમ્—‘અર્થવન્તો વર્ણાં ૦’
 ઇતિ પ્રતિજ્ઞાય ‘સઘાતાર્થવચ્ચાચ્ચ’ ઇતિ હેતુપદર્શકવાર્ત્તિકવ્યાખ્યાયા પતંજ-
 લિના—‘યેષા સમુદાયા અર્થવન્તોઽવયવા અપિ તેષામર્થવન્તઃ તથથા—ઐક-
 ચ્ચક્ષુષ્માન્ દર્શને સમર્થસ્તત્સમુદાયથ્થ શતમપિ સમર્થમ્, ઐકથ તિલસ્તૈલદાને
 સમર્થસ્તત્સમુદાયથ્થ શતમપિ સમર્થમ્, યેષા પુનરવયવા અનર્થકાઃ સમુદાયા અપિ
 તેષામનર્થકા’, ઐકા ચ સિક્તા તૈલદાનેઽસમર્થા તત્સમુદાયથ્થ સ્વામીશતમપ્ય-
 સમર્થ’—મિતિ’ ।

સાર્થકતા સ્વીકાર કરની હોતી હૈ, અન્યથા વર્ણોં કે સમુદાયરૂપ
 પદ ઓર પદોં કે સમુદાયરૂપ વાક્ય મેં યદિ વર્ણોં કો અનર્થક
 કહેં તો ઉનકે સમુદાયરૂપ શબ્દ તથા વાક્ય ધી અનર્થક હો
 જાય, જૈસા કિ પતંજલિને અપને ગ્રન્થ વ્યાકરણ—મહાભાષ્ય મેં
 કહા હૈ—“જિનકે સમુદાય અર્થવાન્ હોતે હૈં ઉનકે અવયવ ધી
 અર્થવાન્ હી રહા કરતે હૈં, જૈસે—નેત્રવાલા ઐક વ્યક્તિ દેખ સકતા
 હૈ તો ઁસી તરહ નેત્રવાલા હજારોં કા સમુદાય ધી દેખ સકતા હૈ,
 તિલકે ઐક દાને મેં તૈલ હૈ તો અનેક દાનો મેં ધી હૈ, ઓર જિનકે
 અવયવ અનર્થક હોતે હૈં ઉનકે સમુદાય ધી અનર્થક હી હુઆ
 કરતે હૈં, ચાલૂકે ઐક કણસે તૈલ નહી નિકલ સકતા તો ચાલૂકી
 ઢેરીસે ધી નહી નિકલતા” ઇત્યાદિ ।

સ્વીકાર કરવામા આવે તો પ્રત્યેક વર્ણની પણ સાર્થકતા સ્વીકારવી જોઈએ
 અન્ય વર્ણોંના સમુદાયરૂપ પદ અને પદોંના સમુદાયરૂપ વાક્યમા જો વર્ણોંને
 અનર્થક કહીએ તો તેના સમુદાયરૂપ શબ્દ તથા વાક્ય પણ અનર્થક થઈ જાય જેવી
 રીતે કે પતંજલિએ પોતાના ગ્રન્થ વ્યાકરણ—મહાભાષ્યમા કહ્યુ છે “જેનો
 સમુદાય અર્થવાન હોય છે તેનું અવયવ પણ અર્થવાન જ રહે છે જેમ નેત્રવાળો
 એક માણસ દેખી શકે છે તો તે રીતે નેત્રવાળા હજારોં માણસોનો સમુદાય પણ
 દેખી શકે છે તલના એક દાણામા તેલ છે તો તેના અનેક દાણાઓમા પણ છે
 અને જેનું અવયવ અનર્થક હોય છે તો તેના સમુદાય પણ અનર્થક હોય છે
 રેતીના એક કણમાથી તેલ નીકળતુ નથી તો રેતીના ઢગલામાથી પણ તેલ
 નીકળી શકતુ નથી ઇત્યાદિ’

કેચિત્ 'મિચ્છામિ' इति पद 'मि' 'छा' 'मि' इत्येव विभज्य प्रथमेन 'मि' इत्यनेन कायनम्रत्वं च, 'छा' इत्यनेनासयमयोगरूपदोषच्छादन, चरमेण 'मि' इत्यनेन 'चारित्ररूपमर्यादास्थितोऽह'—मित्येवरूपं, तथा 'दुष्कृत' इत्यत्र 'दु' इत्यनेन दुगुच्छामि= 'दुष्कृतकर्मकारिणमात्मानं निन्दामि' इत्येवरूप 'क' इति वर्णेन 'कृत'—मिति, 'ड' इति वर्णेन 'उपशमेनातिक्रामामि' अर्थात् द्रव्यभावनम्रश्चारित्रमर्यादास्थितोऽह दुष्कृतकर्मकारिणमात्मानं निन्दामि, कृतं च दुष्कृतं कर्म उपशमेन परित्यजामीत्येवमर्थं व्याचक्षते 'प्रत्येकानतिरिक्तः समुदायः' इति न्यायेन पदस्यार्थवत्त्वे वर्णानामप्यर्थवत्ताऽङ्गीकारादितरथा पद-

કઈ એક 'મિચ્છામિ' હસ પદકા 'મિ' 'છા' 'મિ' એસા પદચ્છેદ કરકે “-‘મિ’=કાયિક ઓર માનસિક અભિમાનકો છોડકર ‘છા’=અસયમરૂપ દોષ કો ઢક કર ‘મિ’=ચારિત્ર કી મર્યાદા મેં રહા હુઆ મૈ, ‘દુ’ ‘ક’ ‘ડ’ - ‘દુ’=સાવધકારી આત્માકી નિન્દા કરતા હૂં, ‘ક’=કિયે હુએ સાવધકર્મ કો ‘ડ’=ઉપશમદ્વારા ત્યાગતા હૂં, અર્થાત્ દ્રવ્ય-ભાવસે નમ્ર તથા ચારિત્રમર્યાદા મેં સ્થિત હોકર મૈ સાવધ ક્રિયાકારી આત્મા કી નિન્દા કરતા હૂં ઓર કિયે હુએ દુષ્કૃત (પાપ) કો ઉપશમભાવસે દટાતા હૂં” હસ પ્રકાર અર્થ કરતે હૈં । એસા અર્થ કરના કોઈ અસગત નહીં હૈ, પ્રત્યુત સર્વથા ઉચિત હી હૈ, ક્યોંકિ-‘સમુદાય પ્રત્યેક સે ભિન્ન નહીં હોતા’ હસ ન્યાય સે જબ પદ કી સાર્થકતા સ્વીકાર કી જાય તો પ્રત્યેક વર્ણ કી બી

તથા સૂત્રના તાત્પર્યથી વિરુદ્ધ હોવાને કારણે એકદમ ત્યાજ્ય છે કેટલાક “મિચ્છામિ” એ પદમા “મિ ‘છા’ મિ” એ પ્રમાણે પદચ્છેદ કરીને ‘મિ’ કાયિક અને માનસિક અભિમાનને છોડી “છા”=અસયમરૂપ દોષને ઢાકીને “મિ” ચારિત્રની મર્યાદામાં રહેલો હું ‘દુ’ ‘ક’ ‘ડ’ “દુ”=સાવધકારી આત્માની નિન્દા કરૂ છું “ક” કરેલા પાપકર્મનો “ડ” ઉપશમદ્વારા ત્યાગ કરૂ છું, અર્થાત્ દ્રવ્યભાવથી નમ્ર તથા ચારિત્રમર્યાદામાં સ્થિત થઈને હું સાવધક્રિયાવાન આત્માની નિન્દા કરૂ છું અને કરેલા પાપને ઉપશમભાવથી હટાવું છું-એ પ્રમાણે અર્થ કરે છે આ પ્રમાણે અર્થ કરવો તે કેઈ પ્રકારે અસગત નથી પરંતુ સર્વથા ઉચિત જ છે, કારણ કે સમુદાય પ્રત્યેકથી ભિન્ન નથી-આ ન્યાય પ્રમાણે ન્યારે પદની સાર્થકતા

यथामत्पूहनीयानि। एतच्च मिथ्यादुष्कृतप्रायश्चित्त समितिगुप्तिरूपसयममार्गप्रवृत्तस्य साधोः प्रमादादिवशात्स्खलनाया सत्यामनुष्ठित सत् प्रदीपस्तम इव दोषमपनयति, अकृत्यवासनावासितान्तरात्मना साधुना मिथ्यादुष्कृतदान पुनरकृत्यसेवनाद्गुर्वादेरनुरञ्जनमात्रफलक भवति, तस्मात्तदर्थं नेद प्रायश्चित्त, नहि ज्ञात्वा भृशमपराय-तोऽप्यज्ञानकृतापराधप्रायश्चित्तेनाऽऽत्ममोचन जातु दृष्टचरम्, 'बुद्ध्वा चेद् द्विगुणो दमः'—'मत्या तु द्विगुण चरेत्' इत्यादिनीतेर्यथाऽपराध राजादिशासनवद्धर्म-

आत्मा की अतिचार प्रवृत्तिरूप अप्रशस्त सत्ता (अशुद्ध अवस्था) को हटाता हूँ ॥

ऊपर कहा हुआ मिथ्यादुष्कृत प्रायश्चित्त समिति - गुप्तिरूप सयम मार्ग में प्रवृत्त साधु के प्रमाद आदि कारणसे लगे हुए दोषको उसी तरह हटा देता है जैसे दीपक अन्धेरे को, किन्तु जो साधु जान-बूझकर दोष सेवन किया करता हो उसका मिथ्या-दुष्कृत केवल गुरु आदि के मनोरञ्जन के लिए ही है पापसे छुटकारे के लिए नहीं, क्यों कि भूल से होनेवाले अपराधों के लिए जो प्रायश्चित्त नियत है उससे जान-बूझकर अपराध करनेवाले का दोष दूर नहीं होसकता। जैसे अनजानमें किसीसे राजशासनके विरुद्ध कोई अपराध किया जाता है तो उसको जितनी साधारण सजा दीजाती है, तो जान-बूझकर अपराध करनेवाले को अपराध के

भारामा रडेલી आत्माना अतिचारप्रवृत्ति रूप अप्रशस्त सत्ता (अशुद्ध अवस्था) ने त्यज्जु छु

ऊपर कहेला मिथ्यादुष्कृत प्रायश्चित्त समिति-गुप्तिरूप सयम मार्गमा प्रवर्तिला साधुना प्रमाद आदि कारणधी लागेला दोषने ओवी रीते उटावी हे छे डे नेवी रीते दीवो आधाराने उटावी हे छे यज्जु ने साधु ज्ञाणी नेधने दोषनु सेवन कर्या करे छे तेना मिथ्यादुष्कृत केवण गुरु विगेरेना मनोरञ्जन भाटे ज छे पाप भाथी छुटवाने भाटे नहि कारण डे लूलथी थयेला अपराधने भाटे ने प्रायश्चित्त नकडी छे, तेथी ज्ञाणी नेधने अपराध करवावाणाना दोष हर थध शकता नथी नेवी रीते अनजानता केधथी राज्यशासन-विरुद्ध केध अपराध थध ज्ञाय तो तेने नेटली सज्ज देवाय छे, ते करता ज्ञाणी नेधने अपराध करवावाणाने ते अपराधधी

अथवा निरुक्तीत्या 'मिच्छामि, दुष्कड' इत्यस्य 'मि' मयि विषयसप्तम्याश्रयणान्मद्विषयक छयति=छिनत्ति शिवसुखमिति छाः^१=मिथ्यात्वादस्ते^२ नो पलक्षित, 'मि^३' मिनोमि=प्रक्षिपामि, किम्^४ इत्याह—'दुष्कड'^५=दुष्कृत=पापम् । एवञ्च मद्विषयक मिथ्यात्वाद्युपलक्षित दुष्कृत (पाप) प्रक्षिपामि=दूरतः परिहारामीत्यर्थः । यद्वा 'मिच्छामि' इति पदत्रयव्याख्या पूर्ववत्, 'दुष्कड' इत्यत्र च 'दु'—रिति दुष्ट 'के'—त्यात्मनि 'डे' ति सत्ताया, दुष्टत्वं च सत्ताया विवक्षित, तथाच—'मि' मयि 'छा'=मिथ्यात्वादिना हेतुभूतेन दुष्टा=निन्दितामात्मनः सत्तामतिचारप्रवृत्तिलक्षणा 'मि'=प्रक्षिपामीत्यर्थः । व्याख्यानान्तराणि

अथवा निरुक्त रीतिसे 'मिच्छामि दुष्कड' का अर्थ इस प्रकार भी होता है—'मि' 'छा' 'मि' 'दुष्कड' ऐसा पदच्छेद करने से 'मि' मुझ में रहे हुए 'छा'=मिथ्यात्व अविरति कषाय प्रमाद अशुभ-योगरूप 'दुष्कड'=पाप को 'मि'=दूर करता हूँ ।

अथवा 'मि' 'छा' 'मि' का व्याख्यान पहले की तरह जानना, 'दुष्कड' शब्द में 'दु' 'क' 'ड' इस प्रकार पदच्छेद करने से 'दु'=दुष्ट (अप्रशस्त) 'क'=आत्मा की 'ड'=सत्ता को, अतएव समुदाय का यह अर्थ हुआ कि—उक्त मिथ्यात्वादिके कारण मुझमें रही हुई

अथवा निरुक्त-रीति-प्रमाणे “ मिच्छामि दुष्कडम् ” ने अर्थ खेवी गीते पावु थाय छे “ मि छा मि दुष्कड ” खेवो पदच्छेद करवाथी 'मि' भारामा रडेला 'छा' मिथ्यात्व अविरति कषाय प्रमाद अशुभ-योगरूप 'दुष्कड' पापने 'मि' डूर करे छु, अथवा 'मि' 'छा' 'मि' तु व्याख्यान पडेलानी भाइके नानुपु 'दुष्कड' शब्दमा “ दु क ड ” खेवी रीते पदच्छेद करवाथी 'दु'=दुष्ट (अप्रशस्त) 'क' आत्मानि 'ड'=सत्ताने, अतएव समुदायने आ अर्थ थाय छे के उक्त मिथ्यात्वादिना कारणे

१— 'छा' 'छो छेदने' अस्मात्कर्त्तरि 'क्विप्' । 'आदेच उपदेश०' इत्याकारः ।

२— 'तेन' इत्यत्र— 'जटाभिस्तापस' इतिवचतृतीया ।

३— 'मिनोमि' 'डुमिन् प्रक्षेपणे' अस्मात्कर्त्तरि 'क्विप्' । 'मि' इत्यत्रार्पत्वादीर्घाभावः ।

४— 'दुष्कड' इत्यत्र कृद्योगे षष्ठीमाप्तावपि आर्पन्वाद्द्वितीया ।

एवमादिकैरागारैरभग्नोऽविराधितो भवतु मे कायोत्सर्गो यावदर्हता भगवता नम-
स्कारेण न पारयामि तावत्काय स्थानेन मौनेन ध्यानेनाऽऽत्मान व्युत्सृजामि ॥मू० ३॥

॥ टीका ॥

‘तस्स’ तस्य=प्रमादकृताऽशुभयोगसम्बन्धेन देशतः सर्वतो वा खण्डि-
तस्य श्रमणयोगस्य सातिचारस्याऽऽत्मनो वा, तच्छब्देनात्रौचित्यात्तयोरेव ग्रह-
णात्, अतिचारस्य तु सम्भवेऽपि ‘उत्तरीकरण-विश्लेषीकरणाऽसम्भवादग्रहणम्,
न च प्रागतिचारस्य ‘जो मे देवसिओ अइयारो’ इत्यादौ यच्छब्दनिर्दिष्टतया यत्त-
दोश्च नित्यसम्बन्धेनाऽत्र ‘तस्स’ इत्यनेन ग्रहणमिति वाच्यम्, तत्र
यच्छब्दनिर्दिष्टस्याऽतिचारस्य तत्रत्येनैव ‘तस्स मिच्छा मि’ इत्यनेन गतार्थ-
सम्बन्धत्वात्, अत्रोक्तेन च ‘तस्स’ इति तच्छब्देन बुद्धिविषयतावच्छेदकत्वो-
पलक्षितधर्मावच्छिन्नस्यैव श्रमणयोगस्याऽऽत्मनो वा ग्रहण न त्वतिचारस्येति
सुधीभिर्विवेक्तव्यम् । ‘उत्तरीकरणेण’=उत्तरीकरणेन=अनुत्तरस्योत्तरस्य कर-

यहा पर ‘तस्स’ पदसे देशखण्डित सर्वविराधितरूप श्रमण-
योग अथवा सातिचार आत्मा का ग्रहण है । कोई कोई ‘तस्स’ इस
पदसे अतिचार का ग्रहण करते हैं-वह उचित नहीं है, इसलिए
उसका सम्बन्ध ‘तस्स मिच्छा मि दुक्कड’ इस पदमे रहे हुए ‘तस्स’
शब्द के साथ पूर्ण हो चुका है । दूसरा कारण यह भी है कि
यद्यपि प्रायश्चित्तकरण तथा ‘पापविशुद्धि’ कण्टकशुद्धि-पैर आदि
में लगे हुए काटे को निकालने-की तरह अतिचारो का विशुद्धीकरण

अर्धिया ‘तस्स’ पदथी देशखण्डित अने सर्वविराधित इय श्रमण
योग अथवा सातिचार आत्मानु अडणु ठे ठेअ ठेअ ‘तस्स’ आ
पदथी अतिचारनो अडणु करे छे परतु ते योग्य नहीं तेथी तेनो सम्बन्ध
“तस्स मिच्छा मि दुक्कड” आ पदमा रहेला तस्स शब्दनी साथे पूरे थये छे
धीणु कारण ओ पणु छे छे ‘प्रायश्चित्तकरण’ तथा “पापविशुद्धि” कण्टक-
शुद्धि-पण आदिमा लागेला काटाने निकालवानी रीते अतिचारनो विशुद्धीकरण

१-‘राजा गौडेन्द्र कण्टक शोधयति’ इत्यादिषु कण्टकविशुद्धिवदतिचार-
विशुद्धीकरणं सम्भवति तस्मादुक्तम्-‘उत्तरीकरणे’-ति, नहि-शल्य=मायादिरूप-
मतिचारस्य समस्ति; अपि त्वात्मनस्तत्प्राधान्याच्छ्रामण्ययोगस्य च ।

શાસ્ત્રપ્રાયશ્ચિત્તસ્યાऽપ્યુત્તમમધ્યમાધમસાઢસરૂપત્વસ્ય સર્વજનીનત્વાત્ । અન્યથા
કદાચિત્ કુમ્ભકારક્ષુલ્લકમિધ્યાન્દુકૃતત્વાપત્તેઃ ॥ સૂ. ૨ ॥

સમ્પ્રત્યતિચારાણા વિશેષશુદ્ધયર્થે કાયોત્સર્ગઃ કર્તવ્ય ઇતિ સવિધિ
કાયોત્સર્ગસ્વરૂપમાઢ—‘તસ્સુત્તરી’—ત્યાદિ ।

॥ મૂલમ્ ॥

તસ્સુત્તરીકરણેણ પ્રાયશ્ચિત્તકરણેણ વિસોહીકરણેણ વિસહ્લી-
કરણેણ પાવાણ કમ્માણ નિગ્ધાયણઢાઐ કાઠસસગ્ગ અનત્થ ઝસ-
સિણ નીસસિણ ધ્વાસિણં છીણ જભાઢ્ણણ ઉઢ્ઢુણ
વાયનિસર્ગેણ ભમલિણ પિત્તમુચ્છાણ સુહુમેહિં અગસચાલેહિ સુહુમેહિ
ચેલસચાલેહિ સુહુમેહિ દિઢ્ઢિસચાલેહિં ઐવમાઢ્ણહિ આગારેહિં
અભગ્ગો અવિરાહિઠો હુજ્જ મે કાઠસસગ્ગો જાવ અરિહતાણ ભગવતાણ
નમુકારેણ ન પારેમિ તાવ કાય ઠાણેણ મોણેણ ઢ્ઢાણેણ
અપ્પાણ વોસિરામિ ॥ સૂ. ૩ ॥

॥ છાયા ॥

તસ્યોત્તરીકરણેન પ્રાયશ્ચિત્તકરણેન વિશુદ્ધિ (વિશોધી) કરણેન વિશલ્પી-
કરણેન પાપાના વર્મણા નિર્ધાતનાર્થ તિષ્ઠામિ કાયોત્સર્ગમ્, અન્ય-
ત્રોચ્છ્વસિતેન નિશ્વસિતેન કાસિતેન ક્ષુતેન જૃમ્ભિતેન ઉદ્ધારિતેન વાતનિસર્ગેણ
ભ્રમલ્યા પિત્તમૂર્ચ્ઢ્યા સૂક્ષ્મૈરઢ્ઢસચ્ચારૈ સૂક્ષ્મૈ શ્લેષ્મસચ્ચારૈ સૂક્ષ્મૈદૢષ્ટિસચ્ચારૈ;

અનુસાર ઝસસે અધિક હી મજા ઢીજાતી હૈ । મિધ્યાઢુષ્કૃત કે
ભરોસે પર જાન બૂઢ્ઢકર પાપ કરતે રહનેવાલે સાધુ કી પ્રાયઃ વૈસી
હી દુર્દશા હોતી હૈ જૈસી કુમ્ભાર કે હાથસે મિધ્યાઢુષ્કૃત ઢેનેવાલે
ક્ષુલ્લક સાધુ કી હુઈ થી ॥ સૂ. ૨ ॥

અત્ અતિચારોં કી વિશેષ શુદ્ધિ કે લિણ વિધિપૂર્વક કાયો
ત્સર્ગ કા સ્વરૂપ ઢિખલાતે હૈ—‘તસ્સુત્તરીકરણેણ’ ઢત્યાદિ ।

અધિક સજ્ઞ ઢેવાય છે, મિધ્યાઢુષ્કૃતના ભરોસા ઉપર બાણી ભેધને પાપ કરતા
રહેનારા સાધુની ખાસ કરીને એવી દુર્દશા થાય છે કે જેવી રીતે કુભારના હાથથી
મિધ્યાઢુષ્કૃત ઢેવાવાળા કુલઢ સાધુની થઈ હતી સૂ. ૨

હવે અતિચારોની વિશેષ શુદ્ધિ માટે વિધિપૂર્વક કાયોત્સર્ગનું સ્વરૂપ
ખાતે છે ‘તસ્સુત્તરીકરણેણ’ ઢત્યાદિ

एवमादिकैरागारैरभग्नोऽविराधितो भवतु मे कायोत्सर्गो यावदर्हता भगवता नम-
स्कारेण न पारयामि तावत्काय स्थानेन मौनेन ध्यानेनाऽऽत्मान व्युत्सृजामि ॥मू० ३॥

॥ टीका ॥

‘तस्स’ तस्य=प्रमादकृताऽशुभयोगसम्बन्धेन देशतः सर्वतो वा खण्डि-
तस्य श्रमणयोगस्य सातिचारस्याऽऽत्मनो वा, तच्छब्देनात्रौचित्यात्तयोरेव ग्रह-
णात्, अतिचारस्य तु सम्भवेऽपि ‘उत्तरीकरण-विश्लयीकरणाऽसम्भवादग्रहणम्,
न च प्रागतिचारस्य ‘जो मे देवसिओ अइयारो’ इत्यादौ यच्छब्दनिर्दिष्टतया यत्त-
दोश्च नित्यसम्बन्धेनाऽत्र ‘तस्स’ इत्यनेन ग्रहणमिति वाच्यम्, तत्र
यच्छब्दनिर्दिष्टस्याऽतिचारस्य तत्रत्येनैव ‘तस्स मिच्छा मि’ इत्यनेन गतार्थ-
सम्बन्धत्वात्, अत्रोक्तेन च ‘तस्स’ इति तच्छब्देन बुद्धिविषयतावच्छेदकत्वो-
पलक्षितधर्मावच्छिन्नस्यैव श्रमणयोगस्याऽऽत्मनो वा ग्रहण न त्वतिचारस्येति
सुग्रीभिर्विवेकव्यम् । ‘उत्तरीकरणेण’=उत्तरीकरणेन=अनुत्तरस्योत्तरस्य कर-

यहां पर ‘तस्स’ पदसे देशखण्डित सर्वविराधितरूप श्रमण-
योग अथवा सातिचार आत्मा का ग्रहण है । कोई-कोई ‘तस्स’ इस
पदसे अतिचार का ग्रहण करते हैं-वह उचित नहीं है, इसलिए
उसका सम्बन्ध ‘तस्स मिच्छा मि दुक्कड’ इस पदमे रहे हुए ‘तस्स’
शब्द के साथ पूर्ण हो चुका है । दूसरा कारण यह भी है कि
यद्यपि प्रायश्चित्तकरण तथा ‘पापविशुद्धि’ कण्टकशुद्धि-पैर आदि
में लगे हुए काटे को निकालने-की तरह अतिचारो का विशुद्धीकरण

अर्द्धिया ‘तस्स’ पदथी देशखण्डित अने सर्वविराधित रूप श्रमण
योग अथवा सातिचार आत्मानु ग्रहणु छे केअर्थ केअर्थ ‘तस्स’ आ
पदथी अतिचारनो ग्रहणु करे छे परतु ते योग्य नथी तेथी तेनो सम्बन्ध
“तस्स मिच्छा मि दुक्कड” आ पदमा रहैला तस्स शब्दनी साथे पूरे थये छे
धीनु कारण ओ पद्यु छे के ‘प्रायश्चित्तकरण’ तथा “पापविशुद्धि” कण्टक-
शुद्धि-पग आदिमा लागेला काटाने निकालवानी रीते अतिचारोनु विशुद्धीकरण

१-‘राजा गौडेन्द्र कण्टक शोधयति’ इत्यादिषु कण्टकविशुद्धिर्वदतिचार-
विशुद्धिकरणं सभवति तस्मादुक्तम्-‘उत्तरीकरणे’-ति, नहि-शल्य=मायादिरूप-
मतिचारस्य समस्ति; अपि त्वात्मनस्तत्प्राधान्याच्छ्रमणयोगस्य च ।

શાસ્ત્રપ્રાયશ્ચિત્તસ્યાऽપ્યુત્તમમધ્યમાધમસાહસરૂપત્વસ્ય સર્વજનીનત્વાત્ । અન્યથા
કદાચિત્ કુમ્ભકારક્ષુલ્લકમિવ્યાબ્દુકૃતત્વાપત્તેઃ ॥ સૂ. ૨ ॥

સમ્પ્રત્યતિચારાણા વિશેષશુદ્ધયર્થે કાયોત્સર્ગઃ કર્તવ્ય इति સવિધિ
કાયોત્સર્ગસ્વરૂપમાહ—‘તસ્સુત્તરી’—ત્યાદિ ।

॥ મૂલમ્ ॥

તસ્સુત્તરીકરણેણ પ્રાયશ્ચિત્તકરણેણ વિસોહીકરણેણ વિસહી-
કરણેણ પાપાણ કમ્માણ નિગ્ધાયણદ્વાદા કાઉસ્સગ્ગ અનત્થ ઉસ-
સિણ નીસસિણ રાસિણં છીણ જમાદ્દણ ઉદ્દુણ
વાયનિસગ્ગેણ ભમલિણ પિત્તમુચ્છાણ સુહુમેહિં અગસચાલેહિ સુહુમેહિ
ચેલસચાલેહિ સુહુમેહિ દિટ્ઠિસચાલેહિં એવમાદ્દણ આગારેહિં
અભગ્ગો અવિરાહિઓ હુજ્જ મે કાઉસ્સગ્ગો જાવ અરિહતાણ ભગવતાણ
નમુક્કારેણ ન પારેમિ તાવ કાય ઠાણેણં મોણેણં જ્ઞાણેણ
અપ્પાણ વોસિરામિ ॥ સૂ. ૩ ॥

॥ છાયા ॥

તસ્યોત્તરીકરણેણ પ્રાયશ્ચિત્તકરણેણ વિશુદ્ધિ (વિશોધી) કરણેણ વિશલ્યી
કરણેણ પાપાના કર્મણા નિર્ધોત્તનાર્થે તિષ્ઠામિ કાયોત્સર્ગમ્, -અન્ય-
ત્રોચ્છ્વસિતેન નિશ્વસિતેન કાસિતેન ક્ષુતેન જૃમ્મિતેન ઉદ્ધારિતેન વાતનિસર્ગેણ
ભ્રમલ્યા પિત્તમૂર્ચ્ચયા સૂક્ષ્મૈરદ્ગસશ્ચારૈ સૂક્ષ્મૈ. શ્લેષ્મસશ્ચારૈ. સૂક્ષ્મદૃષ્ટિસશ્ચારૈઃ,

અનુસાર ઉસસે અધિક હી સજા દીજાતી હૈ । મિથ્યાદુષ્કૃત કે
ભરોસે પર જાન બૂઝકર પાપ કરતે રહેવાલે સાધુ કી પ્રાય વૈસી
હી દુર્દશા હોતી હૈ જૈસી કુમ્ભાર કે હાથસે મિથ્યાદુષ્કૃત દેનેવાલે
ક્ષુલ્લક સાધુ કી હુઈ થી ॥ સૂ. ૨ ॥

અવ અતિચારોં કી વિશેષ શુદ્ધિ કે લિણ વિધિપૂર્વક કાયો
ત્સર્ગ કા સ્વરૂપ દિશ્વલાતે હૈ—‘તસ્સુત્તરીકરણેણ’ इत्यादि ।

અધિક સજા દેવાય છે, મિથ્યાદુષ્કૃતના ભરોસા ઉપર બાણી બોધને પાપ કરતા
રહેનારા સાધુની ખાસ કરીને એવી દુર્દશા થાય છે કે એવી રીતે કુભારના હાથથી
મિથ્યાદુષ્કૃત દેવાવાળા ક્ષુલ્લક સાધુની થઈ હતી સૂ. ૨

હવે અતિચારોની વિશેષ શુદ્ધિ માટે વિધિપૂર્વક કાયોત્સર્ગનું સ્વરૂપ
બતાવે છે ‘તસ્સુત્તરીકરણેણ’ इत्यादि

निश्चयसयुक्त, प्रायश्चित्तमिति स्मृतम् ॥ १ ॥ ' इत्युक्तविध, तस्य 'करणम्=अनु-
ष्ठान, तेन । प्रायश्चित्ताऽऽचरणं च परिणामविशुद्धिमन्तरेण न सम्भवतीत्यत
आह—' विसोढीकरणेण ' इति, विशोधन (विशिष्य शोधन) विशोधिः^२=सम्यक्-
शुद्धिः, तस्याः करण=सम्पादनम्, यद्वा शोधन शोधः^३ विशिष्टः शोधो यस्य
खण्डित-विराधितरूपस्य श्रामण्ययोगस्य तत्सम्बद्धस्यात्मनो चेत्यर्थात्, स विशोधः,
अविशोधस्य विशोधस्य करणं 'विशोधीकरणं तेन । विशोधीकरणं प्रति भावशल्यो-
द्धरणस्य कारणत्वात्तदाह—' विसल्लीकरणेण ' इति, विनष्टं मायानिदानादिविक-
रूपं शल्यं यस्योक्तरूपस्य (श्रामण्ययोगस्य) स विशल्यः खण्डनाविराधना-
दितोऽविशल्यस्य विशल्यस्य करणं विशल्यीकरणं तेन । आह—कः शल्यशब्दार्थः?
कतिविधश्च सः ? उच्यते—शल्यते=धातूनामनेकार्थत्वाद् बाध्यते, यद्वा सत्रियते
सुखमनेनेति शल्य, तच्च द्रव्यभावभेदाद्विविध, तत्र द्रव्यशल्यं लोकप्रतीतं कण्टक-
सूची-शूल-भल्लादिकम् । भावशल्यं मायाप्रभृति, जीवता कठोरतमतीक्ष्णदशनैः
श्वापदैरङ्गं स्फोरयित्वा स्वयं वा निजा त्वच निःसार्य स्वशरीरस्य लक्षणसर्जिका-

भी परिणामों की शुद्धता के बिना नहीं होसकता इस कारण
अतिचार हटाकर आत्मपरिणामों को निर्मल करने के लिये,
विशोधीकरण (आत्मपरिणामों का निर्मल करना) भी शल्य के दूर
किये बिना नहीं हो सकता, क्योंकि सिंह व्याघ्र आदि भयानक
जीवजन्तुओं के तीखे नाखून दाँत आदिसे शरीर के अग अग को
फडवा लेना, अपने आप सारे शरीर की खाल खींचकर उस पर

भाटे अतिचारने दूर करी आत्मपरिणामोने शुद्ध करवाने भाटे विशोधीकरण
(आत्मपरिणामोने शुद्ध करवा) पण शल्यने दूर कर्या बिना नहीं थछ शकतो,
केम के सिंह व्याघ्र विगेरे लयकर प्राणीओना तीक्ष्ण नभ दात विगेरेथी शरी
रना अगे अगने इडावपु, पोताना न छुथे आभा शरीरनी आभडी जेथीने
तेना उपर भीहु छटी लेवु, शल्युशीथी पोतानु माथु कापीने डेडी डेवु,

१— 'प्रायश्चित्तकरणम्'=सिद्धिर्निरुक्तोक्तरीत्या पृषोदरादित्वात् ।

२— विशोधिः—'वि'+पूर्वकात् शुध् धातोर्ण्यन्तादीणादिक, स्त्रिया भावे
'इ' प्रत्ययः ।

३— शोधः—भावे घञ्

४— विशोधीकरणम्—अभूततद्भावे निवरीकारादेशश्च ।

ણમ્ 'उत्तरीकरणम्, उत्तरशब्द उच्चतरार्थकः करणशब्दो भावसाधनस्तेन-अनु-
 चतरस्य पुनः सस्कारद्वारोच्चतरस्य (उत्कृष्टस्य) करण=सम्पादन तेनेत्यर्थः ।
 'अ ययनेन वसति' इति वदेतौ तृतीया, यद्वाऽऽर्पत्वात्तादर्थ्यचतुर्व्यर्थे तृतीया;
 तदा चोत्तरीकरणार्थमित्यर्थः । एवमग्रेऽपि तृतीयान्तार्थो शोद्धव्यः । यथा कुपथ्या-
 हारविहारादिना समुत्पन्नस्य व्यापेरुपशमाय वैप्रकोक्तः प्रतीकारः क्रियते तद्वदिद-
 मुत्तरीकरणम् । उत्तरीक्रिया च प्रायश्चित्ताचरणेनैव सभवतीत्यत आह—' प्राय-
 च्छित्तकरणेण ' प्रायश्चित्तकरणेन-प्रायो=बाहुल्येन प्रयतत्वाद्वा चितम्=उपचितम-
 शुभ तनूकरोतीति, अशुभयोगाद्वा स्वलित चित्तम्=आत्मान प्राप्ति=तत्तदशुभ-
 योगापनयनेन पूरयतीति, प्रापयति चित्तम्=आत्मान मनो वा शुद्धिमिति,
 प्रायः=बाहुल्येन चेतयति=' पुनरेव न वर्त्तव्य '-मिति प्रतिबोधयत्यात्मानमिति
 वा प्रायश्चित्तम्, यद्वा—' प्राय' प्रोक्त तपस्यादि, चित्त निश्चय उच्यते । तच्च

होसकता है तो भी यहा कहे गये 'उत्तरीकरणेण' और 'विसल्ली-
 करणेण' के साथ उसका सम्बन्ध नहीं बैठता, कारण 'यह है कि
 न तो अतिचारो को उत्कृष्ट बनाने के लिये कायोत्सर्ग किया जाता
 है और न उनमें मायादिशक्त्यों का सभव है, मायादिशक्त्य तो आत्मा
 के विभाव परिणाम हैं, अतएव सिद्ध हुआ कि उस स्वण्डित अथवा
 विराधित श्रमणयोग या उस योगसे युक्त आत्मा को उत्कृष्ट बनाने के
 लिये, और विना प्रायश्चित्तके आत्मा उत्कृष्ट नहीं बन सकती—
 इसलिये लगे हुए पापोंका प्रायश्चित्त करने के लिये, तथा प्रायश्चित्त

થઈ શકે છે તો પણ અર્થ કહેલ 'ઉત્તરીकरणेण' અથવા 'વિસल्लीकरणेण'
 ની સાથે તેનો સબધ નથી બેસતો કારણ એ છે કે ન તો અતિચારોને ઉત્કૃષ્ટ
 બનાવવા માટે કાયોત્સર્ગ કરવામા આવે છે અને નથી તેમા માયાદિ શક્ત્યોનો સબધ
 માયાદિશક્ત્ય તો આત્માનો વિભાવપરિણામ છે એથી સિદ્ધ થયું કે—એ ખડિત અથવા
 વિરાધિત શ્રમણયોગ અથવા એ યોગથી યુક્ત આત્માને ઉત્કૃષ્ટ બનાવવા માટે અથવા
 પ્રાયશ્ચિત્ત વિના આત્મા ઉત્કૃષ્ટ થઈ શકતો નથી તેથી લાગેલા પાપોના પ્રાયશ્ચિત્ત
 કરવા માટે, તથા પ્રાયશ્ચિત્ત પણ પરિણામોની શુદ્ધતા વિના થઈ શકતા નથી તે

૧-उत्तरीकरणम्--' अभूततद्भावेऽर्थे ' कृञ्स्त्रियोगे सपञ्चकर्तरि चिन्व ' (५।४।५०) इति चिन्व, 'अस्य च्चौ' (७।४।३२) इतीकार ।

‘काउस्सग’ कायस्य=शरीरस्य उत्सर्गम्=अतिचारविशुद्धये त्याग ‘ठामि’
 ‘तिष्ठामि’ स्थापयामीत्यर्थः यद्वा ‘करोमीत्यर्थः । अथवा ‘काउस्सग’ इत्य-
 -त्राऽऽर्पत्वात्तृतीयार्थे द्वितीया, तेन कायोत्सर्गेणाऽर्थात् कायोत्सर्गं कृत्वा तिष्ठामी-
 त्यर्थः । ननु कथमेतावन्मामर्थ्यं कायोत्सर्गस्य वर्णित ? मिति चेदुच्यते यत
 साक्षात्तीर्थकरैरेवाय मोक्षमार्गः प्रोक्त इति, एव च सति सातिचारस्य भ्रामण्ययोग-
 स्याऽऽत्मनो बोधतरीकरण-प्रायश्चित्तकरण-विशोधीकरण-विशलीकरण-पाप-
 कर्मनिर्घातनान्यतिचारनिवृत्तिस्वरूपाण्येवेत्यतिचारनिवृत्त्यर्थं कायोत्सर्गं करो-
 मीति पर्यवसन्नोऽर्थः । न च सर्वथा, किं तर्हि ? तदाह—‘अन्नत्थ’ अन्यत्र=विना
 ‘ऊससिण’ ऊर्चं श्वसनम्=उच्छ्वसित, नपुमके भावे कस्तेन उच्छ्वासविने-
 -त्यर्थः, एवमग्रिमरपि तृतीयान्तैः सहाऽन्यत्रेत्यस्य सम्बन्धो योज्यः । ‘नीस-
 सिण’ नि श्वसितेन-नि श्वसित=श्वासमोक्षण तेन, ‘कासिण’-कासितेन=कासेन ।
 ‘छीण’ क्षुतेन क्षुतं=नासिकाऽभिघातजन्याऽऽकस्मिकसशब्दाऽनिलनिस्सरण
 ‘ह्रिच्छ’ रिति, ‘ह्रिके’ति च प्रसिद्ध (‘ह्रि छी’ इति भाषायाम्) तेन । ‘जभाइण’
 जृम्भितेन=जृम्भा आलस्यजनितो मुखव्यादानपूर्वकतद्वाराऽऽन्तरपवनविनिर्गमस्तेन ।
 ‘उड्डुण’ उद्गारितेन ‘उड्डुअ’ इत्यस्य देशिशब्दत्वादुद्गारितमर्थः, उद्गारित चोद्गारः=
 कण्ठगर्जनाऽपरपर्यायः, उद्गमनप्रभेदस्तेन । ‘वायनिसग्गेण’ वातनिसर्गेण-वातस्य=

करने के लिये मैं कायोत्सर्ग करता हूँ, किन्तु इसमें श्वास का लेना
 तथा निकालना, खाँसना, डीकना, जभाई लेना, डकारना, अपानवायु
 का निकलना, पित्तप्रकोप आदिसे चक्करका आना, मूर्च्छाका आना,

पिगेरे पाप (आठ) कर्मोना नाश करवा भाटे हु कायोत्सर्ग कइ छु पछु
 जेभा श्वास लेवे तथा भूइवे, भासी भावी, छीक भावी, गगासु भावु ओड
 डार भावे, अपानवायुना स्राव थवे, पित्तप्रकोपथी आधार आववा भूर्छा

१- दृष्ट हि सर्वमकस्यापि धातोः कचिदकर्मकत्वं यथा, काव्यप्रकाशे द्विती-
 योल्लासे-‘विषयविभागो न प्राप्नोती’-ति । अकर्मकस्यापि च सकर्मकत्वं
 यथा-‘यथा शत्रु जयति भार वहती’-त्यादि च ।

२- अन्तर्भावितण्यर्थत्वात् स्था-धातोः स्थापयामीत्यर्थः ।

३- ‘कुर्द खुर्द गुर्द गुद-क्रीडायामेव’ इत्यत्रैवग्रहणेन ‘परा भुवोऽवज्ञाने,
 इत्यत्राऽवज्ञानग्रहणेन च धातूनामनेकार्थत्वमल्पनात् करोमीत्यर्थः ॥

ધારાદિના સેચન, લીલયેવ છિર્યા સ્વમસ્તકસ્યાપિ પ્રક્ષેપણ, પ્રજ્વલદ્વનઙ્કરાલ
 કુણ્ડે નિર્ભયપતનમુત્તાપોદ્ગલદ્વસીસકાદિપાન, ધૃગુપપાતઃ, કાલ્પલતાકલ્પમનલ્પદોષરાશિનિદાનમ્નન્તચતુર્ગતિસસૃતિશ્રામકમિદ
 નાના કુન્તાદિના વેધન ચ કર્તુ સુશક, કિન્તુ ઋદ્ધ્યાદિગૌરવત્રયમદ્ભયાજ્ઞા
 ત્યાગવિધિમદાદ્યા પામરૈરપ્રકાશિત ઘોરતપઃપ્રભૃતિમુનિક્રિયાકલાપકોમલ
 કલ્પલતાકર્ત્તનકર્ત્તરીકલ્પમનલ્પદોષરાશિનિદાનમ્નન્તચતુર્ગતિસસૃતિશ્રામકમિદ
 ભાવશલ્ય સર્વથા દુઃસઠમિતિ શલ્યશબ્દેન પ્રક્રુતે માયાદિભાવશલ્યમેવ ગૃહ્યતે પ્રકરણ
 સ્યાઽભિધાનિયામકત્વાત્, 'પાપાણ કમ્માણ' પાપાના કર્મણા પાશયન્તિ=મલિ
 નયન્તિ નરકાદૌ પાતયન્તિ, આનન્દરસ શોષયન્તિ ક્ષપયન્તિ વેતિ પાપાનિ તદ્વૃપાણા
 વર્મ્મણા જ્ઞાનાવરણીયાદીના' નિઘાયણદ્વાદ્વ' નિર્ધાતનાર્થ=સમૂલમુન્મૂલનાર્થમ્

નમક છિડકના, खुशीसे अपना मस्तक काटकर फेंक देना, उकलते
 सीसेको पी जाना, धधकते हुए अग्निकुण्डमे कूद पडना, पर्वत की
 चोटी पर चढकर धडाम से नीचे गिर पडना, कलेजेमे भाला भोंकना
 आदि द्रव्यशल्य सहन करना सहज है, परन्तु ऋद्व्यादि तीन गौरवों
 (गारव) के नाश होने के डरसे, अथवा जाति आदि आठ प्रकार
 के मद के कारण अपने अन्दर ही छिपाये हुए-मुनियों के मुक्ति-
 साधन घोर तप आदि क्रियारूप कोमल कल्पलता के कतरने मे
 कतरनी के समान तथा अनन्त दुर्गुणो से युक्त और चारगतिरूप
 अनन्त ससार में परिभ्रमण करानेवाले-माया आदि भावशल्यों का
 पामरोंसे सहन होना अत्यन्त कठिन है, अतः भावशल्यों को दूर
 करने के लिये, तथा ज्ञानावरणीय आदि पाप (आठ) कर्मों का नाश

ગરમ કરેલું સીસું પી જવું ધગધગતા અગ્નિકુડમા કુદી પડવું પર્વતની ટોચ
 ઉપર ચઢીને ધડામથી ઝપલાવવું, કલેજમા ભાલા ભોકવા આદિ દ્રવ્યશલ્ય
 સહન કરવા સહેજ છે પરંતુ ઋદ્ધ્યાદિ ત્રણ ગૌરવો (ગારવ)નો નાશ થવાના ડરથી
 અથવા જાતિ વિગેરે આઠ પ્રકારના મદને લીધે પોતાની અદરજ
 છુપાએલ-મુનિઓના મુક્તિસાધન ઉત્કૃષ્ટ તપ વિગેરે ક્રિયારૂપ કોમલ-કલ્પલતાને
 કાતરવામા કાતર સમાન, તથા અનન્ત દુર્ગોણીથી યુક્ત અને ચાર ગતિરૂપ
 અનન્ત સસારમા પરિભ્રમણ કરાવનાર-માયા આદિ ભાવશલ્યોને પામરોથી સહન
 થવું ઘણું જ કઠિન છે તે માટે ભાવશલ્યોને દૂર કરવા, તથા જ્ઞાનાવરણીય

‘काउस्मग्ग’ कायस्य=शरीरस्य उत्सर्गम्=अतिचारविशुद्धये त्याग ‘ठामि’
 ‘तिष्ठामि’ स्थापयामीत्यर्थः यद्वा ‘करोमीत्यर्थः । अथवा ‘काउस्सग्ग’ इत्य-
 -त्राऽऽर्पत्वात्तृतीयार्थे द्वितीया, तेन कायोत्सर्गेणाऽर्थात् कायोत्सर्गं कृत्वा तिष्ठामी-
 -त्यर्थः । ननु कथमेतावत्तमामर्थ्यं कायोत्सर्गस्य वर्णित ? मिति चेदुच्यते यत
 साक्षात्तीर्थकरैरेवाय मोक्षमार्गः प्रोक्त इति, एव च सति सातिचारस्य धामण्ययोग-
 स्याऽऽत्मनो बोधतरीकरण-प्रायश्चित्तकरण-विशोधीकरण-विशुद्धीकरण-पाप-
 कर्मनिर्घातनान्यतिचारनिवृत्तिस्वरूपाण्येवेत्यतिचारनिवृत्त्यर्थं कायोत्सर्गं करो-
 -मीति पर्यवसन्नोऽर्थः । न च सर्वथा, किं तर्हि ? तदाह-‘अन्नत्थ’ अन्यत्र=विना
 ‘ऊससिएण’ ऊ वै श्वसनम्=उच्छ्वसित, नपुमके भावे कस्तेन उच्छ्वासं विने-
 -त्यर्थः, एवमग्रिमस्य तृतीयान्तै सहाऽन्यत्रेत्यस्य सम्बन्धो योज्यः । ‘नीस-
 -सिएण’ नि श्वसितेन-नि श्वसित=श्वासमोक्षणं तेन, ‘कासिएण’-कासितेन=कासेन ।
 ‘छीएण’ क्षुतेन क्षुतं=नासिकाऽभिघातजन्याऽऽकस्मिकसशब्दाऽनिलनिस्सरण
 ‘हञ्छि’ रिति, ‘छिके’ति च प्रसिद्ध (‘हं छी’ इति भाषायाम्) तेन । ‘जभाडएण’
 जृम्भितेन=जृम्भा आलस्यजनितो मुखव्यादानपूर्वकतद्वाराऽऽन्तरपवनविनिर्गमस्तेन ।
 ‘उड्डुएण’ उद्धारितेन ‘उड्डुअ’ इत्यस्य देशिगब्दत्वादुद्धारितमर्थः, उद्धारित चोद्गारः=
 कण्ठगर्जनाऽपरपर्यायः, उद्गमनप्रभेदस्तेन । ‘वायनिसग्गेण’ वातनिसर्गेण-वातस्य=

करने के लिये मैं कायोत्सर्ग करता हूँ, किन्तु इसमें श्वास का लेना
 तथा निकालना, खाँसना, छीकना, जभाई लेना, डकारना, अपानवायु
 का निकलना, पित्तप्रकोप आदिसे चक्करका आना, मूर्च्छाका आना,

विगेरे पाप (आड) कमेनि। नाश करवा भाटे हु कायोत्सर्ग कइ छु पण
 ओमा श्वास नेवे। तथा भूकेवे, आमी भावी, छीक भावी, जगासु भावु ओड
 डार भावे, अपानवायुने आव थवे, पित्तप्रकोपथी आधार आववा भूर्छा

१- दृष्टं हि सकर्मकस्यापि धातोः कचिदकर्मकत्वं यथा, काव्यप्रकाशे द्विती-
 योद्धासे-‘विषयविभागो न प्राप्नोती’-ति । अकर्मकस्यापि च सकर्मकत्वं
 यथा-‘यथा शत्रु जयति भार वहती’-त्यादि च ।

२- अन्तर्भावितण्यर्थत्वात् स्था-धातोः स्थापयामीत्यर्थः ।

३- ‘कुर्दं खुर्दं गुर्दं शुद्धं-क्रीडायामेव’ इत्यत्रैवग्रहणेन ‘परो भुवोऽवज्ञाने,
 इत्यत्राऽवज्ञानग्रहणेन च धातूनामनेकार्थत्वमल्पनात् करोमीत्यर्थः ॥

पायुवागोर्निसर्गः=निस्सरणं यातनिसर्गस्तेन । 'भ्रमलीए' भ्रमल्या-भ्रमली=आकस्मिकशरीरभ्रमण=पित्तोदयेन यद्भ्राम्यन्महीदर्शनं पूर्वादिदिग्भ्रान्तिश्च (चक्र, घुम्मा, इत्यादि भाषायाम्) तथा । 'पित्तमुच्छ्राए' पित्तमूच्छ्रया-पित्तमूच्छ्रा=पित्तजन्या नष्टचेष्टता तथा । 'सुहुमेहिं अगसचालेहिं' सूक्ष्मै-रक्षसचालैः-रोमोद्गमादिरूपैरलक्षितप्रायैः, सूक्ष्मैः शरीरसञ्चालैः=स्वभाविकैरङ्गस्फुरणादिभिर्वा, 'सुहुमेहिं खेलसचालेहिं'-सूक्ष्मैः श्लेष्मसंचालैः-खेलेति देशभाषाया श्लेष्मणो नाम, श्लेष्मणा=कफाना सञ्चालैः गलत्रिलात्स्वभावतः श्लेष्मणामधो बहिर्वाऽवतरणैः । 'सुहुमेहिं दिदिसचालेहिं'-सूक्ष्मैर्दृष्टिसचालैः सूक्ष्मैः=स्वाभाविकैर्दृष्टिसञ्चालैः=पक्ष्मनिकोचनादिभिः । 'एववाइरहिं आगारेहिं' एवमादिकैराकारैः-एवमादिभिरुक्तस्वरूपैरुच्छ्रसितादिभिराकारैः कायोत्सर्गप्रतिरोधकैः, अत्राऽऽदिशब्देनाऽन्युपद्रव-जलोपद्रव-महासाहसिकोपद्रव राजोपद्रवेभ्यः, भित्तिच्छत्रादिपातसिंहसर्पाद्युपद्रवेभ्यो मार्जारादिकृतभृशोपद्रव सङ्कटापन्नमूपिकादिप्राणिपरिरक्षणार्थं वा स्थानपरिवर्तनं ग्राह्यम्, एषामुच्छ्रसितादीनामागाराणां कायोत्सर्गप्रसङ्गे निरूपणमेतदधिकारिसहनं नसामर्थ्यतात्पर्येण, 'अभग्गो' अभग्नः=देशतोऽखण्डितः, 'अविराहिओ' अविराधितः-सर्वतोऽखण्डितः, 'हुज्ज' भवेत् 'मे' मम 'काउत्सग्गो' कायोत्सर्गः अर्थादुच्छ्रसितैरागारैः सद्भिरपि मम कायोत्सर्गोऽखण्डितोऽविराधितोऽस्तु । अत्रावधिमाह-'जाव'

सूक्ष्मरूपसे अगों का हलना-चलना अथवा फडकना, कफ, थूक आदि का संचार होना, तथा दृष्टिका संचलन होना आदि आगार हैं, यहा आदि शब्द से अग्नि जल डाकू राजा सिंह सर्प भीत (दीवार) तथा छत का गिरना आदि उपद्रवों से या बिल्ली आदि हिंसक प्राणियों से घिरे हुए चूहे आदि जीवों को दया भावसे छुड़ाने के लिये स्थानपरिवर्तन करना आदि आगारों का ग्रहण करना चाहिये । ये उच्छ्रवसितादि आगार अधिकारियों (ध्यानस्थ

आवपी, सूक्ष्म पक्षे अगोनुं हलनं यत् । यत् तथा क्खुं, क्खुं थुं विगेरेने सत्थारं यवे, तेमज्जं दृष्टिनुं संचलनं यत् विगेरे आगारं छे अहिं आदि शब्दथी अग्नि जल डाकू राजा सिंह सर्प दीवान तथा छतनुं पडी जत्तुं विगेरे उपद्रवोथी अथवा गिलाडी विगेरे हिंसक प्राणिओथी घेराओले उदरं विगेरे एवेने दया लावथी छे। अववा भाटे आनहेरं करवे विगेरे आगारेनुं अहं करवुं नेधं

इत्यादि, 'जाव' यावत् 'अरहताण भगवताण' अर्हता भगवता तत्कर्मकेणेत्य-
 र्थात् । 'नमोक्कारेण' नमस्कारेण 'न पारेमि' न पारयामि, कायोत्सर्गपरि-
 समाप्तौ हि 'नमोऽरहताण' इत्युच्चार्यैव विरमणीयमिति सम्प्रदायस्तस्मात् 'नमो
 ऽरहताण' इत्युच्चार्य यावत्पार न यास्यामीति भावः, वर्त्तमानसामीप्ये वर्त्तमान-
 वत्प्रत्ययः 'अयमागच्छामी'—ति यथा । 'ताव' तावत् 'काय' देह 'ठाणेण'
 स्थानेन=गतिनिवृत्त्या=कायव्यापारनिरोधेन 'मोणेण' मौनेन तूष्णीम्भावेन=
 वाग्व्यापारनिरोधेन 'ज्ञाणेण' ज्ञानेन= चित्तैकाग्रतया=मनोव्यापारनिरोधेन
 कायिक-वाचिक मानसिकव्यापारपरित्यागपूर्वकमिति यावत्, 'अप्पाण' आत्मानम्
 अत्राऽऽत्मशब्द आत्मीयार्थकः, स च 'काय' इत्यस्य विशेषण तेनाऽऽत्मीय
 कायमिति सम्बन्ध इति केचित्, वस्तुतस्तु कायमात्मान चेत्यर्थः । चशब्दाऽ-
 भावेऽपि समुच्चयार्थस्य 'अहरहर्नयमानो गामश्च पुरुष पशु' मित्यादौ दर्शनात्,
 अतएव सूत्रे 'काय' इत्युक्त्वाऽनन्तर 'ठाणेण' इति कायव्यापारनिरोधः,
 'अप्पाण' इत्यत्र च 'ज्ञाणेण' इति मनोव्यापारनिरोधः प्रोक्त इति सूक्ष्मेक्षि-
 कयाऽवधार्यम् । कायोत्सर्गस्य प्रसिद्धिरप्येतत्तात्पर्यपरिकैव, नह्यात्मत्यागव्यति-
 रेकेण कायत्यागमात्राग्रथोक्त प्रायश्चित्तं सम्भवति । किञ्च रुढे, प्रयोजनस्य
 तात्पर्याऽनुपपत्तेश्च हेतोरभावेन लक्षणाया असम्भवात्, आत्मीयार्थत्वकल्पनमप्यमू-
 लकमेवेत्यास्ता विस्तरः । 'वोसिरामि' व्युत्सृजामि=परित्यजामीत्यर्थः ॥सू० ३॥

व्यक्तियों)की न्यूनाधिक शक्तिकी अपेक्षासे कहे गये हैं । इन आगारों
 से मेरा कायोत्सर्ग खण्डित तथा विराधित नहीं हो, कबतक ?
 जबतक कि अरिहत भगवान को नमस्कार करके ध्यानको समाप्त
 न करदूँ तब तक, एक स्थिति से काय को, मौनसे वचनको और
 चित्तकी एकाग्रतासे आत्मा को वोसराता हूँ ॥ सू० ३ ॥

उच्छ्वसितादि आगार अधिकारियो (ध्यानस्थ व्यक्तिओ)नी ओछी वधु शक्तिनी अपेक्षाधी
 कछु छे आ आगारोथी भारा कायोत्सर्ग भडिन् तथा विराधित नहिं थाय, क्या
 सुधी ? छे न्या सुधी अरिहत भगवानने नमस्कार करीने ध्यान पूरा न करी लउ
 त्या सुधी, ओक स्थितिथी कायाने, मौनथी वचनने अने चित्तनी ओकाग्रताथी
 आत्माने वोसराउ छु (सू० ३)

एव कायोत्सर्गमास्थाय तत्र भेदेन प्रकृताऽतिचारान्ध्रिन्तयति-

॥ मूलम् ॥

आगमे तिविहे पणत्ते तजहा-सुत्तागमे अत्थागमे तदुभ-
यागमे । ज वाइद्ध, वच्चाभेलिय, हीणक्खर, अच्चक्खर, पयहीणं,
विणयहीण, जोगहीण, घोसहीण, सुद्धुदिन्न सुद्धुपडिच्छिय,
अकाले कओ सज्झाओ काले न कओ सज्झाओ, असज्झाए
सज्झाइयं, सज्झाए न सज्झाइय, 'तस्स मिच्छा मि दुक्कड ॥सू०४॥

॥ छाया ॥

आगमस्त्रिविधः प्रज्ञप्तस्तथा-सूत्रागमः अर्थागमः तदुभयागमः ।
(तत्र) यद् व्याविद्ध, व्यत्याम्रेडित, हीनाक्षरम्, अत्यक्षर, पदहीन, योगहीन,
घोषहीन, सुष्ठुदत्त, दुष्ठुप्रतीष्टम्, अकाले कृतः स्वाध्यायः, काले न कृतः
स्वाध्यायः, अस्वाध्याये स्वाध्यायितं, स्वाध्याये न स्वाध्यायित, तस्य मिथ्या
मयि दुष्कृतम् ॥ सू० ४ ॥

॥ टीका ॥

‘आगमे’ आ=समन्तात् गम्यन्ते=ज्ञायन्ते जीवाजीवादिपदार्था येनेति,
आ=विनयादिमर्यादया गम्यते=प्राप्यते तीर्थकरगणधरादिभ्य इति, आ=
स्मरणार्थमात्मस्वरूपस्येत्यर्थात्, गम्यते=गृह्यते इति, आ=आभिमुख्यमर्था

इस प्रकार कायोत्सर्ग का अवलम्बन करके उसमें अतिचारों
का विशेषरूपसे चिन्तन करते हैं—‘आगमे तिविहे’ इत्यादि ।

जिससे ‘जीव, अजीव’ आदि नौ तत्त्व अच्छी तरह जाने
जाएँ या जो विनय आदि के आचरणद्वारा तीर्थङ्कर और गणधरों

सेही रीते कायोत्सर्गनु अवलम्बन करीने तेमा अतिचारानु विशेषरूपसे
चिन्तन करे छे ‘आगमे तिविहे’ इत्यादि

जेनाथी ‘जीव’ ‘अजीव’ विगेरे नव तत्त्व धराधर जाली लेवाय
अथवा जे विनय आदि आचरणद्वारा तीर्थकर अथवा गणधरैथी

१- भणता गुणता विचारता ज्ञान और ज्ञानवत् की आशातना की होतो
‘तस्स मिच्छा मि दुक्कड’ ।

२-धातूनामनेकार्थत्वादिति प्रागुक्तमेव । यद्वा ‘ये गत्यर्थास्ते प्राप्यार्थाः’
इति गतिः प्राप्तिर्ग्रहण च मिथोऽनर्थान्तरमेव ।

ન્મોક્ષસ્ય સામ્પુર્ય ગમ્યતે=જ્ઞાયતે યેનેતિ, આગમયતિ=સાકલ્યેન બોધયતિ
 જીવાજીવાદિતત્ત્વસાર્થમિતિ, આ=સમ્યગ્જ્ઞાનાદિત્રયમોક્ષમાર્ગરૂપા મર્યાદા ગમ્યતે=
 જ્ઞાયતે યેનેતિ, આ=તીર્થકરપરુષિતત્ત્વેન સર્વથા નિઃશંકિતતાદિસ્મયજનકો
 ગમો=જ્ઞાન યસ્મિન્નિતિ વા આગમઃ । યદ્વા ‘નામૈકદેશે નામગ્રહણાત્ ‘આ’
 ‘ગ’ ‘મ’ ઇતિ પદત્રય પરિકલ્પ્ય ‘આ’=આગતસ્તીર્થકરાત્, ‘ગ’=ગતો
 ગણધરમુખે, ‘મ’=મતો ભવ્યાના સર્વેષામિત્યાગમઃ, તથાચ—‘આગતો વીતરા-
 ગાતુ, ગતો ગણધરાઽઽનને । મતઃ સમસ્તભવ્યાના, તસ્માદાગમ ઉચ્યતે ॥ ૧ ॥’
 ઇતિ નિર્ગલિતમ્ । વ્યાખ્યાનાન્તર યથામત્યૂહનીયમ્ । આગમઃ સિદ્ધાન્તઃ પ્રવચન-
 મિતિ પર્યાયાઃ । કૃતિવિધઃ સઃ ? ઇત્યાહ—‘તિવિદે પળ્લત્તે’ ઇતિ । તિસ્ત્રો વિધાઃ=
 પ્રકારા યસ્ય સત્રિવિધઃ પ્રજ્ઞપ્તઃ=પ્રકર્ષેણ સત્ત્વેવમનુજાસુરસભાયા સમત્રસરણસ્થૈસ્તીર્થ-
 નાથૈર્જ્ઞપ્તઃ=જ્ઞાપિત ઉક્ત ઇતિ યાવત્ । ‘ત જહા’—તત્રથા—(અત્ર ‘સ યથે’—તિ
 વક્તવ્યે તદિતિ નિર્દેશ આગમસ્વરૂપવિશેષણાપેક્ષયાઽઽર્પત્વાદ્વા, યદ્વાઽવ્યય તચ્છબ્દ-
 માદાય તદેવાઽઽગમસ્વરૂપ દર્શયામીત્યર્થઃ) ‘સુત્તાગમે’ સૂત્રાગમઃ=સૂત્રરૂપ
 આગમઃ । ‘અત્યાગમે’ અર્થાગમઃ=અર્થરૂપ આગમઃ । ‘તદુભયાગમે’ તદુભયા-

સે પ્રાપ્ત હો, અથવા જો આત્મસ્વરૂપકે સ્મરણ કે લિયે પ્રાપ્ત કિયા
 જાય, યા જિસ સે મોક્ષમાર્ગકા જ્ઞાન હો, અથવા જો તીર્થંકર
 ભગવાન કે દ્વારા ઉપદિષ્ટ હોને કે કારણ શકારહિત ઓર અલૌકિક
 હોને સે ભવ્ય જીવોં કો ચકિત કરદેને વાલે જ્ઞાન કો દેને વાલા
 હો, યા જો અર્હન્ત ભગવાન કે મુખ સે નિકલ કર ગણધર દેવકો
 ‘પ્રાપ્ત હુઆ ઓર ભવ્ય જીવોંને સમ્યક્ ભાવસે જિસકો માના ઉસે
 ‘આગમ’ કહતે હૈં । વહ ત્રીન પ્રકારકા હૈ—(૧) સુત્તાગમ, (૨)
 અત્યાગમ (૩) તદુભયાગમ ।

પ્રાપ્ત થાય અથવા જે આત્મસ્વરૂપના સ્મરણને માટે પ્રાપ્ત કરવામા આવે, અથવા
 જેનાથી મોક્ષમાર્ગનું જ્ઞાન થાય અથવા જે તીર્થંકર ભગવાન દ્વારા ઉપદિષ્ટ
 હોવાને કારણે શકારહિત અને અલૌકિક હોવાથી ભવ્ય જીવોંને ચકિત
 કરવાવાળા જ્ઞાનને આપવાવાળા હોય, અથવા જે અરિહંત ભગવાનના મુખથી નીક
 ળીને ગણધર દેવને મળ્યા તથા જેને ભવ્ય જીવોંએ સમ્યક્ ભાવથી માન્યા તેને
 ‘આગમ’ કહે છે તે ત્રણ પ્રકારના છે (૧) સુત્તાગમ, (૨) અત્યાગમ, (૩) તદુભયાગમ.

ગમઃ=મૂત્રાર્થદ્વયરૂપ આગમઃ । તત્ર સૂત્રપદ વ્યાચષ્ટે-‘સૂત્ત’ ઇતિ પ્રાકૃતશૈલ્યા સૂત્ર સૂક્ત સૂત્રમિતિ પદત્રયસ્ય ‘સૂત્ત’ ઇતિ ભવતિ, તસ્માત્ સૂત્ર્યન્તે=સગ્રહ્યન્તે બહવોડર્થા યસ્મિન્નિતિ, મૂત્રયતિ=ગુમ્ફયતિ ત્રિવિધાનર્થાન્ સક્ષેપેણેતિ, સૂત્રયતિ=સૂચયત્યલ્પાક્ષરૈર્દ્રવ્યપર્યાયનયાદિસ્વરૂપ મૃશમર્થમિતિ, દોષરાહિમ્યેન ‘સુષ્ટૂજ્ઞ’=પ્રતિપાદિતમિતિ, અર્થજ્ઞાનમન્તરેણ સર્વે પદાર્થાઃ ‘સુત્રવત્પ્રતિમાન્ત્યત્રેતિ વાર્યઃ । યદ્વા સૂત્ર=તન્તુસ્તત્સાદૃશ્યાદગોપ્યા લક્ષણયા મૂત્રમ્, યથા તન્તૌ બહૂનિ વસ્તૂન્યે-કત્ર સગ્રહ્યન્તે તથેહાપિ બહવોડર્થા ઇતિ । આદોસ્વિત્ યથા તન્ત્રવપરપર્યાયિ સૂત્રમેવ સુચતુરૈઃ પટકરૈઃ પટરૂપતા નીત સદ્ ગોપ્યાઙ્ગાન્યાવૃત્ય શૈત્યાદિભ્યો રક્ષન્ ધાર કસ્ય શોભા મજ્જલ ચ તનોતિ તથેદમપિ મૂત્રમાચાર્યાદિવ્યાખ્યાત સત્ પટસ્થા-

જિસમેં સક્ષેપ રૂપસે બહુત અર્થોં કા સગ્રહ કિયા જાય, અથવા જો દોષરહિત કહા હુઆ હો, યા જૈસે સોયે હુએ ૭૨ કલા કે જ્ઞાતા પુરુષ કો જગાને પર કલા કા ભેદ-પ્રભેદ કા જ્ઞાન હોતા હૈં ઉસી પ્રકાર અર્થ દ્વારા સર્વતત્ત્વ જિસસે જાનેં જાય અથવા જૈસે સૂત્ર (સૂત) મે મણિ મોતી આદિ તરહ તરહ કે પદાર્થ ગૂંથે હુએ રહતે હૈં, યા જૈસે સૂત બહુત સે ફકડે કિયે જાકર ચતુર પુરુષોં સે તરહરે કે (અપની ઇચ્છા કે અનુસાર) કપડે બનાયે જાતે હૈં ઓર જો ગુપ્ત અર્ગોં કો ઢાકતે હૈં, સર્દી ગર્મોં સે બચાતે હૈં તથા ધારણ કરને વાલે કી શોભા કો બઢાતે હૈં, વૈસે હી જો જીવાદિ નાના પદાર્થોં કે સ્વરૂપ સે ગુમ્ફિત (ગ્રથિત) તથા આનાર્ય આદિ સે

જેમા સક્ષેપ રૂપે ઘણા અર્થોંનો સથડ કરવામા આવે અથવા જે દોષ રહિત કહેલ હોય, અથવા જેમ સુતેલ ૭૨ કળાના જ્ઞાતા પુરુષને જગાડ્યા પછી કળાના ભેદ પ્રભેદ જાણી શકાય તેવી રીતે અર્થ દ્વારા સઘળા તત્ત્વ જેનાથી જાણી શકાય, અથવા જેમ દોરામા મણિ-મોતી વિગેરે ભાતભાતના પદાર્થ ગુથાએલ રહે છે અથવા જેવી રીતે ઘણા સૂતરને લેગા કરીને ડાહ્યા માણસો પોતાની ઇચ્છારૂપ ભાતભાતનું કાપડ બનાવે છે તે કાપડ ગુપ્ત અર્થોંને ઢાંકે છે, સર્દી અને તાપથી બચાવે છે અને પહેરનારની શોભાને વધારે છે તેવી જ રીતે જે જીવાદિ નાના પદાર્થોંના સ્વરૂપથી ગુમ્ફિત (ગ્રથિત)

૧- ‘સુષ્ટૂજ્ઞ’ સૂક્તમિતિ ન્હાયાપક્ષે ।

૨- ‘સૂત્ર’-મિતિ ન્હાયાપક્ષે ।

નીયતામાસાન્ન પિધાનીય કુમાર્ગમાટ્ય શૈત્યાદિસ્થાનીયાઽષ્ટવિધકર્મ્મભ્યો રક્ષન્
ધારકાણા ભવ્યાના મુલ્લશોભા પરમમદ્ગલ ચ તનોતીતિ । અથવા મૂચયતિ=સીવ્યતિ
સ્રવતિ વાઽર્થાનિતિ નિરુક્તપરિપાઞ્યા સૂત્રમ્, ‘સ્વલ્પાક્ષરમસન્દિગ્ધ, સારવદ્ધિ-
શ્વતોમુલ્લમ્ । અસ્તોભમનવ્ય ચ, શૂન્ન સૂત્રવિદો વિદુઃ ॥ ૧ ॥’ ઇત્યુક્તમન્યત્ર ।
સૂત્રસ્યાર્થાપેક્ષિતયૈવોપયોગિત્વાદાહ-‘અર્થાગમે’ ઇતિ, અર્થ્યતે=ચાચ્યતે, અથવા

વ્યાખ્યાન આદિ કે દ્વારા વિસ્તૃત હો કર આસ્રવોં કો ઢકતા હૈ, અષ્ટવિધ કર્મોં સે વચાતા હૈ, ધારણ કરને વાલે કી શોભા વઢાતા હૈ, યા જૈસે સૂઈ કે દ્વારા વસ્ત્રોં કે ઢુકડે સીંચે જાને પર તરહ-તરહ કે સુન્દર વસ્ત્ર વનકર લોગોં કે ઉપકારક હોતે હૈં, વૈસે હી જો વહુત સે ફુટકર અર્થોં સે જોડા જાકર ભવ્યોં કે લિયે અપૂર્વ લાભદાયક હોતા હૈ, અથવા જૈસે કિસી ઝરને સે પાની ઝરતા હૈ ઉસી પ્રકાર જિસમેં સે ઉત્તમૂર અર્થ નિકલતા હૈ ઉસે ‘સૂત્ર’ કહતે હૈ । કહાં મી હૈ—

“જિસમેં અક્ષર થોડે પર અર્થ સર્વવ્યાપક, સારગર્ભિત, સન્દેહરહિત, નિર્દોષ તથા વિસ્તૃત હો ઉસે વિદ્વાન લોગ ‘સૂત્ર’ કહતે હૈ” ॥ ૧ ॥

તદ્રૂપ (સૂત્રરૂપ) આગમ સૂત્રાગમ કહલાતા હૈ ।

જો મુમુક્ષુઓં સે પ્રાર્થિત હો ઉસે અર્થાગમ કહતે હૈ । કેવલ સૂત્રાગમ યા અર્થાગમ સે પ્રયોજન સિદ્ધ નહીં હો સકતા, ઇસલિયે સૂત્ર ઓર અર્થરૂપ ‘તદુભયાગમ’ કહાં હૈ । ઇનમેં જો કુછ કર્મકો

તથા આચાર્ય વિગેરેના વ્યાખ્યાનાદિ-દ્વારા વિસ્તૃત થઈને આસ્રવોને ઢાકે છે, અષ્ટ પ્રકારના કર્મોથી બચાવે છે, ધારણ કરવાવાળાની શોભા વધારે છે, અથવા જેવી રીતે સોય-દ્વારા કાપડના ઢુકડા સીવાઈ ગયા પછી તરેહ તરેહના મુદર વસ્ત્ર બનીને લોકો માટે ઉપકારી બને છે તેવી રીતે જે ધણા પ્રકારના અર્થોથી સંગૃહીત થઈને ભવ્યોને અપૂર્વ લાભદાયક થાય છે, અથવા જેવી રીતે કોઈ ઝરણામાથી પાણી ઝરે છે એવી રીતે જેમાથી ઉત્તમ અર્થ નિકળે છે, તેને સૂત્ર કહે છે કહ્યું પણ છે—

જેમા અક્ષર થોડા છતાં પણ અર્થ સર્વવ્યાપક, સારગર્ભિત, સન્દેહરહિત નિર્દોષ તથા વિસ્તૃત હોય તેને વિદ્વાન માણસો સૂત્ર કહે છે

તદ્રૂપ (સૂત્રરૂપ) આગમ-સૂત્રાગમ કહેવાય છે

જે મુમુક્ષુઓથી પ્રાર્થિત હોય તેને અર્થાગમ કહે છે કેવળ સૂત્રાગમ અગર અર્થાગમથી પ્રયોજન સિદ્ધ નથી થઈ શકતું, એવા માટે સૂત્ર અને અર્થ-રૂપ તદુભયાગમ કહેલ છે એમા જે થોડુંક કર્મને છોડીને અર્થાત્ કર્મપૂર્વક

ગમઃ=મૂત્રાર્થદ્વયરૂપ આગમઃ । તત્ર સૂત્રપદ વ્યાચષ્ટે-‘સૂત્ર’ ઇતિ પ્રાકૃતસૈલ્યા સૂત્ર સૂક્ત સુપ્તમિતિ પદત્રયસ્ય ‘સૂત્ર’ ઇતિ ભવતિ, તસ્માત્ સૂચ્યન્તે=સમૃદ્ધ્યન્તે વહવોઽર્થા યસ્મિન્નિતિ, સૂત્રયતિ=ગુમ્ફયતિ વિવિધાનર્થાન્ સક્ષેપેણેતિ, સૂત્રયતિ=સૂચયત્યલ્પાક્ષરૈર્દ્રવ્યપર્યાયનયાદિસ્વરૂપ ભૃશમર્થમિતિ, દોષરાહિન્યેન ‘સુષ્ટૂત્ત’=પ્રતિપાદિતમિતિ, અર્થજ્ઞાનમન્તરેણ સર્વે પદાર્થાઃ ૨સુપ્તવત્પ્રતિભાન્ત્યત્રેતિ વાર્થઃ । યદ્વા સૂત્ર=તન્તુસ્તત્સાદૃશ્યાદ્ગોપ્યા લક્ષણયા શૂત્રમ્, યથા તન્તૌ વહૂનિ વસ્તૂન્યે-કત્ર સમ્પ્રથ્યન્તે તથેહાપિ વહવોઽર્થા ઇતિ । આહોસ્વિત્ યથા તન્ત્વપરપર્યાય સૂત્રમેવ સુચતુરૈઃ પટકરૈઃ પટરૂપતા નીત સદ્ ગોપ્યાઙ્ગાન્યાદૃત્ય શૈત્યાદિભ્યો રક્ષન્ ધાર-કસ્ય શોભા મદ્ગલ ચ તનોતિ તથેદમપિ મૂત્રમાચાર્યાદિવ્યાખ્યાત સત્ પટસ્થા-

જિસમેં સક્ષેપ રૂપસે વહુત અર્થોં કા સગ્રહ ક્રિયા જાય, અથવા જો દોષરહિત કહા હુઆ હો, યા જૈસે સોચે હુએ ૭૨ કલા કે જ્ઞાતા પુરુષ કો જગાને પર કલા કા ભેદ-પ્રભેદ કા જ્ઞાન હોતા હૈ ઉસી પ્રકાર અર્થ દ્વારા સર્વતત્ત્વ જિસસે જાનેં જાય અથવા જૈસે સૂત્ર (સૂત) મે મણિ મોતી આદિ તરહ તરહ કે પદાર્થ ગૂંથે હુએ રહતે હૈં, યા જૈસે સૂત વહુત સે ઇકઢે ક્રિયે જાકર ચતુર પુરુષોં સે તરહર કે (અપની ડચ્છા કે અનુસાર) કપડે બનાયે જાતે હૈં ઓર જો ગુપ્ત અર્ગોં કો ઢાકતે હૈં, સર્દીં ગર્મોં સેં બચાતે હૈ તથા ધારણ કરને વાલે કી શોભા કો વઢાતે હૈં, વૈસે હી જો જીવાદિ નાના પદાર્થોં કે સ્વરૂપ સે ગુમ્ફિત (ગ્રથિત) તથા આચાર્ય આદિ સે

જેમા સક્ષેપ રૂપે ઘણા અર્થોના સંગ્રહ કરવામા આવે અથવા જે દોષ રહિત કહેલ હોય, -અથવા જેમ સુતેલ ૭૨ કળાના જ્ઞાતા પુરુષને જગાડ્યા પછી કળાના ભેદ પ્રભેદ જાણી શકાય તેવી રીતે અર્થ દ્વારા સઘળા તત્ત્વ જેનાથી જાણી શકાય, અથવા જેમ દોરામા મણિ-મોતી વિગેરે ભાતભાતના પદાર્થ ગુથાએલ રહે છે અથવા જેવી રીતે ઘણા સૂતરને લેગા કરીને ડાહ્યા માણસો પોતાની ઈચ્છાએ ભાતભાતનું કાપડ બનાવે છે તે કાપડ ગુપ્ત અંગોને ઢાકે છે, સર્દી અને તાપથી બચાવે છે અને પહેરનારની શોભાને વધારે છે તેવી જ રીતે જે જીવાદિ નાના પદાર્થોના સ્વરૂપથી ગુમ્ફિત (ગ્રથિત)

૧- ‘સુષ્ટૂત્ત’ સૂક્તમિતિ ન્હાયાપક્ષે ।

૨- ‘સુપ્ત’-મિતિ ન્હાયાપક્ષે ।

નલઃ, અનુસ્વારમાત્રલોપે સત્યસારઃ સસારોઽપિ સસાર. સજાયતે । અત્ર વદત્વં ઇત્યમા-
ભણન્તિ-રાજગૃહે સમવસૃતસ્ય ભગવતો મહાવીરસ્ય ધર્મદેશનાશ્રવણાનન્તર ભગ-
વન્ત વન્દિત્વા પરિપત્ પ્રતિગતા, તદા કિન્ચિદુત્પત્યાવપતિત પુનરુત્પત્યાવપતિત
વિદ્યાધરવિમાનમાલોક્ય સન્દિહાનેન સપુત્રેણ રાજા શ્રેણિકેન પૃષ્ઠો ભગવાનાહ-
'વિમાનગ્રાહોઽય વિમાનચારણમન્ત્રસ્યૈકમક્ષર વિસ્મૃતવાસ્તેનેદ વિમાન હતપક્ષઃ
પક્ષીવ મુહુર્મુહુરુત્પત્યોત્પત્ય નિપતતી'તિ । તચ્છૃત્વા શ્રેણિકપુત્રોઽભયકુમારો નિજયા
પદમાત્રોપલબ્ધિર્વર્વાઽનેપદાનુસન્ધાનશક્ત્યા ત વિમાનચારણમન્ત્ર ન્યૂનાક્ષરા-

(સારસહિત) વન જાતા હૈ, તથા 'કમલ' શબ્દકે 'ક' કો કમ
કરદેને સે 'મલ' વન જાતા હૈ, ઇત્યાદિ, ઇસ વિષયમેં વિદ્યાધર
ઔર અભયકુમાર કા દૃષ્ટાન્ત હૈ—

એક સમય રાજગૃહ નગરીમે પધારે હુએ ભગવાન મહાવીર
સ્વામી કી ધર્મદેશના સુનકર તથા ઉનકો વન્દના કરકે પરિષદ કે
ચલે જાને પર વાર વાર ઉડતે-ગિરતે કિસી વિદ્યાધરકે વિમાન કો
દેખ કર અપને પુત્ર અભયકુમાર કે સાથ રાજા શ્રેણિકને ભગવાન
સે પૂછા, પ્રભો ! યહ વિમાન ઇસ પ્રકાર ઉડ કર ક્યોં ગિરતા હૈ ?
તવ ભગવાનને ફરમાયા કિ યહ વિદ્યાધર અપની વિદ્યા કા એક
અક્ષર ભૂલ ગયા હૈ જિસસે યહ વિમાન વિગર પાખ કે પક્ષી કી
તરહ વાર-વાર ઉડ-ઉડ કર ગિરતા હૈ । એસા સુન કર રાજા

‘સસાર’ (સારસહિત) બને છે તથા જેમ ‘કમળ’ શબ્દના ‘ક’ ને કાઢી
નાખવાથી ‘મળ’ શબ્દ બની જાય છે

આ વિષયમા એક વિદ્યાધર અને અભયકુમારનું દૃષ્ટાન્ત છે

એક વખત રાજગૃહ નગરીમા પધારેલા ભગવાન મહાવીર સ્વામીની
ધર્મદેશના સાંભળી તથા ભગવાનને વન્દન કરી પચ્છિદ થાલી ગયા પછી એક
વિદ્યાધરના વિમાનને ઉડતા-પડતા જોઇને પોતાના પુત્ર અભયકુમારની સાથે
શ્રેણિક રાજાએ ભગવાનને પૂછ્યું પ્રભો ! આ વિમાન આવી રીતે ઉડીને પાછું
કેમ પડે છે ? ત્યારે ભગવાને જણાવ્યું કે આ વિદ્યાધર પોતાની વિદ્યામાથી એક
અક્ષર ભૂલી ગયો છે જેથી આ વિમાન પાખ વિનાના પક્ષીની જેમ વાર-વાર
ઉડી ઉડીને પડી જાય છે એવું સાંભળીને રાજા શ્રેણિકના પુત્ર અભયકુમારે

અર્પતે=ગમ્યતેઽર્થાત્પ્રાપ્યતે વુશ્વત્ષુભિરિત્યર્થઃ^૧ । પૃથક્ પૃથક્ મૂત્રરૂપેનાર્થરૂપેણ
 ચાઽગમેન યથોચિતોપયોગાભાગાદુભયમાહ-‘તદુભયાગમે^૨’ इति, તન્ન સ ચ
 તે તયોરુભય તદુભય તદ્વાસાન્નાગમથ તદુભયાગમઃ=મૂત્રાર્થો-ભયરૂપ આગમ
 इत्यर्थः । તત્ર ‘જ’ યત્ ‘ગૌદ્’ વ્યાક્રિદ્=ત્રિપર્યસ્તમણિમાલાવત્તદેવ વિપ-
 રીતોચારિતમ્, ‘વચ્ચામેલિય’-વ્યત્યામ્નેદિત=વ્યત્યયેન સૂત્રાન્તરસ્યાઽલાપક
 સૂત્રાન્તરેણ સયોજ્યાઽસ્થાને વિરામ કૃત્વા સ્વરૂપોલકનિપતાનિ સૂત્રાભાસાનિ
 વિરચય્ત વા આમેદિત=સમુદ્ઘુષ્ટમર્થાદુચારિતમ્ ॥ ‘હીનાક્ષર’ હીનાક્ષર-હીનમક્ષર
 યસ્મિન્નસ્તત્, હીનાક્ષરદોષો હિ મહાન્તમનર્થ જનયતિ, અકારમાત્રલોપે સત્યનલોઽપિ

છોડકર અર્થાત્ ક્રમપૂર્વક ન પઢા ગયા હો, જૈસે ‘નમો અરિહતાણ’
 इत्यादि की जगह ‘अरिहताण नमो’ इत्यादि पढा गया हो (१) ।
 एक सूत्र का पाठ दूसरे सूत्रमें मिलाकर या जहा विराम न लेना
 चाहिये वहा विराम लेकर, अथवा अपनी तरफ से कुछ शब्द
 जोडकर पढा गया हो (२) । अक्षरहीन पढा गया हो, जैसे ‘अनल’
 शब्द का अकार कम कर दिया जाय तो ‘नल’ बन जाता है,
 ‘ससार’ शब्दका सिर्फ अनुस्वार निकाल दिया जाय तो ‘ससार’

न व थायु डोय, જેવી રીતે ‘નમો અરિહતાણ’ વિગેરેની જગ્યાએ ‘અરિહતાણ નમો’
 વિગેરે વ થાયુ ડોય (૧) એક સૂત્રના પાઠ ખીજા સૂત્રમા મેળવીને અગર જ્યા રોકાવુ
 ન જોઈએ ત્યા રોકાઈને, અથવા પોતાના તરફથી થોડા શબ્દ જોડીને વાચ્યુ ડોય,
 (૨) અક્ષરહીન વ થાયુ ડોય-જેવી રીતે ‘અનલ’ શબ્દનો અકાર કાઢી નાખીએ
 તે ‘નલ’ બની જાય છે, ‘સસાર’ શબ્દમા ખાલી અનુસ્વાર કાઢી નાખીએ તે

૧- અર્થ-‘અર્થ ઉપયાચ્ચાયામ્’ અસ્માદ્ વાહુલકેન કર્મણ્યચ્, પક્ષે ‘ક્ર
 ગતૌ’ અસ્માદૌનાદિક. કર્મણિ થન્ ।

૨- ‘આગમે તિવિદે’ इत्यत आरभ्य ‘तदुभयागमे,’ इत्यन्त यावत्-
 एतत् मागधीशैल्या ॥

નલઃ, અનુસ્વારમાત્રલોપે સત્યસારઃ સસારોઽપિ સસારઃ સજાયતે । અત્ર વદત્વ ઇત્યમા-
ભણન્તિ-રાજગૃહે સમવસૃતસ્ય ભગવતો મહાવીરસ્ય ધર્મદેશનાશ્રવણાનન્તર ભગ-
વન્ત વન્દિત્વા પરિપત્ પ્રતિગતા, તદા કિન્ચિદુત્પત્યાવપતિત પુનરુત્પત્યાવપતિત
વિદ્યાધરવિમાનમાલોક્ય સન્દિહાનેન સપુત્રેણ રાજા શ્રેણિકેન પૃષ્ઠો ભગવાનાહ-
'વિમાનવાહોઽય વિમાનચારણમન્ત્રસ્યૈકમક્ષર વિસ્મૃતવાસ્તેનેદ વિમાન હતપક્ષઃ
પક્ષીવ મુહુર્મુહુરુત્પત્યોત્પત્ય નિપતતી'તિ । તચ્છુત્વા શ્રેણિકપુત્રોઽભયકુમારો નિજયા
પદમાત્રોપલબ્ધિપૂર્વકાઽનેપદાનુસન્ધાનશક્ત્યા ત વિમાનચારણમન્ત્ર ન્યૂનાક્ષરા-

(સારસહિત) બન જાતા હૈ, તથા 'કમલ' શબ્દકે 'ક' કો કમ
કરદેને સે 'મલ' બન જાતા હૈ, ઇત્યાદિ, ઇસ વિષયમે વિદ્યાધર
ઔર અભયકુમાર કા દૃષ્ટાન્ત હૈ—

એક સમય રાજગૃહ નગરીમે પધારે હુણ ભગવાન મહાવીર
સ્વામી કી ધર્મદેશના સુનકર તથા ઉનકો વન્દના કરકે પરિપદ કે
ચલે જાને પર ચાર ચાર ઉડતે-ગિરતે કિસી વિદ્યાધરકે વિમાન કો
દેખ કર અપને પુત્ર અભયકુમાર કે સાથ રાજા શ્રેણિકને ભગવાન
સે પૂછા, પ્રભો ! યહ વિમાન હસ પ્રકાર ઉડ કર કયોં ગિરતા હૈ ?
તવ ભગવાનને ફરમાયા કિ યહ વિદ્યાધર અપની વિદ્યા કા એક
અક્ષર ભૂલ ગયા હૈ જિસસે યહ વિમાન વિગર પાખ કે પક્ષી કી
તરહ ચાર-ચાર ઉડ-ઉડ કર ગિરતા હૈ । એસા સુન કર રાજા

‘સસાર’ (સારસહિત) બને છે તથા જેમ ‘કમળ’ શબ્દના ‘ક’ ને કાઢી
નાખવાથી ‘મળ’ શબ્દ બની જાય છે

આ વિષયમા એક વિદ્યાધર અને અભયકુમારનું દૃષ્ટાન્ત છે

એક વખત રાજગૃહ નગરીમા પધારેલા ભગવાન મહાવીર સ્વામીની
ધર્મદેશના સાંભળી તથા ભગવાનને વન્દન કરી પચ્ચિદ આવી ગયા પછી એક
વિદ્યાધરના વિમાનને ઉડતા-પડતા જોઈને પોતાના પુત્ર અભયકુમારની સાથે
શ્રેણિક રાજાએ ભગવાનને પૂછ્યું પ્રભો ! આ વિમાન આવી રીતે ઉડીને પાછું
કેમ પડે છે ? ત્યારે ભગવાને જણાવ્યું કે આ વિદ્યાધર પોતાની વિદ્યામાથી એક
અક્ષર ભૂલી ગયો છે જેથી આ વિમાન યાજ વિનાના પક્ષીની જેમ વારવાર
ઉડી ઉડીને પડી જાય છે એવું સાંભળીને રાજા શ્રેણિકના પુત્ર અભયકુમારે

સુસન્ધાનેનાઽત્રિકલીકૃત્ય ફલિતમનોરથાત્પ્રસન્નાત્તસ્માદ્વિચારાત્તદ્વિચાસિદ્ધયુપાય
મુપલબ્ધવાનિતિ । ‘અચ્ચક્ષર ’ અત્યક્ષરમ્-અતિ=આગમગાથામૂત્રાપેક્ષયાઽધિકમક્ષર
યસ્મિન્સ્તત્તથાભૂતમર્થાદેકદ્વયાદિક્રમેણાક્ષરમધિકીકૃત્યોચ્ચારિતમ્ । ‘પયહીન’ પદહીન=
પદ ન્યૂનીકૃત્યોચ્ચારિતમ્, એતન્નોપલક્ષણમધિકપદત્વસ્યાપિ અધિકાક્ષરત્વસ્યેવાધિક
પદત્વસ્યાપ્યુપન્યાસાર્હત્વાત્ । ‘વિણયહીન ’ વિનયહીન=વિનય વિનોચ્ચારિતમ્ ।
‘યોગહીન ’ યોગહીન-યોગો=મનોયોગસ્તેન હીન મનોયોગ દત્ત્વા પઠિતમિત્યર્થઃ ।

શ્રેણિકકા પુત્ર અભયકુમારને અપની પદાનુસારિણી લબ્ધિ-દ્વારા
ઉસકે વિમાનચારણ મત્ર કો પૂરા કરકે ઉસકે મનોરથ કો સિદ્ધ
કિયા ઓર ઉસ વિદ્યાધર સે આકાશગામિની વિદ્યાકી સિદ્ધિ કા
ઉપાય સીખ લિયા । (૩)

અધિક અક્ષર જોડકર પઢા ગયા હો, જૈસે એક રાજા
કે વાચક ‘નલ’ શબ્દ કે પહેલે ‘અ’ જોડ કર પઢા જાય તો
‘અનલ’ બન જાતા હૈ, જિસકા અર્થ અગ્નિ હો જાતા હૈ (૪) । પદ
કો ન્યૂન યા અધિક કરકે બોલા ગયા હો, જૈસે “સપ્ત વ્યસન
સેવનીય નહી હૈ” યહા પર ‘નહી’ પદકો ન્યૂન કર દેને સે તથા
“હાર” કે સાથ “પ્ર” આદિ અધિક શબ્દ લગા દેને સે બહુત
અર્થભેદ હો જાતા હૈ (૫) । વિનયરહિત પઢા ગયા હો (૬) ।
મનોયોગ દિયે વિના પઢા ગયા હો, અથવા આયમ્બિલ આદિ

પોતાની પદાનુસારિણી લબ્ધિ દ્વારા એના વિમાનચારણ (વિમાન ચલાવનાર)
મત્રને પૂરા કરી તેના મનોરથને સિદ્ધ કર્યું, અને તે વિદ્યાધર પાસેથી આકાશ
ગામિની વિદ્યાની સિદ્ધિનો ઉપાય શીખી લીધો (૩)

વધારે અક્ષર જોડીને વાચ્યુ હોય - જેવી રીતે એક રાજાનો
વાચક ‘નલ’ શબ્દ પહેલા ‘અ’ જોડી દેવાય તો ‘અનલ’ બની જાય છે
અને જેનો અર્થ અગ્નિ થઈ જાય છે (૪) પઢને થોડું અગર વધારે કરીને
બોલાયુ હોય જેવી રીતે સાત વ્યસન સેવવા યોગ્ય નથી અહીં નથી પઢને
છોડી દેવાથી, તથા ‘હાર’ ની સાથે ‘પ્ર’ વિગેરે વધારે શબ્દ ઉમેરવાથી ધણો
અર્થભેદ થઈ જાય છે (૫) વિનયરહિત વાચ્યુ હોય (૬) મનોયોગ આખ્યા વિના
વાચ્યુ હોય અથવા આયમ્બિલ વિગેરે શાસ્ત્રોક્ત તપ કર્યા વિના વાચ્યુ હોય

यद्वा-आचामाम्लाग्रनुष्ठानरूपयोगोद्वहनमन्तरेण पठितम् । 'घोसहीण' घोषहीन-
घोषः=उदात्तानुदात्तस्वरितरूपस्वरत्रय तद्धीनमर्थादुदात्तादिस्वराणा यथोचित-
मुच्चारणमकृत्वैव पठितम् । 'सुण्डुदिन्न' सुण्डुदत्त-सुण्डु=शोभन यथास्यानथा
मरहस्यमित्यर्थः, दत्त=पाठितम्, पात्रापात्रविवेकमकृत्वैव निकटोपस्थिताय यस्मै
कस्मैचित्सम्यक्तया सूत्रार्थदानमित्यर्थः । पात्रविवेकमन्तरेण हि कदाचित्कु-
पात्रायाऽभ्यापित महान्तमनर्थ जनयति, यथा भुजङ्गस्य क्षीरपायन तद्विषवर्द्धनायैव,
यथा वा ज्वरार्तस्य घृतपायन शीतलजलस्नपन वा तज्ज्वरवर्द्धनायैव, यद्वा यथा
बहुमूल्या सुविशाला माला सग्रथ्य वानरगले समर्पण तन्मालायाः समुच्छेदायैव,
अथवा यथोपरभूमावुप्तबीज न फलति प्रत्युत तत्रैव (भूमौ) विलीयते तथैवाऽ-
पात्राय विद्यादान, यतोऽसौ काकतालीयन्यायेन कदाचिद्बुद्धविग्रोऽपि स्वस्व-

शास्त्रोक्त तप किये बिना पढा गया हो (७) । उदात्त आदि स्वरों
के उचित उच्चारण किये बिना पढा गया हो (८) । पात्र कुपात्र का
विचार किये बिना रहस्य खोल कर पढाया गया हो, क्यों कि
शिष्य की परीक्षा किये बिना कदाचित् कुपात्र को पढाया जाय तो
वह साप को दूध पिलाने तथा ज्वर वाले को घी पिलाने या ठण्डे
जल से नहलाने के बराबर अनर्थकारी होता है । अथवा
जैसे सुन्दर रत्नों की माला बन्दर के गलेमे डाल दी जाय,
या ऊसर भूमिमें बीज बोया जाय तो लाभ के बदले हानि
ही होती है उसी प्रकार कुपात्र शिष्यको शास्त्र का ज्ञान पढाना
अलाभकारी है । यदि किसी संयोग से वह विद्या प्राप्त भी कर

(७) उदात्त विगेरेनो शुद्ध उच्चार कर्था बिना वाच्यु होय (८) पात्र-कुपात्रना
विचार कर्था बिना रहस्य समझवीने लघ्वाव्यु होय कारण के शिष्यनी
परीक्षा कर्था बिना केछ पणत कुपात्रने लघ्वावाय तो ते सायने दूध पीवराववा
जेवु तथा ताववाणाने घी पवराववा जेवु अथवा तो ठंडा पाणीथी स्नान
कराववा जेवु अनर्थकारी थाय छे, अथवा तो सुन्दर रत्नेनी भाणा वाहराना गणे
पड़ेराववी अगर भारा वाणी नभीनभा भीन वावी देवामा आवे तो लाभ थवाना
जदले हानि न थाय छे जे प्रमाणे कुपात्र शिष्यने शास्त्रनु ज्ञान आपवु अलाभकारी
छे कदाय केछ संयोगवशात् ते विद्या प्राप्त पणु करी ले तो पणु पोताना भुटिछ

નુસન્ધાનેનાઽવિકલીકૃત્ય ફલિતમનોરથાત્મસન્નાત્તસ્માદ્વિયાધરાત્તદ્વિયાસિદ્ધયુપાય
મુપલબ્ધવાનિતિ । ‘અચ્ચક્ષર ’ અત્યક્ષરમ્-અતિ=આગમગાથામૂત્રાપેક્ષયાઽધિકમક્ષર
યસ્મિન્સ્તત્તથાભૂતમર્થાદેકદ્વયાદિક્રમેણાક્ષરમધિકીકૃત્યોચ્ચારિતમ્ । ‘પયહીણ’ પદહીન=
પદ ન્યૂનીકૃત્યોચ્ચારિતમ્, એતચ્ચોપલક્ષણમધિકપદત્વસ્યાપિ અધિકાક્ષરત્વસ્યેવાધિક-
પદત્વસ્યાપ્યુપન્યાસાર્હત્વાત્ । ‘વિણયહીણ’ વિનયહીન=વિનય વિનોચ્ચારિતમ્ ।
‘જોગહીણ’ યોગહીન-યોગો=મનોયોગસ્તેન હીન મનોયોગ દત્વા પઠિતમિત્યર્થઃ ।

શ્રેણિકકા પુત્ર અભયકુમારને અપની પદાનુસારિણી લબ્ધિ-દ્વારા
ઉસકે વિમાનચારણ મત્ર કો પૂરા કરકે ઉસકે મનોરથ કો સિદ્ધ
કિયા ઓર ઉસ વિદ્યાધર સે આકાશગામિની વિદ્યાકી સિદ્ધિ કા
ઉપાય સીખ લિયા । (૩)

અધિક અક્ષર જોડકર પઢા ગયા હો, જૈસે એક રાજા
કે વાચક ‘નલ’ શબ્દ કે પહેલે ‘અ’ જોડ કર પઢા જાય તો
‘અનલ’ બન જાતા હૈ, જિસકા અર્થ અગ્નિ હો જાતા હૈ (૪) । પદ
કો ન્યૂન યા અધિક કરકે બોલા ગયા હો, જૈસે “સપ્ત વ્યસન
સેવનીય નહી હૈ” યહા પર ‘નહી’ પદકો ન્યૂન કર દેને સે તથા
“હાર” કે સાથ “પ્ર” આદિ અધિક શબ્દ લગા દેને સે બહુત
અર્થભેદ હો જાતા હૈ (૫) । વિનયરહિત પઢા ગયા હો (૬) ।
મનોયોગ દિયે વિના પઢા ગયા હો, અથવા આયમ્બિલ આદિ

પોતાની પદાનુસારિણી લબ્ધિ દ્વારા એના વિમાનચારણ (વિમાન ચલાવનાર)
મત્રને પૂરા કરી તેના મનોરથને સિદ્ધ કર્યું, અને તે વિદ્યાધર પાસેથી આકાશ
ગામિની વિદ્યાની સિદ્ધિનો ઉપાય શીખી લીધો (૩)

વધારે અક્ષર જોડીને વાચ્યુ હોય - જેવી રીતે એક રાજાને
વાચક ‘નલ’ શબ્દ પહેલા ‘અ’ જોડી દેવાય તો ‘અનલ’ બની જાય છે
અને જેનો અર્થ અગ્નિ થઈ જાય છે (૪) પઢને થોડું અગર વધારે કરીને
બોલાયુ હોય જેવી રીતે સાત વ્યસન સેવવા યોગ્ય નથી અહી નથી પઢને
છોડી દેવાથી, તથા ‘હાર’ ની સાથે ‘પ્ર’ વિગેરે વધારે શબ્દ ઉમેરવાથી ઘણો
અર્થભેદ થઈ જાય છે (૫) વિનયરહિત વચ્ચાચુ હોય (૬) મનોયોગ આખ્યા વિના
વાચ્યુ હોય અથવા આયમ્બિલ વિગેરે શાઓકત તપ કર્યા વિના વાચ્યુ હોય

“ ૧-દસગમસગસમાના, જલ્મગવેચ્છુગસમા ય જે હોતિ ।
તે કિર હોતિ સ્વલુકા, તિલ્લમિલ્લ ચંડમદવિયા ॥ ૧ ॥ ”
જે કિર ગુરુપટિનીયા, સવલા અસમાહિકારગા પાવા ।
કલ્લહકરણસ્સ ભાવા, જિણવચ્છે તે કિર સ્વલુકા ॥ ૨ ॥
પિણ્ણા પરોવયાવી, મિલ્લરહસ્સા પર પરિભવતિ ।
નિવ્વિઅણિજ્ઞા ય સઠા, જિણવચ્છે તે કિર સ્વલુકા ॥ ૩ ॥ ” ઇતિ ।

સ્થાનાઙ્ગે મગવતાઽપિ નિર્દર્શિતમ્—

“ જો ડાંમ, મચ્છર, જાક વિચ્છૂ કે સમાન આચરણ કરને
થાલા, અસહિષ્ણુ, આલસી, ક્રોધી, વાર વાર કહેને પર મી ગુરુકી
આજ્ઞા કો નહીં માનને થાલા, ગુરુકા વિરોધી, ચારિત્રમેં શયલ-
દોષયુક્ત, ગુરુકો અસમાધિ પેદા કરને થાલા, ધગડાલૂ, ઘુગલચોર,
પર કો પીડા દેને થાલા, દૂસરે કો દવાને થાલા, રહસ્યમેદ કરને
થાલા, વિરુદ્ધ આચરણ કરને થાલા તથા શઠ, પાપાત્મા, જિન-
વચનમેં સ્વલુકા-કુશિષ્ય કહલાતા હૈ ॥ ૩ ॥

સ્થાનાઙ્ગ સૂત્રમે મગવાને ને ફરમાયા હૈ કિ-‘અવિનીત, રસ-

“ ભેદ, ડાસ, મચ્છર, વિંછીના મમાન આચરણ કરવાવાળા, અસહિષ્ણુ
આળસુ, ક્રોધી, વારવાર કહેવા છતાય ગુરુની આજ્ઞાનું પાલન નહિ કરનાર, ગુરુના
વિરોધી, ચારિત્રમા શયલ દોષયુક્ત, ગુરુને અસમાધિ ઉત્પન્ન કરનાર, કલ્યાણોર,
ચાડીયાપણુ, પરને પીડા કરનાર, બીજાને દયાવનાર, ખાનગી વાતને બહાર કરનાર,
વિરુદ્ધ આચરણ કરનાર તથા શઠ પાપાત્મા જિનવચનમા શઠા કથા કરનાર
કુશિષ્ય કહેવાય છે

સ્થાનાઙ્ગ સૂત્રમા મગવાને કહ્યું છે કે-અવિનીત, રસદોષુપ, મહાક્રોધી,

૧-દશકમગકસમાના જલ્મકાવૃથિકસમાથ્ર યે ભવન્તિ । તે કિલ ભવન્તિ
સ્વલુકાસ્તીક્ષ્ણમૃદુચણ્ડમાર્દવિકા ॥ ૧ ॥ યે કિલ ગુરુપત્યનીકા*, શવલા
અસમાધિકારકાઃ પાપા* । કલ્લહકરણસ્વભાવા જિનવચને તે કિલ સ્વલુકાઃ ॥ ૨ ॥
પિણ્ણા* પરોપતાપિનો, મિલ્લરહસ્સા પર પરિભવન્તિ । નિર્વેદનીયાથ્ર શઠા
જિનવચને તે કિલ સ્વલુકા. ॥ ૩ ॥ ઇતિ સસ્કૃતચ્છાયા ।

ભાવમપરિત્યજન્ 'દૃષ્ટીદૃષ્ટિ' પાત્રભૂતાનપિ શિષ્યાનપાત્રસ્વ નયતિ, સ્વલ્પીયસાઽપિ
 કારણેન મહાન્ત ક્રોધમાદાય ગર્વિતોઽનાચરણીયમાચર્ય નિજયા દુર્ભાવનયા કુઠા
 રધારયા ધર્મકલ્પવૃક્ષમેવ ચિચ્છિત્સતિ । નનુ કોઽપાત્રપદમાક્ ? इति=वेदुच्यते-यः
 परापवादशीलो, योऽसयतेन्द्रियो, योऽनृजुर्यः क्रोधी, यः पिशुनो, यः क्रूरवाक्, यो
 बहुभोजनप्रियः, यो मनोवाग्देहेष्वसमवृत्तिर्यश्चाविनयः । प्रोक्तमिदमुत्तराभ्य-
 यननिर्युक्तौ—

લેવે તો અપને કુટિલ સ્વભાવ કો ન છોડતા હુઆ સુપાત્ર શિષ્યો
 કો બી અપને સમાન થના ડાલતા હૈ । ઓર જરા ૨ સી ઘાતમેં
 કુદ્ધ હોકર ઘમણ્ડપૂર્વક દુર્ભાવનારૂપ કુલ્હાડી સે ધર્મરૂપ કલ્પ
 વૃક્ષ કો કાટને કે લિયે ઉતારૂ હોજાતા હૈ ।

કુપાત્ર ઉસકો કહતે હૈ— જો પરાઈ નિન્દા કરે, ઇન્દ્રિયોં કા
 લોલુપી, હૃદય કા કુટિલ, ક્રોધી, ચુગલઘોર, કઠોરભાષી, જાને-
 પીનેમેં અધિક લોલુપી, મન વચન ઓર કાયામેં વિષમ વૃત્તિ રાખને
 વાલા (મનમેં કુછ, બોલે કુછ, કરે કુછ એસા) તથા ઉદ્દણ્ડ હો ।
 જૈસા કિ ઉત્તરાધ્યયનનિર્યુક્તિમેં કહા હૈ—

સ્વભાવને તે છોડતો નથી અને સુપાત્ર શિષ્યને પણ પોતાના જેવો બનાવે છે,
 અને સામાન્ય જેવી વાતમા પણ ક્રોધાયમાન થઈને ધમડ સાથે દુર્ભાવના રૂપ
 કુહાડી વડે ધર્મરૂપ કલ્પવૃક્ષને કાપી નાખવા તૈયાર થઈ જાય છે.

કુપાત્ર તેને કહે છે કે જે પારકી નિન્દા કરે ઇન્દ્રિયોમા લોલુપી, કુટિલ-
 અત કરણ હોય ક્રોધી, ચાડીયાપણ, કડવી વાણી બોલનાર, ખાન-પાનમા
 લોલુપી, મન વચન અને કાયામા વિષમવૃત્તિ (મનમા બીજુ, બોલવામા
 બીજુ અને કરવામા બીજુ) રાખનાર, તથા ઉદ્દત હોય જેમકે ઉત્તરાધ્યયન-
 નિર્યુક્તિમા કહ્યું છે કે —

૧—‘દૃષ્ટીદૃષ્ટિ’ ‘દેશ્વાદેશ્વી’ इति भाषा, ‘कर्णाकर्णिं प्रथितमयशो बन्धु-
 वर्गेरभाणि’ इत्यादाविव प्रहरणविषयस्य कर्मव्यतिहारस्य चाभावेऽपि बहुव्रीहि-
 समासस्येच्प्रत्ययस्य चेष्टत्वात् ॥

दुष्टोर्वा प्रतीष्टं=प्रतिगृहीतम्, 'प्रतीक्षित'— मितिच्छायायामप्ययमेवार्थः ।
केचिदनयोर्दोषयोरेकत्वं व्याचक्षते, तदयुक्तम्; परस्परमनपेक्षत्वात्, अत एवा-
त्राऽतिचाराणामागोपालवाल्लहालिकप्रसिद्धं चतुर्दशत्यमप्युपपन्नतेऽन्यथा त्रयोदश-
त्वापत्तेः, एतेन 'सुष्ठु दत्त गुरुणा, दुष्ठु प्रतीक्षित कल्पितान्तरात्मने—' ति
व्याख्यानमसदिति बुद्धिमद्भिरनुभाव्यम् । सुष्ठु-दुष्ठु-शब्दावव्ययी त्रिलिङ्गौ च ।

'अकाले कओ सज्जाओ' न कालोऽकालस्तस्मिन्नकाले-असमये, अर्थाद्
यस्य कालिकादिश्रुतस्य योऽध्ययनसमयः प्रथमप्रहरादिस्तमतिक्रम्य कृतो=विहितः
स्वाध्यायः । 'काले न कओ सज्जाओ' काले=स्वा-यायसमये प्रथमप्रहरादौ
न कृतः स्वाध्याय इति निगदव्याख्यातमिदम् । 'असज्जाये सज्जाइय' न
स्वाध्यायो यस्मिन् सोऽस्वा यायस्तस्मिन् = स्वसमुत्थपरसमुत्थभेदभिन्ने
रुधिरस्त्रावोल्कापात-दिग्दाहाऽकालवर्षणादिरूपे स्वाध्यायित=स्वाध्यायः कृतः ।

है, अर्थात् 'सुद्धुदिन्न दुद्धुपडिच्छिय' इन दोनों को मिलाकर एक
अतिचार माना है सो उचित नहीं है, क्योंकि इन दोनों का ऐसी
कोई अपेक्षा नहीं है जिससे एक साथ सम्बन्ध किया जाय । दोनों को
जुदा २ मानने से ही चौदह अतिचार होते हैं नहीं तो तेरह ही
रह जायेंगे (१०) । अकाल में स्वाध्याय किया गया हो (११), काल

दुद्धुपडिच्छिय' आ अन्नेने लेखवी अेक अतिचार मानेले छे ते उचित नहीं, डेभडे
आ अन्नेनी डेभडे अेवी अपेक्षा नहीं डे लेथी अेक साथे सण ध करवामा आवे अन्नेने गूढा
गूढा मानवाथी अेह अतिचार थाय छे नहि तो ते २ थय जेथे (१०) अकालमा

१- 'पडिच्छिय' इत्यस्य 'प्रतीक्षित'—मितिच्छायाया प्रतिगृहीतार्थकल्पन
तु व्याकरणाननुसन्धानेन गजनिमीलिकैव 'इपुगमियमा छः' (७।३।७७)
इति शित्येव उद्देशविधानात् । न च प्रतीक्षा सजाताऽस्येत्यर्थे तारकादित्वादितचि
प्रतीक्षितमिति युक्तमेवेति सन्देह्यव्यम्, तथा सति प्रतीक्षाया एव बोधसम्भ-
वेन 'प्रतिगृहीत'—मिति कर्मवोचकत्वानुपपत्तेरिति कृतमसारग्रन्थपर्यालोचनेन ॥

२- 'स्वा यायितम्'—'तत्करोति तदाचष्ट'—इति णिजन्तात् स्वाध्याय-
शब्दात् न प्रत्यये 'निष्ठायासेटि' (६।४।५२) इति णिलोपः । 'स्वाध्यायिकम्'—
इतिच्छाया कल्पयित्वा स्वा याय एव स्वा यायिकम् इति व्याख्यानं तु न रुचिर,
स्वाध्यायशब्दात् स्वार्थठकोऽसम्भवात्, विनयादेराकृतिगणत्वे प्रमाणाभावस्य
प्रागुक्तत्वात् ।

“चत्वारि अमायणिज्जा पन्नजा, तज्जहा-अविणीए विगइपडिवद्धे अवि
ओसवितपाहुडे माई” इति । यद्वा ‘सुट्टुदिन्न’ इत्यत्र प्राकृतत्वादकारलोप
स्तेन ‘सुष्टुवदत्त’-मितिच्छाया, तेन सुष्टुवे=विनीताय अदत्त=न दत्तमित्यर्थः ।
विनीताय शिष्याय दत्त शास्त्रमनन्तगुणफलक भवति, यत् इदमेव धर्मदानमिति
त्युक्तमन्यत्र—

“पात्रेभ्यो दीयता विद्या, नित्य चैवाऽनपेक्षया ।

केवल धर्मबुद्ध्या य, - धर्मदान प्रचक्षते” ॥ १ ॥ इति ।

‘दुष्टुपडिच्छिय’ दुष्टु=अशोभनं यथा स्यात्तथा दुर्भावनया वा

लोलुप, महाक्रोधी तथा मायाचारी शिष्य, ये चार वाचना देने
योग्य नहीं है ।’

अथवा ‘सुट्टुदिन्न’ यहा पर प्राकृत के कारण अकार का
लोप है इसलिये सुष्टु-विनीत को अदत्त-न पढाया गया हो,
क्योंकि विनीत शिष्य को पढानेसे अनन्त ज्ञानादि गुणों की प्राप्ति
होती है, इसको अन्यत्र धर्मदान भी कहा है-जैसे-

‘सुपात्र शिष्य को निर्लोभ होकर केवल परमार्थ बुद्धि से
ज्ञान देने को ‘धर्मदान’ कहते हैं ॥ १ ॥

(९) दुष्ट भावसे ग्रहण किया हो, अथवा दुष्ट पुरुष से लिया
गया हो । इस अतिचारको किसीने ‘सुट्टुदिन्न’ से अलग नहीं माना

तथा मायाचारी शिष्य, आ चारने वाचना आपवी योग्य नहीं

अथवा ‘सुट्टुदिन्न’ अर्थात् प्राकृत साधना कारणे अकारने लोप छे
ओ/ला भाटे सुष्टु-विनीतने अदत्त-नहि लण्णो/ले छे/य कारणे छे विनीत शिष्यने
अध्यास कराववाथी अनन्त ज्ञानादि गुणोनी प्राप्ति थाय छे ओने ओने छे/ला
धर्मदान पणु कहेल छे जेवी रीते “सुपात्र शिष्यने निर्लोभ थयने केवल परमार्थ-
बुद्धिथी ज्ञान आपवु तेने “धर्मदान” कहे छे” ॥ १ ॥

(८) दुष्टभावथी अणु कथुं छे/य अथवा दुष्ट पुरुष पासथी लीधु छे/य आ
अतिचारने छे/ले “सुट्टुदिन्न” थी अलग मान्यो नथी, अर्थात् “सुट्टुदिन्न

१- ‘चत्वारोऽवाचनीयाः प्रज्ञप्तास्तथा-अविनीतो विकृतिप्रतिबद्धोऽव्य-
वशमितप्राप्तो मायी” इतिच्छाया ॥

दुष्टोर्वा प्रतीष्टं=प्रतिगृहीतम्, 'प्रतीप्सित'— मितिच्छायायामप्ययमेवार्थः ।
 केचिदनयोर्दोषयोरेकत्वं व्याचक्षते, तदयुक्तम्; परस्परमनपेक्षत्वात्, अत एवा-
 त्नाऽतिचाराणामागोपालयाल्लालिकप्रसिद्धं चतुर्दशत्वमप्युपपन्नतेऽन्यथा त्रयोदश-
 त्वापत्तेः, एतेन 'सुष्ठु दत्त गुरुणा, दुष्ठु प्रतीच्छित कल्पितान्तरात्मने—' ति
 व्याख्यानमसदिति बुद्धिमद्भिरनुभाव्यम् । सुष्ठु-दुष्ठु-शब्दावव्ययौ त्रिलिङ्गौ च ।

'अकाले कओ सज्जाओ' न कालोऽकालस्तस्मिन्नकाले-असमये, अर्थाद्
 यस्य कालिकादिश्रुतस्य योऽध्ययनसमयः प्रथमप्रहरादिस्तमतिक्रम्य कृतो=विहितः
 स्वाध्यायः । 'काले न कओ सज्जाओ' काले=स्वाध्यायसमये प्रथमप्रहरादौ
 न कृतः स्वाध्याय इति निगदव्याख्यातमिदम् । 'असज्जाये सज्जाइय' न
 स्वाध्यायो यस्मिन् सोऽस्वाध्यायस्तस्मिन् = स्वसमुत्थपरसमुत्थभेदभिन्ने
 रुधिरस्त्रावोल्कापात-दिग्दाहाऽकालवर्षणादिरूपे 'स्वाध्यायित=स्वाध्यायः कृतः ।

है, अर्थात् 'सुद्धुदिन्न दुद्धुपडिच्छिय' इन दोनों को मिलाकर एक
 अतिचार माना है सो उचित नहीं है, क्योंकि इन दोनों का ऐसी
 कोई अपेक्षा नहीं है जिससे एक साथ सम्यन्ध किया जाय । दोनों को
 जुदा २ मानने से ही चौदह अतिचार होते हैं नहीं तो तेरह ही
 रह जायेंगे (१०) । अकाल में स्वाध्याय किया गया हो (११), काल

दुद्धुपडिच्छिय' आ બનેને લેલવી એક અતિચાર માનેલ છે તે ઉચિત નથી, કેમકે
 આ બંનેની કોઈ એવી અપેક્ષા નથી કે જેથી એક સાથે સળધ કરવામાં આવે બંનેને જૂદા
 જૂદા માનવાથી ચૌદ અતિચાર થાય છે નહિ તે ૧૪ થઈ જશે (૧૦) અકાલમાં

१-‘पडिच्छिय’ इत्यस्य ‘प्रतीच्छित’—मितिच्छायाया प्रतिगृहीतार्थकल्पन
 तु व्याकरणाननुसन्धानेन गजनिमीलिकैव ‘इषुगमियमा छः’ (७ । ३ । ७७)
 इति शित्येव छादेशविधानात् । न च प्रतीच्छा सजाताऽस्येत्यर्थे तारकादित्वादितचि
 प्रतीच्छितमिति युक्तमेवेति सन्देग्धव्यम्, तथा सति प्रतीच्छावत् एव बोधसम्भ-
 वेन ‘प्रतिगृहीत’—मिति कर्मबोधकत्वानुपपत्तेरिति कृतमसारग्रन्थपर्यालोचनेन ॥

२-‘स्वाध्यायितम्’—‘तत्करोति तदाचष्ट’—इति णिजन्तात् स्वाध्याय-
 शब्दात् न प्रत्यये ‘निष्ठायासेटि’ (६ । ४ । ५२) इति णिलोपः । ‘स्वाध्यायिकम्’-
 इतिच्छायां कल्पयित्वा स्वाध्याय एव स्वाध्यायिकम्-इति व्याख्यानं तु न रुचिर,
 स्वाध्यायशब्दात् स्वार्थठकोऽसम्भवात्, विनयादेराकृतिगणत्वे प्रमाणाभावस्य
 प्रागुक्तत्वात् ।

‘સજ્ઞાણ ન સજ્ઞાઈય’ સ્વાધ્યાયે ન સ્વાધ્યાયઃ કૃતઃ । ‘તસ્સ’ તસ્યોક્તમકા
રાતિચારસ્ય ‘મિ’ મયિ=મદ્વિષયે ‘દુક્કડ’ દુષ્કૃત=પાપમ્ ‘મિચ્છા’ મિથ્યા=
નિષ્ફલ ભવત્વિતિ ધાગ્વત્ ॥

અત્ર દર્શનસમ્યક્ત્વ-સમિતિપશ્ચક-ગુપ્તિત્રય-સ્થાવરપશ્ચક-વિકલેન્દ્રિયત્રય
‘પશ્ચેન્દ્રિય-પશ્ચમહાત્રત-રાત્રિભોજન-પાપસ્થાનાઘાદશકપટ્ટીસપ્તચારણપૂર્વક ‘મૂલો
ત્તરગુણાના ત્રયસ્ત્રિંશતો ગુર્ત્ત્રાશાતનાના ચ યો મયાઽતિચારઃ કૃતસ્તસ્ય મિથ્યા
મયિ દુષ્કૃતમસ્તુ’ इति ‘इच्छामि ठामि०’ इति सपूर्णं पट्टीं च परिचिन्तयेत्
किन्तु ध्यानवेलाया ‘तस्स મિચ્છામિ દુક્કડ’ इत्यस्य स्थाने ‘तस्स आलोएमि’
इति चिन्तनीयम् । પર્યવસાને ચ નમસ્કારપૂર્વક કાયોત્સર્ગઃ સમાપનીયઃ ।
एताः सर्वा पट्टिका हिन्दीभाषायामधस्ताद् विलोकनीयाः ।

इति श्रीविश्वविख्यात-जगद्बल्लभ-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषाकलितललित-
कलापाऽऽलापक-प्रविशुद्धगन्धपत्रनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-श्रीशाह-
छत्रपतिकोल्हापुरराजप्रदत्त ‘जैनशास्त्राचार्य’ पदभूषित कोल्हापुर-
राजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-
घासीलाल-प्रतिविचिताया श्रीश्रमणसूत्रस्य, मुनि-
तोषण्याख्याया व्याख्याया प्रथम सामायिका-
ख्यमभ्ययन समाप्तम् ॥ १ ॥

મેં સ્વાધ્યાય ન કિયા ગયા હો (૧૨), અસ્વાધ્યાયમે સ્વાધ્યાય કિયા
ગયા હો (૧૩) । સ્વાધ્યાયસમય મેં સ્વાધ્યાય નહીં કિયા ગયા હો
(૧૪) । ‘તસ્સ મિચ્છામિ દુક્કડ’ વહ પાપ મેરા નિષ્ફલ હો ॥

અસ્વાધ્યાય કે વિષયમે આગે કોષ્ઠક દિયા જાતા હૈ-

સ્વાધ્યાય કર્યો હોય (૧૧) કાલમા સ્વાધ્યાય કર્યો ન હોય (૧૨) અસ્વાધ્યાયમા
સ્વાધ્યાય કર્યો હોય (૧૩) સ્વાધ્યાયના સમયમા સ્વાધ્યાય ન કર્યો હોય (૧૪)
- “તસ્સ મિચ્છામિ દુક્કડ” તે મારૂ પાપ નિષ્ફલ થાએ.

અસ્વાધ્યાયના વિષયમા આગળ કોષ્ઠક આપેલું છે

॥ अस्वाध्याययन्त्रम् ॥

श्रुत्या	अस्वाध्याय	द्रव्य	क्षेत्र	काल	भाव
१	उक्तावाय (उल्कापात)	तारा टूटे	जिस मण्डलमें	एक पहर	सुत्र न पड़े
२	दिसिदाह (दिग्दाह)	दिशा की लालिमा	"	जब तक रहे	"
३	गज्जिय (गर्जित)	मेघ की गर्जना	"	एक पहर	"
४	विज्जुय (विद्युत्)	मिजली चमके	"	एक पहर	"
५	निग्घाय (निर्घात)	वादल कड़के या भूकम्प होवे	"	८-१२-१६ पहर	"
६	जूवय (गुपक)	बालचन्द्र १।२।३ शुक्ल तिथि	सर्वत्र	एक पहर	"
७	जखदिसे (यक्षदीप्त)	आकाशमें यक्षादिका चिह्न।	जिस मण्डलमें	जब तक दिखाई दे	"
८	धूमिया (धूमिका)	लाल या काली धूँवर	"	जब तक रहे	"
९	महििया (महिका)	सफेद धूँवर	"	"	"

‘સજ્ઞાણ ન સજ્ઞાઈય’ સ્વાધ્યાયે ન સ્વાધ્યાયઃ કૃતઃ । ‘તસ્સ’ તસ્યોક્તપ્રકારાતિચારસ્ય ‘મિ’ મયિ=મદ્વિપયે ‘દુઃખડ’ દુષ્કૃત=પાપમ્ ‘મિચ્છા’ મિથ્યા=નિષ્ફલ ભવત્તિતિ ધાગ્વત્ ॥

અત્ર દર્શનસમ્યક્ત્વ-સમિતિપશ્ચક-ગુપ્તિત્રય-સ્થાવરપશ્ચક-વિકલેન્દ્રિયત્રય-પશ્ચેન્દ્રિય-પશ્ચમહાત્રત-રાત્રિભોજન-પાપસ્થાનાઘાદશકપટ્ટીસપ્તચારણપૂર્વક ‘મૂલોત્તરગુણાના ત્રયત્રિંશતો ગુર્વાશાતનાના ચ યો મયાઽતિચારઃ કૃતસ્તસ્ય મિથ્યા મયિ દુષ્કૃતમસ્તુ’ इति ‘इच्छामि ठामि०’ इति सपूर्णं पट्टीं च परिचिन्तयेत् किन्तु ध्यानवेलाया ‘तस्स मिच्छामि दुःखड’ इत्यस्य स्थाने ‘तस्स आलोएमि’ इति चिन्तनीयम् । पर्यवसाने च नमस्कारपूर्वक कायोत्सर्गः समापनीयः । एताः सर्वा पट्टिका हिन्दीभाषायामधस्ताद् विलोकनीयाः ।

इति श्रीविश्वविख्यात-जगद्बल्लभ-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषाकलितललित-कलापाऽऽलापक-प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-श्रीशाह-छत्रपतिकोल्हापुरराजप्रदत्त ‘जैनशास्त्राचार्य’ पदभूषित कोल्हापुर-राजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-घासीलाल-व्रतिविचिताया श्रीश्रमणसूत्रस्य मुनि-तोषण्याख्याया व्याख्याया प्रथम सामायिका-ख्यमभ्ययन समाप्तम् ॥ १ ॥

મેં સ્વાધ્યાય ન કિયા ગયા હો (૧૨), અસ્વાધ્યાયમે સ્વાધ્યાય કિયા ગયા હો (૧૩) । સ્વાધ્યાયસમય મેં સ્વાધ્યાય નહીં કિયા ગયા હો (૧૪) । ‘તસ્સ મિચ્છામિ દુઃખડ’ વહ પાપ મેરા નિષ્ફલ હો ॥

અસ્વાધ્યાય કે વિષયમે આગે કોષ્ઠક દિયા જાતા હૈ-

સ્વાધ્યાય કર્યો હોય (૧૧) કાલમા નાધ્ય ન કર્યો ન હોય (૧૨) અસ્વાધ્યાયમા સ્વાધ્યાય કર્યો હોય (૧૩) સ્વાધ્યાયના સમયમા સ્વાધ્યાય ન કર્યો હોય (૧૪)
“તસ્સ મિચ્છામિ દુઃખડ” તે માફ પાપ નિષ્ફલ થાઓ

અસ્વાધ્યાયના વિષયમા આગળ કોષ્ઠક આપેલુ છે

२०	उद्यस्सयस्सअतोओराल्लियशरीरे (उपाश्रयस्यान्तरौदारिकशरीरम्)	स्थानक के अदर पवेन्द्रियका कलेवर पडा हो	जिस स्थानक में	जब तक पडा रहे	"
२५	महापुण्णिमा ५ (महापूर्णिमा)	१ अषाढी २ भाद्रपदी ३ आश्विनी ४ कार्तिकी ५ चैत्री	सब जगह	८ पहर	"
३०	महापडिकए ५ (महाप्रतिपदः)	श्रावण वदि १, आश्विन वदि १ कार्तिक वदि १, मार्गशीर्ष वदि १, वैशाख वदि १ (५ महा पूर्णिमा के दूसरे रोज)	सब जगह	८ पहर	"
३४	सङ्गा (सध्या) ४	प्रभात १ दुपहर २ साझ ३ अर्धरात्रि ४	सब जगह	१ मुहूर्त (आधा मुहूर्त पहले का आधा मुहूर्त पीछे का)	दशवैकालि- कादि न पढ़े

॥ इति अस्वाध्याययन्त्रम् ॥



१०	रयउग्याय (रजउद्धात)	सब दिवाओंमें धूलका छा जाना	"	"	सूत्रन पढे
११	अद्दी (अस्थि)	हाड मनुष्य तिर्यच का	१०० हाथ मनुष्य का ६० हाथ तिर्यचका हाड होतो।	मनुष्य के हाड की अवधि १२ वर्ष	"
१२	मस (मास)	मास मनुष्य-तिर्यच का	मनुष्य का १०० हाथ तिर्यच का ६० हाथ	३ पहर	"
१३	सोणिय (शोणित)	लोही मनुष्य ^१ तिर्यच ^२ का तथा प्रसव ^३ का	१०० हाथ २६० हाथ ३ सातघरों के अंदर यदि बीचमें रस्ता न पडता हो	१५३ पहर ३ कन्या प्रसव ८ अहोरात्र पुत्र प्रसव ७ अहोरात्र	"
१४	असुइ सामन्त (अशुचि सामन्त)	अशुचि	जहा दीखे, गध आवे.	जब तक रहे	"
१५	सुसाण सामन्त (इमशान सामन्त)	इमशान	चारों तरफ सौ सौ (१००) हाथ	सर्ग काल	"
१६	रायपडण (राजपतन)	राजाका अवसान	जहा तक उसका राज्य हो।	नया राजा बैठे तब तक	"
१७	रायबुगह ^१ (राजविग्रह)	राजाओं की लडाई	उपनगर नगर के समीप	जब तक होवे	"
१८	चदोचराग (चद्रोपराग)	चन्द्रमा का ग्रहण	सब जगहमें	४।८।१२ पहर	"
१९	सुरोचराग (सूर्योपराग)	सूर्य का ग्रहण	सब जगहमें	४।८।१६ पहर	"

बोल्हो होऊ, काल थकी पहर रात्रि गर्या पीछे गाढे गाढे शब्द बोल्हो होऊ, भाव थकी रागद्वेष से बोल्हो होऊ, गुण यकी सवर गुण, दूसरी भाषासमिति के विषय जो कोई पाप दोष लाग्यो होय तो देवसिय सबधी तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

तीसरी एषणासमिति के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय तो आलोक, द्रव्य थकी सोले उदगमणका दोष, सोले उत्पातका दोष, दश एषणाका दोष इन बयालीश दोष सहित आहार पाणि लायो होऊ, क्षेत्र थकी दो कोश उपरात लेजाईने भोगव्यो होय काल यकी पहला पहर को छेला पहर में भोगव्यो होऊ, भाव थकी पाच माडलाका दोष न टाल्या होय गुण यकी सवरगुण, तीसरी एषणा समिति के विषय जो कोई पाप दोष लाग्यो होऊ तो देवसिय सम्बन्धी तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

चौथी आयाणभंडमत्तनिक्खेवणासमिति के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय तो आलोक, द्रव्य यकी भाण्डोपकरण अजयणा से लीधा होय अजयणा से रख्या होय, क्षेत्र यकी गृहस्थके घर आगणे रख्या होय, काल यकी कालोकाल पडिलेहणा न की होय, भाव यकी ममता मृडाँ सहित भोगव्या होय, गुण यकी सवर गुण, चौथी समिति के विषय जो कोई पाप दोष लाग्यो होय तो देवसिय सम्बन्धी तस्स मिच्छामि दुक्कड ॥ ४ ॥

पाचवी उच्चार-पासवण-खेल-जल्लु- सिंघाण-परिद्धावाणिया समिति के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय ते आलोक, द्रव्य थकी ऊँची नीची जगह परठव्यो होय, क्षेत्र यकी गृहस्थ के घर आंगणे परठव्यो होय, काल थकी दिनको बिना देखे रातको बिना पूजे परठव्यो होय, भाव यकी जाता आवसही आवसही, न करी होय, परिठवते पहले शक्रेन्द्र महाराज की आज्ञा नहीं ली होय, थोडो पूजी ने घणो परिठव्यो होय, परठनेके बाद तीनवार वोसिरे वोसिरे न किन्हो होय, आवता निःसही निःसही न करी होय, ठिकाणे आईने काउसग्ग न कर्यो होय, गुणथकी सवरगुण,

दर्शनसम्यक्त्वादिपट्टिका—

दसणसमत्त परमत्थसथो वा सुदिट्ठपरमत्थसेवण वावि वावन्नकुदसण-
वज्जणा इयसमत्तसद्दणा सम्मत्तस्स पच अडयारा पेयाला जाणियव्वा न समाय-
रियव्वा, तजहा-सका कखा वितिगिच्छा परपासडपससा परपासडसथवो वा
(ते म्हरा समकितरूप रत्नपदार्थ के विषय मिथ्यात्वरूप रजोमल लागो होय,
तो) तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

(टिप्पणी—दर्शनसम्यक्त्वम् ; तत्र दर्शनं जिनमताभिरोचनम्, तदेव
सम्यक्त्वम्, परमार्थसस्तवो वा=परमार्थः जीवादिस्वरूपम्, तस्य सस्तवः परिचयो
बोध इत्यर्थः, सुदृष्टपरमार्थसेवना वापि, तत्र सुदृष्टैः अतीन्द्रियार्थदर्शिभिः सर्वज्ञै-
रुपदिष्टः परमार्थः=जीवादिस्वरूप तस्य सेवना आसेवनम् ; व्यापन्नकुदर्शनवर्जना-
तत्र व्यापन्न=विनष्ट दर्शन=सम्यक्त्वयेषां ते व्यापन्नदर्शनाः, कुदर्शनाः=कुत्सित दर्श-
नमसद्भावनिरूपणादिरूप येषां ते कुदर्शना, तेषां वर्जना व्यापन्नकुदर्शनवर्जना,
वान्तसम्यक्त्वानां मिथ्यादृष्टीनां च ससर्गवर्जनमित्यर्थः । इति सम्यक्त्वश्रद्धानम् ।
सम्यक्त्वस्य पञ्च अतिचाराः पेयाला=प्रधानानि ज्ञातव्या न समाचरितव्याः ।
'पेयाल' इति प्रधानार्थको देशीय शब्दः । तत्रथा-शङ्का=जिनवचनेषु सदेह-
करणम् । काङ्क्षा=परदर्शनाभिलाषरूपा । विचिकित्सा=तपःसयमाराधनफल
प्रति सशयः । परपापण्डप्रशसा=परधर्मप्रशसाकरणम्, परपापण्डसस्तवो वा पर-
धर्मपरिचयरूपम् ॥)

पहिली इरियासमिति के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो
होय तो आलोक, द्रव्य थकी छ काया का जीव जोइने न चाल्यो
होऊ, क्षेत्र थकी साढातीन हाथ प्रमाणे जोइने न चाल्यो होऊ,
काल थकी दिन को देखे बिना रात को पूजे बिना चाल्यो होऊ,
भाव थकी उपयोग सहित जोइने न चाल्यो होऊ, गुण थकी
सवरगुण, पहिली इरियासमिति के विषय जो कोई पाप दोष लाग्यो
होय तो देवसिध सम्पन्धि तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

दूसरी भाषासमिति के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो
होय तो आलोक, द्रव्य थकी भाषा कर्कशकारी, कठोरकारी, निश्चय-
कारी, हिंसाकारी, ठेदकारी, भेदकारी, परजीव को पीडाकारी, सावज्र-
सव्वपापकारी कूडी मिश्र भाषा बोल्यो होऊ, क्षेत्र थकी रस्ते चालता

बोल्हो होऊ, काल थकी पहर रात्रि गर्या पीछे गाढे गाढे शब्द बोल्हो होऊ, भाव थकी रागद्वेष से बोल्हो होऊ, गुण थकी सवर गुण, दूसरी भाषासमिति के विषय जो कोई पाप दोष लाग्यो होय तो देवसिय सबधी तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

तीसरी एषणासमिति के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय तो आलोऊ, द्रव्य थकी सोले उदगमणका दोष, सोले उत्पातका दोष, दश एषणाका दोष इन बयालीश दोष सहित आहार पाणि लायो होऊ, क्षेत्र थकी दो कोश उपरात लेजाईने भोगव्यो होय काल थकी पहेला पहर को छेला पहर में भोगव्यो होऊ, भाव थकी पांच माडलाका दोष न टाल्या होय गुण थकी सवरगुण, तीसरी एषणा समिति के विषय जो कोई पाप दोष लाग्यो होऊ तो देवसिय सबन्धी तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

चोथी आयाणमंडमत्तनिक्खेवणासमिति के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय तो आलोऊ, द्रव्य थकी भाण्डोपकरण अजयणा से लीधा होय अजयणा से रख्या होय, क्षेत्र थकी गृहस्थके घर आगणे रख्या होय, काल थकी कालोकाल पडिलेहणा न की होय, भाव थकी ममता मृडाँ सहित भोगव्या होय, गुण थकी सवर गुण, चोथी समिति के विषय जो कोई पाप दोष लाग्यो होय तो देवसिय सम्बन्धी तस्स मिच्छामि दुक्कड ॥ ४ ॥

पाचवी उच्चार-पासवण-खेल-जल्ल- सिंघाण-परिद्धावाणिया समिति के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय ते आलोऊ, द्रव्य थकी ऊची नीची जगह परठव्यो होय, क्षेत्र थकी गृहस्थ के घर आगणे परठव्यो होय, काल थकी दिनको बिना देखे रातको बिना पूजे परठव्यो होय, भाव थकी जाता आवसही आवसही, न करी होय, परिठवते पहले शक्रेन्द्र महाराज की आज्ञा नहीं ली होय, थोडो पूजी ने घणो परिठव्यो होय, परठनेके बाद तीनवार वोसिरे वोसिरे न किन्हो होय, आवता नि.सही निभ्सही न करी होय, ठिकाणे आईने काउसग्ग न कर्यो होय, गुण थकी सवरगुण,

पाचवी समिति के विषय जो कोई पाप दोष लाग्यो होय तो देवसिय सम्बन्धि तस्य मिच्छामि दुक्कड ॥ ५ ॥

मनगुप्ति के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय तो आलोक, वचन आरभ, सारभ, समारभ, विषय, कषाय के विषय खोटो मन प्रवर्तव्यो होय तो देवसिय सम्बन्धि तस्य मिच्छामि दुक्कड । १ ।

वचनगुप्ति के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय तो आलोक, वचन आरभ, सारभ, समारभ, राजकथा, देशकथा, स्त्रीकथा, भक्तकथा इन चार कथा में से कोई कथा की होय तो देवसिय सम्बन्धि तस्स मिच्छामि दुक्कड । २ ।

कायागुप्ति के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय तो आलोक, काया आरभ, सारभ, समारभ, विना पूज्या अजयणापणे असावधानपणे हाथपग पसारया होय, सकोच्या होय, विना पूज्या भीतादिक को ओटींगणो (सहारो) लीधो होय तो देवसिय सम्बन्धि तस्स मिच्छामि दुक्कड । ३ ।

पृथ्वीकाय में मिट्टी, मरडो, खडी, गेरु, हिंगलू, हडताल, हडमचि, लूग, भोडल, पत्थर इत्यादि पृथ्वीकाय के जीवों की विराधना की होय तो देवसिय सम्बन्धि तस्स मिच्छामि दुक्कड । १ ।

अप्पकाय मे ठार को पाणी, ओस को पाणी, हीम को पाणी, घडा को पाणी, तलाव को पाणी, निवाण को पाणी, सकालको पाणी, मिश्र पाणी, वर्षाद को पाणी इत्यादि अप्पकाय के जीवों की विराधना की होय तो देवसिय सम्बन्धि तस्स मिच्छामि दुक्कड । २ ।

तेउकाय मे खीरा, अगीरा, भोभल, भडसाल, झाल, दूटती झाल, बिजली, उल्कापात इत्यादि तेउकाय के जीवों की विराधना की होय तो देवसिय सम्बन्धि तस्स मिच्छामि दुक्कड । ३ ।

वाउकाय में उक्कलियावाय, मडलियावाय, घणवाय, घणगू-जवाय, तणवाय, शुद्धवाय, सपटवाय, बीजणे करी, तालिकरी,

चमटीकरी, इत्यादि वाउकाय के जीवों की विराधना की होय तो देवसिय सम्बन्धि तस्स मिच्छामि दुक्कड । ४ ।

वनस्पति काय में हरी, तरकारी, बीज, अंकुरा, कण, कपास, गुम्मा, गुच्छा, लत्ता, लीलण, फूलण, इत्यादि वनस्पतिकाय के जीवों की विराधना की होय तो देवसिय सम्बन्धि तस्स मिच्छामि दुक्कड । ५ ।

वेन्द्रिय में लट, गिंडोला, अलसिया, शख, सखोलिया, कोडी, जलोक, इत्यादि वेन्द्रिय जीवों की विराधना की होय तो देवसिय सम्बन्धि तस्स मिच्छामि दुक्कड । १ ।

तेन्द्रिय में कीडी, मकोडी, जू, लीख, चांचण, माकण, गजाई, खजूरीया, उधई, धनेरिया इत्यादि तेन्द्रिय जीवों की विराधना की होय तो देवसिय सम्बन्धी तस्स मिच्छामि दुक्कड । २ ।

चतुरिन्द्रिय में तीड, पतगिया, मक्खी, मच्छर, भवरा, तिगोरी, कसारी, विच्छु इत्यादि चतुरिन्द्रिय जीवों की विराधना की होय तो देवसिय सम्बन्धि तस्स मिच्छामि दुक्कड । ३ ।

पचेन्द्रिय में जलचर, थलचर, खेचर, उरपर, भुजपर, सन्नी, असन्नी, गर्भज, समुर्च्छिम, पर्याप्ता, अपर्याप्ता, इत्यादि पचेन्द्रिय जीवों की विराधना की होय तो देवसिय सम्बन्धी तस्स मिच्छामि दुक्कड । ४ ।

पहिला महाव्रत के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय तो आलोक, (१) इन्धथावरकाय (२) बम्भथावरकाय (३) सिप्पथावरकाय (४) सम्मतीथावरकाय (५) पायावचथावरकाय (६) जगमकाय, द्रव्य से इनकी हिंसा की होय, क्षेत्र से समस्त लोक में, काल से जावजीवतक, भाव से तीन करण तीन योग से पहिला महाव्रत के विषय जो कोई पाप दोष लाग्यो होय तो देवसिय सम्बन्धी तस्स मिच्छामि दुक्कड ॥ १ ॥

दूसरा महाव्रत के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय तो आलोक, कोहावा, लोहावा, भयावा, हासावा, कीडा, कुतुहलकारी, द्रव्य से झूठ बोल्यो होऊ, क्षेत्र से समस्त लोक में, काल से

पाचवी समिति के विषय जो कोई पाप दोष लाग्यो होय तो देवसिय सम्बन्धि तस्य मिच्छामि दुक्कड ॥ ५ ॥

मनगुप्ति के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय तो आलोक, वचन आरभ, सारभ, समारभ, विषय, कषाय के विषय खोटो मन प्रवर्तव्यो होय तो देवसिय सम्बन्धि तस्य मिच्छामि दुक्कड । १ ।

वचनगुप्ति के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय तो आलोक, वचन आरभ, सारभ, समारभ, राजकथा, देशकथा, स्त्रीकथा, भक्तकथा इन चार कथा में से कोई कथा की होय तो देवसिय सम्बन्धि तस्स मिच्छामि दुक्कड । २ ।

कायागुप्ति के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय तो आलोक, काया आरभ, सारभ, समारभ, विना पूज्या अजयणापणे असावधानपणे हाथपग पसारया होय, सकोच्या होय, विना पूज्या भीतादिक को ओटींगणो (सहारो) लीधो होय तो देवसिय सम्बन्धि तस्स मिच्छामि दुक्कड । ३ ।

पृथ्वीकाय मे मिट्टी, मरडो, खडी, गेरु, हिंगलू, हडताल, हडमचि, लूग, मोडल, पत्थर इत्यादि पृथ्वीकाय के जीवों की विराधना की होय तो देवसिय सम्बन्धि तस्स मिच्छामि दुक्कड । १ ।

अप्काय में ठार को पाणी, ओस को पाणी, हीम को पाणी, घडा को पाणी, तलाव को पाणी, निवाण को पाणी, सकालको पाणी, मिश्र पाणी, वर्षाद को पाणी इत्यादि अप्पकाय के जीवों की विराधना की होय तो देवसिय सम्बन्धि तस्स मिच्छामि दुक्कड । २ ।

तेउकाय में खीरा, अगीरा, भोभल, भडसाल, झाल, दूटती झाल, विजली, उत्कापात इत्यादि तेउकाय के जीवों की विराधना की होय तो देवसिय सम्बन्धि तस्स मिच्छामि दुक्कड । ३ ।

वाउकाय में उक्कलियावाय, मडलियावाय, घणवाय, घणगू-जवाय, तणवाय, शुद्धवाय, सपटवाय, वींजणे करी, तालिकरी,

(९) लोभ (१०) राग (११) द्वेष (१२) कलह (१३) अभ्याख्यान (१४) पैशुन्य (१५) परपरिवाद (१६) रति अरति (१७) मायामोसो (१८) मिथ्यादर्शनशाल्य ये अद्वारह पाप सेव्या होय, सेवाया होय, सेवता प्रत्ये भलो जाण्यो होय तो देवसिय सम्बन्धी तस्स मिच्छामि दुक्खड ।

पाचमूलगुणमहाव्रत के विषय जो कोई पाप दोष लाग्यो होय तो देवसिय सम्बन्धी तस्स मिच्छामि दुक्खड । इस उत्तरगुण पचक्खाण के विषय जो कोई पाप दोष लाग्यो होय तो देवसिय सम्बन्धी तस्स मिच्छामि दुक्खड । तेतीस आशातना में से गुरु की बडों की कोई भी आशातना हुई हो तो देवसिय सम्बन्धी तस्स मिच्छामि दुक्खड ।

सूचना-इसके पीछे 'इच्छामि ठामि काउसग्ग' का पाठ बोलना, इस प्रकार ये सभी पाठ मौन रहकर प्रथम अध्ययन (आवश्यक) के ध्यान में बोलने का है, एव तीसरा अध्ययन (आवश्यक) के बाद श्रमणसूत्र के पहले चौथे अध्ययन के आदि में खड़े होकर स्पष्ट उच्चारणपूर्वक बोला जाता है । (इसी प्रकार प्रथम आवश्यक के ध्यान में और तीसरे आवश्यक के बाद चौथे आवश्यक के आदि में जो निन्यानवे अतिचार गृहस्थ बोलते हैं उन्हें आवश्यकसूत्र के अन्त के परिशिष्ट में देखें)

इति प्रथम अध्ययन सम्पूर्ण

जावजीव तक, भाव से तीन करण तीन योग से दूसरा महाव्रत के विषय जो कोई पाप दोष लाग्यो होय तो देवसिय सम्बन्धी तस्स मिच्छामि दुक्कड ॥ २ ॥

तीसरा महाव्रत के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय तो आलोक, देव अदत्त, गुरु अदत्त, राजा अदत्त, गाथापति अदत्त, साधर्मि अदत्त, द्रव्य से इनकी चोरी की होय, क्षेत्र से समस्त लोक में, काल से जावजीवतक, भाव से तीन करण तीन योग से तीसरा महाव्रत के विषय जो कोई पाप दोष लाग्यो होय तो देवसिय सम्बन्धी तस्स मिच्छामि दुक्कड ॥ ३ ॥ -

चौथा महाव्रत के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय तो आलोक, कामराग, स्नेहराग, दृष्टिराग, देवता सम्बन्धी, मनुष्य सम्बन्धी, तिर्यच सम्बन्धी, द्रव्य से काम भोग सेव्या होय, क्षेत्र से समस्त लोक में, काल से जावजीवतक, भाव से तीन करण तीन योग से चौथा महाव्रत के विषय कोई पाप दोष लाग्यो होय तो देवसिय सम्बन्धी तस्स मिच्छामि दुक्कड ॥ ४ ॥ -

पाचवा महाव्रत के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय तो आलोक, सचित्त परिग्रह, अचित्त परिग्रह, मिश्र परिग्रह, द्रव्य से छति वस्तु पर मूर्छा की होय, पर वस्तु की इच्छा की होय, सूई कुसग धातु-मात्र परिग्रह राख्यो होय, क्षेत्र से समस्त लोक में, काल से जावजीव तक, भाव से तीन करण तीन योग से पाचवा महाव्रत के विषय जो कोई पाप दोष लाग्यो होय तो देवसिय सम्बन्धी तस्स मिच्छामि दुक्कड ॥ ५ ॥

छठा रात्रि-भोजन के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय तो आलोक, चार आहार असण, पाण, खाइन, साइम, सीत-मात्र, लेप मात्र, रातवासी राख्यो होय, रखायो होय, राखता प्रत्ये भलो जाण्यो होय तो देवसिय सम्बन्धी तस्स मिच्छामि दुक्कड ॥ ६ ॥

अठारह पाप (१) प्राणातिपात (२) मृषावाद (३) अदत्तादान (४) मैथुन (५) परिग्रह (६) क्रोध (७) मान (८) माया

ઋષભમજિત ચ વન્દે, સમ્ભવમભિનન્દન ચ સુમર્તિ ચ ।
 પદ્મપ્રભ સુપાર્શ્વ, જિન ચ ચન્દ્રપ્રભ વન્દે ॥ ૨ ॥
 સુવિધિ ચ પુષ્પદન્ત, શીતલ-શ્રેયાસ-વાસુપૂજ્યૌશ્ચ ।
 વિમલમનન્ત ચ જિન, ધર્મ શાન્તિ ચ વન્દે ॥ ૩ ॥
 કુન્થુમર ચ મહિ, વન્દે મુનિસુવ્રત નમિજિન ચ ।
 વન્દેઽરિષ્ટનેમિ પાર્શ્વ તથા વર્દમાન ચ ॥ ૪ ॥
 એવ મયાઽભિષ્ટુતા, વિદ્યુતરજોમલાઃ પ્રઢીળજરામરણાઃ ।
 ચતુર્વિંશતિરપિ જિનવરા, -સ્તીર્થકરા મે પ્રસીદન્તુ ॥ ૫ ॥
 કીર્તિત-વન્દિત-મહિતા, ય એતે લોકસ્યોત્તમાઃ સિદ્ધાઃ ।
 આરોગ્યબોધિલાભ, સમાપ્તિવરમુત્તમ દદતુ ॥ ૬ ॥
 ચન્દ્રેભ્યો નિર્મલતરા, આદિત્યેભ્યોઽધિક પ્રકાશકરાઃ ।
 સાગરવરગમ્भीરાઃ, સિદ્ધાઃ સિદ્ધિ મમ દિશન્તુ ॥ ૭ ॥

॥ ટીકા ॥

લોકસ્યોદ્ધોતકરાનર્હતશ્ચતુર્વિંશતિમપિ કેવલિનો જિનાન્ ધર્મતીર્થકરાન્
 કીર્તયિષ્યામીતિ સમ્બન્ધઃ । લોકચતે=દૃશ્યતે કેવલજ્ઞાનાદિત્યેનેતિ, લોકપતે=

હસ પ્રકાર પહેલે અધ્યયન મેં સાવધયોગ કી નિવૃત્તિરૂપ
 સામાયિક કા નિરૂપણ કરકે અવ ચતુર્વિંશતિસ્તવ (ચતુર્વીસત્યવ)
 રૂપ હસ દુસરે અધ્યયનમેં સમસ્ત સાવધ યોગોં કી નિવૃત્તિ કે
 ઉપદેશ હોનેસે સમક્તિ કી વિશુદ્ધિ તથા જન્માન્તરમેં ભી બોધિલાભ
 ઔર સપૂર્ણ કર્મોં કે નાશ કે કારણ હોને સે પરમ ઉપકારી તીર્થકરોં
 કા ગુણ કીર્તન કરતે હૈ—‘લોકસ્સ’ ઇત્યાદિ ।

જો કેવલજ્ઞાનરૂપી સૂર્ય સે અથવા પ્રમાણ (જ્ઞાન) કે દ્વારા
 દેખા જાય ઉસે લોક કહતે હૈ, ઉસ પચાસ્તિકાયરૂપ લોક કો

એ પ્રમાણે પહેલા અધ્યયનમા સાવધયોગની નિવૃત્તિ રૂપ સામાયિકનું
 નિરૂપણ કરીને હવે ચતુર્વિંશતિસ્તવ (ચતુર્વીસત્યવ) રૂપ આ બીજા અધ્યયનમા
 સમસ્ત સાવધ યોગોની નિવૃત્તિનો ઉપદેશ હોવાથી સમક્તિની વિશુદ્ધિ તથા
 જન્માન્તરમા પણ બોધિલાભ અને સપૂર્ણ કર્મોના નાશક હોવાથી પરમ ઉપકારી
 તીર્થકરોના ગુણ-કીર્તન કરે છે “લોકસ્સ” ઇત્યાદિ

જે કેવલજ્ઞાનરૂપી સૂર્યથી અથવા પ્રમાણ (જ્ઞાન) વડે જોઈ શકાય તેને
 ‘લોક’ કહે છે, તે પચાસ્તિકાયરૂપ લોકને પ્રવચનરૂપી દીવા વડે પ્રકાશ

। अथ द्वितीयमध्ययनम् ।

इत्थं प्रथममध्ययने सावद्ययोगोपरमस्वरूप सामायिकमभिधाय संप्रति चतुर्विंशतिस्तुतिरूपेऽस्मिन् द्वितीयेऽध्ययने सर्वसावद्ययोगविरत्युपदेशस्य लब्ध-
बोधिपरिशुद्धेर्भूयो बोध्युपलब्धेः प्रधानकर्मक्षयस्य च हेतुत्वेनाऽवसरसङ्गतेस्तीर्थक-
राणां गुणसङ्कीर्तनमधिक्रियते—‘लोगस्से’ त्यादि ।

॥ मूलम् ॥

लोगस्स उज्जोयगरे, धम्मतित्थयरे जिणे ।
अरिहते कित्तइस्स, चउवीसपि केवली ॥ १ ॥
उसभमजिअ च वदे, सभवमभिणदण च सुमइं च ।
पउमप्पह सुपास, जिण च चदप्पहं वदे ॥ २ ॥
सुविहि च पुप्फदत्त, सीयल सिज्जस वासुपुज्ज च ।
विमलमणत्त च जिण, धम्म सत्ति च वदामि ॥ ३ ॥
कुथु अर च मल्लि, वदे सुणिसुव्वय नमिजिण च ।
वदामि रिट्ठनेमि, पास तह वद्धमाण च ॥ ४ ॥
एव मए अभिथुआ, विहूयरयमल्ला पहीणजरमरणा ।
चउवीसपि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयतु ॥ ५ ॥
कित्तिव-वदिय-महिया, जे ए लोगस्स उत्तमा सिद्धा ।
आरुग्गवोहिलाभ, समाहिवरमुत्तम दितु ॥ ६ ॥
चदेसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहिय पयासयरा ।
सागरवरगभीरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसतु ॥ ७ ॥

॥ छाया ॥

लोकस्योद्द्योतकरान्, धर्मतीर्थकरान् जिनान् ।

अहं त्वं कीर्तयिष्यामि, चतुर्विंशतिमपि केवलिन ॥ १ ॥

ઋપભમજિત ચ વન્દે, સમ્ભવમભિનન્દન ચ સુમર્તિ ચ ।
 પદ્મપ્રભ સુપાર્શ્વ, જિન ચ ચન્દ્રપ્રભ વન્દે ॥ ૨ ॥
 સુત્રિધિ ચ પુષ્પદન્ત, શીતલ-શ્રેયાસ-વાસુપૂજ્યાશ્ચ ।
 વિમલમનન્ત ચ જિન, ધર્મે શાન્તિ ચ વન્દે ॥ ૩ ॥
 કુન્થુમર ચ મહિ, વન્દે મુનિસુવ્રત નમિજિન ચ ।
 વન્દેઽરિષ્ટનેર્મિ પાર્શ્વ તથા વર્દ્ધમાન ચ ॥ ૪ ॥
 એવ મયાઽભિષ્ટુતા, વિધૂતરજોમલાઃ પ્રહીણજરામરણાઃ ।
 ચતુર્વિંશતિરપિ જિનવરા, -સ્તીર્થકરા મે પ્રસીદન્તુ ॥ ૫ ॥
 કીર્તિત-વન્દિત-મહિતા, ય એતે લોકસ્યોત્તમાઃ સિદ્ધાઃ ।
 આરોગ્યવોધિલાભ, સમાધિવ્રતસુત્તમ દદતુ ॥ ૬ ॥
 ચન્દ્રેભ્યો નિર્મલતરા, આદિત્યેભ્યોઽધિક પ્રકાશકરાઃ ।
 સાગરવરગમ્भीરાઃ, સિદ્ધાઃ સિદ્ધિ મમ દિશન્તુ ॥ ૭ ॥

॥ ટીકા ॥

લોકસ્યોદ્ધોતકરાનર્હતશ્ચતુર્વિંશતિમપિ કેવલિનો જિનાન્ ધર્મતીર્થકરાન્
 કીર્તયિષ્યામીતિ સમ્બન્ધ । લોકચતે=દૃશ્યતે કેવલજ્ઞાનાદિત્યેનેતિ, લોકચતે=

હસ પ્રકાર પહેલે અધ્યયન મેં સાવધયોગ કી નિવૃત્તિરૂપ
 સામાયિક કા નિરૂપણ કરકે અથ ચતુર્વિંશતિસ્તવ (ચતુર્વીસત્યવ)
 રૂપ હસ દુસરે અધ્યયનમેં સમસ્ત સાવધ યોગોં કી નિવૃત્તિ કે
 ઉપદેશ હોનેસે સમકિત કી વિશુદ્ધિ તથા જન્માતરમેં ભી વોધિલાભ
 ઓર સપૂર્ણ કર્મોં કે નાશ કે કારણ હોને સે પરમ ઉપકારી તીર્થકરોં
 કા ગુણ કીર્તન કરતે હૈ—‘લોકસસ’ ઇત્યાદિ ।

જો કેવલજ્ઞાનરૂપી સૂર્ય સે અથવા પ્રમાણ (જ્ઞાન) કે દ્વારા
 દેખા જાય ઉસે લોક કહતે હૈ, ઉસ પચાસ્તિકાયરૂપ લોક કો

એ પ્રમાણે પહેલા અધ્યયનમા સાવધયોગની નિવૃત્તિ રૂપ સામાયિકનું
 નિરૂપણ કરીને હવે ચતુર્વિંશતિસ્તવ (ચતુર્વીસત્યવ) રૂપ આ બીજા અધ્યયનમા
 સમસ્ત સાવધ યોગોની નિવૃત્તિને ઉપદેશ હોવાથી સમકિતની વિશુદ્ધિ તથા
 જન્માતરમા પણ વોધિલાભ અને સપૂર્ણ કર્મોના નાશક હોવાથી પરમ ઉપકારી
 તીર્થ કરોના ગુણ-કીર્તન કરે છે “લોકસસ” ઇત્યાદિ

જે કેવલજ્ઞાનરૂપી સૂર્યથી અથવા પ્રમાણ (જ્ઞાન) વડે જોઈ શકાય તેને
 ‘લોક’ કહે છે, તે પચાસ્તિકાયરૂપ લોકને પ્રવચનરૂપી દીવા વડે પ્રકાશ

પતિચીક્ષ્યતે પ્રમાણપલેનેતિ વા લોકઃ^૧ પચ્ચાસ્તિકાયપિશિષ્ટ આકાશવિશેષઃ ।
યદુક્ત મગત્ત્યામ્—

કિમિયં મતે ? લોએત્તિ પવુચ્ચઈ ? ગોયમા ? પચત્થિકાયા एस ण पव-
त्तिए लोएत्ति पवुच्चई ' इत्यादि ।

તસ્ય લોકસ્ય (કર્મણિ પઠ્ઠી) ઉદયોતનમુદયોતસ્ત કર્તુ શીલ યેષાં ત
ઉદ્યોતકરાસ્તાન્ કેવલાડલોકેન પ્રવચનપ્રદીપેન વા નિર્વિલ્લોખપ્રકાશકાનિ-
ત્યર્થઃ । 'ધર્મ'ઈતિ-દુર્ગતિપતિતમાત્માનં ધારયતિ=શુભસ્થાને પ્રાપયતીતિ ધર્મઃ^૩
તીર્યતે=પાર નીયતેડનેનેતિ *તીર્થ=પ્રવચનમ્, ધર્મપ્રગ્નતીર્થે, ધર્મતીર્થે, દ્રવ્યરૂપસ્ય

પ્રવચનરૂપી દીપક દ્વારા ઉદયોત કરનેવાલે, પ્રાણિયોં કો
સસાર કે દુ.ર્લોં સે છુડાકર સુગતિ મેં ધારણ કરનેવાલે, ધર્મરૂપ
તીર્થ કે સ્થાપક, રાગાદિકર્મશત્રુઓં કો જીતકર કેવલજ્ઞાન યુક્ત હોકર
વિરાજમાન એસે ત્રીવીસોં શ્રી અરિહન્ત ભગવાન કી સ્તુતિ કરતા હૈં ।

ઘઠા પર 'લોક' શબ્દ સે પચ્ચાસ્તિકાય કા ગ્રહણ હૈં ઓર
આકાશ ઓ પચ્ચાસ્તિકાય કા હી ભેદ હૈં, તથા અલોક ઓ આકાશ
સ્વરૂપ હૈં અતઃપ્રવ 'લોક' પદ સે હી લોક ઓર અલોક દોનોં કા
ગ્રહણ હોને સે કેવલજ્ઞાન કી અનન્તતામે કોઈ વાધા નહીં આસકતી ।

કરવાવાળા, અને પ્રાણીઓને સસારના દુખોથી છોડાવીને સુગતિમા ધારણ
કરવાવાળા, ધર્મરૂપી તીર્થના સ્થાપક, ગંગા આદિ કર્મશત્રુઓને જીતી લઈને
કેવલજ્ઞાનયુક્ત થઈને વિરાજમાન એવા ત્રીવીસ અરિહન્ત ભગવાનની સ્તુતિ કરે છું

અહિં "લોક" શબ્દથી પચ્ચાસ્તિકાયનું ગ્રહણ કરેલું છે અને આકાશ
પણ પચ્ચાસ્તિકાયનો જ ભેદ છે તથા અલોક પણ આકાશસ્વરૂપ છે એ કારણે
"લોક" પદથી જ લોક અને અલોક બન્નેનું ગ્રહણ થઈ શકે છે, તેથી કેવલ જ્ઞાનની
અનન્તતામા કોઈ પ્રકારે હાનિ થઈ શકતી નથી

૧- 'લોક દર્શને' અસ્માત્ 'અકર્ત્તરિ ચ કારકે સજ્ઞાયામ્ (૩ । ૩ ।
૧૮) ઇતિ કર્મણિ ઘનુ ।

૨- કૃત્વો હેતુતાચ્છીલ્યાનુલોમ્યેષુ (૩ । ૨ । ૨૦) ઇતિ કર્ત્તરિ ટ ।

૩- 'ધૃત્ત ધારણે' અસ્માદૌણાદિકો મનપ્રત્યસ્તેન 'ધર્મઃ' ઇતિ સિદ્ધમ્ ।

૪- 'તીર્થમ્'—'તૃપ્લવનસન્તરણયો ' અસ્માદૌણાદિકસ્થન્ 'ઋત્ત્વદ્વાતો'
(૭ । ૧ । ૧૦૦) ઇતીત્વમ્, 'હલિ ચ' (૮ । ૨ । ૭૭) ઇત્યુપધાદીર્ઘ' ।

નત્યાદેઃ શાક્યાદિપ્રણીતસ્યાધર્મપ્રધાનસ્ય ચ તીર્થસ્ય પરિહારાર્થ ધર્મગ્રહણમ્,
ધર્મતીર્થ કર્તુ શીલ યેષા તે ધર્મતીર્થકરાસ્તાન્ । જયતિ=અપનયતિ રાગાદિકર્મશત્રૂ-
નિતિ, જયતિ=કેવલજ્ઞાનાદિયુક્તતયા સર્વોત્કર્ષેણ રાજત ઇતિ વા 'જિનઃ', 'અરિહતે'
ઇતિ વ્યાખ્યાતોઽર્હચ્છબ્દાર્થઃ, 'નમોઽરિહતાણ ' ઇત્યત્ર, 'ચતુવીસ' ઇતિ સ
ખ્યાન્તરવ્યવચ્છેદાય, અપિશબ્દોઽવધારણાર્થો મહાવિદેહક્ષેત્રસ્થકેવલિભગ-
વદ્ગ્રહણાર્થશ્ચ, લોકશબ્દેન પશ્ચાસ્તિકાયગ્રહણાદાકાશસ્ય ચ પશ્ચાસ્તિકાયાન્તઃ-
પાતિત્વાદલોકસ્યાપ્યાકાશસ્વરૂપતયા લોકપદેનૈવ લોકાલોકયોર્ગ્રહણમિતિ ન
કેવલોદ્યોતસ્યાપરિમિતત્વહાનિઃ, લોકોદ્યોતકરત્વમવધિવિભજ્ઞજ્ઞાનિષુ ચન્દ્રસૂર્યા-
દિષ્વપિ ચાસ્ત્યત ઉક્ત 'ધર્મતિત્થયરે' ઇતિ, ધર્માર્થ નિમ્નેષુ નત્યાદિષ્વવ-
તરણાય યે તીર્થ (ઘટ્ટ—' ઘાટ ' ઇતિભાષાપ્રસિદ્ધ) કુર્વન્તિ તેષ્વતિપ્રસન્નવારણાય
'લોગસ્સ ઉજ્જોયગરે' ઇતિ, લોકોદ્યોતકરત્વ ધર્મતીર્થકરત્વ ચ દર્શનાન્તરમત
કલ્પિતેષ્વપિ જ્ઞાનિષુ—

લોક કે ઉદ્યોતકર અવધિજાની, વિભજ્ઞજાની તથા ચન્દ્રસૂર્યાદિક ભી
હોતે હૈં, અતઃએવ ઉનકી નિવૃત્તિ કે લિયે 'ધર્મતિત્થયર' પદ દિયા
હૈ । નદી તાલાવ આદિ જલાશયોં મે ઉતરને કે લિયે ધર્માર્થ તીર્થ—
ઘાટ બનાનેવાલે ભી ધર્મતીર્થકર કહલા સકતે હૈ, ઉનકા યદા ગ્રહણ
ન હો ઇસલિયે 'લોગસ્સ ઉજ્જોયગરે' વિશેષણ દિયા હૈ, લોક કે
ઉદ્યોતકર તથા ધર્મતીર્થકર અન્યમત કે જાની ભી હો સકતે હૈં,
જૈસા કિ અન્ય શાસ્ત્રોં મેં કહા ગયા હૈ—

લોકમા પ્રકાશ કરનાર અવધિજાની, વિભજ્ઞજાની તથા ચન્દ્રસૂર્યાદિક પણ હોય
છે એ માટે તેની નિવૃત્તિ કરવા " ધર્મતિત્થયરે " પદ આપેલું છે નહીં-તાલાવ આદિ
જલાશયોમા ઉતરવા માટે ધર્માર્થ તીર્થ-ઘાટ બનાવવાવાળા પણ ધર્મતીર્થકર
કહેવાય છે તેનો સ્વીકાર અહિં નહિ થવા માટે "લોગસ્સ ઉજ્જોયગરે" વિશેષણ
આપ્યું છે લોકના પ્રકાશક તથા ધર્મતીર્થકર અન્ય મતના જ્ઞાની પણ હોઈ
શકે છે, જેવી રીતે અન્ય શાસ્ત્રોમા કહ્યું છે કે—

૧- 'જિનઃ' 'જિ અભિભવે' અસ્માત્ 'જિ જયે' અસ્માદ્વા વાહુલકા-
દોળાદિકો ન પ્રત્યય. ।

પ્રતિવીક્ષ્યતે પ્રમાણપ્રલેનેતિ વા લોકઃ^૧ પચાસ્તિકાયપ્રિશિષ્ટ આકાશવિશેષઃ ।
યદુક્ત ભગવત્યામ્—

કિમિય ભતે ? લોએત્તિ પવુચ્ચઈ ? ગોયમા ? પચત્થિકાયા एस ण पव-
त्तिष् लोएत्ति पवुच्चई ' इत्यादि ।

તસ્ય લોકસ્ય (કર્મણિ પટ્ટી) ઉદ્યોતનમુદ્યોતસ્ત કર્તુ શીલ યેષાં ત
ઉદ્યોતકરામ્તાન્ કેવલાડલોકેન પ્રવચનપ્રદીપેન વા નિરિલ્લલોકપ્રકાશકાનિ
ત્યર્થઃ । 'ધર્મ'ઈતિ-દુર્ગતિપતિતમાત્માન ધારયતિ=શુભસ્થાને પ્રાપયતીતિ ધર્મઃ^૩
તીર્યતે=પાર નીયતેડનેનેતિ *તીર્થે=પ્રવચનમ્, ધર્મપ્રધાન તીર્થે, ધર્મતીર્થે, દ્રવ્યરૂપસ્ય

પ્રવચનરૂપી દીપક દ્વારા ઉદ્યોત કરનેવાલે, પ્રાણિયોં કો
સસાર કે દુઃખો સે છુડાકર સુગતિ મેં ધારણ કરનેવાલે, ધર્મરૂપ
તીર્થ કે સ્થાપક, રાગાદિકર્મશત્રુઓં કો જીતકર કેવલજ્ઞાન યુક્ત હોકર
વિરાજમાન એસે નૌવીસોં શ્રી અરિહન્ત ભગવાન કી સ્તુતિ કરતા હૂં ।

યહા પર 'લોક' શબ્દ સે પચાસ્તિકાય કા ગ્રહણ હૈ ઓર
આકાશ મી પચાસ્તિકાય કા હી ભેદ હૈ, તથા અલોક મી આકાશ
સ્વરૂપ હૈ અતઃપ્રત્ય 'લોક' પદ સે હી લોક ઓર અલોક દોનોં કા
ગ્રહણ હોને સે કેવલજ્ઞાન કી અનન્તતામે કોઈ વાધા નહી આસકતી ।

કરવાવાળા, અને પ્રાણીઓને સસારના દુખોથી છોડાવીને સુગતિમા ધારણ
કરવાવાળા, ધર્મરૂપી તીર્થના સ્થાપક, રાગ આદિ કર્મશત્રુઓને છુટી લઈને
કેવલજ્ઞાનયુક્ત થઈને વિરાજમાન એવા એવીસ અરિહન્ત ભગવાનની સ્તુતિ કરે છું

અહિં "લોક" શબ્દથી પચાસ્તિકાયનું ગ્રહણ કરેલું છે અને આકાશ
પણ પચાસ્તિકાયનો જ ભેદ છે તથા અલોક પણ આકાશસ્વરૂપ છે એ કારણે
"લોક" પદથી જ લોક અને અલોક બન્નેનું ગ્રહણ થઈ શકે છે, તેથી કેવલ જ્ઞાનની
અનન્તતામા કોઈ પ્રકારે હાનિ થઈ શકતી નથી

૧- 'લોક દર્શને' અસ્માત્ 'અર્કર્ચરિ ચ કારકે સજ્ઞાયામ્ (૩ । ૩ ।
૧૮) ઇતિ કર્મણિ ઘન્ ।

૨- કૃત્વો હેતુતાચ્છીલ્યાનુલોમ્યેષુ (૩ । ૨ । ૨૦) ઇતિ કર્ત્વરિ ટ. ।

૩- 'ધૃત્વ ધારણે' અસ્માદોનાદિકો મનુષ્યસ્તેન 'ધર્મ' ઇતિ સિદ્ધમ્ ।

૪- 'તીર્થમ્'—'તૃપ્તવનસન્તરણયો' અસ્માદોનાદિકસ્થન્ 'ઋત્વ ઇદ્ધાતો
(૭ । ૧ । ૧૦૦) ઇતીત્વમ્, 'હલિ ચ' (૮ । ૨ । ૭૭) ઇત્યુપધાદીર્ઘ' ।

નયાદેઃ શ્રાવ્યાદિપ્રણીતસ્યાધર્મપ્રધાનસ્ય ચ તીર્થસ્ય પરિહારાર્થ ધર્મગ્રહણમ્,
ધર્મતીર્થ કર્તુ શીલ યેષા તે ધર્મતીર્થકરાસ્તાન્ । જયતિ=અપનયતિ રાગાદિકર્મશત્રુ-
નિતિ, જયતિ=કેવલજ્ઞાનાદિયુક્તતયા સર્વોત્કર્ષેણ રાજત ઇતિ વા 'જિનઃ, 'અરિહતે'
ઇતિ વ્યાખ્યાતોઽર્હચ્છબ્દાર્થઃ, 'નમોઽરિહતાણ ' ઇત્યત્ર, 'ચત્વીસ ' ઇતિ સ-
ખ્યાન્તરવ્યવચ્છેદાય, અપિશબ્દોઽવધારણાર્થો મહાત્રિદેહક્ષેત્રસ્યકેવલિભગ-
વદ્ગ્રહણાર્થશ્ચ, લોકશબ્દેન પञ्चाસ્તિકાયગ્રહણાદાકાશસ્ય ચ પञ्चाસ્તિકાયાન્તઃ-
પાતિત્વાદલોકસ્યાપ્યાકાશસ્વરૂપતયા લોકપદેનૈવ લોકાલોકયોર્ગ્રહણમિતિ ન
કેવલોદ્દ્યોતસ્યાપરિમિતત્વહાનિઃ, લોકોદ્દ્યોતકરત્વમવિવિભજ્ઞજ્ઞાનિષુ ચન્દ્રસૂર્યા-
દિષ્વપિ ચાસ્ત્યત ઉક્ત 'ધર્મતિત્થયરે' ઇતિ, ધર્માર્થ નિમ્નેષુ નયાદિષ્વવ-
તરણાય યે તીર્થ (ઘટ્ટ—' ઘાટ ' ઇતિભાષાપ્રસિદ્ધ) કુર્વન્તિ તેષ્વતિપ્રસજ્ઞવારણાય
'લોગસ્સ ઉજ્જોયગરે' ઇતિ, લોકોદ્દ્યોતકરત્વ ધર્મતીર્થકરત્વ ચ દર્શનાન્તરમત
કલ્પિતેષ્વપિ જ્ઞાનિષુ—

લોક કે ઉદ્યોતકર અવધિજાની, વિભજ્ઞજાની તથા ચન્દ્રસૂર્યાદિક ભી
હોતે હૈં, અતએવ ડનકી નિવૃત્તિ કે લિયે 'ધર્મતિત્થયર' પદ દિયા
હૈ । નદી તાલાવ આદિ જલાશયોં મેં ડતરને કે લિયે ધર્માર્થ તીર્થ-
ઘાટ બનાનેવાલે ભી ધર્મતીર્થકર કહલા સકતે હૈં, ડનકા યહા ગ્રહણ
ન હો ઇસલિયે 'લોગસ્સ ઉજ્જોયગરે' વિશેષણ દિયા હૈ, લોક કે
ઉદ્યોતકર તથા ધર્મતીર્થકર અન્યમત કે જાની ભી હો સકતે હૈં,
જૈસા કિ અન્ય શાસ્ત્રોં મેં કહા ગયા હૈ—

લોકમા પ્રકાશ કરનાર અવધિજાની, વિભજ્ઞજાની તથા ચન્દ્રસૂર્યાદિક પણ હોય
છે એ માટે તેની નિવૃત્તિ કરવા " ધર્મતિત્થયરે " પદ આપેલું છે નહીં-તાલાવ આદિ
જલાશયોમા ઉતરવા માટે ધર્માર્થ તીર્થ-ઘાટ બનાવવાવાળા પણ ધર્મતીર્થકર
કહેવાય છે તેનો સ્વીકાર અહિં નહિ થવા માટે "લોગસ્સ ઉજ્જોયગરે" વિશેષણ
આપ્યું છે લોકના પ્રકાશક તથા ધર્મતીર્થકર અન્ય મતના જ્ઞાની પણ હોઈ
શકે છે, જેવી રીતે અન્ય શાસ્ત્રોમા કહ્યું છે કે—

૧- 'જિન.' 'જિ અભિમવે' અસ્માત્ 'જિ જયે' અસ્માદ્વા ગાહુલકા-
દૌણાદિકો નઃ પ્રત્યય. ।

પ્રતિવીક્ષ્યતે પ્રમાણરહેનેતિ વા લોકઃ^૧ પચ્ચાસ્તિકાયવિશિષ્ટ આકાશવિશેષઃ ।
યદુક્ત ભગવત્યામ્—

કિમિય મતે ? લોએત્તિ પવુચ્છઈ ? ગોયમા ? પચત્થિકાયા एस ण पव-
त्तिए लोएत्ति पवुच्छई ' इत्यादि ।

તસ્ય લોકસ્ય (કર્મણિ પઠી) ઉદયોતનમુદયોતસ્ત વર્તુ શીલ ચેપાં ત
ઉદયોતકરાસ્તાન્ કેવલાડલોકેન પ્રવચનપદીપેન યા નિરિલલલોકપ્રકાશકાનિ-
ત્યર્થઃ । 'ધર્મ'ઈતિ-દુર્ગતિપતિતમાત્માન ધારયતિ=શુભસ્થાને પ્રાપયતીતિ ધર્મઃ^૩
તીર્યતે=પાર નીયતેડનેનેતિ *તીર્થ=પ્રવચનમ્, ધર્મપ્રધાન તીર્થ, ધર્મતીર્થ, દ્રવ્યરૂપસ્ય

પ્રવચનરૂપી દીપક દ્વારા ઉદયોત કરનેવાલે, પ્રાણિયોં કો
સસાર કે દુઃખો સે છુડાકર સુગતિ મેં ધારણ કરનેવાલે, ધર્મરૂપ
તીર્થ કે સ્થાપક, રાગાદિકર્મશત્રુઓં કો જીતકર કેવલજ્ઞાન યુક્ત હોકર
વિરાજમાન એસે નૌવીસોં શ્રી અરિહન્ત ભગવાન કી સ્તુતિ કરતા હૂં ।

યહા પર 'લોક' શબ્દ સે પચ્ચાસ્તિકાય કા ગ્રહણ હૈ ઓર
આકાશ મી પચાસ્તિકાય કા હી ભેદ હૈ, તથા અલોક મી આકાશ-
સ્વરૂપ હૈ અતઃપ્ચ 'લોક' પદ સે હી લોક ઓર અલોક દોનોં કા
ગ્રહણ હોને સે કેવલજ્ઞાન કી અનન્તતામે કોઈ વાધા નહીં આસકતી ।

કરવાવાળા, અને પ્રાણીઓને સસારના હુ ખોથી છોડાવીને સુગતિમા ધારણ
કરવાવાળા, ધર્મરૂપી તીર્થના સ્થાપક, રાગ આદિ કર્મશત્રુઓને જીતી લઈને
કેવલજ્ઞાનયુક્ત થઈને વિરાજમાન એવા એવીસ અરિહન્ત ભગવાનની સ્તુતિ કરે છું

અહિં "લોક" શબ્દથી પચાસ્તિકાયનું ગ્રહણ કરેલું છે અને આકાશ
પણ પચાસ્તિકાયનો જ ભેદ છે તથા અલોક પણ આકાશસ્વરૂપ છે એ કારણે
"લોક" પદથી જ લોક અને અલોક બન્નેનું ગ્રહણ થઈ શકે છે, તેથી કેવલ જ્ઞાનની
અનન્તતામા કોઈ પ્રકારે હાનિ થઈ શકતી નથી

૧- 'લોક દર્શને' અસ્માત્ 'અર્કર્તરિ ચ કારકે સજ્ઞાયામ્ (૩ । ૩ ।
૧૮) ઇતિ ક'ણિ ઘજ્ ।

૨- કૃત્તો હેતુતાચ્છીલ્યાત્તુલોમ્યેષુ (૩ । ૨ । ૨૦) ઇતિ કર્ત્તરિ ટ ।

૩- 'ધૃજ ધારણે' અસ્માદૌણાદિકો મન્પત્યસ્તેન 'ધર્મ' ઇતિ સિદ્ધમ્ ।

૪- 'તીર્થમ્'—'તૃપ્લવનસત્તરણયો' અસ્માદૌણાદિકસ્થન્ 'ઋત્તરિદ્ધાતોઃ
(૭ । ૧ । ૧૦૦) ઇતીત્વમ્, 'હલિ ચ' (૮ । ૨ । ૭૭) ઇત્યુપધાદીર્ઘઃ ।

જિનમનઃપર્યયજિનચ્છદ્વસ્થવીતરાગાણા વ્યવચ્છેદાય । ઇત્યમુક્તગુણવિશિષ્ટા
અર્હન્ત એવ સમવન્તિ નેતરે, પુનઃ ‘અરિહતે’ ઇત્યુક્તિવિશેષ્યત્વાભિપ્રાયેણેતિ
કેચિત્, વસ્તુતસ્ત્વિહ તીર્થકરગુણોત્કીર્તનાધ્યયને ગુણોત્કીર્તનમેવ લક્ષ્ય, તથા ચ
તીર્થદ્વરાણા યે યે ગુણા યેન યેન શબ્દેન લક્ષ્યન્તે તેન તેન તેષા ગુણાના સ્કી-
ર્તન ક્રિયતે-ઇત્યપ્તિવિમહાપ્રાતિહાર્યાર્હત્વગુણોત્કીર્તનાર્થમુક્તમ્ ‘અરિહતે’ ઇતિ
એતેનૈવ ‘કેવલી’ ઇત્યપિ વ્યાર્યાત કૈવલ્યગુણવોધનાય તદુપાદાનાત્, એવ ચ
પદાન્તરનદર્હત્પદમપિ ગુણોત્કીર્તનાયૈવ નતુ વિશેષ્યત્વાય, વિશેષ્ય તુ ‘ધમ્મતિત્થયરે’
ઇત્યેવ પ્રાપ્તાવસરત્વાત્, તદપિ યથોક્તગુણોત્કીર્તનપુરસ્સરમેવ, યોગા-(વ્યુત્પત્ય)

‘શ્રુતજિન, અવધિજિન, મન.પર્યયજ્ઞાનજિન, તથા છદ્વસ્થ વીતરાગો
કી નિવૃત્તિ કી ગઈ હૈ । ડપર કહે હુએ સવ વિશેષણોં સે યુક્ત
અર્હન્ત હી હો સકતે હૈં ફિર ‘અરિહતે’ પદ જો કહા હૈ વહ
વિશેષ્યવાચક હૈ । અથવા ઇસ અધ્યયન મેં તીર્થકરોં કા ગુણ
વર્ણન ક્રિયા જાતા હૈ, ઇસ અવસ્થા મેં જિન ૨ શબ્દોં સે ડનકે
જો જો ગુણ પ્રકટ હો સકતે હૈં ડન ૨ શબ્દોં સે ડનકા ગુણ
વર્ણન કરના આવશ્યક હૈ અતએવ તીર્થદ્વર અષ્ટમહાપ્રાતિહાર્ય કે
અર્હ-યોગ્ય ખી હૈ, ઇસ વાતકો સમજાને કે લિયે ‘અરિહતે’ પદ
દિયા હૈ, અત ‘અર્હત્’ પદ ખી ગુણ વિશેષણ-વાચક હી હૈ, વિશેષ્ય-
વાચક ‘ધમ્મતિત્થયરે’ પદ હૈ, કિન્તુ ડસસે ખી ડપરોક્ત કથન કે
અનુસાર ગુણ કા વોધ હોતા હી હૈ, ક્યોંકિ પ્રકૃતિ પ્રત્યય કે

અવધિજિન, મન પર્યયજ્ઞાનજિન તથા છદ્વસ્થ વીતરાગોની નિવૃત્તિ કહેવામા આવી
છે ઉપર કહેલાં સર્વ વિશેષણોથી યુક્ત અર્હન્ત જ હોઈ શકે છે ફરી “અરિહતે”
પદ જે કહેવામા આવ્યું છે તે વિશેષ્યવાચક છે અથવા આ અધ્યયનમા તીર્થ કરેના
ગુણ વર્ણન કરવામા આવે છે એ અવસ્થામા જે જે શબ્દોથી તેમના જે જે ગુણો
પ્રગટ થઈ શકે તે તે રાખેા વડે તેમનું વર્ણન કરવું જરૂરી છે, એ કારણથી તીર્થ-
કર અષ્ટમહાપ્રાતિહાર્યને અર્હ-યોગ્ય પણ છે એ વાતને સમજાવવા માટે “અરિહતે”
પદ આપેલું છે અર્થાત્ “અર્હત્” પદ પણ ગુણ-વિશેષણ-વાચક જ છે
વિશેષ્યવાચક ‘ધમ્મતિત્થયરે’ પદ છે પરંતુ તેનાથી પણ, ઉપરના કથન અનુસાર
ગુણોનો વોધ થાય જ છે કારણ કે પ્રકૃતિપ્રત્યયના બલથી થવાવાળા

“ જ્ઞાનિનો ધર્મતીર્થમ્ય, કર્તારિઃ પરમ પદમ્ ।

ગત્વાઽઽગન્છન્તિ ભૂયોઽપિ, મય તીર્થનિકારતઃ ॥ ૧ ॥ ” ઇતિ,

તદુક્તરીત્યા સમ્ભવતિ તદ્વ્યાપ્તયે ‘ જિણે ’ ઇતિ, નહિ તે જિના= રાગાદિશત્રુજેતારસ્તદુક્તપુનરાગમનાદેવ, યતો રાગાદિશત્રુજયમન્તરેણ કર્મબીજા ઽદાહાદુઃક્રવત્યેવ મયાકુર, તદુક્તમિતરત્રાપિ—

“ અજ્ઞાનપાશુપિઢિત, પુરાતન કર્મબીજમવિનાશિ ।

તૃણાજલાભિપિન્ન, મુશ્વતિ જન્માકુર જન્તો ॥ ૧ ॥ ” ઇતિ ।

જિનાનિત્યેવ વાચ્યે ‘ લોગસ્સ ઉજ્જોયગરે ’ ઇત્યાયુક્તિઃ શ્રુતજિનાવધિ

‘ ધર્મ તીર્થ કે કરને વાલે જ્ઞાની ધર્મ કી હાનિ હોતે દેખ કર પરમ પદ પર આરુઢ હોકર મી પુન સમાર મેં લૌટ આતે હે ॥૧॥ ’

उनका ग्रहण न हो इसलिये ‘जिणे’ विशेषण दिया है, क्योंकि कि रागादि शत्रु को जीते बिना कर्मबीज का नाश नहीं होता, और कर्मबीज का नाश हुए बिना भवरूपी अकुर का नाश नहीं होता है, जैसा कि अन्यत्र भी कहा है—

‘ અજ્ઞાનરૂપી મિટ્ટી કે અન્દર પડા હુઆ, પ્રાણી કા પુરાના કર્મબીજ તૃણારૂપ જલસે સીચા જાકર જન્મરૂપ અકુર કો પેદા કરતા હે ॥ ૧ ॥ ’

‘ જિણે ’ પદ કહ કર મી ‘ લોગસ્સ ઉજ્જોયગરે ’ કહને સે

‘ ધર્મતીર્થના કરવાવાળા જ્ઞાની ધર્મની હાનિ થતી હોય તે બેઠને પરમ પદ પર આરુઢ થઈને પણ ફરી સંસારમા પાછા આવે છે ॥ ૧ ॥ ’

તેમનું ગ્રહણ ન થાય તે માટે “જિણે” વિશેષણ આપેલું છે કારણ કે રાગાદિ શત્રુઓને જીત્યા વિના કર્મબીજનો નાશ થતો નથી, અને કર્મબીજના નાશ થયા વિના ભવસંસારથી અકુરનો નાશ થતો નથી, જેવી રીતે બીજા સ્થળે પણ કહેવામા આવ્યું છે કે —

“અજ્ઞાનરૂપી માટીની અદર પડેલા પ્રાણીના પુરાણા કર્મબીજ તૃણા રૂપ જલથી સિંચત પામીને જન્મરૂપ અકુરને ઉત્પન્ન કરે છે ॥ ૧ ॥

“જિણે” પદ કહીને પણ “લોગસ્સ ઉજ્જોયગરે” કહેવાથી શ્રુતજિન,

જિનમનઃપર્યયજિનચ્છદ્વસ્થવીતરાગાણા વ્યવચ્છેદાય । ઇત્યમુક્તગુણવિશિષ્ટા
અર્હન્ત એવ સમ્ભવન્તિ નેતરે, પુનઃ ‘અરિહતે’ ઇત્યુક્તિવિશેષ્યત્વાભિપ્રાયેણેતિ
કેચિત્, વસ્તુતસ્ત્વિહ તીર્થકરગુણોત્ક્રીર્તનાઽયયને ગુણોત્ક્રીર્તનમેવ લક્ષ્ય, તથા ચ
તીર્થદ્વરાણા યે યે ગુણા યેન યેન શબ્દેન લક્ષ્યન્તે તેન તેન તેષા ગુણાના સક્રી-
ર્તન ક્રિયતે-ઇત્યપ્તિવિમહાપ્રાતિહાર્યાર્હત્વગુણોત્ક્રીર્તનાર્થમુક્તમ્ ‘અરિહતે’ ઇતિ
એતેનૈવ ‘કેવલી’ ઇત્યપિ વ્યાખ્યાત કૈવલ્યગુણબોધનાય તદુપાદાનાત્, એવ ચ
પદાન્તરવદર્હત્પદમપિ ગુણોત્ક્રીર્તનાયૈવ નતુ વિશેષ્યત્વાય, વિશેષ્ય તુ ‘ધમ્મતિત્થયરે’
ઇત્યેવ પ્રાપ્તાવસરત્વાત્, તદપિ યથોક્તગુણોત્ક્રીર્તનપુરસ્સરમેવ, યોગા-(વ્યુત્પત્ય)

‘શ્રુતજિન, અવધિજિન, મન.પર્યયજ્ઞાનજિન, તથા છદ્વસ્થ વીતરાગોં
કી નિવૃત્તિ કી ગઈ હૈ । ડપર કહે હુએ સબ વિશેષણોં સે યુક્ત
અર્હન્ત હી હો સકતે હૈં ફિર ‘અરિહતે’ પદ જો કહા હૈ વહ
વિશેષ્યવાચક હૈ । અથવા હસ અધ્યયન મેં તીર્થકરોં કા ગુણ
વર્ણન કિયા જાતા હૈ, હસ અવસ્થા મેં જિન ૨ શબ્દોં સે ડનકે
જો જો ગુણ પ્રકટ હો સકતે હૈં ડન ૨ શબ્દોં સે ડનકા ગુણ
વર્ણન કરના આવશ્યક હૈ અતએવ તીર્થદ્વર અષ્ટમહાપ્રાતિહાર્ય કે
અર્હ-યોગ્ય હી હૈં, હસ વાતકો સમજાને કે લિયે ‘અરિહતે’ પદ
દિયા હૈ, અત ‘અર્હત્’ પદ હી ગુણ વિશેષણ-વાચક હી હૈ, વિશેષ્ય-
વાચક ‘ધમ્મતિત્થયરે’ પદ હૈ, કિન્તુ ડસસે હી ડપરોક્ત કથન કે
અનુસાર ગુણ કા બોધ હોતા હી હૈ, ક્યોંકિ પ્રકૃતિ પ્રત્યય કે

અવધિજિન, મન પર્યયજ્ઞાનજિન તથા છદ્વસ્થ વીતરાગોની નિવૃત્તિ કહેવામા આવી
છે ઉપર કહેલાં સર્વ વિશેષણોથી યુક્ત અર્હન્ત જ હોઈ શકે છે ફરી “અરિહતે”
પદ જે કહેવામા આવ્યું છે તે વિશેષ્યવાચક છે અથવા આ અધ્યયનમા તીર્થ કરોના
ગુણ વર્ણન કરવામા આવે છે એ અવસ્થામા જે જે શબ્દોથી તેમના જે જે ગુણો
પ્રગટ થઈ શકે તે તે શબ્દો વડે તેમનું વર્ણન કરવું જરૂરી છે, એ કારણથી તીર્થ-
કર અષ્ટમહાપ્રાતિહાર્યને અર્હ-યોગ્ય પણ છે એ વાતને સમજાવવા માટે “અરિહતે”
પદ આપેલું છે અર્થાત્ “અર્હત્” પદ પણ ગુણ-વિશેષણ-વાચક જ છે
વિશેષ્યવાચક ‘ધમ્મતિત્થયરે’ પદ છે પરંતુ તેનાથી પણ, ઉપરના કથન અનુસારે
ગુણોનો બોધ થાય જ છે કારણ કે પ્રકૃતિપ્રત્યયના બલથી થવાવાળા

ર્થપરિત્યાગે પ્રમાણાભાવાત્ । અસ્તુ ગાઠ્ઠત એવ પ્રિશેષ્યત્વ તીર્થકરપર્યાયત્વાત્, ન
વય તત્રાઽઽગ્રહિલાઃ, કિન્તુ પર્યાયત્વેઽપ્યર્થતીર્થકરકેવલિનામુપાદાન તત્તચ્છબ્દ-
સામર્થ્યગમ્યાર્થપ્રદર્શનાર્થમેવેત્યેવ કેવલ વ્રૂમઃ ।

અત્ર કેચિત્-નન્તુ સમ્ભવવ્યભિચારાભ્યા સ્યાદ્વિશેષણમર્થવત્-યથા નીલો
ઘટઃ, કૃષ્ણા ગૌરિત્યાદિષુ, સમ્ભવવ્યભિચારાભાવે વિશેષણમનર્થક-યથા શીતો-
ઽનલઃ, શ્યામો ભ્રમર इत्यादिषु, તતથાત્ર કેવલિનિતિ ધર્મતીર્થકરવિશેષણશ્યામો

બલસે હોનેવાલે અર્થકા ત્યાગ કરના ન્યાયવિરુદ્ધ છે, ‘કેવલી’ પદકે
દેનેકા મી યહી તાત્પર્ય સમજના ચાહિયે ।

યહાં પર શકા હોતી છે કિ-‘વિશેષણ’ સમ્ભવ અથવા
વ્યભિચાર હોને પર દિયા જાતા છે, જૈસે-‘નીલે ઘડે કો લાઓ’
યહા પર ઘડે કા નીલા હોના સમ્ભવ મી છે, ઓર યદિ કેવલ
‘ઘડેકો લાઓ’ એસા કહતે હૈં તો કાલે પીલે આદિ ઘડોં કા
વ્યભિચાર મી છે, ઇસલિયે યહા ‘નીલા’ વિશેષણ દેના
ઉચિત છે । ઓર જહા પર સમ્ભવ તથા વ્યભિચાર ન હો વહા
વિશેષણ કા દેના વ્યર્થ હોતા છે, જૈસે ‘ઠઢી અગ્નિ’ યહા અગ્નિ મેં
ઠઢાપન સમ્ભવ નહીં છે, એસે હી ‘કાલા ભૌરા’ યહા પર ભૌરે મેં
કાલેપન કે સિવાય દૂસરે વર્ણ કા વ્યભિચાર નહીં છે,

અર્થનો ત્યાગ કરવો તે ન્યાયવિરુદ્ધ છે, “કેવલી” પદ આપવાનું કારણ પણ
ઉપર પ્રમાણે સમજી લેવું જોઈએ

અહિં એક શકા થવા સભવ છે કે વિશેષણ, સભવ અથવા વ્યભિચાર
થતો હોય તે સ્થળે આપવામા આવે છે, જેવી રીતે કે — ‘નીલા ઘડાને લાવો’
અહિં ઘડાનુ નીલા હોવા પણ સભવિત છે, અને જો માત્ર ‘ઘડાને લાવો’ એ
પ્રમાણે કહે તો કાળો, પીળો આદિ ઘડાઓનો વ્યભિચાર પણ છે એટલા
માટે અહિં ‘નીલો’ વિશેષણ આપ્યું તે ઉચિત છે અને જ્યા આગળ સભવ
તથા વ્યભિચાર થતો નથી ત્યા વિશેષણ આપવું તે વ્યર્થ થાય છે જેવી રીતે
કે “શીતલ અગ્નિ” અહિં અગ્નિમા શીતલતાનો સભવ નથી, તેવી જ રીતે
“કાલા ભ્રમરા” અહિં ભ્રમરામા કાળાપણા વિના બીજા રંગનો વ્યભિ
ચાર નથી એટલા માટે એવા વિશેષણો આપવા વ્યર્થ છે તે કારણથી

भ्रमर इतिवदितरव्यावर्त्तकत्वाभावादपार्थम्, धर्मतीर्थकराणां केवलित्वाव्य-
भिचारादित्याशङ्क्य-‘केवलिन एव यथोक्तस्वरूपा धर्मतीर्थकरा नान्ये’ इति
नियमादर्थत्वेन स्वरूपज्ञानायेदं विशेषणमित्याहुः ।

कीर्त्तयिष्यामि=अनुपदं स्तोष्यामि, वस्तुतस्तु आर्पत्वादत्र लट्स्थानिको
लृट्, स्तौमीत्यर्थः । अपिः पूर्वापरसमुच्चया (सङ्ग्रहा)-र्थः । ‘उसभ’ इति ।
ऋषभादीनां सर्वेषां द्वितीयान्तानां वन्दनक्रिययाऽन्वयः, ‘उसभ’ इति ऋषभ-
वृषभशब्दयोरुभयोरपि भवति, ततश्च गत्यर्थधातूनां ज्ञानार्थत्वात्, ऋषति=जानाति
लोकालोकस्वरूपमिति, ऋषति=गच्छति परमं पदमिति, शरणैपिभिर्भव्यजनै-
र्ऋष्यते=प्राप्यते इति वा ऋषभः । पक्षे वर्षति=पूरयति भव्यजनमनोरथानिति,

इसलिये ऐसे विशेषणों का देना व्यर्थ है, अतएव धर्मतीर्थकर
को ‘केवली’ विशेषण देना भौरे के काले विशेषण के समान
व्यर्थ है, क्यों कि धर्मतीर्थकर केवली ही होते हैं ।

इसका उत्तर यह है कि-‘केवली होने पर ही तीर्थङ्कर
धर्मतीर्थ के प्रवर्त्तक होते हैं छद्मस्थ अवस्था में नहीं, इस बात
को स्पष्ट करने के लिये ‘केवली’ विशेषण दिया गया है ॥ १ ॥

इस प्रकार चौबीस तीर्थङ्करों की स्तुति करने की सामान्य
रूपसे प्रतिज्ञा करके नामग्रहणपूर्वक विशेषरूप से स्तुति करते हैं,
जो लोकालोक के स्वरूप को जाननेवाले, परम पदको प्राप्त होने-
वाले भव्य जनों के आधारभूत तथा उनके मनोरथों को पूरा कर-

धर्मतीर्थकरने કેવલી વિશેષણ આપવું તે ભ્રમરને કાળાપણાનું વિશેષણ આપવા
પ્રમાણે વ્યર્થ છે, કેમ કે ધર્મતીર્થકર કેવલી જ હોય છે

આ શકાનો ઉત્તર એ છે કે —“કેવલી થયા પછી જ તીર્થકર ધર્મતીર્થના
પ્રવર્તક હોઈ શકે છે, છદ્મસ્થ-અવસ્થામાં થઈ શકતા નથી, એ વાતને સ્પષ્ટ કરવા
માટે ‘કેવલી’ વિશેષણ આપેલું છે ॥ ૧ ॥

એ પ્રમાણે ચોવીસ તીર્થકરોની સ્તુતિ કરવાની સામાન્યરૂપની પ્રતિજ્ઞા કરીને
નામગ્રહણપૂર્વક વિશેષરૂપથી સ્તુતિ કરે છે કે જે લોકાલોકના સ્વરૂપને જાણવા
વાળા, પરમ પદને પ્રાપ્ત થવાવાળા ભવ્યજીવોને આધારભૂત તથા તેમના
મનોરથોને પૂર્ણ કરવાવાળા, ધર્મરૂપી જાગીયાને પ્રવચનરૂપ જલનું સીંચન

ર્થપરિત્યાગે પ્રમાણાભાવાત્ । અસ્તુ તાઽર્હત એવં વિશેષ્યત્વ તીર્થકરપર્યાયત્વાત્, ન
વય તત્રાઽઽગ્રહિતાઃ, કિન્તુ પર્યાયત્વેઽપ્યર્હતીર્થકરકેવલિનામુપાદાન તત્તચ્છબ્દ-
સામર્થ્યગમ્યાર્થપ્રદર્શનાર્થમેવેત્યેવ કેવલ વ્રૂમઃ ।

અત્ર કેચિત્-નતુ સમ્ભવવ્યભિચારાભ્યા સ્યાદ્વિશેષણમર્થવત્-યથા નીલો
ઘટઃ, કૃષ્ણા ગૌરિત્યાદિષુ, સમ્ભવવ્યભિચારાભાવે વિશેષણમનર્થક-યથા શીતો
ઽનલઃ, શ્યામો ભ્રમર इत्यादिषु, તત્તથાત્ર કેવલિનઽતિ ધર્મતીર્થકરવિશેષણ શ્યામો
ઘલસે હોનેવાલે અર્થકા ત્યાગ કરના ન્યાયચિરુદ્ધ હૈ, ‘કેવલી’ પદકે
દેનેકા બી યહી તાત્પર્ય સમજના ચાહિયે ।

યહાં પર શકા હોતી હૈ કિ-‘વિશેષણ’ સમ્ભવ અથવા
વ્યભિચાર હોને પર દિયા જાતા હૈ, જૈસે-‘નીલે ઘડે કો લાઓ’
યહા પર ઘડે કા નીલા હોના સમ્ભવ બી હૈ, ઓર યદિ કેવલ
‘ઘડેકો લાઓ’ એસા કહતે હૈં તો કાલે પીલે આદિ ઘડોં કા
વ્યભિચાર બી હૈ, ઇસલિએ યહા ‘નીલા’ વિશેષણ દેના
ઉચિત હૈ । ઓર જહા પર સમ્ભવ નથા વ્યભિચાર ન હો વહા
વિશેષણ કા દેના વ્યર્થ હોતા હૈ, જૈસે ‘ઠઢી અગ્નિ’ યહા અગ્નિ મેં
ઠઢાપન સમ્ભવ નહી હૈ, એસે હી ‘કાલા ભૌરા’ યહા પર ભૌરે મેં
કાલેપન કે સિવાય દૂસરે વર્ણ કા વ્યભિચાર નહી હૈ,

અર્થનો ત્યાગ કરવો તે ન્યાયવિરુદ્ધ છે, “કેવલી” પદ આપવાનું કારણ પણ
ઉપર પ્રમાણે સમજી લેવું જોઈએ

અહિં એક શકા થવા સભવ છે કે વિશેષણ, સભવ અથવા વ્યભિચાર
થતો હોય તે સ્થળે આપવામા આવે છે, જેવી રીતે કે — ‘નીલા ઘડાને લાવો’
અહિં ઘડાનું નીલા હોવા પણ સભવિત છે, અને જો માત્ર ‘ઘડાને લાવો’ એ
પ્રમાણે કહે તો કાળો, પીળો આદિ ઘડાઓનો વ્યભિચાર પણ છે એટલા
માટે અહિં ‘નીલો’ વિશેષણ આપ્યું તે ઉચિત છે અને જ્યાં આગળ સભવ
તથા વ્યભિચાર થતો નથી ત્યાં વિશેષણ આપવું તે વ્યર્થ થાય છે જેવી રીતે
કે “શીતલ અગ્નિ” અહિં અગ્નિમા શીતલતાનો સભવ નથી, તેવી જ રીતે
“કાલા ભ્રમરા” અહિં ભ્રમરામા કાળાપણા વિના બીજા રંગનો વ્યભિ
ચાર નથી એટલા માટે એવા વિશેષણો આપવા વ્યર્થ છે તે કારણથી

ભ્રમર इतिवदितरव्यावर्त्तकत्वाभावादपार्थम्, धर्मतीर्थकराणा केवलित्वाव्य-
भिचारादित्याशङ्क्य-‘ केवलिन एव यथोक्तस्वरूपा धर्मतीर्थकरा नान्ये ’ इति
नियमादर्थत्वेन स्वरूपज्ञानायेद विशेषणमित्याहुः ।

कीर्त्तयिष्यामि=अनुपद स्तोष्यामि, वस्तुतस्तु आर्पत्वादत्र लट्स्थानिको
लृट्, स्तौमीत्यर्थ । अपिः पूर्वापरसमुच्चया (सङ्ग्रहा)-र्थः । ‘ उसभ ’ इति ।
ऋपभादीना सर्वेषा द्वितीयान्ताना वन्दनक्रिययाऽन्वयः, ‘ उसभ ’ इति ऋपभ-
वृपभशब्दयोरुभयोरपि भवति, ततश्च गत्यर्थधातूना ज्ञानार्थत्वात्, ऋपति=जानाति
लोकालोकस्वरूपमिति, ऋपति=गच्छति परम पदमिति, शरणैपिभिर्भव्यजनै-
र्ऋष्यते=प्राप्यते इति वा ऋपभ. । पक्षे वर्पति=पूरयति भव्यजनमनोरथानिति,

इसलिये ऐसे विशेषणों का देना व्यर्थ है, अतएव धर्मतीर्थकर
को ‘ केवली ’ विशेषण देना भारे के काले विशेषण के समान
व्यर्थ है, क्योंकि धर्मतीर्थकर केवली ही होते हैं ।

इसका उत्तर यह है कि-‘ केवली होने पर ही तीर्थङ्कर
धर्मतीर्थ के प्रवर्त्तक होते हैं छद्मस्य अवस्था में नहीं, इस बात
को स्पष्ट करने के लिये ‘ केवली ’ विशेषण दिया गया है ॥ १ ॥

इस प्रकार चौबीस तीर्थङ्करों की स्तुति करने की सामान्य
रूपसे प्रतिज्ञा करके नामग्रहणपूर्वक विशेषरूप से स्तुति करते हैं,
जो लोकालोक के स्वरूप को जाननेवाले, परम पदको प्राप्त होने-
वाले भव्य जनों के आधारभूत तथा उनके मनोरथों को पूरा कर-

ધર્મતીર્થકરને કેવલી વિશેષણ આપણુ તે ભમરાને કાળાપણાનું વિશેષણ આપવા
પ્રમાણે વ્યર્થ છે, કેમ કે ધર્મતીર્થકર કેવલી જ હોય છે

આ શકાનો ઉત્તર એ છે કે —“ કેવલી થયા પછી જ તીર્થકર ધર્મતીર્થના
પ્રવર્તક હોઈ શકે છે, છદ્મસ્થ-અવસ્થામાં થઈ શકતા નથી, એ વાતને સ્પષ્ટ કરવા
માટે ‘ કેવલી ’ વિશેષણ આપેલું છે ॥ ૧ ॥

એ પ્રમાણે ચોવીસ તીર્થકરોની સ્તુતિ કરવાની સામાન્યરૂપની પ્રતિજ્ઞા કરીને
નામગ્રહણપૂર્વક વિશેષરૂપથી સ્તુતિ કરે છે કે જે લોકલોકના સ્વરૂપને જાણવા
વાળા, પરમ પદને પ્રાપ્ત થવાવાળા ભવ્યજીવોને આધારભૂત તથા તેમના
મનોરથોને પૂર્ણ કરવાવાળા, ધર્મરૂપી બીજીયાને પ્રવચનરૂપ જલનું સીંચન

लस्य प्रभा पद्मप्रभा, पद्मप्रभेय प्रभा तत्तुल्यकोमलाद्गत्वात् यस्य स^१, यद्वा पद्मेपु=कमलेपु प्रभा यस्यासौ पद्मप्रभः=मूर्यस्तद्वद्विमलकेयलज्योतिषा भासमानत्वेन गौणलक्षणात्रलेन रूपकमल्पनया, अथवा गर्भस्थस्यास्य मातुः पद्मशय्या-दोहदः सञ्जातो यो देवेन पूरितस्तदुत्तरमसौ प्राभवदिति पद्मप्रभस्तम्, एष्वन्य-व्याख्याने पद्मोत्तर=पद्मशय्यादोहदोत्तर प्रभवतीति^२ व्युत्पत्तिः (६)। 'सुपास' सु=शोभनौ पार्श्वौ यस्य सः, यद्वा गर्भस्थस्यास्य माता सुपार्श्व=शोभनपार्श्ववती जाता तयोगात् सुपार्श्वस्तम् (७)। 'जिण' जिनम्। व्याख्यातो जिनपदार्थः।

सुमति के कारण जिनका 'सुमति' नाम रक्खा गया उन श्री सुमतिनाथ भगवान को । ६ ।

पद्म-कमल के समान प्रभा-कान्ति-वाले, अथवा पद्मों-कमलों में प्रभा-किरण है जिसकी वह हुवा पद्मप्रभ अर्थात् सूर्य, उसके समान कान्तिवाले, या जब भगवान गर्भ में थे तो इनकी माता को पद्मशय्या का दोहद (दोहला)हुआ, जिसको देवताने पूरा किया इस कारण पद्मप्रभ नामवाले भगवान को । ६ ।

देखने में सुडौल है पार्श्व (पसवाड़े) जिनके, अथवा जब ये गर्भ में थे तो इनकी माता गर्भ के प्रभावसे सुन्दर पार्श्व (पसवाड़े) वाली हुई, इसलिये गुणनिष्पन्न नामवाले श्री सुपार्श्वनाथ को ॥ ७ ॥

सुमतिना कारणे जेनु 'सुमति' नाम राखनामा आयु जेवा श्री सुमतिनाथ लगवाने ॥ ५ ॥

पद्म-कमल समान प्रभा-कान्तिवाला, अथवा पद्मों-कमलोंमा प्रभा-किरण छे जेनी ते थये। पद्मप्रभ अर्थात्-सूर्य, तेना समान कान्तिवाला, अथवा न्यारे, लगवान गर्भमा हुता त्यारे तेनी भानाने पद्मशय्याने होइले थयेले। जे देवताजे पूर्ण क्यो ते कारणथी "पद्मप्रभ" नामवाला लगवाने ॥ ६ ॥

जेवामा पार्श्व (पडभाने बाग) सुडोल- सरजे छे जेने। अथवा न्यारे ते गर्भमा हुता त्यारे गर्भमा प्रभावथी जेनी माता सुंदर पार्श्ववाला थया जेटला माटे गुण-निष्पन्न नामवाला श्री सुपार्श्वनाथ ने ॥ ७ ॥

१- पद्मप्रभ — 'सप्तम्युपमानपूर्वपदस्य बहुव्रीहिरुत्तरपदलोपश्च वक्तव्यः' इति वचनात्समास उत्तरपदलोपश्च खरमुखोष्ट्रमुखादिवत् ।

२- पद्मप्रभः— 'शाकपार्थिवादित्वात् 'उत्तर' शब्दस्य लोपे पृषोदरादित्वात्सिद्धिः' ॥

‘चदप्पह’ चन्दते=आहादते इति चन्द्रस्तस्य प्रभा चन्द्रप्रभा,=चन्द्र-
प्रमेव प्रभा विशुद्धलेश्यत्वाद् यस्यासौ, यद्वा गर्भावस्थायामस्य जनन्याश्चन्द्र-
प्रभापानदोहदोऽभवत्तत्सम्बन्धाच्चन्द्रप्रभस्तम् ‘चदामि’ वन्दे (८)। ‘सुविहि’ सुविधि=
सु=शोभनो विधिरनुष्ठान यस्य स*, यद्वा यद्दर्शनस्मरणादिना लोकाः सुविधयः=
सुभागा भवन्ति स*, अथवा गर्भस्थस्यास्य जननी सर्वेषु अभयदान-सुपात्रदान-
प्रियमाणप्राणिपरिमोचनादिविधिषु सातिशया शोभना=कुशला जाताऽतस्तत्रोगात्सु-
विधिस्त, ‘पुष्पदत्त’ सुवित्रेरेवेदमपर नाम विशिष्य परिचयार्थमुपनिबद्धम्,
स्वच्छत्वान्मनोहरत्वाच्च पुष्पाणीव, यद्वा नामैकदेशेन नामग्रहणात् पुष्पपदेन तत्कुञ्ज-
लाग्रस्य ग्रहणात् पुष्पकुञ्जलाग्राणीव दन्ता यस्यासौ पुष्पदन्तस्तम् (९)। ‘सीयल-

तथा चन्द्रमा के समान कान्तिवाले, या जब ये गर्भ में थे
तो इनकी माता को चन्द्रप्रभापान का दोहद हुआ, इस कारण
गुणनिष्पन्न नाम वाले श्रीचन्द्रप्रभ भगवान को ॥ ८ ॥

अच्छे अनुष्ठान वाले, या जिनके दर्शन स्मरण आदि से
प्राणी पूर्ण भाग्यवान् होते हैं ऐसे, अथवा जब ये गर्भ में थे तो
इनकी माता अभयदान, सुपात्रदान, मरते हुए प्राणियों को बचाना-
आदि धर्म की सभी विधियों में विशेषतया निपुणा हुई, इस
कारण सुविधिनाथ और पुष्प के समान स्वच्छ दाँतों की छटावाले
होने से पुष्पदन्त भी नाम है जिनका ऐसे भगवान को ॥ ९ ॥

तथा चन्द्रसमान कान्तिवाला अथवा ज्यारे तेओ गर्भमा हुता त्वादे
तेमनी माताने चद्रपान करवानु होहलो थयेलु ते कान्तिथी शुष्प-निष्पन्न नाम
वाला श्री चन्द्रप्रभ भगवानने ॥ ८ ॥

सारा अनुष्ठानवाला, अथवा जेना दर्शन स्मरण आदिथी प्राणी पूषु
भाग्यवान् थाय छे ओवा, अथवा ज्यारे तेओ गर्भमा हुता त्वादे तेमनी माता
सर्वविधिओ-कर्तव्योमा विशेष निपुषु थया आ कान्तिथी “सुविधिनाथ” अथवा
पुष्पसमान स्वच्छ दातनी पकितवाला होवाथी “पुष्पदन्त”-नाम पषु छे जेनु
ओवा भगवानने ॥ ९ ॥

सिञ्जस-वासुपुज्ज^१ च' शीतलश्च श्रेयासश्च वासुपूज्यश्चेत्येतेपामितरेतरयोगद्वन्द्वे शीतल-श्रेयास-वासुपूज्यास्तान् । तेष्वाधिव्याधिजसन्तापकलापनितान्तकान्त स्वान्तजन्तुजातकृते चन्द्रचन्दनादितोऽप्यपूर्वशीतलत्वात्, यद्वा शीतलशब्दस्य गुण वाचकत्वात् शीत=शैत्य कपायप्रशमनस्वरूप लाति=आदत्त इति, अथवाऽस्य भगवतेः पितुरेकदाऽतितीव्रः पित्तज्वरदाहः सञ्जातः स त्रिभिर्धैरुपचारैः कृतैरपि न शान्तिं प्राप्तः, -गर्भगते त्वस्मिन् भगवति देव्याः करकमलस्पर्शमात्रेणैवोपशान्त इति मातृद्वारा पितृज्वरदाहप्रशमनहेतुत्वात् शीतलस्तम् (१०) । सिञ्जस=श्रेयासम्=सकलभुवनहिताधायकत्वादतिशयेन प्रशस्य.=श्रेयान्, यद्वा श्रेयासावसौ=स्कन्धौ यस्य सः, अथैतत्पितृ राज्ञः पितृपरम्परामाप्ताया कस्याश्चिच्छ्रय्याया

-आधि-व्याधि से होने वाले समस्त सन्तापों को मिटाकर प्राणियों को चन्द्रमा चन्दन आदि से भी अधिक शीतल शान्ति को, या कपाय के उपशमरूप शीतलता को देने वाले, अथवा जब ये गर्भ में थे तो इनकी माता के कर-कमल का स्पर्श होते ही पिता का असाध्य दाहज्वर इनके प्रभाव से उपशान्त हुआ इस कारण 'शीतलनाथ' नाम वाले भगवान को ॥ १० ॥

तीन लोक के हित करने वाले, अथवा इनके पिताके यहाँ पितृपरम्परासे प्राप्त एक शय्या देवाधिष्ठित थी, जिससे उस पर

आधि-व्याधित्थी थवावाणा तमाम सन्तापाने निवारण्य क्रीने प्राणीभ्योने चन्द्रमा चन्दन विगेरेथी अधिक शीतल शान्तिने अथवा तो कपोयनी उपशमता इप शीतलता आपवावाणा अथवा व्याधे तेभ्योश्री गर्भमा हुता त्थारे तेभ्योना प्रला वथी तेभनी माताना कर कमलने स्पर्श थतान् तेभ्योना पिताने असाध्य दाह ज्वर उपशात थयो ओ कारण्थी "शीतलनाथ" नामवाणा लगवानने ॥ १० ॥

त्रय लोकनु हित करनारा, अथवा तेभना पिताने त्या पितृपरपरार्थी प्राप्त ओक शय्या देवाधिष्ठित हुती, जेथी ते शय्या उपर भेसवावाणाने उपसर्ग थतो हुतो,

१- 'सीयल वासुपुज्ज च' अत्र सूत्रे आर्पत्यादेकवचनम्, यद्वा समाहाराभिप्रायेण ।

२- प्रशस्यशब्दादतिशयेऽर्थे 'द्विवचनविभज्योपपदे तरयीयसुनौ' (५ । ३ । ५७) इतीयसुनि 'प्रशस्यस्य श्रः' (५ । ३ । ६०) इति प्रशस्यशब्दस्य श्रादेशः, श्रेयासेत्यदन्तत्वं तु पृषोदरादित्वात् ।

देवाधिष्ठितत्वेन यः कश्चन पुरोपविशति तमुपसर्गो वायते स्म, गर्भस्थे त्वस्मिन् भगवति मातुस्तच्छ्रयोपवेशदोहदे जाते तदुपर्युपवेशमात्रेणैव देवोपद्रवो विनष्ट इतीदृशश्रेयोमूलत्वाच्छ्रेयासस्तम्^१ (११) । 'वासुपुज्ज' ^२वसवः=मुनयः-साधु-वस्त एव वासवस्तेषां पूज्यो वासुपूज्यः, यद्वा वसुनि=रत्नानि तानि चात्र सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्राणि, तान्येव वासुनि, तत्प्रकाशकत्वात्पूज्यो वासुपूज्यः, अथवा गर्भस्थेऽस्मिन् भगवत्यस्य जननी वासवेन=देवेन्द्रेण भृश वन्दन-नमस्काराभ्यां पूजिताऽभूत्तेन ^३वासुपूज्यस्तम् (१२) । 'विमल' विगत=सर्वथा नष्ट मल=कर्ममलं यस्य, यद्वा विशेषेण मलते=धारयति दुर्गतिगर्ते पिपतिपून् भव्यान् यः

बैठनेवाले को उपसर्ग होता था, किन्तु भगवान् गर्भ में थे तब उस शय्या पर उनकी माता के बैठते ही देवकृत् उपसर्ग नष्ट हो गया, इस प्रकार श्रेय (कुशल) करने वाले श्री श्रेयासनाथ को ॥११॥

मुनियों के पूज्य, या रत्नत्रयरूप वसु-सम्पत्ति के प्रकाशक अथवा जब ये गर्भ में थे तब इनकी माता इन्द्र के द्वारा बारबार सम्मानित हुई, ऐसे यथार्थ नामवाले श्री वासुपूज्य भगवान् को ॥ १२ ॥

जिनका कर्ममल सर्वथा नष्ट हो चुका है, या जो दुर्गति में गिरते हुए प्राणियों को धारण करनेवाले, निर्मल स्वरूप वाले,

परन्तु भगवान् गर्भाभा उता त्थारे ते शय्या पर तेमनी माता पोते ठेठा डे तुरतश्च देवकृत् उपसर्ग नाश थय गये, ओ प्रभाण्णे श्रेय (कुशल) करवावाणा " श्री श्रेयासनाथ "ने ॥ ११ ॥

मुनियोना पूज्य, अथवा रत्नत्रय रूप वसु-संपत्तिना प्रकाशक, अथवा त्थारे तेओ गर्भाभा उता त्थारे तेमनी माता इन्द्र वडे बारबार सम्मान याभी ओवा यथार्थ नामवाणा " श्री वासुपूज्य " भगवानने ॥ १२ ॥

जेने। कर्ममल सर्वथा नष्ट थय गये, अथवा जे दुर्गतिमा पडता प्राणीओने धारण करवावाणा, निर्मल स्वरूपवाणा, अथवा गर्भाभा आववा

१- 'श्रेयासः' सिद्धिरुक्तैव निरुक्तवृत्त्या वा बोध्या ।

२- 'वसु.=साधुः' इति शब्दरत्नावलीति शब्दरत्नपट्टम ।

३- 'वासुपूज्य.'-अस्मिन् व्युत्पत्तित्रयेऽपि वासुशब्दसिद्धि पृषोदरादित्वात् ॥

स विमलः, अथवा विमलस्वरूपत्वाद्विमलः, अपि वा गर्भस्थस्यास्य जनन्यास्त
 नुर्मतिश्च विमला सञ्जाता तद्योगाद्विमलस्तम् (१३) । 'अणत' मोक्षाधिकर
 णकनिरवधिस्थितिरुत्वात् अत्रिप्रमानोऽन्तो=नाशो यस्यासावनन्तः, यद्वा
 अनन्तानि ज्ञानदर्शनादीनि तद्धेतुत्वादनन्तः, कारणे कार्योपचारात्, अपि वाऽनन्त
 स्वरूपत्वादनन्तः । अथवा गर्भस्थस्यास्य भगवतो माता स्वप्नेऽनन्ताकारा माला-
 मद्राक्षीत्तेनानन्तस्तम् (१४) । 'जिण' जिनम्, प्राग्व्याख्यातो जिनशब्दार्थः ।
 'धम्म' दुर्गतौ प्रपततो जन्तून् धारयतीति धर्मः, यद्वा कारणे कार्योपचारा-
 च्छ्रुतचारित्रादिरूपस्य धर्मस्य प्ररूपकतया धर्मस्वरूपत्वाद्वा, अथवा गर्भस्थेऽस्मिन्
 भगवति जनन्या दानादिरूपे धर्मे दृढा मतिरुदिता तद्योगाद्धर्मस्तम् (१५) ।

अथवा गर्भ में आने पर जिनकी माता की बुद्धि निर्मल हो गई,
 ऐसे यथानाम तथागुण वाले 'श्री विमलनाथ' को ॥१३॥

अविनाशी पद (मोक्ष) को प्राप्त करनेवाले, अनन्त ज्ञान
 अनन्त दर्शन आदि आत्मिक गुणों के दाता, अथवा गर्भमें आने
 पर जिनकी माताने स्वप्नमें अनन्त आकारवाली रत्नमाला को देखा
 अतएव यथार्थ नामवाले श्री अनन्तनाथ को ॥१४॥

दुर्गति में पड़ते हुए जीवों के उद्धारक, श्रुत-चारित्र्यरूप
 धर्मके उपदेशक, अथवा गर्भ में आने पर जिनकी माता की बुद्धि दानादि
 धर्म में दृढ हुई, ऐसे सार्थक नाम वाले श्री धर्मनाथ को ॥१५॥

साथेજ જેની માતાની બુદ્ધિ નિર્મલ થઇ ગઇ એવા યથાનામ તથાગુણવાળા
 " શ્રી વિમલનાથ "ને ॥ ૧૩ ॥

અવિનાશી પદ (મોક્ષ)ને પ્રાપ્ત કરવાવાળા, અનન્ત જ્ઞાન, અનન્ત દર્શન
 આદિ આત્મિક ગુણોના દાતા, અથવા ગર્ભમાં આવતા જ જેની માતાએ સ્વપ્નમાં અનન્ત
 આકરવાળી રત્નમાળા દેખી એટલા માટે યથાર્થ નામવાળા
 " શ્રી અનન્તનાથ "ને ॥ ૧૪ ॥

દુર્ગતિમાં પડતા જીવોના ઉદ્ધારક, શ્રુત ચારિત્રરૂપ ધર્મના ઉપદેશક,
 અથવા ગર્ભમાં આવવાથી જેની માતાની બુદ્ધિ દાનાદિ ધર્મને વિષે દૃઢ થઇ, એવા
 સાર્થક નામવાળા ' શ્રી ધર્મનાથ 'ને ॥ ૧૫ ॥

‘सर्ति’ शमयति=व्यपनयति कषायमिति शान्तिः, यद्वा कर्मसन्ततिसन्ताप-
मालाऽऽकुलाना जनाना शान्तिकरणशीलत्वाच्छान्तिः, शान्तिस्वरूपत्वाद्वा शान्तिः,
निराबाधमुक्तिरूपशान्तिहेतुत्वाद्वा, स्मरणेन भव्यजनाधिव्यापिशान्तिहेतुत्वाद्वा,
अथवा बहोः कालाज्जनपदे वर्तमानस्य दुर्मिक्षरोगोपद्रवादेरस्मिन् भगवति गर्भा-
गते सति शान्तिर्जाता तत्रोपाच्छान्तिस्तम्, नामैकदेशेन नामग्रहणात्-‘शान्ति-
नाथ’-मित्यर्थः (१६) । ‘वदामि’ वन्दे=स्तौमि । ‘कुयु’ कुन्यति=हिनस्ति
कर्मशत्रुमिति, कुन्नाति=मोक्षत्रियमालिङ्गतीति वा ‘कुन्यु’, यद्वा कु=पृथिवीम्
उपलक्षणादवादिक च स्तम्नाति गारयति=रक्षतीति कुन्थुः=पटकायरक्षकमुनिगणः,
त मदोरकमुखवस्त्रिकाधारिण भव्यजीवोपकारक मोक्षमार्गप्रचारक महत्यामनेक-

कषायों के नाश करनेवाले, कर्मरूपी सन्ताप से सतप्त प्राणियों को शान्ति प्रदान करने वाले, शान्तस्वरूपी, जिनके स्मरण मात्रसे आधिव्याधि मिट जाती है ऐसे, अथवा गर्भ में आने पर दुर्मिक्ष तथा महामारी (मरकी) आदि की उपशान्ति हो गई, ऐसे अन्वर्थ नामवाले श्री शान्तिनाथ जिनेन्द्र को मैं वन्दना करता हूँ ॥१६॥

कर्म-शत्रुओं का नाश कर मोक्ष को प्राप्त करनेवाले, अथवा गर्भ में आने पर जिनकी माताने स्वप्न में कुन्थु अर्थात् सदोरक-मुखवस्त्रिकाधारी, भव्य जीवों के उपकारी, मोक्षमार्ग के प्रचारक

कषायोनो नाश करवावाणा, कर्मरूपी सतापथी तपी रडेला प्राणीओने शांति आपवावाणा, शान्तस्वरूपी जेना स्मरण मात्रथी आधि-व्याधि मटी जाय छे जेवा, अथवा गर्भा आवता न दुष्काल तथा मरकी आदि रोग-उपद्रवोनी उपशान्ति थछ गछ जेवा यवार्थ नामवाणा “श्री शान्तिनाथ” जिनेन्द्रने हु वदन कइ छु ॥ १६ ॥

कर्मशत्रुओने नाश करीने मोक्षने पाववावाणा, अथवा गर्भा आवता न जेभनी माताओ स्वप्नमा कुन्थु ओटले द्वारासहित मुखवस्त्रिका ग्राधनार, मोक्ष मार्गना प्रचारक, अनेक देव भनुभ्यनी विशाण परिपदमा विचित्र धर्मपदेश देनार

१- ‘शान्तिः’ अत्र बाहुलकात्कर्तरि क्तिन् ।

२- ‘कुन्थु.’ भौवादिकादिसार्थकात् कुधि धातो. पक्षे क्रैयादिकात्स-
श्लेषणार्थकात् कुन्धधातोरौणादिक उपत्यय. ।

स विमलः, अथवा विमलस्वरूपत्वाद्विमलः, अपि वा गर्भस्थस्यास्य जनन्यास्त
 लुर्मतिश्च विमला सञ्जाता तद्योगाद्विमलस्तम् (१३) । 'अणत' मोक्षाधिकर
 णकनिराधिस्थितिकृत्वात् अविद्यमानोऽन्तो=नाशो यस्यासावनन्तः, यद्वा
 अनन्तानि ज्ञानदर्शनादीनि तद्धेतुत्वादनन्तः, कारणे कार्योपचारात्, अपि वाऽनन्त
 स्वरूपत्वादनन्तः । अथवा गर्भस्थस्यास्य भगवतो माता स्वप्नेऽनन्ताकारा माला
 मद्राक्षीत्तेनानन्तस्तम् (१४) । 'जिण' जिनम्, प्राग्व्याख्यातो जिनशब्दार्थः ।
 'धम्म' दुर्गतौ प्रपततो जन्तून् धारयतीति धम्मः, यद्वा कारणे कार्योपचारा
 च्छ्रुतचारित्रादिरूपस्य धर्मस्य प्ररूपकतया धर्मस्वरूपत्वाद्वा, अथवा गर्भस्थेऽस्मिन्
 भगवति जनन्या दानादिरूपे धर्मे दृढा मतिरुदिता तद्योगाद्धर्मस्तम् (१५) ।

अथवा गर्भ में आने पर जिनकी माता की बुद्धि निर्मल हो गई,
 ऐसे यथानाम तथागुण वाले 'श्री विमलनाथ' को ॥१३॥

अविनाशी पद (मोक्ष) को प्राप्त करनेवाले, अनन्त ज्ञान
 अनन्त दर्शन आदि आत्मिक गुणों के दाता, अथवा गर्भ में आने
 पर जिनकी माताने स्वप्न में अनन्त आकारवाली रत्नमाला को देखा
 अतएव यथार्थ नामवाले श्री अनन्तनाथ को ॥१४॥

दुर्गति में पड़ते हुए जीवों के उद्धारक, श्रुत-चारित्र्यरूप
 धर्म के उपदेशक, अथवा गर्भ में आने पर जिनकी माता की बुद्धि दानादि
 धर्म में दृढ़ हुई, ऐसे सार्थक नाम वाले श्री धर्मनाथ को ॥१५॥

સાથેજ જેની માતાની બુદ્ધિ નિર્મલ થઈ ગઈ એવા યથાનામ તથાગુણવાળા
 “શ્રી વિમલનાથ”ને ॥ ૧૩ ॥

અવિનાશી પદ (મોક્ષ)ને પ્રાપ્ત કરવાવાળા, અનન્ત જ્ઞાન, અનન્ત દર્શન
 આદિ આત્મિક ગુણોના દાતા, અથવા ગર્ભમાં આવતા જ જેની માતાએ સ્વપ્નમાં અનન્ત
 આકારવાળી રત્નમાળા દેખી એટલા માટે યથાર્થ નામવાળા
 “શ્રી અનન્તનાથ”ને ॥ ૧૪ ॥

દુર્ગતિમાં પડતા જીવોના ઉદ્ધારક, શ્રુત ચારિત્રરૂપ ધર્મના ઉપદેશક,
 અથવા ગર્ભમાં આવવાથી જેની માતાની બુદ્ધિ દાનાદિ ધર્મને વિષે દૃઢ થઈ, એવા
 સાર્થક નામવાળા ‘શ્રી ધર્મનાથ’ને ॥ ૧૫ ॥

आसौ सुव्रतश्च मुनिसुव्रतः, यद्वाऽस्य शासनकाले मुनयो निरतिचारेण शोभनव्रत-
शालिनो जाता इति कालिकादिसम्बन्धेन, अथवा गर्भस्थेऽस्मिन् भगवत्येतज्जननी
मुनिव्रतसुव्रता जाता तद्योगान्मुनिसुव्रतस्तम् (२०)। 'नमिजिण' नमयति=
तिरस्करोति कर्मशत्रूनिति नमिः, यद्वा गर्भप्राप्तेऽस्मिन् भगवति, एतत्प्रभावेः
सर्वे परनरपतयो नमितास्तद्योगान्नमिः, स चासौ जिनश्च नमिजिनस्तम् (२१)।
'वदामि' वन्दे 'रिद्धिनेमि' अरिष्टम्=अशुभमुपद्रव वा नमयति=अधःकरोतीति,
जातमात्रः सन्नरिष्ट=भ्रूतीगृह तात्स्थ्यात्सूतीगृहस्थितजनान् अनमयत्=नतशिर-

मे निरतिचार चारित्र पालनेवाले बहुत मुनि हुए, अथवा जब ये
गर्भ में आये तब उनकी माता मुनिके समान सुव्रता हुई इस
कारण 'मुनिसुव्रतनाथ' नाम वाले भगवान को ॥२०॥

कर्म शत्रुओं को जीतने वाले, या जब ये गर्भमें थे तो
अन्य सभी विमुख राजगण नम्र हो गये (झुक गये) अत एव
यथार्थ नाम वाले श्री नमिजिन को मैं वन्दना करता हूँ ॥२१॥

अशुभ तथा उपद्रवों को दूर करनेवाले, अथवा जिनके
जन्म लेते ही उस समय अरिष्ट-प्रसूतिगृह (सौर-सुवावड का घर)
में स्थित समस्त मनुष्यों के सिर झुक गये, या जो सारे ससार

चारित्र पालन करनेवाले धर्माण् मुनि तथा, अथवा ज्यारे ते गर्भमा आव्या त्यारे
तेभनी माता मुनिना समान सुव्रता यथं ये कारण्थी "मुनिसुव्रतनाथ" नाम
वाणा लगवानने ॥ २० ॥

कर्म शत्रुओंने जितवावाणा, अथवा ज्यारे गर्भमा हुता त्यारे सर्व अशुभ
राजगणो नम्र यथं गया (झुकी गया) ये कारण्थी यथार्थ नामवाणा
"श्री नमिनाथ" लगवानने वन्दना करे छु ॥ २१ ॥

अशुभ अथवा उपद्रवोंने दूर करवावाणा, अथवा जेने जन्म यता न
अष्टले जन्म समये अरिष्ट प्रसूति गृह (सुवावडनु घर)मा रहला तमाभ भाषु
सोना शिर-भस्तक नमी पड्या (झुकी गया) अथवा जेओ सकल ससारनु अरिष्ट

१- 'अरिष्ट सूतिकागृह'-मित्यमरः, 'अरिष्ट सूत्यागारेऽन्तर्चिह्ने तत्रे
शुभेऽशुभे' इति हैम ।

देवमनुष्यपरिषदि विचित्र धर्ममुपदिशन्तमेतस्मिन् गर्भस्थेऽस्य जननी स्वप्ने दृष्टवती तद्योगात् कुन्धुस्तम् (१७) । 'अर' अर्थते=प्राप्यते मोक्षो यस्मात्सोऽरः, यद्वाऽस्मिन् भगवति गर्भसमागतेऽस्य जननी स्वप्ने रत्नमयमर (चक्राङ्ग) दृष्टवती तद्योगादरस्तम् (१८) । 'मल्लि' मल्लते=धारयति दुःखरूपे पततः प्राणिन इति मल्लिः, यद्वा गर्भावस्थेऽस्मिन् भगवत्येतज्जनन्याः सञ्जातो मल्लीकुसुमदामशय्यादोहदो देवेन पूरितस्तद्योगान्मल्लिस्तम्, नामैकदेशेन नाम्नो ग्रहणान्मल्लिस्वामिनमित्यर्थः, 'वदे' वन्दे (१९) । 'मुणिसुव्वय' मन्यते मनुते वा परलोकागस्तिकतामिति मुनिः, सु=शोभनानि तानि यस्यासौ सुव्रतः, मुनि-

तथा अनेक देव मनुष्यो की विशाल परिषद में विचित्र धर्मोपदेश करते हुए षट्कायरक्षक मुनिवृन्द को देखा, ऐसे उन सगुण नाम-वाले श्री कुन्धुनाथ भगवान को ॥१७॥

मोक्ष प्राप्त कराने वाले, अथवा गर्भ में आने पर जिनकी माताने स्वप्नमें रत्नमय पहिये के आरे देखे, उन गुणयुक्त नाम वाले श्री अरनाथ भगवान को ॥ १८ ॥

दुःखरूप कूँ मे गिरते हुए प्राणियों की रक्षा करने वाले, अथवा गर्भ मे आने पर जिनकी माता के मल्ली-मालती फूलमाला की शय्या के दोहद (दोहले) को देवताने पूरा किया, ऐसे गुणसम्पन्न नाम वाले श्री मल्लीनाथ भगवान को ॥१९॥

श्रेष्ठ चारित्र्य को पालने वाले, अथवा जिनके शासन काल मेवा छ कायना रक्षक मुनिवृन्दने जेथु, मेवा सगुण नामवाणा "श्री कुन्धुनाथ" भगवानने ॥ १७ ॥

मोक्ष प्राप्त करवावाणा अथवा गर्भमा आवता न जेनी मातामे स्वप्नमा रत्नमय पैडाने आरे जेये मेवा गुणयुक्त नामवाणा 'श्री अरनाथ' भगवानने ॥ १८ ॥

दुःखरूप कुवामा पडता प्राणीमेनी रक्षा करवावाणा, अथवा गर्भमा आवता न जेनी माताने मल्ली-मालती फूलमाणानी शय्याना दोहद (दोहला) ने देवतामे पूर्ण कर्यो मेवा गुणसम्पन्न नामवाणा "श्री मल्लीनाथ" भगवानने ॥१९॥

श्रेष्ठ चारित्र्यनु पालन करवावाणा, अथवा जेना शासन कालमा निरतिथार

आसौ सुव्रतश्च मुनिसुव्रतः, यद्वाऽस्य शासनकाले मुनयो निरतिचारेण शोभनव्रत-
शालिनो जाता इति कालिकादिसम्बन्धेन, अथवा गर्भस्थेऽस्मिन् भगवत्येतज्जननी
मुनिवत्सुव्रता जाता तद्योगान्मुनिसुव्रतस्तम् (२०)। 'नमिजिण' नमयति=
तिरस्करोति कर्मशत्रूनिति नमिः, यद्वा गर्भप्राप्तेऽस्मिन् भगवति, एतत्प्रभावैः
सर्वे परनरपतयो नमितास्तद्योगान्नमिः, स चासौ जिनश्च नमिजिनस्तम् (२१)।
'वदामि' वन्दे 'रिट्ठनेमि' अरिष्टम्=अशुभमुपद्रव वा नमयति=अधःकरोतीति,
जातमात्रः सन्नरिष्ट=भृतीगृह तात्स्थ्यात्भृतीगृहस्थितजनान् अनमयत्=नतशिर-

मे 'निरतिचार चारित्र पालनेवाले बहुत मुनि हुए, अथवा जब ये
गर्भ में आये तब उनकी माता मुनिके समान सुव्रता हुई इस
कारण 'मुनिसुव्रतनाथ' नाम वाले भगवान को ॥२०॥

कर्म शत्रुओं को जीतने वाले, या जब ये गर्भमें थे तो
अन्य सभी विमुख राजगण नम्र हो गये (झुक गये) अत एव
यथार्थ नाम वाले श्री नमिजिन को मैं वन्दना करता हूँ ॥२१॥

अशुभ तथा उपद्रवों को दूर करनेवाले, अथवा जिनके
जन्म लेते ही उस समय अरिष्ट-प्रसूतिगृह (सौर-सुवावड का घर)
में स्थित समस्त मनुष्यों के सिर झुक गये, या जो सारे ससार

आरित्र पालन करनेवाले धर्मात्मा मुनि तथा, अथवा ज्यारे ते गर्भमा आव्या त्यारे
तेमनी माता मुनिना समान सुव्रता थई ये कारणथी "मुनिसुव्रतनाथ" नाम
वाणा भगवानने ॥ २० ॥

उर्भ शत्रुओने छतवावाणा, अथवा ज्यारे गर्भमा छता त्यारे सर्व अणुनभ
राजगणो नम्र थई गया (झुकी गया) ये कारणथी यथार्थ नामवाणा
"श्री नमिनाथ" भगवानने वन्दना करे छु ॥ २१ ॥

अशुभ अथवा उपद्रवोने दूर करवावाणा, अथवा जेनो जन्म थता न
ओटले जन्म समये अरिष्ट प्रसूति गृह (सुवावडनु घर)मा रहैला तभाम भाणु
सोना शिर-भस्तक नभी पड्या (झुकी गया) अथवा जेओ सकल ससारनु अरिष्ट

१- 'अरिष्ट प्रसूतिगृह'-मित्यमरः, 'अरिष्ट मृत्यागारेऽन्तर्चिह्ने तन्ने
शुभेऽशुभे' इति हैम ।

स्कानकरोत् स्वतेजसेति, अरिष्ट=‘शुभ (कल्याणम्) अर्थाज्जगतो नयति=प्रापय-
तीति निरुक्तवृत्त्या या अरिष्टनेमि’, यद्वाऽस्य गर्भस्थस्य माता स्वप्नेऽरिष्ट (रत्न)
मयीं नेमि=रथचक्रप्रान्तभाग दृष्टती तद्व्योगादरिष्टनेमिस्तम् (२२) । ‘पास’
पश्यति लोकालोकस्वरूपमिति पार्श्वः, पृषोदरादित्यात्, भविजनविघ्नवह्नीसमुच्छे-
दार्थं पशुसमूहतुल्यत्वात्पार्श्वः, यद्वाऽस्मिन् भगवति गर्भस्थे कदाचिद्वात्रौ निर्वाणे
प्रदीपेऽस्य जननी राजपार्श्वे सामायान्त सर्पे गर्भज्योतिःप्रभावेणाऽऽलोक्य
राजान सचेतीकृतवती, राजा च प्रज्याल्य प्रदीप दृष्ट्वा च पार्श्वे समागत सर्पे
विस्मित्य गर्भप्रभाय निश्चिकायेत्यन्वकारेऽपि निजमातृकर्तृकपितृपार्श्वसमागतसर्प-
कर्मकदर्शनहेतुत्वात्पार्श्वस्तम् (२३) । ‘तद्वा’ ‘तथा’ वद्धमाण च’ वद्धते ज्ञाना

का अरिष्ट-कल्याण करने वाले, अथवा जब ये गर्भमें थे तो माताने
स्वप्नमें पहिये की अरिष्ट-रत्नमयी-नेमि (पुठ) को देखा इस कारण
जिनका नाम ‘अरिष्टनेमि’ पडा, ऐसे बाईसवें तीर्थङ्कर को ॥२२॥

लोकालोक के यथार्थ स्वरूपको जानने वाले, या भक्त जीवों
की विघ्नलता को विनाश करने के लिए कुठार के समान, अथवा
जब ये गर्भ में थे तब किसी रातमें दीपक के बुझ जाने पर इनकी
माताने राजाके पार्श्व-पसवाड़े के पास आते हुए सर्प को गर्भ
के तेजसे देखकर राजाको सावधान किया, इस प्रकार ‘पार्श्व’ पद
के सम्बन्धसे ‘श्री पार्श्वनाथ’ नामवाले भगवान को ॥२३॥ और—

ज्ञानादि गुणों से वर्द्धमान (बढ़नेवाले) या अनन्त काल से

कल्याण करवावाणा अथवा ज्यारे तेओ गर्भमा हुता त्यारे माताओ स्वप्नमा
पेडानी अरिष्ट-रत्नमयी नेमि (पूठने) ओछ ओ कारणुथी जेतु नाम “अरिष्टनेमि,
पड्यु, ओवा णावीसमा तीर्थकरने ॥ २२ ॥

लोकालोकना यथार्थ स्वरूपने ज्ञाणुवावाणा, अथवा लव्य लुवोनी विघ्न
लतानो विनाश करवा माटे कुठार जेवा, अथवा ज्यारे तेओ गर्भमा हुता त्यारे डोछ
रात्रिमा दीपक लुआछ जता तेमनी माताओ राजाना पार्श्व-पसवाडानी नजदीक आवता
सर्पने गर्भना तेजथी ओछने राजाने सावधान करी दीधा ओ कारणुथी पार्श्व पडना
नामा भसी “श्री पार्श्वनाथ” नामवाणा भगवानने ॥ २३ ॥

१ वर्द्धमान (वधवावाणा) अथवा अनन्त कालथी ससार समु

‘अप्यशुभे’ इत्यमर ।

दिनेति, यद्वा, वर्द्धते=अन्तर्भावितण्यर्थत्वाद् वर्द्धयति भव्यानामनन्तकालतः पर्य-
टता ज्ञानादिगुणमिति, गर्भशय्यास्थितेऽस्मिन् भगवति ज्ञातकुल धनधान्यादि-
भिरवर्द्धतेति वा वर्द्धमानस्तम् (२४), चः=अप्यर्थकः, वर्द्धमानमपीत्यर्थः, पूर्वो-
क्तेन 'वदामि' इत्यनेनान्वय इत्युक्तमेव ।

अभिवन्त्योपसहरन्नाह—'एव' इत्यादि,

एवम्=उक्तप्रकारेण, 'मए' मया 'अभियुया' अभि=सर्वतो भावेन
स्तुताः=अभिष्टुताः नामनिर्देशपूर्वक यथाविधि स्तुतिविषयीकृता इत्यर्थः,
'विदूययमल्ला' विशेषेण पुते विधूते, रजश्च मल च रजोमले, विधूते रजोमले
यैस्ते विधूतरजोमला, तत्र रजः=वर्द्धमान ज्ञानावरणीयादिरूपमीर्यापथरूप वा
कर्म, मल=पूर्ववद्वनिकाचित-साम्परायिकरूपम्, यद्वा रज इवाऽऽवारकत्वा-
द्रज=ज्ञानावरणीयादिकर्म तदेव मल रजोमल, विधूत=क्षालित रजोमल यैस्ते
विधूतरजोमलाः । 'पट्टीणजरमरणा' — जीर्यन्ति=शिथिलीभवन्त्युत्थानादीनि

ससार समुद्रमें गोते खाते हुए प्राणियों के ज्ञानादि आत्मिक गुणों
को बढ़ानेवाले, अथवा जब ये गर्भमें आये तब ज्ञातकुल धन धान्य
हिरण्य सुवर्णादिसे परिपूर्ण हुआ अतएव गुणनिष्पन्न नामवाले
'श्री वर्द्धमानस्वामी' को मैं वन्दना करता हूँ ॥ २४ ॥

गुणोत्कीर्त्तन करके उपसहार करते हैं—

इस प्रकार मुझसे अलगर नामनिर्देशपूर्वक स्तुति किये गये, जो
ज्ञानावरणीयादि वर्द्धमान कर्मोंका तथा निकाचित-साम्परायिकरूप
पूर्ववद्ध कर्ममल का नाश करने वाले और चेष्टाविशेष रूप उत्थान,

द्रमा गोथा भाता प्राणीभ्योना ज्ञानादिक आत्मिक गुणोने वधारनारा, अथवा
न्यारे तेभ्यो गर्भमा आन्या त्यारे ज्ञातकुल धन धान्य हिरण्य-
सुवर्णादिकथी परिपूर्ण थयु ये कारणथी गुण-निष्पन्न-नामवाणा
“श्री वर्द्धमान स्वामी” ने हु वदना करे छु ॥ २४ ॥

गुणोत्कीर्त्तन करके उपसहार करे छे

आ प्रमाणे भारथी नृद्धा नृद्धा नामनिर्देशपूर्वक स्तुति करवाभा आवेल, नेभ्यो
ज्ञानावरणीयादि जाधेला कर्मेनो तथा निकाचित-साम्परायिक रूप पूर्ववद्ध कर्ममलने।

१—'अभिष्टुता.'—'उपसर्गात्सुनोती'ति पठ्ये 'ष्टुना ष्टु'-रिति दुत्वम् ।

स्कानकरोत् स्वतेजसेति, अरिष्ट=‘शुभ (कल्याणम्) अर्थाज्जगतो नयति=प्रापय-
तीति निरुक्तवृत्त्या वा अरिष्टनेमि’, यद्वाऽस्य गर्भस्थस्य माता स्वप्नेऽरिष्ट (रत्न)
मयीं नेमि=रथचक्रप्रान्तभाग दृष्टवती तद्योगादरिष्टनेमिस्तम् (२२) । ‘पास’
पश्यति लोकालोकस्वरूपमिति पार्श्वः, पृषोदरादित्यात्, भविजनविघ्नवह्नीसमुच्छे-
दार्थं पशुसमूहतुल्यत्वात्पार्श्वः, यद्वाऽस्मिन् भगवति गर्भस्थे कदाचिद्रात्रौ निर्वाणे
प्रदीपेऽस्य जननी राजपार्श्वे सामायान्त सर्प गर्भज्योतिःप्रभावेणाऽऽलोक्य
राजान सचेतीकृतवती, राजा च प्रज्वाल्य प्रदीप दृष्ट्वा च पार्श्वे समागत सर्प
विस्मित्य गर्भप्रभाव निश्चिकायेत्यन्धकारेऽपि निजमातृकर्तृकपितृपार्श्वसमागतसर्प-
कर्मकदर्शनहेतुत्वात्पार्श्वस्तम् (२३) । ‘तद्वा’ ‘तथा’ वदमाण च’ वर्द्धते ज्ञाना

का अरिष्ट-कल्याण करने वाले, अथवा जब ये गर्भमें थे तो माताने
स्वप्नमें पहिये की अरिष्ट-रत्नमयी-नेमि (पुठ) को देखा इस कारण
जिनका नाम ‘अरिष्टनेमि’ पडा, ऐसे घाईसर्वे तीर्थङ्कर को ॥२२॥

लोकालोक के यथार्थ स्वरूपको जानने वाले, या भक्त जीवों
की विघ्नलता को विनाश करने के लिए कुठार के समान, अथवा
जब ये गर्भ में थे तब किसी रातमें दीपक के बुझ जाने पर इनकी
माताने राजाके पार्श्व-पसवाड़े के पास आते हुए सर्प को गर्भ
के तेजसे देखकर राजाको सावधान किया, इस प्रकार ‘पार्श्व’ पद
के सम्बन्धसे ‘श्री पार्श्वनाथ’ नामवाले भगवान को ॥२३॥ और—

ज्ञानादि गुणों से वर्द्धमान (बढ़नेवाले) या अनन्त काल से

कल्याण करवावाणा अथवा न्यारे तेओ गर्भा हुता त्यारे माताओ स्वप्नमा
पेडानी अरिष्ट-रत्नमयी नेमि (पूठने) ओछ ओ कारणुथी नेतु नाम “अरिष्टनेमि,
पडथु, ओवा णावीसमा तीर्थ उरने ॥ २२ ॥

लोकालोकना यथार्थ स्वरूपने ज्ञाणुवावाणा, अथवा लब्ध लुवेनी विघ्न
लतानो विनाश करवा भाटे कुठार नेवा, अथवा न्यारे तेओ गर्भा हुता त्यारे ओछ
रात्रिमा दीपक लुआछ जता तेमनी माताओ राजाना पार्श्व-पसवाडानी नजदीक आवता
सर्पने गर्भना तेजथी ओछने राजाने सावधान करी दीधा ओ कारणुथी पार्श्व पडना
सम्बन्धथी “श्री पार्श्वनाथ” नामवाणा भगवानने ॥ २३ ॥

ज्ञानादि गुणोथी वर्द्धमान (वधवावाणा) अथवा अनन्त कालथी ससार समु

१- ‘अरिष्ट तु शुभाशुभे’ इत्यमर ।

दिनेति, यद्वा, वर्द्धते=अन्तर्भावितप्यर्थत्वाद् वर्द्धयति भव्यानामनन्तकालतः पर्य-
टता ज्ञानादिगुणमिति, गर्भशय्यास्थितेऽस्मिन् भगवति ज्ञातकुल धनधान्यादि-
भिरवर्द्धतेति वा वर्द्धमानस्तम् (२४), चः=अप्यर्थकः, वर्द्धमानमपीत्यर्थः, पूर्वो-
क्तेन 'वदामि' इत्यनेनान्वय इत्युक्तमेव ।

अभिवन्त्योपसहरन्नाह—'एव' इत्यादि,

एवम्=उक्तप्रकारेण, 'मए' मया 'अभिधुया' अभि=सर्वतो भावेन
स्तुताः=अभिष्टुताः नामनिर्देशपूर्वक यथाविधि स्तुतिविषयीकृता इत्यर्थः,
'विधूयरजोमला' विशेषेण प्रते विधूते, रजश्च मल च रजोमले, विधूते रजोमले
यैस्ते विधूतरजोमला, तत्र रजः=वर्द्धमान ज्ञानावरणीयादिरूपमीर्यापथरूप वा
कर्म, मल=पूर्वजन्मनिकाचित-साम्परायिकरूपम्, यद्वा रज इवाऽऽवारकत्वा-
द् रज=ज्ञानावरणीयादिकर्म तदेव मल रजोमल, विधूत=क्षालित रजोमल यैस्ते
विधूतरजोमलाः । 'पहीणजरमरणा' — जीर्यन्ति=शिथिलीभवन्त्युत्थानादीनि

ससार समुद्रमें गोते खाते हुए प्राणियों के ज्ञानादि आत्मिक गुणों
को बढ़ानेवाले, अथवा जब ये गर्भमें आये तब ज्ञातकुल धन धान्य
विरण्य सुवर्णादिसे परिपूर्ण हुआ अतएव गुणनिष्पन्न नामवाले
'को मैं वन्दना करता हूँ ॥ २४ ॥

१ ' ' करके उपसहार करते हैं—

अलग२ नामनिर्देशपूर्वक स्तुति किये गये, जो
कर्मोंका तथा निकाचित-साम्परायिकरूप
वाले और चेष्टाविशेष रूप उत्थान,

आत्मिक गुणोंने बधारनारा, अथवा
ज्ञातकुल धन धान्य विरण्य-
शरणाथी गुण-निष्पन्न-नामवाला
॥ २४ ॥

नि करवाभा आवेल, जेओ
पूर्वजन्म कर्मभलने।
'ष्टु' -रिति दुत्वम् ।

स्कानकरोत् स्वतेजसेति, अरिष्ट=‘शुभ (कल्याणम्) अर्थाजगतो नयति=प्रापयतीति निरुक्तपूर्या या अरिष्टनेमि’, यद्वाऽस्य गर्भस्थस्य माता स्वप्नेऽरिष्ट (रत्न) मयीं नेमि=रथचक्रप्रान्तभाग दृष्टती तद्व्योगादरिष्टनेमिस्तम् (२२) । ‘पास’ पश्यति लोकालोकस्वरूपमिति पार्श्व’, पृषोदरादित्यात्, भविजनविघ्नवलीसमुच्छेदार्थं पशुसमूहतुल्यत्वात्पार्श्व’, यद्वाऽस्मिन् भगवति गर्भस्थे कदाचिद्रात्रौ निर्वाणे प्रदीपेऽस्य जननी राजपार्श्वे सामायान्त- सर्प गर्भज्योतिःप्रभावेणाऽऽलोक्य राजान सचेतीकृतवती, राजा च प्रज्जाल्य प्रदीप दृष्ट्वा च पार्श्वे समागत सर्पं विस्मित्य गर्भप्रभाव निश्चिकायेत्यन्वकारेऽपि निजमातृकर्तृकपितृपार्श्वसमागतसर्प-कर्मरुदर्शनहेतुत्वात्पार्श्वस्तम् (२३) । ‘तद्वा’ ‘तथा’ वद्धमाण च’ वर्द्धते ज्ञाना

का अरिष्ट-कल्याण करने वाले, अथवा जब ये गर्भमें थे तो माताने स्वप्नमें पहिये की अरिष्ट-रत्नमयी-नेमि (पुठ) को देखा इस कारण जिनका नाम ‘अरिष्टनेमि’ पडा, ऐसे घाईसर्वे तीर्थङ्कर को ॥२२॥

लोकालोक के यथार्थ स्वरूपको जानने वाले, या भक्त जीवों की विघ्नलता को विनाश करने के लिए कुठार के समान, अथवा जब ये गर्भ में थे तब किसी रातमें दीपक के बुझ जाने पर इनकी माताने राजाके पार्श्व-पसवाड़े के पास आते हुए सर्प को गर्भ के तेजसे देखकर राजाको सावधान किया, इस प्रकार ‘पार्श्व’ पद के सम्बन्धसे ‘श्री पार्श्वनाथ’ नामवाले भगवान को ॥२३॥ और—

ज्ञानादि गुणों से वर्द्धमान (बढ़नेवाले) या अनन्त काल से

कल्याण करवावाणा अथवा ज्यारे तेजो गर्भमा हुता त्यारे माताये स्वप्नमा पेडानी अरिष्ट-रत्नमयी नेमि (पूठने) जेध ये कारणुथी जेनु नाम “अरिष्टनेमि, पड्यु, जेवा भावीसमा तीर्थ करने ॥ २२ ॥

लोकालोकना यथार्थ स्वरूपने जणुवावाणा, अथवा सव्य लुवेनी विघ्न लताने विनाश करवा भाटे कुठार जेवा, अथवा ज्यारे तेजो गर्भमा हुता त्यारे केध रात्रिमा दीपक जुआध जाता तेमनी माताये राजाना पार्श्व-पसवाडानी नजदीक आवता सर्पने गर्भना तेजथी जेधने राजाने सावधान करी दीधा ये कारणुथी पार्श्व पडना सम्बन्धथी “श्री पार्श्वनाथ” नामवाणा भगवानने ॥ २३ ॥

ज्ञानादि गुणुथी वर्द्धमान (वर्द्धवावाणा) अथवा अनन्त कालथी ससार समु

१-‘अरिष्ट तु शुभाशुभे’ इत्यमर’ ।

સ્તવકરણાત્સમ્યક્સ્તુતાઃ, મહિતાઃ=મહદ્વિજ્ઞાનાદિગુણૈઃ કૃત્વા સર્વૈરાદતાઃ, યદ્વા મહિતા=પૂજિતાઃ-સાદર પ્રશસિતા ઇન્દ્રાદિભિરિત્યર્થ, કીર્તિતાઃ=મનસા ગુણ-ચિન્તનરૂપેણ, વન્દિતાઃ=વચસા સ્તુતાઃ-વદિધાતોઃ સ્તુતિપરત્વાત્, મહિતાઃ=કાયેન ઇન્દ્રાદિભિઃ શરીરાવનમનકરણેન નમસ્કૃતાઃ इति हृदयम्,

‘પુષ્પાદિભિઃ પૂજિતાઃ’ इति केषाञ्चिद्द्रव्याख्यानमशोभनम् सावयपूजाया हिंसाप्रधानत्वेन वीतरागाणा तदसम्भवात्तस्याः सूत्रेऽनभिधानाच्च, ‘મહ પૂજાયામ્’ इत्यत्र पूजायामित्यविशिष्यैवोक्तमस्ति, તતશ્ચ મહિતઃ=પૂજિત इत्यायाति, નૈતાવતા

પ્રાણિયોં સે સન્માનિત, અથવા ઇન્દ્રાદિકોં સે સાદર પ્રશસિત જો યે રાગદ્વેષ આદિ કલહુ સે રહિત હોને કે કારણ તીનોં લોક મેં ઉત્તમ સિદ્ધ અર્થાત્ કૃતકૃત્ય હેં વે મુક્તે આરોગ્ય-સિદ્ધસ્વરૂપ કી પ્રાપ્તિ કે લિયે જિનધર્મની રુચિરૂપ બોધિકા લાભ ઓર ઉત્તમોત્તમ સમાધિ દેવે ।

કિસીને યદ્વા ‘કિત્તિય-વદિય-મહિયા’ इस पदमें रहे हुए ‘महित’ का अर्थ ‘पुष्प आदि से पूजित’ किया है किंतु वह सर्वथा असंगत है, क्योंकि कि पुष्पादि सावय द्रव्यों से की हुई पूजा हिंसाप्रधान होने के कारण ऐसी पूजा वीतरागों की नहीं हो सकती और शास्त्रमें कहीं ऐसा उल्लेख भी नहीं है । ‘मह पूजायाम्’-इस धातु से ‘महित’ बनता है जिसका अर्थ सामान्यतः ‘पूजित’ यही हो सकता है, उससे ‘पुष्पादिपूजित’ अर्थ करना केवल

સન્માનિત, અથવા ઇન્દ્રાદિકોથી સાદર પ્રશસા પામેલા જે એ ગગ-દ્વેષ આદિ કલહથી રહિત હોવાના કારણે ત્રણેય લોકમાં ઉત્તમ સિદ્ધ અર્થાત્ કૃતકૃત્ય છે તે મને આરોગ્ય - સિદ્ધસ્વરૂપની પ્રાપ્તિ માટે જિનધર્મની રુચિ-રૂપ બોધિને લાભ અને ઉત્તમોત્તમ સમાધિ આપે ?

કોઈએ આ સ્થળે ‘કિત્તિય-વદિય-મહિયા’ આ પદમાં રહેલા ‘મહિત’ નો અર્થ ‘પુષ્પ આદિથી પૂજિત’ કરેલો છે, પરંતુ એ અથ સર્વથા અસંગત છે કારણ કે પુષ્પાદિ સાવધ દ્રવ્યોથી કરેલી પૂજા હિંસાપ્રધાન હોવાથી તે પૂજા વીતરાગોની હોઈ શકે નહિ તેમજ શાસ્ત્રમાં એવો ઉલ્લેખ પણ મળતો નથી, ‘મહ પૂજાયા’ આ ધાતુથી ‘મહિત’ બને છે જેનો અર્થ સામાન્યતઃ ‘પૂજિત’ થઈ શકે છે, તેનાથી ‘પુષ્પાદિપૂજિત’ અર્થ કરવો તે કેવલ કલ્પનામાત્ર છે,

(અત્રાઽઽદિપદેન કર્મ-વલ-વીર્ય-પુરુષકાર-પરાક્રમા ગૃહ્યન્તે, તત્ર ઉત્થાન=ચેષ્ટાવિશેષઃ, કર્મ=ભ્રમણાદિક્રિયા, વલ=શરીરસામર્થ્યમ્, વીર્ય=જીવપ્રભવ, પુરુષકારઃ = અભિમાનવિશેષઃ, પરાક્રમઃ = સ્વામીષ્ટકર્મસાધનશક્તિવિશેષઃ)
 યયા સા, યદ્વા જરણ=વયોહાનિર્જરા, મરણ=પ્રાણવિનિર્ગમાપરપર્યાય આયુષ્યનાશઃ, જરા ચ મરણ ચ જરામરણે, પ્રહીણે=પ્રણે જરામરણે યેષા તે તથાભૂતાઃ, 'ચતુર્વીસપિ' ચતુર્વિંશતિરપિ, અપિશબ્દઃ પૂર્વવદવધારણાર્થો મહાવિદેહસ્થ ભગવદ્બ્રહ્મણાર્થથ । 'જિણવરા' જિનેષુ=અવધિજ્ઞાન્યાદિષુ વરાઃ=શ્રેષ્ઠા. । સામાન્યકેવલિનોઽપિ જિનવરાઃ સભવન્તિ તદ્વારણાયાહ-'તિત્થયરા' તીર્થકરાઃ । 'મે' મમ ઉપરીત્યસ્યાભ્યાહારઃ । 'પસીયતુ' પ્રસીદન્તુ=પ્રસન્ના ભવન્તુ ॥ ૫ ॥ 'કિત્તિય-વદિય-મહિયા' કીર્તિતાથ વન્દિતાથ મહિતાથેતિ દ્વન્દ્વઃ, તત્ર કીર્તિતાઃ=તત્તન્નામનિર્દેશેનૈકકશ' કથિતાઃ, વન્દિતા =વાઙ્મન'કાયયોગૈર્ગુણસ

ભ્રમણાદિરૂપ કર્મ, શરીરસામર્થ્યરૂપ વલ, જીવ સમ્બન્ધી વીર્ય, 'મે' હસ કાર્ય કો સિદ્ધ કરુંગા' હસ પ્રકાર અભિમાન વિશેષરૂપ પુરુષાકાર, તથા અભીષ્ટ સિદ્ધ કરને કા શક્તિવિશેષરૂપ પરાક્રમ, इन सबका नाश करनेवाली वृद्धावस्थारूप जरा और मरण का विनाश करनेवाले, केवलियों में श्रेष्ठ उपर्युक्त चौबीस तीर्थकर हैं वे, तथा अपि शब्द से महाविदेह क्षेत्रमें रहे हुए तीर्थकर मुझ पर प्रसन्न हों ।

‘કિત્તિય’ પૃથક્ ૨ નામ સે કીર્તિત, ‘વદિય’-મન વચન કાય સે સ્તુત, ‘મહિય’-જ્ઞાનાતિશય આદિ ગુણોં કે કારણ સર્વ નાશ કરવાવાળા અને ચેષ્ટાવિશેષરૂપ ઉત્થાન, ભ્રમણાદિ રૂપ કર્મ, શરીર સામર્થ્યરૂપ વલ, જીવ સમ્બન્ધી વીર્ય, “હુ આ કાર્યને સિદ્ધ કરીશ” એ પ્રમાણે અભિમાન વિશેષરૂપ પુરુષાકાર, તથા અભીષ્ટ સિદ્ધ કરવાની શક્તિવિશેષરૂપ પરાક્રમ, એ સર્વનો નાશ કરવાવાળી વૃદ્ધાવસ્થારૂપ જરા અને મરણનો નાશ કરવાવાળા, કેવલીઓમા શ્રેષ્ઠ ઉપર કહેલા ચોવીસ તીર્થકર છે તે, તથા ‘અપિ’ શબ્દથી મહાવિદેહ ક્ષેત્રમા રહેલા તીર્થકરો મારા ઉપર પ્રસન્ન થાઓ ?

‘કિત્તિય’ જૂદા-જૂદા નામથી કીર્તિત, ‘વદિય’ મન, વચન અને કાયથી સ્તુતિ કરાએલા, ‘મહિય’ જ્ઞાનાતિશય આદિ ગુણોના કારણે સર્વ પ્રાણીઓથી

बुद्धा' 'महाणुभावेसु महापरक्कमेसु' (सू. कु. २ अ. २) 'सन्निकारात्प्रयानात्तु महत्तत्त्व प्रजायते । महानिति यतः ख्यातिर्लोकानां जायते सदा ॥१॥ अहङ्कारश्च महतो जायते मानवर्द्धनः॥' (म. पु.) । 'प्रकृतेर्महान् महतोऽहङ्कारोऽहङ्कारात्पञ्चतन्मात्राणि' (साख्यमूत्र) । 'प्रकृतेर्महोस्ततोऽहङ्कारस्तस्माद्गणश्च षोडशकः (साख्यतत्त्वकौमुदी) । 'द्रव्यप्रत्यक्षे महत्त्व समवायसम्बन्धेन कारणम्' (न्या सि मु.) इति दर्शनान्तराणि । 'शद्र.स्यात्पादजो दासो ग्रामकूटो महत्तरः ।' (त्रि शे.), 'रणपण्डितोऽग्र्यविबुधारिपुरे क्लृप्त स राम-महित कृतवान् ।' (भट्टिका० १० स), 'विशङ्कट पृथु बृहद्विशाल पृथुल महत्' (अ को.), इत्यादीनि च न सङ्गच्छन्ते । 'जे ए' ये एते, 'लोकस्य' लोकस्य, निर्द्धारणे पृष्टी तेन लोकत्रयस्य मय इत्यर्थः । 'उत्तमा' उत्तमाः=रागद्वेषकर्मपङ्ककलङ्कसवन्पराहित्यात् श्रेष्ठाः । 'सिद्धा' सिद्धाः कृतकृत्यत्वाद्गन्ध-भवबीजाङ्कुरत्वाच्च । 'आरुग्गवोद्विलाभ' रजति=पीडयतीति रोगो=जन्मजरा-मरणादिरूपोऽत्र, अविद्यमानो रोगो येषां ते-अरोगाः=सिद्धास्तेषां भाव आरोग्य=सिद्धत्वम् बोधि=निखिलभवबन्धनप्रतिकूला परमार्थावबोधहेतुभूता जिनप्रणीतप्रवचनरुचिस्तस्या लाभो बोधिलाभः, आरोग्याय=सिद्धस्वरूपाय बोधिलाभः=आरोग्यबोधिलाभस्तम्, यद्वा-आरोग्य=निरुपद्रवम्=उपद्रवाभावस्तेन बोधिलाभस्तम् । 'आरोग्याय' इत्यत्र च फलेभ्यो यातीत्यादिवत् 'क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिन्' (२।३।१४) इति चतुर्थी, तेन सिद्धत्व प्राप्तु बोधिलाभ इति निष्कर्षः । अयं च बोधिलाभोऽनिदानात्मक एव मोक्षप्राप्तिहेतुर्न तु

आता है 'पुष्पादिसे पूजन' रूप अर्थ कहीं नहीं लिखा है, अतएव यह निर्विवाद सिद्ध हुआ कि 'महित' अर्थात् ज्ञानातिशय आदि गुणों से सम्मानित अथवा इन्द्रादि से सादर प्रशंसित ।

'निदान (निघाणा) रहित ही बोधिलाभ मोक्ष का कारण

त्या 'पुष्पादिथी पूजन' रूप अर्थ कहीं नहीं लिखा है, अतएव यह निर्विवाद सिद्ध थयु क 'महित' अर्थात् ज्ञानातिशय आदि गुणों से सम्मानित अथवा इन्द्रादिथी सादर प्रशंसा पायेला

'निदान' (निघाणा) रहित न बोधिलाभ मोक्षनु कान्यु ठे ओ बात सम

१- 'जे ए'-(ये एते) अत्राऽऽर्पत्वादेकारलोपः ।

२- लोकस्य-आर्पत्वादेस्वचनम् 'अचोऽन्त्यादि टी'-त्यादिवत् ।

પુષ્પાદિભિરેવ પૂજનમિતિ શમ્યતે વત્તુ, તથા સતિ મહચ્છ્વદસ્યાપિ તથાત્વાપત્તેઃ ।
 ન ચાસ્તુ કા નો હાનિરિતિ વાચ્યમ્, એવ સતિ 'મહાવાહુર્મહાશયઃ' ઇત્યાદા
 વપિ 'પુષ્પાદિપૂજિતવાહુમાન્' 'પુષ્પાદિપૂજિતાઽઽશયવાન્' ઇત્યસન્નતાર્થા
 પત્તેઃ, પૂજાર્થમહધાતુનિષ્પન્નમહચ્છ્વદસ્ય તત્ર તત્રાપિ સત્ત્વાત્, ન ચ 'ત્રિનિગમના-
 વિરહાત્પુષ્પાદિપૂજનમપ્યર્થઃ સ્યાદિત્યુદ્ઘ્ઘ્નનીય, વીતરાગાણા સાવચ્છપૂજાઽનૌચિત્ય-
 રૂપાયા ત્રિનિગમનાયા અનુપદમુક્તત્વાત્, ત્રિઞ્ચૈવ ભવદાગ્રહે 'મહામોહ પકુન્વર્ઙ્' (દશા૦ સ્ક) 'મહાવાણ વ ગાયતે' (દશૈ૦) 'મહાસુમિણ પાસિત્તાણ પઙ્કિ-

કલ્પનામાત્ર હૈ, ક્યોં કિ જેસા માનનેસે જો જો શબ્દ મહ ધાતુ
 સે વનતે હૈ ડન સવ જગહોં મેં પૂર્વપક્ષી કે કથનાનુસાર 'પુષ્પાદિ
 સે પૂજન' રૂપ અર્થ માન લેને પર 'મહાવાહુ, મહાશય' આદિ શબ્દોં
 કે ભી 'પુષ્પાદિ સે પૂજિત મુજાવાલે' 'પુષ્પાદિ સે પૂજિત આશય-
 વાલે' આદિ અનિષ્ટ અર્થે હોને લગેગે । યદિ કહેં કિ—'કિસી અર્થ
 વિશેષ કા નિશ્ચય ન રહને કે કારણ 'મહ ધાતુ' કે 'વિશાલ'
 'ઉદાર' આદિ અર્થ કી તરહ' પુષ્પાદિપૂજનરૂપ' ભી અર્થ લે સકતે
 હૈં તો ડસકા ઉત્તર પહલે હી દે ચુકે હૈં કિ—'વીતરાગોં કે સાવચ
 પૂજન કા ન હોના હી પુષ્પાદિપૂજનરૂપ અર્થકે ન હોને મે નિયામક
 હૈ, ઓર ઉપર લિખી હુઈ સસ્કૃત ટીકા મેં દિખલાયે હુણ મહામોહ૦'
 આદિ સ્થલોં મેં તથા અન્યત્ર ભી જહા કહો 'મહ' ધાતુ કા પ્રયોગ

કેમકે એ પ્રમાણે માનવાથી જે શબ્દ મહ ધાતુથી બને છે તે સર્વ અર્થે
 પૂર્વપક્ષીના કહેવા પ્રમાણે 'પુષ્પાદિથી પૂજન' રૂપ અર્થ માની લેવાથી 'મહાવાહુ,
 મહાશય' આદિ શબ્દોને પણ 'પુષ્પાદિથી પૂજિત બુજાવાળા,' 'પુષ્પાદિથી પૂજિત
 આશયવાળા' વગેરે અનિષ્ટ અર્થ થવા મડશે જે કહેશે કે 'કોઈ અર્થ વિશેષને
 નિશ્ચય નહિ રહેવાના કારણે 'મહ' ધાતુને 'વિશાલ, ઉદાર' આદિ અર્થ પ્રમાણે 'પુષ્પાદિ
 પૂજનરૂપ' પણ અર્થ લઈ શકાય છે તો તેનો ઉત્તર પ્રથમજ આપી ચૂક્યા છીએ
 કે 'વીતરાગ ને સાવચ પૂજન ના થયુજ પુષ્પાદિપૂજનરૂપ અર્થ નહિ
 હોઈ શકવા માટે નિયામક છે અને ઉપર લખેલી સસ્કૃત ટીકામાં બીજા વેલ 'મહામોહ'
 આદિ સ્થળોમાં તથા બીજા સ્થળે પણ જે ઠેકાણે 'મહ' ધાતુનો પ્રયોગ આવે છે

૧-એકતરપક્ષપાતિની યુક્તિત્રિનિગમના તસ્યા વિરહોઽમાત્રસ્તસ્માત્ ।

बुद्धा' 'महाणुभावेसु महापरक्कमेसु' (सू. कृ. २ अ. २) 'सविकारात्पथानात्तु महत्तत्त्व प्रजायते । महानिति यतः ख्यातिर्लोकानां जायते सदा ॥१॥ अहङ्कारश्च महतो जायते मानवर्द्धनः॥' (म. पु.) । 'प्रकृतेर्महान् महतोऽहङ्कारोऽहङ्कारात्पञ्चतन्मात्राणि' (साख्यमूत्र) । 'प्रकृतेर्महान् महतोऽहङ्कारस्तस्माद्विषयश्च षोडशकः (साख्यतत्त्वकौमुदी) । 'द्रव्यप्रत्यक्षे महत्त्व समवायसम्बन्धेन कारणम्' (न्या सि मु) इति दर्शनान्तराणि । 'रूद्रस्यात्पादजो दासो ग्रामकूटो महत्तरः ।' (त्रि शे), 'रणपण्डितोऽय्यविबुधारिपुरे कलह स राम-महित कृतवान् ।' (भट्टिका० १० स), 'विशङ्कट पृथु बृहद्विशाल पृथुल महत्' (अ को), इत्यादीनि च न सङ्गच्छन्ते । 'जे ए' ये एते, 'लोगस्स' लोकस्य, निर्द्धारणे पण्ठी तेन लोकत्रयस्य मध्य इत्यर्थः । 'उत्तमा' उत्तमाः=रागद्वेषकर्मपङ्ककलङ्कसवन्तराहित्यात् श्रेष्ठाः । 'सिद्धा' सिद्धा' कृतकृत्यत्वाद्ग्रन्थ-भववीजाङ्कुरत्वाच्च । 'आरोग्यबोधिलाभ' रुजति=पीडयतीति रोगो=जन्मजरा-मरणादिरूपोऽत्र, अविद्यमानो रोगो येषां ते-अरोगा.=सिद्धास्तेषां भाव आरोग्य=सिद्धत्वम् बोधि=निखिलभवबन्धनप्रतिकूला परमार्थावबोधहेतुभूता जिनप्रणीतप्रवचनरुचिस्तस्या लाभो बोधिलाभः, आरोग्याय=सिद्धस्वरूपाय बोधिलाभः=आरोग्यबोधिलाभस्तम्, यद्वा-आरोग्य=निरुपद्रवम्=उपद्रवाभावस्तेन बोधिलाभस्तम् । 'आरोग्याय' इत्यत्र च फलेभ्यो यातीत्यादिवत् 'क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः' (२ । ३ । १४) इति चतुर्थी, तेन सिद्धत्व प्राप्तु बोधिलाभ इति निष्कर्षः । अथ च बोधिलाभोऽनिदानात्मक एव मोक्षप्राप्तिहेतुर्न तु

आता है 'पुष्पादिसे पूजन' रूप अर्थ कही नहीं लिखा है, अतएव यह निर्विवाद सिद्ध हुआ कि 'महित' अर्थात् ज्ञानातिशय आदि गुणों से सम्मानित अथवा इन्द्रादि से सादर प्रशंसित ।

'निदान (नियाना) रहित ही बोधिलाभ मोक्ष का कारण

त्या 'पुष्पादिसे पूजन' रूप अर्थ कहेला नहीं ओटला भाटे निर्विवाद सिद्ध थयु इ 'महित' अर्थात् ज्ञानातिशय आदि गुणोधी सम्मानित अथवा इन्द्रादिसे सादर प्रशंसा पावेला

'निदान' (नियाना) रहित न बोधिलाभ मोक्षनु कारण छे ओ वात सम

१-'जे ए'-(ये एते) अत्राऽऽर्पत्वादेकारलोपः ।

२- लोकस्य-आर्पत्वादेस्त्वचनम् 'अवोऽन्त्यादि टी'-त्यादिवत् ।

પુષ્પાદિભિરેવ પૂજનમિતિ શક્યતે વત્તુ, તથા સતિ મહચ્છન્દસ્યાપિ તથાત્વાપત્તેઃ ।
 ન ચાસ્તુ કા નો હાનિરિતિ વાચ્યમ્, એવ સતિ ‘મહાવાહુર્મહાશયઃ’ ઇત્યાદા
 વપિ ‘પુષ્પાદિપૂજિતવાહુમાન્’ ‘પુષ્પાદિપૂજિતાઽઽગયવાન્’ ઇત્યસન્નતાર્થા
 પત્તેઃ, પૂજાર્થકમહધાતુનિષ્પન્નમહચ્છન્દસ્ય તત્ર તત્રાપિ સત્ત્વાત્, ન ચ ‘વિનિગમના-
 વિરહાત્પુષ્પાદિપૂજનમપ્યર્થઃ સ્યાદિત્યુદ્ઘ્ઠનીય, વીતરાગાણા સાવચ્છપૂજાઽનોચિત્ય
 રૂપાયા વિનિગમનાયા અનુપદમુક્તત્વાત્, તિશ્ચૈવ ભવદાગ્રહે ‘મહામોહ પકુચ્ચર્ઈ’
 (દશા૦ સ્ક) ‘મહાવાણ વ ગાયતે’ (દશવૈ૦) ‘મહાસુમિણ પાસિત્તાણ પહિ-

કલ્પનામાત્ર હૈ, ક્યોં કિ એસા માનનેસે જો જો શબ્દ મહ ધાતુ
 સે બનતે હૈં ઉન સવ જગહોં મેં પૂર્વપક્ષી કે કથનાનુસાર ‘પુષ્પાદિ
 સે પૂજન’ રૂપ અર્થ માન લેને પર ‘મહાવાહુ, મહાશય’ આદિ શબ્દોં
 કે ભી ‘પુષ્પાદિ સે પૂજિત ભુજાવાલે’ ‘પુષ્પાદિ સે પૂજિત આશય
 વાલે’ આદિ અનિષ્ટ અર્થે હોને લગેંગે । યદિ કહેં કિ—‘કિસી અર્થ
 વિશેષ કા નિશ્ચય ન રહને કે કારણ ‘મહ ધાતુ’ કે ‘વિશાલ’
 ‘ઉદાર’ આદિ અર્થ કી તરહ’ પુષ્પાદિપૂજનરૂપ’ ભી અર્થ લે સકતે
 હૈં તો હસકા ઉત્તર પહેલે હી દે ચુકે હૈં કિ—‘વીતરાગોં કે સાવચ
 પૂજન કા ન હોના હી પુષ્પાદિપૂજનરૂપ અર્થકે ન હોને મેં નિયામક
 હૈ, ઓર ઉપર લિખી હુઈ સસ્કૃત ટીકા મેં દિખલાયે હુઈ મહામોહ૦’
 આદિ સ્થલોં મેં તથા અન્યત્ર ભી જહા કહો ‘મહ’ ધાતુ કા પ્રયોગ

કેમકે એ પ્રમાણે માનવાથી જે શબ્દ મહ ધાતુથી બને છે તે સર્વ સ્થળે
 પૂર્વપક્ષીના કહેવા પ્રમાણે ‘પુષ્પાદિથી પૂજન’ રૂપ અર્થ માની લેવાથી ‘મહાવાહુ,
 મહાશય’ આદિ શબ્દોને પણ ‘પુષ્પાદિથી પૂજિત ભુજાવાળા,’ ‘પુષ્પાદિથી પૂજિત
 આશયવાળા’ વગેરે અનિષ્ટ અર્થ થવા મળશે જે કહેશે કે ‘કોઈ અર્થ’ વિશેષને
 નિશ્ચય નહિ રહેવાના કારણે ‘મહ’ ધાતુને ‘વિશાલ, ઉદાર’ આદિ અર્થ પ્રમાણે ‘પુષ્પાદિ
 પૂજનરૂપ’ પણ અર્થ લઈ શકાય છે તો તેનો ઉત્તર પ્રથમજ આપી ચૂક્યા છીએ
 કે ‘વીતરાગ ને સાવચ પૂજન, ના થવુંજ પુષ્પાદિપૂજનરૂપ અર્થ નહિ
 હોઈ શકવા માટે નિયામક છે અને ઉપર લખેલી સસ્કૃત ટીકામાં બીજા વેલ ‘મહામોહ’
 આદિ સ્થળોમાં તથા બીજા સ્થળે પણ જે ઠેકાણે ‘મહ’ ધાતુનો પ્રયોગ આવે છે

૧-એકતરપક્ષપાતિની યુક્તિવિનિગમના તસ્યા વિરહોઽભાવસ્તસ્માત્ ।

बुद्धा' 'महाणुभावेण महापरस्मैसु' (मृ. कृ. २ अ. २) 'मन्त्रिणागन्धरा-
 नात्तु महत्तत्त्व प्रजायते । महानिति यतः स्यात्तिल्लोकाना जायते मदा ॥१॥
 अहङ्कारश्च महतो जायते मानवर्द्धनः॥' (म पु.) । 'प्रकृतेर्महान् महतोऽहङ्का-
 रोऽहङ्कारात्पञ्चतन्मात्राणि' (सारथ्यमृत्र) । 'प्रकृतेर्महोऽहङ्कारस्माद-
 णश्च षोडशकः (सारथ्यतत्त्वकौमुदी) । 'द्रव्यप्रत्यक्षे महत्त्व ममवायमम्वन्नेन
 कारणम्' (न्या सि सु.) इति दर्शनान्तराणि । 'शुद्धम्यात्पादजो दामो
 ग्रामकूटो महत्तरः ।' (त्रि शे.), 'रणपण्डितोऽय्यविजुगारिपुरे कच्छ स राम-
 महित कृतवान् ।' (भट्टिका० १० स), 'विशङ्कट पशु वृद्धिशाट पृथुट
 महत्' (अ को.), इत्यादीनि च न सङ्गच्छन्ते । 'जे ए' ये एते, 'ओगम्य'
 लोकस्य, निर्धारणे पृष्ठी तेन लोकत्रयस्य मय इत्यर्थः । 'उत्तमा' उत्तमाः=
 रागद्वेषकर्मपङ्ककलङ्कसम्पराहित्यात् श्रेष्ठाः । 'सिद्धा' सिद्धाः कृतकृत्यन्याद-
 भववीजाङ्कुरत्वाच्च । 'आरोग्योदिलाभ' रुजति=पीडयतीति रोगो=जन्यजरा-
 मरणादिरूपोऽत्र, अवित्रमानो रोगो येषा ते-अरोगाः=सिद्धाम्तेषा याव आरो-
 ग्य=सिद्धत्वम् बोधि=निखिलभवनन्धनपतिकूला परमार्थावरो रदेतृश्रुता त्रिनय-
 नीतप्रवचनरुचिस्तस्या लाभो बोधिलाभः, आरोग्याय=सिद्धस्वप्न्याय बोधि-
 लाभः=आरोग्योदिलाभस्तम्, यद्वा-आरोग्य=निरपद्रव्यम्=शुद्धाभावरत्नम्
 बोधिलाभस्तम् । 'आरोग्याय' इत्यत्र च फलेभ्यो यानीत्यादिगन् 'श्रियावी-
 पपदस्य च कर्मणि स्थानिनः' (२।३।१४) इति चतुर्वी; तेन सिद्धम् प्राप्तम्,
 बोधिलाभ इति निरुक्तः । अयं च बोधिलाभोऽनिदानात्मक एव मात्रपार्श्वदेहेन म,
 आता है 'पुष्पादिसे पूजन' रूप अर्थ कहीं नहीं लिया है, अतः
 यह निर्विवाद सिद्ध हुआ कि 'महित' अर्थात् ज्ञानातिशय आदि
 गुणों से सम्मानित अथवा इन्द्रादि से मादर प्रशंसित ।

'निदान (नियणा) रहित ही योगिन्द्रिय मात्र का कारण
 त्या 'पुष्पादिसे पूजन' रूप अर्थ ठरेलो नया रूप से, निर्दिष्ट रूप से
 यथु ४ 'महित' अर्थात् ज्ञानातिशय आदि गुणों से सम्मानित अथवा इन्द्रादि
 सादर प्रशंसा पायेला

'निदान' (नियणा) रहित ही योगिन्द्रिय मात्र का कारण

१- 'जे ए'-(ये एते) अत्राऽऽपत्तादेकारलोप ।

२- लोकस्य-आपत्तादेरयचनम् 'अत्रोऽन्त्यादि टी'-त्यादिप्रत ।

પુષ્પાદિભિરેવ પૂજનમિતિ શક્યતે વક્તુ, તથા સતિ મહચ્છ્વસ્યાપિ તથાસ્વાપત્તેઃ ।
 ન ચાસ્તુ કા નો હાનિરિતિ વાચ્યમ્, एव सति 'महाबाहुर्महाशयः' इत्यादा
 वपि 'पुष्पादिपूजितबाहुमान्' 'पुष्पादिपूजिताऽऽशयवान्' इत्यसङ्गतार्था
 पत्तेः, पूजार्थमहधातुनिष्पन्नमहच्छ्वस्य तत्र तत्रापि सत्त्वात्, न च 'विनिगमना-
 विरहात्पुष्पादिपूजनमप्यर्थः स्यादित्युद्बुद्धनीय, वीतरागाणा सावयपूजाऽनौचित्य
 रूपाया विनिगमनाया अनुपदमुक्तत्वात्, मिश्रैव भवदाग्रहे 'महामोह पकुब्ध' (दशा० स्क) 'महावाए व गायते' (दशवै०) 'महासुमिण पासित्ताण पडि-

કલ્પનામાત્ર હૈ, ક્યોં કિ એસા માનનેસે જો જો શબ્દ મહ ધાતુ
 સે વનતે હૈં ઉન સવ જગહોં મેં પૂર્વપક્ષી કે કથનાનુસાર 'પુષ્પાદિ
 સે પૂજન' રૂપ અર્થ માન લેને પર 'મહાબાહુ, મહાશય' આદિ શબ્દોં
 કે ભી 'પુષ્પાદિ સે પૂજિત બુજાવાલે' 'પુષ્પાદિ સે પૂજિત આશય
 વાલે' આદિ અનિષ્ટ અર્થે હોને લગેંગે । યદિ કહેં કિ—'કિસી અર્થ
 વિશેષ કા નિશ્ચય ન રહને કે કારણ 'મહ ધાતુ' કે 'વિશાલ'
 'ઉદાર' આદિ અર્થ કી તરહ' પુષ્પાદિપૂજનરૂપ' ભી અર્થ લે સકતે
 હૈં તો હસકા ઉત્તર પહલે હી દે ચુકે હૈં કિ—'વીતરાગોં કે સાવય
 પૂજન કા ન હોના હી પુષ્પાદિપૂજનરૂપ અર્થકે ન હોને મેં નિયામક
 હૈ, ઓર ઉપર લિખી હુઈ સસ્કૃત ટીકા મેં દિખલાયે હુએ મહામોહ૦'
 આદિ સ્થલોં મેં તથા અન્યત્ર ભી જહા કહી 'મહ' ધાતુ કા પ્રયોગ

કેમડે એ પ્રમાણે માનવાથી જે શબ્દ મહ ધાતુથી બને છે તે સર્વ સ્થળે
 પૂર્વપક્ષીના કહેવા પ્રમાણે 'પુષ્પાદિથી પૂજન' રૂપ અર્થ માની લેવાથી 'મહાબાહુ,
 મહાશય' આદિ શબ્દોનો પણ 'પુષ્પાદિથી પૂજિત બુજાવાળા,' 'પુષ્પાદિથી પૂજિત
 આશયવાળા' વગેરે અનિષ્ટ અર્થ થવા મહોં જે કહેશે કે 'કેમ અર્થ' વિશેષનો
 નિશ્ચય નહિ રહેવાના કારણે 'મહ' ધાતુનો 'વિશાલ, ઉદાર' આદિ અર્થ પ્રમાણે 'પુષ્પાદિ
 પૂજનરૂપ' પણ અર્થ લઈ શકાય છે તો તેનો ઉત્તર અથમજ આપી ચૂક્યા છીએ
 કે 'વીતરાગ ને સાવય પૂજન, ના થલુજ પુષ્પાદિપૂજનરૂપ અર્થ' નહિ
 હોઈ શકવા માટે નિયામક છે અને ઉપર લખેલી સસ્કૃત ટીકામાં બત વેલ 'મહામોહ'
 આદિ સ્થળોમાં તથા બીજા સ્થળે પણ જે ઠેકાણે 'મહ' ધાતુનો પ્રયોગ આવે છે

૧-एकतरपक्षपातिनी युक्तिर्विनिगमना तस्या विरहोऽभावस्तस्मात् ।

‘ઉત્તમ’ ઉત્તમ=સર્વોત્કૃષ્ટ, एतेन जघन्यमध्यमयोर्व्यवच्छेदः । ‘દિતુ’ દદતુ=વિતરન્તિત્વત્થર્થઃ । ‘અવદેસુ નિમ્મલયરા’ ક્ષાલિતાશ્વિલકર્મમલત્વાચ્ચન્દેભ્યો નિર્મલતમાઃ=ચન્દ્રાપેક્ષયાऽપ્યતિશયિતનૈર્મલ્યભાજ इति भावः । ‘આઈચ્છેસુ અહિય પયાસયરા’ મિત્યાત્વાદિતિમિરનિનાશકાત્યુત્કૃષ્ટકેવલાऽऽલોકેનાશ્વિલલોકા-લોકપ્રકાશકત્વેનાऽઽદિત્યેભ્યોऽપ્યધિક પ્રકાશકરા’ । ‘સાગરવરગમ્भीરા’ સાગરાઃ=સમુદ્રાસ્તેષુ વર=શ્રેષ્ઠ સાગરવરઃ=સ્વયમ્ભૂરમણસમુદ્રસ્તદ્દમ્ભીરાઃ=પરીપહાદિસહનશીલત્વાત્પશાન્તતમાઃ, ‘સિદ્ધા’ સિદ્ધાઃ=સાધિતાશ્વિલામીપ્સિતાઃ, ‘સિદ્ધિ’ સિદ્ધિ=નિર્વૃત્તિપદોપલબ્ધિ ‘મમ’ મમ્ય ‘દિસતુ’ દિશન્તુ-દદત્તિત્વત્થર્થઃ ।

यद्यपि सिद्धाना वीतरागत्वेनाऽऽरोग्यबोधिलाभादिदायकत्वं न सघटते तथापि याचन्या भाषया भक्त्युद्रेकादेवमुच्यते इति न काऽपि क्षतिः ।

સે જઘન્ય ઔર મધ્યમ કો હટાને કે લિયે ‘ઉત્તમ’ પદ દિયા હૈ ॥

सकल कर्ममलों के हट जाने के कारण चन्द्रमासे भी अत्यन्त निर्मल, केवलज्ञानरूपी आलोक (प्रकाश) से सपूर्ण लोकालोक के प्रकाशक होने के कारण सूर्य से भी अधिक तेजवाले, तथा अनेक अनुकूल प्रतिकूल परीपह-उपसर्ग के सहनेवाले होने से स्वयम्भूरमण समुद्र के समान सुगम्भीर सिद्ध भगवान मुझे सिद्धि (मोक्ष) दें ॥ ७ ॥

सिद्ध भगवान वीतराग है अतएव यद्यपि किसीको आरोग्य बोधिलाभ आदि दे नहीं सकते तो भी भव्यों की उत्कृष्ट श्रद्धा

છે, તેમાથી જઘન્ય અને મધ્યમને હટાવવા માટે ‘ઉત્તમ’ પદ આપેલું છે

મકલ કર્મમલ દૂર થઈ જવાના કારણે ચન્દ્રથી પણ અત્યન્ત નિર્મલ, કેવલજ્ઞાનરૂપી આલોક-(પ્રકાશ)થી સપૂર્ણ લોકાલોકના પ્રકાશક હોવાના કારણે સૂર્યથી પણ અધિક તેજવાળા, તથા અનેક અનુકૂળ પ્રતિકૂળ પરીપહો ઉપસર્ગોના સહન કરવાવાળા હોવાથી સ્વયમ્ભૂરમણ સમુદ્ર ॥ સમાન સુગમ્ભીર સિદ્ધ ભગવાન મને સિદ્ધિ (મોક્ષ) આપે ॥ ૭ ॥

सिद्ध भगवान वीतराग છે એ કારણથી જો કે કોઈને આરોગ્ય બોધિલાભ આદિ આપી શકતા નથી તો પણ ભવ્ય શ્રદ્ધાની ઉત્કૃષ્ટ શ્રદ્ધાથી આ પ્રકારની

૩-‘અવદેસુ’ ‘આઈચ્છેસુ’ અત્રાઽઽર્પત્વાત્પશ્ચમ્યર્થે સપ્તમી ।

સનિદાનાત્મકોઽત આહ-‘સમાહિવર’ ઇતિ, સમાધાન ‘સમાધિઃ=રત્નત્રયોપલબ્ધિઃ । અય ચ સમાધિર્દ્રવ્યભાવભેદાદ્વિધિસ્તત્ર । દ્રવ્યસમાધિઃ=શરીરાદિ સૌખ્યાપ્રાપ્તિઃ, ભાવસમાધિસ્તુ રત્નત્રયોપલબ્ધિસ્તયોર્દ્રવ્યસમાધિવ્યાવૃત્ત્યર્થે વર પદમાહ-વરશ્વાસૌ સમાધિશ્ચેતિ^૨ વિગ્રહઃ, યદ્વા સમાખ્યોર્વર^૩ સમાધિવરસ્તમ્, સમાધિવરશ્ચ ભાવસમાધિરેવ, સ ચ સમ્યગ્જ્ઞાનાદિરત્નત્રયપ્રાપ્તિસ્વરૂપ ઇતિ તદા નીમનિદાનબોધિલાભસ્યોદયાત્ સનિદાનબોધિલાભવ્યવચ્છેદ^૪, સમ્યગ્જ્ઞાનાદિ રત્નત્રયપ્રાપ્તિર્હિ મોક્ષસાક્ષાત્કારણમતસ્તસ્યા વેલાયા સનિદાનબોધિલાભોપક્ષયાદનિદાનબોધિલાભો જાયતે । સમાધિવરોઽપિ જઘન્યાદિભેદૈરનેકવિધસ્તસ્માદાહ

‘હૈ’ હસ વાત કો સમજાને કે લિએ ‘સમાહિવર’ કહા હૈ, સમાધિ ભી દ્રવ્ય-ભાવ ભેદસે દો પ્રકારકી હૈ, ડનમેં સે શરીરાદિ સુખ કી પ્રાપ્તિ રૂપ દ્રવ્યસમાધિ કો હટા કર કેવલ રત્નત્રય પ્રાપ્તિરૂપ ભાવસમાધિ કા ગ્રહણ કરને કે લિએ ‘વર’ પદ દિયા હૈ અત ણવ સનિદાન બોધિલાભ કા નિવારણ હો ગયા, ક્યોંકિ જ્ઞાનાદિ રત્નત્રય કી પ્રાપ્તિ મોક્ષ કા સાક્ષાત્ કારણ હૈ, હસીલિએ હસ અવસ્થા મેં કેવલ અનિદાન (નિધાણારહિત) બોધિલાભ રહતા હૈ । ભાવસમાધિ ભી જઘન્ય આદિ ભેદોં સે અનેક પ્રકાર કી હૈ ડનમેં

બાવવા માટે ‘સમાહિવર’ કહેલુ છે, સમાધિ પણ દ્રવ્ય-ભાવ ભેદથી બે પ્રકારની છે તેમાંથી શરીરાદિ સુખની પ્રાપ્તિ રૂપ દ્રવ્યસમાધિને હટાવીને કેવલ રત્નત્રયની પ્રાપ્તિરૂપ ભાવસમાધિનું ગ્રહણ કરવા માટે ‘વર’ પદ આપેલુ છે એટલા માટે સનિદાન બોધિલાભનું નિવારણ થઈ ગયુ, કરણ કે જ્ઞાનાદિ-રત્નત્રયની પ્રાપ્તિ મોક્ષનું સાક્ષાત્ કારણ છે આ માટે એ અવસ્થામાં કેવલ અનિદાન (નિધાણારહિત) બોધિલાભ રહે છે ભાવસમાધિ પણ જઘન્ય આદિ ભેદથી અનેક પ્રકારની

૧- સમાધિ., સમ્+આહૂર્વકાત્ ધા’ ધાતોઃ ‘ઉપસર્ગે ઘો કિ.’ (પા ૩ । ૩ । ૮૨) ઇતિ ભાવે કિ પ્રત્યયઃ, આતો લોપ ઇટી’-ન્યાકારલોપ’ ।

૨- ‘વરસમાધિ’ પુર્વનિપાતપ્રકરણસ્ય ‘સમુદ્રાશ્રાદ્ધ’ (પા ૪ । ૪ । ૧૧૮) ઇત્યાદિનિર્દેશવલેનાઽનિત્યત્વાદ્વરશબ્દસ્ય પશ્ચાત્પ્રયોગ’ । અત્રત્યાદિના ‘લક્ષણહેત્વો ક્રિયાયા.’ (૩ । ૨ । ૧૨૬) ઇત્યાદીના ગ્રહણમ્ ।

૩- ‘સમાખ્યોર્વર’ અત્ર સપ્તમીતત્પુરુષ ષષ્ઠીતત્પુરુષસ્તુ ‘ન નિર્દોરણે’ (પા ૨ । ૨ । ૧૦) ઇતિ પ્રતિષેધાન્નાત્ર ભવતિ ।

અયત્રોધિઝામાદિસિદ્ધૌ તપશ્ચરણાદિક્લેશોઽકિશ્ચિત્કર इति तु नागङ्कनीयम्, तपः-
सयमाद्यनुष्ठानेन दृढस्य श्रद्धानस्योत्पत्तौ भक्तिदाढर्य तेन कर्मक्षयस्ततो मोक्ष इति
भक्तिदाढर्य प्रति तप'सयमाद्यनुष्ठानस्य हेतुत्वात् ॥१-७॥

इति श्रीविश्वविरयात-जगद्वल्लभ-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषाकलितललित-
कलापाऽऽलापक-प्रविशुद्धगन्धपत्रनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-श्रीशाहू-
छत्रपतिकोल्हापुरराजप्रदत्त 'जैनशास्त्राचार्य'-पदभूषित कोल्हापुर-
राजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-
घामीलाल-व्रतिविरचिताया धीश्रमणमूत्रस्य मुनि-
तोषण्याख्याया व्याख्याया चतुर्विंशति-
स्तवाम्य द्वितीयमभ्ययन समाप्तम् ॥ २ ॥

કોઈ કહે કિ-ભગવાન કી ભક્તિ સે હી મોક્ષ પ્રાપ્તિ તક
કી સિદ્ધિ હો તો તપ સયમ આદિ કે કષ્ટ ઉઠાને કા ક્યા
પ્રયોજન હૈ ?

દસકે લિયે યહી ઉત્તર હૈ કિ-તપ સયમ આદિ કે આરાધન
કરને સે 'શ્રદ્ધાન' દૃઢ હો કર ભક્તિ પ્રવલ્લ હોતી હૈ ઓર ભક્તિ
કી દૃઢતા સે કર્મો કી નિર્જરા હોકર ક્રમસે મોક્ષ કી પ્રાપ્તિ
હોતી હૈ ॥૧-૭॥

॥ इति द्वितीय अध्ययन सपूर्ण ॥

કોઈ કહેશે કે ભગવાનની ભક્તિથી જ મોક્ષપ્રાપ્તિ સુધીની સિદ્ધિ
થાય છે તો તપ સયમ આદિ કષ્ટ ઉઠાવવાનું શુ પ્રયોજન છે ?

ઉત્તર એ છે કે તપ સયમ આદિની આરાધના કરવાથી શ્રદ્ધા
દૃઢ થઈને ભક્તિ પ્રબલ થાય છે અને ભક્તિની દૃઢતાથી કર્મોની નિર્જરા થઈને
કર્મથી મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય છે (૧-૭)

॥ इति द्वितीय अध्ययन सपूर्ण ॥ २ ॥

आह—जिनवरैर्यदातव्य गोधिलाभादिहेतुभूत तद्वत्तमेव रत्नत्रयोपदेशरूप
मिति किमतः परमवशिष्ट दातव्य यत्प्रार्थ्यते? इति, उच्यते—यत्रपि सर्वं तैरुपदे
शेन दत्तमेवास्ति तथाप्युत्कटभावभक्तिभरितस्येत्यमुक्तौ सञ्चिताना ज्ञानावरणी
यादीना कर्मणा प्रक्षयो भवति, तत्प्रक्षयाच्च मोक्षोपलब्धिरिति । जिनभक्त्यैवाऽऽरो-

यहाँ प्रश्न उठता है कि सिद्ध भगवान् जो कुछ देसकते थे वह मोक्ष मार्ग का उपदेश अरिहत अवस्थामें दे ही चुके हैं फिर क्या शेष रह गया जिसके लिये प्रार्थना की जाती है ? ।

इसका समाधान यह है कि इस प्रकार भक्तिमान् भक्त्यों की उत्कृष्ट भावना से की हुई प्रार्थना के द्वारा पूर्वसञ्चित ज्ञानावरणीय आदि कर्मोंका क्षय होकर मोक्षप्राप्ति होती है ।

પ્રાર્થના ઉચિત જ છે, કારણ કે સિદ્ધ ભગવાન કાંઈ પણ આપતા નથી તો પણ ભક્તિમાન ભવ્ય જીવોની પોતાની અટલ ભક્તિના પ્રભાવથી પ્રાર્થના અનુસાર કૃપા થઈ જાય છે આ પ્રાર્થના મોક્ષ પ્રાપ્તિ માટે છે, માટે તેને નિઝાન-
'સહિત કહી શકાય નહિ

અહિં એક પ્રશ્ન થાય છે કે, સિદ્ધ ભગવાન જે કાંઈ આપી શકે છે તે મોક્ષમાર્ગનો ઉપદેશ અરિહંત અવસ્થામાં આપી ચુક્યા છે પછી શું બાકી રહી ગયું છે કે જેના માટે પ્રાર્થના કરવામાં આવે ?

આ પ્રશ્નનું સમાધાન એ છે કે આ પ્રમાણે ભક્તિમાન ભગ્ય જીવેની ઉત્કૃષ્ટ ભાવનાથી કરવામા આવેલી પ્રાર્થના દ્વારા પૂર્વસચિત જ્ઞાનાવરણીય આદિ ક્રમેની ક્ષય થઇને મોક્ષ પ્રાપ્તિ થાય છે

ગ્યવોધિગ્રામાદિસિદ્ધૌ તપશ્ચરણાદિક્લેશોઽકિશ્ચિત્કર इति तु नाशङ्कनीयम्, तपः-
सयमाद्यनुष्ठानेन दृढस्य श्रद्धानस्योत्पत्तौ भक्तिदाढर्य तेन कर्मक्षयस्तनो मोक्ष इति
भक्तिदाढर्यं प्रति तप'सयमाद्यनुष्ठानस्य हेतुत्वात् ॥१-७॥

इति श्रीविश्वविरूपात-जगद्वल्लभ-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषाकलितललित-
कलापाऽऽलापक-प्रविशुद्धगन्धपत्रनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-श्रीशाहू-
छत्रपतिकोल्हापुरराजप्रदत्त 'जैनशास्त्राचार्य'-पदभूषित कोल्हापुर-
राजगुरु-मालवब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-
घामीलाल-व्रतिविरचिताया धीश्रमणमूत्रस्य मुनि-
तोषण्याख्याया व्याख्याया चतुर्विंशति-
स्तवार्ख्य द्वितीयमभ्ययन समाप्तम् ॥ २ ॥

કોઈ કહે કિ-ભગવાન કી ભક્તિ સે હી મોક્ષ પ્રાપ્તિ તક
કી સિદ્ધિ હો તો તપ સયમ આદિ કે કષ્ટ ઉઠાને કા ક્યા
પ્રયોજન હૈ ?

દસકે લિયે યહી ઉત્તર હૈ કિ-તપ સયમ આદિ કે આરાધન
કરને સે 'શ્રદ્ધાન' દૃઢ હો કર ભક્તિ પ્રવલ્લ હોતી હૈ ઓર ભક્તિ
કી દૃઢતા સે કર્મો કી નિર્જરા હોકર ક્રમસે મોક્ષ કી પ્રાપ્તિ
હોતી હૈ ॥૧-૭॥

॥ इति द्वितीय अध्ययन सपूर्ण ॥

ઢોઈ કહેશે કે ભગવાનની ભક્તિથી જ મોક્ષપ્રાપ્તિ સુધીની સિદ્ધિ
થાય છે તો તપ સયમ આદિ કષ્ટ ઉઠાવવાનું શુ પ્રયોજન છે ?

ઉત્તર એ છે કે તપ સયમ આદિની આરાધના કરવાથી શ્રદ્ધા
દૃઢ થઈને ભક્તિ પ્રવલ્લ થાય છે અને ભક્તિની દૃઢતાથી કર્મોની નિર્જરા થઈને
કર્મથી મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય છે (૧-૭)

॥ इति द्वितीय अध्ययन सपूर्ण ॥ २ ॥

। અથ તૃતીયમધ્યયનમ્ ।

દ્વિતીયેઽધ્યયને પ્રાણાતિપાતાદિસાધ્યન્યાપારનિવૃત્તિલક્ષણસામાયિકવ્રતો પદેષ્ટુણામર્હતા ગુણોત્કીર્તન કૃતમ્, અધુનાઽર્હદુપદિષ્ટસ્યાપિ સામાયિકવ્રતા દેર્ગુરુકૃપયૈવોપલબ્ધેર્ગુરુવન્દનોત્તરમેવ પ્રતિક્રમણાનુષ્ઠાનસ્ય શિષ્ટાચારપરિગૃહીત ત્વાચ્ચાઽવસરસગતા ગુરુવન્દના કર્તુ વન્દનાગ્ય તૃતીયમધ્યયનમાહ—‘ઇચ્છામિ’ ઇત્યાદિ,

॥ મૂલમ્ ॥

ઇચ્છામિ खमासमणो ! वदिउ जावणिजाए निसीहियाए, अणुजाणह मे मिउग्गह, निसीहि अहोकाय कायसफास, खम-णिज्जो मे किलामो, अप्पकिलताण बहुसुभेण मे दिवसो वइकतो ? जत्ता मे ? जवणिज्ज च मे ? खामेमि खमासमणो ! देवसिअ वइक्कम, आवस्सियाए पडिक्कमामि खमासमणाण देवसिआए आसायणाए तेत्तीसन्नयराए जंकि चिमिच्छाए मणदुक्कडाए

॥ અથ ત્રીસરા અધ્યયન પ્રારંભ ॥

દૂસરે અધ્યયનમે પ્રાણાતિપાત આદિ સાધ્ય યોગકી નિવૃત્તિ-રૂપ સામાયિક વ્રતકે ઉપદેશક તીર્થકરોં કા ગુણોત્કીર્તન ક્રિયા ગયા છે । તીર્થકરોં સે ઉપદિષ્ટ વહ સામાયિક વ્રત ગુરુ મહારાજ કી કૃપાસે હી પ્રાપ્ત હો સકતા છે । સ કારણ, તથા ગુરુવન્દનાપૂર્વક હી પ્રતિક્રમણ કરને કા શિષ્ટાચાર હોને સે ગુરુવન્દના કરના આવશ્યક છે । અતઃ અથ વન્દના યયન નામક ત્રીસરા અધ્યયન પ્રારંભ કરતે છે—‘ઇચ્છામિ’ ઇત્યાદિ ।

અથ ત્રીણુ અધ્યયન પ્રારંભ

બીજા અધ્યયનમા પ્રાણાતિપાત વગેરે સાધ્ય યોગની નિવૃત્તિ-રૂપ સામાયિક વ્રતના ઉપદેશક તીર્થકરોંનું ગુણોત્કીર્તન કરવામા આવ્યું છે । તીર્થકરોંએ ઉપદેશેણુ સામાયિક વ્રત ગુરુ મહારાજની કૃપાથી જ પ્રાપ્ત થાય છે, એન્હા માટે, તથા ગુરુવન્દનાપૂર્વક જ પ્રતિક્રમણ કરવાને । શિષ્ટાચાર હોવાથી ગુરુવન્દના કરવી તે આવશ્યક છે, એ માટે હવે વન્દનાધ્યયન નામનું ત્રીણુ અધ્યયન પ્રારંભ કરે છે—“ઇચ્છામિ” ઇત્યાદિ

वयदुक्कडाए कायदुक्कडाए कोहाए माणाए मायाए लोहाए सब्ब-
कालियाए सब्बमिच्छोवयाराए सब्बधम्माइक्रमणाए आसायणाए
जो मे देवसिओ अड्यारो कओ तस्स खमासमणो । पडिक्कमामि
निंदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि ॥ सू० १ ॥

॥ छाया ॥

इच्छामि क्षमाश्रमण ! वन्दितु यापनीयया नैषेधिक्या, अनुजानीत मे
मिताग्रहम् । निषिध्य अध.काय कायस्पर्शम् । क्षमणीयो भवद्भिः क्लमः ।
अल्पक्लान्ताना बहुशुभेन भवता दिवसो व्यतिक्रान्तः ^१, यात्रा भवताम् ? याप-
नीय च भवताम् ? क्षमयामि क्षमाश्रमण ! दैवसिक व्यतिक्रमम् । आवश्यक्या
प्रतिक्रमामि क्षमाश्रमणाना दैवसिक्या आशातनया त्रयस्त्रिंशदन्यतरया यत्किञ्चि-
न्मिथ्याभूतया मनोदुष्कृतया वचोदुष्कृतया कायदुष्कृतया क्रोधया मानया मायया
लोभया सर्वकालिक्या सर्वमिथ्योपचारया सर्वधर्मातिक्रमणया आशातनया
यो मया दैवसिकोऽतिचारः कृतस्तस्य क्षमाश्रमण ! प्रतिक्रमामि निन्दामि गर्हे,
आत्मान व्युत्सृजामि ॥ सू० २ ॥

॥ टीका ॥

‘खमासमणो’ क्षमण=परीपहादीना सहन क्षमा,^१ ‘श्रमणो, शमन.,
समना, समण.’ इत्येषा प्राकृते ‘समणो’ इति भवति, तत्र श्राम्यति=तपस्यतीति,
भवश्रमणहेतुभूतविषयेषु खिद्यतीति, यद्वाऽन्तर्भावितण्यर्थत्वात् श्राम्यति=दमनेन

‘श्रमणः, शमनः, समना, समणः’ इन चारों का प्राकृतमें
‘समणो’ ऐसा रूप बनता है अतः संस्कृत छाया के अनुसार इन
चारों का अलग २ अर्थ कहते हैं—

चारह प्रकार की तपस्या में श्रम (परिश्रम) करनेवाले,

“श्रमण, शमन”, समनाः, समण, आ आरेय पढोनु प्राकृत भाषाभा
“समणो” ओषु ३५ जने छे, ओट्ठे संस्कृत छाया अनुसार ओ आरेय पढोना
जुदा-जुदा अर्थ छे छे —

चार प्रकारनी तपस्याभा श्रम (परिश्रम) करवावाणा, अथवा, ध्निद्रय,

१-क्षमा-‘क्षमूप् सहने’ अस्मात् ‘पिद्भिदादिभ्योऽङ्’ (३ । ३ ।
१०४) इति सूत्रेण स्त्रियामङ्प्रत्ययस्ततष्ठाप् ।

શ્રમયતીન્દ્રિયનોન્દ્રિયાણીતિ 'શ્રમણઃ' । શ્રમયતિ=શાન્તિ નયતિ કષાયનોકષાયરૂપાનલમિતિ, શામ્યતિ=વિશાલમનાટીપર્યટદ્વોગાનલજ્વાલામાલાકરાલતાપકલાપતઃ પૃથગ્ભવતીતિ વા 'શમનઃ' । સમાન=સ્વપરજનેષુ તુલ્ય મનો यस્યેતિ, કુશલમયેન મનસા સહ વર્તેતે ઇતિ યા 'સમનાઃ' । સમ્=સમ્યક્ 'અણતિ=પ્રવચન વ્રૂત ઇતિ, સમ્યક્ 'અણ્યતે=સંયમવલેન કષાય જિત્વા જીવતીતિ વા સમણ' । ક્ષમાપ્રધાનઃ શ્રમણઃ, શમનઃ, સમના, સમણો વા ક્ષમાશ્રમણાદિસ્તત્સબુદ્ધૌ ।

અથવા ઇન્દ્રિય નોન્દ્રિય (મન) કા દમન કરનેવાલે કો 'શ્રમણ' કહતે હૈં ૧ । કષાય-નોકષાયરૂપ અગ્નિ કો શાન્ત કરનેવાલે, યા સસારરૂપ અટવીમેં પેલી હુઈ કામભોગરૂપ અગ્નિ કી પ્રચણ્ડ જ્વાલાઓં કે અયદ્ધર તાપ સે આત્મા કો અલગ કરનેવાલે કો 'શમન' કહતે હૈં ૨ । શત્રુમિત્ર મેં એકસા મન રાખનેવાલે, અથવા વિશુદ્ધ મનવાલે કો 'સમના' કહતે હૈં ૩ । અચ્છી તરહ પ્રવચન કા ઉપદેશ દેનેવાલે, અથવા સયમ કે વલ સે કષાય કો જીતકર રહને વાલે કો 'સમણ' કહતે હૈં ૪ । પરન્તુ યહા પર પ્રસિદ્ધિ કે કારણ 'શ્રમણ' શબ્દ કો લેકર હી વ્યાખ્યા કરતે હૈં—ક્ષમા હૈ પ્રધાન જિનમેં

નોન્દ્રિય (મન)નું દમન કરવાવાળાને "શ્રમણ" કહે છે (૧) કષાય, નોકષાય રૂપ અગ્નિને શાન્ત કરવાવાળા અથવા સસારરૂપી અટવીમા ફેલાએલી કામ-ભોગરૂપી અગ્નિની પ્રચંડ જ્વાલાઓના જ્વલન કર તાપથી આત્માને અલગ-બુદ્ધ કરવાવાળાને 'શમન' કહે છે (૨) શત્રુ-મિત્રમા એકસરખું મન રાખવાવાળા અથવા વિશુદ્ધ મનવાળાને 'સમના' કહે છે (૩) બરાબર સારી રીતે પ્રવચનનો ઉપદેશ આપવાવાળા, અથવા સયમના બળથી કષાયોને જીતીને રહેવાવાળાને 'સમણ' કહે છે (૪) પરન્તુ અહિં પ્રસિદ્ધિના કારણે 'શ્રમણ' શબ્દને લઈને જ વ્યાખ્યા કરે છે, જેની અદર ક્ષમાશ્રમણ મુખ્ય છે તેને ક્ષમાશ્રમણ કહે છે

૧- 'શ્રમુ તપસિ રેદે ચ' અસ્માન્નન્યાદિત્વાત્કર્ત્તરિ લ્યુ ।

૨- શમન - 'શમુ ઉપશમે' અસ્માણ્યન્તાચ્છુદ્ધાદ્વા લ્યુ. પૂર્વવત્ ।

૩- સમના - પૂર્વત્ર વ્યુત્પત્તૌ 'સમાનસ્યચ્છન્દસી' - ત્યત્ર 'સમાનસ્યે'તિ યોગવિભાગાત્ સમાનસ્ય સ, ઉત્તરત્ર 'વોપસર્જનસ્ય' (૬।૩।૮૩) ઇતિ સહસ્યસઃ ।

૪- 'અગતિ' મૌડાદિકાત્પરસ્મપદિન 'શબ્દાર્થવાત્ 'અણ' ધાતોરિદમ્ ।

૫- 'અણ્યતે' દૈવાદિકસ્ય આત્મનેપદિન 'અણ પ્રાણને' ઇ ।

‘जावणिज्जाए’ यापनीयया=शक्त्यनुकूलया ‘निसीहियाए’ निषेधन निषेधः=प्राणातिपातादिसावद्यव्यापारविरतिः सा प्रयोजनं यस्या सा नैषेधिकी^१, तथा नैषेधिक्या तन्वेति शेषः, शक्त्यनुकूलेन प्राणातिपातादिनिवृत्तरूपेण शरीरेणेत्यर्थः, ‘वदिउ’ वन्दितुम्=अभिवादनयितुम् ‘इच्छामि’ अभिलषामीत्यर्थः। अतः ‘मे’ मम ‘मिउग्गह’ अवग्रहण इत्यवग्रहः=क्षेत्रम्, यद्वा-अवग्रहणमवग्रहः=क्षेत्रपरिव्रहः, मितश्चासावद्यवग्रहश्च मितावग्रहः, अथवा मितायाः अर्थात्परिमितभूमेरवग्रहः=ग्रहणं मितावग्रहः=उपविष्टस्य गुरोरभिमुखं वर्तमानायाः स्वदेहपरिमिताया भूमेर्ग्रहणं, तम् ‘अणुजाणह’ अनुजानीत=मितावग्रहप्रवेशयानुज्ञादत्त, अस्मिन्नवसरे गुरुः ‘अनुजानामि’ इति भणति, ततोऽनुज्ञातः शिष्यः ‘निसीहि’ निषिध्य=सावद्यव्यापारान् परित्यज्य ‘अहोकाय’ कायस्य=शरीरस्याऽधः अ२ःकायः, यद्वा अधः=अधस्तनः कायः अ२.कायस्त चरणस्वरूपं प्रतीति शेषः। पष्ठ्यर्थे वा द्वितीयाऽऽर्पत्वात्। ‘कायसफास’ कायेन=स्वशिरो-

उनको ‘क्षमाश्रमण’ कहते हैं। यहा शिष्य सम्बोधन करके कहता है कि “हे क्षमाश्रमण ! मैं अपनी शक्ति के अनुसार प्राणातिपात आदि सावद्य व्यापारों से रहित काय से वन्दना करना चाहता हूँ, अतएव मुझे आप मितावग्रह (जहा गुरु महाराज विराजित हों उनके चारों ओर की साढे तीन २ हाथ भूमि) में प्रवेश करने की आज्ञा दीजिये”। उस समय गुरु शिष्य को ‘अनुजानामि’ कह कर प्रवेशकी आज्ञा देवे, तब आज्ञा पाकर शिष्य बोले-‘हे गुरु महाराज ! मैं सावद्य व्यापारों को रोक कर मस्तक और हस्त से

अर्द्धि शिष्य स बोधन करीने उडे छे डे -

डे क्षमाश्रमण ! हु भारी शक्ति अनुसार प्राणातिपात आदि सावद्य (पापकारी) व्यापारथी रहित शरीर पडे वन्दना करवा छुम्छा कर छु, ओला भाटे भने आप मितावग्रह (ज्या गुरु महाराज विराजित होय तेमनी आरे ‘आणु साडा ग्रणु साडा ग्रणु हाथ भूमि)मा प्रवेश करवानी आज्ञा आपो ते समये गुरु शिष्यने ‘अनुजानामि’ कहीने प्रवेशवानी आज्ञा आपो त्यारे आज्ञा भेजवीने शिष्य उडे डे -डे गुरु महाराज ! हु सावद्य व्यापारोने रोक्रीने शिर तथा

१- ‘नैषेधिकी तदस्येत्यधिकारे ‘प्रयोजनम्’ (५।१।१०८) इति ठक्, ठगन्तलान्कीप् ।

हस्तलक्षणेन सस्पर्शः=सम्यक् स्पर्शस्तम् । 'अणुजाणह' इत्यनेन पूर्वोक्तेन सम्बन्धः, करोमीत्यस्य शेषो वा । 'किलामो' क्लमः=शरीरग्लानिकृत् मत्कृतोऽपराधः निजकठोरकरशिरसा^१ भवदीयकोमलचरणरुमलस्पर्शेनेत्यर्थात्, यद्वा मदीयेनाऽनेन नमस्कारव्यापारेण भवतो मानस एव कश्चन श्रमः सञ्जातः स्यात्स 'भे' भवद्भिः, यद्वा भवता^२ 'स्वमणिज्जो' क्षमणीयः=सोढव्यः, तथा 'अल्प-किलताण' अल्पशब्दोऽत्राऽभाववाची, 'क्लान्त=क्लान्तिः, अल्प=विगत क्लान्त=शरीर-ग्लानिरूपः श्रमो येषां तेऽल्पक्लान्तास्तेषामल्पक्लान्तानाम्-अल्पवेदनावतामित्यर्थः, 'भे' भवता गुरुवर्याणां 'दिवसो' दिवसः 'बहुसुभेण' बहु च तच्छुभं च बहुशुभं तेन प्रभूतशान्तिपूर्वकमित्यर्थः 'वइक्कतो' व्यतिक्रान्त=गतः किम् ? 'जत्ता' यात्रा=तपोनियमादिस्वरूपा सयमयात्रा 'भे' भवता निराबाधे ? ति शेषः, च=किञ्च 'भे' भवता शरीरमिति गम्यते 'जवणिज्ज' यापनीयम्=इन्द्रियनोऽन्द्रियबाधारहितं वर्तते ? इति शेषः, एव सयमयात्रादिकुशलमापृच्छथ शिष्यः पुनरप्याह—'स्वमासमणो' हे क्षमाश्रमण ! 'स्वामेमि' क्षमापयामि

आपके चरण का स्पर्श करता हूँ' इस तरह वन्दना करनेमें मुझसे जो आपको किसी प्रकार का क्लम (कष्ट) पहुँचा हो आप उसकी क्षमा करें । हे गुरु महाराज ! आपका दिन बहुत सुखशान्ति से व्यतीत हुआ न ?, आपकी सयमयात्रा निराबाध है न ?, और आपका शरीर, इन्द्रिय, नोइन्द्रिय की बाधा से रहित है न ? । इस प्रकार सयमयात्रा और शरीर के सम्बन्ध में कुशल पूछ कर फिर से शिष्य कहता है—हे क्षमाश्रमण ! मुझसे जो दिवस-सम्बन्धी

बाध थी आपना चरणने स्पर्श कइ छु आ प्रमाणे वदना करवाथी मारा वडे आपने जे डोछ प्रकारथी कष्ट थयु डोछ तो आप मने क्षमा करे ।

हे गुरु महाराज ! आपने दिवस भूण शांतिथी पसार थये छे डे डेम ? आपनी सयमयात्रा निराबाध छे डे डेम ? अने आपनु शरीर, इन्द्रिय, नोइन्द्रियनी बाधथी रहित छे डे डेम ? आ प्रमाणे सयमयात्रा अने शरीरना सम्बन्धमा कुशलता पूछीने शिष्य इरीथी कडे छे डे — हे क्षमाश्रमण ! माराथी

१— 'निजकठोरकरशिरसा' अत्र प्राप्यङ्गत्वादेकवद्भावः ।

२— 'भवताम्' अत्र 'कृत्यानां कर्त्तरि वा' (२।३।७१) इति कर्त्तरि पठौ ।

३— 'क्लान्त' भावे च ।

‘દેવસિય’ દિવસે ભવો દૈવસિકસ્ત, દિવસગન્ધોઽન્ન રાત્રેરપ્યુપલક્ષણસ્તેનાઽહો-
રાત્રકૃતમિત્યર્થઃ, ‘વઙ્કમ’ વ્યતિક્રમોઽપરાયસ્તમ્ ‘આવસ્સિયાણ’ આવશ્યક્યા=
અવશ્ય કર્તવ્યૈશ્વરણકરણયોગેર્નિવૃત્તા આવશ્યકી=અવશ્યકર્તવ્યગુરુશુશ્રૂષાદિરૂપા
તયા હેતુભૂતયા યત્કિન્નિવિપરીતમાચરિત સ્યાત્ તત્ ‘પઙ્કિમામિ’ પ્રતિક્રા-
મામિ=પરિત્યજામિ, યદ્વા તસ્માત્ પ્રતિક્રામામિ=ત્રિનિવર્ત્તે, इत्येव केचिद्व्याचक्षते,
વસ્તુતસ્તુ ‘સ્વામેમિ સ્વમાસમણો દેવસિય વઙ્કમ આવસ્સિયાણ પઙ્કિમામિ’
इत्यस्य हे क्षमाश्रमण ! सञ्जात दैवसिकमपराध क्षमापयामि भविष्यन्त च
तमवश्यकर्तव्यया भवदीयाऽऽज्ञाराधनया परित्यजामीत्येवार्थ इति वयम् ।
प्रोक्तमेवार्थ विशेषतः स्फोरयति-‘स्वमा०’ इति । ‘स्वमासमणाण’ क्षमाश्रमणाना
पूर्वोक्ताना ‘देवसियाण’ दैवसिक्या, दिवसपदस्य रात्रेरप्युपलक्षणत्वादहोरात्रस-

અપરાધ હુઆ હો ઉસકી ક્ષમા ચાહતા હું આપ ક્ષમા કરે, આવશ્યક
ક્રિયા કરતે સમય ભૂલ સે જો કુઝ વિપરીત આચરણ ક્રિયા ગયા
ઉસસે નિવૃત્ત હોતા હું’ હસ પ્રકાર કોઈ ૨ વ્યાખ્યા કરતે હૈં ।

વાસ્તવ મેં ‘સ્વામેમિ સ્વમાસમણો ! દેવસિય વઙ્કમ આવસ્સિ-
યાણ પઙ્કિમામિ’ કા તાત્પર્ય યહ હૈં-‘હે ક્ષમાશ્રમણ ! દિવસ
સન્ધી જો કુઝ અપરાધ હો જુકા હો ઉસકે લિયે ક્ષમા ચાહતા
હું ઓર ભવિષ્યમેં આપકી આજ્ઞાકી આરાધના રૂપ આવશ્યક ક્રિયા
કે દ્વારા અપરાધ સે અલગ રહુંગા, અર્થાત્ અપરાધ નહીં હોને
દેનેકા પ્રયત્ન કરુંગા’ । હસી વાત કો શિષ્ય વિસ્તારસે કહતા
હૈં-‘હે ગુરુ મહારાજ ! આપ ક્ષમાશ્રમણોં કી, દિવસ-સન્ધી તૈતીસ

દિવસ સન્ધી જે કાઈ અપરાધ થયો હોય તેની ક્ષમા માગુ છુ આપ ક્ષમા
કરો, આવશ્યક ક્રિયા કરવા વખતે ભૂલથી મારા વડે જે કાઈ વિપરીત આચરણ
થયુ હોય તેનાથી નિવૃત્ત થાઉ છુ -કોઈ કોઈ આવી રીતે વ્યાખ્યા કરે છે

વાસ્તવિક રીતે તો ‘સ્વામેમિ સ્વમાસમણો દેવસિય વઙ્કમ આવસ્સિયાણ
પઙ્કિમામિ’ આનો તાત્પર્ય એ છે કે ‘હે ક્ષમાશ્રમણ ! દિવસસન્ધી જે કાઈ
અપરાધ થયો હોય તેના માટે ક્ષમા માગુ છુ, અને ભવિષ્યમા આપની આજ્ઞાની
આરાધનારૂપ આવશ્યક ક્રિયા વડે અપરાધથી દૂર રહીશ અર્થાત્ અપરાધ ન થવા
પામે તેવો પ્રયત્ન કરીશ આ વાતને શિષ્ય વિસ્તારથી કહે છે -

હે ગુરુ મહારાજ ! આપ ક્ષમાશ્રમણની દિવસસન્ધી તેત્રીશ આશા

હસ્તલક્ષणेન સસ્પર્શઃ=સમ્યક્ સ્પર્શસ્તમ્ । ‘અણુજાણહ’ इत्यनेन पूर्वोक्तेन सम्बन्धः, करोमीत्यस्य शेषो वा । ‘क्लिमो’ क्लमः=शरीरग्लानिकृत् मत्कृतोऽपराधः निजकठोरकरशिरसा’ भवदीयकोमलचरणरमलस्पर्शनेत्यर्थात्, यदा मदीयेनाऽनेन नमस्कारव्यापारेण भवतो मानस एव कश्चन श्रमः मञ्जातः स्यात्स ‘भे’ भवद्भिः, यदा भवता’ ‘खमणिज्जो’ क्षमणीयः=सोढव्यः, तथा ‘अण्-किलताण’ अल्पशब्दोऽत्राऽभाववाची, ‘क्लान्त=क्लान्तिः, अल्प=विगत क्लान्त=शरीर ग्लानिरूपः श्रमो येषां तेऽल्पक्लान्तास्तेषामल्पक्लान्तानाम्-अल्पवेदनावतामित्यर्थः, ‘भे’ भवता गुरुवर्याणां ‘दिवसो’ दिवसः ‘बहुसुमेण’ बहु च तच्छुभं च बहुशुभं तेन प्रभूतशान्तिपूर्वकमित्यर्थः ‘वइकतो’ व्यतिक्रान्त’=गत’ किम् ? ‘जत्ता’ यात्रा=तपोनियमादिस्वरूपा सयमयात्रा ‘भे’ भवता निराबाधे ? ति शेषः, च=किञ्च ‘भे’ भवता शरीरमिति गम्यते ‘जवणिज्ज’ यापनीयम्=इन्द्रियनोऽन्द्रियबाधारहितं वर्तते ? इति शेषः, एव सयमयात्रादिकुशलमापृच्छ्य शिष्यः पुनरप्याह-‘खमासमणो’ हे क्षमाश्रमण ! ‘खामेमि’ क्षमापयामि

आपके चरण का स्पर्श करता हूँ’ इस तरह वन्दना करनेमें मुझसे जो आपको किसी प्रकार का क्लम (कष्ट) पहुँचा हो आप उसकी क्षमा करें । हे गुरु महाराज ! आपका दिन बहुत सुखशान्ति से व्यतीत हुआ न ?, आपकी सयमयात्रा निराबाध है न ?, और आपका शरीर, इन्द्रिय, नोऽन्द्रिय की बाधा से रहित है न ? । इस प्रकार सयमयात्रा और शरीर के सम्बन्ध में कुशल पूछ कर फिर से शिष्य कहता है-हे क्षमाश्रमण ! मुझसे जो दिवस-सम्बन्धी

હાથથી આપના ચરણનો સ્પર્શ કરું છું આ પ્રમાણે વદના કરવાથી મારા વડે આપને જે કોઈ પ્રકારથી કષ્ટ થયું હોય તેા આપ મને ક્ષમા કરો

હે ગુરુ મહારાજ ! આપનો દિવસ ખૂબ શાંતિથી પસાર થયો છે કે કેમ ? આપની સયમયાત્રા નિરાબાધ છે કે કેમ ? અને આપનું શરીર, ઇન્દ્રિય, નોઽન્દ્રિયની ઉપાધિથી રહિત છે કે કેમ ? આ પ્રમાણે સયમયાત્રા અને શરીરના સંબંધમા કુશળતા પૂછીને શિષ્ય ફરીથી કહે છે કે - હે ક્ષમાશ્રમણ ! મારાથી

૧- ‘નિજકઠોરકરશિરસા’ અત્ર પ્રાણ્યદ્વત્વાદેકવદ્ધાત્ ।

૨- ‘ભવતામ્’ અત્ર ‘કૃત્યાનાં વર્તરિ વા’ (૨।૩।૭૧) इति कर्त्तरि षष्ठी ।

૩- ‘ક્લ્લાન્ત’ ભાવે ક્લ ।

‘દેવસિય’ દિવસે ભવો દૈવસિકસ્ત, દિવસશબ્દોઽત્ર રાત્રેરપ્યુપલક્ષણસ્તેનાઽહો-
રાત્રકૃતમિત્યર્થઃ, ‘વહ્કમ’ વ્યતિક્રમોઽપરાગસ્તમ્ ‘આવસ્સિયાણ’ આવશ્યક્યા=
અવશ્ય કર્તવ્યૈશ્વરણકરણયોગૈર્નિવૃત્તા આવશ્યકી=અવશ્યકર્તવ્યગુરુશુશ્રૂપાદિરૂપા
તયા હેતુભૂતયા ચત્કિશ્ચિદ્વિપરીતમાચરિત સ્યાત્ તત્ ‘પહિક્કમામિ’ પ્રતિક્રા-
મામિ=પરિત્યજામિ, યદ્વા તસ્માત્ પ્રતિક્રામામિ=વિનિવર્ત્તે, इत्येव केचिद्व्याचक्षते,
વસ્તુતસ્તુ ‘સ્વામેમિ સ્વમાસમણો દેવસિય વહ્કમ આવસ્સિયાણ પહિક્કમામિ’
इत्यस्य हे क्षमाश्रमण ! सञ्जात दैवसिकमपराध क्षमापयामि भविष्यन्त च
तमवश्यकर्तव्यया भवदीयाऽऽज्ञाराधनया परित्यजामीत्येवार्थ इति वयम् ।
प्रोक्तमेवार्थ विशेषतः स्फोरयति-‘स्वमा०’ इति । ‘स्वमासमणाण’ क्षमाश्रमणाना
पूर्वोक्ताना ‘देवसियाण’ दैवसिक्या, दिवसपदस्य रात्रेरप्युपलक्षणत्वादहोरात्रस-

અપરાધ હુઆ હો ઉસકો ક્ષમા ચાહતા હું આપ ક્ષમા કરે, આવશ્યક
ક્રિયા કરતે સમય ભૂલ સે જો કુછ વિપરીત આચરણ કિયા ગયા
ઉસસે નિવૃત્ત હોતા હું’ હસ પ્રકાર કોઈ ૨ વ્યાખ્યા કરતે હૈં ।

વાસ્તવ મે ‘સ્વામેમિ સ્વમાસમણો ! દેવસિય વહ્કમ આવસ્સિ-
યાણ પહિક્કમામિ’ કા તાત્પર્ય યહ હૈ-‘હે ક્ષમાશ્રમણ ! દિવસ
સંબંધી જો કુછ અપરાધ હો ચુકા હો ઉસકે લિયે ક્ષમા ચાહતા
હું ઓર ભવિષ્યમેં આપકી આજ્ઞાકી આરાધના રૂપ આવશ્યક ક્રિયા
કે દ્વારા અપરાધ સે અલગ રહુંગા, અર્થાત્ અપરાધ નહીં હોને
દેનેકા પ્રયત્ન કરુંગા’ । હસી વાત કો શિષ્ય વિસ્તારસે કહતા
હૈ-‘હે ગુરુ મહારાજ ! આપ ક્ષમાશ્રમણોં કી, દિવસ-સંબંધી તૈતીસ

દિવસ સંબંધી જે કાઈ અપરાધ થયો હોય તેની ક્ષમા માગુ છુ આપ ક્ષમા
કરો, આવશ્યક ક્રિયા કરવા વખતે ભૂલથી મારા વડે જે કાઈ વિપરીત આચરણ
થયુ હોય તેનાથી નિવૃત્ત થાઉં છુ -કાઈ કાઈ આવી રીતે વ્યાખ્યા કરે છે

વાસ્તવિક રીતે તો ‘સ્વામેમિ સ્વમાસમણો દેવસિય વહ્કમ આવસ્સિયાણ
પહિક્કમામિ’ આનો તાત્પર્ય એ છે કે ‘હે ક્ષમાશ્રમણ ! દિવસસંબંધી જે કાઈ
અપરાધ થયો હોય તેના માટે ક્ષમા માગુ છુ, અને ભવિષ્યમા આપની આજ્ઞાની
આરાધનારૂપ આવશ્યક ક્રિયા વડે અપરાધથી દૂર રહીશ અર્થાત્ અપરાધ ન થવા
પામે તેવો પ્રયત્ન કરીશ આ વાતને શિષ્ય વિસ્તારથી કહે છે -

હે ગુરુ મહારાજ ! આપ ક્ષમાશ્રમણની દિવસસંબંધી તેત્રીશ આશા

मन्विन्येत्यर्थः, 'तेत्तीसन्नयराए' त्रयस्त्रिंशदन्यतरया त्रयस्त्रिंशदाशातनास्वन्यतरया=कयाचिदेकया 'आसायणाए' आशातनया आ=समन्तात् शात्यन्ते=खण्डयन्ते ज्ञानादयो गुणा यया, यद्वा आ=समन्तात् शातयति=अवरुणद्धि मोक्षमुख या सा- आशातना तया, तथा 'जकिंचिमिच्छाए' यत्किञ्चिन्मिथ्या=मिथ्याऽस्त्यस्या इति 'मिथ्या, या काचिन्मिथ्या=यत्किञ्चिन्मिथ्या' इत्या, यया कयाचिन्मिथ्यायुक्तयेत्यर्थः, असम्यग्भावसपन्नयेति यावत्, 'मणदुक्कडाए' मनोदुष्कृतया दुर्भावेन कृता=दुष्कृता, मनसा, ज्ञानपूर्वकमित्यर्थात् दुष्कृता=मनोदुष्कृता तया=अशुभपरिणामरूपयेति भावः । 'वयदुक्कडाए' वचोदुष्कृतया (समास प्राग्वत्, एवमग्रेऽपि) त्वङ्कारादिरूपयेत्यर्थः । 'कायदुक्कडाए' कायदुष्कृतया=उपगमनाऽवस्थानादिनिमित्तया 'कोहाए' क्रोधया=क्रोधोऽस्यामस्तीति क्रोधा तया क्रोधयुक्तयेत्यर्थः, एव 'माणाए' मानया=मानयुक्तया, 'मायाए' मायया=मायायुक्तया, 'लोहाए' लोभया=लोभयुक्तया

(३३) आशातनाओमे से किसी भी आशातना द्वारा, तथा मिथ्या-भाव के कारण अशुभ परिणाम से, तुकारा आदि दुर्वचनों से और अत्यन्त निकट चलना, अभ्युत्थानका न करना आदि शरीर की दुष्ट चेष्टा से, क्रोध, मान, माया और लोभ से की गई, तथा भूत भविष्य वर्तमान रूप तीनों कालों में की गई, सर्वथा मिथ्योपचारसे की गई, क्षान्त्यादि सकल-धर्मों का उल्लंघन करने वाली आशातना के कारण जो मुझसे दिवससम्बन्धी अतिचार किया

तना पैकी डोछ पणु आशातना वडे तथा मिथ्या लावनाने कारणे अशुभ परिणामथी, तुकारा वगेरे भराण वचनेथी अने अत्यन्त नजिक आलपु, अभ्युत्थान न करपु वगेरे शरीरनी दुष्ट चेष्टाथी, क्रोध, मान, माया, अने लोभथी करेदी तथा भूत, भविष्य, वर्तमान इपे त्रणे कालमा सर्वथा मिथ्या उपचारथी करेदी, क्षान्त्यादि सकल धर्मोतु उल्लंघन करवावाणी आशातनाना कारणे भारथी दिवस

१- 'जकिंचिमिच्छाए' इत्यारभ्य 'लोहाए' इत्यन्त यावत् सर्वत्र अर्शआदेराकृतिगणत्वान्मत्वर्थीयोऽच्प्रत्यय । आकृत्या=पठितगणविषयकशास्त्रविहिततत्तद्रणान्तर्गतत्वप्रयुक्तकार्यवत्तया गण्यते इत्याकृतिगणस्तस्य भावस्तत्र तस्मात्=आकृतिगणत्वादिति ।

२- मयूरग्यसकादिस्वात्ममाम ।

‘આસયણા’ એટલે વિશેષણાનીમાનિ । એવમહોરાત્રસમ્બન્ધિનીરાશાતના ઉક્ત્વા સમ્પ્રત્યૈહિકજાન્માન્તરિકાઽતીતાઽનાગતકાલિકાદિપરિગ્રહાયોચ્યતે— ‘સન્વ૦’ એટલાદિ ।

‘સન્વકાલિયા’ સર્વઃ કાલો યસ્યાઃ સા સર્વકાલિકા તયા, યદ્વા સર્વથાસૌ કાલઃ સર્વકાલસ્તત્ર ભવા સર્વકાલિકી તયા-વર્તમાનાઽતીતાદિકાલ-ત્રયસંજ્ઞાતયેત્યર્થઃ । ‘સન્વમિચ્છોવયારા’ સર્વમિહ્યોપચારયા=સર્વાંગતો મિ-હ્યોપચારયુક્તયા, સર્વો મિહ્યોપચારો યસ્યામિતિ વહુત્રીહેઃ । ‘સન્વધર્મમાઈકમણા’ સર્વે ચ તે ધર્મા અનુષ્ઠાનરૂપાઃ ક્ષાન્ત્યાદયઃ સર્વધર્માસ્તેપામતિક્રમણમ્=ઉલ્લઙ્ઘન યસ્યા સા, અથવા સર્વે ધર્માઃ પ્રવચનમાતરસ્તાસામતિક્રમણ યસ્યા સા, સર્વધર્મા-તિક્રમણા તયા । ‘આસાયણા’ આશાતનયા, (વ્યાખ્યાત આશાતનાપદાર્થઃ) ‘જો મે’ યો મયા ‘દેવસિઓ’ દૈવસિકઃ ‘અડ્યારો’ અતિચારઃ ‘કઓ’ કૃતઃ ‘તસ્સ’ તસ્ય તમિત્યર્થઃ, ‘પહિક્કમામિ’ ત્રિનિવર્ત્તે, ‘નિંદામિ ગરિહામિ અપ્પાણ વોસિરામિ’ એતિ પૂર્વવત્ । એવ ક્ષમયિત્વા ‘ઇચ્છામિ સ્વમાસમણો’ એટલાદિપાઠ પુનરપ્યુક્તેન વિધિના ભણેત્ । વન્દનાવિધિશ્ચ પ્રસન્નતોઽત્ર સ્ફુટપ્રતિ-પત્તયે નિરૂપ્યતે સ યથા—

વન્દનાવેલાયામ્ ‘ઇચ્છામિ સ્વમાસમણો વદિઉ જાવણિજ્ઞાણ નિસીહિયા’ એટલેચાર્યાઽવગ્રહપ્રવેશાયાઽઽજ્ઞા ગ્રહીતુ ગુરુસમક્ષ કૃતાઙ્ગલિઃ શિરો નમયેત્ (ઇય

ગયા હોં ઉસસે મૈ નિવૃત્ત હોતા હૂં, ઉસકી નિન્દા ઓર ગર્હી કરતા હૂં, તથા સાવધકારી આત્માકો વોસરતા (ત્યાગતા) હૂં ।

ઇસ પ્રકાર સ્વમાકર ફિરમી ઉક્ત વિધિ સે ક્ષમાશ્રમણ (પાઠ) પઢે । યદા પર પ્રસન્ન સે વન્દનાકી વિધિ કહતે હૈં વહ ઇમ તરહ-વન્દના કે સમય ‘ઇચ્છામિ સ્વમાસમણો વદિઉ જાવણિજ્ઞાણ નિસીહિયા’ એટલા યોલકર અવગ્રહમે પ્રવેશ કરનેકી આજ્ઞા કે લિયે અવગ્રહ સે બાહર

સળધી જે અતિચાર લાગ્યો હોય તેમાથી હું નિવૃત્ત થાઉં છું અને તેની નિંદા તથા ગર્હી કરું છું તથા સાવધકારી આત્માનો ત્યાગ કરું છું

આ પ્રમાણે ક્ષમા માગીને કરી પપુ કહેલી વિધિથી ક્ષમાશ્રમણ (પાઠ) બોલે અહિં પ્રસન્નથી વદનાની વિધિ કહે છે તે આ પ્રમાણે છે વદના કરવા વખતે “ઇચ્છામિ સ્વમાસમણો વદિઉ જાવણિજ્ઞાણ નિસીહિયા” આ પ્રમાણે બોલીને અવગ્રહમા પ્રવેશ કરવાની આજ્ઞા માટે અવગ્રહથી બહાર ઉભા ગ્રહીને બંને

૧- તસ્ય-તમિત્યર્થ , અત્ર દ્વિતીયાર્થે સમ્બન્ધવિવક્ષયાઽર્પત્વાદા પઠી ।

अन्धिन्येत्यर्थः, 'तेत्तीसन्नयराए' त्रयस्त्रिंशदन्यतरया त्रयस्त्रिंशदाशातनास्वन्यत
 रया=कयाचिदेकया 'आसायणाए' आशातनया आ=समन्तात् शात्यन्ते=
 खण्डयन्ते ज्ञानादयो गुणा यया, यद्वा आ=समन्तात् शातयति=अवरुणद्धि
 मोक्षसुख या सा- आशातना तया, तथा 'जकिंचिमिच्छाए' यत्किञ्चिन्मि
 थ्यया=मिथ्याऽस्त्यस्या इति 'मिथ्या, या काचिन्मिथ्या=यत्किञ्चिन्मिथ्या
 तया, यया कयाचिन्मिथ्यायुक्तयेत्यर्थः, असम्यग्भावसंपन्नयेति यावत्,
 'मणदुक्काए' मनोदुष्कृतया दुर्भावेन कृता=दुष्कृता, मनसा, ज्ञानपूर्वक-
 मित्यर्थात् दुष्कृता=मनोदुष्कृता तया=अशुभपरिणामरूपयेति भावः । 'वयदुक्-
 काए' वचोदुष्कृतया (समासः प्राग्वत्, एवमग्रेऽपि) त्वङ्कारादिरूपयेत्यर्थः ।
 'कायदुक्काए' कायदुष्कृतया=उपगमनाऽवस्थानादिनिमित्तया 'कोहाए' क्रोधया=
 क्रोधोऽस्यामस्तीति क्रोधा तया क्रोधयुक्तयेत्यर्थः, एव 'माणाए' मानया=मान
 युक्तया, 'मायाए' मायया=मायायुक्तया, 'लोहाए' लोभया=लोभयुक्तया

(३३) आशातनाओमे से किसी भी आशातना द्वारा, तथा मिथ्या-
 भाव के कारण अशुभ परिणाम से, तुकारा आदि दुर्वचनों से और
 अत्यन्त निकट चलना, अभ्युत्थानका न करना आदि शरीर की
 दुष्ट चेष्टा से, क्रोध, मान, माया और लोभ से की गई, तथा
 भूत भविष्य वर्तमान रूप तीनों कालों में की गई, सर्वथा मिथ्यो-
 पचारसे की गई, क्षान्त्यादि सकल-धर्मों का उल्लघन करने वाली
 आशातना के कारण जो मुझसे दिवससम्बन्धी अतिचार किया

तना पैकी डोछ पणु आशातना वडे तथा मिथ्या भावनाने, कारणे अशुभ परिणामथी,
 तुकारा वगेरे थाराण वचनेथी अने अत्यन्त नजिक आलसु, अभ्युत्थान न करणु
 वगेरे शरीरनी दुष्ट चेष्टाथी, क्रोध, मान, माया, अने लोभथी करेली तथा भूत,
 भविष्य, वर्तमान इपे त्रणे कालमा सर्वथा मिथ्या उपचारथी करेली,
 क्षान्त्यादि सकल धर्मोनु उल्लघन करवावाणी आशातनाना कारणे माराथी दिवस

१- 'जकिंचिमिच्छाए' इत्यारभ्य 'लोहाए' इत्यन्त यावत् सर्वत्र
 अर्शआदेराकृतिगणत्वान्मत्वर्थीयोऽच्प्रत्यय । आकृत्या=पठितगणविषयकशास्त्रवि-
 दिततत्त्वज्ञानान्तर्गतत्वप्रयुक्तकार्यवृत्तया गण्यते इत्याकृतिगणस्तस्य भावस्तस्य
 तस्मात्=आकृतिगणत्वादिति ।

२- मयूरव्यसकादित्वात्समाम ।

सुमेण मे दिवसो वड्ढतो ?' इति वाक्येनाऽपराधक्षमापणपूर्वकं दैवसिकं सुख-
शातादिकं पृष्ट्वा 'जत्ता मे' इत्युच्चार्य चतुर्थं 'जवणिज्ज' इत्युच्चार्य पञ्चमं 'च मे'
इत्युच्चार्य षष्ठं चाऽऽवर्त्तनं कृत्वा शिरो नमयित्वा 'खामेमि खमासमणो देवसिय
वड्ढम' इति वदेत्, ततः 'आवम्मिसयाए' इत्युक्त्वा, अवग्रहाद्विनिःसृत्य
क्षमाश्रमणस्य पूर्णं पट्टिकामुच्चारयेत् । एवमेकाऽवनतिः, एकं यथाजातं, तिस्रो
गुप्तयः, एकः प्रवेशः, एकं निष्क्रमणं, शिरोद्वय-क्षमापणकाले शिष्यम्यावनतं
शिरः प्रथमं शिरः, गुरुणा वन्दनस्वीकृतये यच्चालितं स्वशिरस्तद् द्वितीयं शिरः,
इति शिरोद्वयम्, षडावर्त्तनानि च सम्पद्यन्ते । ततः 'इच्छामि खमासमणो
वदिउ जावणिज्जाए निसीहियाए' इत्युच्चार्य पुनरवग्रहं प्रवेष्टुं गुरुपुरतो नत-

मे किलामो अप्पकिलताण बहुसुमेण मे दिवसो वड्ढतो ?' इस वाक्य
से अपराध की क्षमाप्रार्थनापूर्वकं दिवससम्बन्धी सुखशाता पूछ कर
'जत्ता मे' से चौथा 'जवणिज्ज' से पाचवाँ और 'च मे' से छठा
आवर्त्तन समाप्त कर के सिर झुकावे, अनन्तर 'खामेमि खमासमणो !
दैवसिय वड्ढम' यह पाठ बोले, फिर 'आवम्मिसयाए' कह कर
अवग्रह से बाहर आकर क्षमाश्रमण की पूरी पाटीको पढ़े । इस
प्रकार एक अवनति १, एक यथाजात २, तीन गुप्तियाँ ५, एक
प्रवेश ६, एक निष्क्रमण ७, दो मस्तक ८, (क्षमापण काल में शिष्य
गुरु के सामने मस्तक झुकावे, वह एक मस्तक हुआ, गुरु की तरफ
से स्वीकृतिसूचक मस्तक का हिलाना दूसरा मस्तक हुआ, इस
प्रकार दो मस्तक हुए) और छह आवर्त्तन १५, होते हैं ।

બેઠા સ્વમણિજ્ઞો મે કિલામો અપ્પકિલતાણ વહુસુમેણ મે દિવસો વડ્ઢતો
આ વાક્યથી અપરાધની પ્રાર્થનાપૂર્વક ક્ષમા માગવી તે પછી દિવસમળથી સુખ
શાંતિ પૂછીને "જત્તા મે" થી થોડું જવણિજ્જ થી પાંચમું અને ચ મે થી છઠું આવ
ર્તન પૂર્ણ કરી માથું નમાવવું પછી "સ્વામેમિ સ્વમાસમણો દેવસિય વડ્ઢમ"
આ પાઠ બોલવો અને ફરીથી આવસ્સિયાએ બોલીને અવગ્રહથી બહાર આવીને
ક્ષમાશ્રમણની પૂરી પાટી બોલવી, આ રીતે એક અવનતિ ૧, એક યથાજાત ૨, ત્રણ ગુપ્તિ ૫,
એક પ્રવેશ ૬, એક નિષ્ક્રમણ ૭, બે મસ્તક ૮ (ક્ષમાપણ સમયે શિષ્ય ગુરુસમીપે મસ્તક
નમાવે તે એક મસ્તક કહેવાય અને ગુરુ તરફથી સ્વીકાર સૂચક મસ્તકને હલાવવું
તે બીજો મસ્તક કહેવાય એ પ્રમાણે બે મસ્તક થયા) અને છ આવર્તન ૧૫ થાય છે
પછી "ઇચ્છામિ સ્વમાસમણો વદિઉ જાવણિજ્જાએ નિસીહિયાએ" બોલીને

गथमाञ्जनतिः); आज्ञालङ्घ्युत्तर दीक्षाग्रहणसमये परिश्रितचोलपट्टक-मावरण सदोरकमुग्ववस्त्रिकारजोहरणप्रमार्जिको वद्वाञ्जलिपुटश्चासीत्, तामवस्थामाश्रित्य वन्दनकरण यथाजातवन्दनम्, तत्पूर्वकं सन् गुप्तित्रयभूषितोऽवग्रहं प्रविश्य 'अ' इत्युच्चार्याञ्जलिपुट दक्षिणभागक्रमेण परिभ्राम्य रामभागमानीय शिरसा सयोज्य 'हो' इति उदेत्, इत्थं प्रथममावर्त्तनं समाप्य 'का' 'य' इत्युक्त्वा द्वितीय, 'काय' इत्यभिधाय तृतीयं चावर्त्तनं पूर्णत्वं कृत्वा 'सफास' इति वदन् शिरो नमयित्वा गुरुचरणौ स्पृशेत्, प्रविशन्नेव 'स्वमणिज्जो भे किलामो अप्पक्कित्ताण बहु

ही खडा हुआ दोनों हाथ ललाट प्रदेश पर रख कर गुरु के सामने शिर झुकावे (यह प्रथम अवनति)। आज्ञा प्राप्त हो जाने पर यथाजातवन्दन (दीक्षा ग्रहण के समय धारण किये हुए चदर चोलपट्टक के सहित एव मुह पर मुहपत्ती बान्धे हुए रजोहरण प्रमार्जिका के सहित अजली (दोनों हाथ) जोड़े हुए मुनि की वन्दन विधि को यथाजातवन्दन कहते हैं)-पूर्वक तीन गुप्तियों के सहित अवग्रहमे प्रवेश करके 'अ' ऐसा बोल कर अजलि को दाए हाथकी तर्फसे घुमा कर बायें हाथकी तरफ लावे और बादमे मस्तक पर लगाता हुआ 'हो' ऐसा बोले। इस प्रकार-प्रथम आवर्त्तन समाप्त करके 'का' और 'य' से दूसरा आवर्त्तन पूरा करे। फिर 'काय' से तीसरा आवर्त्तन करके 'सफास' बोलता हुआ शिर झुका कर चरण स्पर्श करे। बादमें वही बैठा हुआ 'स्वमणिज्जो

हाथ कपालना लागे उपर राणीने शुरुनी सामे माथु नमाववु (आ प्रथम अवनति) आज्ञा प्राप्त थया पछी यथाजातवन्दन-(दीक्षा अङ्गु समये धारणु करेले, आदर चोलपट्टक सहित तथा मोढा उपर मुहपत्ति बान्धेन, रजोहरण जोड्छा सहित अजलि (गन्ने हाथ) जोडेले मुनिनी वन्दनविधिने यथाजातवन्दन कडे छे) पूर्वक त्रणु गुप्ति सहित अवग्रहमा प्रवेश करीने अ शब्दने उच्चारणु करीने अजलि (वे हाथ जोडी) जमणु हाथ तरङ्गथी घुमावीने डाणा हाथ तरङ्ग लाववे अने पछीथी माथा उपर लगावीने हो ओम गोले ओ प्रमाणे प्रथम आवर्त्तन (वे हाथ जोडीने वर्तुल जमणु गान्धुथी डाणी गान्धु सुधी ईश्वरवु) पूर्ण करीने का अने य शब्दथी गीणु आवर्त्तन पूर करीने इरी काय थी त्रीणु आवर्त्तन करीने "सफास" बोलता थका माथु नमावीने अरणु स्पर्श करवे पछी तेज कथले भेडा

सुमेण मे दिवसो वडक्को ?' इति वाक्येनाऽपराधक्षमापणपूर्वकं दैवसिकं सुख-
शातादिकं पृष्ट्वा 'जत्ता मे' इत्युच्चार्य चतुर्थं 'जवणिज्ज' इत्युच्चार्य पञ्चमं 'च मे'
इत्युच्चार्य षष्ठं चाऽऽवर्त्तनं कृत्वा शिरो नमयित्वा 'खामेमि खमासमणो देवसिय
वडक्कम' इति वदेत्, ततः 'आवस्सियाए' इत्युक्त्वा, अवग्रहाद्विनिःसृत्य
क्षमाश्रमणस्य पूर्णं पट्टिकामुच्चारयेत् । एवमेकाऽवनतिः, एक यथाजातः, तिस्रो
गुप्तयः, एकः प्रवेशः, एक निष्क्रमणः, शिरोद्वय-क्षमापणकाले शिष्यम्यावनत
शिरः प्रथमं शिरः, गुरुणा वन्दनस्वीकृतये यच्चालितं स्वशिरस्तद् द्वितीयं शिरः,
इति शिरोद्वयम्, पडावर्त्तनानि च सम्पन्नन्ते । ततः 'इच्छामि खमासमणो
वदिउ जावणिज्जाए निसीहियाए' इत्युच्चार्य पुनरवग्रहं प्रवेष्टुं गुरुपुरतो नत-

मे किलामो अप्पकिल्लणाण बहुसुमेण मे दिवसो वडक्को ?' इस वाक्य
से अपराध की क्षमाप्रार्थनापूर्वक दिवससम्बन्धी सुखशाता पूछ कर
'जत्ता मे' से चौथा 'जवणिज्ज' से पाचवाँ और 'च मे' से छठा
आवर्त्तन समाप्त कर के सिर झुकावे, अनन्तर 'खामेमि खमासमणो !
देवसिय वडक्कम' यह पाठ बोले, फिर 'आवस्सियाए' कह कर
अवग्रह से बाहर आकर क्षमाश्रमण की पूरी पाटीको पढ़े । इस
प्रकार एक अवनति १, एक यथाजात २, तीन गुप्तियाँ ५, एक
प्रवेश ६, एक निष्क्रमण ७, दो मस्तक ८, (क्षमापण काल में शिष्य
गुरु के सामने मस्तक झुकावे, वह एक मस्तक हुआ, गुरु की तरफ
से स्वीकृतिसूचक मस्तक का हिलाना दूसरा मस्तक हुआ, इस
प्रकार दो मस्तक हुए) और छह आवर्त्तन १५, होते हैं ।

वेडा खमणिज्जो मे किलामो अप्पकिल्लणाण बहुसुमेण मे दिवसो वडक्को
आ वाक्यधी अपराधनी प्रार्थनापूर्वक क्षमा भागवी ते पछी दिवससणधी सुख
शाति पूछीने "जत्ता मे" थी ओथु जवणिज्ज थी पाचथु अने च मे थी छठु आव
र्त्तन पूर्णु करी माथु नमावतु पछी "खामेमि खमाममणो देवसिय वडक्कम"
आ पाठ ओलवो अने करीथी आवस्सियाए ओलीने अवग्रहधी णडार आवीने
क्षमाश्रमणनी पूरी पाटी ओलवी, आ रीते ओक अवनति १, ओक यथाजात २, तणु गुप्ति ५,
ओक प्रवेश ६, ओक निष्क्रमण ७, ओ मस्तक ८ (क्षमापण समये शिष्य गुरुसमीपे मस्तक
नमावे ते ओक मस्तक छडेवाय अने गुरु तरङ्गधी मरीडान् मूयड मस्तकने डलावतु
ते भीने मस्तक छडेवाय ओ प्रमाणे ओ मस्तक थया) अने छ आवर्त्तन १५ थाय छे
पछी "इच्छामि खमासमणो वदिउ जावणिज्जाए निसीहियाए" ओलीने

મસ્તક' પ્રાર્થયેત્, (ઇય દ્વિતીયાઽવનતિઃ), ગુર્વાજ્ઞયા યથાવિધ્યવગ્રહ પ્રવિશ્ય
પૂર્વવદ્વન્દમાનસ્તત્રૈયાઽવગ્રહે 'સ્વમાસમણ'—પટ્ટિકા સમાપયેત્, ઇહ નિષ્ક્રમણ
નાસ્તિ, અત્રૈકાઽવનતિરેક' પ્રવેશ' પઢાવર્ત્તનानि शिरोद्वयमिति पूर्वापरसकलनया
પચ્ચવિંશતિવિધય' । ઉક્તશ્ચ ભગવતા સમવાયાદ્વે—

‘દો ઓળય અઢાજાય, કિંકરુમ્મવારસાવય ।

ચત્તસિર તિગુત્ત ચ, દુપવેસ એગનિક્કલમણ ॥ ૧ ॥’ ઇતિ ॥મૂ૦ ૧॥

ઇતિ શ્રીવિશ્વવિખ્યાત-જગદ્વલ્લભ-પ્રસિદ્ધવાચક-પચ્ચદશભાષાકલિતલલિત

કલાપાઽઽલાપક-પ્રવિશુદ્ધગત્રપદ્યનૈકગ્રન્થનિર્માપક-વાદિમાનમર્દક-શ્રીશાહુ-

છત્રપતિકોલ્હાપુરરાજપદત્ત ‘જૈનશાસ્ત્રાચાર્ય’—પદભૂષિત કોલ્હાપુર-

રાજગુરુ-વાલબ્રહ્મચારિ-જૈનાચાર્ય-જૈનધર્મદિવાકર-પૂજ્યશ્રી-

ઘાસીલાલ-વ્રતિપ્રિરચિતાયા ધીશ્રમણમૂત્રસ્ય મુનિ-

તોપણ્યારયાયા વ્યાખ્યાયા વન્દનારુચ્ય

તૃતીયમધ્યયન સમાપ્તમ્ ॥ ૩ ॥

અનન્તર ‘ઇચ્છામિ સ્વમાસમણો વદિહ જાવણિજ્ઞાણ નિસીહિયાણ’
બોલ કર ફિરસે અવગ્રહમે પ્રવેશ કરને કે લિયે ગુરુ કે સામને
સિર છુકાવે (યહ દૂસરી અવનતિ હુઈ) । ગુરુ કી આજ્ઞા મિલને પર
વિધિપૂર્વક અવગ્રહમે પ્રવેશ કરકે પહેલે કી ભાંતિ વન્દના કરતા
હુઆ અવગ્રહમે હી ‘સ્વમાસમણ’ કી પાટી પૂરી બોલે ।-યહા પર
નિષ્ક્રમણ નહી હોતા હૈ, અત્ત એક અવનતિ ૧૬, એક પ્રવેશ ૧૭,
છહ આવર્ત્તન ૨૩, ઓર દો મસ્તક ૨૬ હોતે હૈ । હસ પ્રકાર
પૂર્વાપર કી સખ્યા જોડને સે વન્દના કી પચ્ચીસ વિધિયા હોતી હૈ ॥સૂ૦ ૧॥

ઇતિ તૃતીય અધ્યયન સપૂર્ણ ॥ ૩ ॥

ફરીથી અવગ્રહમા પ્રવેશ કરવાને માટે શુરુની સામે માથુ નમાવણુ (આ બીજી
અવનતિ થઈ) શુરુની આજ્ઞા મેળવી વિધિપૂર્વક અવગ્રહમા પ્રવેશ કરીને પ્રથમ
પ્રમાણે વદના કરતા થકા અવગ્રહમા જ “સ્વમાસમણ” ની પાટી પૂરી બોલવી અર્હિ
નિષ્ક્રમણ થતુ નથી એ માટે એક અવનતિ, એક પ્રવેશ, છ આવર્ત્તન, અને એ માથા
થાય છે આ રીતે પૂર્વાપરની સખ્યા જોડવાથી વદનાની પચ્ચીસ વિધિઓ થાય છે (સૂ૦ ૧)

ઇતિ તૃતીય અધ્યયન સપૂર્ણ

૧ છાયા—‘દ્વયવનત યથાજાત, કૃતિકર્મ દ્વાદશાવર્ત્તમ્ ।

ચતુ ગિરન્નિગુપ્ત ચ દ્વિપ્રવેશમેકનિષ્ક્રમણમ્’ ॥૧॥ ઇતિ ।

અથ પ્રતિક્રમણનામક ચતુર્થમધ્યયનમ્

પૂર્વાધ્યયને વન્દનાપૂર્વક ગુરુસમીપે ‘પઠિક્કમામિ’ इत्यनेन પ્રતિક્રમણ-પ્રતિજ્ઞા પ્રદર્શિતા, સમ્પ્રતિ ચતુર્થા યયને તદેવ પ્રતિક્રમણમાહ-અથવા પૂર્વાધ્યયને-ઽર્હત્પણીતસામાયિકાનુષ્ઠાતભિર્ગુરોર્વન્દનાદિરૂપા પ્રતિપત્તિઃ કૃત્તવ્યેત્યુક્તમ્, અત્ર ચતુર્થાધ્યયને તસ્યા પ્રતિપત્તેરકરણેન પ્રસ્થલિતસ્યાત્મનો નિન્દા પ્રરૂપ્યતે, સૂત્રે ‘સ્થલિયસ્સ નિન્દણા’ इत्यુક્તત્વાત્, યદ્વા વન્દના યયને વન્દનાદિરૂપ્યા મુનિ-ભક્ત્યા કર્મક્ષયો દર્શિતઃ, इह तु मिथ्यात्वाऽविरत्यादिपरित्यागेन કર્મમૂલ પ્રતિપિ-

। ચૌથા અ યયન ।

ત્રીસરે અધ્યયનમે વન્દનાપૂર્વક ગુરુ મહારાજકે સમીપ પ્રતિક્રમણ કી પ્રતિજ્ઞા કરને કી વિધિ દિખલાઈ ગઈ છે । અવ હસ ચૌથે અધ્યયન મેં ઉસી પ્રતિક્રમણ કો દિગ્વલાતે હેં । અથવા ત્રીસરે અધ્ય-યનમેં ‘અર્હન્ત ભગવાન સે ઉપદિષ્ટ સામાયિક કરનેવાલે ભવ્યો કો ગુરુકી વન્દનારૂપ પ્રતિપત્તિ (સેવા) કરની ચાહિયે’ એસા કહા છે, અવ હસ ચૌથે અ યયન મે વન્દના આદિ ન કરને કે, કારણ સ્થલિત આત્મા કી નિન્દા કી જાતી છે, અથવા વન્દના યયન મેં યહ દિખલાયા ગયાં છે કિ ‘વન્દનાદિરૂપ મુનિભક્તિ સે કર્મક્ષય હોતા છે’ ઓર હસ અધ્યયનમેં મિથ્યાત્વ અવિરતિ આદિકા ત્યાગ

ચેાથુ અધ્યયન

ત્રીજા અધ્યયનમા વદનાપૂર્વક ગુરુ મહાજની સમીપ પ્રતિક્રમણ કરવા માટે પ્રતિજ્ઞા કરવાની વિધિ બતાવવામા આવી છે હવે આ ચેથા અધ્યયનમા તે જ પ્રતિક્રમણને બતાવે છે અથવા ત્રીજા અધ્યયનમા ‘અર્હન્ત ભગવાનથી ઉપદેશ કરાએલી, સામાયિક કરનારા ભવ્ય હવેને ગુરુની વદનારૂપ પ્રતિપત્તિ (સેવા) કરવી જોઈએ’ એમ કહેલ છે, હવે આ ચેથા અધ્યયનમા વદના વિગેરે ન કરવાના કારણે સ્થલિત આત્માની નિંદા કરવામા આવે છે, અથવા વદના અધ્યયનમા આ બતાવવામા આવ્યું છે કે ‘વદનાદિરૂપ મુનિ-ભક્તિથી કર્મનો ક્ષય થાય છે’ અને આ અધ્યયનમા મિથ્યાત્વ અવિરતિ વિગેરેને

યતે । પ્રતિશબ્દોઽત્ર પ્રાતિકૂલ્યે તેન પ્રતિકૂલ ક્રમણ=પરાવૃત્ત્ય ગમન-પ્રતિક્રમણ^૧,
પૂર્વે શુભયોગેભ્યો વિનિષ્ક્રમ્યાઽશુભયોગસપ્રાપ્તસ્યાત્મનઃ પુનસ્તેષ્વેવ શુભયોગેષુ
સક્રમણમિત્યર્થઃ । તથા ચૌક્તમ્—

“સ્વસ્થાનાદપરસ્થાને, પ્રમાદાત્સંગતસ્ય યત્ ।

તત્રૈવ ક્રમણ ભૂયઃ પ્રતિક્રમણમુચ્યતે ॥” ઇતિ,

“ગતસ્યૌદયિકં ભાવં ક્ષાયોપશમિકાત્પુનઃ ।

ક્ષાયોપશમિકાઽઽવેશઃ પ્રતિક્રમણમુચ્યતે ॥” ઇતિ ચ ।

યદ્વા પ્રતિશબ્દ આભિમુખ્યાર્થકઃ ‘લક્ષર્ણેનાભિપ્રતી આભિમુખ્યે’ ઇત્યાદી

કરને સે કર્મનિદાનં કા પ્રતિવેધ દિશ્વલાયા જાતા હૈ । શુભ યોગ સે
અશુભયોગમે પહુચી હુઈ આત્માકો ફિર સે શુભયોગમે છેજાનેકા
નામ પ્રતિક્રમણ હૈ । જૈસા કિ કહા હૈ—

‘પ્રમાદ વશ અપને સ્વરૂપસે અશુભ યોગમે પ્રવૃત્ત આત્માકા
જો ફિરસે અપને સ્વરૂપમે આના ઉસે પ્રતિક્રમણ કહતે હૈ ॥૧॥’

તથા—

‘ક્ષાયોપશમિક ભાવસે ઔદયિક ભાવ કૌ પ્રાપ્ત આત્મા કે
ફિરસે ક્ષાયોપશમિક ભાવમે પ્રવેશ કરને કો પ્રતિક્રમણ કહતે
હૈ ॥ ૧ ॥’

અથવા જિસસે મૌક્ષ કે સન્મુખ જાયા જાય, યા શુભ

ત્યાગ કરવાથી કર્મનિદાનમે પ્રતિવેધ ગતાવવામા આવે છે શુભયોગથી અશુ
ભયોગમા પહોચેલ આત્માને ફરીથી શુભયોગમા લઈ જવાનું નામ પ્રતિક્રમણ છે
જેમ કહ્યું છે કે—

“પ્રમાદવશ ચેતામા સ્વરૂપથી અશુભ યોગમા પ્રવૃત્ત આત્માનું ફરીથી
ચેતામા સ્વરૂપમા આવવું તેને પ્રતિક્રમણ કહે છે” ॥ ૧ ॥

તથા ક્ષાયોપશમિક ભાવથી ઔદયિક ભાવને પામેલ આત્માને ફરીથી
ક્ષાયોપશમિક ભાવમા પ્રવેશ કરવાને પ્રતિક્રમણ કહે છે (૧)

અથવા જેનાથી મૌક્ષની સન્મુખ જવાય અથવા શુભયોગમા વારવાર

૧-પ્રતિક્રમણશબ્દ અપ્રતિ-પૂર્વકાત્ ‘ક્રમ પાદવિક્ષેપે’ ઇત્યસ્માત્

તથાદર્શનાત્, ક્રમુધાતુશ્ચ ગમનાર્થકસ્તેન પ્રતિ=મોક્ષાભિમુખ ક્રમ્યતે=ગમ્યતે-
ડનેતિ, અથવા પ્રતિશબ્દસ્ય મૃશાર્થકત્વાચ્છ્રમયોગેષુ વાર વારં ક્રમણ પ્રતિક્રમણમ્ ।
તત્ર (પ્રતિક્રમણે) ધ્યાનવિપરીકૃતમ્-‘આગમે તિવિહે’ ઇતિ પટ્ટિકાયા આરભ્ય
‘ઇચ્છામિ ઠામિ’ ઇતિ પર્યન્ત સર્વ પ્રસ્ફુટં વક્તવ્ય, તદનુ ‘તિવસુત્તો’ ઇત્યસ્ય
પાઠેન સવિધિ વન્દના વિધાય શ્રમણસૂત્રસ્યાજ્ઞા ગ્રહીતવ્યા, તત્તો નમસ્કારમન્ત્રોચ્ચા-
રણપૂર્વક ‘કરેમિ મતે’ ઇત્યુચ્ચાર્ય માઙ્ગલિકપુચ્ચારણીયમિતિ । સમ્પ્રતિ માઙ્ગલિક-
સૂત્રમાહ-‘ચત્તારિ’ ઇત્યાદિ ।

॥ મૂલમ ॥

ચત્તારિ મંગલ-અરિહતા મગલ, સિદ્ધા મગલ, સાહૂ મગલ, કેવલિપન્નત્તો ધમ્મો મગલ । ચત્તારિ લોગુત્તમા-અરિહતા લોગુત્તમા, સિદ્ધા લોગુત્તમા, સાહૂ લોગુત્તમા, કેવલિપન્નત્તો ધમ્મો લોગુત્તમો । ચત્તારિ સરણ પવજામિ,-અરિહતે સરણ પવજામિ, સિદ્ધે સરણ પવજામિ, સાહૂ સરણ પવજામિ, કેવલિપણ્ણત્ત ધમ્મં સરણ પવજામિ ॥ સૂ૦ ૧ ॥

યોગોં મેં ચાર વાર જો સક્રમણ (જાના) ઉસકો પ્રતિક્રમણ કહતે
હૈં । ઇમમેં ‘આગમે તિવિહે’ સે લેકર ‘ઇચ્છામિ ઠામિ’ તક વ્યાનમેં
ચિન્તિત સવ પાટિયોં (પાઠોં) કો પ્રગટ રુપસે બોલે, વાદમેં
‘તિવસુત્તો’ કે પાઠસે વિધિપૂર્વક વન્દના કરકે શ્રમણસૂત્ર કી આજ્ઞા
લેવેં તવ નમસ્કાર મન્ત્ર કે ઉચ્ચારણપૂર્વક ‘કરેમિ મતે’ કી પાટી રોલ
કર માગલિક બોલે, એસા નિયમ હૈ, હસ કારણ યહા માગલિક
કહતે હૈ-‘ચત્તારિ’ ઇત્યાદિ ।

સક્રમણ (જુ) તેને પ્રતિક્રમણ કહે છે, એમા “આગમે તિવિહે” થી લઈને
‘ઇચ્છામિ ઠામિ’ સુધી ધ્યાનમા ચિન્તિત બધી પાટિઓ (પાઠ)ને બાંહેડે રૂપે
બોલે પછી ‘તિવસુત્તો’ ના પાઠથી વિધિ-પૂર્વક વદના કરીને શ્રમણ સૂત્રની
આજ્ઞા લઈ નમસ્કાર મંત્રના ઉચ્ચારણ પૂર્વક (કરેમિ મતે) ની પાટી બોલીને
માગલિક બોલવું એવો નિયમ છે એટલા માટે અહિંયા માગલિક કહે છે
‘ચત્તારિ’ ઇત્યાદિ

યતે । પ્રતિશબ્દોઽત્ર પ્રાતિકૂળ્યે તેન પ્રતિકૂલ ક્રમણઽપરાદૃશ્ય ગમન-પ્રતિક્રમણ^૧,
પૂર્વે શુભયોગેભ્યો વિનિષ્ક્રમ્યાઽશુભયોગસપ્રાપ્તસ્યાત્મનઃ પુનસ્તૈષ્વેવ શુભયોગેષુ
સક્રમણમિત્યર્થઃ । તથા ચૌક્તમ્—

“સ્વેસ્થાનાદપરસ્થાને, પ્રમાદાત્સંગતસ્ય યત્ ।

તત્રૈવ ક્રમણ ભૂયઃ પ્રતિક્રમણમુચ્યતે ॥” ઇતિ,

“ગતસ્યૌદયિક ભાવે ક્ષાયોપશમિકાત્પુનઃ ।

ક્ષાયોપશમિકાઽઽવેશઃ પ્રતિક્રમણમુચ્યતે ॥” ઇતિ ચ ।

યદ્વા પ્રતિશબ્દ આભિમુખ્યાર્થકઃ ‘લક્ષણેનાભિપ્રતી આભિમુખ્યે’ ઇત્યાદી

કરને સે કર્મનિર્દાન કા પ્રતિષેધ દિવલાયા જાતા હૈ । શુભ યોગ સે
અશુભયોગમે પહુંચી હુઈ આત્માકો ફિર સે શુભયોગમે હેજાનેકા
મામ પ્રતિક્રમણ હૈ । જૈસા કિ કહા હૈ—

‘પ્રમાદ વશ અપને સ્વરૂપસે અશુભ યોગમે પ્રવૃત્ત આત્માકા
જો ફિરસે અપને સ્વરૂપમે આના ઉસે પ્રતિક્રમણ કહતે હૈ ॥૧॥’

તથા—

‘ક્ષાયોપશમિક ભાવસે ઔદયિક ભાવ કો પ્રાપ્ત આત્મા કે
ફિરસે ક્ષાયોપશમિક ભાવમે પ્રવેશ કરને કો પ્રતિક્રમણ કહતે
હૈ ॥ ૧ ॥’

અથવા જિસસે મોક્ષ કે સન્મુખ જાયા જાય, યા શુભ

ત્યાગ કરવાથી કર્મનિર્દાનમે પ્રતિષેધ જતાવવામા આવે છે શુભયોગથી અશુ
ભયોગમા પહોંચેલ આત્માને ફરીથી શુભયોગમા લઈ જવાનું મામ પ્રતિક્રમણ છે
નેમ કહ્યું છે કે—

“પ્રમાદવશ ચેતામા સ્વરૂપથી અશુભ યોગમા પ્રવૃત્ત આત્માનું ફરીથી
ચેતામા સ્વરૂપમા આવવું તેને પ્રતિક્રમણ કહે છે” ॥ ૧ ॥

તથા ક્ષાયોપશમિક ભાવથી ઔદયિક ભાવને પામેલ આત્માને ફરીથી
ક્ષાયોપશમિક ભાવમા પ્રવેશ કરવાને પ્રતિક્રમણ કહે છે (૧)

અથવા જેનાથી મોક્ષની સન્મુખ જવાય અથવા શુભયોગમા વારવાર

૧—પ્રતિક્રમણશબ્દઅ પ્રતિ+પૂર્વકાત્ ‘ક્રમ પાદવિક્ષેપે’ ઇત્યસ્માત્
લ્યુટ્ પ્રત્યયે સિદ્ધ ।

તથાદર્શનાત્, ક્રમુધાતુશ્ચ ગમનાર્થકસ્તેન પ્રતિ=મોક્ષાભિમુખ ક્રમ્યતે=ગમ્યતે-
ડનેનેતિ, અથવા પ્રતિશબ્દસ્ય ધૃશાર્થકૃત્વાચ્છુભયોગેષુ વાર વાર ક્રમણ પ્રતિક્રમણમ્ ।
તત્ર (પ્રતિક્રમણે) ધ્યાનત્રિપયીકૃતમ્-‘આગમે તિવિદ્ધે’ ઇતિ પટ્ટિકાયા આરભ્ય
‘ઇચ્છામિ ઠામિ’ ઇતિ પર્યન્ત સર્વે પ્રસ્ફુટં વક્તવ્ય, તદનુ ‘તિક્કલુત્તો’ ઇત્યસ્ય
પાઠેન સત્ત્વિધિ વન્દના ત્રિધાય શ્રમણસૂત્રસ્યાજ્ઞા ગ્રહીતવ્યા, તતો નમસ્કારમન્ત્રોચ્ચા-
રણપૂર્વક ‘કરેમિ ભત્તે’ ઇત્યુચાર્ય માઙ્ગલિકમુચારણીયમિતિ । સમ્પ્રતિ માઙ્ગલિક-
સૂત્રમાહ-‘ચત્તારિ’ ઇત્યાદિ ।

॥ મૂલમ ॥

ચત્તારિ મંગલ-અરિહતા મગલ, સિદ્ધા મગલ, સાહૂ
મગલ, કેવલિપન્નત્તો ધમ્મો મગલ । ચત્તારિ લોગુત્તમા-અરિહતા
લોગુત્તમા, સિદ્ધા લોગુત્તમા, સાહૂ લોગુત્તમા, કેવલિપન્નત્તો
ધમ્મો લોગુત્તમો । ચત્તારિ સરણ પવજ્ઞામિ, -અરિહતે સરણ પવજ્ઞામિ,
સિદ્ધે સરણ પવજ્ઞામિ, સાહૂ સરણ પવજ્ઞામિ, કેવલિપણ્ણત્ત
ધમ્મં સરણ પવજ્ઞામિ ॥ સૂ. ૧ ॥

યોગોં મેં વાર વાર જો સક્રમણ (જાના) ઉસકો પ્રતિક્રમણ કહતે
હૈં । ઇસમેં ‘આગમે તિવિદ્ધે’ સે લેકર ‘ઇચ્છામિ ઠામિ’ તક વ્યાનમેં
ચિન્તિત સચ પાટિયોં (પાઠોં) કો પ્રગટ રૂપસે બોલે, - વાદમેં
‘તિક્કલુત્તો’ કે પાઠસે વિધિપૂર્વક વન્દના કરકે શ્રમણસૂત્ર કી આજ્ઞા
લેવેં તય નમસ્કાર મન્ત્ર કે ઉચ્ચારણપૂર્વક ‘કરેમિ ભત્તે’ કી પાટી બોલ
કર માગલિક બોલે, એસા નિયમ હૈ, ઇસ કારણ યહા માગલિક
કહતે હૈં-‘ચત્તારિ’ ઇત્યાદિ ।

સ કંમણ (જુ) તેને પ્રતિક્રમણ કહે છે, એમા “આગમે તિવિદ્ધે” થી લઈને
‘ઇચ્છામિ ઠામિ’ સુધી ધ્યાનમા ચિન્તિત બધી પાટિઓ (પાઠ)ને બાંહેડર રૂપે
બોલે બધી ‘તિક્કલુત્તો’ ના પાઠથી વિધિ-પૂર્વક વદના કરીને - શ્રમણ સૂત્રની
આજ્ઞા લઈ નમસ્કાર મન્ત્રના ઉચ્ચારણ પૂર્વક (કરેમિ ભત્તે) ની પાટી બોલીને
માગલિક બોલણુ એવો નિયમ છે એટલા માટે અહિયાં માગલિક કહે છે
‘ચત્તારિ’ ઇત્યાદિ

યતે । પ્રતિશબ્દોઽત્ર પ્રાતિકૂલ્યે તેન પ્રતિકૂલ ક્રમણઽપરાઠ્ઠ્ય ગમન-પ્રતિક્રમણ^૧,
પૂર્વે શુભયોગેશ્યો વિનિર્દ્યુત્યાઽશુભયોગસપ્રાપ્તમ્યાત્મનઃ પુનસ્તેઽર્થેવ શુભયોગેષુ
સક્રમણમિત્યર્થઃ । તથા ચૌક્તમ્—

“સ્વસ્થાનાદપરસ્થાને, પ્રમાદાત્સંગતસ્ય યત્ ।

તત્રૈવ ક્રમણ ભૂયઃ પ્રતિક્રમણમુચ્યતે ॥” ઇતિ,

“ગતસ્યૌદયિક ભાવે ક્ષાયોપશમિકાત્પુનઃ ।

ક્ષાયોપશમિકાઽઽવેશઃ પ્રતિક્રમણમુચ્યતે ॥” ઇતિ ચ ।

યદ્વા પ્રતિશબ્દ આભિપ્રુચ્યાર્થકઃ ‘લક્ષર્ણેનાભિપ્રતી આભિપ્રુચ્યે’ ઇત્યાદી

કરને સે કર્મનિવાન કા પ્રતિષેધ દિવલાયા જાતા હૈ । શુભ યોગ સે
અશુભયોગમે પહુન્ચી હુઈ આત્માકો ફિર સે શુભયોગમે છેજાનેકા
નામ પ્રતિક્રમણ હૈ । જૈસા કિ કહા હૈ—

‘પ્રમાદ વશ અપને સ્વરૂપસે અશુભ યોગમે પ્રવૃત્ત આત્માકા
જો ફિરસે અપને સ્વરૂપમે આના ઉસે પ્રતિક્રમણ કહતે હૈ ॥૧॥’

તથા—

‘ક્ષાયોપશમિક ભાવસે ઔદયિક ભાવ કૌ પ્રાપ્ત આત્મા કે
ફિરસે ક્ષાયોપશમિક ભાવમે પ્રવેશ કરને કો પ્રતિક્રમણ કહતે
હૈ ॥ ૧ ॥’

અથવા જિસસે મૌક્ષ કે સન્મુખ જાયા જાય, યા શુભ

ત્યાગ કરવાથી કર્મનિવાનમે પ્રતિષેધ ગતાવવામા આવે છે શુભયોગથી અશુ
ભયોગમા પહોંચેલા આત્માને ફરીથી શુભયોગમા લઈ જવાનું નામ પ્રતિક્રમણ છે
જેમ કહ્યું છે કે—

“પ્રમાદવશ ચોતામા સ્વરૂપથી અશુભ યોગમા પ્રવૃત્ત આત્માનું ફરીથી
ચોતામા સ્વરૂપમા આવવું તેને પ્રતિક્રમણ કહે છે” ॥ ૧ ॥

તથા ક્ષાયોપશમિક ભાવથી ઔદયિક ભાવને પ્રાપ્ત આત્માને ફરીથી
ક્ષાયોપશમિક ભાવમા પ્રવેશ કરવાને પ્રતિક્રમણ કહે છે (૧)

અથવા જેનાથી મૌક્ષની સન્મુખ જવાય અથવા શુભયોગમા વારવાર

૧—પ્રતિક્રમણશબ્દશ્ચ પ્રતિ+પૂર્વકાત્ ‘ક્રમ પાદવિક્ષેપે’ ઇત્યસ્માત્
સ્યુદ્ પ્રત્યયે સિદ્ધ ।

તથાદર્શનાત્, ક્રમુધાતુશ્ચ ગમનાર્થકસ્તેન પ્રતિ=મોક્ષાભિમુખ ક્રમ્યતે=ગમ્યતે-
ડનેનેતિ, અથવા પ્રતિશબ્દસ્ય મૃશાર્થકત્વાચ્છુભયોગેષુ વાર વાર ક્રમણ પ્રતિક્રમણમ્ ।
તત્ર (પ્રતિક્રમણે) ધ્યાનવિપરીકૃતમ્—‘આગમે તિવિહે’ ઇતિ પટ્ટિકાયા આરમ્ભ્ય
‘ઇચ્છામિ ઠામિ’ ઇતિ પર્યન્ત સર્વ પ્રસ્ફુટં વક્તવ્ય, તદનુ ‘તિક્કલુત્તો’ ઇત્યસ્ય
પાઠેન સત્તિવિચિ વન્દના વિધાય શ્રમણસૂત્રસ્યાજ્ઞા ગ્રહીતવ્યા, તત્તો નમસ્કારમન્ત્રોચ્ચા-
રણપૂર્વક ‘કરેમિ મત્તે’ ઇત્યુચ્ચાર્ય માઙ્ગલિકપુચ્ચારણીયમિતિ । સમ્પ્રતિ માઙ્ગલિક-
સૂત્રમાઠ—‘ચત્તારિ’ ઇત્યાદિ ।

॥ મૂલમ ॥

ચત્તારિ મંગલ—અરિહતા મગલ, સિદ્ધા મગલ, સાહૂ
મગલ, કેવલિપન્નત્તો ધમ્મો મગલ । ચત્તારિ લોગુત્તમા—અરિહતા
લોગુત્તમા, સિદ્ધા લોગુત્તમા, સાહૂ લોગુત્તમા, કેવલિપન્નત્તો
ધમ્મો લોગુત્તમો । ચત્તારિ સરણ પવજ્ઞામિ,—અરિહતે સરણ પવજ્ઞામિ,
સિદ્ધે સરણ પવજ્ઞામિ, સાહૂ સરણ પવજ્ઞામિ, કેવલિપર્ણત્ત
ધમ્મં સરણ પવજ્ઞામિ ॥ સૂ૦ ૧ ॥

યોગો મેં વાર વાર જો સક્રમણ (જાના) ઉસકો પ્રતિક્રમણ કહતે
હૈં । ઇસમેં ‘આગમે તિવિહે’ સે લેકર ‘ઇચ્છામિ ઠામિ’ તક ધ્યાનમેં
ચિન્તિત સબ પાટિયોં (પાઠોં) કો પ્રગટ રૂપસે બોલે, વાદમેં
‘તિક્કલુત્તો’ કે પાઠસે વિધિપૂર્વક વન્દના કરકે શ્રમણસૂત્ર કી આજ્ઞા
લેવેં તત્ર નમસ્કાર મન્ત્ર કે ઉચ્ચારણપૂર્વક ‘કરેમિ મત્તે’ કી પાટી રોલ
કર માગલિક બોલે, એસા નિયમ હૈ, ઇસ કારણ યહા માગલિક
કહતે હૈં—‘ચત્તારિ’ ઇત્યાદિ ।

સ કંમણ (જલુ) તેને પ્રતિક્રમણ કહે છે, એમા “આગમે તિવિહે” થી લઈને
‘ઇચ્છામિ ઠામિ’ સુધી ધ્યાનમા ચિન્તિત બધી પાટિઓ (પાઠ)ને બાહેર રૂપે
બોલે પછી ‘તિક્કલુત્તો’ ના પાઠથી વિધિ-પૂર્વક વદના કરીને શ્રમણ સૂત્રની
આજ્ઞા લઈ નમસ્કાર મત્રના ઉચ્ચારણ પૂર્વક (કરેમિ મત્તે) ની પાટી બોલીને
માગલિક બોલવું એવો નિયમ છે એટલા માટે અહિંયા માગલિક કહે છે
‘ચત્તારિ’ ઇત્યાદિ

॥ छाया ॥

चत्वारो मङ्गलम्-अर्हन्तो मङ्गल, सिद्धा मङ्गल, साधवो मङ्गल, केवलि-
पद्मसो धर्मो मङ्गलम् । चत्वारो लोकोत्तमाः-अर्हन्तो लोकोत्तमाः, सिद्धा लोको-
त्तमाः, साधवो लोकोत्तमाः, केवलिपद्मसो धर्मो लोकोत्तमः । चतुरः शरण प्रपद्ये-
अर्हतः शरण प्रपद्ये, सिद्धान् शरण प्रपद्ये, साधून् शरण प्रपद्ये, केवलिपद्मस-
धर्मं शरण प्रपद्ये ॥ सू० १ ॥

॥ टीका ॥

‘चत्वारि’ चत्वारः, ‘गल’-मङ्गलम्-मङ्गल’=श्रुतचारित्रादिरूपो धर्मस्त-
लाति=आदत्त इति ‘मङ्गलम्, यद्वा मां गालयति=भवादपनयतीति, मङ्गल-
मङ्गलः=भूषण=ज्ञानदर्शनादि त लाति आदत्त इति वा मङ्गलम्, अथवा मङ्गल्यते=
प्राप्यते हितमनेनेति ‘मङ्गलम् । अत्रैकवचनं तु अर्हदादिचतुष्टयनिष्ठस्य मङ्गलत्व-
स्यैकत्वेन ‘सूत्राणि प्रमाणम्’ इत्यादिवत्, तत्र हि प्रमितिकरणतावच्छेदकसूत्रत्वा-
वच्छिन्नयावत्सूत्रनिष्ठमेकमेवेत्यवच्छेदकैकत्वमादायैकवचनप्रयोगः, स्पष्टमिदम्
न्यत्र विस्तरेण । ‘चत्वारि’ इत्युक्तं, सम्प्रति चतुःपदार्थानाह-‘अरिहता’

चार मङ्गलस्वरूप हैं, मङ्गल उसको कहते हैं जो श्रुत
चारित्र रूप धर्म को देनेवाला हो, अथवा मुझ (नमस्कार करनेवाले)
को ससारसे पार करने वाला हो, या मङ्गल=ज्ञान दर्शन आदि
भूषण को धारण करनेवाला हो, अथवा जिसके द्वारा हितकी
प्राप्ति हो । इस प्रकार सामान्यतया मङ्गलका निरूपण करके अब
चार शब्दसे जो लिए जाते हैं उन का निरूपण करते हैं-अर्हत

चार मङ्गल स्वरूप छे, मङ्गल तेने कहे छे छे छे छे श्रुत चारित्ररूप धर्मने
देवावाणो होय अथवा ‘मने’ (नमस्कार करवावाणाने) ससारथी पार करनारो
होय अथवा मङ्गल ज्ञान दर्शन विगेरे लूषणने धारण करवावाणा होय अथवा
‘नेना द्वारा हितनी प्राप्ति थाय, आधी रीते सामान्य प्रकारे मङ्गलनु निरूपण
करीने छेवे चारथी छे देवाय तेनु निरूपण करे छे अर्हत-समस्त विघ्नेनाह

१-‘आतोऽनुपसर्गे क’ (३।२।३) इति कप्रत्यये ‘आतो लोप इटी’ त्यालोपः ।

२-मङ्गल-‘मकि मण्डने’ भौवादिक आत्मनेपदी, सिद्धि पृषोदरादिषाठात् ।

३-‘मङ्गलम्’-गत्यर्थकात् ‘मगि’ धातोर्गौणादिकोऽलच् प्रत्ययः ।

४-अन्यत्र=व्युत्पत्तिवादादिषु ।

અર્હન્તઃ ‘મગલ’ મદ્ગલમ્—સકલવિત્રવિનાશકત્વાન્મદ્ગલસ્વરૂપત્વેન સામાનાધિક-
રણ્યમુખ્યોઃ, મદ્ગલત્વસ્ય જાતેઃ સર્વેષ્વર્હત્સ્વેકત્વેનૈકવચનમિતિ પ્રાગુક્ત ન વિસ્મર્ત-
વ્યમ્ । ‘સિદ્ધા મગલ’ નિગદસ્પટ્ટમિદમ્ । ‘સાહુ મગલ’ સાધુ મદ્ગલમ્, સાધુ-
પદેનાઽઽચાર્યોપાધ્યાય અપિ લક્ષ્યન્તે તેપામપિ સાધુતાઽવચ્છેદકધર્મવત્ત્વાત્,
અર્હદાદિપદવ્યાખ્યા ચ નમસ્કારમન્ત્રે ગતા । ‘કેવલિપણ્ણત્તો ધમ્મો’ કેવલ=
કેવલજ્ઞાનમસ્ત્યેપામિતિ કેવલિનસ્તૈઃ પ્રજ્ઞપ્તઃ=પ્રરૂપિતઃ કેવલિપ્રજ્ઞપ્ત, ધર્મ =શ્રુત-
ચારિત્રલક્ષણઃ ‘મગલ’=મદ્ગલસ્વરૂપઃ । ‘ચત્તારિ’ ચત્તાર ‘લોગુત્તમા’
લોકેષુ=દ્રવ્યભાવરૂપેષુ ઉત્તમા=શ્રેષ્ઠા લોકોત્તમાઃ । ‘લોકસ્યોત્તમાઃ’ ઇતિ
વ્યાખ્યાન તુ ન સમ્યક્, નિર્દારણપટ્ટચામેકવચનાન્તત્ત્વસ્યાસદ્ગતેઃ, ‘ન નિર્દારણે’
(૨ । ૨ । ૧૦) ઇતિ સમાસપ્રતિષેધાચ્ચ । ‘અરિહતા લોગુત્તમા’ અર્હન્તો
લોકોત્તમાઃ । ‘સિદ્ધા લોગુત્તમા’ સિદ્ધા લોકોત્તમાઃ । ‘સાહુ લોકોત્તમા’
સાધુ લોકોત્તમા । ‘કેવલિપણ્ણનો ધમ્મો લોગુત્તમો’ કેવલિપ્રજ્ઞપ્તો ધર્મો
લોકોત્તમઃ । ‘ચત્તારિ’ ચતુરઃ, ‘સરણ’ શરણમ્ ‘પવજ્ઞામિ’ પ્રપન્ને=પ્રાપ્નોમિ
ચતુર્ગતિભ્રમણભયપરિત્રાણાયેત્યર્થાત્ । ‘અરિહતે સરણ પવજ્ઞામિ’ અર્હતઃ શરણ
પ્રપન્ને । ‘સિદ્ધે સરણ પવજ્ઞામિ’ સિદ્ધાન્ શરણ પ્રપન્ને । ‘કેવલિપણ્ણત્ત ધમ્મ
સરણ પવજ્ઞામિ’ કેવલિપ્રજ્ઞપ્તધર્મશરણ પ્રપન્ને, નિગદવ્યાખ્યાતમિદ સર્વમ્ ॥મૂ० ૧॥

સમસ્ત વિદ્વોં કે વિનાશક હોને સે મગલસ્વરૂપ હૈ ૧ । વૈસે હી
સિદ્ધ મગલસ્વરૂપ હૈ ૨ । સાધુ પદસે ઘઠા પર સાધુ, આચાર્ય,
ઉપાધ્યાય, ત્રીનોં કા ગ્રહણ હૈ અત્ત ઇવ અર્થ હુઆ કિ—સાધુ,
આચાર્ય તથા ઉપાધ્યાય મગલસ્વરૂપ હૈ ૩ । કેવલી પ્રરૂપિત ધર્મ
મગલસ્વરૂપ હૈ ૪ । યે હી ચાર લોકમેં ઉત્તમ હૈ અત્ત ઇવ ઇન્હીં
ચારોં કી શરણ કો મૈ પ્રાપ્ત હોતા હૂં, ક્યોં કિ ચતુર્ગતિ-ભ્રમણ
કે ભય કો દટાને ચાલે યે હી ચાર હૈ ॥ સૂ० ૧ ॥

નાશ કરવાવાળા હોવાથી મગલસ્વરૂપ છે (૧) તેની જ રીતે સિદ્ધ મગલ-
સ્વરૂપ છે (૨) સાધુ પદથી અર્હિયા સાધુ, આચાર્ય, ઉપાધ્યાય, ત્રણેનું ગ્રહણ છે
એટલા માટે અર્થ થયો કે સાધુ, આચાર્ય તથા ઉપાધ્યાય મગલસ્વરૂપ છે (૩)
કેવળિપ્રરૂપિત ધર્મ મગલસ્વરૂપ છે (૪) એ જ ચાર લોકમા ઉત્તમ છે એટલે
એ ચારેના શરણને હું પ્રાપ્ત થાઉં છું કારણ કે ચતુર્ગતિ-ભ્રમણના ભયને
હટાવવાવાળા એ જ ચાર છે

॥ छाया ॥

चत्वारो मङ्गलम्-अर्हन्तो मङ्गल, सिद्धा मङ्गल, साधवो मङ्गल, केवलि-
पद्मसो धर्मो मङ्गलम् । चत्वारो लोकोत्तमाः-अर्हन्तो लोकोत्तमाः, सिद्धा लोको-
त्तमाः, साधवो लोकोत्तमाः, केवलिपद्मसो धर्मो लोकोत्तमः । चतुरः शरण प्रपन्ने-
अर्हतः शरण प्रपन्ने, सिद्धान् शरण प्रपन्ने, साधून् शरण प्रपन्ने, केवलिपद्म-
धर्म शरण प्रपन्ने ॥ मू० १ ॥

॥ टीका ॥

‘चत्वारि’ चत्वारः, ‘मङ्गल’-मङ्गलम्-मङ्गल=श्रुतचारित्रादिरूपो धर्मस्त-
लाति=आदत्त इति ‘मङ्गलम्’, यद्वा मा गालयति=भयादपनयतीति, मङ्गल-
मङ्गलः=भूषण=ज्ञानदर्शनादि त लाति आदत्त इति वा मङ्गलम्, अथवा मङ्गल्यते=
प्राप्यते हितमनेनेति ‘मङ्गलम्’ । अत्रैकवचनं तु अर्हदादिचतुष्टयनिष्ठस्य मङ्गलत्व-
स्यैकत्वेन ‘सूत्राणि प्रमाणम्’ इत्यादिवत्, तत्र हि प्रमितिकरणतावच्छेदक सूत्रत्वा-
वच्छिन्नयावत्सूत्रनिष्ठमेकमेवेत्यवच्छेदकैकत्वमादायैकवचनप्रयोगः, स्पष्टमिदम्
न्यत्र विस्तरेण । ‘चत्वारि’ इत्युक्तं, सम्प्रति चतु पदार्थानाह-‘अरिहता’

चार मङ्गलस्वरूप हैं, मङ्गल उसको कहते हैं जो श्रुत
चारित्र रूप धर्म को देनेवाला हो, अथवा मुझ (नमस्कार करनेवाले)
को ससारसे पार करने वाला हो, या मङ्गल=ज्ञान दर्शन आदि
भूषण को धारण करनेवाला हो, अथवा जिसके द्वारा हितकी
प्राप्ति हो । इस प्रकार सामान्यतया मङ्गलका निरूपण करके अब
चार शब्दसे जो लिए जाते हैं उन का निरूपण करते हैं-अर्हन्त

चार मङ्गल स्वरूप छे, मङ्गल तेने कह्ये छे जे श्रुत चारित्ररूप धर्मनि
देवावाणो होय अथवा ‘भने’ (नमस्कार करवावाणाने) ‘ससारथी पार करना’
होय अथवा मङ्गल ज्ञान दर्शन विगेरे भूषणने धारण करवावाणो होय अथवा
‘जेना द्वारा हितनी प्राप्ति थाय, आवी रीते सामान्य प्रकारे मङ्गलनु निरूपण
करीने हुवे आरथी जे देवाय तेनु निरूपण करे छे अर्हत-समस्त विघ्नेना

१-‘आतोऽनुपसर्गे क’ (३।२।३) इति कप्रत्यये ‘आतो लोप इटी’-त्यालोपः ।

२-मङ्गल-‘मक्ति मण्डने’ भौवादिक आत्मनेपदी, सिद्धि. पृषोदरादिपाठात् ।

३-‘मङ्गलम्’-गन्धर्वकात् ‘मङ्गि’ धातोरौणादिकोऽलच् प्रत्यय ।

४-अन्यत्र=व्युत्पत्तिवादादिषु ।

અર્હન્તઃ ‘મગલ’ મદ્ગલમ્-સકુઠવિપ્રવિનાશકત્વાન્મદ્ગલસ્વરૂપત્વેન સામાનાધિક-
રણ્યમુભયોઃ, મદ્ગલત્વસ્ય જાતેઃ સર્વેષ્વર્હત્સ્વેકત્વેનૈકવચનમિતિ પ્રાગુક્ત ન વિસ્મર્ત-
વ્યમ્ । ‘સિદ્ધા મગલ’ નિગદસ્પષ્ટમિદમ્ । ‘સાહુ મગલ’ સાધવો મદ્ગલમ્, સાધુ-
પદેનાઽઽચાર્યોપાધ્યાયા અપિ લક્ષ્યન્તે તેપામપિ સાધુતાઽવચ્છેદકધર્મવત્ત્વાત્,
અર્હતાદિપદવ્યાખ્યા ચ નમસ્કારમન્ત્રે ગતા । ‘કેવલિપણ્ણત્તો ધમ્મો’ કેવલ=
કેવલજ્ઞાનમસ્ત્યેપામિતિ કેવલિનસ્તૈઃ પ્રજ્ઞપ્તઃ=પ્રરૂપિતઃ કેવલિપ્રજ્ઞપ્તઃ, ધર્મ =શ્રુત-
ચારિત્રલક્ષણઃ ‘મગલ’=મદ્ગલસ્વરૂપઃ । ‘ચત્તારિ’ ચત્તારઃ ‘લોગુત્તમા’
લોકેષુ=દ્રવ્યભાવરૂપેષુ ઉત્તમા=શ્રેષ્ઠા લોકોત્તમાઃ । ‘લોકસ્યોત્તમાઃ’ ઇતિ
વ્યાખ્યાન તુ ન સમ્યક્, નિર્દારણપટ્ટચામેકવચનાન્તત્ત્વસ્યાસદ્ગતેઃ, ‘ન નિર્દારણે’
(૨ । ૨ । ૧૦) ઇતિ સમાસપ્રતિષેધાચ્ચ । ‘અરિહતા લોગુત્તમા’ અર્હન્તો
લોકોત્તમાઃ । ‘સિદ્ધા લોગુત્તમા’ સિદ્ધા લોકોત્તમાઃ । ‘સાહુ લોકોત્તમા’
સાધવો લોકોત્તમાઃ ‘કેવલિપણ્ણત્તો ધમ્મો લોગુત્તમો’ કેવલિપ્રજ્ઞપ્તો ધર્મો
લોકોત્તમઃ । ‘ચત્તારિ’ ચતુરઃ, ‘સરણ’ શરણમ્ ‘પવજ્ઞામિ’ પ્રપન્ને=પ્રાપ્નોમિ
ચતુર્ગતિભ્રમણભયપરિત્રાણાયેત્યર્થાત્ । ‘અરિહતે સરણ પવજ્ઞામિ’ અર્હતઃ શરણ
પ્રપન્ને । ‘સિદ્ધે સરણ પવજ્ઞામિ’ સિદ્ધાન્ શરણ પ્રપન્ને । ‘કેવલિપણ્ણત્ત ધમ્મ
સરણ પવજ્ઞામિ’ કેવલિપ્રજ્ઞપ્ત ધર્મશરણ પ્રપન્ને, નિગદવ્યાખ્યાતમિદ સર્વમ્ ॥સૂ. ૧॥

સમસ્ત વિદ્યોં કે વિનાશક હોને સે મગલસ્વરૂપ હૈ ૧ । વૈસે હી
સિદ્ધ મગલસ્વરૂપ હૈ ૨ । સાધુ પદસે યહા પર સાધુ, આચાર્ય,
ઉપાધ્યાય, તીનોં કા ગ્રહણ હૈ અત એવ અર્થ હુઆ કિ-સાધુ,
આચાર્ય તથા ઉપાધ્યાય મગલસ્વરૂપ હૈ ૩ । કેવલી પ્રરૂપિત ધર્મ
મગલસ્વરૂપ હૈ ૪ । યે હી ચાર લોકમેં ઉત્તમ હૈ અત એવ इन्हीं
ચારોં કી શરણ કો મેં પ્રાપ્ત હોતા હૂં, ક્યોં કિ ચતુર્ગતિ-ભ્રમણ
કે ભય કો દટાને વાલે યે હી ચાર હૈ ॥ સૂ. ૧ ॥

નાશ કરવાવાળા હોવાથી મગલસ્વરૂપ છે (૧) તેની જ રીતે સિદ્ધ મગલ
સ્વરૂપ છે (૨) સાધુ પદથી અર્હિયા સાધુ, આચાર્ય, ઉપાધ્યાય, ત્રણેનું શ્રદ્ધુ છે
એટલા માટે અર્થ થયો કે સાધુ, આચાર્ય તથા ઉપાધ્યાય મગલસ્વરૂપ છે (૩)
કેવલિપ્રરૂપિત ધર્મ મગલસ્વરૂપ છે (૪) એ જ ચાર લોકમા ઉત્તમ છે એટલે
એ ચારેના શરણને હું પ્રાપ્ત થઈ છું કારણ કે ચતુર્ગતિ-ભ્રમણના ભયને
હટાવવાવાળા એ જ ચાર છે

अथ 'इच्छामि ठामि काउस्सग' इति सम्पूर्णा पट्टिका पठित्वा 'इच्छामि पडिक्कमिउ' इति सर्वा पट्टी पठेत्, सैषा—'इच्छामि० इरियावहियाए' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

इच्छामि पडिक्कमिउ इरियावहियाए विराहणाए गमणा गमणे, पाणक्कमणे, वीयक्कमणे, हरियक्कमणे ओसा-उत्तिंग-पणग-दग-मट्टी-मक्कडा-सताणा-सकमणे जे मे जीवा विराहिया-एगिदिया, वेइदिया, तेइदिया, चउरिंदिया, पंचिंदिया, अभिहया, वत्तिया, लेसिया, सघाइया, सघट्टिया, परियाविया, किलामिया, उइविया ठाणाओ ठाण सकामिया, जीवियाओ ववरोविया तस्स मिच्छा मि दुक्कड ॥सू० २॥

॥ छाया ॥

इच्छामि प्रतिक्रमितुमैर्यापथिक्या (क्या) विराधनाया. (या), गमना गमने प्राणातिक्रमणे, बीजाक्रमणे, हरिताक्रमणे, अवश्यायोत्तिङ्गपनकोदकमृत्ति-कामर्कटसन्तानसक्रमणे ये मया जीवा विराधिता-एकेन्द्रियाः, द्वीन्द्रियाः, त्रीन्द्रियाः, चतुरिन्द्रियाः, पञ्चेन्द्रियाः, अभिहताः, वत्तिताः, श्लेषिताः, सघा-तिताः, सघट्टिताः, परितापिताः, क्लमिताः, अवद्राविताः, स्थानात्स्थान सक्रा-मिताः, जीविताद्व्यपरोपितास्तस्य मिथ्या मयि दुष्कृतम् ॥

॥ टीका ॥

'इरियावहियाए' ऐर्यापथिक्याः ईरणमीर्या=सयमिना गमनम्, पथि भवा पन्थान गच्छति=प्राप्नोतीति वा 'पथिकी, ईर्याप्रधाना पथिकी ईर्यापथिकी,

इसके बाद 'इच्छामि ठामि काउस्सग' की पाटी पढ़कर 'इच्छामि पडिक्कमिउ' की पूरी पाटी पढ़े, वह इस प्रकार—'इच्छामि० इरियावहियाए' इत्यादि ।

हे गुरुमहाराज ! मैं ईर्यापथसम्बन्धी विराधना से निवृत्त

ते पछी 'इच्छामि ठामि काउस्सग' नी पाटी ओझीने इच्छामि पडिक्कमिउ' नी पूरी पाटी ओजवी, ते आ प्रकारे—'इच्छामि० इरियावहियाए' इत्यादि हे गुरुमहाराज ! हे ईर्यापथसम्बन्धी विराधनाथी निवृत्त भवा धम्मि ३

१-पथिकी—'पथःपक्कन्' (५। १। ७५) इति पक्कन् प्रत्यय. पिच्चान्हीष ।

यद्वा ईर्याप्रधानः पन्था = ईर्यापथस्तत्र भवा = ऐर्यापथिकी = ईर्यापथसम्बन्धिनी विराधनेति यावत्, तस्याः । 'पडिक्कमिउ' प्रतिक्रमितु = निवर्त्तितुम् 'इच्छामि' स्पष्टमिदम् । अथ विराधनाविषयान् दर्शयति—

‘गमणागमणे’ गमन चाऽऽगमन च गमनागमनं, तस्मिन् गमनागमने तत्र गमन = स्वाध्यायादिनिमित्तमुपाश्रयाद्बहिः प्रस्थानम्, आगमन = कार्यसमाप्तिं परावृत्त्य पुनरुपाश्रय एव समागमनम् । अतिचारोत्पत्तौ निदानमाह-‘पाणक्कमणे’ इत्यादि, प्राणाः सन्त्येषामिति प्राणाः = द्वीन्द्रियादयः प्राणिनस्तेषाम् आक्रमण = पादादिना पीडन प्राणाक्रमणं तस्मिन् । ‘वीयक्कमणे’ वीजानि प्रमिद्धानि तेषामाक्रमणं बीजाक्रमणं तस्मिन् । ‘हरियक्कमणे’ हरितस्य = वनस्पतिमात्रस्याऽऽक्रमणं हरिताक्रमणं तस्मिन् । ‘ओसाउत्तिगपणगदगमट्टीमक्कडासताणासक्रमणे’ अवश्यायश्चोत्तिङ्गश्च पनकश्च दकं च मृत्तिका च मर्कटकसन्तानश्चेत्येतेषा द्वन्द्वे अवश्यायोत्तिङ्गपनकदक-मृत्तिका-मर्कटकसन्तानास्तेषा सक्रमण = आक्रमणम् तस्मिन्, तत्राऽवश्यायः = मेघमन्तरेण रात्रौ पतितः श्लक्ष्मणतुषाररूपोऽप्लव्यविशेषः ‘ओस’ इति भाषाप्रसिद्धः, उत्तिङ्गा = भूमौ वर्तुलविवरकारिणो गर्दभमुखाकृतयः कीट-विशेषा कीटिकानगरादयो वा, पनक = अङ्कुरितोऽनङ्कुरितो वा पञ्चवर्णानन्त-कायविशेषः, जलसम्बन्धेन जायमानः पिन्डिलाकार ‘काई’ इति लोकाप्रसिद्धः, ^३दकम् = उदकमप्लव्य, मृत्तिका = सचित्तपृथ्वीकाय, मर्कटकसन्तान = लूताजालम् ।

होना चाहता हूँ । स्वाध्याय आदि के लिये उपाश्रय से बाहर जाने में और लौटकर फिर उपाश्रय आने में पैर आदि से प्राणियों के दब जानेमें, बीजों के दब जानेमें, वनस्पति के दब जानेमें, ओस, उत्तिङ्ग (कीट विशेष), पञ्चवर्ण पनक (फूलन), पानी, मिट्टी, मकड़ेके जाल आदि के कुचल जानेमें, जो एक

स्वाध्यायादि निमित्ते उपाश्रयभाषी गडार जवामा अने पाछा करी उपाश्रये आववामा, पग विगेरेथी प्राणीओना दणाध जवामा, पीज वगेरे दणाध जवामा, वनस्पतिना दणाध जवामा, ओस, उत्तिङ्ग (अक प्रकारतु अवडु), पञ्चवर्ण पनक (फूलण), पाणी, माटी, मकड़ीनी जल विगेरेना कथराध जवामा, जे अक

१-‘गमनागमनम्’ अत्र द्वन्द्वनैकवचनान्तता ।

२-प्राणाः-‘अर्श आदिभ्योऽच्’ इत्यच्प्रत्यय ।

३-दक = जलम्-‘प्रोक्त प्राज्ञैर्भुवनममृत जीवनीय दकं च’ इति हलायुधः ।

अथ 'इच्छामि ठामि काउस्सग' इति सम्पूर्णं पट्टिका पठित्वा 'इच्छामि पडिक्कमिउ' इति सर्वा पट्टी पठेत्, सैपा—'इच्छामि० इरियावहियाए' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

इच्छामि पडिक्कमिउ इरियावहियाए विराहणाए गमणा-
गमणे, पाणक्कमणे, वीयक्कमणे, हरियक्कमणे ओसा-उत्तिंग-पणग-
दग-मट्टी-मक्कडा-सत्ताणा-सकमणे जे मे जीवा विराहिया-
एगिदिया, वेइदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, पंचिंदिया, अभिहया,
वत्तिया, लेसिया, संघाइया, सघट्टिया, परियाविया, किलामिया,
उहविया ठाणाओ ठाण सकामिया, जीवियाओ ववरोविया तस्स
मिच्छा मि दुक्कड ॥सू० २॥

॥ छाया ॥

इच्छामि प्रतिक्रमितुमैर्यापथिक्याः (क्या) विराधनायाः (या), गमना
गमने प्राणातिक्रमणे, बीजाक्रमणे, हरिताक्रमणे, अवश्यायोत्तिङ्गपनकोदकमृत्ति
कामर्कटसन्तानसक्रमणे ये मया जीवा विराधिताः—एकेन्द्रिया, द्वीन्द्रिया,
त्रीन्द्रियाः, चतुरिन्द्रियाः, पञ्चेन्द्रियाः, अभिहता, वत्तिताः, श्लेषिता, सघा-
तिताः, सघट्टिता, परितापिता, कृमिता, अवद्राविता, स्थानात्स्थान सक्रा-
मिताः, जीविताद्वयपरोपितास्तस्य मिथ्या मयि दुष्कृतम् ॥

॥ टीका ॥

'इरियावहियाए' ऐर्यापथिक्या. ईरणमीर्या=सयमिना गमनम्, पथि-
भवा पन्थान गच्छति=प्राप्नोतीति वा 'पथिकी, ईर्याप्रधाना पथिकी ईर्यापथिकी,

इसके बाद 'इच्छामि ठामि काउस्सग' की पाटी पढ़कर
'इच्छामि पडिक्कमिउ' की पूरी पाटी पढ़े, वह इस प्रकार—'इच्छामि०
इरियावहियाए' इत्यादि ।

हे गुरुमहाराज ! मैं ईर्यापथसम्बन्धी विराधना से निवृत्त

ते पछी 'इच्छामि ठामि काउस्सग' नी पाटी बोलीने इच्छामि पडिक्कमिउ'
नी पूरी पाटी बोली, ते आ प्रकारे—'इच्छामि० इरियावहियाए' इत्यादि
हे गुरुमहाराज ! हे ईर्यापथसम्बन्धी विराधनाथी निवृत्त भवा धम्मि ३

१-पथिकी—'पथःपक्कन्' (५। १। ७५) इति पक्कन् प्रत्ययः पित्तवान्धीष् ।

प्रतिक्रमणमुच्यते—‘इच्छामि० पगामसिज्जाए’ इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

इच्छामि पडिक्कमिउ पगामसिज्जाए निगामसिज्जाए
सथाराउव्वट्टणाए परियट्टणाए आउटणाए पसारणाए छप्पडसघट्ट-
णाए कूडए कक्कराडए छिडए जभाडए आमोसे ससरक्खामोसे
आउलमाउलाए सोवणवत्तिआए इत्थीविप्परिआसिआए दिट्ठिवि-
प्परिआसिआए मणविप्परिआसिआए पाणभोयणविप्परिआसि-
आए जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि
दुक्कड ॥ सू० ३ ॥

॥ छाया ॥

इच्छामि प्रतिक्रमितु प्रकामशय्याया निकामशय्याया सस्तारकोद्वर्त्तनया
परिवर्त्तनया आकुञ्चनया प्रसारणया पट्पदीसप्रवृत्तनया कृजिते कर्करायिते क्षुते
जृम्भिते आमर्शे सरजस्कामर्शे आकुलाकुलया स्वप्नप्रत्ययया स्त्रीवैपर्यासिक्या
दृष्टिवैपर्यासिक्या मनोवैपर्यासिक्या पानभोजनवैपर्यामिक्या यो मया दैव-
सिक्कोऽतिचार कृतस्तस्य मिथ्या मयि दुष्कृतम् ॥

॥ टीका ॥

‘पडिक्कमिउ’ प्रतिक्रमितु=निवर्त्तितुम्, ‘इच्छामि’ अभिलषामि,
‘पगामसिज्जाए’ शयन=शय्या^१, प्रकाम शय्या=प्रकामशय्या तथा, रात्रि-

आदि में करवट बदलने आदि से होनेवाले अतिचारों की निवृत्ति
कहते हैं—‘इच्छामि पगामसिज्जाए’ इत्यादि । हे भगवन् ! मैं
दिन-रात सम्बन्धी शयन आदि अतिचारों से निवृत्त होना

आदि द्वैश्वर्याभा यनान् अतिचारोनी निवृत्ति ऋडे छे इच्छामि पगामसिज्जाए’ इत्यादि ।
हे भगवान् ! हे दिवस-रात्रि सणधी शयन विगोरे अतिचारोनी निवृत्त थवाने
थाहु छु ते अतिचार अगर अधिक सुवाथी अथवा विना कारण सुवाथी अथवा

१ ‘शय्या’—शीद स्वप्ने’ अस्मात् ‘सज्ञाया समज-निपद्-निपत-मन-विद-
पुन-शीद-भृञिण’ (३ । ३ । ८८) इति भावे क्यप् । किन्तु—

‘कृत्यल्युटो बहुलम्’ इति वचनाद् ‘य’ प्रत्ययः ‘इत्युक्तिस्तु व्याकरणा-
नवबोधमूलैवेत्यलमितराक्षेपेण ।

२ ‘प्रकामशय्या’—अत्र सुप्मुपेति ममास ।

एवमन्येऽपि 'जे' ये 'एगिंदिया' एक स्पर्शरूपमिन्द्रिय येषां त एकेन्द्रियाः= पृथिव्यादयः, 'त्रेइदिया' द्वीन्द्रियाः=रूपमिन्द्रियतयः, 'तेडदिया' त्रीन्द्रियाः= पिपीलिकाद्याः, 'चउरिंदिया' चतुरिन्द्रियाः=दशमशक्रभ्रमराद्याः, 'पचिंदिया' पञ्चेन्द्रियाः=गृहगोधिकाद्याः 'मे' मया 'विरादिया' विराधिता=दुःखीकृताः, 'अभिदिया' अभि=साम्मुख्येन हता=चरणादिस्पर्शेन परिपीडिताः, 'वत्तिया' वर्तिता=धूल्यादिषु विलोठिता धूल्यादिभिरावृता वा, यद्वा परिवर्तिताः=यथा वस्थानाद्वैपरीत्य नीता इत्यर्थः, 'छेसिया' छेपिता=सम्मर्दिताः, 'सघाइया' सघातिताः=मिथः सयोजिताः, 'सघट्टिया' सघट्टिता=ईपत्स्पृष्टाः, 'परिया विया' परि=सर्वतोभावेन तापिता=पीडिता, 'क्लामिया' क्लामिता= ग्लानिमानीताः, 'उदविया' उपद्राविताः उपद्राविता वा त्रासिता इत्यर्थः, 'ठाणाओ ठाण सकामिया' स्थानात्=एकस्मात् स्थानात् स्थान=स्थानात्तर सकामिता=आपिताः, 'जीवियाओ ववरोविया' जीवित=जीवन तस्माद् व्यरोपिता=मोचिता, 'तस्स' तस्य-तत्सम्बन्धिनोऽतिचारस्य 'मि' मयि स्थितमिति शेषः, 'दुक्कड' 'दुष्कृत=पाप 'मिच्छा' मिथ्या=निष्फल भस्तिवतिशेषः ॥मृ०२॥

एव गमनागमनातिचारमुक्त्वा सम्प्रति त्वग्वर्त्तनस्थानातिचार-

इन्द्रियवाले, दो इन्द्रियवाले, तीन इन्द्रियवाले, चार इन्द्रियवाले, पाच इन्द्रियवाले जीव मुझसे विराधित (दुखी) हुए हों, कुचले गये हों, धूल आदिमे लुढ़काये या ढके गये हों, किसी प्रकार मसले गये हों, इकट्ठे किये हों, छूये गये हों, सताये गये हों, थकाये गये हों, अथवा जीवसे रहित किये गये हों तो 'तस्स मिच्छा मि दुक्कड'

इस प्रकार गमन-आगमन सम्बन्धी अतिचार कहकर शयन

इन्द्रियवाला, दो इन्द्रियवाला, त्रय इन्द्रियवाला, चार इन्द्रियवाला, पाच इन्द्रियवाला जीव भाराधी विराधित (दुःखी) थाया होय, कुचराध गया होय, धूल विगेरेमा ढकाध गया होय, कोई प्रकारे भरडाध गया होय, बेगा कराया होय, स्पर्श थध गये होय, सताव्या होय, थकाव्या होय अथवा जीवधी रहित कर्था होय तो 'तस्स मिच्छा मि दुक्कड'

आधी रीते गमन आगमन सम्बन्धी अतिचार कहने शयन आदिमा पडणु

रायिते=कर्करायित=हा विपमेय परुषेय शय्या, तदुपरि कथं मया शयितव्यमित्यादि शय्यादोषकथनं तस्मिन् सति, 'डिइए' क्षुते=ज्जिदौ 'जभाइए' जृम्भित=जृम्भा तस्मिन्; एतद्वयं चाविधिपूर्वकमेव कृतं सदतिचारोत्पादकमित्यवगन्तव्यम् 'आमोसे' आमर्शः=स्पर्शस्तस्मिन्-अप्रमार्ज्यं हस्तादिना कण्डूयनस्वरूपे । 'ससरखामोसे' सह रजसा वर्तते सरजस्कः स चासावामर्शश्च सरजस्कामर्शस्तस्मिन् सचित्तरजोयुक्तवस्तुस्पर्श इत्यर्थः । इत्थं जाग्रतोऽतिचारमुक्त्वा सम्प्रति सुप्तस्य तमाह-'आउलमाउलाए' इति, आकुलाकुला=निद्रा प्रमादाद्यभिभूतस्य मूलोत्तरगुणसम्बन्धिविविगोपरोधक्रियास्वरूपा, युद्ध-विवाह-राज्य-प्राप्तिप्रभृतिसावयक्रियास्वरूपा वा तथा । 'सोअणवत्तिआए' स्वप्नः=शयनप्रत्ययः=हेतुर्यस्याः सा स्वप्नप्रत्यया^१ तथा स्वप्नवशात्सञ्जातयेत्यर्थः, विराधनयेत्यर्थाद्भ्रम्यते, स्वप्नवशात्सञ्जातया मूलोत्तरगुणसम्बन्धिविविगोपरोधक्रियास्वरूपया, युद्ध-विवाह-राज्यप्राप्तिप्रमुखसावयक्रियास्वरूपया वा विराधनयेत्यर्थः । इमामेव प्रविभज्य प्रदर्शयति—'इत्थीविप्परिआसिआए' स्त्रिया स्त्रीभिर्वा सह विपर्यामः=स्वप्ने ब्रह्मचर्यस्खलनरूपो व्यत्यासस्तत्र भवेति, यद्वा विपर्यासे भवा=वैपर्यासिकी स्त्रिया वैपर्यासिकी स्त्रीवैपर्यासिकी तथा, 'दिठ्ठिविप्परिआसिआए' स्वप्ने अनुरागवशात्स्त्र्यवलोकनदृष्टिविपर्यासस्तत्र भवा दृष्टिवैपर्यासिकी तथा, 'मणविप्परिआसिआए' स्वप्ने मनसा

जभाई लेने से, बिना पूजे खुजलाने से या सचित्तरजयुक्त वस्त्रादिके स्पर्श से जो अतिचार किया गया हो, ये सब जाग्रत अतिचार हुए, अब सुप्त अतिचार कहते हैं—एव स्वप्न-अवस्था-सम्बन्धी, मूलोत्तर गुणको दूषित करनेवाली, अथवा युद्ध, विवाह, राज्यप्राप्ति आदि सावय क्रिया अर्थात् स्वप्नमें स्त्री के साथ कुशील सेवन, अनुराग पूर्वक स्त्री का अवलोकन, मनके विकार, तथा

भावाधी, पूज्या बिना पूजेलवाधी अथवा सचित्तरजयुक्त वस्त्रादिकना स्पर्शधी ने अतिचार थया होय ओ जथा ज्ञात अतिचार थया, हुवे सुप्त अतिचार कहे छे — ओव स्वप्न अवस्था सगंधी, मूलोत्तर गुणने दूषित करवावाणी अथवा युद्ध, विवाह, राज्यप्राप्ति विगेरे सावय क्रिया अर्थात् स्वप्नमा स्त्रीनी

मभ्ययामद्वयाधिकशयनेन निष्कारण दिवाशयनेन वा, यद्वा-ब्रह्मालस्यादिजनि-
कया मृदुतमया स्थूलशय्ययेत्यर्थः । मभ्ययामद्वयाधिकशयनस्य स्वाभ्यायप्रति-
रोधकत्वेन प्रतिषेधात् । 'निगामसिजाए' प्रकामशय्यैव नित्यमासेव्यमाना
'निकामशय्ये'-त्युच्यते । 'सथारा' इति लुप्तसप्तम्यन्तं पृथक्पद, समासे तु
सति 'सथारा' इत्यस्य 'परियट्टणाए' इत्यनेन विवक्षितः सम्बन्धो न स्यात्
'पदार्थः पदार्थेनान्वेति ननु पदार्थैकदेशेन' इतिसिद्धान्तात्, समासे च विशिष्ट
एव शक्तिस्वीकारेण तदेकदेशस्य पदार्थत्वाभावादिति 'प्रपञ्चितमन्यत्र, सस्तीर्यते
ऽस्मिन्निति सस्तरण वा सस्तारः=आस्तरण तस्मिन्, 'उव्वट्टणाए' उद्वर्तन-
मुद्वर्तना=प्रमार्जनमन्तरेण दक्षिणपार्श्वाऽऽवर्तन तथा, 'परियट्टणाए' परिवर्तन
परिवर्तना=वामपार्श्वावर्तन तथा, 'आउट्टणाए' आकुञ्चनमाकुञ्चना=शरीर-
सङ्कोचस्तया, 'पसारणाए' प्रसारण प्रसारणा=शरीरसञ्चारण तथा, एतत्पर्यन्त
'प्रमार्जनमन्तरेणे'-त्यस्य शेषो बोद्धव्य । 'छप्पईसघट्टणाए' पट्पद्मो यूका
स्तासा सघट्टनम्=अथवावत्स्पर्शः पट्पदीसघट्टना तथा, 'कूइए' कूजित^१
कूजन=श्लेष्मादिवशेनाऽयथावत्कासन, तस्मिन् सतीत्यर्थः । 'कक्कराईए' कर्क-

चाहता हूँ । वे अतिचार चाहे अधिक सोनेसे या बिना कारण
सोने से, अथवा अत्यन्त कोमल मोटी (जाड़ी) शय्या पर सोने से
तथा ऐसी शय्या का नित्य सेवन करने से, बिछौने (सथारे) पर
शरीर के बिन पूजे करवट लेने से, बिन पूजे अंगोपाग के
सकोचन और पसारने से, जूँ आदि के अविधिपूर्वक स्पर्श से,
अविधि से खासी आदि के करने से, अथतना पूर्वक छींकने तथा

अत्यन्त कोमल मोटी शय्या उपर सुवाथी तथा ऐवी पथारीने। नित्य उपयोग
करवाथी, पथारी (सथारा) उपर शरीरने पूज्या विना करवट लेवाथी, पूज्या
विना अंग-उपागने सङ्कोचवा-पसारवाथी, जूँ आदिना अविधिपूर्वक स्पर्शथी,
अविधिसे उधरस विगेरे भावाथी, अथतनापूर्वक छींकवाथी तथा अगासु

१ अन्यत्र--'वैयाकरणपभूण-लघुमञ्जूपादिषु' ।

२ भावे क्त' ।

३ 'यस्य च भावेने'ति सप्तमी, एवमग्रेऽपि ।

रायिते=कर्करायित=हा विपमेय परुषेय शय्या, तदुपरि कथं मया शयितव्यमित्यादि शय्यादोषकथनं तस्मिन् सति, 'छिइए' भुते=छिकादौ 'जभाइए' जृम्भित=जृम्भा तस्मिन्; एतद्वयं चाविधिपूर्वकमेव कृतं सदतिचारोत्पादकमित्यवगन्तव्यम् 'आमोसे' आमर्शः=स्पर्शस्तस्मिन्-अप्रमार्ज्यं हस्तादिना कण्डूयनस्वरूपे । 'ससरखामोसे' सह रजसा वर्तते सरजस्कः स चासावामर्शश्च सरजस्कामर्शस्तस्मिन् सचित्तरजोयुक्तवस्तुस्पर्श इत्यर्थः । इत्थं जाग्रतोऽतिचारमुक्त्वा सम्प्रति सुप्तस्य तमाह-'आउलमाउलाए' इति, आकुलाकुला=निद्रा प्रमादाद्यभिभूतस्य मूलोत्तरगुणसम्बन्धिविविधोपरोधक्रियास्वरूपा, युद्ध-विवाह-राज्य-प्राप्तिप्रभृतिसावयक्रियास्वरूपा वा तथा । 'सोअणवत्तिआए' स्वप्नः=शयनप्रत्ययः=हेतुर्यस्याः सा स्वप्नप्रत्यया^१ तथा स्वप्नवशात्सञ्जातयेत्यर्थः, विराधनयेत्यर्थाद्भ्रम्यते, स्वप्नवशात्सञ्जातया मूलोत्तरगुणसम्बन्धिविविधोपरोधक्रियास्वरूपया, युद्ध-विवाह-राज्यप्राप्तिप्रमुखसावयक्रियास्वरूपया वा विराधनयेत्यर्थः । इमामेव प्रविभज्य प्रदर्शयति—'इत्थीविप्परिआसिआए' स्त्रिया स्त्रीभिर्वा सह विपर्याम^२=स्वप्ने ब्रह्मचर्यस्खलनरूपो व्यत्यासस्तत्र भवेति, यद्वा विपर्यासे भवा=वैपर्यासिकी स्त्रिया वैपर्यासिकी स्त्रीवैपर्यासिकी तथा, 'दिट्ठिविप्परिआसिआए' स्वप्ने अनुरागवशात्स्थूललोकेन दृष्टिविपर्यासस्तत्र भवा दृष्टिवैपर्यासिकी तथा, 'मणविप्परिआसिआए' स्वप्ने मनसा

जभाई लेने से, बिना पूजे खुजलाने से या सचित्तरजयुक्त वस्त्रादिके स्पर्श से जो अतिचार किया गया हो, ये सब जाग्रत अतिचार हुए, अब सुप्त अतिचार कहते हैं—एव स्वप्न-अवस्था-सम्बन्धी, मूलोत्तर गुणको दूषित करनेवाली, अथवा युद्ध, विवाह, राज्यप्राप्ति आदि सावय क्रिया अर्थात् स्वप्नमें स्त्री के साथ कुशील सेवन, अनुराग पूर्वक स्त्री का अवलोकन, मनके विकार, तथा

आवाधी, पूज्या बिना अलोलवाधी अथवा सचित्तरजयुक्त वस्त्रादिकना स्पर्शधी ने अतिचार तथा डोय ओ जधा ज्ञात अतिचार तथा, डवे सुप्त अतिचार छडे छे — एव स्वप्न अवस्था सजधी, मूलोत्तर गुणने दूषित करवावाणी अथवा युद्ध, विवाह, राज्यप्राप्ति विगेरे सावय क्रिया अर्थात् स्वप्नमा स्त्रीनी

ત્રિપર્યાસો મનોત્રિપર્યાસસ્તત્ર મયા મનોત્રૈપર્યાસિકી તયા, 'પાણમોઞ્ણત્રિપ્પરિ આસિઆણ્' સગ્ગે પાનશ્ચ મોજનશ્ચ પાનમોજને તયોત્તિપર્યાસઃ=પાન-મોજનાદિસેવન તત્ર મયા પાનમોજનૈપર્યાસિકી તયા હેતુભૂતયા વિરાધનયા, 'જો' ય 'મે' મયા, 'દેવસિઓ' દૈવસિકઃ 'અર્યારો' અતિચારઃ, 'કઓ' કૃતઃ=સમ્પાદિતઃ 'તસ્સ' इत्यादि भागवत् ।

નન્વયમતિચારો ન પ્રાપ્નોતિ પ્રતિપિદ્ધત્વાદિવાસ્વાપસ્યેતિ ? અત્રોચ્યતે યદ્યપિ પ્રતિપિદ્ધો દિવાસ્વાપસ્તથાપ્યેતદ્વચનસામર્થ્યાદધ્વશ્રાન્તાદીના નાસૌ પ્રતિપિદ્ધ इति गम्यते ॥ इतित्वग्वर्तनातिचारप्रतिक्रमणम् ॥ सू० ३ ॥

ગત ત્વગ્વર્તનાઽતિચારપ્રતિક્રમણ સમ્પ્રતિ ગોચરાતિચારપ્રતિક્રમણમભિ ધીયતે—'પઙ્કિમમિ ગોચરં' इत्यादि ।

આહાર પાનીકે સેવન રૂપ વિરાધના કે કારણ મુદ્ધ સે જો અતિચાર કિયા ગયા હો 'તસ્સ મિચ્છા મિ દુક્કહ' ।

યદ્યપિ સાધુઓં કે લિયે દિનમેં શયન કા નિષેધ હૈ તો ખી ઘટાં પર શયન સમ્બન્ધી દૈવસિક અતિચાર બતાને સે યહ સિદ્ધ હોતા હૈ કિ વિહાર આદિ સે અધિક થકાવટ આજાને પર યા અન્ય અનિવાર્ય કારણોં સે યદિ દિન મેં સોયા જાય તો એસી અવસ્થા કે લિયે ઉક્ત દૈવસિક અતિચાર બતાયે હૈ ॥ સૂં ૩ ॥

હસ પ્રકાર શયન સમ્બન્ધી અતિચારોં કા પ્રતિક્રમણ કહ કર અવ ગોચરી કે અતિચાર સમ્બન્ધી પ્રતિક્રમણ કહતે હૈ— 'પઙ્કિમમિ ગોચરં' इत्यादि ।

સાથે સમાગમ, પ્રેમપૂર્વક સ્ત્રીનુ જોણુ, મનનો વિકાર, તથા આહાર-પાણીના સેવનરૂપી વિરાધનાના કારણે મારાથી જે અતિચાર થયા હોય 'તસ્સ મિચ્છા મિ દુક્કહ'

યદ્યપિ સાધુઓને માટે દિવસમા સુવાનુ નિષેધ છે તો પણ શયન સંબંધી દૈવસિક અતિચાર બતાવવાથી એ સિદ્ધ થાય છે કે વિહાર આદિથી ખૂબ થાકી જવાના કારણે અથવા બીજા અનિવાર્ય કારણોથી દિવસે સુણુ પડે તો આવી અવસ્થાને માટે ઉપર કહેલુ દૈવસિક અતિચાર બતાવેલ છે (સૂં ૩)

આવી રીતે શયન સંબંધી અતિચારોના પ્રતિક્રમણ કહીને હવે ગોચરીના અતિચાર સંબંધી પ્રતિક્રમણ કહે છે— 'પઙ્કિમમિ ગોચરં' इत्यादि

॥ मूलम् ॥

पडिक्कमामि गोयरचरियाए भिक्खायरियाए उग्घाडकवा-
डउग्घाडणाए साणावच्छदारासंघट्टणाए मडीपाहुडिआए वलिपाहु-
डिआए ठवणापाहुडिआए सकिए सहसागारिए अणेसणाए
पाणेसणाए पाणभोयणाए वीयभोयणाए हरियभोयणाए पच्छा-
कम्मियाए पुरेकम्मियाए अदिट्टहडाए दगससट्टहडाए रयस-
सट्टहडाए पारिसाडणियाए पारिठावणियाए ओहासणभिक्खाए
ज उग्गमेण उप्पायणेसणाए अपरिसुद्ध पडिगाहिय परिभुत्त वा
ज न परिठविअ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ॥ सू० ४ ॥

॥ अथा ॥

प्रतिक्रमामि गोचरचर्याया भिक्षाचर्यायामुद्घाटकपाटोद्घाटनया श्व-
त्सदारकसघट्टनया मण्डीप्राभृतिकया वलिप्राभृतिकया स्थापनाप्राभृतिकया शङ्कि-
ते सहसाकारिकेऽनेपणया पानैपणया प्राणभोजनया बीजभोजनया हरितभोज-
नया पश्चात्कर्मिकया पुर कर्मिकयाऽदृष्टाहतया उदकसमृष्टाऽऽहतया रजःसमृ-
ष्टाहतया पारिशाटनिक्या (पारिशातनिक्या) परिष्ठापनिक्या ओढासनभिक्षया
यद् उद्गमेन उत्पादनैपणयाऽपरिशुद्ध प्रतिगृहीत परिभुक्त वा यन्न परिष्ठापित तस्य
मिथ्या मयि दुष्कृतम्' ॥ सू० ४ ॥

॥ टीका ॥

‘गोयरचरियाए’ चरण चर गाथरो गोचर., चर्या चरणमित्यपर्यायान्तरम्, गोचर
इव चर्या=वृत्तिर्गोचरचर्या तस्या तद्रूपायामिति भावः। ‘भिक्खायरियाए’ भिक्षायै
चर्या भिक्षाचर्या तस्या कुलेषूत्तममध्यमाधमेषु वस्तुषु चेष्टानिष्टेषु रागादिराहित्येन
लाभादिनैरपेक्ष्येण च समचेतसा मुनिना भिक्षार्थमटनीय^१ तादृश्या भिक्षाचर्याया-

गायके समान जगह जगह से थोडा थोडा आहार लेने के लिये
भ्रमण करने का नाम गोचरचर्या है, तत्स्वरूप जो भिक्षाचर्या
(अर्थात् उत्तम मध्यम और नीच (साधारण) कुलों में तथा दृष्ट-

गायनी नेम ठेकावे ठेकावेथी थोडा थोडा आहार लेना भाटे इत्यु ते कामने
गोचरचर्या कडे छे तत्स्वरूप ने भिक्षाचर्या (अर्थात् उत्तम मध्यम अने नीच

१-भिक्षायामीदृग्विधन्वमुपदर्शयितुमेवोक्त मूले-गोचरचर्ययेति ।

ત્રિપર્યાસો મનોત્રિપર્યાસસ્તત્ર મયા મનોત્રૈપર્યાસિકી તયા, 'પાણમોઅણત્રિપ્પરિ આસિઆણ' સપ્ને પાનશ્ચ મોજનશ્ચ પાનમોજને તયોત્રિપર્યાસઃ=પાન મોજનાદિસેવન તત્ર મયા પાનમોજનત્રૈપર્યાસિકી તયા હેતુભૂતયા વિરાધનયા, 'જો' યઃ 'મે' મયા, 'દેવસિઓ' દૈવસિકઃ 'અફ્યારો' અતિચારઃ, 'કઓ' કૃતઃ=સમ્પાદિતઃ 'તસ્સ' इत्यादि भाग्यत् ।

નન્વયમતિચારો ન પ્રાપ્નોતિ પ્રતિપિદ્ધત્વાદિવાસ્વાપસ્યેતિ ? અત્રોચ્યતે યદ્યપિ પ્રતિપિદ્ધો દિવાસ્વાપસ્તથાપ્યેતદ્વચનસામઘ્યર્થાદધ્વથ્રાન્તાદીના નાસૌ પ્રતિપિદ્ધ ઇતિ ગમ્યતે ॥ ઇતિત્વગ્વર્તનાતિચારપ્રતિક્રમણમ્ ॥ સૂ૦ ૩ ॥

ગત ત્વગ્વર્તનાઽતિચારપ્રતિક્રમણ સમ્પ્રતિ ગોચરાતિચારપ્રતિક્રમણમભિ ધીયતે—'પઙ્કિમમિ ગોચર૦' इत्यादि ।

આહાર પાનીકે સેવન રૂપ વિરાધના કે કારણ મુશ્કેલી સે જો અતિચાર કિયા ગયા હો 'તસ્સ મિચ્છા મિ દુક્કહ' ।

યદ્યપિ સાધુઓં કે લિયે દિનમેં શયન કા નિષેધ હૈ તો ખી ઘટા પર શયન સમ્બન્ધી દૈવસિક અતિચાર બતાને સે યદ્દ સિદ્ધ હોતા હૈ કિ વિહાર આદિ સે અધિક થકાવટ આજાને પર યા અન્ય અનિવાર્ય કારણોં સે યદિ દિન મેં સોયા જાય તો એસી અવસ્થા કે લિયે ઉક્ત દૈવસિક અતિચાર બતાયે હૈ ॥ સૂ૦ ૩ ॥

હસ પ્રકાર શયન સમ્બન્ધી અતિચારોં કા પ્રતિક્રમણ કહ કર અબ ગોચરી કે અતિચાર સમ્બન્ધી પ્રતિક્રમણ કહતે હૈ— 'પઙ્કિમમિ ગોચર૦' इत्यादि ।

સાથે સમાગમ, પ્રેમપૂર્વક સ્ત્રીનુ ભેદુ, મનનો વિકાર, તથા આહાર-પાણીના સેવનરૂપી વિરાધનાના કારણે મારાથી જે અતિચાર થયા હોય 'તસ્સ મિચ્છા મિ દુક્કહ'

યદ્યપિ સાધુઓને માટે દિવસમા સુવાનુ નિષેધ છે તો પણ શયન સંબંધી દૈવસિક અતિચાર બતાવવાથી એ સિદ્ધ થાય છે કે વિહાર આદિથી ખૂબ થાકી જવાના કારણે અથવા ખીજા અનિવાર્ય કારણોથી દિવસે સુવુ પડે તો આવી અવસ્થાને માટે ઉપર કહેલુ દૈવસિક અતિચાર બતાવેલ છે (સૂ૦ ૩)

આવી રીતે શયન સંબંધી અતિચારોના પ્રતિક્રમણ કહીને હવે ગોચરીના અતિચાર સંબંધી પ્રતિક્રમણ કહે છે— 'પઙ્કિમમિ ગોચર૦' 'इत्यादि'

॥ मूलम् ॥

पडिक्कमामि गोयरचरियाए भिक्खायरियाए उग्घाडकवा-
डउग्घाडणाए साणावच्छदारासंघट्टणाए मडीपाहुडिआए वलिपाहु-
डिआए ठवणापाहुडिआए सकिए सहसागारिए अणेसणाए
पाणेसणाए पाणभोयणाए वीयभोयणाए हरियभोयणाए पच्छा-
कम्मियाए पुरेकम्मियाए अदिट्टहडाए दगससट्टहडाए रयस-
सट्टहडाए पारिसाडणियाए पारिठावणियाए ओहासणभिक्खाए
ज उग्गमेण उप्पायणेसणाए अपरिसुद्ध पडिगाहिय परिभुत्त वा
ज न परिठविअ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ॥ सू० ४ ॥

॥ अथा ॥

प्रतिक्रामामि गोचरचर्याया भिक्षाचर्यायामुद्धाटफपाटोद्धाटनया इव-
त्सदारकसघट्टनया मण्डीप्राभृतिकया वलिप्राभृतिकया स्थापनाप्राभृतिकया शङ्कि-
ते सहसाकारिकेऽनेपणया पानैपणया प्राणभोजनया वीजभोजनया हरितभोज-
नया पश्चात्कर्मिकया पुरःकर्मिकयाऽदृष्टाहृतया उदकसमष्टाऽऽहृतया रजःसम-
ष्टाहृतया पारिशादनिक्या (पारिशातनिक्या) परिष्ठापनिक्या ओहासनभिक्षया
यद् उद्गमेन उत्पादनैपणयाऽपरिशुद्ध प्रतिगृहीत परिभुक्त वा यन्न परिष्ठापित तस्य
मिथ्या मयि दुष्कृतम् ॥ सू० ४ ॥

॥ टीका ॥

‘गोयरचरियाए’ चरण चर गोश्वरो गोचर, चर्या चरणमित्यपर्यायान्तरम्, गोचर
इव चर्या=वृत्तिर्गोचरचर्या तस्या तद्रूपायामिति भावः । ‘भिक्खायरिआए’ भिक्षायै
चर्या भिक्षाचर्या तस्या कुलेषूत्तममध्यमाधमेषु वस्तुषु चेष्टानिष्ठेषु रागादिराहित्येन
लाभादिनैरपेक्ष्येण च समचेतसा मुनिना भिक्षार्थमटनीयः तादृश्या भिक्षाचर्याया-

गायके समान जगह जगह से थोडा थोडा आहार लेने के लिये
भ्रमण करने का नाम गोचरचर्या है, तत्स्वरूप जो भिक्षाचर्या
(अर्थात् उत्तम मध्यम और नीच (साधारण) कुलों में तथा इष्ट-

गायनी नेम ठेकावे ठेकावेथी थोडा थोडा अहार लेना भाटे इत्यु ते कामने
गोचरचर्या कहें छे तत्स्वरूप ने भिक्षाचर्या (अर्थात् उत्तम मध्यम अने नीच

१-भिक्षायामीहग्विधन्वपुपदर्शयितुमेवोक्त मूले-गोचरचर्ययेति ।

मित्यर्थः; अस्याग्रे सम्बन्धः। अत्र यथाऽतिचारस्त समभेदमाह—‘उग्राडकवाड उग्राडणाए’ उद्घाटयत इति, यद्वा उद्गतो घाटः=घटन=परस्परसंयोजन यस्य तदुद्घाट किञ्चित्स्थगितमदत्तविष्कम्भक वा तच्च तत्कपाट च उद्घाटकपाट तस्योद्घाटना=प्रमार्जनमन्तरेण स्वामिनिदेशमन्तरेण वा मोचनमुद्घाटकपाटोद्घाटना तथा। ‘साणावच्छदारासघट्टणाए’ श्वा=कुकुर, वत्स=गयापत्यरूपो वत्सतरः, दारक=बालक, श्वा च वत्सश्च दारकश्चेत्येतेषामितरेतरयोगद्वन्द्वे श्ववत्सदारकास्तेषां सघट्टना=गात्रैः सहतीकरण श्ववत्सदारकसघट्टना तथा, उपलक्षणमिदं गवादीनामपि। ‘मडीपाहुडियाए’ मण्डी=अग्रकूर. (अग्रभक्त) तस्याः प्राभृतिका=प्राभृतमुपढौकनमिति यावत्, यद्वा प्र=प्रर्पण आ=मर्यादया भृता सामर्थ्यं सरक्षिता प्राभृता, सैव प्राभृतिका तथा। ‘बलिपाहुडिआए’ बलिः=देवभूतायुद्देशेन देयमन्नादितस्य प्राभृतिका तथा। ‘ठवणापाहुडिआए’ स्थाप्यत इति ‘स्थापना=कृपणवनीपकादिभ्यः स्थापितमन्नादि तस्याः प्राभृतिकेति प्राग्वत्तया, ‘सक्किए’

अनिष्ट वस्तुओमें रागादिरहित हो कर लाभालाभमे समानभाव से आहारादि ग्रहण करना) उसमें विना साकलके ढके हुए या अध ढके हुए किवाड़ों को विना पूजे अथवा विना स्वामी की आज्ञाके खोलने से, कुत्ते, बछड़े, बालक आदिको ढकेलकर या लाघकर जाने से, कुत्ते आदिके लिये निकाले हुए अग्रपिण्डके लेने से, देवता भूत आदिकी बलि के लिये तथा याचक-कृपण आदिके

(साधारण) कुण्ठोमा तथा छुण्ट अनिष्ट वस्तुओमा रागादि रहित यद्यने लाभालाभमा समान भावथी आहार आदि ग्रहण करतु) तेमा साकल विना अध करैल अगर अधा वासेला कमाउने पूजना विना अथवा धर्मीनी आज्ञा विना खोलवाथी, कुतरा, बाछरडा, बालक आदिने धकेलीने अथवा खोलनीने जवाथी, कुतरा विगेरे भाटे काढेये। अग्रपिंड लेवाथी, देवता, भूत विगेरेना बलिना भाटे तथा याचक-कृपण

१-इन्तकारादिस्वरूप ‘हन्दा’ इत्यादिना पञ्चापादिप्रदेशेषु प्रसिद्ध, यद्वा कुक्कुरादिकृते रक्षितम्, ‘मण्डूकडी’ इति राजस्थानादौ प्रतीतम्।

२-इदं हि कस्मैचिदिष्टाय पूजनीयाय वा स्नेहात्सबहुमानदेयमिष्टवस्तु, तत्सादृश्यात्साधुभ्यो देयं भिक्षात्रपि।

३-बाहुलकात्स्वर्मणि ‘ण्यासथन्यो युच्’ (३।३।१०७) इति युच्।

शङ्का सञ्जाता यस्मिंस्तच्छङ्कित तस्मिन्, आधाकर्मादिदोषदुष्टेऽन्नादावित्यर्थात्, सतिसप्तमीयम्, तृतीयान्तानामिव सप्तम्यन्तानामपि सर्वेषां परस्पर निरपेक्षतया 'ज उग्गमेण' इत्यादिनाऽग्रेतनेनैवान्वयः, 'सहसागारिए' सहसा करण सहसाकार-स्तत्र भवः सहसाकारिकः=आकस्मिक आहारस्तस्मिन्, 'अणेषणाए' न एषणा=ग्राह्यमिदमग्राह्य चेत्याश्रन्वेपणाभावो यस्या भिक्षाचर्याया सा अनेपणा तथा, 'अणेषणाए' इतिपाठे अन्नस्य=भक्तादेः एषणा=परीक्षण यस्या सा अनेपणा तयेति गोऽयम्, हेतौ तृतीया, 'पाणेषणाए' पीयत इति पान=जलादि तस्यैषणा=अन्वेपण यस्या सा पानैपणा तथा, पानैपणाया वैपम्येणेति भावः, 'पाणभोयणाए' प्राणाः सन्त्येषामिति प्राणाः^१ द्वीन्द्रियात्रास्तन्मिश्रिता भोजना^२ प्राणभोजना तथा, भवति हि कदाचिद्भयादिप्रदानवेलाया दातुर्ग्रहीतुर्वाऽपराधेन द्वीन्द्रियादीना जीवानां सम्मिश्रणेन सघट्टनेन वा व्यापादनम्, अयमेव चात्रातिचारो बोद्धव्यः। 'वीज-भोयणाए' बीजाना भोजना, यद्वा बीजानि भोजने यस्या क्रियाया सा=बीज-भोजना तथा, 'हरियभोयणाए' हरितभोजनया, 'पच्छाकम्मियाए' पश्चात्=भिक्षाप्रदानोत्तर कर्म=भाजन ग्राहनादि यस्यासा=पश्चात्कर्मिका तथा, 'पुरेकम्मियाए'

लिखे स्थापित (रक्खे हुण), एव आधाकर्म आदिकी शकासे युक्त, तथा विना सोचे विचारे आहारादि के लेनेसे, अनेपणीय किसी वस्तुके लेनेसे, पानी आदि पीने योग्य वस्तुकी एषणामें किसी प्रकारकी त्रुटि होनेसे, द्वीन्द्रियादिप्राणिमिश्रित, बीजयुक्त, तथा हरितकाययुक्त आहारादि के लेने से, पश्चात्कर्मिक (जिसमें आहारादि ग्रहण करने के बाद हाथ चरतन आदि धोया जाय)

आदिने अर्थे^१ राभवामा आवेल, अथवा आधाकर्मा^२ आदिनी शङ्काथी युक्त, तथा जलया चित्यायां विना आहार विगेरे लेवाथी, अनेपणीय डोष्ठपणु वस्तुने लेवाथी, पाणी विगेरे पीवा योग्य वस्तुनां अनेपणीय डोष्ठ पणु प्रकारनी भाभी लेवाथी, द्वीन्द्रियादि-प्राणि-मिश्रित, बीजयुक्त, तथा हरितकाययुक्त आहार आदि लेवाथी, पश्चात्कर्मिक (जिहा आहार आदि अक्षुण्ण करी दीधा पछी हाथ-वासणु विगेरे

१ 'प्राणा'—अत्र—अर्श आदित्वादच् ।

२—प्राणभोजना—शाकपार्थिव्यादित्वादुत्तरपदलोप ।

मित्यर्थः, अस्याग्रे सम्बन्धः। अत्र यथाऽतिचारस्तु समभेदमाह—‘उग्राडकवाड उग्राडणाए’ उद्घाटयत इति, यद्वा उद्घातो घाटः=घटन=परस्परसंयोजन यस्य तदुद्घाट किञ्चित्स्थगितमदनविष्कम्भक वा तच्च तत्कपाट च उद्घाटकपाट तस्योद्घाटना=प्रमार्जनमन्तरेण स्वामिनिदेशमन्तरेण वा मोचनमुद्घाटकपाटोद्घाटना तथा। ‘साणावच्छदारासघट्टणाए’ श्वा=कुकुरः, वत्स=गवापत्यरूपो वत्सतरः, दारक=बालकः, श्वा च वत्सश्च दारकश्चेत्येतेषामितरेतरयोगद्वन्द्वे श्ववत्सदारकास्तेषां सघट्टना=गात्रैः सद्वतीकरण श्ववत्सदारकसघट्टना तथा, उपलक्षणमिदं गवादीनामपि। ‘मण्डीपाहुडियाए’ मण्डी=अग्रकुरः (अग्रभक्तः) तस्याः प्राभृतिका=प्राभृतमुपढौकनमिति यावत्, यद्वा प्र=प्रकर्षेण आ=मर्यादया भृता साभ्वर्थं सरक्षिता प्राभृता, सैव प्राभृतिका तथा। ‘बलिपाहुडिआए’ बलि=देवभूतायुद्देशेन देयमन्नादितस्य प्राभृतिका तथा। ‘ठवणापाहुडिआए’ स्थाप्यत इति ‘स्थापना=कृपणवनीपकादिभ्यः स्थापितमन्नादि तस्याः प्राभृतिकेति प्राग्वत्तया, ‘सकिए’

अनिष्ट वस्तुओमें रागादिरहित हो कर लाभालाभमें समानभाव से आहारादि ग्रहण करना) उसमें विना साकलके ढके हुए या अध ढके हुए किवाड़ों को विना पूजे अथवा विना स्वामी की आज्ञाके खोलने से, कुत्ते, बछड़े, बालक आदिको ढकेलकर या लाधकर जाने से, कुत्ते आदिके लिये निकाले हुए अग्रपिण्डके लेने से, देवता भूत आदिकी बलि के लिये तथा याचक-कृपण आदिके

(साधारण्य) कुण्ठे भा तथा छुण्ट अनिष्ट वस्तुओमा रागादि रहित थधने लाभालाभमा समान भावथी आहार आदि ग्रहण करवु) तेमा साकल विना अध डरेल अगर अधा वासेला डमाउने पूजना विना अथवा धणीनी आज्ञा विना ओलवार्थी, कुतरा, वाछरडा, बालक आदिने धकेलीने अथवा ओणगीने जवार्थी, कुतरा विगेरे भाटे डाटेथे। अग्रपिंड देवार्थी, देवता, भूत विगेरेना जलिना भाटे तथा याचक-कृपण

१-हन्तकारादिस्वरूप ‘हन्दा’ इत्यादिना पञ्चापादिप्रदेशेषु प्रसिद्ध, यद्वा कुक्कुरादिकृते रक्षितम्, ‘मण्डूकडी’ इति राजस्थानादौ प्रतीतम्।

२-इदं हि कस्मैचिदिष्टाय पूजनीयाय वा स्नेहात्सबहुमानदेयमिष्टवस्तु, तत्सादृश्यात्साधुभ्यो देयं भिक्षात्रपि।

३-बाहुलकात्कर्मणि ‘ण्यसन्नन्थो युच्’ (३।३।१०७) इति युच्।

शङ्का सञ्जाता यस्मिंस्तच्छुद्धित तस्मिन्, आधाकर्मादिदोषदुष्टेऽन्नादाचित्यर्थात्, सतिसप्तमीयम्, तृतीयान्तानामिव सप्तम्यन्तानामपि सर्वेषां परस्पर निरपेक्षतया 'ज उगमेण' इत्यादिनाऽग्रेतनैयान्वयः, 'सहसागारिण' सहसा करण सहसाकार-स्तत्र भव. सहसाकारिकः=आकस्मिक आहारस्तस्मिन्, 'अणेषणाए' न एषणा=ग्राह्यमिदमग्राह्य चेत्याश्रयान्वेषणाभावो यस्या भिक्षाचर्याया सा अनेषणा तथा, 'अणेषणाए' इतिपाठे अन्नस्य=भक्तादे. एषणा=परीक्षण यस्या सा अनेषणा तयेति गो-यम्, हेतौ तृतीया, 'पाणेषणाए' पीयत इति पान=जलादि तस्यैषणा=अन्वेषण यस्या सा पानैषणा तथा, पानैषणाया वैषम्येणेति भावः, पाणभोयणाए' प्राणाः सन्त्येषामिति प्राणा.^१ द्वीन्द्रियाग्रास्तन्मिश्रिता भोजना^२ प्राणभोजना तथा, भवति हि कदाचिद्द्वयादिप्रदानवेलाया दातुर्ग्रहीतुर्वाऽपराधेन द्वीन्द्रियादीना जीवानां सम्मिश्रणेन सघटनेन वा व्यापादनम्, अयमेव चात्रातिचारो बोद्धव्यः। 'वीज-भोयणाए' बीजानां भोजना, यद्वा बीजानि भोजने यस्या क्रियाया सा=बीज-भोजना तथा, 'हरियभोयणाए' हरितभोजनया, 'पश्चात्कर्मियाए' पश्चात्=भिक्षाप्रदानोत्तरकर्म=भाजन ग्राहनादि यस्या सा=पश्चात्कर्मिका तथा, 'पुरेकर्मियाए'

लिखे स्थापित (रक्खे हुण), एव आधाकर्म आदिकी शकासे युक्त, तथा विना सोचे विचारे आहारादि के लेनेसे, अनेषणीय किसी वस्तुके लेनेसे, पानी आदि पीने योग्य वस्तुकी एषणामें किसी प्रकारकी त्रुटि होनेसे, द्वीन्द्रियादिप्राणिमिश्रित, बीजयुक्त, तथा हरितकाययुक्त आहारादि के लेने से, पश्चात्कर्मिक (जिसमें आहारादि ग्रहण करने के बाद हाथ बरतन आदि धोया जाय)

आदिने अर्थे राभवामा आवेल, अथवा आधाकर्मा आदिनी शकाथी युक्त, तथा ज्ञातया विचार्या विना आहार विगेरे लेवाथी, अनेषणीय केअपणु वस्तुने लेवाथी, पाणी विगेरे पीवा योग्य वस्तुना अेषणामा केअ पणु प्रकारनी आभी डावाथी, द्वीन्द्रियादि-प्राणि-मिश्रित, बीजयुक्त, तथा हरितकाययुक्त आहार आदि लेवाथी, पश्चात्कर्मिक (जेमा आहार आदि अणु करी दीधा पछी हाथ-वासणु विगेरे

१ 'प्राणा'—अत्र-अर्श आदित्वादच् ।

२-प्राणभोजना-शारुपार्थिवादित्वादुत्तरपदलोपः ।

मित्यर्थः; अस्याग्रे सम्बन्धः। अत्र यथाऽतिचारस्तु सप्रभेदमाह—‘उग्राडकवाड उग्राडणाए’ उद्घाटयत इति, यद्वा उद्घाटो वाटः=घटन=परस्परसंयोजन यस्य तदुद्घाट किञ्चित्स्थगितमदत्तविष्कम्भक वा तच्च तत्कपाट च उद्घाटकपाट तस्योद्घाटना=प्रमार्जनमन्तरेण स्वामिनिदेशमन्तरेण वा मोचनमुद्घाटकपाटोद्घाटना तथा। ‘साणावच्छदारासघट्टणाए’ श्वा=कुक्कुर, वत्स=गवापत्यरूपो वत्सवरः, दारकः=बालकः, श्वा च वत्सश्च दारकश्चेत्येतेषामितरेतरयोगद्वन्द्वे श्ववत्सदारकास्तेषां सघट्टना=गत्रैः सहतीकरणश्च वत्सदारकसघट्टना तथा, उपलक्षणमिदं गवादीनामपि। ‘मण्डीपाहुडियाए’ मण्डी=अग्रकूरः (अग्रभक्तः) तस्याः प्राभृतिका=प्राभृतमुपढौकनमिति यावत्, यद्वा प्र=प्रर्पण आ=मर्यादया भृता साम्बर्थे सरक्षिता प्राभृता, सैव प्राभृतिका तथा। ‘बलिपाहुडिआए’ बलिः=देवभूतायुद्देशेन देयमन्त्रादितस्य प्राभृतिका तथा। ‘ठवणापाहुडिआए’ स्थाप्यत इति स्थापना=कृपणवनीपकादिभ्यः स्थापितमन्त्रादि तस्याः प्राभृतिकेति प्राग्वत्तया, ‘सकिए’

अनिष्ट वस्तुओंमें रागादिरहित हो कर लाभालाभमें समानभाव से आहारादि ग्रहण करना) उसमें बिना सांकलके ढके हुए या अध ढके हुए किवाड़ों को बिना पूजे अथवा बिना स्वामी की आज्ञाके खोलने से, कुत्ते, बड़हे, बालक आदिको ढकेलकर या लाघकर जाने से, कुत्ते आदिके लिये निकाले हुए अग्रपिण्डके लेने से, देवता भूत आदिकी बलि के लिये तथा याचक-कृपण आदिके

(साधारण) कुंजे भा तथा छुट अनिष्ट वस्तुओंभा रागादि रहित थडने लाभालाभभा समान भावथी आहार आदि अहण करणु) तेभा साकल बिना अध करेल अगर अधा वासेला उभाउने पूजना बिना अथवा धाणीनी आज्ञा बिना ओलवाथी, कुतरा, वाछरडा, बालक आदिने धकेलीने अथवा ओणगीने जवाथी, कुतरा बिगेरे भाटे काढेये अग्रपिंड लेवाथी, देवता, भूत बिगेरेना बलिना भाटे तथा याचक-कृपण

१-हन्तकारादिस्वरूप ‘हन्दा’ इत्यादिना पञ्चापादिप्रदेशेषु प्रसिद्ध, यद्वा ‘कुक्कुरादिकृते रक्षितम्’, ‘मण्डूकडी’ इति राजस्थानादौ प्रतीतम्।

२-इदं हि कस्मैचिदिष्टाय पूजनीयाय वा स्नेहात्सबहुमानदेयमिष्टवस्तु, तत्सादृश्यात्साधुभ्यो देयं भिक्षात्रपि।

३-बाहुलकात्कर्मणि ‘प्यासत्रन्थो युच्’ (३।३।१०७) इति युच्।

शङ्का सञ्जाता यस्मिंस्तच्छङ्कित तस्मिन्, आधाकर्मादिदोषदुष्टेऽन्नादावित्यर्थात्, सतिसप्तमीयम्, तृतीयान्तानामिव सप्तम्यन्तानामपि सर्वेषां परस्पर निरपेक्षतया 'ज उगमेण' इत्यादिनाऽग्रेतनेनैवान्वयः, 'सहस्रगारिण' सहस्रा करण सहस्राकार-स्तत्र भव. सहस्राकारिकः=आकस्मिक आहारस्तस्मिन्, 'अणेषणाए' न एषणा=ग्राह्यमिदमग्राह्य वेत्याग्रन्वेपणाभावो यस्या भिक्षाचर्याया सा अनेपणा तथा, 'अणेषणाए' इतिपाठे अन्नस्य=भक्तादे एषणा=परीक्षण यस्या सा अन्नैषणा तयेति वाच्यम्, हेतौ तृतीया, 'पाणेषणाए' पीयत इति पान=जलादि तस्यैषणा=अन्वेपण यस्या सा पानैषणा तथा, पानैषणाया वैषम्येणेति भावः, 'पाणभोयणाए' प्राणा. सन्त्येषामिति प्राणा^१ द्वीन्द्रियाग्रास्तन्मिश्रिता भोजना^२ प्राणभोजना तथा, भवति हि कदाचिद्व्याधिप्रदानवेलाया दातुर्ग्रहीतुर्वाऽपराधेन द्वीन्द्रियादीना जीवानां सम्मिश्रणेन सप्तद्वेनेन वा व्यापादनम्, अयमेव चात्रातिचारो बोद्धव्यः। 'वीज-भोयणाए' बीजाना भोजना, यद्वा बीजानि भोजने यस्या क्रियाया सा=बीज-भोजना तथा, 'हरियभोयणाए' हरितभोजनया, 'पश्चात्कर्मियाए' पश्चात्=भिक्षाप्रदानोत्तर कर्म=भाजन याचनादि यस्या सा=पश्चात्कर्मिका तथा, 'पुरेकर्मियाए'

लिये स्थापित (रखे हुए), एवं आधाकर्म आदिकी शकासे युक्त, तथा बिना सोचे विचारे आहारादि के लेनेसे, अनेपणीय किसी वस्तुके लेनेसे, पानी आदि पीने योग्य वस्तुकी एषणामें किसी प्रकारकी त्रुटि होनेसे, द्वीन्द्रियादिप्राणिमिश्रित, बीजयुक्त, तथा हरितकाययुक्त आहारादि के लेने से, पश्चात्कर्मिक (जिसमें आहारादि ग्रहण करने के बाद हाथ परतन आदि धोया जाय)

आदिने अर्थे^१ सम्भवामा आवेल, अथवा आधाकर्म^२ आदिनी शङ्काथी युक्त, तथा ज्ञेया विचार्या बिना आहार विगेरे लेवाथी, अनेपणीय कोछपण वस्तुने लेवाथी, पाणी विगेरे पीवा योग्य वस्तुना ओषणामा कोछ पण प्रकारनी आभी होवाथी, द्वीन्द्रियादि-प्राणि-मिश्रित, बीजयुक्त, तथा हरितकाययुक्त आहार आदि लेवाथी, पश्चात्कर्मिक (जिहा आहार आदि अणु करी लीधा पछी हाथ-वासण विगेरे

१ 'प्राणा'—अत्र—अर्श आदित्वादच् ।

२-प्राणभोजना-शाकपार्थिवादित्वादुत्तरपदलोपः ।

मित्यर्थः; अस्याग्रे सम्बन्धः। अत्र यथाऽतिचारस्तु समभेदमाह—‘उग्राडकवाड उग्राडणाए’ उद्घाटयत इति, यद्वा उद्घाटो घाटः=घटन=परस्परसंयोजन यस्य तदुद्घाट किञ्चित्स्थगितमदत्तत्रिष्कम्भक वा तच्च तत्कपाट च उद्घाटकपाट तस्योद्घाटना=प्रमार्जनमन्तरेण स्वामिनिदेशमन्तरेण वा मोचनमुद्घाटकपाटोद्घाटना तथा। ‘साणावच्छदारासघट्टणाए’ श्वा=कुकुरः, वत्स=गयापत्यरूपो वत्सतरः, दारकः=वालकः, श्वा च वत्सश्च दारकश्चेत्येतेषामितरेतरयोगद्वन्द्वे श्ववत्सदारकास्तेषां सघट्टना=गात्रैः सहतीकरण श्ववत्सदारकसघट्टना तथा, उपलक्षणमिदं गवादीनामपि। ‘मण्डीपाहुडियाए’ मण्डी=अग्रकूरः (अग्रभक्तः) तस्या प्राभृतिका=प्राभृतमुपढौकनमिति यावत्, यद्वा प्र=प्ररूपेण आ=मर्यादया भृता साम्बर्थ्यं सरक्षिता प्राभृता, सैव प्राभृतिका तथा। ‘चलिपाहुडिआए’ चलिः=देवभूताद्युद्देशेन देयमन्त्रादितस्य प्राभृतिका तथा। ‘ठवणापाहुडिआए’ स्थाप्यत इति ‘स्थापना=कृपणवनीपकादिभ्यः स्थापितमन्त्रादि तस्याः प्राभृतिकेति प्राग्वत्तया, ‘सक्किए’

अनिष्ट वस्तुओंमें रागादिरहित हो कर लाभालाभमें समानभाव से आहारादि ग्रहण करना) उसमें बिना सांकलके ढके हुए या अध ढके हुए किवाड़ों को बिना पूजे अथवा बिना स्वामी की आज्ञाके खोलने से, कुत्ते, बछड़े, बालक आदिको ढकेलकर या लाघकर जाने से, कुत्ते आदिके लिये निकाले हुए अग्रपिण्डके लेने से, देवता भूत आदिकी बलि के लिये तथा याचक-कृपण आदिके

(साधारण) कुण्डोमा तथा छिष्ट अनिष्ट वस्तुओंमा रागादि रहित थपने लाभालाभमा समान भावथी आहार आदि अल्लु करवु) तेमा साङ्ग बिना अध ढरेल अगर अधा वासेला कमाउने पूजना बिना अथवा धर्मीनी आज्ञा बिना जोलवाथा, कुतरा, वाछरडा, जालक आदिने धकेलीने अथवा ओणगीने जवाथी, कुतरा बिगेरे भाटे काढेयो, अग्रपिंड लेवाथी, देवता, भूत बिगेरेना बलिना भाटे तथा याचक-कृपण

१-हन्तकारादिस्वरूप ‘हन्दा’ इत्यादिना पञ्चापादिप्रदेशेषु प्रसिद्ध, यद्वा ‘कुक्कुरादिकृते रक्षितम्, ‘मण्डूकडी’ इति राजस्थानादौ प्रतीतम्।

२-इदं हि कस्मैचिदिष्टाय पूजनीयाय वा स्नेहात्सबहुमानदेयमिष्टवस्तु, तत्सादृश्यात्साधुभ्यो देयं भिक्षात्रपि।

३-बाहुलकात्त्वर्मणि ‘ण्यासन्नन्थो युच्’ (३।३।१०७) इति युच्।

शङ्का सञ्जाता यस्मिंस्तच्छुद्धित तस्मिन्, आधाकर्मादिदोषदुष्टेऽन्नादावित्यर्थात्, सतिसप्तमीयम्, तृतीयान्तानामिव सप्तम्यन्तानामपि सर्वेषां परस्पर निरपेक्षतया 'ज उगमेण' इत्यादिनाऽग्रेतनेनैवान्वयः, 'सहसागारिए' सहसा करण सहसाकार-स्तत्र भव. सहसाकारिकः=आकस्मिक आहारस्तस्मिन्, 'अणेसणाए' न एषणा=ग्राह्यमिदमग्राह्य वेत्याग्रन्वेपणाभावो यस्या भिक्षाचर्याया सा अनेपणा तथा, 'अणेसणाए' इतिपाठे अन्नस्य=भक्तादे. एषणा=परीक्षण यस्या सा अनेपणा तयेति वो यम्, हेतौ तृतीया, 'पाणेसणाए' पीयत इति पान=जलादि तस्यैषणा=अन्वेपण यस्या सा पानैपणा तथा, पानैपणाया वैपम्येणेति भावः, 'पाणभोयणाए' प्राणाः सन्त्येषामिति प्राणाः^१ द्वीन्द्रियाग्रास्तन्मिश्रिता भोजना^२ प्राणभोजना तथा, भवति हि कदाचिद्द्वयादिप्रदानवेलाया दातुर्ग्रहीतुर्वाऽपराधेन द्वीन्द्रियादीना जीवाना सम्मिश्रणेन सप्तद्वनेन वा व्यापादनम्, अयमेव चात्रातिचारो बोद्धव्यः। 'वीज-भोयणाए' बीजाना भोजना, यद्वा बीजानि भोजने यस्या क्रियाया सा=बीज-भोजना तथा, 'हरियभोयणाए' हरितभोजनया, 'पश्चात्कम्मियाए' पश्चात्=भिक्षाप्रदानोत्तरकम=भाजन ग्राहनादि यस्या सा=पश्चात्कर्मिका तथा, 'पुरेकम्मियाए'

लिये स्थापित (रक्खे हुए), एव आधाकर्म आदिकी शकासे युक्त, तथा विना सोचे विचारे आहारादि के लेनेसे, अनेपणीय किसी वस्तुके लेनेसे, पानी आदि पीने योग्य वस्तुकी एषणामे किसी प्रकारकी त्रुटि होनेसे, द्वीन्द्रियादिप्राणिमिश्रित, बीजयुक्त, तथा हरितकाययुक्त आहारादि के लेने से, पश्चात्कर्मिक (जिसमें आहारादि ग्रहण करने के बाद हाथ बरतन आदि धोया जाय)

आदिने अर्थे^१ सम्भवामा आवेल, अथवा आधाकर्मा^२ आदिना शक्यी युक्त, तथा ज्ञेया विचार्या विना आहार विगरे लेवाथी, अनेपणीय कोष्ठपण्य वस्तुने लेवाथी, पाणी विगरे पीवा योग्य वस्तुना ओषणामा कोष्ठ पण्य प्रकारनी ज्ञानी होवाथी, द्वीन्द्रियादि-प्राणि-मिश्रित, बीजयुक्त, तथा हरितकाययुक्त आहार आदि लेवाथी, पश्चात्कर्मिक (जिसमें आहार आदि ग्रहण करी दीया पछी हाथ-बरतन विगरे

१ 'प्राणा'—अन्न-अर्श आदित्वादच् ।

२-प्राणभोजना-शारुपार्यिवादित्वादुत्तरपदलोपः ।

मित्यर्थः; अस्याग्रे सम्बन्धः। अत्र यथाऽतिचारस्तु सम्भेदमाह—‘उग्घाडकवाड उग्घाडणाए’ उद्घाटयत इति, यद्वा उद्घाटो घाटः=घटन=परस्परसंयोजन यस्य तदुद्घाट मिश्रितस्थगितमदत्तपिण्डकम्भक वा तच्च तत्कपाट च उद्घाटकपाट तस्योद्घाटना=प्रमार्जनमन्तरेण स्वामिनिदेशमन्तरेण वा मोचनमुद्घाटकपाटोद्घाटना तथा। ‘साणावच्छदारासघट्टणाए’ श्वा=कुकुर, रत्सः=वागपत्यरूपो वत्सतरः, दारकः=बालकः, श्वा च वत्सश्च दारकश्चेत्येतेषामितरेतरयोगद्वन्द्वे श्ववत्सदारकास्तेषां सघट्टना=गात्रैः सद्वृत्तीकरणश्च वत्सदारकसघट्टना तथा, उपलक्षणमिदं गवादीनामपि। ‘मडीपाहुडियाए’ मण्डी=अग्रकूर (अग्रभक्तः) तस्याः प्राभृतिका=प्राभृतमुपढौकनमिति यावत्, यद्वा प्र=प्रकर्षेण आ=मर्यादया भृता सात्रर्थं सरक्षिता प्राभृता, सैव प्राभृतिका तथा। ‘बलिपाहुडियाए’ बलिः=देवभूतायुद्देशेन देयमन्नादितस्य प्राभृतिका तथा। ‘ठवणापाहुडियाए’ स्थापयत इति ‘स्थापना=कृपणवनीपकादिभ्यः स्थापितमन्नादि तस्याः प्राभृतिकेति प्राग्वत्तया, ‘सकिण्’

अनिष्ट वस्तुओमें रागादिरहित हो कर लाभालाभमें समानभाव से आहारादि ग्रहण करना) उसमें बिना साकलके ढके हुए या अध ढके हुए किवाड़ों को बिना पूजे अथवा बिना स्वामी की आज्ञाके खोलने से, कुत्ते, बछड़े, बालक आदिको ढकेलकर या लाघकर जाने से, कुत्ते आदिके लिये निकाले हुए अग्रपिण्डके लेने से, देवता भूत आदिकी बलि के लिये तथा याचक-कृपण आदिके

(साधारण) कुत्ते भा तथा छुट अनिष्ट वस्तुओभा रागादि रहित थधने लाभालाभभा समान भावथी आहार आदि ग्रहण करवु) तेभा साकल बिना अध करेल अगर अधा वासेला कभाडने पूजना बिना अथवा धणीनी आज्ञा बिना ओलवाथी, कुतरा, बाछरडा, बालक आदिने धकेलीने अथवा ओणगीने जवाथी, कुतरा विगेरे भाटे काढेयो, अग्रपिंड लेवाथी, देवता, भूत विगेरेना बलिना भाटे तथा याचक-कृपण

१-हन्तकारादिस्वरूप ‘हन्दा’ इत्यादिना पञ्चापादिप्रदेशेषु प्रसिद्ध, यद्वा कुक्कुरादिकृते रक्षितम्, ‘मण्डूकडी’ इति राजस्थानादौ प्रतीतम्।

२-इदं हि कस्मैचिदिष्टाय पूजनीयाय वा स्नेहात्सबहुमानदेयमिष्टवस्तु, तत्सादृश्यात्साधुभ्यो देयं भिक्षात्रपि।

३-बाहुलकात्त्वर्मणि ‘ण्यासथन्थो युच्’ (३।३।१०७) इति युच्।

पुरः=भिक्षापदानात्पूर्व कर्म=हस्तधारणादि यस्या सा=पुरःकर्मिका तथा, 'अद्विष्ट
 षडाए' अद्विष्टम्=अनालोचितम् आहृत=गृहीत यस्या (भिक्षायां) सा,
 यदा अद्विष्टात् स्थानादाहृता=आनीता अद्विष्टाहृता तथा, गृहीताद्विष्टवस्तुकये
 त्यर्थः अत्र हि जीरसम्मिश्रणमर्दनादिनातिचारसम्भवः, 'दकससद्विष्टाए'
 दकमुदक, तेन ससृष्ट=सम्मिश्रित दकससृष्ट तत आहृत=गृहीत यस्या सा=दकस
 सृष्टाहृता तथा सचित्तजलमिश्रितान्नादिग्रहणिकया हस्तसलग्नजलसयुतया वेत्यर्थः,
 'रजससद्विष्टाए' रजः=सचित्तधूलिकादि, तेन संसृष्ट=युक्त रज.ससृष्ट, तत
 आहृत यस्या सा=रज.ससृष्टाहृता तथा, 'पारिषाडणियाए' परिषाटन=देय
 वस्तुनो घृतादेर्विन्दादीना भूमौ पातन, तेन निर्वृत्ता पारिषाटनिकी तथा,
 'पारिष्ठावणियाए' परि=सर्वतोभावेन स्थापन परिष्ठापन=गृहस्थेन अकल्पनीय
 वस्तु प्रदानपात्रान्निःसार्य तत्रैव पात्रे देयवस्तुस्थापन, तेन निर्वृत्ता भिक्षा पारिष्ठाप
 निकी तथा, 'ओहासणभिक्खाए' 'ओहासण' इति प्रवचनपरिभाषया

तथा पुरःकर्मिक (जिसमें आहारादि देनेके पहिले हाथ बरतन आदि
 धोया जाय) आहारके लेने से, अद्विष्ट स्थान से लाई हुई वस्तु के लेने से,
 सचित्त पानी के द्वारा गीले हाथ से आहारादिके ग्रहण करने से,
 सचित्त रजयुक्त आहारादि के लेने से, दाता द्वारा इधर उधर
 गिराते हुए आहारादि के लेने से, किसी पात्रमें अकल्पनीय वस्तु
 रक्खी हुई हो उसे निकाल कर उसी पात्र से दिये हुए आहारादि
 के लेने से, अथवा बिना कारण आहारादि के परिठवने से और

धोवाय) तथा पुरःकर्मिक (जो भा आहारादि देता पड़ेला हाथ, वासणु आदि धोवाय)
 आहार आदि लेवाथी, अद्विष्ट जग्यामेथी लाववाभा आवेली वस्तुने लेवाथी,
 सचित्त पाणीथी लींजयेला हाथे आहार आदि अद्विष्ट करवाथी, सचित्त रजयुक्त
 आहार आदि लेवाथी, दातार द्वारा आभतेम ठेणाता आहार आदि लेवाथी, कोछ
 पात्रभा अकल्पनीय वस्तु पड़ेली होय तेने आली करी तेज पात्रथी देवाभा
 आवेल आहार आदि लेवाथी अथवा बिना कारणे आहार आदि परिठवाथी

१-उपसर्गात्सुनोतीति पत्व, यदि त्वत्र परिभार्गार्थकोऽनर्थको
 वा तदा 'परी'-त्यस्य कर्मप्रवचनीयसञ्ज्ञयोपसर्गसञ्ज्ञाया अभावात्ततः परस्य-
 सस्य पत्वाभाव एवाऽतएव कचित् 'पारिस्थापनिकी' ति प्रकाररहितोऽपि
 प्रयोगो दृश्यते ।

विशिष्टद्रव्ययाचन गृह्यते, तत्प्रधाना भिक्षा ओहासनभिक्षा तथा, हेतु विनैव विशिष्टस्य वस्तुनो नामोपादाय 'अमुक मे देहि नामुक' - मित्येवरूपया याचनयेत्यर्थः । भेदस्य बहुत्वात्सक्षिपति - 'ज' यत्, 'उग्गमेण' उद्गमेन=आधाकर्मादिदोष-स्वरूपेण, 'उप्पायणेसणाए' उत्पादना=धान्यादिदोष., एपणा=शङ्कितादि-स्वरूपा ताभ्याम् 'अपरिसुद्ध' अपरिशुद्ध=दूषित, 'पडिग्गहिय' प्रतिगृहीत=स्वीकृतम्, 'परिभुत्त' परिभुक्तम्=आसेवितम्, स पामेव तृतीयान्ताना सप्तम्यन्ताना च अपरिशुद्धादिभिः क्तान्तैरेव सम्बन्ध इति विभावनीयम्, 'ज' यत्, 'न परिद्वविय' न परिष्ठापित=न परित्यक्त, 'तस्स' तस्य सर्वस्योक्त-रूपस्यातिचारस्य 'मिच्छा मि दुक्कड' इति व्याख्यातपूर्वम् ॥ सू० ४ ॥

एव गोचरातिचारोश्चिन्तयित्वा सम्प्रति स्वाध्यायातिचाराश्चिन्तयति-
'पडिक्कमामि चाउक्काल०' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

पडिक्कमामि चाउक्काल सज्झायस्स अकरणयाए उभओ-
काल भडोवगरणस्स अप्पडिलेहणाए दुप्पडिलेहणाए अपमज्जणाए
दुप्पमज्जणाए अइक्कमे वइक्कमे अईयारे अणायारे जो मे देवसिओ
अईयारे कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ॥ सू० ५ ॥

॥ छाया ॥

प्रतिक्रमामि चतुष्काल स्वाध्यायस्याऽकरणतया, उभयकाल भाण्डो-
पकरणस्याऽप्रतिलेखनया दुष्प्रतिलेखनया अपमार्जनया दुष्प्रमार्जनया, अतिक्रमे

विना कारण मागकर विशिष्ट वस्तु के छेने से जो कोई अतिचार
लगा हो, तथा आधाकर्म आदि उद्गमदोष, धात्री आदि उत्पादना-
दोष, एव शङ्कित आदि एपणादोष से दूषित आहार आदि लिया
गया हो, उपभोगमें लाया गया हो और जो परिष्ठापित न किया
गया हो 'तस्स मिच्छा मि दुक्कड' ॥ सू० ४ ॥

अने विना कारणे विशिष्ट वस्तुनी याचना करी देवाची ने कांछ अतिचार लाग्या
होय, तथा आधाकर्म आदि उद्गमदोष, धात्री आदि उत्पादना दोष, अने शङ्कित
आदि अपेक्ष्या दोषथी दूषित आहार आदि देवाछ गया होय, उपभोगमा लीधा
होय अथवा ने परिष्ठापित न कर्था होय "तस्स मिच्छा मि दुक्कड" (सू० ४)

पुरः=भिक्षापदानात्पूर्व कर्म=हस्तधावनादि यस्या सा=पुरःकर्मिका तथा, 'अदिहृ
 हडाए' अदृष्टम्=अनालोभितम् आहृत=गृहीत यस्या (भिक्षायां) सा,
 यद्वा अदृष्टात् स्थानादाहृता=आनीता अदृष्टाहृता तथा, गृहीतादृष्टवस्तुकये
 त्यर्थः अत्र हि जीवसम्मिश्रणमर्दनादिनातिचारसम्भवः, 'दगससदृहडाए'
 दकमुत्क, तेन ससृष्ट=सम्मिश्रित दकससृष्ट तत आहृत=गृहीत यस्या सा=दकस
 सृष्टाहृता तथा सचित्तजलमिश्रितान्नादिग्रहणिकया हस्तसलग्नजलसयुतया वेत्यर्थः,
 'रयससदृहडाए' रज=सचित्तधूलिकादि, तेन ससृष्ट=युक्त रजःससृष्ट, तत
 आहृत यस्या सा=रज.ससृष्टाहृता तथा, 'पारिसाडणियाए' परिशाटन=देय
 वस्तुनो घृतादेर्विन्दादीना भूमौ पातन, तेन निर्वृत्ता पारिशाटनिकी तथा,
 'पारिहावणियाए' परि=सर्वतोभावेन स्थापन परिष्ठापन=गृहस्थेन अकल्पनीय
 वस्तु प्रदानपात्रान्नि.सार्य तत्रैव पात्रे देयवस्तुस्थापन, तेन निर्वृत्ता भिक्षा पारिष्ठाप
 निकी तथा, 'ओहासणभिकखाए' 'ओहासण' इति प्रवचनपरिमाणया

तथा पुरःकर्मिक (जिसमें आहारादि देनेके पहिले हाथ बरतन आदि
 धोया जाय) आहारके लेने से, अदृष्ट स्थान से लाई हुई वस्तु के लेने से,
 सचित्त पानी के द्वारा गीले हाथ से आहारादिके ग्रहण करने से,
 सचित्त रजयुक्त आहारादि के लेने से, दाता द्वारा इधर उधर
 गिराते हुए आहारादि के लेने से, किसी पात्रमें अकल्पनीय वस्तु
 रक्खी हुई हो उसे निकाल कर उसी पात्र से दिये हुए आहारादि
 के लेने से, अथवा बिना कारण आहारादि के परिठवने से और

धोवाय) तथा पुरःकर्मिक (जोभा आहारादि देता पड़ेला हाथ, वासणु आदि धोवाय)
 आहार आदि लेवाथी, अदृष्ट जग्यायेथी लाववाभा आवेली वस्तुने लेवाथी,
 सचित्त पाणीथी बीजयेला हाथे आहार आदि अदृष्ट करवाथी, सचित्त रजयुक्त
 आहार आदि लेवाथी, दातार द्वारा आभतेम ठाणाता आहार आदि लेवाथी, कोष्ट
 पात्रभा अकल्पनीय वस्तु पडेली होय तेने आली करी तेज पात्रथी देवामा
 आवेल आहार आदि लेवाथी अथवा विना कारणे आहार आदि परिठवाथी

१-उपसर्गात्सुनोतीति पत्व, यदि त्वत्र परिभार्गार्थकोऽनर्थको
 वा तदा 'परी'-त्यस्य कर्मप्रवचनीयसङ्गयोपसर्गसङ्गाया अभावात्तत परस्य-
 सस्य पत्वाभाव एवाऽतएव कचित् 'पारिस्थापनिकी' ति प्रकाररहितोऽपि
 प्रयोगो दृश्यते ।

भाण्ड १ तदेव भाण्ड=पात्रादि, उपक्रियते=दृढीक्रियते सयमादि येन तदुपकरण=सदोरकमुखवस्त्रिकावस्त्ररजोहरणादि, भाण्ड चोपकरण चेत्यनयोः समाहारः, भाण्डोपकरण तस्य, 'अप्पडिलेहणाए' अप्रत्युपेक्षणया=सर्वथैवानिरीक्षणेन, 'दुप्पडिलेहणाए' दुप्पटिलेखनया=असम्यग् निरीक्षणेन, 'अप्पमज्जणाए' अप्रमार्जनया अप्रमार्जना=रजोहरणादिना सर्वतोभावेनाऽशोधन तया, 'दुप्पमज्जणाए' दुष्प्रमार्जनया दुष्प्रमार्जना=तेनैव रजोहरणादिनाऽसम्यक् परिशोधन तया, 'अइक्कमे' अतिक्रमे अतिक्रमः=अकृत्यसेवनस्य सङ्कल्पस्तस्मिन् 'सयमसम्बन्धिनि' इति शेषः, एवमग्रेऽपि सप्तम्यन्तेषु, सति सप्तमीयम् । एवमग्रेऽपि । 'वइक्कमे' व्यतिक्रमे व्यतिक्रमः=अकृत्यसेवनाय सामग्रीसंयोजन तस्मिन्, 'अईयारे' अतिचारे-अतिचारः=अकृत्यसेवनाय प्रवर्त्तन तस्मिन्, 'अणायारे' अनाचारे-अनाचारः=अकृत्यसेवन तस्मिन्, 'जो' यः 'मे' मया 'देवसिओ' दैवसिकः=दिवस व्याप्य भवः, 'अईयारो' अतिचारः, 'कओ' कृतः, 'तस्स मिच्छा मि दुक्कड' इति व्याख्यातपूर्वम् ॥ सू० ५ ॥

का सर्वथा सम्यक् प्रकार से प्रतिलेखन न करना, तथा पात्र उपाश्रय आदिका सर्वथा या यतनापूर्वक न पूजना आदि कारणों से सयमसम्बन्धी अतिक्रम (अकृत्यसेवनका भाव), व्यतिक्रम (अकृत्य सेवन की सामग्री मिलाना), अतिचार (अकृत्य सेवनमें गमनादिरूप प्रवृत्ति करना) तथा अनाचार (अकृत्य का सेवन करना) हो जाने पर जो सुझसे अतिचार किया गया हो 'तस्स मिच्छा मि दुक्कड' ॥ सू० ५ ॥

अथवा सम्यक् प्रकारे प्रतिलेखन न कर्तुं होय, तथा पात्र, उपाश्रय आदिनो सर्वथा अथवा यतनापूर्वक पूजवानु कार्य न कर्तुं होय आदि कारणोद्गी सयमसम्बन्धी अतिक्रम (अकृत्य सेवननो भाव), व्यतिक्रम (अकृत्य सेवननी सामग्री मिलवनी), अतिचार (अकृत्य सेवनमा गमनादिरूप प्रवृत्ति करवी) तथा अनाचार (अकृत्यनु सेवन करवुं) थर्ध जवाने कारणे भाराथी जे अतिचार थया होय "तस्स मिच्छा मि दुक्कड" (सू० ५)

१- शब्दार्थकाद् 'भण्' धातोरौणादिको ड प्रत्यय । प्रज्ञादिपाठादण् ।

२- एषु सर्वत्र हेतौ तृतीया, हेतुत्व चातिक्रमाद्यपेक्षया ।

व्यतिक्रमेऽतिचारेऽनाचारे यो मया दैवसिकोऽतिचारः कृतस्तस्य मिथ्या मयि दुष्कृतम् ॥ मृ० ५ ॥

॥ टीका ॥

‘पडिक्कमामि’ पतिक्रामामि = विनिवर्ते, यद्वा स्वात्मान विनिवर्त्तयामि अतिचारादिति शेषः । अतिचारस्वरूपमाह—‘चाउकाल’ चत्वारः=दिवसरात्रि-प्रथमान्तिमप्रहरस्वरूपाः कालाः=समया यस्य तद्यथा स्यात्तथेति क्रियाविशेषणमिदम्, यद्वा चतुर्णां कालानां समाहारश्चतुः‘काल’ ‘सज्झायस्य’ सु=सुष्ठु आ=मर्यादया अभ्याय’=अभ्यासः स्वाध्यायः निर्दिष्टकालानतिक्रमेण यथाविधि प्रवचनपठन, तस्य, ‘अकरणयाण’ अविद्यमान करणम्=अनुष्ठान यस्मिन् सोऽकरणः—अस्वाध्यायः, तस्य भावोऽकरणता तथा अकरणेनेत्यर्थः । अत्र ‘स्वाध्यायकरणादिभिर्हेतुभिरतिक्रमे व्यतिक्रमेऽतिचारेऽनाचारे (जाते) सति यो मयाऽतिचारः कृतस्तस्य मिथ्या मयि दुष्कृत’—मित्यादिरीत्या सम्बन्ध इति श्रुक्ष्मेक्षिकयाऽवधारणीयम् ।

‘उभओकाल’ दिवसस्य उभयतः=प्रथमान्तिमप्रहररूपौ कालौ यस्मिंस्तदुभयतःकालम्, तद्यथा स्यात्तथा ‘भडोवगरणस्स’ भणति=शब्दायते इति

मैं आगे कहे हुए इन अतिचारों से निवृत्त होता हूँ, दिन तथा रात्रि के प्रथम और अन्तिम प्रहररूप चार कालों में मर्यादा पूर्वक प्रवचनके मूलपठनरूप स्वाध्यायको न करना, दोनों कालों (दिनके प्रथम और अन्तिम प्रहर) में पात्र रजोहरण आदि भड उपकरण

आगण छडेवामा आवेला अतिचारेथी हु निवृत्त थाउ छु दिवस तथा रात्रीना प्रथम अने छेदला प्रहररूप चार कालमा मर्यादा पूर्वक प्रवचनना मूलपठन रूप स्वाध्याय न करवु, अन्ने समय (दिवसना पडेला अने पाछेला प्रहर) मा पात्र रजोहरण आदि लड उपकरणनु सर्वथा

१—समाहारद्विगुत्वान्नपुसकता, ततोऽत्यन्तसयोगे ‘व्याप्य’ इति क्रिया ध्याहारेण वा द्वितीया, न चैव सति ‘अकारान्तोत्तरपदो द्विगु स्त्रियामिष्टः इति वार्तिकवलेन स्त्रीत्वे ‘त्रिलोकी’ इत्यादिवत् द्विगोः’ (४।१।२१) इति ङीप् स्यादिति वाच्यम्, पात्रान्तर्गणेऽस्य पाठकल्पनात् । कालस्य वस्तुत एकत्वेऽप्यौपचारिकत्वादिह चातुर्विध्य बोध्यम् ।

भण्ड १ तदेव भाण्ड=पात्रादि, उपक्रियते=दृढीक्रियते सयमादि येन तदुपकरण=सदोरकमुखवह्निकावस्त्ररजोहरणादि, भाण्ड चोपकरण चेत्यनयोः समाहार', भाण्डोपकरण तस्य, 'अप्पडिलेहणाए' अपत्युपेक्षणाया=सर्वथैवानिरीक्षणेन, 'दुप्पडिलेहणाए' दुप्पटिलेखनया=असम्यग् निरीक्षणेन, 'अप्पमज्जणाए' अपमार्जनया अपमार्जना=रजोहरणादिना सर्वतोभावेनाऽशोधन तया, 'दुप्पमज्जणाए' दुष्णमार्जनया दुष्णमार्जना=तेनैव रजोहरणादिनाऽसम्यक् परिशोधन तया, २ 'अइक्कमे' अतिक्रमे अतिक्रम.=अकृत्यसेवनस्य सङ्कल्पस्तस्मिन् 'सयमसम्बन्धिनि' इति शेष', एवमग्रेऽपि सप्तम्यन्तेषु, सति सप्तमीयम् । एवमग्रेऽपि । 'वइक्कमे' व्यतिक्रमे व्यतिक्रमः=अकृत्यसेवनाय सामग्रीसंयोजन तस्मिन्, 'अईयारे' अतिचारे-अतिचारः=अकृत्यसेवनाय प्रवर्तन तस्मिन्, 'अणायारे' अनाचारे-अनाचारः=अकृत्यसेवन तस्मिन्, 'जो' य' 'मे' मया 'देवसिओ' दैवसिकः=दिवस व्याप्य भवः, 'अईयारो' अतिचारः, 'कओ' कृत', 'तस्स मिच्छा मि दुक्कड' इति व्याख्यातपूर्वम् ॥ सू० ५ ॥

का सर्वथा सम्यक् प्रकार से प्रतिलेखन न करना, तथा पात्र उपाश्रय आदिका सर्वथा या यतनापूर्वक न पूजना आदि कारणों से सयमसम्बन्धी अतिक्रम (अकृत्यसेवनका भाव), व्यतिक्रम (अकृत्य सेवन की सामग्री मिलाना), अतिचार (अकृत्य सेवनमें गमनादिरूप प्रवृत्ति करना) तथा अनाचार (अकृत्य का सेवन करना) हो जाने पर जो मुझसे अतिचार किया गया हो 'तस्स मिच्छा मि दुक्कड' ॥ सू० ५ ॥

अथवा सम्यक् प्रकारे प्रतिलेखन न कर्तुं होय, तथा पात्र, उपाश्रय आदिना सर्वथा अथवा यतनापूर्वक पूजवानु कार्य न कर्तुं होय आदि कारणोद्गी सयमसम्बन्धी अतिक्रम (अकृत्य सेवनका भाव), व्यतिक्रम (अकृत्य सेवनकी सामग्री मिलाना), अतिचार (अकृत्य सेवनमा गमनादिरूप प्रवृत्ति करनी) तथा अनाचार (अकृत्यनु सेवन करवुं) यर्थ नवाने कारणे भाराथी ने अतिचार तथा होय "तस्स मिच्छा मि दुक्कड" (सू० ५)

१- शब्दार्थकाद् 'भण्' धातोरौणादिको डः प्रत्ययः । प्रज्ञादिपाठादण् ।

२- एषु सर्वत्र हेतौ तृतीया, हेतुत्व चातिक्रमाद्यपेक्षया ।

व्यतिक्रमेऽतिचारेऽनाचारे यो मया दैवसिकोऽतिचारः कृतस्तस्य मिथ्या मयि दुष्कृतम् ॥ मृ० ५ ॥

॥ टीका ॥

‘पठिकमामि’ प्रतिक्रामामि = विनिवर्ते, यद्वा स्वात्मानं विनिवर्त्तयामि अतिचारादिति शेषः । अतिचारस्वरूपमाह—‘चाउकाल’ चत्वारः=दिवसरात्रि-प्रथमान्तिमप्रहरस्वरूपाः कालाः=समया यस्य तद्यथा स्यात्तथेति क्रियाविशेषणमिदम्, यद्वा चतुर्णां कालानां समाहारश्चतुःकालः ‘सज्ज्ञायस्य’ सु=सुष्ठु आ=मर्यादया अभ्याय=अभ्ययन स्वाध्यायः निर्दिष्टकालानतिक्रमेण यथाविधि प्रवचनपठन, तस्य, ‘अकरणयाए’ अत्रि घमान करणम्=अनुष्ठानं यस्मिन् सोऽकरणः—अस्वाध्याय, तस्य भावोऽकरणता तथा अकरणेनेत्यर्थः । अत्र ‘स्वाध्यायकरणादिभिर्हेतुभिरतिक्रमे व्यतिक्रमेऽतिचारेऽनाचारे (जाते) सति यो मयाऽतिचारः कृतस्तस्य मिथ्या मयि दुष्कृत’—मित्यादिरीत्या सम्बन्ध इति सूक्ष्मेक्षिकयाऽवधारणीयम् ।

‘उभओकाल’ दिवसस्य उभयतः=प्रथमान्तिमप्रहररूपौ कालौ यस्मिंस्तदुभयतःकालम्, तत्रथा स्यात्तथा ‘भडोवगरणस्स’ भणति=शब्दायते इति

मैं आगे कहे हुए इन अतिचारों से निवृत्त होता हूँ, दिन तथा रात्रि के प्रथम और अन्तिम प्रहररूप चार कालों में मर्यादा पूर्वक प्रवचनके मूलपठनरूप स्वाध्यायको न करना, दोनों कालों (दिनके प्रथम और अन्तिम प्रहर) में पात्र रजोहरण आदि भड उपकरण

आगण छडेवाभा आवेला अतिचारेथी हु निवृत्त थाउ छु दिवस तथा रात्रीना प्रथम अने छेदला प्रहररूप आर कालभा मर्यादा पूर्वक प्रवचनना मूलपठन रूप स्वाध्याय न करण, अने समय (दिवसना पडेला अने पाछेला प्रहर) भा पात्र रजोहरण आदि लड उपकरणसुं सर्वथा

१—समाहारद्विगुत्वान्नपुसकता, ततोऽत्यन्तसयोगे ‘व्याप्य’ इति क्रिया ध्याहारेण वा द्वितीया, न चैव सति ‘अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रियामिष्ट इति शार्तिकवलेन स्त्रीत्वे ‘त्रिलोकी’ इत्यादिवत् द्विगोः’ (४।१।२१) इति ङीप् स्यादिति वाच्यम्, पात्राद्यन्तर्गणेऽस्य पाठकल्पनात् । कालस्य वस्तुत एकत्वेऽप्यौपचारिकत्वादिह चातुर्विध्य बोध्यम् ।

विरतिस्तस्मिन्, अर्थादेकविधेऽसयमे जाते सति निषिद्धाऽऽचरणादिना यो मया-
ऽतिचारः कृतस्तस्य दुष्कृत मयि मिथ्याऽस्त्विति सारार्थः। एवमन्यत्रापि बोध्यम्।
उक्तोऽसयमरूप एकविधोऽतिचारः, सम्प्रति नानाविध त दर्शयन्नाह—‘पडिक्क-
मामि दोहिं वधणेहिं’ इति ‘दोहिं’ द्वाभ्या, वध्यते=बन्धविषयीक्रियते जीवो
याभ्या=राग-द्वेषाभ्या ते बन्धने ताभ्या, हेतौ तृतीया, अत्र ‘योऽतिचारः
कृतस्त, तस्मात् इति वा ‘प्रतिक्रामामि’—ति सम्बन्धः कार्यः, के ते बन्धने ?
इत्यपेक्षायामाह—‘रागवधणेण’ रज्यते येनेति रागः, स च तद्वन्धन च तेन,
‘दोसवधणेण’ प्राकृते द्वेष-दोष-शब्दयोः समानरूपत्वात् द्वेषबन्धनेन-दोष-
बन्धनेन वा इति च्छाया, द्वेष्टि,=जीवानामप्रीतिमुत्पादयतीति, द्विष्यते=अप्रीति-
रूपायते येन यस्माद्वा स द्वेषः, स च तद्वन्धन च द्वेषबन्धन, तेन^१ यद्वा दुष्यन्ति=
विकृता भवन्ति क्षान्त्यात्मात्मगुणा येन यस्माद्वेति दोषः=मिथ्यात्वाविरति प्रमाद-
कपायाशुभयोगलक्षणः स च तद्वन्धन च दोषबन्धन तेन,^२ ‘पडिक्कमामि’ प्रति-
क्रामामि, ‘तिहिं’ त्रिभिः, ‘दडेहिं’ दण्डैः, दण्ड्यते रत्नत्रयैश्वर्यापहरणा-
दसारीक्रियते आत्मायैरिति, दण्ड्यन्ते=व्यापायन्ते प्राणिनो यैरिति वा दण्डास्तैः,
दण्डो द्रव्यादिभेदादनेकविधोऽप्यत्र भावदण्ड एवाधिकृतो बोध्यः, दण्डत्रैविध्य-
माह—‘मणदडेण’ मन्यते=ज्ञायते पदार्थसार्थोऽनेनेति मनस्तेन दण्डो (असद्व्या-
पारात्मक) मनोदण्डस्तेन, ‘वयदडेण’ उच्यते इति वचस्तेन दण्डो वचोदण्ड-
स्तेन, ‘कायदडेण’ चीयतेऽस्मिन्नस्थयादिकमिति कायः^३ कायेन दण्डः=कायदण्ड-

हो तो, एव राग (अनुराग) द्वेष (अप्रीति) रूप दो बन्धनों के
कारण, सम्यग्ज्ञानादिरूप रत्नत्रयका नाश करके आत्माको असार
करनेवाले, अथवा प्राणियो की हिंसामें निमित्तभूत मानसिक,
वाचिक, कायिक, इन तीन दण्डों के कारण, विरति का अनुष्ठान

प्रमाणे रागद्वेष इय मे बन्धनोना कारणे सम्यग्-ज्ञानादि इय रत्नत्रयने
नाश करीने आत्माने असार करवावाणा, अथवा प्राणीओनी हिंसाभा
निमित्तभूत मानसिक, वाचिक अने कायिक ओ त्रयु दडोना कारणे विहितनु अनु

१—‘द्विष अप्रीतो’ अस्माद्वाहुलकात्करणेऽपादाने वा घञ्।

२—‘दुष वैकृत्ये’ अस्मात्पूर्ववद्धञ्।

३—‘निवासचितीत्यधिकरणे घञ् चस्य कृत्व च’।

સમ્પત્યતિચારૈકાનેકભેદગર્ભ પ્રતિક્રમણમાઠ--‘પઙ્કિમ્મામિ એગવિહે’ ઇત્યાદિ ।

॥ મૂલમ્ ॥

પઙ્કિમ્મામિ એગવિહે અસજમે । પઙ્કિમ્મામિ દોહિં
વધણેહિં-રાગવધણેણ દોસવધણેણ । પઙ્કિમ્મામિ તિહિં દડેહિં-
મળદડેણ વયદડેણ કાયદડેણ । પઙ્કિમ્મામિ તિહિં ગુત્તીહિં-
મળગુત્તીએ વયગુત્તીએ કાયગુત્તીએ । પઙ્કિમ્મામિ તિહિં સહેહિં-
માયાસહેણં નિયાણસહેણ મિચ્છાદસણસહેણ । પઙ્કિમ્મામિ તિહિં
ગારવેહિ-ઇદ્દુઢીગારવેણ રસગારવેણ સાયાગારવેણ । પઙ્કિમ્મામિ
તિહિં વિરાહણાહિ-નાણવિરાહણાએ દસણવિરાહણાએ ચરિત્ત-
વિરાહણાએ ॥ સૂ૦ ૬ ॥

॥ છાયા ॥

પ્રતિક્રામામિ એકવિધેઽસયમે । પ્રતિક્રામામિ દ્વાબ્યા વન્ધનાબ્યા-રાગવન્ધ-
નેન દ્વેષવન્ધનેન । પ્રતિક્રામામિ ત્રિભિર્દણૈઃ-મનોદણ્ડેન વચોદણ્ડેન કાયદણ્ડેન ।
પ્રતિક્રામામિ તિસુભિર્ગુપ્તિભિ-મનોગુપ્ત્યા વચોગુપ્ત્યા કાયગુપ્ત્યા । પ્રતિક્રામામિ
ત્રિભિઃ શલ્યૈ-માયાશલ્યેન નિદાનશલ્યેન મિથ્યાદર્શનશલ્યેન । પ્રતિક્રામામિ ત્રિભિઃ
ગૌરૈઃ-ક્રુદ્ધિગૌરવેણ રસગૌરવેણ શાંતગૌરવેણ । પ્રતિક્રામામિ તિસુભિર્વિરા-
ધનામિ-જ્ઞાનવિરાધનયા દર્શનવિરાધનયા ચારિત્રવિરાધનયા ॥ મૂ૦ ૬ ॥

॥ ટીકા ॥

‘પઙ્કિમ્મામિ’ ગતાઽસ્થ વ્યાખ્યા, ‘એગવિહે’ એકા ત્રિધા=પ્રકારો
(ભેદો) યસ્ય સ એકવિધસ્તસ્મિન્, ‘અસજમે’ ન સયમ =અમયમ =પાપાચારા

યહ અતિચાર સક્ષેપ સે એક પ્રકારકા, વિસ્તાર સે દો ત્રીન
આદિ આત્માબ્યવસાયસે સખ્યાત અસખ્યાત યાવત્ અનન્ત પ્રકાર
કા હૈ, ઉનમેં સે એક આદિ ભેદ કહતે હૈ—‘પઙ્કિમ્મામિ એગવિહે૦’
ઇત્યાદિ ।

એક પ્રકારકા અસયમ હોને પર જો મુક્તસે અતિચાર હુઆ

આ અતિચાર સક્ષેપથી એક પ્રકારના છે, અને વિસ્તારથી બે-ત્રણ આદિ
આત્માબ્યવસાયથી સખ્યાત અસખ્યાત યાવત્ અનન્ત પ્રકારના છે, તેમાંથી એક વગેરેનો
લે. કહે છે—“પઙ્કિમ્મામિ એગવિહે” ઇત્યાદિ

એક પ્રકારનો અસયમ થવાથી મને જે અતિચાર લાગ્યો હોય એ

सुखलालसारूपनिशितधारकुठारेण तन्निदान^१तच्च तच्छल्य निदानशल्य तेन, 'मिच्छा-
दसणसल्लेण' मिथ्या=विपरीत=मोहकर्मोदयजनित दर्शनम्=अभिप्रायो मिथ्या-
दर्शनं तदेव शल्य तेन, 'पडिक्कमामि' प्रतिक्रामामि, 'तिहि' त्रिभिः, 'गारवेहि'
गुरोः कर्म भावो वा गौरव, तद्विविधं द्रव्यगत भावगत च, द्रव्यगत वज्रादेः,
भावगतमहङ्कारलोभादिजन्यमात्मनोऽशुभभावरूपचतुर्गतिससारचक्रभ्रमणनिदान -
कर्मकारणम्, अत्र त्वेतदेव विवक्षित प्रकरणात्, तैः, तद्वारेति भावः 'यो मयाऽति-
चारः कृतः' इत्यादिसम्बन्ध. प्राग्वत् । तदेव गौरवत्रयमाह-'इड्ढी०' इति,
'इड्ढीगारवेण' ऋद्धि.=राजैश्वर्यादिलक्षणा, आचार्यादिपदसम्प्राप्तिर्लक्षणा वा
तथा तस्या वा गौरवमृद्धिगौरवम्=आत्मोत्कर्षस्तेन, 'रसगारवेण' रस=रस-
नेन्द्रियार्थो मधुरादिः, तस्य गौरव=तदवाप्त्यभिमानस्तेन, 'सायागारवेण' शात=
शरीरादिमुख तेन तस्य वा गौरव शातगौरव, तेन-'अहो अहमस्मि शरीरादि-
मुखसम्पन्न. 'इत्यभिमानेनेति यावत् 'साया' इत्यत्र प्राकृतत्वादीर्घः, 'पडिक्कमामि'

समान, आत्मरूप भूमिमें उत्पन्न समकित रूप अङ्कुर से युक्त निर्मल
भावनारूप जलसे सींचे हुए, तप सयम आदि फूलों से हरे भरे
और मोक्षरूप फलसे विभूषित कुशलकर्मरूप कल्पवृक्ष को
काटनेवाला निदान (नियाणा) और मोहकर्म के उदय से होनेवाला
अभिप्रायरूप मिथ्यादर्शन, इन तीन शल्यों से और राजा आदि
या आचार्य आदि की पदप्राप्तिरूप ऋद्धिगौरव, मधुर आदि रसकी
प्राप्ति का अभिमानरूप रसगौरव, तथा शरीर आदि की सुख प्राप्ति
से होनेवाला अभिमानरूप शातगौरव के कारण, एव ज्ञानकी (जिसके

धारथी युक्त कुठार समान, आत्मरूप भूमिमा उत्पन्न समकितरूप अङ्कुरथी
युक्त निर्मल भावनारूप जलथी सींचे, तपसयम आदि फूलथी भरेला
मोक्षरूप फलथी विभूषित कुशल कर्म रूप कल्पवृक्षने कापवावाणा निदान
(नियाणु) अने मोहकर्मना उदयथी उत्पन्न यनारा अभिप्राय रूप मिथ्यादर्शन,
आ त्रषु शल्येथी, राजा अथवा आचार्य आदि पदनी प्राप्ति रूप ऋद्धिगौरव,
मधुर आदि रसनी प्राप्तिना अभिमान रूप रसगौरव तथा शरीर आदिना सुखनी
प्राप्तिथी यवावाणा अभिमानरूप शातगौरव, अे प्रभाण्णे ज्ञाननी (नेना वडे

स्तेन, 'तिहि' तिसृभिः, 'गुत्तीहि' गोपनमर्याद्रक्षण गुप्तिः आगन्तुककर्मवच
वरनिरोधो योगनिरोधो वा तामिर्योऽतिचारः कुतस्तस्मात् 'पटिकमामि' प्रति
क्रामामि, गुप्तित्रयमाह 'मण' इति 'मणगुत्तीए' मनोगुप्त्या 'वचगुत्तीए'
वचोगुप्त्या, 'कायगुत्तीए' कायगुप्त्या, अर्थः प्रस्फुटः, आह—कथं गुप्तीनामति-
चारं प्रति करणत्वं? मिति, उच्यते—विहिताननुष्ठान-निषिद्धाऽऽचरण-श्रद्धान्
प्रस्खलनादिना व्युत्क्रमेण सेविता मनोगुप्त्यादयोऽतिचारहेतवः सम्पन्नन्त इति ।
'तिहि' त्रिभिः, 'सल्लेहि' शल्यते=क्रियते जीवो यैस्तानि शल्यानि, द्रव्य
भावभेदेन शल्यस्य द्वैविध्येऽप्यत्र प्रकरणाद्भावशल्यस्यैव ग्रहणं बोध्यम्, अन्वय
इहापि प्राग्बदेन, शल्यत्रयमाह—'माया०' इति—'मायासल्लेण' मीयते=प्रतार्यते
प्रक्षिप्यते^१ वा नरकादौ लोकोऽनयेति, यद्वा, ^२माय्यते=अशुभकर्मरूपे गर्ते पात्यते
लोकोऽनयेति, भान्ति सर्वे दुर्गुणा यस्यामिति वा माया, तद्रूपं शल्यं मायाशल्यं=
मनसा वाचा कायेन वा परवञ्चनस्वरूपं तेन, 'नियाणसल्लेण' नितरा दीयते=
छिन्यते आत्मभूमिजात-सम्यक्त्वाऽङ्कुरित-विविधविमलभावनासलिलसंवर्द्धित-
ध्यानक्रियापल्लविताऽखण्डतपःसयमाद्यनुष्ठानपुष्पित - मोक्षफलसुभूषित - कुशल
कर्मफलपटुक्षो येन—ऐहिकचक्रवर्त्यादिपारलौकिकदेवद्वर्चादिपदप्राप्तिजन्यविषय-

न करने, निषिद्ध का सेवन करने, तथा अश्रद्धानादिसे सम्यक्
असेवित योगनिरोधरूप मनोगुप्ति वचनगुप्ति कायगुप्ति, इन तीन
गुप्तियों के कारण, अशुभ कर्मों के गर्दूमे या नरकमें गिरानेवाली
अथवा विषयोंमें प्राणियों को लुभानेवाली माया, ऐहिक चक्रवर्ती
आदि, परलोकसम्बन्धी देवक्रद्धि आदिके पदों की प्राप्ति से
होनेवाली विषयसुखलालसारूप तीक्ष्णधारा से युक्त कुठार के

-ष्ठान न कथुं डोय अने निषिद्धनु सेवन कथुं डोय, तथा अश्रद्धाथी सम्यक्
असेवित योगनिरोधरूप मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति, आ त्रय
गुप्तिभ्योना कारणे अशुभ कर्मोना पाडाभा अथवा नरकभा नाभनारी, अथवा
विषयोभा प्राणीभ्योने लोभावनारी माया, ऐहिक-चक्रवर्ती आदि, परलोक सम्बन्धी
देव क्रद्धि आदि पदोनी प्राप्तिथी यनारी विषयसुखनी लालसारूप तीक्ष्ण

१—'दुमित्रं प्रक्षेपणे' इत्यस्येदम् ।

२—'मयं गर्तो' इत्यस्य ण्यन्तस्येदम् ।

सुखलालसारूपनिशितधारकुठारेण तन्निदानं तच्च तच्छल्य निदानशल्य तेन, 'मिच्छा-
दसणसल्लेण' मिथ्या=विपरीत=मोहकर्मोदयजनित दर्शनम्=अभिप्रायो मिथ्या-
दर्शनं तदेव शल्य तेन, 'पडिक्कमामि' प्रतिक्रमामि, 'तिहिं' त्रिभिः, 'गारवेहिं'
गुरोः कर्म भावो वा गौरव, तद्विविधं द्रव्यगत भावगत च, द्रव्यगत वज्रादेः,
भावगतमहङ्कारलोभादिजन्यमात्मनोऽशुभभावरूपचतुर्गतिससारचक्रभ्रमणनिदान -
कर्मकारणम्, अत्र त्वेतदेव विवक्षित प्रकरणात्, तैः, तद्वारेति भावः 'यो मयाऽति-
चारः कृतः' इत्यादिसम्बन्धः प्राग्वत् । तदेव गौरवत्रयमाह-'इड्ढी०' इति,
'इड्ढीगारवेण' ऋद्धि.=राजैश्वर्यादिलक्षणा, आचार्यादिपदसम्प्राप्तिर्लक्षणा वा
तथा तस्या वा गौरवमृद्धिर्गौरवम्=आत्मोत्कर्षस्तेन, 'रसगारवेण' रस=रस-
नेन्द्रियार्थो मधुरादिः, तस्य गौरव=तदवाप्त्यभिमानस्तेन, 'सायागारवेण' शात=
शरीरादिसुख तेन तस्य वा गौरव शातगौरव, तेन-'अहो अहमस्मि शरीरादि-
सुखसम्पन्न. 'इत्यभिमानेनेति यावत् 'साया' इत्यत्र प्राकृतत्वादीर्घः, 'पडिक्कमामि'

समान, आत्मरूप भूमिमें उत्पन्न समकित रूप अङ्कुर से युक्त निर्मल
भावनारूप जलसे सींचे हुए, तप सयम-आदि फूलों से हरे भरे
और मोक्षरूप फलसे विभूषित कुशलकर्मरूप कल्पवृक्ष को
काटनेवाला निदान (नियाणा) और मोहकर्म के उदय से होनेवाला
अभिप्रायरूप मिथ्यादर्शन, इन तीन शल्यों से और राजा आदि
या आचार्य आदि की पदप्राप्तिरूप ऋद्धिर्गौरव, मधुर आदि रसकी
प्राप्ति का अभिमानरूप रसगौरव, तथा शरीर आदि की सुख प्राप्ति
से होनेवाला अभिमानरूप शातगौरव के कारण, एव ज्ञानकी (जिसके

धारथी युक्त कुठार समान, आत्मरूप भूमिमा उत्पन्न समकितरूप अङ्कुरथी
युक्त निर्मल भावनारूप जलथी सींचेला, तपसयम आदि फूलोथी लरेला
मोक्षरूप फलथी विभूषित कुशल कर्म रूप कल्पवृक्षने कापवावाणा निदान
(नियाणु) अने मोहकर्मना उदयथी उत्पन्न यनारा अभिप्राय रूप मिथ्यादर्शन,
आ त्रषु शल्योथी, राजा अथवा आचार्य आदि पदनी प्राप्ति रूप ऋद्धिर्गौरव,
मधुर आदि रसनी प्राप्तिना अभिमान रूप रसगौरव तथा शरीर आदिना सुखनी
प्राप्तिथी यवावाणा अभिमानरूप शातगौरव, अे प्रभाणु ज्ञाननी (नेना वडे

स्तेन, 'तिहिं' तिसृभिः, 'गुत्तीहिं' गोपनमर्थाद्रक्षण गुप्तिः आगन्तुककर्मकच-
 वरनिरोधो योगनिरोधो वा ताभिर्योऽतिचारः कृतस्तस्मात् 'पडिकमामि' प्रति-
 क्रामामि, गुप्तित्रयमाह 'मण' इति 'मणगुत्तीए' मनोगुप्त्या 'वचगुत्तीए'
 वचोगुप्त्या, 'कायगुत्तीए' कायगुप्त्या, अर्थः प्रस्फुटः, आह-कथं गुप्तीनामति-
 चार प्रति करणत्व? मिति, उच्यते-विहिताननुष्ठान-निषिद्धाऽऽचरण-श्रद्धान-
 प्रस्खलनादिना व्युत्क्रमेण सेविता मनोगुप्त्यादयोऽतिचारहेतवः सम्पद्यन्ते इति ।
 'तिहिं' त्रिभिः, 'सल्लेहिं' शल्यते=क्षिप्यते जीवो यैस्तानि शल्यानि, द्रव्य
 भावभेदेन शल्यस्य द्वैविध्येऽप्यत्र प्रकरणाद्भावशल्यस्यैव ग्रहण बोध्यम्, अन्यथ
 इहापि प्राग्बदेन, शल्यत्रयमाह-'माया०' इति-'मायासल्लेण' मीयते=प्रतार्यते
 प्रक्षिप्यते^१ वा नरकादौ लोकोऽनयेति, यद्वा, ^२माग्यते=अशुभकर्मरूपे गर्ते पात्यते
 लोकोऽनयेति, गन्ति सर्वे दुर्गुणा यस्यामिति वा माया, तद्रूप शल्य मायाशल्य=
 मनसा वाचा कायेन वा परवञ्चनस्वरूप तेन, 'नियाणसल्लेण' नितरा दीयते=
 छिद्यते आत्मभूमिजात-सम्यक्त्वाऽङ्कुरित-विविधविमलभावनासलिलसंवर्द्धित-
 ध्यानक्रियापल्लविताऽखण्डतपःसयमात्रनुष्ठानपुष्पित - मोक्षफलसुभूषित - कुशल-
 कर्मकल्पवृक्षो येन—ऐहिकचक्रवर्त्यादिपारलौकिकदेवद्वर्त्यादिपदप्राप्तिजन्यविषय

न करने, निषिद्ध का सेवन करने, तथा अश्रद्धानादिसे सम्यक्
 असेवित योगनिरोधरूप मनोगुप्ति वचनगुप्ति कायगुप्ति, इन तीन
 गुप्तियों के कारण, अशुभ कर्मों के गड्ढेमें या नरकमें गिरानेवाली
 अथवा विषयोंमें प्राणियों को लुभानेवाली माया, ऐहिक चक्रवर्ती
 आदि, परलोकसम्बन्धी देवक्रद्धि आदिके पदों की प्राप्ति से
 होनेवाली विषयसुखलालसारूप तीक्ष्णधारा से युक्त कुठार के

-ष्ठान न कथुं डोय अने निषिद्धनु सेवन कथुं डोय, तथा अश्रद्धाधी सम्यक्
 असेवित योगनिरोधरूप मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति, आ त्रय
 गुप्तिभ्योना कारणे अशुभ कर्मोना भाडामा अथवा नरकमा नाभनारी, अथवा
 विषयोमा प्राप्तिभ्योने लोभावनारी माया, ऐहिक-चक्रवर्ती आदि, परलोक सम्बन्धी
 देव क्रद्धि आदि पदोनी प्राप्तिथी धनारी विषयसुखनी लालसारूप तीक्ष्ण

१-'डुमिन् प्रक्षेपणे' इत्यस्येदम् ।

२-'मय गती' इत्यस्य प्यन्तस्येदम् ।

हसण्णाए । पडिक्कमामि चऊहिं विकहाहि-इत्थिकहाए, भत्तकहाए,
देसकहाए, रायकहाए । पडिक्कमामि चऊहिं ज्ञाणेहि-अट्टेण ज्ञाणेणं,
रुद्धेण ज्ञाणेणं, धम्मणेणं ज्ञाणेणं, सुद्धेणं ज्ञाणेणं ॥ सू० ७ ॥

॥ छाया ॥

प्रतिक्रमामि चतुर्भिः कपायै -क्रोधकपायेण, मानकपायेण, मायाकपा-
येण, लोभकपायेण । प्रतिक्रमामि चतसृभिः सज्ञाभिः-आहारसज्ञया, भयसज्ञया,
मैथुनसज्ञया, प्रतिग्रहसज्ञया । प्रतिक्रमामि चतसृभिर्विक्थयाभिः-स्त्रीकथया, भक्त-
कथया, देशकथया, राजकथया । प्रतिक्रमामि चतुर्भिर्ध्यानिः-आर्त्तेन ध्यानेन,
रौद्रेण ध्यानेन, धर्मेण ध्यानेन, शुक्लेन ध्यानेन ॥ सू० ७ ॥

॥ टीका ॥

‘ पडिक्कमामि ’ प्रतिक्रमामि, ‘ चऊहिं ’ चतुर्भिः, ‘ कसाएहिं ’
कप्यते=ससारे समाकृष्यत आत्मा यैस्ते कपायाः^१, यद्वा कपति=हिनस्ति विषय-
करवालेन प्राणिन इति कपः=ससारस्तस्य आय.=लाभो यैरिति, कप्यन्ते=गमनाऽऽ-
गमनादिकण्टकेषु घृष्यन्ते प्राणिनो यैरिति, कृप्यते=सुखदुःखादिसस्यफलयोग्या
क्रियते कर्मभूमिर्यैरिति, क्लृपयन्ति=मलिनयन्ति स्वभावमपि जीवमिति निरुक्त-
वृत्त्या वा कपायास्तैः, तद्वारेत्यर्थः ‘ यो मये ’-त्यादिसम्बन्धः प्राग्वत्, तदेव
कपायचतुष्टयमाह—‘ कोहं ’ इति—‘ कोहकसाएण ’ कृप्यति=विकृतो भव-
त्यात्माऽनेनेति क्रोधः स चासौ कपायश्च क्रोधकपायस्तेन, ‘ माणकसाएण ’
मानन=स्वमपेक्षयाऽऽन्यस्य हीनतया परिच्छेदन, यद्वा मीयते=परिच्छिद्यतेऽनेनेति
मानः स चासौ कपायश्च मानकपायस्तेन, ‘ मायाकसाएण ’ मायाशब्दव्याख्या

आत्मा को इस ससारमें परिभ्रमण करानेवाले, या गमना-
गमनरूप कण्टकों में प्राणियों को घसीटने वाले, अथवा आत्मा
को मलिन करनेवाले जीवपरिणाम को कपाय कहते हैं, इस
कपाय अर्थात् क्रोध-मान-माया-और लोभ के कारण, जिससे जीव या

आत्माने ससारमा परिभ्रमण करानेवाले अथवा नवु आववु वगेरे
क्रियाइय कटकेमा प्राणीओने जेथी नवानाणा, अथवा आत्माने मलिन
करवावाणा एवना परिणामेने कपाय ठडे छे आ कपाय अर्थात् क्रोध, मान,

१- ‘ कप् ’ घातोरौणादिक ‘ आय ’ प्रत्यय.

प्रतिक्रामामि, 'तिहि' तिसृभिः, 'विराहणाहि' विगतान्याराधनानि, यद्वा त्रि= विशेषेण राधनानि विराधनाः=खण्डनास्ताभिरर्थात्तद्वारा यो मयाऽतिचारः कृतः' इत्यादिसम्बन्धः प्रागुक्तप्रकारः । विराधनाभेदानाह—'नाण०' इति 'नाणवि राहणाए' ज्ञायन्ते—अवबुध्यन्ते पदार्था येन यस्माद्वा तज्ज्ञानम्=पदार्थपरिबोध-स्तस्य विराधना=ज्ञानविराधना=तया, 'दसणविराहणाए' दृश्यन्ते=धातूनामनेकार्थत्वात् श्रद्धीयन्ते पदार्था अनेनेति दर्शन=सम्यग्रूप तस्य विरा धना तया, 'चारित्तविराहणाए' चर्यते=समाराध्यते मुमुक्षुभिरिति चर्यते=कर्मणा रिक्तीक्रियते आत्माऽनेनेति वा चरित्र तदेव—'चारित्र=व्रत-स्थावरादि प्राणातिपाताद्युपरमरूपाऽऽत्मपरिणामरूप, सर्वसावययोगपरित्यागपुरस्सरनिरवध-योगानुष्ठानरूप या सामायिकादि, तस्य विराधना=चारित्रनिराधना तया ॥ सू० ६ ॥

॥ मूलम् ॥

पडिक्कमामि चउहि कसाएहि—कोहकसाएणं, माणक-साएण, मायाकसाएण, लोहकसाएण, । पडिक्कमामि चउहि सण्णाहि—आहारसण्णाए, भयसण्णाए, मेहुणसण्णाए, परिग-

द्वारा जीवादि पदार्थ जाना जाय वह ज्ञान, उसकी) विराधना, दर्शनकी (जिस के द्वारा जीवादि-पदार्थों का श्रद्धान किया जाय वह दर्शन, उसकी) विराधना, चारित्रकी (मोक्षार्थियों से सेवन करने योग्य, अथवा आत्मा को कर्म रहित करने वाला चारित्र, उसकी) विराधना, इन तीन विराधनाओं (आराधना के अभाव अथवा खण्डनारूप) के कारण जो मुझ से अतिचार किया गया हो तो उससे मैं निवृत्त होता ॥ सू० ६ ॥

एवाहि पदार्थ ज्ञाणी शक्य ते ज्ञान, तेनी) विराधना, दर्शननी (नेना वडे एवाहि पदार्थोनी श्रद्धा करवामा आवे, प्रवचनमा ऐसी थाय ते दर्शन, तेनी) विराधना, चारित्रनी (मोक्षार्थी एवेने सेवन करवा योग्य, अथवा आत्माने कर्म-रहित करवावाणे चारित्र, तेनी,) विराधना, आ वरु विराधनाओना कारणे (आराधनानो अभाव अथवा खण्डनारूप) कारणे भने ने अतिचार लाग्यो होय तो तेमाथी हु निवृत्त थाउ छु (सू० ६)

हसण्णाए । पडिक्कमामि चऊहिं विकहाहिं-इत्थिकहाए, भत्तकहाए,
देसकहाए, रायकहाए । पडिक्कमामि चऊहिं ज्ञाणेहिं-अट्ठेणं ज्ञाणेणं,
रुद्धेण ज्ञाणेण, धम्मणेणं ज्ञाणेणं, सुक्खेणं ज्ञाणेणं ॥ सू० ७ ॥

॥ छाया ॥

प्रतिक्रामामि चतुर्भिः कषायै - क्रोधकषायेण, मानकषायेण, मायाकषा-
येण, लोभकषायेण । प्रतिक्रामामि चतसृभिः सङ्गाभिः-आहारसङ्गया, भयसङ्गया,
मैथुनसङ्गया, प्रतिग्रहसङ्गया । प्रतिक्रामामि चतसृभिर्विकथाभिः-स्त्रीकथया, भक्त-
कथया, देशकथया, राजकथया । प्रतिक्रामामि चतुर्भिर्ध्यानैः-अर्त्तेन ध्यानेन,
रौद्रेण ध्यानेन, धर्मेण ध्यानेन, शुक्लेन ध्यानेन ॥ सू० ७ ॥

॥ टीका ॥

‘पडिक्कमामि’ प्रतिक्रामामि, ‘चऊहिं’ चतुर्भिः, ‘कसाएहिं’
कष्यते=संसारे समाकृष्यत आत्मा यैस्ते कषायाः^१, यद्वा कपति=द्विनस्ति विषय-
करवालेन प्राणिन इति कपः=ससारस्तस्य आय.=लाभो यैरिति, कष्यन्ते=गमनाऽऽ-
गमनादिकण्टकेषु घृष्यन्ते प्राणिनो यैरिति, कृष्यते=सुखदुःखादिसस्यफलयोग्या
क्रियते कर्मभूमिर्यैरिति, क्लृपयन्ति=मलिनयन्ति स्वभावमपि जीवमिति निरुक्त-
वृत्त्या वा कषायास्तैः, तद्वारेत्यर्थः ‘यो मये’-त्यादिसम्बन्धः प्राग्वत्, तदेव
कषायचतुष्टयमाह-‘कोहं’ इति-‘कोहकसाएण’ कृष्यति=विकृतो भव-
त्यात्माऽनेनेति क्रोधः स चासौ कषायश्च क्रोधकषायस्तेन, ‘माणकसाएण’
मानन=स्वमपेक्षयाऽऽन्यस्य हीनतया परिच्छेदन, यद्वा मीयते=परिच्छिद्यतेऽनेनेति
मानः स चासौ कषायश्च मानकषायस्तेन, ‘मायाकसाएण’ मायाशब्दव्याख्या

आत्मा को इस संसारमें परिभ्रमण करानेवाले, या गमना-
गमनरूप कण्टकों में प्राणियों को घसीटने वाले, अथवा आत्मा
को मलिन करनेवाले जीवपरिणाम को कषाय कहते हैं, इस
कषाय अर्थात् क्रोध-मान-माया-और लोभ के कारण, जिससे जीव या

आत्माने संसारमा परिभ्रमण करानेवाले अथवा जलु आवधुं वगेरे
कियाइय कटकाभा प्राणीओने जेरी जवावाणा, अथवा आत्माने मलिन
करवावाणा जिवना परिणामेने कषाय कहे छे आ कषाय अर्थात् क्रोध, मान,

१- ‘कृष्’ घातोरौणादिय ‘आय’ प्रत्यय.

ત્વનુપદમેવોક્તા, ‘લોહકસાણ’ લોભોઽભિકાદ્દક્ષા, અથવા ‘લુભ્યતે વ્યાકુલી-
ક્રિયત આત્માઽનેનેતિ લોભઃ, સ ચાસૌ કપાયથ્વ લોભકપાયસ્તેન, ‘પટિક્કમામિ’
પતિક્રામામિ, કામિઃ? ‘ચઙ્ઘિ’ ચતસૃભિઃ, ‘સણ્ઘાહિ’ સજ્ઞાનાનિ=સજ્ઞાઃ,
સજ્ઞાયતે જીવસ્તચ્છેષ્ટાવિશેષો વા યામિરિતિ સજ્ઞાઃ=અમિલાપવિશેષરૂપાસ્તા
મિરર્થાત્તદ્વારા ‘યોઽતિચારઃ કૃત’ इत्यादिसम्बन्धः प्राग्वत् । तद्धेदानाह—
‘આહારં’ इति ‘आहारसण्णाए’ आहारणमाहारस्तद्विषया सज्ज्ञाऽऽहारसज्ज्ञा=
શુદ્ધેદનીયોદયેન કવલાગ્રમિલાપસ્વરૂપાઽઽત્મપરિણતિવિશેષસ્તયા, ‘ભય
સણ્ણાए’ ભય=ભીતિસ્તદ્વિષયા સજ્ઞા ભયસજ્ઞા તયા ‘મેથુણસણ્ણાए’ મિથુન
સ્ત્રીપુસૌ તત્કર્મ મૈથુન તદ્વિષયા સજ્ઞા મૈથુનસજ્ઞા=સ્ત્ર્યાદિવેદોદયરૂપા તયા,
‘પરિગ્રહસણ્ણાए’ પરિ=સમન્તાદ્ ગૃહ્યતે=સ્વીક્રિયત इति परिग्रहः, यद्वा परि-
ग्रहण=परिग्रहस्तद्विषया सज्ज्ञा परिग्रहसज्ज्ञा=लोभजन्याऽऽत્मपरिणतिविशेषस्तया ।
‘પટિક્કમામિ’ પતિક્રામામિ, ‘ચઙ્ઘિ’ ચતસૃભિઃ, ‘વિક્કઠાહિ’ વિ=વિરુદ્ધાઃ
સયમવિરાધસ્ત્વેન કથા=વચનરચનાવલ્યઃ વિકથાસ્તામિસ્તદ્વારેત્યર્થ. ‘યો મયે’
इत्यादिसम्बन्धः प्राग्वदेव । तदेव विकथाचतुष्टयमाह—‘इत्थि०’ इति । ‘इत्थि-
કહાए’ સ્ત્રીણા કથા સ્ત્રીકથા તયા, इय च स्त्रीकथा जाति-कुल-रूप-नेपथ्य-भेदा
चतुर्धा, तत्र जात्या स्त्रीकथा, यथा—

‘મૃતે પત્યૌ દુઃસ્વદગ્ધા, ધિગસ્તુ બ્રાહ્મણી સદા । ધન્યા શૂદ્રૈવ યાઽઽપ્રોતિ,

અજીવકી ચેષ્ટા જાની જાય એસી આહાર-ભય-મૈથુન-તથા પરિગ્રહરૂપ
સજ્ઞા કે કારણ ઔર સ્ત્રીકથા, ભક્તકથા, દેશકથા તથા રાજકથા
રૂપ ચાર વિકથાઓં કે કારણ જો કુછ અતિચાર કિયા गया हो
तो उससे मैं निवृत्त होता हूँ ।

इनमें ‘स्त्रीकथा’ जाति कुल रूप और नेपथ्य के भेदसे

માયા અને લોભના કારણે, જેના વડે જીવ અને અજીવની ચેષ્ટા બાણુવામા આવે એવી
આહાર, ભય, મૈથુન તથા પરિગ્રહ રૂપ સજ્ઞાના કારણે, અને સ્ત્રીકથા, ભક્તકથા,
દેશકથા, તથા રાજકથા રૂપ ચાર વિકથાઓ કરવાના કારણે જે કેઈ અતિચાર
થયા હોય તો તેમાથી હું નિવૃત્ત થાઉં છું

એમા સ્ત્રીકથા જાતિ કુલ રૂપ અને નેપથ્યના ભેદથી ચાર પ્રકારની છે,

૧- ‘લુભ વિમોહને’ ‘વિમોહનમાકુલીકરણ’-મિતિ સિદ્ધાન્તકૌમુદી ।

ધવે પ્રેતે પર પરમ્” ॥૧॥ इत्यादि रीत्या ब्राह्मण्यादीना विनिन्दनादिः । कुलेन यथा—‘अहो प्रशस्ततमोग्रकुलसभूतेय बाले’—इत्येवमादिः । रूपेण यथा—‘कटाक्षवाणा मैथिल्य आन्त्र्यः शशधरानना’ इत्येवमादिः, नेपथ्येन यथा—‘चैनाः पर्वतीयाश्च चिपिटनासिका निःसीमवस्त्राभरणादिभारा दुर्भाषिताश्च, आन्ध्री-गुर्जरी-मैथिली-पाञ्चाल्यो यथोचितवस्त्राभरणादिसुवेपपरिच्छिन्नाः’ इत्यादि, स्त्रीकथाया स्वपरोदीरणोद्वाहब्रह्मचर्यागुप्त्यादिदोषसम्भवेनाऽतिचारहेतुत्वमव-सेयम् । ‘भक्तकहाए’ भक्तस्य=ओदनादेः कथा, भक्तकथा तथा, इयमपि चतुर्धा-आवाप-निर्वाप-ऽऽरम्भ-निष्ठानिभेदात्, तत्राऽऽवापेन भक्तकथा यथा—

चार प्रकारकी है, उनमें जातिकथा जैसे—“पति के मर जाने पर दुःख से दिन बितानेवाली ब्राह्मणी को धिक्कार है, शूद्रा ही धन्य है जो एक पति मर जाने पर भी दूसरे पति के द्वारा सुखसे जीवन बिताती है’ इत्यादि । कुलकथा जैसे—‘यह कन्या उग्रकुलकी है इसलिये अच्छी है’ इत्यादि । रूपकथा जैसे—‘पहाड़ी स्त्रिया वस्त्र और आभूषण बहुत रखती है, मैथिली और पजाबी स्त्रियाँ आवश्यकतासे अधिक वस्त्र तथा आभूषण नहीं पहनती है’ इत्यादि । ऐसी कथाओंसे ब्रह्मचर्य आदि व्रतों में दोष लगने की संभावना रहती है इसलिये हमको अतिचार का हेतु माना गया है ।

‘भक्तकथा’ आवाप, निर्वाप, आरम्भ और निष्ठान भेदसे चार प्रकारकी है । उनमें आवाप भक्तकथा जैसे—इस रसोई में

તેમા જાતિકથા જેવી રીતે કે—પતિ મરણ પામ્યા પછી હું ખથી દિવસો વિતાવનારી બ્રાહ્મણીને ધિક્કાર છે, શૂદ્રાણીનેજ ધન્ય છે કે જેનો એક પતિ મરણ પામી જતા બીજા પતિ દ્વારા સુખથી જીવન ગુજારે છે ઇત્યાદિ

કુલકથા—આ કન્યા ઉગ્રકુલની છે, એટલા માટે સારી છે ઇત્યાદિ
રૂપકથા જેમ—પહાડી સ્ત્રીઓ વસ્ત્રો અને આભૂષણ બહુજ રાખે છે, મૈથિલી અને પંજાબી સ્ત્રીઓ જરૂર કરતા વધારે વસ્ત્ર તથા આભૂષણ પહેરતી નથી, ઇત્યાદિ
આવી કથાઓથી બ્રહ્મચર્ય આદિ વ્રતોમા દોષ લાગવાની સંભાવના રહેવાથી તેને અતિચારનો હેતુ માનવામા આવેલ છે

ભક્તકથા—આવાપ—નિર્વાપ—આરંભ અને નિષ્ઠાન લેતી ચાર પ્રકારની છે

त्यनुपदमेऽप्युक्ता, 'लोहकसाएण' लोभोऽभिकाङ्क्षा, अथवा 'लुभ्यते' व्याकुली-
क्रियत आत्माऽनेनेति लोभः, स चासौ कषायश्च लोभकषायस्तेन, 'पडिक्कमामि'
प्रतिक्रामामि, काभिः? 'चऊहि' चतसृभिः, 'सण्णाहि' सज्ञानानि=सज्ञाः,
सज्ञायते जीवस्तच्चेष्टाविशेषो वा याभिरिति सज्ञाः=अभिलाषविशेषरूपास्ता
भिरर्थात्तद्वारा 'योऽतिचारः कृत' इत्यादिसम्बन्धः प्राग्यत् । तद्वेदानाह—
'आहार०' इति 'आहारसण्णाए' आहारणमाहारस्तद्विषया सज्ञाऽऽहारसज्ञा=
क्षुद्धेदनीयोदयेन कर्त्तव्याभिलाषस्वरूपाऽऽत्मपरिणतिविशेषस्तया, 'भय
सण्णाए' भय=भीतिस्तद्विषया सज्ञा भयसज्ञा तथा 'मैथुणसण्णाए' मिथुन
स्त्रीपुंसौ तत्कर्म मैथुन तद्विषया सज्ञा मैथुनसज्ञा=स्न्यादिवेदोदयरूपा तथा,
'परिग्रहसण्णाए' परि=समन्ताद् गृह्यते=स्वीक्रियत इति परिग्रहः, यद्वा परि
ग्रहण=परिग्रहस्तद्विषया सज्ञा परिग्रहसज्ञा=लोभजन्याऽऽत्मपरिणतिविशेषस्तया ।
'पडिक्कमामि' प्रतिक्रामामि, 'चऊहि' चतसृभिः, 'विकहाहि' वि=विरुद्धाः
सयमविराधकत्वेन कथाः=वचनरचनात्रयः विकथास्ताभिस्तद्वारेत्यर्थः 'यो मये'
त्यादिसम्बन्धः प्राग्वदेव । तदेव विकथाचतुष्टयमाह—'इत्थि०' इति । 'इत्थि-
कहाए' स्त्रीणां कथा स्त्रीकथा तथा, इयं च स्त्रीकथा जाति-कुल-रूप-नेपथ्य-भेदा
चतुर्धा, तत्र जात्या स्त्रीकथा, यथा—

‘मृते पत्यौ दुःखदग्धा, धिगस्तु ब्राह्मणी सदा । धन्या शूद्रैव याऽऽप्नोति,

अजीवकी चेष्टा जानी जाय ऐसी आहार-भय-मैथुन-तथा परिग्रहरूप
सज्ञा के कारण और स्त्रीकथा, भक्तकथा, देशकथा तथा राजकथा
रूप चार विकथाओं के कारण जो कुछ अतिचार किया गया हो
तो उससे मैं निवृत्त होता हूँ ।

इनमें 'स्त्रीकथा' जाति कुल रूप और नेपथ्य के भेदसे

भाया अने दोषना कारणे, जेना वडे लुव अने अलुवनी चेष्टा नानुवाभा आवे जेवी
आहार, भय, मैथुन तथा परिग्रह रूप सज्ञाना कारणे, अने स्त्रीकथा, भक्तकथा,
देशकथा, तथा राजकथा रूप चार विकथाओं कारणे जे कुछ अतिचार
तथा होय तो तेमाथी हु निवृत्त थाउ छु

जेमा स्त्रीकथा जाति कुल रूप अने नेपथ्यना भेदथी चार प्रकारनी छे,

१- 'लुभ विमोहने' 'विमोहनमाकुलीकरण'—मिति सिद्धान्तकौमुदी ।

ધવે પ્રેતે પરં પરમ્” ॥૧॥ ઇત્યાદિ રીત્યા બ્રાહ્મણ્યાદીના વિનિન્દનાદિઃ । કુછેન યથા-‘અહો પ્રશસ્તતમોગ્રકુલસમ્ભૂતેય ગાલે’-ત્યેવમાદિઃ । રૂપેણ યથા-‘કટા-ક્ષવાણા મૈથિલ્ય આન્ત્ર્યઃ શશધરાનના’-ત્યેવમાદિઃ, નેપથ્યેન યથા-‘ચૈનાઃ પર્વતીયાશ્ચ ચિપિટનાસિકા નિઃસીમવસ્ત્રાભરણાદિભારા દુર્ભાષિતાશ્ચ, આન્ધ્રી-ગુર્જરી-મૈથિલી-પાશ્ચાલ્યો યથોચિતવસ્ત્રાભરણાદિસુવેષપરિચ્છિન્નાઃ’ ઇત્યાદિ, સ્ત્રીકથાયા સ્વપરોદીરણોઢાદ્વ્રહ્મચર્યાગુપ્ત્યાદિદોષસમ્ભવેનાઽતિચારહેતુત્વમવ-સેયમ્ । ‘મક્તકઢાણ’ મક્તસ્ય=ઓદનાદેઃ કથા, મક્તકથા તયા, ઇયમપિ ચતુર્દા-આગપ-નિર્વાપા-ઽઽરમ્મ-નિષ્ઠાનિમેદાત્, તત્રાઽઽવાપેન મક્તકથા યથા—

ચાર પ્રકારકી હૈ, ડનમેં જાતિકથા જૈસે—“પતિ કે મર જાને પર દુઃખ સે ઢિન વિતાનેવાલી બ્રાહ્મણી કો ધિક્કાર હૈ, શૂદ્રા હી ધન્ય હૈ જો ઇક પતિ મર જાને પર મી દૂસરે પતિ કે દ્વારા સુખસે જીવન વિતાતી હૈ” ઇત્યાદિ । કુલકથા જૈસે—‘યહ કન્યા ડગ્રકુલકી હૈ ડસલિયે અઢ્ઢી હૈ’ ઇત્યાદિ । રૂપકથા જૈસે—‘પહાડી સ્ત્રિયા વસ્ત્ર ઓર આભૂષણ બહુત રખતી હૈ, મૈથિલી ઓર પજાબી સ્ત્રિયાં આવ-શ્યકતાસે અધિક વસ્ત્ર તથા આભૂષણ નહી પહનતી હૈ’ ઇત્યાદિ । ઇસી કથાઓસે વ્રહ્મચર્ય આદિ વ્રતોં મેં દોષ લગને કી સમાવના રહતી હૈ ઇસલિયે ડસકો અતિચાર કા હેતુ માના ગયા હૈ ।

‘મક્તકથા’ આવાપ, નિર્વાપ, આરમ્મ ઓર નિષ્ઠાન મેદસે ચાર પ્રકારકી હૈ । ડનમેં આવાપ મક્તકથા જૈસે—ઇસ રસોઈ મેં

તેમા જાતિકથા જેવી રીતે કે—પતિ મરણુ પામ્યા પછી ડુળથી દિવસો વિતાવનારી બ્રાહ્મણીને ધિક્કાર છે, શૂદ્રાણીનેજ ધન્ય છે કે જેને ઓક પતિ મરણુ પામી જતા બીજા પતિ દ્વારા સુખથી જીવન ગુજારે છે ઇત્યાદિ

કુલકથા—આ કન્યા ડગ્રકુલની છે, ઓટલા મારે સારી છે ઇત્યાદિ રૂપકથા જેમ—પહાડી સ્ત્રીઓ વસ્ત્રો અને આભૂષણ ગાડુજ રાખે છે, મૈથિલી અને પજાબી સ્ત્રીઓ જરૂર કરતા વધારે વસ્ત્ર તથા આભૂષણ પહેરતી નથી, ઇત્યાદિ આવી કથાઓથી બ્રહ્મચર્ય આદિ વ્રતોમા દોષ લાગવાની સમાવના રહેવાથી તેને અતિચારનો હેતુ માનવામા આવેલ છે

મક્તકથા—આવાપ—નિર્વાપ—આરમ્મ અને નિષ્ઠાન લેખી ચાર પ્રકારની છે

‘एतावदत्र महानसे घृतमेतावच्छाकायेतावद्वेसगारादि युक्त स्यादित्येव
प्रकथनम् । निर्वापेण यथा—‘एतावन्ति पकान्येतावन्त्यपकान्यन्नान्येताव-
द्व्यञ्जन’—मित्याहुक्तिः । आरम्भेण यथा ‘अस्मिन् महानसे शाकफलादीनि
एतावन्ति उपयोक्ष्यन्त’ इत्युक्तिः । निष्ठानेन यथा—‘अस्मिन् महानसे शत रूप्य-
काणि विन्यन्ति’ इत्यादि द्रव्यसकथनम्, अत्र चाजितेन्द्रियत्वौदरिकत्वादयो
दोषा भवन्ति । ‘देसकहाए’ देशः=मगधराजस्थानपञ्चालादिरूपो जनपदस्तस्य
कथा देशकथा तथा, इयमपिच्छन्द-विधि-विकल्प-नेपथ्य-भेदाच्चतुर्विधा-तत्र
छन्देन देशकथा यथा— —

इतना घी इतना शाक और इतना मसाला ठीक होगा’ इत्यादि ।
निर्वाप भक्तकथा जैसे—इतने पकवान थे इतना शाक था और
इतना मधुर था’ इस प्रकार देखे हुए भोज्य पदार्थों की कथा करना ।
आरम्भ भक्तकथा जैसे—‘इस रसोईमें इतने शाक और फल आदिकी
जरूरत रहेगी’ इत्यादि । निष्ठान भक्तकथा जैसे—अमुक भोज्य
पदार्थों में इतने रूपये लगेंगे’ इस प्रकार द्रव्य की मुख्यता से कथा
करना । भक्तकथा से अजितेन्द्रियत्व आदि दोष होनेके कारण
अतिचार होता है ।

मगध आदि देशोंकी कथा करने को ‘देशकथा’ कहते हैं ।
वह भी चार प्रकारकी है—(१) छन्द (२) विधि (३) विकल्प (४) नेपथ्य

તેમા આવાપ ભક્તકથા-જેવી રીતે કે આ રસોઈમા-અમુક પ્રમાણુમા ઘી-શાક
અને મશાલી હશે તેા સારી રસોઈ થશે, ઇત્યાદિ નિર્વાપ ભક્તકથા-આટલા
પકવાન હતા, આટલા શાક હતા અને સ્વાદમા મધુર હતા એ પ્રમાણે જોયેલા
પદાર્થોની કથા કરવી તે આરભ ભક્તકથા-જેમકે ‘આ રસોઈમા આટલા શાક
અને ફળોની જરૂરત રહેશે, ઇત્યાદિ નિષ્ઠાન ભક્તકથા-જેમકે અમુક ભોજન
કરવાના પદાર્થોમા આટલા રૂપિઆ થશે આ પ્રમાણે દ્રવ્યની મુખ્યતાથી કથા
કરવી તે ભક્તકથાથી અજિતેન્દ્રિયત્વ આદિ દોષ થવાના કારણે અતિચાર લાગે છે

મગધ આદિ દેશોની કથા વગેરેને દેશ કથા કહે છે તે પણ ચાર પ્રકાર
ની છે (૧) છન્દ, (૨) વિધિ, (૩) વિકલ્પ, (૪) નેપથ્ય

૧-વ્યયિતાનિ ભવન્તીત્યર્થ. ।

‘દક્ષિણે માતુલી કન્યા પરિણેયા પ્રયત્નતઃ’—ઈતિ લાટાદિદેશેષુ માતુલકન્યા ગમ્યા તદિતરત્ર—‘માતુલસ્ય સુતામૂહવા માતૃગોત્રા તથૈવ ચ । સમાન પ્રવરા ચૈવ શુક્ત્વા ચાન્દ્રાયણ ચરેત્’ ઇતિ સૈવાગમ્યેત્યાદિપ્રકથનમ્ । વિધિઃ= ભોજનાદિસમ્પાદન તેન દેશકથા યથા—મગધેઽન્નદુગ્ધાદીના ભોજ્યાનામેવ પ્રાચુર્યે ભવતિ, કોસલદેશે ભવનાદીન્યેવ નિર્મીયન્તે, સુધ્ને ચૈવ વ્યાપારપરાયણા ધનિનઃ,—ઽત્યેવમાદિ, વિકલ્પ = ક્ષેત્ર-વાપી-કૂપ-તડાગાદિ નિર્માણ, સસ્યાદિસમ્પન્નિશ્વ, તેન દેશકથેત્યતિરોહિતમ્, નેપથ્ય=સ્ત્રીપુરુષકર્તૃકમણિભૂષણાદિધારણ

(૧) છદ્-દેશકથા જૈસે-દક્ષિણ દેશમે મામાકી કન્યા કે સાથ વિવાહ કિયા જાતા હૈ । અન્ય દેશોં મેં દોષ માના જાતા હૈ, જૈસા લિખા હૈ કિ—‘મામાકી કન્યા સે માતા કે ગોત્રમે ઉત્પન્ન કિસી ઔર મી કન્યા સે અથવા ઇક પ્રવર (મૂલ) કી કન્યા સે યદિ કોઈ વિવાહ કરે તો વહ વિવાહ અયોગ્ય સમજા જાતા હૈ ઔર વિવાહ કરનેવાલે કો ચાન્દ્રાયણવ્રત કરના પડતા હૈ’ ઇત્યાદિ । (૨) વિધિ-દેશકથા જૈસે—‘મગધ દેશમે ચાવલ, દૂધ, આમ વગૈરહ્ ઇસ પ્રકાર ઉત્પન્ન હોતે હૈં, કોસલ (અવધ) દેશમે મકાન ઇસ પ્રકાર બનાયે જાતે હૈં, તથા સુઘ્ન (આગરા પ્રાન્ત) કે ધની લોગ ઇસ પ્રકાર વ્યાપાર કિયા કરતે હૈં’ ઇત્યાદિ । (૩) વિકલ્પ-દેશકથા જૈસે-ખેત, વાવડી, કૂપ, તાલાવ, આદિ કે છુદવાને તથા શાલિ આદિ કે રોપને આદિ કી કથા કરના । (૪) નેપથ્ય-દેશકથા ‘મણિ-ભૂષણ-

(૧) છદ્ દેશકથા-જેમકે, દક્ષિણ દેશમા મામાની પુત્રી સાથે લગ્ન કરી શકાય છે અને બીજા દેશમા તે પ્રમાણે કરવામા દોષ માનવામા આવ્યો છે જેવી રીતે અન્ય ગ્રંથોમા લખેલું છે કે—‘મામાની પુત્રીથી, માતાના ગોત્રમા ઉત્પન્ન કોઈ બીજી કન્યાથી અથવા એક પ્રવર (મૂલ) ની કન્યા સાથે કોઈ વિવાહ કરે તો તે વિવાહ-લગ્ન અયોગ્ય સમજવામા આવે છે અને લગ્ન કરનારને ચાન્દ્રાયણ વ્રત કરવું પડે છે ઇત્યાદિ (૨) વિધિ દેશકથા-જેમકે, મગધ દેશમા ચાવલ-(ચોખા)-દૂધ-આખા વગેરે આ પ્રમાણે ઉત્પન્ન થાય છે કોસલ (અવધ) દેશમા મકાન આ પ્રમાણે બનાવવામા આવે છે તથા આગરા પ્રાન્તમા ધનવાન માણસો આ પ્રમાણે વ્યાપાર કરે છે ઇત્યાદિ (૩) વિકલ્પથી દેશકથા-જેમકે, ખેતી, વાડી, કૂવા-તાલાવ વગેરે ખોદાવવાની તથા શાલી આદિ ધાન્ય રોપવાની કથા કરવી તે (૪) નેપથ્ય

રાજકથા પણ ચાર પ્રકારની છે (૧) અતિયાન, (૨) નિર્યાણ, (૩) બલ વાહન, (૪) કૌષ-કૌણગાર તેમા (૧) અતિયાન (નગરાદિપ્રવેશ) થી રાજકથા - જેમકે- 'ચન્દ્રમા પ્રમાણે સ્વચ્છ છત્ર અને બે ચામરોથી સુશોભિત, હાથી ઘોડાથી યુક્ત, રથ ઉપર બેઠેલા આ રાજા માગધ-બાન્દી આદિ ચાચક જનોની જયધોષણા સાથે રાજધાનીમા પ્રવેશ કરશે-છંત્યાદિ (૨) નિર્યાણ-નગરાદિથી બહાર નીકલવાની

इति । निर्याण=पुराद्वहिर्गमन, तेन यथा 'तत्रैव' पुराद्वहिर्गन्तुति सैन्यसमूहः' इति चतुर्थचरणव्यत्यासेनोदीरणम् । बल=सैन्य, वाहन=गजादि, ताभ्या यथा—

‘अमी खुरक्षुण्णधरास्तुरङ्गमाः, रथा महान्तश्च गजा मदोद्धताः । पदातयो वैरिनिवर्हणक्षमाः, क्षमापतेः कस्य चकासतीदृशाः’ ॥ इति, कोशः=भाण्डागार, कोष्ठागार=धान्यादिगृह ताभ्या यथा—

‘रत्नादिपूर्णकोशः, कोट्टपदातिप्रकोपदलितारि’ । समृतकोष्ठागारः, सुख स्वपित्येष नरनाथः’ इत्यादि । अत्र राजरहस्यभेदनादयो दोषाः प्रतीता

में प्रवेश करेगा’ इत्यादि । (२) निर्याण (नगरादि से बाहर निकलने) से राजकथा—जैसे—‘उक्तशोभाके साथ राजा राजधानी से बाहर निकलेगा’ इत्यादि । (३) बल (सेना) वाहन (हाथी घोड़े आदि) से राजकथा—जैसे—‘अहा ! ऐसे बड़े २ चंचल घोड़े, मदोन्मत्त हाथी और शत्रुओं के ठुके छुड़ानेवाले शूरवीर किस राजाके हैं !’ इत्यादि । ४ कोष (खजाने) और कोष्ठागार (कोठार) से राजकथा—जैसे—‘जिसके रत्नादि से खजाना, और धान्य आदि से कोठार भरे हुए हैं तथा जिसका किला अभेद्य एव योद्धागण शत्रुओं का दमन करनेवाले हैं, ऐसा यह राजा सुख से समय बिताता है’ इत्यादि । इस प्रकार राजकथा करने से राजरहस्य-भेदन आदि अनेक दोषों की उत्पत्ति होने के कारण अतिचार लगता है ।

कथा-जेमके-उपर कहेली शोभा साथे राज-राजधानीथी णहार नीकलसे इत्यादि (३) बल-(सेना) वाहन (हाथी घोडा) सहित राजकथा-जेमके-अहा ? आवा मोटा-मोटा चंचल घोडा, मदोन्मत्त हाथी अने शत्रुओना भान उतारी नाजे तेवा शूरवीर क्या राजना छे ? इत्यादि (४) कोष (भण्डाना) अने कोष्ठागार (कोठार) नी राजकथा-जेमके-जेना रत्नादिकथी भण्डाना अने धान्यादिकथी कोठार भरला छे तथा जेना राजना किल्ला अभेद्य छे अने योद्धाओ शत्रुओनु दमन करवावाणा छे ओवा आ राज सुभथी समय गुजरे छे इत्यादि आ प्रमाणे राजकथा कहे-वाथी राजनी गुप्त बात बेदन वगेरे अनेक दोषोनी उत्पत्ति थवाना कारणे अति-चार लागे छे-

एव । 'पडिक्कमामि' प्रतिक्रामामि, 'चऊर्हि' चतुर्भिः, 'झाणेहि' ध्यातिः= ध्यान निर्वातस्थानस्थितनिश्चलपदीपशिखावत् स्थिरतर-धारावाहिकज्ञानविच्छेदक विषयान्तरसञ्चारानन्तरितकमात्रार्थचिन्तनरूपचित्तैकाग्रतास्वरूप, यदुक्तम्—

‘अतोमुहुत्तमित्त, चित्तावत्थाणमेगवत्पुम्मि ।

छउमत्थाण झ्माण, जोगणिरोहो जिणाण ति’ इति ।

तैः, तद्द्वारा यो मयाऽतिचारः कृतः, इत्याद्यन्वयः प्राग्वत् । क्रमेण भेद-चतुष्टयमेवाह—‘अट्टेण झ्माणेण’ आर्त्तेन ध्यानेन, अर्त्तिः=मनोव्यथा, तस्या तथा सह वा भवमिति, अथवा ऋतिः=अशुभ तथा सह भवमर्त्त तेन ध्यानेन मनोज्ञामनोज्ञवस्तुसयोगधियोगजनितचित्तोद्वेगलक्षणेनेत्यर्थः, तदुक्तमितरत्रापि—

पवन रहित स्थानमें रखे हुए निश्चल दीपकी शिखाके समान अत्यंत स्थिर-धारावाही ज्ञानका विच्छेद करनेवाले अन्य पदार्थों के सबन्ध से रहित एक मात्र वस्तु के चिन्तन को ध्यान कहते हैं, जैसा कि कहा है—‘छद्मस्थों के एक वस्तु में अन्तर्मुहूर्त मात्र मनका अवस्थान ‘ध्यान’ कहलाता है; किन्तु जिन भगवान के मन का अभाव होने के कारण योगनिरोध ही होता है, अवस्थान नहीं’ । वह ध्यान आर्त्त (१) रौद्र (२) धर्म्य (३) और शुक्ल (४) भेद से चार प्रकार का है, उनमें से (१) आर्त्तध्यान उसे कहते हैं जो अर्त्ति-मन की व्यथा के साथ, अथवा ऋति-अशुभ के साथ होने वाला हो, अर्थात् इष्ट शब्दादि के संयोग और अनिष्ट के वियोग का चिन्तन करना । जैसा कि लिखा है ‘जिसमें

निर्वात (जया पवन आवी शकें नहि तेवा) स्थणे राખેલા નિશ્ચલ દીપક-દીવાની શિખા સમાન અત્યંત સ્થિર ધારાવાહી જ્ઞાનનો વિચ્છેદ કરવાવાળા અન્ય પદાર્થોના સબંધથી રહિત એક માત્ર વસ્તુના ચિન્તનને ‘ધ્યાન’ કહે છે

કહ્યું છે કે ‘છદ્મસ્થને’ એક વસ્તુમાં અન્તર્મુહૂર્ત માત્ર મનનું અવસ્થાન રહે છે તેને ધ્યાન કહે છે તે ધ્યાન (૧) આર્ત, (૨) રૌદ્ર, (૩) ધર્મ્ય, (૪) શુક્લ બેદ થી ચાર પ્રકારનું છે તેમાં (૧) આર્તધ્યાન તેને કહે છે કે —જે અર્તિ-મનની પીડાની સાથે અથવા ઋતિ-અશુભની સાથે થનાર હોય, અર્થાત્ ઇષ્ટ શબ્દાદિને

૧-ઋતિઃ—અશુભમિતિ શબ્દકલ્પદ્રુમ. ।

‘રાજ્યોપભોગશયનાઽઽસનવાહનેષુ,
સ્ત્રીગન્ધમાલ્યમણિરત્નવિભૂષણેષુ ।

યત્રાભિલાષમતિમાત્રમુપૈતિ મોઢાદ્

ધ્યાન તદાર્તમિતિ સપ્રવદન્તિ તજ્ઞાઃ ॥૧॥’ ઇતિ

‘રુદ્ધેણ જ્ઞાણેણ’ રૌદ્રેણ ધ્યાનેન, રોદયતિ=અન્તર્ભાવિતણ્યર્થત્વાત્ સહ-
મોપઘાતાદિપરિણામયુક્તો જીવો વ્યથયતિ પરાનનેનેતિ રુદ્રઃ, યદ્વા રુદ્ર ઇવ
ચણ્ડત્વાદ્રુદ્રસ્તસ્ય કર્મ રૌદ્ર, તેન ધ્યાનેન હિંસાત્રતિક્રૌર્યમાવોપહતેનેત્યર્થઃ,
एतच्चोक्तम्—

‘સછેદનૈર્દહન-ભજ્જન-મારણૈશ્ચ,
વન્ધ-પ્રહાર-દમનૈર્વિનિકૃન્તનૈશ્ચ

રાગોદયો ભવતિ યેન ન ચાતુકમ્પા,

ધ્યાન તુ રૌદ્રમિતિ તત્પ્રવદન્તિ તજ્ઞાઃ ॥૨॥’ ઇતિ ।

મોહવશ રાજ્ય કે ઉપભોગ, શય્યા, આસન, હાથી, ઘોડે આદિ
વાહન, સ્ત્રી, ગન્ધ, માલા, મણિ, રત્ન, ભૂષણ આદિ કી ઇચ્છા
ઉત્પન્ન હો ઉસે ઓર ઇસસે વિપરીત સયોગોં કી અનિચ્છા કરના
‘આર્તધ્યાન હૈ’ ।

(૨) ઉપઘાત આદિ પરિણામોં સે જો જીવ કો રુલાવે
અર્થાત્ દુઃખી કરે, અથવા અત્યન્ત ક્રૂર આત્માકા જો કર્મ (આત્મ-
પરિણામરૂપ ક્રિયાવિશેષ) ઉસકો ‘રૌદ્રધ્યાન’ કહતે હૈં, જૈસે કહા
હૈ—‘જિસસે છેદન-ભેદન-દહન-મારણ-વન્ધન-પ્રહરણ-દમન-કર્તન

સયોગ અને અનિષ્ટના વિયોગનું ચિન્તન કરવું, જેમકે-જેમા મોહવશ રાજ્યના ઉપભોગ
શય્યા, આસન, હાથી, ઘોડા આદિ વાહન, સ્ત્રી, ગન્ધ, માલા, મણિ, રત્ન, ભૂષણ
વગેરેની ઇચ્છા ઉત્પન્ન થાય તે અને એ સર્વથી વિપરીત સયોગોની અનિચ્છા
કરવી તે આર્તધ્યાન કહેવાય છે

(૨) ઉપઘાત-વગેરે પરિણામોથી જીવને રડાવે અર્થાત્-દુઃખી કરે, અથવા
અત્યંત ક્રૂર આત્માનું જે કર્મ (આત્મપરિણામરૂપ ક્રિયાવિશેષ) તેને
‘રૌદ્રધ્યાન’ કહે છે જેમ કહ્યું છે કે જેના દ્વારા છેદન, ભેદન, દહન, મારણ, વન્ધન,
પ્રહરણ, દમન, કર્તન (કાપવું) વગેરેના કારણથી રાગ-દ્વેષનો ઉદય થાય અને દયા

एव । 'पडिकमामि' पतिकमामि, 'चऊर्हि' चतुर्भिः, 'ज्ञाणेर्हि' ध्यातिः= ध्यान निर्गतस्थानस्थितनिश्चलपदीपशिखावत् स्थिरतर-धारावाहिज्ञानविच्छेदक-विषयान्तरसञ्चारानन्तरितकमात्रार्थचिन्तनरूपचित्तैकाग्रतास्वरूप, यदुक्तम्—

‘अतोमुहुत्तमित्त, चित्तावत्थाणमेगवत्थुम्मि ।

छउमत्थाण ज्ञाण, जोगणिरोहो जिणाण ति’ इति ।

तैः, तद्द्वारा यो मयाऽतिचारः कृतः, इत्याद्यन्वयः प्राग्वत् । क्रमेण भेद चतुष्टयमेवाह—‘अट्टेण ज्ञाणेण’ आर्त्तेन ध्यानेन, अर्त्तिः=मनोव्यथा, तस्या तथा सह वा भवमिति, अथवा ऋतिः=अशुभ तथा सह भवमर्त्त तेन ध्यानेन मनोज्ञामनोज्ञवस्तुसयोगधियोगजनितचित्तोद्वेगलक्षणेनेत्यर्थः, तदुक्तमितरत्रापि—

पवन रहित स्थानमें रखे हुए निश्चल दीपकी शिखाके समान अत्यंत स्थिर-धारावाही ज्ञानका विच्छेद करनेवाले अन्य पदार्थों के सबन्ध से रहित एक मात्र वस्तु के चिन्तन को ध्यान कहते हैं, जैसा कि कहा है—‘छद्मस्थों के एक वस्तु में अन्तर्मुहूर्त मात्र मनका अवस्थान ‘ध्यान’ कहलाता है, किन्तु जिन भगवान के मन का अभाव होने के कारण योगनिरोध ही होता है, अवस्थान नहीं’ । वह ध्यान आर्त्त (१) रौद्र (२) धर्म्य (३) और शुक्ल (४) भेद से चार प्रकार का है, उनमें से (१) आर्त्तध्यान उसे कहते हैं जो अर्त्ति-मन की व्यथा के साथ, अथवा ऋति-अशुभ के साथ होने वाला हो, अर्थात् इष्ट शब्दादि के संयोग और अनिष्ट के वियोग का चिन्तन करना । जैसा कि लिखा है ‘जिसमें

निર્વાત (જ્યા પવન આવી શકે નહિ તેવા) સ્થળે રાખેલા નિશ્ચલ દીપક-દીવાની શિખા સમાન અત્યંત સ્થિર ધારાવાહી જ્ઞાનનો વિચ્છેદ કરવાવાળા અન્ય પદાર્થોના સબંધથી રહિત એક માત્ર વસ્તુના ચિન્તનને ‘ધ્યાન’ કહે છે

કહ્યું છે કે ‘ છદ્મસ્થને ’ એક વસ્તુમાં અન્તર્મુહૂર્ત માત્ર મનનું અવસ્થાન રહે છે તેને ધ્યાન કહે છે તે ધ્યાન (૧) આર્ત, (૨) રૌદ્ર, (૩) ધર્મ્ય, (૪) શુક્લ ભેદ થી ચાર પ્રકારનું છે તેમાં (૧) આર્તધ્યાન તેને કહે છે કે —જે અર્તિ-મનની પીડાની સાથે અથવા ઋતિ-અશુભની સાથે થનારું હોય, અર્થાત્ ઇષ્ટ શબ્દાદિને

૧-ઋતિઃ—અશુભમિતિ શબ્દકન્પદ્રુમ. ।

‘રાજ્યોપભોગશયનાઽઽસનવાહનેષુ,
સ્ત્રીગન્ધમાલ્યમણિરત્નવિભૂષણેષુ ।

યત્રાભિલાષમતિમાત્રમુપૈતિ મોહાદ્

ધ્યાન તદાર્તમિતિ સપ્રવદન્તિ તજ્ઞાઃ ॥૧॥’ ઇતિ

‘રુદ્ધેણ જ્ઞાણેણ’ રૌદ્રેણ ધ્યાનેન, રોદયતિ=અન્તર્ભાવિતવ્યર્થત્વાત્ સહ-
મોપઘાતાદિપરિણામયુક્તો જીવો વ્યથયતિ પરાનનેનેતિ રુદ્રઃ, યદ્વા રુદ્ર ઇવ
ચણ્ડત્વાદ્રુદ્રસ્તસ્ય કર્મ રૌદ્ર, તેન ધ્યાનેન હિંસાત્રિક્રોર્યભાવોપહતેનેત્યર્થઃ,
एतच्चोक्तम्—

‘સછેદનૈર્દહન-મહન-મારણૈશ્ચ,

વન્ધ-પ્રહાર-દમનૈર્વિનિકૃન્તનૈશ્ચ

રાગોદયો ભવતિ યેન ન ચાનુકમ્પા,

ધ્યાન તુ રૌદ્રમિતિ તત્પ્રવદન્તિ તજ્ઞા. ॥૨॥’ ઇતિ ।

મોહવશ રાજ્ય કે ઉપભોગ, શય્યા, આસન, હાથી, ઘોડે આદિ
વાહન, સ્ત્રી, ગન્ધ, માલા, મણિ, રત્ન, ભૂષણ આદિ કી ઇચ્છા
ઉત્પન્ન હો ઉસે ઓર ઇસસે વિપરીત સયોગોં કી અનિચ્છા કરના
‘આર્ત્તધ્યાન હૈ’ ।

(૨) ઉપઘાત આદિ પરિણામોં સે જો જીવ કો રુલાવે
અર્થાત્ દુઃખી કરે, અથવા અત્યન્ત ક્રૂર આત્માકા જો કર્મ (આત્મ-
પરિણામરૂપ ક્રિયાવિશેષ) ઉસકો ‘રૌદ્રધ્યાન’ કહતે હૈં, જૈસે કહા
હૈ—‘જિસસે છેદન-ભેદન-દહન-મારણ-વન્ધન-પ્રહરણ-દમન-કર્તન

સ યોગ અને અનિષ્ટના વિયોગનું ચિન્તન કરવું, જેમકે-જેમા મોહવશ રાજ્યના ઉપભોગ
શય્યા, આસન, હાથી, ઘોડા આદિ વાહન, સ્ત્રી, ગન્ધ, માલા, મણિ, રત્ન, ભૂષણ
વગેરેની ઇચ્છા ઉત્પન્ન થાય તે અને એ સર્વથી વિપરીત સયોગોની અનિચ્છા
કરવી તે આર્ત્તધ્યાન કહેવાય છે

(૨) ઉપઘાત-વગેરે પરિણામોથી જીવને રડાવે અર્થાત્-દુઃખી કરે, અથવા
અત્યન્ત ક્રૂર આત્માનું જે કર્મ (આત્મપરિણામરૂપ ક્રિયાવિશેષ) તેને
‘રૌદ્રધ્યાન’ કહે છે જેમ કહ્યું છે કે જેના દ્વારા છેદન, ભેદન, દહન, મારણ, બંધન,
પ્રહરણ, દમન, કર્તન (કાપવું) વગેરેના કારણથી રાગ-દ્વેષનો ઉદય થાય અને કયા

‘ધર્મ્યેણ જ્ઞાણેણ’ ધર્મ્યેણ ધ્યાનેન ધર્મઃ=શ્રુતચારિશ્રલક્ષણસ્તસ્માદન
પેત=તપુક્ત ‘ધર્મ્યે, તેન ધ્યાનેન વીતરાગાઽઽજ્ઞાઽનુચિન્તનેનેત્યર્થઃ । એતદપ્યુક્તમ્-

‘સૂત્રાર્થસાધનમહાવ્રતધારણેષુ,

બન્ધમોક્ષગમનાગમહેતુચિન્તા ।

પન્થેન્દ્રિયવ્યુપરમશ્ચ દયા ચ ભૂતે,

ધ્યાન તુ ધર્મ્યમિતિ સમ્પ્રવદન્તિ તજ્ઞાઃ ॥૩॥’ ઇતિ ।

‘સુક્ષ્મેણ જ્ઞાણેણ’ શુક્લેન ધ્યાનેન, શુક્લમ્=આર્તરૌદ્રોક્તદોષરાહિત્યેન
નિપ્કલઢ્ઢતયા સ્વચ્છમ્, યદ્વા શુ=શુચ=જ્ઞાનાવરણીયાદિકર્મમલ કલ=કલમયતિ=
અપનયતીતિ શુક્લ તેન ધ્યાનેન, દોષમલાપગમાચ્છુચિસ્વરૂપેણેત્યર્થઃ । ઇદમપ્યુક્તમ્-

‘યસ્યેન્દ્રિયાણિ વિષયેષુ પરાદમુત્થાનિ,

સકલપકલ્પનવિકલ્પવિકારદોષઃ ।

(કાટના) આદિ કે કારણ રાગદ્વેષકા લદય હો ઓર દયા ન હો-
એસે આત્મપરિણામ કો ‘રૌદ્રધ્યાન’ કહતે હૈં ’ ॥

(૩) વીતરાગ કી આજ્ઞારૂપ ધર્મ સે યુક્ત ધ્યાન કો ‘ધર્મ્યધ્યાન’
કહતે હૈં, કહામી હૈ—‘આગમ કે પઠન, વ્રતધારણ, બન્ધમોક્ષાદિ
કે ચિંતન, ઇન્દ્રિયદમન તથા પ્રાણિયોં પર દયા કરને કો ‘ધર્મ્યધ્યાન’
કહતે હૈં ॥

(૪) શુક્લ અર્થાત્ સકલ દોષોં સે રહિત હોને કે કારણ
નિર્મલ, અથવા શુ-જ્ઞાનાવરણીયાદિ કર્મમલ કો કલ-દૂર રનેવાલે
ધ્યાન કો ‘શુક્લધ્યાન’ કહતે હૈં, જૈસા કિ કહા હૈ ‘જિસકી

ન થાય આવા આત્મપરિણામને ‘રૌદ્રધ્યાન’ કહે છે

(૩) વીતરાગની આજ્ઞા રૂપ ધર્મયુક્ત ધ્યાનને ‘ધર્મ્યધ્યાન’ કહે છે કહ્યું
છે કે—આગમને સ્વાધ્યાય, વ્રતધારણ, બન્ધ-મોક્ષાદિનું ચિન્તન, ઇન્દ્રિયદમન
તથા પ્રાણીઓ પર દયા કરવી તેને ધર્મ્યધ્યાન કહે છે

(૪) શુક્લ અર્થાત્ સકલ દોષોથી રહિત હોવાના કારણે નિર્મલ અથવા
શુ-જ્ઞાનાવરણીય આદિ કર્મમલને કલ-દૂર કરનાર ધ્યાનને શુક્લધ્યાન કહે છે
જેમ કહ્યું છે કે—જેની ઇન્દ્રિયો વિષયવાસનારહિત હોય, સકલ-વિકલ્પ-દોષ-

૧- ‘ધર્મ્યમ્’-‘ધર્મપધ્યર્થન્યાયાદનપેતે’ (૪।૪।૧૨) ઇતિ યત્ ।

યોગૈસ્તથા ત્રિભિરહો ? નિમૃતાન્તરાત્મા,

ધ્યાન તુ શુક્લમિદમસ્ય સમાદિશન્તિ ॥૪॥' ઇતિ ।

સક્ષિપ્યપા સ્વરૂપાણ્યુક્તાનિ યથા—

‘કામાણુરજિય અદ્ર, રોદ્ર હિંસાણુરજિય ।

ધર્માણુરજિય ધર્મ, શુક્લજ્ઞાણ નિરજન ॥૧॥' ઇતિ ॥ સૂ. ૭ ॥

॥ મૂલમ્ ॥

પડિક્કમામિ પંચહિ કિરિયાહિ—કાઙ્યાણ, અહિગરણિયાણ, પાડસિયાણ, પરિતાવણિયાણ, પાણાઙ્વાયકિરિયાણ । પડિક્કમામિ પંચહિ કામગુણેહિ—સદ્દેણ, રૂવેણ, મધ્દેણ, રસેણ, ફાસેણ । પડિક્કમામિ પંચહિ મહવ્વણેહિ—સવ્વાઓ પાણાઙ્વાયાઓ વેરમણ, સવ્વાઓ મુસાવાયાઓ વેરમણ, સવ્વાઓ અદિન્નાદાણાઓ વેરમણ, સવ્વાઓ મેહુણાઓ વેરમણ, સવ્વાઓ પરિગ્ગહાઓ વેરમણ । પડિક્કમામિ પંચહિ સમિર્ઘિ—ઈરિયાસમિર્ઘિ, માસાસમિર્ઘિ, ઇસણાસમિર્ઘિ, આયાણમહમત્તનિવ્વેવણાસમિર્ઘિ, ઉચ્ચારપાસવણવેલજહ્લસિંઘા-

इन्द्रियाँ विषयवासना रहित हो, सकल्पविकल्पादिदोषयुक्त जो तीन योग उनसे रहित उस महापुरुष के ध्यान को 'शुक्ल ध्यान' कहते हैं' । सक्षेप से चारों का स्वरूप इस प्रकार है—' किसी वस्तुकी कामना से युक्तको आर्त, हिंसादि से युक्त को रौद्र, धर्म से युक्त को धर्म्य और सब प्रकार के दोषों से रहित को शुक्लध्यान कहते हैं ' ॥ इन चार ध्यानों के निमित्त से जो अतिचार लगा हो उससे मैं निवृत्त होता हू ॥ सू. ७ ॥

યુક્ત જે ત્રણ યોગ તેનાથી રહિત એવા મહાપુરુષના ધ્યાનને 'શુક્લધ્યાન' કહે છે સક્ષેપથી ચારે ધ્યાનનું સ્વરૂપ આ પ્રમાણે છે “કોઈ વસ્તુની કામનાથી યુક્તને આર્ત, હિંસાદિથી યુક્તને રોદ્ર, ધર્મથી યુક્તને ધર્મ્ય અને સર્વ પ્રકારના દોષ રહિતને શુક્લધ્યાન કહે છે આ ચાર ધ્યાનોના નિમિત્તથી જે કોઈ અતિચાર લાગ્યા હોય તો તેનાથી હું નિવૃત્ત થાઉં છું (સૂ. ૭)

૧- કામાનુરજિતમાર્ત રોદ્ર હિંસાનુરજિતમ્ ।

ધર્માનુરજિત ધર્મ્ય, શુક્લધ્યાન નિરજનમ્ ॥ ૧ ॥

‘ધર્મેણ જ્ઞાણેણ’ ધર્મ્યેણ ધ્યાનેન ધર્મઃ=શ્રુતચારિત્રલક્ષણસ્તસ્માદન-
પેત=તત્પુક્ત ‘ધર્મ્યે, તેન ધ્યાનેન વીતરાગાઽઽજ્ઞાઽનુચિન્તનેત્યર્થઃ । એતદપ્યુક્તમ્-

‘સૂત્રાર્થસાધનમહાવ્રતધારણેષુ,

બન્ધપ્રમોક્ષગમનાગમદેતુચિન્તા ।

પશ્ચેન્દ્રિયવ્યુપરમશ્ચ દયા ચ શ્રૂતે,

ધ્યાન તુ ધર્મ્યમિતિ સમવદન્તિ તજ્ઞાઃ ॥૩॥’ ઇતિ ।

‘સુક્ષ્મેણ જ્ઞાણેણ’ શુક્લેન ધ્યાનેન, શુક્લમ્=આર્ત્તરૌદ્રોક્તદોષરાહિત્યેન
નિષ્કલઙ્કતયા સ્વચ્છમ્, યદ્વા શુ=શુચ=જ્ઞાનાવરણીયાદિકર્મમલ કલ=કલમયતિ=
અપનયતીતિ શુક્લ તેન ધ્યાનેન, દોષમલાપગમાચ્છુચિસ્વરૂપેણેત્યર્થઃ । ઇદમપ્યુક્તમ્-

‘યસ્યેન્દ્રિયાણિ વિષયેષુ પરાદ્મુખાનિ,

સકલપ્રકલ્પનવિકલ્પવિકારદોષઃ ।

(કાટના): આદિ કે કારણ રાગદ્વેષકા ઉદય હો ઓર દયા ન હો-
એસે આત્મપરિણામ કો ‘રૌદ્રધ્યાન’ કહતે હૈં ’ ॥

(૩) વીતરાગ કી આજ્ઞારૂપ ધર્મ સે યુક્ત ધ્યાન કો ‘ધર્મ્યધ્યાન’
કહતે હૈં, કહામી હૈ—‘આગમ કે પઠન, વ્રતધારણ, બન્ધપ્રમોક્ષાદિ
કે ચિંતન, હિન્દ્રિયદમન તથા પ્રાણિયોં પર દયા કરને કો ‘ધર્મ્યધ્યાન’
કહતે હૈં ॥

(૪) શુક્લ અર્થાત્ સકલ દોષોં સે રહિત હોને કે કારણ
નિર્મલ, અથવા શુ-જ્ઞાનાવરણીયાદિ કર્મમલ કો કલ-દૂર રનેવાલે
ધ્યાન કો ‘શુક્લધ્યાન’ કહતે હૈં, જૈસા કિ કહા હૈ ‘જિસકી

ન થાય આવા આત્મપરિણામને ‘રૌદ્રધ્યાન’ કહે છે

(૩) વીતરાગની આજ્ઞા રૂપ ધર્મયુક્ત ધ્યાનને ‘ધર્મ્યધ્યાન’ કહે છે કહ્યું
છે કે—આગમનો સ્વાધ્યાય, વ્રતધારણ, બન્ધ-પ્રમોક્ષાદિનું ચિન્તન, હિન્દ્રિયદમન
તથા પ્રાણીઓ પર દયા કરવી તેને ધર્મ્યધ્યાન કહે છે

(૪) શુક્લ અર્થે સકલ દોષોથી રહિત હોવાના કારણે નિર્મલ અથવા
શુ-જ્ઞાનાવરણીય આદિ કર્મમલને કલ-દૂર કરનાર ધ્યાનને શુક્લધ્યાન કહે છે
જેમ કહ્યું છે કે—જેની હિન્દ્રિયો વિષયવાસનારહિત હોય, સકલપ-વિકલ્પ-દોષ-

૧- ‘ધર્મ્યમ્’-‘ધર્મપથ્યર્થન્યાયાદનપેતે’ (૪।૪।૧૨) ઇતિ યત્ ।

છે (૧) અવિરતકાચિકી, (૨) દુષ્પ્રણિહિતકાચિકી, (૩) ઉપરતકાચિકી મિથ્યા—
દૃષ્ટિઓ અને અવિરતસમ્યગ્દૃષ્ટિઓની ડર્મબન્ધનની હેતુભૂત ક્રિયાઓને
“અવિરતકાચિકી” કહે છે દુષ્પ્રણિહિતકાચિકી ક્રિયા બે પ્રકારની છે (૧)
ઇન્દ્રિયદુષ્પ્રણિહિતકાચિકી, (૨) નોઇન્દ્રિયદુષ્પ્રણિહિતકાચિકી, આ બંને ક્રિયાઓ
પ્રમત્ત સાધુઓની છે તેમા અશુ આદિ ઇન્દ્રિયોની અપલતાને કારણે મોક્ષ-
માર્ગમા અસ્થિર કાયાથી થવા વાળી ક્રિયાઓ ઇન્દ્રિયદુષ્પ્રણિહિતકાચિકી કહેવાય છે
એ પ્રમાણે નોઇન્દ્રિય (મન) ના અશુભ સંકલ્પ દ્વારા અસ્થિર કાયાથી થવાવાળી
ક્રિયાઓને નોઇન્દ્રિયદુષ્પ્રણિહિતકાચિકી ક્રિયા કહે છે પ્રાય-ધર્મ કરીને
સાવધ યોગથી નિવૃત્ત અપ્રમત્ત સૂચનીની કયા વડે વવાવાળી ક્રિયાઓને ‘ઉપરત
કાચિકી’ ક્રિયા કહે છે ॥ ૧ ॥

ળપારિઠાવણિયાસમિર્દૅ । પઢિક્કમામિ છહિં જીવનિકાદ્દહિં-
પુઢવિકાદ્દણં, આઝકાદ્દણ, તેઝકાદ્દણ, વાઝકાદ્દણ, વણસ્સઢ-
કાદ્દણં, તસકાદ્દણ । પઢિક્કમામિ છહિં લેસાદ્દહિં-કિણ્હલેસાદ્દ,
નીલલેસાદ્દ, કાઝલેસાદ્દ, તેઝલેસાદ્દ, પઝમલેસાદ્દ, સુક્કલેસાદ્દ
॥ સૂ૦ ૮ ॥

॥ દાયા ॥

પ્રતિક્રામામિ પચ્ચભિઃ ક્રિયાભિઃ—કાયિક્યા, આધિકરણિક્યા, પ્રાદ્ધે-
ષિક્યા, પારિતાપનિક્યા, પ્રાણાતિપાતક્રિયયા । પ્રતિક્રામામિ પચ્ચભિઃ કામ-
ગુણૈઃ—શબ્દેન, રૂપેણ, ગન્ધેન, રસેન, સ્પર્શેન । પ્રતિક્રામામિ પચ્ચભિર્મહાવ્રતૈઃ—
પ્રાણાતિપાતાદ્દિરમણેન, મૃપાવાદાદ્દિરમણેન, અદત્તાદાનાદ્દિરમણેન, મૈયુનાદ્દિર-
મણેન, પરિગ્રહાદ્દિરમણેન । પ્રતિક્રામામિ પચ્ચભિઃ સમિત્તિભિઃ—ઈર્યાસમિત્તયા,
ભાષાસમિત્તયા, દ્વપ્પણાસમિત્તયા, માણ્ડમાત્રાદાનનિક્ષેપણાસમિત્તયા, ઉચ્ચારણપ્રસ્ત્રવણ-
લેલજલ્હસિંઘાણપારિઠાપનિકાસમિત્તયા । પ્રતિક્રામામિ પદ્ધભિર્જીવનિકાયૈઃ—
પૃથ્વીકાયેન, અપ્પકાયેન, તેજસ્કાયેન, વાયુકાયેન, વનસ્પતિકાયેન, ત્રસકાયેન ।
પ્રતિક્રામામિ પદ્ધભિર્લેશ્યાભિઃ—કુણ્ણલેશ્યયા, નીલલેશ્યયા, કાપોતલેશ્યયા, તેજો-
લેશ્યયા, પદ્મલેશ્યયા, શુક્કલલેશ્યયા ॥ સૂ૦ ૮ ॥

॥ ટીકા ॥

‘પઢિક્કમામિ’ પ્રતિક્રામામિ, ‘પચ્ચહિં’ પચ્ચભિઃ, ‘કિરિયાદ્દિં’
ક્રિયા=કરણ વ્યાપારસ્તેન તદ્ધારેત્યર્થઃ, વહુવચન, ‘યો મયાઽતિચારઃ કૃત્ત ઇત્યાદિ-
સમ્બન્ધ પ્રાગ્વત્, ક્રિયાપચ્ચક્રમેવાહ—‘કાઢ૦’ ઇતિ ‘કાઢ્યાદ્દ’ ચીયન્તે=અક-
ત્રીભવન્તિ અસ્મિન્નસ્થ્યાદય ઇતિ કાયઃ=શરીર તેન નિર્વૃત્તા ક્રિયા કાયિકી=શરીર-

ક્રિયા પાચ પ્રકારકી હૈ—(૧) કાયિકી (૨) આધિકરણિકી,
(૩) પ્રાદ્ધેષિકી, (૪) પારિતાપનિકી (૫) પ્રાણાતિપાતકી । જિસમેં
અસ્થિ આદિ હો ડસે કાય કહતે હૈં । ડસસે હોનેવાલી ક્રિયા કો
‘કાયિકી’ કહતે હૈં, વહ ત્રીન પ્રકારકી હૈ—(૧) અવિરતકાયિકી,

ક્રિયા પાચ પ્રકારની છે (૧) કાયિકી, (૨) આધિકરણિકી, (૩) પ્રાદ્ધેષિકી,
(૪) પારિતાપનિકી, (૫) પ્રાણાતિપાતિકી જેમા અસ્થિ-હાડકા વગેરે હોય તેને કાય
કહે છે અને તેના વડે થવા વાળી ક્રિયાને “ કાયિકી ” કહે છે તે ત્રણ પ્રકારની

व्यापारः, इयं त्रिविधा—अविरतकायिकी, दुष्प्रणिहितकायिकी, उपरतकायिकी चेति, तत्राविरताना=प्रतरहिताना सम्यग्दृष्टीना मिथ्यादृष्टीना च कर्मचन्दनहेतुभूता उत्क्षेपादिस्वरूपा प्रथमा, द्वितीया द्विविधा—इन्द्रियदुष्प्रणिहितकायिकी नोइन्द्रियदुष्प्रणिहितकायिकी च, इयं द्विविधाऽपि प्रमत्तसयताना क्रियोन्यते, तत्र इन्द्रियैः=चक्षुःश्रोत्रादिभिः दुष्प्रणिहितस्य=शृणुनिष्ठविषयसंप्राप्तौ किञ्चिन्मोक्षमार्गं प्रति दुर्व्यवस्थितस्य कायेन निर्वृत्ताऽऽद्या, नोइन्द्रियेण मनसा दुष्प्रणिहितस्याऽशुभसंकल्पेन दुर्व्यवस्थितस्य कायेन निर्वृत्ताऽपरा । उपरतस्य=प्रायः सावय-योगनिवृत्तस्याऽप्रमत्तसयतस्य कायेन निर्वृत्ता-उपरतिकायिकी तृतीया, तथा

(२) दुष्प्रणिहितकायिकी (३) उपरतकायिकी । मिथ्यादृष्टियों और अविरतसम्यग्दृष्टियों की कर्मचन्दन के हेतुभूत क्रिया को 'अविरतकायिकी' कहते हैं । दुष्प्रणिहितकायिकी क्रिया दो प्रकारकी है—(१) इन्द्रियदुष्प्रणिहितकायिकी, (२) नोइन्द्रियदुष्प्रणिहितकायिकी, ये दोनों क्रियाएँ प्रमत्त साधुओं की हैं । उनमें चक्षु आदि इन्द्रियों की चपलता के कारण मोक्षमार्ग के प्रति अव्यवस्थित (अस्थिर) के काय से होनेवाली क्रिया को 'इन्द्रियदुष्प्रणिहितकायिकी' कहते हैं, ऐसे ही नोइन्द्रिय (मन) के अशुभ संकल्प के द्वारा अव्यवस्थित के काय से होनेवाली क्रिया को 'नोइन्द्रियदुष्प्रणिहितकायिकी' कहते हैं । प्रायः सावय योग से निवृत्त अप्रमत्त सयत के काय से होनेवाली क्रिया को 'उपरतकायिकी' कहते हैं । (१)

छे (१) अविरतकायिकी, (२) दुष्प्रणिहितकायिकी, (३) उपरतकायिकी मिथ्या-दृष्टियों और अविरतसम्यग्दृष्टियों की कर्मचन्दन की हेतुभूत क्रियाओं को "अविरतकायिकी" कहते हैं । दुष्प्रणिहितकायिकी क्रिया दो प्रकारकी है (१) इन्द्रियदुष्प्रणिहितकायिकी, (२) नोइन्द्रियदुष्प्रणिहितकायिकी, आ गन्ने क्रियाओं प्रमत्त साधुओं की हैं । तेमा चक्षु आदि इन्द्रियों की चपलताने कारणे मोक्ष-मार्गमा अस्थिर कायाधी थवा वाणी क्रियाओं । इन्द्रियदुष्प्रणिहितकायिकी कहेंवाय छे ये प्रमाणे नोइन्द्रिय (मन) ना अशुभ संकल्प द्वारा अस्थिर कायाधी थवावाणी क्रियाओं । नोइन्द्रियदुष्प्रणिहितकायिकी क्रिया कहें छे प्राय-धरु करीने सावय योगी निवृत्त अप्रमत्त सयतीनी कया वडे ववावाणी क्रियाओं । 'उपरत कायिकी' क्रिया कहें छे ॥ १ ॥

ત્રિવિધસ્વરૂપયા, 'અદિગરણિયા' અધિક્રિયતે=સમાશ્રીયતે=પ્રાપ્યતે નરકાદિ કુગતૌ જીવોડનેનેત્યધિકરણ=સ્વદ્ગાદિ, તત્ર મત્રાડધિકરણિકી, ઇય દ્વિવિધા-સયોજનાધિકરણિકી નિર્વર્તનાધિકરણિકી ચેતિ, યસ્યા સ્વદ્ગતત્કોષાદિકયોઃ સયોજનક્રિયતે સા સયોજનાધિકરણિકી, યસ્યા ચ સ્વદ્ગતોમરાદીનામાદિતો નિર્વર્તન-નિષ્પાદન સા નિર્વર્તનાધિકરણિકી તયા, 'પાડસિયા' પ્રદ્વેષઃ=મત્સરસ્તત્ર મત્રા પ્રાદ્વેષિકી તયા, ઇપા દ્વિવિધા-જીવપ્રાદ્વેષિકી અજીવપ્રાદ્વેષિકી ચ, તત્રાડધ્યા-જીવપ્રદ્વેષેણ નિર્વૃત્તા, દ્વિતીયા ચાડજીવપ્રદ્વેષેણ=પાપાણાદિસ્વલ્પનાદિના યો દ્વેષ-

જિસકે દ્વારા આત્મા નરકાદિ કુગતિ મેં જાવે, એસે સ્વદ્ગાદિ સે હોનેવાલી ક્રિયાકો 'આધિકરણિકી' ક્રિયા કહતે હૈં । વહ દો પ્રકાર કી હૈ—(૧) સયોજનાધિકરણિકી ઓર (૨) નિર્વર્તનાધિકરણિકી, જિસમેં સ્વદ્ગ આદિ કા કોષ (મ્યાન) આદિ કે સાથ સયોગ કિયા જાય વહ 'સયોજનાધિકરણિકી' હૈ, ઓર જિસ (ક્રિયા) મેં સ્વદ્ગ આદિ ઘનાયે જાય ઉસે 'નિર્વર્તનાધિકરણિકી' ક્રિયા કહતે હૈ ॥ ૨ ॥

દ્વેષ સે યુક્ત ક્રિયા કો 'પ્રાદ્વેષિકી' ક્રિયા કહતે હૈં, વહ દો પ્રકારકી હૈ—(૧) જીવપ્રાદ્વેષિકી ઓર (૨) અજીવપ્રાદ્વેષિકી । જીવ પર દ્વેષ કરને સે હોનેવાલી ક્રિયા કો 'જીવપ્રાદ્વેષિકી' ઓર અજીવ પાપાણાદિ કી ઠોકર આદિ લગને કે કારણ ઉસ પર દ્વેષ કરને સે હોનેવાલી ક્રિયા કો 'અજીવપ્રાદ્વેષિકી' ક્રિયા કહતે હૈં ॥ ૩ ॥

જેના વડે આત્મા નરકાદિ કુગતિમા જાય, એવી તલવાર આદિ શસ્ત્રથી થવાવાળી ક્રિયાએને 'આધિકરણિકી' ક્રિયા કહે છે, તે જે પ્રકારની છે (૧) સયોજનાધિકરણિકી (૨) અને 'નિર્વર્તનાધિકરણિકી' જેમા તલવાર આદિનો કોષ (મ્યાન) આદિ સાથે સયોગ કરવામા આવે તે 'સયોજનાધિકરણિકી' છે અને જે ક્રિયામા તલવાર આદિ ધનાવવામા આવે તેને 'નિર્વર્તનાધિકરણિકી' કહે છે

દ્વેષયુક્ત ક્રિયાને 'પ્રાદ્વેષિકી' ક્રિયા કહે છે તે જે પ્રકારની છે (૧) જીવ પ્રાદ્વેષિકી અને (૨) અજીવપ્રદ્વેષિકી, જીવઉપર દ્વેષ કરવાથી થવા વાળી ક્રિયાને 'જીવપ્રાદ્વેષિકી' ક્રિયા કહે છે અને અજીવ-પાપાણુ આદિની ઠોકર લાગવાના કારણે તેના ઉપર દ્વેષ કરવાથી થવા વાળી ક્રિયાને 'અજીવપ્રાદ્વેષિકી' ક્રિયા કહે છે ॥૩॥

સ્તેન નિર્વૃત્તા, 'પારિતાપણિયા' પરિતાપન= દુઃખ તેન નિર્વૃત્તા તત્ર ભવા વા પારિતાપનિકી=સ્વહસ્તાધ્યાયાતેન પીડાકરણ તયા, ઇયમપિ દ્વિવિધા સ્વહસ્તપારિતાપ-
નિકી પરહસ્તપારિતાપનિકી ચ, સ્વહસ્તેન સ્વપરદેહસ્ય દુઃખમુત્પાદયતઃ પ્રથમા,
પરહસ્તેન તથા કારયતો દ્વિતીયા, 'પાણાઇવાયકિરિયા' પ્રાણાઃ સન્ત્યેપામિતિ
પ્રાણાઃ=પ્રાણિનઃતેપામતિપાતો=નાશઃ પ્રાણાતિપાતઃ સ એવ ક્રિયા પ્રાણાતિપાત-
ક્રિયા તયા, એપાપિ દ્વિવિધા-સ્વહસ્તપ્રાણાતિપાતક્રિયા પરહસ્તપ્રાણાતિપાતક્રિયા
ચ, ઇહાપિ પ્રાણપદેન પ્રાણિનો ગ્રહણ પ્રાગ્વત્, તત્ર સ્વહસ્તેન પ્રાણાતિપાત કુર્વતઃ

ખડ્ગ આદિ કે દ્વારા પીડા પહુંચાને કો 'પારિતાપનિકી' ક્રિયા કહતે હૈં, ઉસકે દો ભેદ હૈં-(૧) સ્વહસ્તપારિતાપનિકી, ઓર (૨) પરહસ્તપારિતાપનિકી । અપને હાથ સે પરકો દુઃખ પહુંચાને વાલી ક્રિયા કો 'સ્વહસ્તપારિતાપનિકી' ઓર અન્ય દ્વારા દૂસરે કો દુઃખ પહુંચાને વાલી ક્રિયા કો 'પરહસ્તપારિતાપનિકી' ક્રિયા કહતે હૈં ॥૪॥

પ્રાણિયોં કા નાશ કરને કો 'પ્રાણાતિપાત' ક્રિયા કહતે હૈં । યહ બી દો પ્રકાર કી હૈં-(૧) સ્વહસ્તપ્રાણાતિપાતક્રિયા, ઓર (૨) પરહસ્તપ્રાણાતિપાતક્રિયા । અપને હાથ સે પ્રાણિયોં કા નાશ કરને કો 'સ્વહસ્તપ્રાણાતિપાતક્રિયા,' ઓર પરાયે હાથ સે પ્રાણિયોં કા નાશ કરને કો 'પરહસ્તપ્રાણાતિપાતક્રિયા' કહતે હૈં ॥૫॥

તલવાર આદિ હથિઆર વડે પીડા પહોચાડવી તેને "પારિતાપનિકી ક્રિયા" કહે છે, તેના બે ભેદ છે (૧) 'સ્વહસ્તપારિતાપનિકી' અને (૨) 'પરહસ્ત પારિતાપનિકી' પોતાના હાથ વડે પરને દુઃખ પહોચાડવા વાળી ક્રિયાને 'સ્વહસ્ત પારિતાપનિકી' ક્રિયા કહે છે અને અન્ય દ્વારા ખીજાને દુઃખ પહોચાડવું તે ક્રિયાને 'પરહસ્તપારિતાપનિકી' ક્રિયા કહે છે ॥ ૪ ॥

પ્રાણીઓના નાશને 'પ્રાણાતિપાત' ક્રિયા કહે છે તેના પણ બે ભેદ છે, (૧) સ્વહસ્તપ્રાણાતિપાતક્રિયા અને (૨) પરહસ્તપ્રાણાતિપાતક્રિયા, પોતાના હાથ વડે પ્રાણીઓનો નાશ કરવો તેને 'સ્વહસ્તપ્રાણાતિપાતક્રિયા' કહે છે અને ખીજાના હાથથી પ્રાણીઓનો નાશ થાય તેવી ક્રિયાને 'પરહસ્તપ્રાણાતિપાત ક્રિયા' કહે છે ॥ ૫ ॥

ત્રિવિધસ્વરૂપયા, 'અહિગરણિયા' અધિક્રિયતે=સમાશ્રીયતે=પ્રાપ્યતે નરકાદિ કુગતૌ જીવોઽનેનેત્યધિકરણ=સ્વદ્વાદિ, તત્ર ભવાઽધિકરણિકી, ઇય દ્વિવિધા-સયોજનાધિકરણિકી નિર્વર્તનાધિકરણિકી ચેતિ, યસ્યા સ્વદ્વતત્કોપાદિકયોઃ સયોજન ક્રિયતે સા સયોજનાધિકરણિકી, યસ્યા ચ સ્વદ્વતોમરાદીનામાદિતો નિર્વર્તન-નિષ્પાદન સા નિર્વર્તનાધિકરણિકી તયા, 'પાઉસિયા' પ્રદ્વેષઃ=મત્સરસ્તત્ર ભવા પ્રાદ્વેષિકી તયા, ણપા દ્વિવિધા-જીવપ્રાદ્વેષિકી અજીવપ્રાદ્વેષિકી ચ, તત્રાઽગ્રા-જીવપ્રદ્વેષેણ નિર્વૃત્તા, દ્વિતીયા ચાઽજીવપ્રદ્વેષેણ=પાપાણાદિસ્વલનાદિના યો દ્વેષ-

જિસકે દ્વારા આત્મા નરકાદિ કુગતિ મેં જાવે, એસે સ્વદ્વાદિ સે હોનેવાલી ક્રિયાકો 'આધિકરણિકી' ક્રિયા કહતે હૈં । વહ દો પ્રકાર કી હૈ—(૧) સયોજનાધિકરણિકી ઓર (૨) નિર્વર્તનાધિકરણિકી, જિસમેં સ્વદ્વા આદિ કા કોષ (મ્યાન) આદિ કે સાથ સયોગ કિયા જાય વહ 'સયોજનાધિકરણિકી' હૈ, ઓર જિસ (ક્રિયા) મેં સ્વદ્વા આદિ બનાયે જાયેં ઉસે 'નિર્વર્તનાધિકરણિકી' ક્રિયા કહતે હૈ ॥ ૨ ॥

દ્વેષ સે યુક્ત ક્રિયા કો 'પ્રાદ્વેષિકી' ક્રિયા કહતે હૈં, વહ દો પ્રકારકી હૈ—(૧) જીવપ્રાદ્વેષિકી ઓર (૨) અજીવપ્રાદ્વેષિકી । જીવ પર દ્વેષ કરને સે હોનેવાલી ક્રિયા કો 'જીવપ્રાદ્વેષિકી' ઓર અજીવ પાપાણાદિ કી ઠોકર આદિ લગને કે કારણ ઉસ પર દ્વેષ કરને સે હોનેવાલી ક્રિયા કો 'અજીવપ્રાદ્વેષિકી' ક્રિયા કહતે હૈં ॥ ૩ ॥

જેના વડે આત્મા નરકાદિ કુગતિમા જાય, એવી તલવાર આદિ શસ્ત્રથી થવાવાળી ક્રિયાએને 'આધિકરણિકી' ક્રિયા કહે છે, તે બે પ્રકારની છે (૧) સયોજનાધિકરણિકી (૨) અને 'નિર્વર્તનાધિકરણિકી' જેમા તલવાર આદિનો કોષ (મ્યાન) આદિ સાથે સયોગ કરવામા આવે તે 'સયોજનાધિકરણિકી' છે અને જે ક્રિયામા તલવાર આદિ બનાવવામા આવે તેને 'નિર્વર્તનાધિકરણિકી' કહે છે

દ્વેષયુક્ત ક્રિયાને 'પ્રાદ્વેષિકી' ક્રિયા કહે છે તે બે પ્રકારની છે (૧) જીવ પ્રાદ્વેષિકી અને (૨) અજીવપ્રદ્વેષિકી, જીવઉપર દ્વેષ કરવાથી થવા વાળી ક્રિયાને 'જીવપ્રાદ્વેષિકી' ક્રિયા કહે છે અને અજીવ-પાપાણુ આદિની ઠોકર લાગવાના કારણે તેના ઉપર દ્વેષ કરવાથી થવા વાળી ક્રિયાને 'અજીવપ્રાદ્વેષિકી' ક્રિયા કહે છે ॥૩॥

સ્તેન નિર્વૃત્તા, ‘પારિતાપણિયા’ પરિતાપન= દુઃખ તેન નિર્વૃત્તા તત્ર ભવા વા પારિતાપનિકી=સ્વહસ્તપારિતાપનિકી પીડાકરણ તથા, ઇયમપિ દ્વિવિધા-સ્વહસ્તપારિતાપ-
નિકી પરહસ્તપારિતાપનિકી ચ, સ્વહસ્તેન સ્વપરદેહસ્ય દુઃખમુત્પાદયતઃ પ્રથમા,
પરહસ્તેન તથા કારયતો દ્વિતીયા, ‘પ્રાણાઙ્વાયકિરિયા’ પ્રાણાઃ સન્ત્યેષામિતિ
‘પ્રાણાઃ=પ્રાણિનઃતેષામતિપાતો=નાશઃ પ્રાણાતિપાતઃ સ એવ ક્રિયા પ્રાણાતિપાત-
ક્રિયા તથા, એવાપિ દ્વિવિધા-સ્વહસ્તપ્રાણાતિપાતક્રિયા પરહસ્તપ્રાણાતિપાતક્રિયા
ચ, ડહાપિ પ્રાણપદેન પ્રાણિનો ગ્રહણ પ્રાગૃવત્, તત્ર સ્વહસ્તેન પ્રાણાતિપાત કુર્વતઃ

સ્વહસ્ત આદિ કે દ્વારા પીડા પહુંચાને કો ‘પારિતાપનિકી’
ક્રિયા કહતે હૈં, ઉસકે દો ભેદ હૈં-(૧) સ્વહસ્તપારિતાપનિકી, ઓર
(૨) પરહસ્તપારિતાપનિકી । અપને હાથ સે પરકો દુઃખ પહુંચાને
વાલી ક્રિયા કો ‘સ્વહસ્તપારિતાપનિકી’ ઓર અન્ય દ્વારા દુસરે કો દુઃખ
પહુંચાને વાલી ક્રિયા કો ‘પરહસ્તપારિતાપનિકી’ ક્રિયા કહતે હૈં ॥૪॥

પ્રાણિયોં કા નાશ કરને કો ‘પ્રાણાતિપાત’ ક્રિયા કહતે હૈં ।
ઘર ભી દો પ્રકાર કી હૈં-(૧) સ્વહસ્તપ્રાણાતિપાતક્રિયા, ઓર (૨)
પરહસ્તપ્રાણાતિપાતક્રિયા । અપને હાથ સે પ્રાણિયોં કા નાશ કરને
કો ‘સ્વહસ્તપ્રાણાતિપાતક્રિયા,’ ઓર પરાયે હાથ સે પ્રાણિયોં કા
નાશ કરને કો ‘પરહસ્તપ્રાણાતિપાતક્રિયા’ કહતે હૈં ॥૫॥

તલવાર આદિ હુથિઆર વડે પીડા પહોચાડવી તેને “પારિતાપનિકી ક્રિયા”
કહે છે, તેના બે ભેદ છે (૧) ‘સ્વહસ્તપારિતાપનિકી’ અને (૨) ‘પરહસ્ત
પારિતાપનિકી’ પોતાના હાથ વડે પરને દુઃખ પહોચાડવા વાળી ક્રિયાને ‘સ્વહસ્ત
પારિતાપનિકી’ ક્રિયા કહે છે અને અન્ય દ્વારા પીળને દુઃખ પહોચાડવું તે
ક્રિયાને ‘પરહસ્તપારિતાપનિકી’ ક્રિયા કહે છે ॥ ૪ ॥

પ્રાણીઓના નાશને ‘પ્રાણાતિપાત’ ક્રિયા કહે છે તેના પણ બે ભેદ
છે, (૧) સ્વહસ્તપ્રાણાતિપાતક્રિયા અને (૨) પરહસ્તપ્રાણાતિપાતક્રિયા, પોતાના
હાથ વડે પ્રાણીઓનો નાશ કરવો તેને ‘સ્વહસ્તપ્રાણાતિપાતક્રિયા’ કહે છે અને
પીળના હાથથી પ્રાણીઓનો નાશ થાય તેવી ક્રિયાને ‘પરહસ્તપ્રાણાતિપાત
ક્રિયા કહે છે ॥ ૫ ॥

ક્રિયા પ્રથમા, પરહસ્તેન સા દ્વિતીયા । ‘પઢિક્રમામિ, પ્રતિક્રમામિ ‘પચર્હિ’
પञ्चभिः, ‘કામગુણેર્હિ’ કામ્યન્તે=ભોગાર્થિભિરભિલપ્યન્તે इति कामाः=શબ્દા
ઘાસ્તે ચ તે કામવૃદ્ધિકારણત્વાત્ ગુણા (પુદ્ગલધર્મા) ચ કામગુણાઃ, યદ્વા
કામસ્ય=કન્દર્પસ્યાઽભિલાષમાત્રસ્ય વા સમ્પાદકા ગુણાઃ કામગુણાસ્તૈર્નિષિદ્ધા
ધરણદ્વારેત્યર્થઃ ‘યો મયાઽતિચારઃ કૃત’ ઇત્યાદિસમ્બન્ધો ભૂતપૂર્વઃ, ‘કામ
ગુણપञ्चકમેવાઽઽહ-‘સદ્દેણ’ इति ‘સદ્દેણ’ શબ્દયતે=ઉચ્ચાર્યત इति શબ્દઃ=કર્ણેન્દ્રિય
ગ્રાહ્યનિયતક્રમવર્ણસ્વરૂપસ્તેન, ‘રૂપેણ’ રૂપ્યતે=વિલોક્યતે इति રૂપ=ચક્ષુર્વિષય
નીલપીતાદિલક્ષણ તેન, ‘ગદ્દેણ’ ગન્ધ્યતે=આઘ્રાયત इति ગન્ધઃ=ઘ્રાણેન્દ્રિય
વિષયચન્દનકર્પૂરાદિસ્તેન, ‘રસેણ’ રસ્યતે=આસ્વાદ્યત इति રસ=રસનેન્દ્રિય-
વિષયો મધુરાદિસ્તેન, ‘ફાસેણ’ સ્પૃશ્યતે=હ્રુપ્યત इति સ્પર્શઃ=ત્વગિન્દ્રિયવિષયઃ

इन क्रियाओं के द्वारा मुझ से जो अतिचार किया गया हो
उसकी मैं निवृत्ति करता हूँ ।

શબ્દ-જો બોલા જાય उस को शब्द कहते है, वह कर्णेन्द्रिय-
ग्राह्य मनोज्ञ-अमनोज्ञ वर्णमालास्वरूप है । रूप-जो देखा जाय
उसको रूप कहते है, वह चक्षु इन्द्रिय का विषय नील-पीतादि है ।
गन्ध-जो सुघा जाय उसको गन्ध कहते है, वह घ्राणेन्द्रिय का विषय
चन्दन कपूर आदि है । रस-जो चक्खा जाय उसको रस कहते हैं वह
रसना इन्द्रिय का विषय मधुर आदिक है । स्पर्श-जो स्पर्श किया जाय
(छुआ जाय) उस को स्पर्श कहते है, वह स्पर्श इन्द्रिय का विषय

આ ક્રિયાઓ વડે કરી મને જે અતિચાર લાગ્યા હોય તો તેનાથી હું
નિવૃત્ત થાઉં છું

શબ્દ-જે બોલવામા આવે છે તેને શબ્દ કહે છે, તે કર્ણેન્દ્રિય ગ્રાહ્ય અને
મનોજ્ઞ અમનોજ્ઞ વર્ણમાલા સ્વરૂપ છે રૂપ-જે જોવામા આવે તેને રૂપ કહે છે,
તે ચક્ષુ ઇન્દ્રિયના વિષય લીલા પીળા આદિ છે ગન્ધ-જે સુધવામા આવે તેને
ગન્ધ કહે છે, તે ઘ્રાણેન્દ્રિયના વિષય સૂખડ કપૂર આદિ છે રસ-જે ચાખવામા
આવે તેને રસ કહે છે, તે રસના ઇન્દ્રિયના વિષય મધુર આદિક છે સ્પર્શ-જેનો
સ્પર્શ કરવામા આવે તેને સ્પર્શ કહે છે તે સ્પર્શેન્દ્રિયના વિષય માલા, સૂખડ,

टि० १- ‘लुप स्पर्शे’ तुदादिरनिद् परस्मैपदी ।

સ્રક્ચન્દનાદ્ગનાદિસ્તેન । ‘પઢિક્કમામિ’ પ્રતિક્રામામિ ‘પચહિ’ । પચ્ચભિઃ, ‘મહવ્વણ્હિ’ વ્રત=શાસ્ત્રમર્યાદાનુસરણ, મહાન્તિ વિશાલાનિ ચ તાનિ વ્રતાનિ મહાવ્રતાનિ તૈ, મહત્ત્વ ચૈવા મહદ્દિસ્તીર્થકરગણધરાદિભિરાચરિતત્ત્વેન મહા-પુરુષાઽઽચર્યમાણત્વેન સર્વવ્યાપકત્વેન શ્રાવકવ્રતાપેક્ષયા ચ વોચ્ય, તૈસ્તત્મહકૃત્ત્વેન તાત્પર્ય ‘યો મયાઽતિચારઃ કૃતઃ’ इत्यादिसम्बन्धो यथापूर्वम्, महाव्रत-पञ्चकमेवाह—‘सव्वा०’ इति । ‘सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमण’ सर्वस्मात्=निखिलात्=स्थूलसूक्ष्मादियावद्भेदविशिष्टात् कृत-कारिता-ऽनुमोदितस्वरूपाच्च, प्राणाः=उच्छ्वासनिःश्वासादयस्तेषामतिपातो=वियोजन=हिंसनमिति यावत्, उक्तञ्च—‘पञ्चेन्द्रियाणि त्रिविधं बलं च, उच्छ्वासनिःश्वासमथान्यदायुः । प्राणा दशैते भगवद्विरुक्ता,—स्तेषां वियोगीकरणं तु हिंसा’ इति, तस्माद्विरमण=

માલા, ચન્દન, અગના આદિ હૈ । યે પાચ કામ (વિષય ભોગ કે અભિલાષ) ગુણ (વર્ધક) હૈ, અર્થાત્ યે આત્મા કે સ્વભાવિક ગુણોં કા નાશ કરને ચાલે હૈ, ઇન કામગુણોં દ્વારા સુક્ષ્મસે જો અતિચાર કિયા ગયા હો ઉસકી મૈ નિવૃત્તિ કરતા હુ ।

શાસ્ત્રકી મર્યાદામેં ચલને કા નામ ‘વ્રત’ હૈ, इन्हें तीर्थकर गणधर आदि महापुरुषोंने स्वीकार किये अथवा ये महा-पुरुषों के ही आचरण करने योग्य होने से और श्रावक के व्रतों की अपेक्षा बड़े होने के कारण ‘महाव्रत’ कहलाते हैं, वे पाच हૈ—(૧) કૃત-કારિત-અનુમોદિત રૂપ સચ પ્રકાર સે સ્થૂલ-સૂક્ષ્મ આદિ સમસ્ત જીવો કે પ્રાણોં (પાચ ઇન્દ્રિયાં, ત્રીન બલ, શ્વાસોચ્છ્વાસ

અગના આદિ છે આ પાચ કામ (વિષયભોગની અભિલાષા) ગુણ (વર્ધક) છે અર્થાત્ તે આત્માના સ્વાભાવિક ગુણોના નાશ કરવાવાળા છે તે કામ ગુણોથી ભારાથી અતિચાર થયા હોય તો તેમાંથી હુ નિવૃત્ત થાઉ છુ

શાસ્ત્રોની મર્યાદામાં ચાલવાનું નામ ‘વ્રત’ છે આ વ્રતો તીર્થકર અને ગણધર આદિ મહાપુરુષોએ સ્વીકાર કરેલ છે, અથવા એ મહાપુરુષોનેજ આચરણ કરવા યોગ્ય હોવાથી અને શ્રાવકોના વ્રતોની અપેક્ષા મોટા હોવાથી ‘મહાવ્રત’ કહેવાય છે, તે પાચ પ્રકારના છે—(૧) કરણ, કરાવણ અને કરતા હોય તેને અનુમોદન રૂપ સર્વ પ્રકારથી સ્થૂલ-સૂક્ષ્મ આદિ તમામ જીવોના પ્રાણો (પાચ ઇન્દ્રિયો,

ક્રિયા પ્રથમા, પરહસ્તેન સા દ્વિતીયા । ‘પઠિકમમિ, પ્રતિક્રામમિ ‘પચર્હિ’
પચ્ચમિઃ, ‘કામગુણેર્હિ’ કામ્યન્તે=ભોગાર્થિભિરભિલપ્યન્તે ઇતિ કામાઃ=શબ્દા-
ઘાસ્તે ચ તે કામગદ્ધિકારણત્વાત્ ગુણા (પુદ્ગલધર્મા) શ્ચ કામગુણાઃ, યદ્વા
કામસ્ય=કન્દર્પસ્યાઽભિલાપમાત્રસ્ય વા સમ્પાદકા ગુણાઃ કામગુણાસ્તૈર્નિષિદ્ધા
ચરણદ્વારેત્યર્થઃ ‘યો મયાઽતિચારઃ કૃત’ ઇત્યાદિસમ્બન્ધો ભૂતપૂર્વઃ, ‘કામ
ગુણપચ્ચકમેવાઽઽહ-‘સદેણ’ ઇતિ ‘સદેણ’ શબ્દચતે=ઉચાર્યત ઇતિ શબ્દઃ=કર્ણેન્દ્રિય
ગ્રાહ્યનિયતક્રમવર્ણસ્વરૂપસ્તેન, ‘રૂપેણ’ રૂપ્યતે=વિલોક્યતે ઇતિ રૂપ=ચક્ષુર્વિષય
નીલપીતાદિલક્ષણ તેન, ‘ગત્રેણ’ ગન્ધ્યતે=આઘ્રાયત ઇતિ ગન્ધઃ=ગ્રાણેન્દ્રિય
વિષયશ્ચન્દનકર્પૂરાદિસ્તેન, ‘રસેણ’ રસ્યતે=આસ્વાદ્યત ઇતિ રસ=રસનેન્દ્રિય
વિષયો મધુરાદિસ્તેન, ‘ફાસેણ’ સ્પૃશ્યતે=હ્રુપ્યત ઇતિ સ્પર્શઃ=ત્વગિન્દ્રિયવિષયઃ

इन क्रियाओं के द्वारा मुझ से जो अतिचार किया गया हो
उसकी मैं निवृत्ति करता हूँ ।

શબ્દ-જો બોલા જાય उस को शब्द कहते हैं, वह कर्णेन्द्रिय-
ગ્રાહ્ય મનોજ્ઞ-અમનોજ્ઞ વર્ણમાલાસ્વરૂપ છે । રૂપ-જો દેખા જાય
उसको रूप कहते हैं, वह चक्षु इन्द्रिय का विषय नील-पीतादि है ।
ગન્ધ-જો સૂંઘા જાય उसको गन्ध कहते हैं, वह घ्राणेन्द्रिय का विषय
चन्दन कपूर आदि है । रस-जो चक्खा जाय उसको रस कहते हैं वह
રસના ઇન્દ્રિય કા વિષય મધુર આદિક છે । સ્પર્શ-જો સ્પર્શ કિયા જાય
(હુઆ જાય) उस को स्पर्श कहते हैं, वह स्पर्श इन्द्रिय का विषय

આ ક્રિયાઓ વડે કરી મને જે અતિચાર લાગ્યા હોય તે તેનાથી હું
નિવૃત્ત થાઉં છું

શબ્દ-જે બોલવામા આવે છે તેને शब्द કહે છે, તે કર્ણેન્દ્રિય ગ્રાહ્ય અને
મનોજ્ઞ અમનોજ્ઞ વર્ણમાલા સ્વરૂપ છે રૂપ-જે જોવામા આવે તેને रूप કહે છે,
તે ચક્ષુ ઇન્દ્રિયના વિષય લીલા પીળા આદિ છે ગન્ધ-જે સૂંઘવામા આવે તેને
गन्ध કહે છે, તે ઘ્રાણેન્દ્રિયના વિષય સૂખડ કપૂર આદિ છે રસ-જે ચાખવામા
आवे તેને रस કહે છે, તે રસના ઇન્દ્રિયના વિષય મધુર આદિક છે સ્પર્શ-જેનો
स्पर्श કરવામા આવે તેને स्पर्श કહે છે તે સ્પર્શેન્દ્રિયના વિષય માલા, સૂખડ,

टि० १- ‘ह्रुप स्पर्श’ तुदादिरनिद् परस्मैपदी ।

સહાન્યેતિ લેશ્યા, સા ચ કષાયોદયલબ્ધશક્તિવિશેષા યોગપ્રવૃત્તિઃ, લેશ્યા દ્રવ્ય-ભાવભેદાદ્વિવિધા, તત્ર દ્રવ્યલેશ્યા-પુદ્ગલવિશેષરૂપા, સાપિ દ્વિધા-નોકર્મદ્રવ્યલેશ્યા કર્મદ્રવ્યલેશ્યા ચ, તત્ર નોકર્મદ્રવ્યલેશ્યા વર્ણવિશેષાત્મિકા, કર્મદ્રવ્યલેશ્યા તુ ભાવલેશ્યાજનકકષાયમોહનીયકર્મ=નામકર્મદ્રવ્યાણિ ।

યચ્ચ પરૈઃ કર્મનિબ્ધન્દ-(વધ્યમાનકર્મપ્રવાહ)-રૂપત્વ કર્મદ્રવ્યલેશ્યાયા ઉક્ત, તત્ર યુક્તમ્, તથાહિ-સ કર્મણા નિબ્ધન્દઃ સારરૂપોઽસારરૂપો વા ? સારરૂપ-થેત્ જ્ઞાનાવરણીયાદિબ્ધન્યતમસ્ય સારઃ સર્વેષા વા ? વિકલ્પદ્વયમપ્યાગમવિરુદ્ધમ્,

કો લેશ્યા કહતે હૈ, વહ દ્રવ્ય, ભાવ ભેદ સે દો પ્રકાર કી હૈ । उनमें द्रव्यलेश्या पुद्गलस्वरूप है, वह भी नोकर्मलेश्या, कर्मलेश्या के भेद से दो प्रकार की है । उस में नोकर्मद्रव्यलेश्या वर्णविशेष-रूप मानी गई है और कर्मद्रव्यलेश्या भावलेश्या के उत्पादक कषायमोहनीयकर्म और नामकर्म द्रव्यस्वरूप है ।

જો કોઈ ઇસ કર્મદ્રવ્યલેશ્યા કો કર્મનિબ્ધન્દ (વધ્યમાન કર્મ-પ્રવાહ) રૂપ માનતે હૈં વહ ઠીક નહી, ક્યો કિ યદિ એસા લક્ષણ માન લિયા જાય તો યહાં દો પ્રશ્ન ઉપસ્થિત હોતે હૈં કિ-વહ કર્મ-નિબ્ધન્દ સારરૂપ હૈ યા અસારરૂપ ? । યદિ સાર રૂપ માને તો જ્ઞાનાવરણીયાદિ આઠ કર્મોં મેં સે કિસી એક કર્મ કા સાર હૈ યા સર્વ કર્મોંકા ?, મગર યે દોનોં વિકલ્પ આગમવિરુદ્ધ હૈ, ક્યોં કિ

પ્રાપ્ત થયેલી શક્તિવિશેષવાલી યોગપ્રવૃત્તિને લેશ્યા કહે છે તે દ્રવ્ય અને ભાવ ના ભેદથી બે પ્રકારની છે તેમા દ્રવ્યલેશ્યા પુદ્ગલસ્વરૂપ છે તે પણ નોકર્મલેશ્યા અને કર્મલેશ્યાના ભેદથી બે પ્રકારની છે તેમા નોકર્મદ્રવ્યલેશ્યા વર્ણવિશેષરૂપ માનવામા આવી છે અને કર્મદ્રવ્યલેશ્યા ભાવલેશ્યાની ઉત્પાદક કષાયમોહનીયકર્મ અને નામકર્મ દ્રવ્યસ્વરૂપ છે

જો કે કેટલાક માણસો આ કર્મદ્રવ્યલેશ્યાને કર્મનિબ્ધન્દ (વધ્યમાન કર્મ પ્રવાહ) રૂપ માને છે પણ તે માન્યતા ઠીક નથી કારણ કે જો એવા લક્ષણ માનવામા આવે તો આ સ્થળે બે પ્રશ્ન ઉભા થાય છે કે -તે કર્મનિબ્ધન્દ સારરૂપ છે કે અસાર રૂપ છે ? જો સાર રૂપ છે એમ માનશે તો જ્ઞાનાવરણી યાદિ આઠ કર્મોંમાથી કોઈ એક કર્મનો સાર છે, અથવા સર્વ કર્મોંનો ? પણ

निकखेवणासमिईए' भाण्डमात्रे=उपकरणमात्रे, आदाननिक्षेपण=ग्रहणस्थापन तद्विषया समितिस्तया । 'उच्चारपासाणखेलजल्लसिंघाणपरिठापनियासमि ईए' उच्चारः=पुरीष, प्रस्रवण=मूत्र, खेलः=श्लेष्मा, जल्लः=देहमल, सिंघाण= नासामल, तेषा परिष्ठापनिका=व्युत्सर्जन तद्विषया समितिस्तया । 'पडिक्कमामि' प्रतिक्रामामि, 'छहिं' पड्भिः, 'जीवनिकाएहिं' जीवना निकायाः=राशय' जीवनिकायाः=पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसस्वरूपास्तैस्तद्वारेत्यर्थः 'यो मया ऽतिचारः कृत' इत्यादि-सम्बन्धः प्राग्बदेव । 'पडिक्कमामि' प्रतिक्रामामि, 'छहिं' पड्भिः, 'लेस्साहिं' लिश्यते=श्लिष्यते=सम्पद्यते आत्मा कर्मभि'

(४) 'आदानभाण्डमात्रनिक्षेपणासमिति'-वस्त्र-पात्र आदि उपकरणों का यत्नापूर्वक लेना और रखना ।

तथा (५) 'उच्चार-प्रस्रवण-खेल-जल्ल-सिंघाण-पारिष्ठापनिका-समिति'-उच्चार आदि का यत्नापूर्वक दश बोल वर्ज (टाल) के परिष्ठापन करना, इनसे एव पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, वनस्पति और त्रसरूप छह जीव निकायों से, तथा कृष्ण, नील, कापोत, तेज, पद्म और शुक्ल, इन छह लेश्याओं के सम्बन्ध से जो अतिचार किया गया हो 'तो उससे मैं निवृत्त होता हूँ' ।

अब लेश्या का स्वरूप कहते हैं—

जिसके द्वारा आत्मा कर्मों से लेपायमान हो उसको अर्थात् कषायों के उदय से प्राप्त शक्तिविशेषवाली योगप्रवृत्ति

(४) 'आदान-भाण्ड-मात्र-निक्षेपणा-समिति'—वस्त्र, पात्र आदि उपकरणों का यत्नापूर्वक लेना और रखना

तथा (५) 'उच्चार-प्रस्रवण-खेल-जल्ल-सिंघाण-पारिष्ठापनिका-समिति'—उच्चार आदि का यत्ना पूर्वक दश-बोल वर्जने परिष्ठापन करवु अर्थात् एव पृथ्वी, पाणी, तेज वायु, वनस्पति अने त्रसरूप छ एव निकायेथी, तथा कृष्ण, नील, कापोत, तेज, पद्म अने शुक्ल आ छ लेश्याओं का सम्बन्ध अने के अतिचार लाय्या होय तो तेमाथी हु निवृत्त थाउ छु,

हुवे लेश्यानु स्वरूप कडे छे—

अने द्वारा आत्मा कर्मों से लेपायमान थाय तेने अर्थात् कषायों का उदय

સહાનયેતિ લેશ્યા, સા ચ કપાયોદયલબ્ધશક્તિવિશેષા યોગપ્રવૃત્તિઃ, લેશ્યા દ્રવ્ય-ભાવભેદાદ્વિધા, તત્ર દ્રવ્યલેશ્યા-પુદ્ગલવિશેષરૂપા, સાપિ દ્વિધા-નોકર્મદ્રવ્યલેશ્યા કર્મદ્રવ્યલેશ્યા ચ, તત્ર નોકર્મદ્રવ્યલેશ્યા વર્ણવિશેષાત્મિકા, કર્મદ્રવ્યલેશ્યા તુ ભાવલેશ્યાજનકકપાયમોહનીયકર્મ=નામકર્મદ્રવ્યાણિ ।

યચ્ચ પરૈઃ કર્મનિષ્પન્દ-(વધ્યમાનકર્મપ્રવાહ)-રૂપત્વ કર્મદ્રવ્યલેશ્યાયા ઉક્ત, તન્ન યુક્તમ્, તથાહિ-સ કર્મણા નિષ્પન્દઃ સારરૂપોઽસારરૂપો વા ? સારરૂપ-શ્ચેત્ જ્ઞાનાવરણીયાદિષ્વન્યતમસ્ય સારઃ સર્વેષા વા ? વિકલ્પદ્વયમપ્યાગમવિરુદ્ધમ્,

કો લેશ્યા કહતે હૈ, વહ દ્રવ્ય, ભાવ ભેદ સે દો પ્રકાર કી હૈ । ઉનમેં દ્રવ્યલેશ્યા પુદ્ગલસ્વરૂપ હૈ, વહ બી નોકર્મલેશ્યા, કર્મલેશ્યા કે ભેદ સે દો પ્રકાર કી હૈ । ઉસ મેં નોકર્મદ્રવ્યલેશ્યા વર્ણવિશેષ-રૂપ માની ગઈ હૈ ઓર કર્મદ્રવ્યલેશ્યા ભાવલેશ્યા કે ઉત્પાદક કપાયમોહનીયકર્મ ઓર નામકર્મ દ્રવ્યસ્વરૂપ હૈ ।

જો કોઈ ઇસ કર્મદ્રવ્યલેશ્યા કો કર્મનિષ્પન્દ (વધ્યમાન કર્મ-પ્રવાહ) રૂપ માનતે હૈં વહ ઠીક નહીં, ક્યોં કિ યદિ એસા લક્ષણ માન લિયા જાય તો યહાં દો પ્રશ્ન ઉપસ્થિત હોતે હૈં કિ-વહ કર્મ-નિષ્પન્દ સારરૂપ હૈ યા અસારરૂપ ? । યદિ સાર રૂપ માનેં તો જ્ઞાનાવરણીયાદિ આઠ કર્મોં મેં સે કિસી એક કર્મ કા સાર હૈ યા સબ કર્મોં કા ? , મગર યે દોનોં વિકલ્પ આગમવિરુદ્ધ હૈં, ક્યોં કિ

પ્રાપ્ત થયેલી શક્તિવિશેષવાલી યોગપ્રવૃત્તિને લેશ્યા કહે છે તે દ્રવ્ય અને ભાવ ના ભેદથી બે પ્રકારની છે તેમા દ્રવ્યલેશ્યા પુદ્ગલસ્વરૂપ છે તે પણ નોકર્મલેશ્યા અને કર્મલેશ્યાના ભેદથી બે પ્રકારની છે તેમા નોકર્મદ્રવ્યલેશ્યા વર્ણવિશેષરૂપ માનવામા આવી છે અને કર્મદ્રવ્યલેશ્યા ભાવલેશ્યાની ઉત્પાદક કપાયમોહનીયકર્મ અને નામકર્મ દ્રવ્યસ્વરૂપ છે

જો કે કેટલાક માણસો આ કર્મદ્રવ્યલેશ્યાને કર્મનિષ્પન્દ (વધ્યમાન કર્મ પ્રવાહ) રૂપ માને છે પણ તે માન્યતા ઠીક નથી કારણ કે જો એવા લક્ષણ માનવામા આવે તો આ સ્થળે બે પ્રશ્ન ઉભા થાય છે કે -તે કર્મનિષ્પન્દ સારરૂપ છે કે અસાર રૂપ છે ? જો સાર રૂપ છે એમ માનશે તો જ્ઞાનાવરણી યાદિ આઠ કર્મોમાથી કોઇ એક કર્મનો સાર છે, અથવા સર્વ કર્મોનો ? પણ

निक्खेवणासमिईए' भाण्डमात्रे=उपकरणमात्रे, आदाननिक्षेपण=ग्रहणस्थापन तद्विषया समितिस्तया । 'उच्चारपासनणखेलजल्लसिंघाणपरिठावणियासमि ईए' उच्चारः=पुरीष, प्रस्रवण=मूत्र, खेलः=श्लेष्मा, जल्लः=देहमल, सिंघाण= नासामल, तेपा परिष्ठापनिका=व्युत्सर्जन तद्विषया समितिस्तया । 'पडिक्कमामि' प्रतिक्रामामि, 'छहिं' पड्भिः, 'जीवनिकाएहिं' जीवाना निकायाः=राशयः जीवनिकायाः=पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसस्वरूपास्तैस्तद्वारेत्यर्थः 'यो मया अतिचारः कृत' इत्यादि-सम्बन्धः प्राग्भवेत् । 'पडिक्कमामि' प्रतिक्रामामि, 'छहिं' पड्भिः, 'लेस्साहिं' लिश्यते=श्लिष्यते=सम्बध्यते आत्मा कर्मभिः

(४) 'आदानभाण्डमात्रनिक्षेपणासमिति'—वस्त्र-पात्र आदि उपकरणों का यत्नापूर्वक लेना और रखना ।

तथा (५) 'उच्चार-प्रस्रवण-खेल-जल्ल-सिंघाण-पारिष्ठापनिका-समिति'—उच्चार आदि का यत्नापूर्वक दश बोल वर्ज (टाल) के परिष्ठापन करना, इनसे एव पृथ्वी, अपू, तेज, वायु, वनस्पति और त्रसरूप छह जीव निकायों से, तथा कृष्ण, नील, कापोत, तेज, पद्म और शुक्ल, इन छह लेश्याओं के सम्बन्ध से जो अतिचार किया गया हो 'तो उससे मैं निवृत्त होता हूँ' ।

अब लेश्या का स्वरूप कहते हैं—

जिसके द्वारा आत्मा कर्मों से लेपायमान हो उसको अर्थात् कषायों के उदय से प्राप्त शक्तिविशेषवाली योगप्रवृत्ति

(४) 'आदान-भाण्ड-मात्र-निक्षेपणा-समिति'—वस्त्र, पात्र आदि उपकरणों का यत्नापूर्वक लेना और रखना

तथा (५) 'उच्चार-प्रस्रवण-खेल-जल्ल-सिंघाण-पारिष्ठापनिका-समिति'—उच्चार आदि का यत्ना पूर्वक दश-बोल वर्ज करने पर परिष्ठापन करण से जो एव पृथ्वी, वायु, तेज, वायु, वनस्पति और त्रसरूप छह जीव निकायों से, तथा कृष्ण, नील, कापोत, तेज, पद्म और शुक्ल आ छ लेश्याओं का सम्बन्ध से जो अतिचार किया गया हो तो तब ही निवृत्त होता हूँ,

इसे लेश्या का स्वरूप कहते हैं—

जो द्वारा आत्मा कर्मों से लेपायमान था वह तेने अर्थात् कषायों के उदय से

પાદાન ચ કર્મવર્ગણાન્તર્ગતત્વસાધક, તતથ, 'તદન્તર્ભાવાભાવાત્' इत्यय हेतुर्वा-
धितविषयः ।

ઉક્તા દ્રવ્યલેશ્યા સમ્પતિ ભાવલેશ્યામાહ-સા ચ કષાયોદયલબ્ધ-
શક્તિવિશેષયોગપ્રવૃત્ત્યાત્મિકા પ્રોક્તૈવ ।

અત્રાશંક્યતે કથિત્-નનુ ભાવલેશ્યાયા ઉક્તલક્ષણસ્વીકારે ઉપશાન્ત-ક્ષીણ-
કષાય સયોગિકેવલિ ગુણસ્થાનેષુ તદભાવઃ પ્રસજ્યતે, તત્ર કષાયાભાવાત્-યોગપ્રવૃત્તે-
રતિશ્યાન્તરમુપનીતેરસમ્ભવાત્, ઇતિ ચેન્ન, તત્ર ભાવલેશ્યાયા ઉપચારતોઽઙ્ગી-

ऐसा प्रश्न करना ठीक नहीं, क्यों कि आगमों से विरोध आता है ।

अर्थात् किसीभी आगम में लेश्या को कार्यकारणरूप नहीं
माना है ।

લેશ્યા કો અલગ નહીં વત્તાને કા કારણ યહ હૈ કિ વે
કર્મવર્ગણા કે અન્તર્ગત સાધકસ્વરૂપ હૈ । યહ હુઈ દ્રવ્યલેશ્યા, અવ
ભાવલેશ્યા કહતે હૈ—

ભાવલેશ્યા કષાયોદયલબ્ધશક્તિવિશેષયોગપ્રવૃત્તિરૂપ પહલે કહ
ણુકે હૈ ।

यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि भावलेश्या का पूर्वोक्तं
लक्षण मानने से उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय और सयोगिकेवली
गुणस्थानों में उस (लेश्या) का अभाव मानना पड़ेगा, क्यों कि
वहाँ कषाय नहीं है !

ઠીક નથી, કારણ કે આગમોનો તેમા વિરોધ આવે છે

अर्थात् कौशल्य आगममा लेश्याने कार्यकारण रूप मानवामा आवेक्ष नथी

લેશ્યાને જૂની જતાવવાનું કારણ એ છે કે કર્મવર્ગણાની અદર સાધક
સ્વરૂપ છે, આ વાત દ્રવ્યલેશ્યાની થઈ હવે ભાવલેશ્યા કહે છે

ભાવલેશ્યા કષાયોદયલબ્ધશક્તિવિશેષયોગપ્રવૃત્તિરૂપ છે એમ પ્રથમ કહેવાયુ છે

અહિંઆ એક પ્રશ્ન થાય છે કે-ભાવલેશ્યાનું પૂર્વોક્ત લક્ષણ માનવાથી
ઉપશાન્તકષાય, ક્ષીણકષાય અને સયોગિકેવળી ગુણસ્થાનોમા તે લેશ્યાનો
અભાવ માનવો પડશે, કારણકે ત્યા કષાય નથી

તત્ર (આગમે) તાસા કર્મફલત્વેનાઽપ્રતિપાદનાત્, કર્મસારેણ ત્વયસ્ય ફલવતા ભવિતવ્યમ્ । યચુત્તરપક્ષઃ કક્ષીક્રિયતે તર્હિ અસારસ્વરૂપસ્ય તસ્ય નોત્કૃષ્ટાનુભાગ પ્રતિ હેતુત્વ સિધ્યતિ ।

નનુ યથા કાર્મણશરીરસ્ય કર્મવર્ગણામિઃ કાર્યકારણભેદોઽભ્યુપગતઃ શાસ્ત્રે તથૈવ લેશ્યાદ્રવ્યાપ્યપિ કર્મવર્ગણાભિર્ભિન્નાન્યભ્યુપગન્તવ્યાનિ, તાસા તદન્તર્માં વાઽભાવાદિતિ, તદપ્યપ્રામાણિકમેવ, યથા કાર્મણશરીરસ્ય કર્મવર્ગણાભિર્ભિન્નદ્રવ્ય ત્વમાગમે પ્રતિપાદિત તથા લેશ્યાદ્રવ્યસ્ય પૃથક્ત્વેનાઽનુપાદાનાત્, પૃથક્ત્વેનાઽનુ

આગમોં મે લેશ્યા કર્મફલસ્વરૂપ નહીં વતાર્હ ગર્હ હૈ ઓર કર્મોં કા સાર તો અવશ્ય ફલવાલા હોના હી ઘાહિયે, હસલિયે ડસકો કર્મોં કા સારરૂપ નહીં કહ સકતે, ઘદિ અસારરૂપ માનેં તો વહ ઉત્કૃષ્ટ અનુભાગ કા હેતુ નહીં હો સકતા । અતઃ લેશ્યા કો કર્મનિષ્પન્નરૂપ નહી માનના ઘાહિયે । હસલિયે જિસકે દ્વારા આત્મા કર્મોં સે લિસ હો ંસી શુભાશુભ આત્મપરિણતિ કો હી લેશ્યા માનના શાસ્ત્ર સમત હૈ ।

ઘઠ્ઠા ંક ંસા પ્રશ્ન હોતા હૈ કિ જૈસે કાર્મણ શરીર કો કર્મવર્ગણા કે સાથ કાર્યકારણરૂપ માના હૈ વૈસે હી લેશ્યાદ્રવ્ય કો ભી કર્મવર્ગણા કે સાથ કા કારણરૂપ માનને મે કયા આપત્તિ હૈ । કયો કિ ડન લેશ્યાઓંકા કર્મ કે અન્દર સમાવેશ નહીં હોતા હૈ ।

ં ઁ ઁને વિકલ્પ આગમથી વિરુદ્ધ ં કેમકે આગમોમા લેશ્યાને કર્મના ફલ સ્વરૂપ કહેવામા આવી નથી અને કર્મના સારરૂપ તો જરૂર ફળવાળુ હોયુજ નેધં, ંટલા માટે તેને કર્મના સારરૂપ કહી શકાશે નહિ ંવે ને અસારરૂપ માનીં તો તે ઉત્કૃષ્ટ અનુભાગનેા હેતુ થઈ શકતો નથી તે કારણથી લેશ્યાને કર્મનિષ્પન્નરૂપ નહિ માનવુ નેધં ંટલા માટે નેના દ્વારા આત્મા કર્મથી લેપાય ંવી શુભ-અશુભ આત્મપરિણતિનેજ લેશ્યા માનવી, તે શાસ્ત્રસમત ં

અહિ ંક ં પ્રશ્ન થાય ં કે —નેવી રીતે કાર્મણ શરીરને કર્મવર્ગણાની સાથે કાર્યકારણરૂપ માનવામા આવે ં તેવીજ રીતે લેશ્યાદ્રવ્યને પણ કર્મવર્ગણાની સાથે કાર્યકારણરૂપ માનવામા શુ આપત્તિ ં ? કારણ કે તે લેશ્યાનેા કર્મની અદર સમાવેશ થતો નથી ં પ્રમાણે પ્રશ્ન કરવો તે

શાસ્ત્રાભિપ્રાય ઔપચારિક એવેત્યવસીયતે । વાસ્તવિકલેશ્યાસ્વીકારે તત્ર સ્થિત્યનુભાગવન્ધપ્રસન્નઃ સ્યાત્, ન ચ તત્ર તત્સદ્ભાવઃ, તથાહિ-‘જોગા પયડિ-પણસ ઠિડ અણુભાગ કસાયઓ કુણઈ’ ઇતિ વચનાત્, પ્રકૃતિપ્રદેશૌ યોગજન્યૌ, સ્થિત્યનુભાગૌ ચ ક્ષપાયજન્યૌ સ્તઃ । સયોગિકેવલ્યાદિગુણસ્થાનેષુ યોગ-નિમિત્તકપ્રકૃતિપ્રદેશવન્ધસદ્ભાવેઽપિ ક્ષપાયાભાવાત્ સ્થિત્યનુભાગસમભવેન કુલ્લપતિતથુલ્લોલ્લવત્સ્થિતિમકુર્વન્નેવ કર્મ ત્વરિતિ પ્રત્યાવર્ત્તતે, તદુક્ત શ્રી-

યદિ વહ્ણ વાસ્તવિક લેશ્યા માની જાય તો ડસસે સ્થિતિ-વન્ધ ઔર અનુભાગવન્ધ કા ભી પ્રસન્ન હોગા, પરન્તુ વહ્ણ ડન ડોનોં વન્ધોં કા અભાવ હૈ, કહા ભી હૈ કિ-“પ્રકૃતિ ઔર પ્રદેશ કા વન્ધ યોગ સે હોતા હૈ તથા સ્થિતિ ઔર અનુભાગ વન્ધ ક્ષપાય સે હોતા હૈ ।”

ડસ વચન સે પ્રકૃતિ ઔર પ્રદેશ-વન્ધ યોગજનિત હૈ, સ્થિતિ ઔર અનુભાગવન્ધ ક્ષપાયજનિત હૈ ।

સયોગિકેવલિ ઔદિ ગુણસ્થાનો મેં યોગનિમિત્તક પ્રકૃતિવન્ધ ઔર પ્રદેશવન્ધ કા સદ્ભાવ હોને પર ભી તથા ક્ષપાય કે અભાવ સે સ્થિતિ ઔર અનુભાગ કા સમભવ હોતે હુણ ભી ભીંત પર ફેંકે હુવે સૂચે ઢેલે કી તરહ વહ્ણ સ્થિતિ નહાં કરતા । હુઆહી કર્મ તુરન્ત વાપસ હટ જાતા હૈ, યહી શ્રી સૂચગડાગ સૂત્રમેં ભગવાને ફરમાયા હૈ કિ—

સ્થિતિબધ અથવા અનુભાગબધનો પણ પ્રસન્ન થશે, પરંતુ ત્યાં તે બંને બંધોનો અભાવ છે, કહ્યું પણ છે કે “પ્રકૃતિ અને પ્રદેશનો બધ યોગથી થાય છે તથા સ્થિતિ અને અનુભાગનો બધ ક્ષપાયથી થાય છે”

આ વચનથી પ્રકૃતિ અને પ્રદેશબધ યોગજનિત છે સ્થિતિ અને અનુભાગ બધ ક્ષપાયજનિત છે સયોગિકેવળી વિગેરે ગુણસ્થાનોમા યોગનિમિત્તક પ્રકૃતિબધ અને પ્રદેશબધનો સદ્ભાવ થયા પછી પણ તથા ક્ષપાયના અભાવથી સ્થિતિ અને અનુભાગનો સમભવ થયા પછી પણ ભીંત ઉપર ફેંકેલ સુકા ઢેકાની માફક ત્યાં સ્થિતિ નથી કરતો તુરંત થએલું કર્મ પાછું ઢઠી જાય છે આ વિષય શ્રી સૂચગડાગ સૂત્રમા ભગવાને ફરમાવેલું છે—

કારાત્ । ‘મુખ્યાભાવે સતિ પ્રયોજને નિમિત્તે ઓપચારઃ પ્રવર્તતે’ ઇતિ ન્યાયાદ્ યોગપ્રવૃત્તિસત્તૈરોપચારિકલેશ્યાસત્ત્વે હેતુઃ । ઇદમત્રૈદમ્પર્યમ્-યા ઢિ યોગપ્રવૃત્તિઃ સૂક્ષ્મસમ્પરાયગુણસ્થાનપર્યન્ત કષાયોદયલબ્ધશક્તિવિશેષાઽઽસીત્ સૈવોપશાન્ત કષાયાદિપ્વસ્તિ, અત એવં ભૂતપૂર્વનયાઽપેક્ષયા તન્ન લેશ્યાસદ્ભાવઃ શાસ્ત્રેષૂપગીયતે । યથા લોકે ભગિન્યા મૃતાયામપિ તત્પતિર્ભગિનીપતિત્વેન વ્યવહ્રિયત એવં ।

નન્વાગમે સામાન્યેન સયોગિકેવલિપર્યન્ત લેશ્યાસદ્ભાવાઽઽવેદક

યહ પ્રશ્ન કરના ઠીક નહી, ક્યોં કિ વહાં ભાવલેશ્યા ઉપચારમાત્ર સે માની ગઈ હૈ । “મુખ્ય કા અભાવ હોને પર નિમિત્ત મે ઉપચાર કિયા જાતા હૈ” ઇસ ન્યાય સે યોગપ્રવૃત્તિ કી સત્તા હી ઔપચારિક લેશ્યા કે સદ્ભાવ મેં હેતુ માના ગયા હૈ । યહાં તાત્પર્ય યહ હૈ કિ જો યોગપ્રવૃત્તિ સૂક્ષ્મસપરાય ગુણસ્થાન તક કષાયોદયલબ્ધશક્તિવિશેષસ્વરૂપ થી વહી યોગપ્રવૃત્તિ ઉપશાન્ત-કષાયાદિક મે હૈ ઇસલિયે ભૂતપૂર્વનયકી અપેક્ષા સે વહાં (ઉપશાન્ત ક્ષીણકષાયાદિ ગુણસ્થાનોં મે) લેશ્યા કા સદ્ભાવ શાસ્ત્રોં મેં કહા હૈ । લોક મેં બી યહ ઉક્તિ પ્રસિદ્ધ હૈ કિ ભગિની (બહિન) કે મર જાને પર બી ઉસકે પતિકો ભગિનીપતિ (બહનોઈ) કહતે હૈ ।

વાત યહ હૈ કિ સામાન્યતયા, સયોગિકેવલી ગુણસ્થાન પર્યન્ત, ઉપચાર સે-હી લેશ્યા કા સદ્ભાવ સિદ્ધ હોતા હૈ ।—

આ પ્રશ્ન કરવો ઠીક નથી, કેમ કે ત્યાં ભાવલેશ્યા ઉપચાર માત્રથી માનવામા આવી છે ‘મુખ્યનો અભાવ હોવાથી નિમિત્તમા ઉપચાર કરાય છે’ આ ન્યાયથી યોગપ્રવૃત્તિની સત્તાજ ઔપચારિક લેશ્યાના સદ્ભાવમા હેતુ માનવામા આવેલ છે, અહિં તાત્પર્ય એ છે કે જે યોગપ્રવૃત્તિ સૂક્ષ્મસપરાય ગુણસ્થાન સુધી કષાયોદયલબ્ધશક્તિવિશેષ રૂપે હતી એજ યોગપ્રવૃત્તિ ઉપશાન્તકષાયાદિકમા છે, એટલા માટે ભૂતપૂર્વનયની અપેક્ષાથી ત્યાં (ઉપશાન્તક્ષીણકષાયાદિ ગુણસ્થાનોમા) લેશ્યાનો સદ્ભાવ શાસ્ત્રોમા કહેલ છે લોકમા પણ આ ઉક્તિ પ્રસિદ્ધ છે કે જેન મરી જવા પછી પણ તેના પતિને બનેલી કહે છે

વાત એ છે કે સામાન્ય રીતે સયોગિકેવળીગુણસ્થાન સુધી ઉપચારથીજ લેશ્યાનો સદ્ભાવ સિદ્ધ થાય છે એ ત્યાં વાસ્તવિક લેશ્યા માનીએ તો તેનાથી

લેશ્યાપદ્મમેવાહ-(૧) 'કિંહલેસાઈ' કૃષ્ણદ્રવ્યાત્મિકા કૃષ્ણદ્રવ્યોપરાગજનિતા વા લેશ્યા કૃષ્ણલેશ્યા=કૃષ્ણદ્રવ્યોપાધિકાત્મપરિણામવિશેષઃ, યેન જીવસ્ય હિંસાદ્યાસ્ત્રવેષુ પ્રવૃત્તિઃ, મનોવાકાયાનામસયમઃ, સ્વભાવે ક્ષુદ્રતા, ગુણદોષાવચિમૃશ્યૈવ કાર્યેષુ પ્રવૃત્તિઃ ક્રૂરત્વ ચ સજાયતે તયા ।

(૨) 'નીલલેસાઈ' નીલદ્રવ્યાત્મિકા નીલદ્રવ્યોપરાગજનિતા વા લેશ્યા નીલલેશ્યા=અશોકતરુસમાનનીલવર્ણદ્રવ્યોપાધિકાઽઽત્મપરિણામવિશેષઃ, યેન જીવઃ ર્ષ્યાલુઃ અસહિષ્ણુઃ, માયાવી, નિહ્વપઃ, પ્રદીપ્તવિષયાભિલાષઃ, રસલોલુપઃ, સદા પૌદ્ગલિકસુખગવેપકશ્ચ ભવતિ, તયા ।

(૩) 'કાંડલેસાઈ' કપોતસ્યાય કાપોતઃ=પારાવતવર્ણસ્તત્તુલ્યદ્રવ્યરૂપા તત્તુ-

(૧) કૃષ્ણલેશ્યા— કૃષ્ણદ્રવ્યસ્વરૂપ તથા કૃષ્ણદ્રવ્યોપરાગજનિત આત્મપરિણામ સ્વરૂપ છે, જિસસે હિંસા આદિ આશ્રવોં મેં આત્માકી પ્રવૃત્તિ હોતી છે, મન-વચન-કાયાકા અસયમ, સ્વભાવમેં ક્ષુદ્રતા, ગુણ દોષો કે વિના વિચારે કાર્યમે પ્રવૃત્તિ કરના ઓર ક્રૂર ભાવ કા આના હોતા છે ।

(૨) નીલલેશ્યા— નીલદ્રવ્યાત્મક તથા નીલદ્રવ્યોપરાગજનિત અર્થાત્ અશોક વૃક્ષ કે સમાન નીલવર્ણવાલે આત્મપરિણામસ્વરૂપ છે । ઇસસે આત્મા ર્ષ્યાલુ, અસહિષ્ણુ, માયાવી, નિર્લજ્જ, વિષયલોલુપી, રસલોલુપી ઓર પૌદ્ગલિક સુખોંકા અન્વેષક હોતા છે ।

(૩) કાપોતલેશ્યા— કબૂતર કે તુલ્ય વર્ણવાલી તથા ડસકે

(૧) કૃષ્ણલેશ્યા—કૃષ્ણદ્રવ્યસ્વરૂપ તથા કૃષ્ણદ્રવ્યોપરાગજનિત આત્મપરિણામ સ્વરૂપ છે, જેનાથી હિંસા આદિ આશ્રવોમા આત્માની પ્રવૃત્તિ થાય છે મન વચન અને કાયાનો અસયમ, સ્વભાવમા ક્ષુદ્રતા, ગુણદોષોને વિચાર્યા વિના કાર્યમા પ્રવૃત્તિ કરવી અને ક્રૂરભાવનું આવલું થાય છે

(૨) નીલલેશ્યા—નીલદ્રવ્યાત્મક તથા નીલદ્રવ્યોપરાગજનિત અર્થાત્ અશોક વૃક્ષની જેમ નીલવર્ણવાળા આત્મપરિણામ સ્વરૂપ છે, એથી આત્મા ર્ષ્યાલુ, અસહિષ્ણુ માયાવી નિર્લજ્જ, વિષયપ્રેમી, રસપ્રેમી અને પૌદ્ગલિક સુખોના અન્વેષક હોય છે

(૩) કાપોતલેશ્યા—કબૂતરની સમાન વર્ણવાળી તથા તેની જેમ દ્રવ્યોપરાગ

સૂત્રકૃતાન્ને-‘ત પદમસમય વદ્ધં, વીપસમય વેદ્ય, તતિયસમયે નિજિણ’ इति, अतस्तद्वन्ध ईर्यापथवन्ध उच्यते । अयमेवाऽऽगमस्तत्रौपचारिकलेश्यासचाऽऽवेदकः; इत्युक्तलक्षणलक्षितैव भावलेश्येति सिद्धम् ।

अत्र च भावलेश्यैव प्रतिक्रमणविषयस्तस्या एवाधिकृतत्वात्, भावलेश्यासु कृष्णादिशब्दव्यवहारस्तदुत्पादकलेश्यापुद्गलनिमित्तकः परिणामसादृश्यमूलकश्चेति ध्येय, ताभिः ।

“प्रथम समयमें बन्ध होता है, दूसरे समयमें वेदा जाता है और तीसरे समयमें निर्जर जाता है अर्थात् दूर हो जाता है ॥”

इसी कारण से उस बन्धको ईर्यापथवन्ध कहा है । यही आगमवाक्य वहा औपचारिक लेश्या के सद्भावको बतानेवाला है, अतः पूर्वोक्त लक्षणवाली ही भावलेश्या है ।

यहा प्रतिक्रमणमें भावलेश्या का अधिकार है, उनमें कृष्णादि शब्दों का जो व्यवहार होता है वह सिर्फ उनके उत्पादक लेश्या के पुद्गलों के निमित्त से तथा परिणाम भी वैसे हो जाने के कारण से माना जाता है ।

वह लेश्या छह प्रकारकी है जैसे—

(१) कृष्णलेश्या । (२) नीललेश्या । (३) कापोतलेश्या । (४) तेजोलेश्या । (५) पद्मलेश्या । (६) शुक्ललेश्या ।

“ પ્રથમ સમયમા બંધ થાય છે, બીજા સમયમા અનુભવ થાય છે, અને ત્રીજા સમયમા નિર્જરી બાય છે અર્થાત્ દૂર થઈ બાય છે ” આ કારણથી તે બંધને ઈર્યાપથ બંધ કહેલ છે આ શાસ્ત્રવાક્ય ત્યા ઔપચારિક લેશ્યાના સદ્ભાવને બતાવવા વાળો છે, એટલે પૂર્વોક્ત લક્ષણવાળીજ ભાવલેશ્યા છે

અહીં પ્રતિક્રમણમા ભાવલેશ્યાનો અધિકાર છે, એમા કૃષ્ણાદિ શબ્દોનો જે વ્યવહાર થાય છે તે માત્ર તેની ઉત્પાદક લેશ્યાના પુદ્ગલોના નિમિત્તથી તથા પરિણામ પણ તેવાજ થઈ જવાના કારણથી મનાય છે તે લેશ્યા છ પ્રકારની છે, જેવી રીતે (૧) કૃષ્ણલેશ્યા, (૨) નીલલેશ્યા, (૩) કાપોતલેશ્યા, (૪) તેજલેશ્યા (૫) પદ્મલેશ્યા, (૬) શુક્લલેશ્યા

लेश्यापदकमेवाह-(१) 'किण्वलेसाए' कृष्णद्रव्यात्मिका कृष्णद्रव्योपरा-
गजनिता वा लेश्या कृष्णलेश्या=कृष्णद्रव्योपाधिकात्मपरिणामविशेषः,
येन जीवस्य हिंसायास्त्रवेपु प्रवृत्तिः, मनोवाकायानामसयमः, स्वभावे क्षुद्रता,
गुणदोषावविमृश्यैव कार्येषु प्रवृत्तिः क्रूरत्व च सजायते तथा ।

(२) 'नीललेसाए' नीलद्रव्यात्मिका नीलद्रव्योपरागजनिता वा लेश्या
नीललेश्या=अशोकतरुसमाननीलवर्णद्रव्योपाधिकाऽऽत्मपरिणामविशेषः, येन जीवः
ईर्ष्यालुः असहिष्णुः, मायावी, निस्त्रपः, प्रदीप्तविषयाभिलाषः, रसलोलुपः,
सदा पौद्गलिकसुखगवेपकश्च भवति, तथा ।

(३) 'काउलेसाए' कपोतस्याय कपोतः=पारावतवर्णस्तत्तुल्यद्रव्यरूपा तत्तु-

(१) कृष्णलेश्या— कृष्णद्रव्यस्वरूप तथा कृष्णद्रव्योपरागजनित
आत्मपरिणाम स्वरूप है, जिससे हिंसा आदि आश्रवों में आत्माकी
प्रवृत्ति होती है, मन-वचन-कायाका असयम, स्वभावमें क्षुद्रता,
गुण दोषों के बिना विचारे कार्यमें प्रवृत्ति करना और क्रूर भाव
का आना होता है ।

(२) नीललेश्या— नीलद्रव्यात्मक तथा नीलद्रव्यउपरागजनित
अर्थात् अशोक वृक्ष के समान नीलवर्णवाले आत्मपरिणामस्वरूप
है । इससे आत्मा ईर्ष्यालु, असहिष्णु, मायावी, निर्लज्ज, विषयलोलुपी,
रसलोलुपी और पौद्गलिक सुखोंका अन्वेषक होता है ।

(३) कपोतलेश्या— कबूतर के तुल्य वर्णवाली तथा उसके

(१) कृष्णलेश्या—कृष्णद्रव्यस्वरूप तथा कृष्णद्रव्योपरागजनित आत्मपरि
णाम स्वरूप છે, જેનાથી હિંસા આદિ આશ્રવોમાં આત્માની પ્રવૃત્તિ થાય છે
મન વચન અને કાયાનો અસયમ, સ્વભાવમાં ક્ષુદ્રતા, ગુણદોષોને વિચાર્યા વિના
કાર્યમાં પ્રવૃત્તિ કરવી અને ક્રૂરભાવનું આવવું થાય છે

(૨) નીલલેશ્યા—નીલદ્રવ્યાત્મક તથા નીલદ્રવ્યઉપરાગજનિત અર્થાત્
અશોક વૃક્ષની જેમ નીલવર્ણવાળા આત્મપરિણામ સ્વરૂપ છે, એથી આત્મા
ઈર્ષ્યાલુ, અસહિષ્ણુ માયાવી નિર્લજ્જ, વિષયપ્રેમી, રસપ્રેમી અને પૌદ્ગલિક
સુખોના અન્વેષક હોય છે

(૩) કપોતલેશ્યા—કબૂતરની સમાન વર્ણવાળી તથા તેની જેમ દ્રવ્યોપરાગ

લ્યદ્રવ્યોપરાગજનિતા ચા લેશ્યા કાપોતલેશ્યા=તરુણપારાવતકણ્ઠતુલ્યકૃષ્ણ
લોહિત (ધૂપછાયા) વર્ણદ્રવ્યોપાધિકાત્મપરિણામઃ; येन जीवस्य वचसि कर्तव्ये
विचारणाया च सर्वत्र यक्तैव जायते, कस्मिन्नपि विषये सारल्यं न भवति,
नास्तिकत्वं परदुःखजनकभाषणशीलत्वं च सजायते तथा ।

(૪) 'તેજોલેશ્યા' તેજઃ=અગ્નિજ્વાલા તતુલ્યલોહિતવર્ણદ્રવ્યાત્મિકા
તાદૃશદ્રવ્યોપરાગજનિતા ચા લેશ્યા તેજોલેશ્યા=શુક્રતુષ્ઠવદ્રક્તવર્ણદ્રવ્યોપાધિકાત્મ
પરિણામવિશેષઃ, यद्वशात् जीवे नम्रत्वं पदमादधाति शठ्यं चापल्यं च सुदूरम्
पसरति, धर्मेऽमिरुचिर्दाढ्यं सर्वजनहितेऽपित्वं च जञ्जन्यते तथा ।

તુલ્ય દ્રવ્યોપરાગજનિત અર્થાત્ તરુણ કબૂતર કે કઠસદૃશ કૃષ્ણ
ઔર નીલ વર્ણવાલે દ્રવ્યાત્મક આત્મપરિણામ સ્વરૂપ હૈ, जिससे
आत्मा मन वचन कर्तव्य और विचारमें सर्वथा यक्त भावको धारण
करता है, किन्तु किसी विषयमें सरलता नहीं रखता है, और उसमें
पुण्य पाप आदिकी नास्तिकता तथा परदुःखजनक भाषा बोलनेका
स्वभाव होता है ।

(૪) તેજોલેશ્યા—અગ્નિજ્વાલા કે સમાન લાલવર્ણદ્રવ્યસ્વરૂપ
તથા તાદૃશ (વૈસે) દ્રવ્યોપરાગજનિતસ્વરૂપ હૈ, અર્થાત્ તોતે કી
चोंचके समान लाल वर्णवाले द्रव्य के सदृश आत्मपरिणामरूप
है, इससे आत्मा नम्र बनता है, शठता और चपलता रहित
होता है, धर्म के अन्दर दृढ, प्राणीमात्र का हितैषी होता है ।

જનિત અર્થાત્ તરુણ કબુતરના કઠના જેવા કાળા અને નીલવર્ણવાળા—દ્રવ્યાત્મક
આત્મપરિણામરૂપ છે, જેથી આત્મા, મન, વચન, કર્તવ્ય અને વિચારમાં હમેશા
યક્તભાવને ધારણ કરે છે પરંતુ કોઈ વિષયમાં સરળતા નથી રાખતો, અને તેમાં
પુણ્ય પાપ વિગેરેની નાસ્તિકતા તથા પરદુઃખજનક ભાષા બોલવાનો સ્વભાવ
થાય છે

(૪) તેજોલેશ્યા—અગ્નિની જ્વાળાની પેઠે લાલવર્ણ દ્રવ્યસ્વરૂપ તથા એકાદ
દ્રવ્યોપરાગજનિત સ્વરૂપ છે, અર્થાત્ પોપટની ચાચની જેમ લાલવર્ણવાળા
દ્રવ્યની જેમ આત્મપરિણામરૂપ છે, એથી આત્મા નમ્ર બને છે, હુમ્મ્યાઈ તથા
અપલતાથી રહિત થાય છે, ધર્મની અંદર દૃઢ, પ્રાણીમાત્રનો હિતૈષી થાય છે

(૫) 'પડમલેસાણ' અત્ર પદ્મશબ્દેનોપચારાત્પદ્મગર્ભગ્રહણમ્ સ ચ પીતો ભવત્યતઃ પદ્મગર્ભવત્પીતદ્રવ્યાત્મિકા પીતદ્રવ્યોપાધિજન્યા વા લેશ્યા પદ્મલેશ્યા=હરિદ્રાવત્પીતદ્રવ્યોપાધિકાઽઽત્મપરિણામવિશેષઃ, યદ્વારા જીવસ્ય ક્રોધમાનાદિ કપાયાણાં વહુતરાશેષુ માન્ય, સ્વાન્તે શાન્તિઃ, આત્મસયમધારણક્ષમત્વમ્, મિત-ભાષિત્વમ્, જિતેન્દ્રિયત્વ ચ સપત્રતે, તથા ।

'શુક્લેસાણ' શુક્લ=શુક્લદ્રવ્ય તદાત્મિકા તદુપરાગજનિતા વા લેશ્યા શુક્લેશ્યા=શદ્ધવચ્ચ્વેતવર્ણદ્રવ્યોપાધિકાત્મપરિણામઃ, યદ્વશતો જીવસ્યાઽઽર્ત્તરૌદ્ર-ધ્યાનાઽવરોધપૂર્વક ધર્મ-શુક્લધ્યાનદ્વયમુપસપત્રતે, મનોવાક્કાયસયમનશક્તિઃ, કપાયોપશાન્તિઃ, વીતરાગભાવસમ્પાદનાઽઽનુકૂલ્ય ચ જાયતે, તથા (૬)

(૫) પદ્મલેશ્યા—પદ્મ-કમલ-કે ગર્ભ કે સમાન પીતદ્રવ્ય-સ્વરૂપ તથા હલદી કે સમાન પીલે દ્રવ્યવાલે આત્મપરિણામવિશેષ-સ્વરૂપ છે, જેને આત્મા કે ક્રોધ માન માયા આદિ કપાય મદ અર્થાત્ પતલે હો જાતે હો, ઓર આત્મામેં મન કી શાન્તિ, આત્મ-સયમ કા સામર્થ્ય, મર્યાદિત બોલના ઓર જિતેન્દ્રિયતા આદિ ગુણ આજાતે હો ।

(૬) શુક્લેશ્યા—શુક્લદ્રવ્યસ્વરૂપ યાને શાલકે તલેકે સમાન શ્વેત દ્રવ્યવાલે આત્મપરિણામવિશેષરૂપ છે, જેને આત્મા આર્ત્ત-રૌદ્ર ધ્યાન કો છોડકર ધર્મ તથા શુક્લધ્યાનધારી હોતા છે, મન વચન કાયા કે સયમન કા સામર્થ્ય, કપાયોં કી ઉપશાન્તિ, વીત-

(૫) પદ્મલેશ્યા—પદ્મ=કમળના ગર્ભ સમાન પીળા દ્રવ્ય સ્વરૂપ તથા હળદરની જેમ પીળા દ્રવ્યવાળા આત્મપરિણામવિશેષસ્વરૂપ છે જેનાથી આત્માને, ક્રોધ, માન, માયા આદિ કપાયો મદ અર્થાત્ પાતલા થઇ જાય છે, અને આત્મામા મનની શાન્તિ, આત્મસયમનું સામર્થ્ય, મર્યાદિત બોલવું અને જિતેન્દ્રિયપણું આદિ ગુણ આવી જાય છે

(૬) શુક્લલેશ્યા—શુક્લદ્રવ્યસ્વરૂપ અર્થાત્ શાખના તલીયાની સમાન સફેદ દ્રવ્યવાળા આત્મપરિણામવિશેષરૂપ છે જેથી આત્મા આર્ત્ત રૌદ્ર ધ્યાનને છોડીને ધર્મ તથા શુક્લ ધ્યાન ધારી થાય છે મન વચન કાયાના સયમનું સામર્થ્ય, કપાયોની ઉપશાન્તિ, વીતરાગભાવને પ્રાપ્ત કરવાની અનુકૂળતા વિગેરે

તુલ્યદ્રવ્યોપરાગજનિતા વા લેશ્યા કાપોતલેશ્યા=તરુણપારાવતકઠતુલ્યકૃષ્ણ
લોહિત (ધૂપછાયા) વર્ણદ્રવ્યોપાધિકાત્મપરિણામઃ; येन जीवस्य वचसि कर्तव्ये
विचारणाया च सर्वत्र वक्तृत्वैव जायते, कस्मिन्नपि विषये सारल्यं न भवति,
नास्तिकत्वं परदुःखजनकभाषणशीलत्वं च सजायते तथा ।

(૪) 'તેજોલેશ્યા' તેજ=અગ્નિજ્વાલા તતુલ્યલોહિતવર્ણદ્રવ્યાત્મિકા
તાદૃશદ્રવ્યોપરાગજનિતા વા લેશ્યા તેજોલેશ્યા=શુક્રતુલ્યદ્રવ્યવર્ણદ્રવ્યોપાધિકાત્મ
પરિણામવિશેષઃ, यद्वशात् जीवे नम्रत्वं पदमादधाति शाठ्यं चापल्यं च सुदूरं
पसरति, धर्मेऽमिरुचिर्दाढ्यै सर्वजनहितैषित्वं च जज्ञान्यते तथा ।

તુલ્ય દ્રવ્યોપરાગજનિત અર્થાત્ તરુણ કબૂતર કે કઠસદૃશ કૃષ્ણ
ઔર નીલ વર્ણવાલે દ્રવ્યાત્મક આત્મપરિણામ સ્વરૂપ છે, जिससे
आत्मा मन वचन कर्तव्य और विचारमें सर्वथा वक्तृ भावको धारण
करता है, किन्तु किसी विषयमें सरलता नहीं रखता है, और उसमें
पुण्य पाप आदिकी नास्तिकता तथा परदुःखजनक भाषा बोलनेका
स्वभाव होता है ।

(૪) તેજોલેશ્યા—અગ્નિજ્વાલા કે સમાન લાલવર્ણદ્રવ્યસ્વરૂપ
તથા તાદૃશ (વૈશે) દ્રવ્યોપરાગજનિતસ્વરૂપ છે, અર્થાત્ તોતે કી
चोंचके समान लाल वर्णवाले द्रव्य के सदृश आत्मपरिणामरूप
है, इससे आत्मा नम्र बनता है, शाठता और चपलता रहित
होता है, धर्म के अन्दर दृढ, प्राणीमात्र का हितैषी होता है ।

જનિત અર્થાત્ તરુણ કબૂતરના કઠના જેવા કાળા અને નીલવર્ણવાળા—દ્રવ્યાત્મક
આત્મપરિણામરૂપ છે, જેથી આત્મા, મન, વચન, કર્તવ્ય અને વિચારમાં હંમેશા
વક્તૃભાવને ધારણ કરે છે પરંતુ કોઈ વિષયમાં સરળતા નથી રાખતો, અને તેમાં
પુણ્ય પાપ વિગેરેની નાસ્તિકતા તથા પરદુઃખજનક ભાષા બોલવાનો સ્વભાવ
થાય છે

(૪) તેજોલેશ્યા—અગ્નિની જ્વાળાની પેઠે લાલવર્ણ દ્રવ્યસ્વરૂપ તથા એવુંજ
દ્રવ્યોપરાગજનિત સ્વરૂપ છે, અર્થાત્ પોપટની થાંચની જેમ લાલવર્ણવાળા
દ્રવ્યની જેમ આત્મપરિણામરૂપ છે, એથી આત્મા નમ્ર બને છે, હુમ્મ્યાઈ તથા
ચપલતાથી રહિત થાય છે, ધર્મની અંદર દૃઢ, પ્રાણીમાત્રનો હિતેષી થાય છે

तथोक्त नीतो-‘राजा मित्र केन दृष्ट श्रुत वा,’ ‘राजसेवा मनुष्याणामसिधारा-
वलेहनम् । पञ्चाननपरिष्वङ्गो, व्यालीवदनचुम्बनम्’ इत्यादि । अकस्मात्=वाह्य-
निमित्तमन्तरेणैव सर्पादिवृद्ध्या रज्ज्वादिभ्यो भय, सहसैवार्तनादादिश्रवणाद्वा
भयम् । आजीवः=जीविका तस्मात्तदर्थं वा भयम्-‘निर्धनोऽहं दुर्भिक्षाद् कथं प्राणान्
धारयिष्यामि’ इति, ‘कथं वा मम जीविका सुदृढा भविष्यतीति । मरण=प्राण-
वियोगस्तस्माद्भयम् । श्लोक =यशः-‘पद्ये यशसि च श्लोकः’-इत्यमरः, न श्लोकः
अश्लोकः=अपयशस्तस्माद्भयम् । तदेवमुक्तविधैः सप्तभिर्भयस्थानैर्यो मयाऽतिचारः
कृतस्तस्मात्त वा प्रतिक्रामामि=विनिवर्त्ते-परित्यजामि वेति समन्वयः । अत्रोक्त-
स्य ‘पडिक्कामामि’ इत्यस्येत आरभ्य त्रयस्त्रिंशदाशातना यावत् सम्बन्धो बोद्ध-
व्यः । ‘अट्टहि’ अट्टभिः, ‘मयट्ठाणेहि’ मदोऽहङ्कारस्तस्य स्थानानि=जाति-
कुल-वल-रूप-तपः-श्रुत-लाभै-श्वर्यरूपाणि तैः, सम्बन्धः प्राग्वत् ।

‘नवहि’ नवभिः, ‘वभचेरगुत्तीहि’ ब्रह्मचर्य=मैथुनविरतिव्रत तस्य
गुप्तयः=रक्षाप्रकाराः ब्रह्मचर्यगुप्तयः=मैथुनविरतिपरिरक्षणोपायास्ताभिः, सम्बन्धः
पूर्ववत् । ताश्च ब्रह्मचर्यगुप्तय - (१) वसति- (२) कथा- (३-४) निषयेन्द्रिय- (५)
कुड्यान्तर- (६) पूर्वक्रीडा- (७-८) प्रणीताऽतिमात्राहार- (९) विभूषणपरिहाररूपाः,
तत्र वसति.=स्त्रीपशुपण्डकाऽऽश्रितस्थानसेवनं तत्परिहारः प्रथमा गुप्तिः (१) ।

अकस्माद्भय- विनाकारण ही अचानक डर जाना, (५) आजीविका
भय-मेरा निर्वाह कैसे होगा ! दुष्काल आदि में प्राण कैसे रखूँगा !
इत्यादि रूप भय, (६) प्राणवियोग का भय, और (७) अश्लोक (अपयश)
होने का भय, इन सात भयों से, जाति, कुल, वल, रूप, तप,
श्रुत, लाभ, और ऐश्वर्य-मद, इन आठ मदों से, तथा (१) वसति-
स्त्री, पशु, पण्डक सहित स्थान-का त्याग, (२) कथा-स्त्री सम्बन्धी

देही धन आदि छीनवीने लभे जवाने । भय, (४) अकस्मात्भय-विना डरछेज
अचानक भी जलु, (५) आजीविकाभय-भारे निर्वाह केम थाये ? दुष्काल आदिमा
प्राण कथं रीते राभीश ? इत्यादि रूप भय, (६) प्राण वियोगनो भय, अने (७) अश्लोक
(अपयश) यवाने भय, आ सात भयोथी जाति, कुल, वल, रूप, तप, श्रुत
लभ अने ऐश्वर्य-मद आ आठे भदोथी तथा (१) वसति-स्त्री, पशु, पण्डक
सहित स्थाननो त्याग, (२) कथा-स्त्री सम्बन्धी बातनो त्याग, (३) निषधा-न्या

॥ મૂલમ્ ॥

પડિક્કમામિ સત્તર્હિ ભયટ્ટાણેર્હિ । અટ્ટર્હિ મયટ્ટાણેર્હિ ।
નવર્હિ વમ્ભચેરગુત્તીર્હિ । દસવિહે સમણધમ્મે ॥ સૂ૦ ૧ ॥

॥ ત્રાયા ॥

પતિક્કમામિ સપ્પભિર્ભયસ્થાનૈઃ । અટ્ટભિર્મદસ્થાનૈઃ । નવભિર્નમ્મચર્ય-
ગુપ્તિભિઃ । દશવિત્તે શ્રમણધર્મ્મે ॥ સૂ૦ ૧ ॥

॥ ટીકા ॥

‘પડિક્કમામિ’ इत्यादि । भय=भीतिस्तस्य स्थानानि=पर्यायभेदाः-भयस्थानानि
तैः, सप्त भयस्थानान्युक्तानि यथा-‘इहपरलोयादाणमकम्हा आजीवमरणमसिलोए’
इति । अस्य ‘इहपरलोकादानमकस्मादाजीवमरणमवलोकः’-इतिच्छाया । तत्र
लोकशब्दस्य द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणत्वादिहेत्यनेनाप्यन्वयः, इहलोकः=सजातीयलोकस्त
स्माद्भय यथा मनुष्येभ्यो मनुष्याणां, तिर्यग्भ्यस्तिरश्वा भयम् । परलोक=विजा
तीयलोकस्तस्माद्भय, यथा सिंहादिभ्यो मनुष्यादीनां भयम्, आदीयते=गृह्यते
इत्यादानं धनं, तद्धेतुकं चौराऽग्नि-राजादिभ्यो भयम्, यद्वा आदानं=राजादि
वितीर्णपदवीग्रामादिस्वीकरणं, तदर्थं भयमर्थाद्राजादिभ्य एव, राजानो हि चार
चक्षुष्वात् क्षणे तुष्टा क्षणे रुष्टा दत्तमपि सर्वस्व कदाचिदपराधलवेनाऽप्यपहरन्ति,
से फिर यह भविष्य मे ऐसा अनर्थ न करके अच्छे रास्ते चले
और सुखी बने ॥ ६ ॥

इसी प्रकार दूसरा आम्रफल के खानेवाले छह पुरुषों का
दृष्टान्त प्रसिद्ध ही है ॥ सू० ८ ॥

(१) इहलोकभय-मनुष्य को मनुष्य से और तिर्यञ्च को तिर्यञ्च
से भय, (२) परलोकभय-मनुष्य आदि को सिंह आदि से भय, (३)
आदानभय-चोर राजा आदि से धन आदि छीने जाने का भय, (४)

કરવું જોઈએ જેથી એ ફરીથી ભવિષ્યમાં આવે । અનર્થ ન કરીને ઉત્તમ માર્ગે
જાય અને સુખી થાય (૬) આવી રીતે ધીજી આમ્રફળ ખાનારા છ પુરુષોનું
દૃષ્ટાંત પ્રસિદ્ધ છે (સૂ૦ ૮)

(૧) ઇહલોકભય- મનુષ્યને મનુષ્યથી અને તિર્યંચને તિર્યંચથી ભય, (૨) પર
લોકભય-મનુષ્ય આદિને સિંહ વિગેરેથી ભય, (૩) આદાનભય-ચોર ગણ વિગે

तथोक्त नीतौ-‘राजा मित्र केन दृष्ट श्रुत वा,’ ‘राजसेवा मनुष्याणामसिधारा-
वलेहनम् । पञ्चाननपरिष्वङ्गो, व्यालीवदनचुम्बनम्’ इत्यादि । अकस्मात्=वाह्य-
निमित्तमन्तरेणैव सर्पादिवृद्ध्या रज्ज्वादिभ्यो भय, सहसैवार्त्तनादादिश्रवणाद्वा
भयम् । आजीवः=जीविका तस्मात्तदर्थं वा भयम्-‘निर्धनोऽहं दुर्मिथादौ कथं प्राणान्
धारयिष्यामि’ इति, ‘कथं वा मम जीविका सुदृढा भविष्यतीति । मरण=प्राण-
वियोगस्तस्माद्भयम् । श्लोक =यशः-‘पद्ये यशसि च श्लोकः’-इत्यमरः, न श्लोकः
अश्लोकः=अपयशस्तस्माद्भयम् । तदेवमुक्तविधैः सप्तभिर्भयस्थानैर्यो मयाऽतिचारः
कृतस्तस्मात्त वा प्रतिक्रामामि=विनिवर्त्ते-परित्यजामि वेति समन्वयः । अत्रोक्त-
स्य ‘प्रतिक्रामामि’ इत्यस्येत आरभ्य त्रयस्त्रिंशदाशातना यावत् सम्बन्धो बोद्ध-
व्यः । ‘अट्टहि’ अष्टभिः, ‘मयट्टाणेहि’ मदोऽहङ्कारस्तस्य स्थानानि=जाति-
कुल-बल-रूप-तपः-श्रुत-लाभै-श्वर्यरूपाणि तैः, सम्बन्धः प्राग्वत् ।

‘नवहि’ नवभिः, ‘वभचेरगुत्तीहि’ ब्रह्मचर्य=मैयुनविरतिप्रत तस्य
गुप्तयः=रक्षाप्रकाराः ब्रह्मचर्यगुप्तयः=मैयुनविरतिपरिरक्षणोपायास्ताभिः, सम्बन्धः
पूर्ववत् । ताश्च ब्रह्मचर्यगुप्तय - (१) वसति- (२) कथा- (३-४) निषयेन्द्रिय- (५)
कुड्यान्तर- (६) पूर्वक्रीडा- (७-८) प्रणीताऽतिमात्राहार- (९) विभूषणपरिहाररूपाः,
तत्र वसतिः=स्त्रीपशुपण्डकाऽऽश्रितस्थानसेवनं तत्परिहारः प्रथमा गुप्तिः (१) ।

अकस्माद्भय- विनाकारण ही अचानक डर जाना, (५) आजीविका
भय-मेरा निर्वाह कैसे होगा ! दुष्काल आदि में प्राण कैसे रखूँगा !
इत्यादिरूप भय, (६) प्राणवियोग का भय, और (७) अश्लोक (अपयश)
होने का भय, इन सात भयों से, जाति, कुल, बल, रूप, तप,
श्रुत, लाभ, और ऐश्वर्य-मद, इन आठ मदों से, तथा (१) वसति-
स्त्री, पशु, पण्डक सहित स्थान-का त्याग, (२) कथा-स्त्री सम्बन्धी

देशी धन आदि छीनवीने लक्ष नवाने भय, (४) अकस्मान्भय-विना डरछेन
अचानक भी नव, (५) आजीविकाभय-मेरा निर्वाह कैसे थासे ? दुष्काल आदिमा
प्राण कथं रीते राखीश ? इत्यादि रूप भय, (६) प्राण वियोगने भय, अने (७) अश्लोक
(अपयश) भवाने भय, आ सात भयेथी जाति, कुल, बल, रूप, तप, श्रुत
लभ अने ऐश्वर्य-मद आ आठ मदोथी तथा (१) वसति-स्त्री, पशु, पण्डक
सहित स्थानने त्याग, (२) कथा-स्त्री सम्बन्धी बातने त्याग, (३) निषेधा-न्या

कथा=स्त्रीसम्बन्धिनी, स्त्रिया सहैकान्ते वा वार्ता, तत्परिहारो द्वितीया (२)।
 निपद्या=पूर्वमुपविष्टाना पश्चादुत्थिताना स्त्रीणामासने तदुत्थानोत्तर होराद्वयाभ्यन्तरे
 समुपवेशस्तत्परिहारः (३)। इन्द्रियम्=इन्द्रियारोगकन=स्त्रीणामङ्गोपाङ्गनिरीक्षण,
 तत्परिहारः (४)। कुड्यान्तर=भित्त्यादिव्यवहिताना स्त्रीणा सम्मोहकमधुर
 ध्वन्याद्याकर्णन तत्परिहारः (५)। 'पूर्वक्रीडा'=दीक्षाग्रहणात्पूर्वं ससारावस्थाया
 स्त्रिया सह कृतस्य क्रीडादेः स्मरण, तत्परिहारः (६), प्रणीत=निप्यन्दमान
 घृतादिनिन्दु, ततोऽन्यदपि वा धातूपबृहक भोज्यवस्तु तत्परिहारः (७),
 अतिमात्राऽऽहारः=परिमाणाधिकभोजन, तत्परिहारः (८), विभूषण=स्नानादिना
 शरीरसंस्कारस्तत्परिहारः (९)। 'दसविहे' दश विधाः=प्रकारा यस्य स तथा
 तस्मिन् 'समणधम्मे' श्रमणधर्मे, 'यो मयाऽतिचारः कृत'-इत्यादिसम्बन्धो

वार्ता का त्याग, (३) निपद्या-जहाँ पहले स्त्री बैठी हो उस स्थान
 पर स्त्री के उठ जाने पर दो घड़ी के भीतर उस स्थान पर उपवेशन
 (बैठने) आदि का त्याग, (४) इन्द्रिय-स्त्री के अङ्गोपाङ्ग के निरीक्षण
 का त्याग, (५) कुड्यान्तर-दीवार आदि की ओटमें स्त्री पुरुष के
 विषयोत्तेजक शब्द श्रवण का त्याग, (६) पूर्वक्रीडा-स्त्री के साथ
 पहले की हुई क्रीडा आदि के स्मरण का त्याग, (७) प्रणीत-प्रतिदिन
 सरस भोजन का त्याग, (८) अतिमात्राहार-प्रमाण से अधिक
 भोजन का त्याग, (९) विभूषा-शरीर की शुश्रूषा का त्याग, इन
 नौ ब्रह्मचर्यगुप्तियों (बाडों) द्वारा और क्षान्ति, मुक्ति (लोभ
 परित्याग), आर्जव (मायापरित्याग), मार्दव (मानपरित्याग), लाघव

पड़ेला स्त्री बैठी होय ते स्थान उपर स्त्री उठी गया जाह में घड़ीनी अहर ते
 जग्या उपर भेसवा विगेरेना त्याग, (४) इन्द्रिय-स्त्रीना अङ्ग-उपाङ्ग नेवाने
 त्याग, (५) कुड्यान्तर-दीवाल आदिनी ओटमा स्त्रीपुरुषना विषयने उत्तेजन करे
 जेवा शब्द सावणवाने। त्याग, (६) पूर्वक्रीडा-स्त्रीनी साथे प्रथम करेली क्रीडा
 विगेरेना स्मरणने। त्याग, (७) प्रणीत-प्रतिदिन सरस भोजनने। त्याग, (८)
 अतिमात्राहार-प्रमाणथी वधारे जेराक भावाने। त्याग (९) विभूषा-शरीरनी
 शुश्रूषाने। त्याग, आ नव प्रकायर्थं शुक्तिज्जो (बाडो) द्वारा अने क्षान्ति, मुक्ति

१ कुड्यस्य अन्तर=व्यवधान कुड्यान्तरम्, एतस्योपलक्षणत्वादुक्तोऽर्थः ।

ભૂતપૂર્વ એવ, તત્ર દશ શ્રમણધર્મા યથા-શાન્તિ-મુક્તિ-રાજવ, માર્દવ, લાઘવ, સત્ય, સયમ-સ્તપ-સ્ત્યાગો, બ્રહ્મચર્યવાસથેતિ ॥ સૂ. ૯ ॥

॥ મૂલમ્ ॥ એગારસર્હિ ઉવાસગપડિમાર્હિ ॥ સૂ. ૧૦ ॥

॥ છાયા ॥ એકાદશભિરુપાસકપ્રતિમાભિઃ ॥ સૂ. ૧૦ ॥

॥ ટીકા ॥

‘એગારસર્હિ’ ઇત્યાદિ । ઉપાસતે શ્રમણાનિત્યુપાસકાઃ=શ્રાવકાસ્તેષા પ્રતિમાઃ=અભિગ્રહા (પ્રતિજ્ઞાવિશેષાઃ) ઉપાસકપ્રતિમાસ્તાભિઃ પ્રરૂપણાદૌ યો મયાઽતિચારઃ કૃત ઇત્યાન્નિ સમ્બન્ધો યથાપૂર્વમ્ । આસા પ્રતિમાનામાત્રા પ્રથમા (૧) માસિકી સમ્યક્ત્વ (દર્શન)-પ્રતિમા, શઙ્કાદિદોષરહિતસ્ય સમ્યક્ત્વસ્ય પાલનમ્ । દ્વિતીયા (૨) દ્વિમાસિકી વ્રતપ્રતિમા, તત્ર નૈર્મલ્યેન

(દ્રવ્યભાવસે લઘુતા), સત્ય, સયમ, તપ, ત્યાગ (સામ્ભોગિક સાધુઓં કો આહારાદિ લાકર દેના) ઓર બ્રહ્મચર્યવાસ (બ્રહ્મચર્ય-પાલન) ઇસ દશ પ્રકાર કે યતિધર્મ મે જો કોઈ અતિચાર કિયા ગયા હો તો ડસસે મેં નિવૃત્ત હોતા હૂં ॥ સૂ. ૯ ॥

ઉપાસકોં (શ્રાવકોં) કી પ્રતિમાઈ (પ્રતિજ્ઞાવિશેષ) ગ્યારહ હોતી હેં, ડનમેં પહલી ‘દર્શનપ્રતિમા’ ઇક માસ કી, ઇસમેં ઇક માસ ઇકાન્તર ઉપવાસ ઓર શઙ્કાદિ દોષોં સે રહિત નિર્મલ સમકિત કા પાલન કિયા જાતા હૈ (૧) । દૂસરી ‘વ્રતપ્રતિમા’ દો માસ કી હોતી હૈ, ઇસમેં પૂર્વક્રિયા સહિત દો મહીને તક દો દો ઉપવાસ

(લોભનો ત્યાગ) આજ્ઞવ (માયાનો ત્યાગ) માર્દવ (માનનો ત્યાગ) લાઘવ (દ્રવ્ય ભાવથી હળવાપણુ), સત્ય, સયમ, તપ, ત્યાગ (સામ્ભોગિક સાધુઓને આહાર વિગેરે લાવી દેવો), અને બ્રહ્મચર્યવાસ (બ્રહ્મચર્યપાલન) આ દશ પ્રકારના યતિધર્મમા જે કોઈ અતિચાર કર્યો હોય તો તેમાથી હું નિવૃત્ત થાઉ છું (સૂ. ૯)

ઉપાસકો (શ્રાવકો) ની પ્રતિમાઓ (પ્રતિજ્ઞાવિશેષ) અગિયાર હોય છે એમા પહેલી ‘દર્શનપ્રતિમા’ એક માસની, એમા એક માસ એકાન્તર ઉપવાસ અને શઙ્કાદિ દોષોથી રહિત નિર્મલ સમકિતનું પાલન કરાય છે (૧) બીજી ‘વ્રત પ્રતિમા’ બે માસની હોય છે એમા પૂર્વ ક્રિયા સહિત બે મહિના સુધી બખ્ખે ઉપવાસના પારણાપૂર્વક વ્રત પ્રત્યાખ્યાન નિર્મળ પાળવામા આવે છે (૨) ત્રીજી

कथा=स्त्रीसम्बन्धिनी, स्त्रिया सहैकान्ते वा वार्ता, तत्परिहारो द्वितीया (२)।
 निपद्या=पूर्वमुपविष्टाना पश्चादुत्थिताना स्त्रीणामासने तदुत्थानोत्तर होराद्वयाभ्यन्तरे
 समुपवेशस्तत्परिहारः (३)। इन्द्रियम्=इन्द्रियावलोकन=स्त्रीणामङ्गोपाङ्गनिरीक्षण,
 तत्परिहारः (४)। कुड्यान्तर=भित्त्यादिव्यवहिताना स्त्रीणा सम्मोहकमधुर
 ध्वन्याघातकर्णन तत्परिहारः (५)। 'पूर्वक्रीडा'=दीक्षाग्रहणात्पूर्वं ससारावस्थाया
 स्त्रिया सह कृतस्य क्रीडादेः स्मरण, तत्परिहारः (६), प्रणीत=निष्यन्दमान
 घृतादिनिन्दु, ततोऽन्यदपि वा धातूपबृहक भोज्यवस्तु तत्परिहारः (७),
 अतिमात्राऽऽहारः=परिमाणाधिकभोजन, तत्परिहारः (८), विभूषण=स्नानादिना
 शरीरसस्कारस्तत्परिहारः (९)। 'दसविहे' दश विधाः=प्रकारा यस्य स तथा
 तस्मिन् 'समणधम्मे' श्रमणधर्मे, 'यो मयाऽतिचारः कृत'-इत्यादिसम्बन्धो

वार्ता का त्याग, (३) निपद्या-जहाँ पहले स्त्री बैठी हो उस स्थान
 पर स्त्री के उठ जाने पर दो घड़ी के भीतर उस स्थान पर उपवेशन
 (बैठने) आदि का त्याग, (४) इन्द्रिय-स्त्री के अङ्गोपाङ्ग के निरीक्षण
 का त्याग, (५) कुड्यान्तर-दीवार आदि की ओटमें स्त्री पुरुष के
 विषयोत्तेजक शब्द श्रवण का त्याग, (६) पूर्वक्रीडा-स्त्री के साथ
 पहले की हुई क्रीडा आदि के स्मरण का त्याग, (७) प्रणीत-प्रतिदिन
 सरस भोजन का त्याग, (८) अतिमात्राहार-प्रमाण से अधिक
 भोजन का त्याग, (९) विभूषा-शरीर की शुश्रूषा का त्याग, इन
 नौ ब्रह्मचर्यगुप्तियों (बाडों) द्वारा और क्षान्ति, मुक्ति (लोभ
 परित्याग), आर्जव (मायापरित्याग), मार्दव (मानपरित्याग), लाघव

पडेला स्त्री बैठी होय ते स्थान उपर स्त्री उठी गया जाह ते घडीनी अदर ते
 जग्या उपर भेसवा विगेरेने। त्याग, (४) इन्द्रिय-स्त्रीना अङ्ग-उपाङ्ग लेवाने।
 त्याग, (५) कुड्यान्तर-दीवाल आदिनी ओटमा स्त्रीपुरुषना विषयने उत्तेजन करे
 भेवा शुभ सावणवाने। त्याग, (६) पूर्वक्रीडा-स्त्रीनी साथे प्रथम करेली क्रीडा
 विगेरेना स्मरणने। त्याग, (७) प्रणीत-प्रतिदिन सरस लेवणने। त्याग, (८)
 अतिमात्राहार-प्रमाणथी वधारे भोराक आवाने। त्याग (९) विभूषा-शरीरनी
 शुश्रूषाने। त्याग, आ नव प्रवच्यर्थ शुक्तिभे। (बाडो) द्वारा अने क्षान्ति, मुक्ति

१ कुड्यस्य अन्तर=व्यवधान कुड्यान्तरम्, एतस्योपलक्षणत्वादुक्तोऽर्थः।

-कच्छत्व च ।-सप्तमी (७) -सप्तमासिकी-सचित्तपरित्यागप्रतिमा, तत्र सर्वथा सचित्तवस्तुपरित्यागः । अष्टमी (८) अष्टमासिकी आरम्भपरित्यागप्रतिमा, तत्र स्वहस्तेनारम्भपरित्यागः । नवमी (९) नवमासिकी-प्रेष्यारम्भपरित्यागप्रतिमा, तत्र अन्यद्वाराप्यारम्भपरित्यागः । दशमी (१०) दशमासिकी उद्दिष्टभक्तपरित्याग-प्रतिमा, तत्र स्वोद्दिष्टभक्तपरित्यागः । अत्र स्थितेन श्रावकेण क्षुरमुण्डितमुण्डेनाऽ-

छह छह उपवास का पारणापूर्वक अखण्ड ब्रह्मचर्य पालन किया जाता है तथा दोनों लागे खुली रखी जाती हैं (६) । सातवीं 'सचित्त-परित्यागप्रतिमा' सात मास की, इसमें सात मास तक सात सात उपवास का पारणा, और सर्वथा सचित्त वस्तु का त्याग किया जाता है (७) । आठवीं 'आरम्भपरित्यागप्रतिमा' आठ मास की, इसमें आठ मास तक आठ आठ उपवास का पारणा तथा स्वयं आरम्भ करने का त्याग किया जाता है (८) । नववीं 'प्रेष्यारम्भपरित्यागप्रतिमा' नौ मास की, इसमें नौ मास तक नौ २ उपवास का पारणा और दूसरे से भी आरम्भ कराने का परित्याग किया जाता है (९) । दसवीं 'उद्देश्यप्रतिमा' दस मास की, इसमें दस मास तक दस दस उपवास का पारणा तथा अपने उद्देश्य से बनाये गये आहारादि का परित्याग किया जाता है, इसमें स्थित श्रावक क्षुरमुण्डित अथवा अमुण्डित रह कर गृहसम्बन्धी किसी बात के पूछे जाने

पारणापूर्वक अखण्ड ब्रह्मचर्यनु पालन कराय छे तथा णने लागे खुली राभ्र वाभा आवे छे (६) सातमी 'सचित्तपरित्यागप्रतिमा' सात मासनी, जेमा सात मास सुधी सात सात उपवासना पारणा अने सर्वथा सचित्त वस्तुने त्याग कराय छे (७) आठमी 'आरम्भपरित्यागप्रतिमा' आठ मासनी, जेमा आठ मास सुधी आठ आठ उपवासना पारणा अने पोताना हाथे आरम्भ करवाने त्याग कराय छे (८) नवमी 'प्रेष्यारम्भपरित्यागप्रतिमा' नव मासनी, जेमा नव मास सुधी नव नव उपवासना पारणा अने भीक्षणी पणु आरम्भ कराववाने परित्याग कराय छे (९) दशमी 'उद्देश्यप्रतिमा' दश मासनी, जेमा दश मास सुधी दश दश उपवासना पारणा अने पोताना उद्देश्यी णनावाजेल आहारादिकने परित्याग कराय छे, जेमा रहेल श्रावक क्षुरमुण्डित अथवा अमुण्डित गृहीने घर

વ્રત-પ્રત્યાખ્યાનયોઃ પાલનમ્ । તૃતીયા (૩) ત્રૈમાસિકી સામાયિક-પ્રતિમા, તત્ર અતિચારવર્જનપૂર્વકમુખયોઃ કાલયોઃ સામાયિકાઽઽચરણમ્ । ચતુર્થો (૪) ચાતુર્માસિકી પૌષધપ્રતિમા, તત્ર અષ્ટમી-ચતુર્દશી-પૂર્ણિમાદિપર્વતિથિ પૂપવાસઃ । પશ્ચમી (૫) પશ્ચમાસિકી પ્રતિમા, તત્ર સ્નાન-રાત્રિભોજનવર્જન-કચ્છૈ કમોચન-દિવાબ્રહ્મચર્યપાલન - નક્તન્તત્પરિમાણકરણરૂપપશ્ચવિધમર્યાદાપાલનમ્ । પઠ્ઠી (૬) 'પાળ્માસિકી બ્રહ્મપ્રતિમા, તત્ર સર્વથા બ્રહ્મચર્યપાલનમ્-અવદ્વપરિધાન

કા પારણાપૂર્વક વ્રતપ્રત્યાખ્યાન નિર્મલ પાલા જાતા હૈ (૨) । ત્રીસરી 'સામાયિકપ્રતિમા' ત્રીન માસ કી, ઇસમેં ત્રીન માસ તક ત્રીન ત્રીન ઉપવાસ કા પારણા ક્રિયા જાતા હૈ, દોનોં કાલ અતિચાર રહિત સામાયિક કી જાતી હૈ (૩) । ચૌથી 'પૌષધપ્રતિમા' ચાર માસ કી, ઇસ મેં ચાર માસ તક ચાર ચાર ઉપવાસ કા પારણાપૂર્વક અષ્ટમી, ચતુર્દશી, પૂર્ણિમા આદિ પર્વ તિથિયોં મે પૌષધ ક્રિયા જાતા હૈ (૪) । પાંચવી 'પ્રતિમા' નામકી પ્રતિમા પાંચ માસ કી, ઇસમેં પાંચ માસ તક પાંચ પાંચ ઉપવાસ કા પારણાપૂર્વક પાંચ બોલોં કી મર્યાદા કી જાતી હૈ । વે પાંચ બોલ ઇસ પ્રકાર હૈં-(૧) સ્નાન ન કરના, (૨) રાત્રિભોજન ન કરના, (૩) એક લાંગ ખુલી રખના, (૪) દિન મેં મૈથુન કા સર્વથા ત્યાગ કરના, ઓર (૫) રાત્રિ મેં ડસકા પરિમાણ કરના, પરન્તુ પૌષધ-અવસ્થા મે સર્વથા ત્યાગ હી કરના (૫) । છઠી 'બ્રહ્મપ્રતિમા' છઠ માસ કી, ઇસમે છઠ મહીને તક

'સામાયિકપ્રતિમા' ત્રણ માસની એમા ત્રણ માસ સુધી ત્રણ ત્રણ ઉપવાસના પારણા કરાય છે અને વખત અતિચારરહિત સામાયિક કરાય છે (૩), એથી 'પૌષધ પ્રતિમા' ચાર માસની, એમા ચાર માસ સુધી ચાર ચાર ઉપવાસના પારણા અને આઠમ, ચૌદશ, પૂનમ, આદિ પર્વ તિથિયોમા પૌષધ કરાય છે (૪) પાંચમી 'પ્રતિમા' નામની પ્રતિમા પાંચ માસની, એમા (પાંચ માસ સુધી પાંચ પાંચ ઉપવાસના પારણાપૂર્વક નિમ્ન પાંચ બોલોની મર્યાદા કરાય છે તે પાંચ બોલ આ પ્રકારે છે-(૧) સ્નાન ન કરવું (૨) રાત્રિ ભોજન ન કરવું (૩) એક લાંગ ખુલી રાખવી (૪) દિવસે મૈથુનનો સર્વથા ત્યાગ કરવો અને (૫) રાત્રિમા એનો પરિમાણ કરવું, પરન્તુ પૌષધ અવસ્થામા સર્વથા ત્યાગજ કરવો (૫) છઠી 'બ્રહ્મપ્રતિમા' છ માસની, એમા છ માસ સુધી છ છ ઉપવાસના

કચ્છત્વ ચ ।-સપ્તમી (૭) -સપ્તમાસિકી-સચિત્તપરિત્યાગપ્રતિમા, તત્ર સર્વથા સચિત્તવસ્તુપરિત્યાગઃ । અષ્ટમી (૮) અષ્ટમાસિકી આરમ્ભપરિત્યાગપ્રતિમા, તત્ર સ્વદેહસ્તેનારમ્ભપરિત્યાગઃ । નવમી (૯) નવમાસિકી-પ્રેષ્યારમ્ભપરિત્યાગપ્રતિમા, તત્ર અન્યદ્વારાપ્યારમ્ભપરિત્યાગઃ । દશમી (૧૦) દશમાસિકી ઉદ્દિષ્ટભક્તપરિત્યાગપ્રતિમા, તત્ર સ્વોદ્દિષ્ટભક્તપરિત્યાગઃ । અત્ર સ્થિતેન શ્રાવકેણ કુરમુણ્ડિતમુળ્હેનાઽ-

છહ છહ ઉપવાસ કા પારણાપૂર્વક અલ્પઞ્ડ બ્રહ્મચર્ય પાલન કિયા જાતા હૈ તથા દોનો લાગે છુલી રહી જાતી હૈ (૬) । સાતવીં 'સચિત્ત-પરિત્યાગપ્રતિમા' સાત માસ કી, હસમેં માત માસ તક સાત માત ઉપવાસ કા પારણા, ઔર સર્વથા સચિત્ત વસ્તુ કા ત્યાગ કિયા જાતા હૈ (૭) । આઠવીં 'આરમ્ભપરિત્યાગપ્રતિમા' આઠ માસ કી, હસમેં આઠ માસ તક આઠ આઠ ઉપવાસ કા પારણા તથા સ્વય આરમ્ભ કરને કા ત્યાગ કિયા જાતા હૈ (૮) । નવવીં 'પ્રેષ્યારમ્ભપરિત્યાગપ્રતિમા' નૌ માસ કી, હસમે નૌ માસ તક નૌ ૨ ઉપવાસ કા પારણા ઔર દૂસરે સે ભી આરમ્ભ કરને કા પરિત્યાગ કિયા જાતા હૈ (૯) । -દસવીં 'ઉદ્દેશ્યપ્રતિમા' દસ માસ કી, હસમેં દસ માસ તક દસ દમ ઉપવાસ કા પારણા તથા અપને ઉદ્દેશ્ય સે વનાયે ગયે આહારાદિ કા પરિત્યાગ કિયા જાતા હૈ, હસમેં સ્થિત શ્રાવક કુરમુણ્ડિત અથવા અમુણ્ડિત રહ કર ગૃહસમ્બન્ધી કિસી વાત કે પૂઠે જાને

પાગણાપૂર્વક અલ્પ ઞ્ડ બ્રહ્મચર્ય પાલન કરાય છે તથા જાને લાગે છુલી રાખ વામા આવે છે (૬) સાતમી 'સચિત્તપરિત્યાગપ્રતિમા' સાત માસની, એમા સાત માસ સુધી સાત સાત ઉપવાસના પારણા અને સર્વથા સચિત્ત વસ્તુનો ત્યાગ કરાય છે (૮) આઠમી 'આરમ્ભપરિત્યાગપ્રતિમા' આઠ માસની, એમા આઠ માસ સુધી આઠ આઠ ઉપવાસના પારણા અને પોતાના હાથે આરમ્ભ કરવાનો ત્યાગ કરાય છે (૯) નવમી 'પ્રેષ્યારમ્ભપરિત્યાગપ્રતિમા' નવ માસની, એમા નવ માસ સુધી નવ નવ ઉપવાસના પારણા અને બીજાથી પણ આરમ્ભ કરાવવાનો પરિત્યાગ કરાય છે (૧૦) દશમી 'ઉદ્દેશ્યપ્રતિમા' દશ માસની, એમા દશ માસ સુધી દશ દશ ઉપવાસના પારણા અને પોતાના ઉદ્દેશથી જનાવાએલા આહારાદિકનો પરિત્યાગ કરાય છે, એમા રહેલ શ્રાવક કુરમુણ્ડિત અથવા અમુણ્ડિત ગ્રહીને ઘર

વ્રત-પ્રત્યાખ્યાનયોઃ પાલનમ્ । તૃતીયા (૩) ત્રૈમાસિકી સામાયિક પ્રતિમા, તત્ર અતિચારવર્જનપૂર્વકમુમયોઃ કાલયોઃ સામાયિકાઽઽચરણમ્ । ચતુર્થો (૪) ચાતુર્માસિકી પૌષધપ્રતિમા, તત્ર અષ્ટમી-ચતુર્દશી-પૂર્ણિમાદિપર્વતિથિ પૂપવાસઃ । પચ્ચમી (૫) પચ્ચમાસિકી પ્રતિમા, તત્ર સ્નાન-રાત્રિભોજનવર્જન-વચ્ચૈ કમોચન-દિવાવ્રહ્મચર્યપાલન - નક્તન્તત્પરિમાણકરણરૂપપચ્ચવિધમર્યાદાપાલનમ્ । ષષ્ઠી (૬) 'પાષ્ણમાસિકી વ્રહ્મપ્રતિમા, તત્ર સર્વથા વ્રહ્મચર્યપાલનમ્-અવદ્વપરિધાન

કા પારણાપૂર્વક વ્રતપ્રત્યાખ્યાન નિર્મલ પાલા જાતા હૈ (૨) । ત્રીસરી 'સામાયિકપ્રતિમા' ત્રીન માસ કી, હસમેં ત્રીન માસ તક ત્રીન ત્રીન ઉપવાસ કા પારણા કિયા જાતા હૈ, દોનોં કાલ અતિચાર રહિત સામાયિક કી જાતી હૈ (૩) । ચૌથી 'પૌષધપ્રતિમા' ચાર માસ કી, હસમેં ચાર માસ તક ચાર ચાર ઉપવાસ કા પારણાપૂર્વક અષ્ટમી, ચતુર્દશી, પૂર્ણિમા આદિ પર્વ તિથિયોં મેં પૌષધ કિયા જાતા હૈ (૪) । પાચવી 'પ્રતિમા' નામકી પ્રતિમા પાચ માસ કી, હસમેં પાચ માસ તક પાચ પાચ ઉપવાસ કા પારણાપૂર્વક પાચ બોલોં કી મર્યાદા કી જાતી હૈ । વે પાચ બોલ હસ પ્રકાર હૈં-(૧) સ્નાન ન કરના, (૨) રાત્રિભોજન ન કરના, (૩) એક લાંગ खुली રખના, (૪) દિન મેં મૈથુન કા સર્વથા ત્યાગ કરના, ઓર (૫) રાત્રિ મેં ડસકા પરિમાણ કરના, પરન્તુ પૌષધ-અવસ્થા મે સર્વથા ત્યાગ હી કરના (૫) । છઠી 'વ્રહ્મપ્રતિમા' છઠ માસ કી, હસમેં છઠ મહીને તક

'સામાયિકપ્રતિમા' ત્રણ માસની એમા ત્રણ માસ સુધી ત્રણ ત્રણ ઉપવાસના પારણા કરાય છે અને વખત અતિચારરહિત સામાયિક કરાય છે (૩), ચૌથી 'પૌષધ પ્રતિમા' ચાર માસની, એમા ચાર માસ સુધી ચાર ચાર ઉપવાસના પારણા અને આઠમ, ચૌદશ, પૂનમ, આદિ પર્વ તિથિયોમા પૌષધ કરાય છે (૪) પાચમી 'પ્રતિમા' નામની પ્રતિમા પાચ માસની, એમા (પાચ માસ સુધી પાચ પાચ ઉપવાસના પારણાપૂર્વક) નિમ્ન પાચ બોલોની મર્યાદા કરાય છે તે પાચ બોલ આ પ્રકારે છે-(૧) સ્નાન ન કરવું (૨) રાત્રિ ભોજન ન કરવું (૩) એક લાંગ खुली રાખવી (૪) દિવસે મૈથુનનો સર્વથા ત્યાગ કરવો અને (૫) રાત્રિમા એનો પરિમાણ કરવું, પરન્તુ પૌષધ અવસ્થામા સર્વથા ત્યાગજ કરવો (૫) છઠી 'વ્રહ્મપ્રતિમા' છ માસની, એમા (છ માસ સુધી છ છ ઉપવાસના

-કચ્છત્વ ચ ।-સપ્તમી (૭) -સપ્તમાસિકી-સચિત્તપરિત્યાગપ્રતિમા, તત્ર સર્વથા સચિત્તવસ્તુપરિત્યાગઃ । અષ્ટમી (૮) અષ્ટમાસિકી આરમ્ભપરિત્યાગપ્રતિમા, તત્ર સ્વહસ્તેનારમ્ભપરિત્યાગઃ । નવમી (૯) નવમાસિકી-પ્રેષ્યારમ્ભપરિત્યાગપ્રતિમા, તત્ર અન્યદ્વારાપ્યારમ્ભપરિત્યાગઃ । દશમી (૧૦) દશમાસિકી ઉદ્દિષ્ટમક્તપરિત્યાગપ્રતિમા, તત્ર સ્વોદ્દિષ્ટમક્તપરિત્યાગઃ । અત્ર સ્થિતેન શ્રાવકેણ ક્ષુરમુણ્ડિતમુળ્હેનાઽ-

છહ છહ ઉપવાસ કા પારણાપૂર્વક અલ્પઢ બ્રહ્મચર્ય પાલન કિયા જાતા હૈ તથા દોનોં લાગે છુલી રહી જાતી હૈં (૬) । સાતવીં 'સચિત્ત-પરિત્યાગપ્રતિમા' સાત માસ કી, ડસમેં સાત માસ તક સાત સાત ઉપવાસ કા પારણા, ઔર સર્વથા સચિત્ત વસ્તુ કા ત્યાગ કિયા જાતા હૈ (૭) । આઠવીં 'આરમ્ભપરિત્યાગપ્રતિમા' આઠ માસ કી, ડસમેં આઠ માસ તક આઠ આઠ ઉપવાસ કા પારણા તથા સ્વય આરમ્ભ કરને કા ત્યાગ કિયા જાતા હૈ (૮) । નવવી 'પ્રેષ્યારમ્ભપરિત્યાગપ્રતિમા' નૌ માસ કી, ડસમે નૌ માસ તક નૌ ૨ ઉપવાસ કા પારણા ઔર દૂસરે સે ભી આરમ્ભ કરાને કા પરિત્યાગ કિયા જાતા હૈ (૯) । દસવી 'ઉદ્દેશ્યપ્રતિમા' દસ માસ કી, ડસમેં દસ માસ તક દસ દસ ઉપવાસ કા પારણા તથા અપને ઉદ્દેશ્ય સે વનાયે ગયે આહારાદિ કા પરિત્યાગ કિયા જાતા હૈ, ડસમેં સ્થિત શ્રાવક ક્ષુરમુણ્ડિત અથવા અમુણ્ડિત રહ કર ગૃહસમ્યન્ધી કિસી ગત કે પૂછે જાને

પારણાપૂર્વક અખંડ બ્રહ્મચર્યનુ પાલન કરાય છે તથા બને લાગે છુલી રાખવામા આવે છે (૬) સાતમી 'સચિત્તપરિત્યાગપ્રતિમા' સાત માસની, એમા સાત માસ સુધી સાત સાત ઉપવાસના પારણા અને સર્વથા સચિત્ત વસ્તુને ત્યાગ કરાય છે (૮) આઠમી 'આરમ્ભપરિત્યાગપ્રતિમા' આઠ માસની, એમા આઠ માસ સુધી આઠ આઠ ઉપવાસના પારણા અને પોતાના હાથે આરમ્ભ કરવાને ત્યાગ કરાય છે (૯) નવમી 'પ્રેષ્યારમ્ભપરિત્યાગપ્રતિમા' નવ માસની, એમા નવ માસ સુધી નવ નવ ઉપવાસના પારણા અને બીજાથી પણ આરમ્ભ કરાવવાને પરિત્યાગ કરાય છે (૧૦) દશમી 'ઉદ્દેશ્યપ્રતિમા' દશ માસની, એમા દશ માસ સુધી દશ દશ ઉપવાસના પારણા અને પોતાના ઉદ્દેશથી બનાવાએલા આહારાદિકને પરિત્યાગ કરાય છે, એમા રહેલ શ્રાવક ક્ષુરમુણ્ડિત અથવા અમુણ્ડિત ગૃહીને ઘર

વ્રત-પ્રત્યાખ્યાનયોઃ પાલનમ્ । તૃતીયા (૩) ત્રેમાસિકી સામાયિક પ્રતિમા, તત્ર અતિચારવર્જનપૂર્વકમુખયોઃ કાલયોઃ સામાયિકાઽઽચરણમ્ । ચતુર્થો (૪) ચાતુર્માસિકી પૌષધપ્રતિમા, તત્ર અષ્ટમી-ચતુર્દશી-પૂર્ણિમાદિપર્વતિથિ પૂષવાસઃ । પચ્ચમી (૫) પચ્ચમાસિકી પ્રતિમા, તત્ર સ્નાન-રાત્રિભોજનવર્જન-વચ્ચૈ કમોચન-દિવાબ્રહ્મચર્યપાલન - નક્તન્તત્પરિમાણકરણરૂપપચ્ચવિધમર્યાદાપાલનમ્ । ષષ્ઠી (૬) 'પાષ્ણમાસિકી બ્રહ્મપ્રતિમા, તત્ર સર્વથા બ્રહ્મચર્યપાલનમ્-અવદ્રપરિધાન

કા પારણાપૂર્વક વ્રતપ્રત્યાખ્યાન નિર્મલ પાલા જાતા હૈ (૨) । ત્રીસરી 'સામાયિકપ્રતિમા' ત્રીન માસ કી, ઇસમેં ત્રીન માસ તક ત્રીન ત્રીન ઉપવાસ કા પારણા ક્રિયા જાતા હૈ, દોનોં કાલ અતિચાર રહિત સામાયિક કી જાતી હૈ (૩) । ચૌથી 'પૌષધપ્રતિમા' ચાર માસ કી, ઇસ મેં ચાર માસ તક ચાર ચાર ઉપવાસ કા પારણાપૂર્વક અષ્ટમી, ચતુર્દશી, પૂર્ણિમા આદિ પર્વ તિથિયોં મે પૌષધ ક્રિયા જાતા હૈ (૪) । પાચવી 'પ્રતિમા' નામકી પ્રતિમા પાંચ માસ કી, ઇસમેં પાચ માસ તક પાચ પાચ ઉપવાસ કા પારણાપૂર્વક પાંચ બોલોં કી મર્યાદા કી જાતી હૈ । વે પાચ બોલ ઇસ પ્રકાર હૈં-(૧) સ્નાન ન કરના, (૨) રાત્રિભોજન ન કરના, (૩) એક લાંગ खुली રખના, (૪) દિન મેં મૈથુન કા સર્વથા ત્યાગ કરના, ઓર (૫) રાત્રિ મેં ડસકા પરિમાણ કરના, પરન્તુ પૌષધ-અવસ્થા મે સર્વથા ત્યાગ હી કરના (૫) । છઠી 'બ્રહ્મપ્રતિમા' છઠ માસ કી, ઇસમે છઠ મહીને તક

'સામાયિકપ્રતિમા' ત્રણ માસની એમા ત્રણ માસ સુધી ત્રણ ત્રણ ઉપવાસના પારણા કરાય છે અને વખત અતિચારરહિત સામાયિક કરાય છે (૩), ચૌથી 'પૌષધ પ્રતિમા' ચાર માસની, એમા ચાર માસ સુધી ચાર ચાર ઉપવાસના પારણા અને આઠમ, ચૌદશ, પૂનમ, આદિ પર્વ તિથિયોમા પૌષધ કરાય છે (૪) પાચમી 'પ્રતિમા' નામની પ્રતિમા પાચ માસની, એમા (પાચ માસ સુધી પાચ પાચ ઉપવાસના પારણાપૂર્વક નિર્મલ પાચ બોલોની મર્યાદા કરાય છે તે પાચ બોલ આ પ્રકારે છે-(૧) સ્નાન ન કરવું (૨) રાત્રિ ભોજન ન કરવું (૩) એક લાંગ खुली રાખવી (૪) દિવસે મૈથુનનો સર્વથા ત્યાગ કરવો અને (૫) રાત્રિમા એનો પરિમાણ કરવું, પરંતુ પૌષધ અવસ્થામા સર્વથા ત્યાગજ કરવો (૬) છઠી 'બ્રહ્મપ્રતિમા' છ માસની, એમા છ માસ સુધી છ છ ઉપવાસના

ભિશુ (સાધુ) ની બાર પ્રતિમાઓ (પ્રતિજ્ઞાવિશેષ) હોય છે પહેલી એક માસની, બીજી બે માસની, ચતુર્થ સાતમી સાત માસની ભિશુપ્રતિમા પહેલી પ્રતિમામા નિર્લેપ એક દત્તિ અન્નની એક દત્તિ પાણીની લેવાય છે અખરિત એકધાગથી એક વખત જેટલો આહાર પાણી પાત્રમા પડે તેટલોજ લેવાય છે (૧) એજ પદ્ધતિ દરમિયાન સાતમી પ્રતિમામા સાત દત્તિ અન્નની અને

मुण्डितेन वा गृहसम्बन्धे कैश्चित्किञ्चित्पृष्ठे सति तदज्ञाने 'वेद्मी'—ति तदज्ञाने 'न वेद्मीति च निगदता भाव्यम् । एकादशी (११) एकादशमासिकी-श्रमणभूत प्रतिमा, तत्र तेन शिखावर्जं कृतलुञ्चनेन क्षुरमुण्डितेन वा साधुवेषधारिणा ईर्या समित्यादिकमखिल साधुधर्ममनुपालयता धृतनिर्वस्त्ररजोहरणदण्डेन स्वजाति मात्रत एव पालितभिक्षाग्रहणत्रतेन भिक्षायै गृहप्रवेशवेलाया 'श्रमणोपासकाय प्रतिपन्नाय भिक्षा देया'—इति भाषितव्यम्, 'कस्त्व'—मिति केनापि पृष्ठे सति 'श्रमणोपासकोऽहम्,—इति द्युयता भवितव्यम् । आस्वेकादशसु प्रतिमासु यथोत्तर पूर्वपूर्वप्रतिमागतगुणसम्बन्धो बोध्यः ॥ सू० १० ॥

पर जानता हो तो कहे कि 'जानता हूँ' और नहीं जानता हो तो ऐसा कहे 'नहीं जानता हूँ' (१०) । ग्यारहवीं 'श्रमणभूत (साधु समान) प्रतिमा' ग्यारह मास की, इस में ग्यारह महीने तक ग्यारह २ उपवास का पारणा किया-जाता है, इस में स्थित श्रावक शक्ति हो तो लोच करे, नहीं तो मुण्डन करे, शिखा रखे, ईर्यासमिति आदि समस्त साधुधर्मों का पालन करता हुआ उघाड़ी (खुली हुई) दाड़ी का रजोहरण लिये हुए, केवल अपनी जाति में गोचरी करे और गोचरी के लिये किसी के घरमें प्रवेश करते समय बोले कि—'प्रतिमाधारी श्रमणोपासक को भिक्षा दो ।' यदि कोई पूछे कि—'तुम कौन हो ?' तो कहे कि 'मैं प्रतिमाधारी श्रावक हूँ साधु नहीं' (१) । इन ग्यारह प्रतिमाओं में पहली पहली

सप्तमी केाँध बात पूछवामा अ वे तो न्नायुता होय तो कहे के हु न्नायु छु, नहि न्नायुता होय तो कहे के ॥थी न्नायुतो, (११) अगियारमी 'श्रमणभूत—(साधुसमान) प्रतिमा' अगियार मासनी, अेमा अगियार मास सुधी अगियार अगियार उप वासना पारणा कराय छे अेमा स्थित श्रावक शक्ति होय तो होय करे, नहि तो मु डन करे, ओटली राखे, ईर्यासमिति आदि सर्व साधुधर्मोंनु पालन करता यका उघाड़ी दाड़ीनु रनेडुरयु लधने केवण पोतानी न्नातिमान् गोचरी करे अने गोचरी भाटे केाँधना घरमा प्रवेश करती वभते बोले के 'प्रतिमाधारी श्रमणोपासकने भिक्षा आपो' ने केाँध पूछे के—'तमे केाँध छे ?' तो कहेवु के 'हु प्रतिमाधारी श्रावक छु, साधु नहीं' आ अगियार प्रतिमाअेमा पडेली पडेली प्रतिमाना शुषु उत्तर-उत्तर प्रति

॥ મૂલમ ॥

વારસહિ ભિક્ષુપણિમાહિ ॥ સૂ૦ ૧૧ ॥

॥ ઝાયા ॥

દ્વાદશભિર્ભિક્ષુપ્રતિમાભિઃ ॥ સૂ૦ ૧૧ ॥

॥ ટીકા ॥

દ્વાદશભિર્ભિક્ષુપ્રતિમાભિઃ-ભિક્ષુણા પ્રતિમા. ભિક્ષુપ્રતિમાસ્તાભિર્યોઽતિચારઃ કૃત્ત્વમ્-ઇત્યાદિસમ્બન્ધઃ પ્રાગ્વદેવ । તત્ર પ્રથમા માસિકી ભિક્ષોઃ પ્રતિમા, તસ્યામન્નસ્ય જલસ્ય ચૈકૈઃ દત્તિર્ગ્રાહ્યા, દત્તિશ્ચ હસ્તપાત્રાદિતો નિરવચ્છિન્ન-ધારારૂપેણ પતિતા ભિક્ષા ગૃહ્યતે, ધારાવિચ્છેદેન તુ મિત્રમાત્રપાત્રેઽપિ દત્તિ-ભેદઃ । એવ દ્વેમાસિકી-ત્રેમાસિકી-ચાતુર્માસિકી-પાશ્વમાસિકી-પાઞ્માસિકી-સપ્ત-માસિકીષુ ક્રમેણાઽન્ન-જલયોર્દત્તિદ્વય-ત્રય-ચતુષ્ટય-પશ્ચતય-ષટ્-સપ્તકાનિ ગૃહ્યન્તે ઇતિ સ્વયમ્મૂહનીયમ્ । અષ્ટમી પ્રતિમા સપ્તાહોરાત્રિકી, તત્ર ચતુર્વિંશાઽઽ-

પ્રતિમા કે ગુણ ઉત્તર ઉત્તર પ્રતિમામેં સમજાને ચાહિયેં । ઇનમેં પ્રરૂપણા આદિ દ્વારા જો કોઈ અતિચાર લગા હો તો ઉસસે મેં નિવૃત્ત હોતા જૈ ॥સૂ૦ ૧૦॥

ભિક્ષુ (સાધુ) કી વારહ પ્રતિમાઈ (પ્રતિજ્ઞાવિશેષ) હોતી હૈં । પહલી એક માસકી, યાવત્ સાતવીં સાતમાસકી ભિક્ષુપ્રતિમા । પહલી પ્રતિમામે નિર્લેપ એક દત્તિ અન્નકી એક દત્તિ પાની કી લી જાતી હૈં । અસ્વણિહત એક ધારા સે એક ચાર જિતના આહારપાની પાત્ર મેં ગિરે ઉત્તના હી ઉપભોગ મેં લે ૧ । ઇસી પ્રકાર ક્રમસે સાતવીં પ્રતિમામેં સાત દત્તિ અન્ન ઓર સાત દત્તિ પાની કી લી

મામા સમજવા બેધએ એમા પ્રરૂપણા આદિ દ્વારા જે બેધ અતિચાર લાગ્યા હોય તો તેમાથી હું નિવૃત્ત થાઉં છું (સૂ૦ ૧૦)

ભિક્ષુ (સાધુ) ની વાર પ્રતિમાઓ (પ્રતિજ્ઞાવિશેષ) હોય છે પહેલી એક માસની, બીજી જે માસની, યાવત્ સાતમી સાત માસની ભિક્ષુપ્રતિમા પહેલી પ્રતિમામા નિર્લેપ એક દત્તિ અન્નની એક દત્તિ પાણીની લેવાય છે અપહિત એકધારાથી એક વખત જેટલો આહાર પાણી પાત્રમા પડે તેટલોજ ઉપભોગમા લેયે (૧) એજ પ્રકારે ક્રમથી સાતમી પ્રતિમામા માત્ર દત્તિ અન્નની અને

मुण्डितेन वा गृहसम्बन्धे कैथितिकृत्विष्टपृष्ठे सति तदज्ञाने 'वेद्मी'—ति तदज्ञाने 'न वेद्मीति च निगदता भाव्यम् । एकादशी (११) एकादशमासिकी-श्रमणभूत प्रतिमा, तत्र तेन शिखावर्ज कृतलुञ्चनेन क्षुरमुण्डितेन वा साधुवेषधारिणा ईर्या समित्यादिकमखिल साधुधर्ममनुपालयता धृतनिर्वस्त्ररजोहरणदण्डेन स्वजाति मात्रत एव पालितभिक्षाग्रहणव्रतेन भिक्षायै गृहप्रवेशवेलाया 'श्रमणोपासकाय प्रतिपन्नाय भिक्षा देया'—इति भाषितव्यम्, 'कस्त्व'—मिति केनापि पृष्ठे सति 'श्रमणोपासकोऽहम्,—इति द्रुता भवितव्यम् । आस्वेकादशसु प्रतिमासु यथोत्तर पूर्वपूर्वप्रतिमागतगुणसम्बन्धो बोध्यः ॥ सू० १० ॥

पर जानता हो तो कहे कि 'जानता हूँ' और नहीं जानता हो तो ऐसा कहे 'नहीं जानता हूँ' (१०) । ग्यारहवीं 'श्रमणभूत (साधु समान) प्रतिमा' ग्यारह मास की, इस में ग्यारह महीने तक ग्यारह २ उपवास का पारणा किया जाता है, इस में स्थित श्रावक शक्ति हो तो लोच करे, नहीं तो मुण्डन करे, शिखा रखे, ईर्यासमिति आदि समस्त साधुधर्मों का पालन करता हुआ उघाड़ी (खुली हुई) दाड़ी का रजोहरण लिये हुए केवल अपनी जाति में गोचरी करे और गोचरी के लिये किसी के घरमें प्रवेश करते समय बोले कि—'प्रतिमाधारी श्रमणोपासक को भिक्षा दो।' यदि कोई पूछे कि—'तुम कौन हो?' तो कहे कि 'मैं प्रतिमाधारी श्रावक हूँ साधु नहीं' (१) । इन ग्यारह प्रतिमाओं में पहली पहली

सण धी डेअ वात पूछवामा आवे तो जाणुता डोय तो कडे डे हु जाणु छु, नहि जाणुता डोय तो कडे डे नथी जाणुतो, (११) अगियारमी 'श्रमणभूत—(साधुसमान) प्रतिमा' अगियार मासनी, ओमा अगियार मास सुधी अगियार अगियार उप वासना पारणु कराय छे ओमा स्थित श्रावक शक्ति डोय तो लोच करे, नहि तो मुण्डन करे, ओटली राओ, ईर्यासमिति आदि सर्व साधुधर्मोंनु पालन करता थका उघाड़ी दाड़ीनु रजोहरण लधने डेवण पोतानी जातिमान गोचरी करे अने गोचरी भाटे डेअना घरमा प्रवेश करती वणते ओले डे 'प्रतिमाधारी श्रमणोपासकने भिक्षा आयो' ओ डेअ पूछे डे—'तमे डोय छो?' तो कडेवु डे 'हु प्रतिमाधारी श्रावक छु, साधु नथी' आ अगियार प्रतिमाओमा पडेली पडेली प्रतिमाना शुषु उत्तर उत्तर प्रति

‘वीरासन’-निरालम्बेऽपि सिंहासनोपविष्टवृद्धन्यस्तचरण मुक्तजानुकमुपवेशनम्,
 ‘गोदोहिकासन’-गोदोहिकावत् = गोदोहनवदासनमर्थात्-यथा गोदोहसो
 गोदोहनवेलायामास्ते तद्वत्पादाग्रतलाभ्यामवस्थानम्, ‘आम्रकुब्जकासनम्’-आम्र-
 वत्कुब्जमासनम् । आस्वष्टम्यादिदशम्यन्तप्रतिमासु प्रतिप्रतिममुक्तानामासनाना-
 मन्यतमाऽवलम्बनेनासितव्यमिति तात्पर्यम् । एकादशी प्रतिमा त्वेकाहोरात्रसा-
 ध्या, तस्या चतुर्विधाऽऽहारपरित्यागपूर्वक दिनद्वयोपवासो ग्रामाद्वहिर्गत्वा
 कायोत्सर्गश्च कर्तव्यः ।

अथैकदिनमात्रसाध्या द्वादशी प्रतिमा, तस्या चतुर्विधाऽऽहारपरि-
 त्यागपूर्वक दिनत्रयमुपोष्य तृतीयस्मिन् दिने ग्रामाद्वहिः श्मशानस्थान गत्वा
 पुद्गलस्यैकस्योपरि दृष्टिदानेन कायोत्सर्गः कर्तव्यः, तदानीं च तत्र देव-मनुष्य-
 विना सहारे स्थिर रहना), गोदोहासन (गोदोहनकी तरह पैरो के
 अग्रभाग और तल भाग के सहारे बैठना) और आम्रकुब्जकासन
 (आम्रफलकी तरह कूबडा हो कर स्थिर रहना), इनमें कोई भी
 एक आसन किया जाता है १० ।

ग्यारहवी प्रतिमा केवल एक दिन की होती है, इसमें चउ-
 विहार वेला किया जाता है और गाम के बाहर काउसग किया
 जाता है ११ । बाहरवी प्रतिमा एक दिन की होती है, इसमें
 चउविहार तेला किया जाता है, तेला के दिन गाम से बाहर
 श्मशान भूमिमे जा कर किसी एक पुद्गल पर दृष्टि स्थिर करके
 कायोत्सर्ग किया जाता है । उस समय होने वाले देव-मनुष्य और

विना स्थिर रहें, गोदोहासन-गाय होता होधये तेवी रीते पगना आगला
 लाग अने तल लागना आश्रये भेसवु, अने आम्रकुब्जकासन (आम्रकुब्जकी
 जेभ कूणडा धरने स्थिर रहें) आमाथी कोध पणु ओक आसन कराय ठे (१०)

अगियारमी प्रतिमा इकत ओक दिवसनी होय छे ओभा ओविहार छठ कराय
 छे अने गामनी णहार काउसग कराय छे (११) बारमी प्रतिमा ओक दिवसनी
 होय छे ओभा ओविहार अठम कराय छे अठमना दिवसे गामनी णहार श्मशान
 भूमिमा जधने कोध ओक पुद्गल उपर दृष्टि स्थिर करीने कायोत्सर्ग कराय छे
 ओ वणते थवावाणा देव मनुष्य अने तियंथ सणधी उत्कृष्ट कासर्ग ले सहुन

હારપરિત્યાગપૂર્વકૈકાન્તરોપવાસસેવન ગ્રામાદ્રઢિઃ કાયોત્સર્ગ ચ કુર્યાત્, ઉત્તાન ઇકપાર્શ્વો વા શયીત, પલ્પદ્ધાડસનેન યાડસીત। ઇવ નવમી દશમ્યાવપિ પ્રતિમે સપ્તસપ્તાહોરાત્રસામ્યે, તયોસ્તપશ્વરણમષ્ટમીવદેઃ કેવલ્માસનભેદઃ, તત્ર નવમ્યા દણ્ડાસન-લગણ્ડાસનો-ત્કુદુકામનરૂપાણિ ત્રીણ્યાસનાનિ, તેષુ દણ્ડાસનં નામ-પાદાગ્રાદિપસારણેન દણ્ડવત્પતનરૂપમ્ । લગણ્ડ=વક્રકાષ્ઠ, તદ્વત્ અર્થાન્મસ્તકપાણ્ય્યાદિભાગાના ભૂમિસમ્યન્ત્રેન પૃષ્ઠસ્ય ચ તદસમ્યન્ત્રેન યદાસન તલ્લગણ્ડાસનમ્ । ઉત્કુદુકાસન નામ-પુતસ્ય (શ્રોણિભાગસ્ય) અલગને નોપવેશનમ્ । દશમ્યા વીરાસન-ગોદોદ્ધિકામના-ડડમ્રકુન્જકાસનાનિ, તત્ર

જાતી છે ! આઠવી પ્રતિમા સાત અહોરાત્ર કી છે, ડસમેં ઇકાન્તર ચઢવિહાર ઉપવાસ ઓર ગામ સે વાહર કાયોત્સર્ગ કિયા જાતા છે । તથા ઉત્તાનાસન (ચિત્ત સોના), ઇકપાર્શ્વાસન (ઇક પસવાડે સે સોના) ઓર પર્યકાસન, ઇન ત્રીન આસનોમે સે કોઈ મી ઇક આસન કિયા જાતા છે । ઇસી પ્રકાર નવમી ઓર દશવી પ્રતિમાઈ આઠવી કે સમાન હૈં, કિન્તુ નવવી મે દણ્ડાસન (દડકે પડને કી તરહ પગ પસાર કર સોના), લગણ્ડાસન (મસ્તક ઓર ણ્ડિયોં કો ભૂમિ પર લગા કર પીઠ કો અધર રખના), ઉત્કુદુકાસન-પૂતિભાગ-બૈઠકકો જમીન પર નહી લગા કર ઝકઢૂં બૈઠના યાની દો પૈરોં કે ઝપર હી બૈઠના । તથા દસવીં મેં વીરાસન (પૃથ્વી પર પૈર રખ કર સિંહાસન પર બૈઠે હુઇ કે સમાન, ઘુટને અલગ ર રખ કર

સાત દત્તિ પાણીની લેવાય છે આઠમી પ્રતિમા સાત અહોરાત્રિની છે એમા એકાતર ચોવિહાર ઉપવાસ, અને ગામથી બહાર કાયોત્સર્ગ કરાય છે, તથા ઉત્તાનાસન (ચિત્તા સુષુ), એકપાર્શ્વાસન (એક પડખે સુષુ), અને પર્યકાસન આ ત્રણ આસનોમાથી કોઇ પણ એક આસન કરાય છે એવી રીતે નવમી અને દશમી પ્રતિમા આઠમીના સમાન છે પરંતુ નવમીમા દડાસન (દડ-લાકડી પડેલ હોય તેમ પગ પસારીને સુષુ), લગડાસન (માથુ અને એડીઓને ભૂમિ ઉપર લગાના પીઠને અધર રાખવી), ઉત્કુદુકાસન-પૂતિભાગ-બૈઠકને જમીન પર ન લગાવીને ઉભડક બેસવું, અર્થાત્ બે પગ ઉપરજ બેસવું તથા દશમીમા વીરાસન-પૃથ્વી પર પગ રાખીને સિંહાસન ઉપર બેઠા હોય એવી રીતે ઘુટણ બુદા બુદા રાખીને આધાર

‘वीरासन’-निरालम्बेऽपि सिंहासनोपविष्टवृद्धन्यस्तचरण मुक्तजानुकमुपवेशनम्,
 ‘गोदोहिकासन’-गोदोहिकावत् = गोदोहनवदासनमर्थात्-यथा गोदोहका
 गोदोहनवेलायामास्ते तद्वत्पादाग्रतलाभ्यामवस्थानम्, ‘आम्रकुब्जकासनम्’-आम्र-
 वत्कुब्जमासनम् । आस्त्रष्टम्यादिदशम्यन्तप्रतिमासु प्रतिप्रतिममुक्तानामासनाना-
 मन्यतमाऽवलम्बनेनासितव्यमिति तात्पर्यम् । एकादशी प्रतिमा त्वेकाहोरात्रसा-
 ध्या, तस्या चतुर्विधाऽऽहारपरित्यागपूर्वक दिनद्वयोपवासो ग्रामाद्वहिर्गत्वा
 कायोत्सर्गश्च कर्तव्यः ।

अथैकदिनमात्रसाध्या द्वादशी प्रतिमा, तस्या चतुर्विधाऽऽहारपरि-
 त्यागपूर्वक दिनत्रयमुपोष्य तृतीयस्मिन् दिने ग्रामाद्वहिः श्मशानस्थान गत्वा
 पुद्गलस्यैकस्योपरि दृष्टिदानेन कायोत्सर्गः कर्तव्यः, तदानीं च तत्र देव-मनुष्य-
 विना सहारे स्थिर रहना), गोदोहासन (गोदोहनकी तरह पैरो के
 अग्रभाग और तल भाग के सहारे बैठना) और आम्रकुब्जकासन
 (आम्रफलकी तरह कूबडा हो कर स्थिर रहना), इनमें कोई भी
 एक आसन किया जाता है १० ।

ग्यारहवी प्रतिमा केवल एक दिन की होती है, इसमें चउ-
 विहार वेला किया जाता है और गाम के बाहर काउसग किया
 जाता है ११ । बाहरवी प्रतिमा एक दिन की होती है, इसमें
 चउविहार तेला किया जाता है, तेला के दिन गाम से बाहर
 श्मशान भूमिमें जा कर किसी एक पुद्गल पर दृष्टि स्थिर करके
 कायोत्सर्ग किया जाता है । उस समय होने वाले देव-मनुष्य और

विना स्थिर रहेवु, गोदोहासन-गाय होता होधये तेवी शीते पगना आगला
 साग अने तल लागना आश्रये भेसवु, अने आम्रकुब्जकासन (आम्रकुण्डी
 जेम कुण्डा धरने स्थिर रहेवु) आमाथी होध पणु अक आसन कराय ठे (१०)

अगियारमी प्रतिमा इकत अक दिवसनी होय छे अेमा येविहार छट्ट कराय
 छे अने गामनी णहार काउसग कराय छे (११) बारमी प्रतिमा अक दिवसनी
 होय छे अेमा येविहार अकृम कराय छे अकृमना दिवसे गामनी णहार श्मशान
 भूमिमा जधने होध अक पुद्गल उपर दृष्टि स्थिर करीने कायोत्सर्ग कराय छे
 अे वणते थवावाणा देव मनुष्य अने तियंय सणधी उत्कृष्ट कासर्ग ले सहुन

॥ मूलम् ॥

तेरसहि किरियाठाणेहि ॥ सू० १२ ॥

॥ ज्ञाया ॥

त्रयोदशभिः क्रियास्थानैः ॥ भू० १२ ॥

॥ टीका ॥

तिर्यच सम्बन्धी घोर उपसर्ग यदि सहन करले तो अवधि, मनःपर्यय, और केवलज्ञान मे से किसी एक की उत्पत्ति होती है, नहीं तो उन्मत्त (पागल), दीर्घकालिक दाहज्वरादि रोगों से पीडित और केवलिप्ररूपित धर्म से च्युत हो जाता है। इन बारह भिक्षु-प्रतिमाओं में न्यूनाधिक श्रद्धा-प्ररूपणा आदि द्वारा जो अतिचार किया हो तो उस से मैं निवृत्त होता हूँ ॥सू० ११॥

क्रियास्थान तेरह है—(१) अथेदण्ड (स्वप्रयोजन के लिये)

કરી લે તો અવધિ, મન પર્યાય અને કેવળ જ્ઞાનમાથી કેઈ એકની ઉત્પત્તિ થાય છે, નહિ તો ઉન્મત્ત (પાગલ), દીર્ઘકાલિક દાહજ્વરાદિક રોગોથી પીડિત અને કેવલિપ્રરૂપિત ધર્મથી પતિત થાય છે આ બાર ભિક્ષુપ્રતિમાઓમા ઓછી વધતી શ્રદ્ધા પ્રરૂપણા વિગેરે દ્વારા જે કેઈ અતિચાર લાગ્યા હોય તો તેમાથી હું નિવૃત્ત થાઉં છું (સૂ. ૧૧)

ક્રિયાસ્થાન તેર છે—(૧) અર્થદંડ (પોતાના પ્રયોજન માટે ક્રિયા કરવી)
(૨) અનર્થદંડ (કાગળ વિના ક્રિયા કરવી), (૩) હિંસાદંડ, (૪) અકસ્માતદંડ

ऽनर्थदण्डः=सावयक्रियाऽनुष्ठानम् (२) हिंसैव दण्डः=हिंसादण्डः=प्राणाति-
पातस्वरूपः (३) । अकस्मात्=अन्यक्रिययाऽन्यदीयव्यापादनरूपो दण्डः=अक-
स्मादण्डः (४) । दृष्टेः=नेत्रस्य विपर्यास-दर्शनविभ्रान्ति=रज्ज्वादिषु सर्पादि-
बुद्धि-दृष्टिविपर्यासः, स चासौ दण्डश्च दृष्टिविपर्यासदण्डः-वाणादिना लोष्टा-
दिभ्रान्त्या तित्तिरिचटकादीना विहिंसनम् (५) । सद्भूतनिह्नवपूर्वका-ऽसद्भू-
तसमारोपणनिमित्तो मृपात्रादप्रात्ययिकः, 'मोसवत्तिण्' इति पुम्त्व तु
दण्डविशेषणत्वाभिप्रायेण, एवमेवाग्रेऽपि (६) । अदत्तस्य=स्वाम्यादिभिरवि-
तीर्णस्य परकीयस्येति यावत् आदान=ग्रहणमदत्तादान=चौर्यप्रकारस्तन्नि-
मित्तः (७) । आत्मनीत्यभ्यात्म, तत्प्रात्ययिकोऽध्यात्मप्रात्ययिकः=स्वात्मनि-
मित्तको दण्डः, यतो दुःखभावो जनो निर्हेतुकमेव क्षतसकल्पश्चिन्तासन्तान-
समाक्रान्तस्वान्तो नितान्त 'दूनान्तस्तिष्ठति' (८) । जाति-कुल-उलरूपादि-
मदस्थानाष्टकाऽऽवेष्टितहृदयस्य परनीचत्वावलोकितो योऽभिमानमूलको दण्डः
स मानप्रात्ययिकः (९) । मित्रकर्मकसन्तापजो दोषो मित्रदोषो मातृ-पितृ-
प्रभृतीनामल्पीयसाऽप्यपराधेनोग्रतमस्वरूपधारणया महाऽऽधिजनकचेष्टाविशेष-
रूपस्तन्निमित्तको दण्डो मित्रदोषप्रात्ययिकः (१०) । माया=परप्रतारणोपाय-

क्रिया करना), (२) अनर्थदण्ड (विना प्रयोजन क्रिया करना), (३)
हिंसादण्ड, (४) अकस्मादण्ड (एकको मारते बीचमें दूसरे का मारा
जाना), (५) दृष्टिविपर्यासदण्ड (पत्थर समझकर तीतर, चटका
आदि का मारा जाना), (६) मृपाप्रात्ययिक (असत्य से लगने वाला
पाप), (७) अदत्तादानप्रात्ययिक, (८) अध्यात्मप्रात्ययिक (जिससे
मनुष्य स्वयं निष्कारण चिन्ता करे), (९) मानप्रात्ययिक, (१०)

(जोकने मारता वयभा भीमनी हिंसा थी), (५) दृष्टिविपर्यासदण्ड (पत्थर
समझने तेतर अकली आदिनी हिंसा थी), (६) मृपाप्रात्ययिक (असत्यथी
लागवावाणु पाप), (७) अदत्तादानप्रात्ययिक, (८) अध्यात्मप्रात्ययिक (जेथी
भाष्यस पोते नकाभी र्थिता करे), (९) मानप्रात्ययिक, (१०) मित्रदोषप्रात्ययिक
(माता, पिता आदिने अप्य अपराधने शारे दंड देवे), (११) मायाप्रात्य

તિર્યકૃતે ઘોર ઉપસર્ગે સોદેઽવધિ-મનઃપર્યય-કેવલજ્ઞાનામન્યતમસ્યૈકસ્ય કસ્ય
ચિજ્ઞાનસ્યોદયો જાયતે, ¹અન્યથા તૂન્માદાદિદુષ્ટરોગસક્રમેણ શ્રમણસ્ય
કેવલિપ્રરૂપિતધર્માદ્યતિ પરિભ્રમનમ્ ॥ સૂ. ૧૧ ॥

॥ મૂલમ્ ॥

તેરસર્હિં કિરિયાઠાળેહિ ॥ સૂ. ૧૨ ॥

॥ છાયા ॥

ત્રયોદશભિઃ ક્રિયાસ્થાનૈઃ ॥ સૂ. ૧૨ ॥

॥ ટીકા ॥

ત્રયોદશભિ ક્રિયાસ્થાનૈર્યો મયાઽતિચાર. કૃતઃ ઇત્યાદિસમ્બન્ધો
યથોક્તઃ । તત્ર ક્રિયાસ્થાનાન્યુક્તાનિ, યથા-“(૧) અઢાદઢે, (૨) અણઢાદઢે,
(૩) હિંસાદઢે, (૪) અકમ્હાદઢે, (૫) દિઢિત્રિપરિયાસિયાદઢે, (૬) મોસવત્તિણ,
(૭) અદિન્નાદાણવત્તિણ, (૮) અજ્ઞત્થવત્તિણ, (૯) માણવત્તિણ, (૧૦) મિત્તદોસ
વત્તિણ, (૧૧) માયાવત્તિણ, (૧૨) લોમવત્તિણ, (૧૩) ઇરિયાવહિણ” ઇતિ ।
તત્રાઽર્થાય=સ્વપ્રયોજનાય દણ્ડોઽર્થદણ્ડઃ (૧) અનર્થ=પ્રયોજનમન્તરેણ દણ્ડો-

તિર્યેચ સમ્બન્ધી ઘોર ઉપસર્ગ યદિ સહન કરલે તો અવધિ,
મનઃપર્યય, ઓર કેવલજ્ઞાન મે સે કિસી એક કી ઉત્પત્તિ હોતી હૈ, નહીં
તો ઉન્મત્ત (પાગલ), દીર્ઘકાલિક દાહજ્વરાદિ રોગો સે પીડિત
ઓર કેવલિપ્રરૂપિત ધર્મ સે ચ્યુત હો જાતા હૈ । ઇન વારહ ભિક્ષુ-
પ્રતિમાઓં મે ન્યૂનાધિક શ્રદ્ધા-પ્રરૂપણા આદિ દ્વારા જો અતિચાર
કિયા હો તો ઉસ સે મૈં નિવૃત્ત હોતા હૂં ॥સૂ. ૧૧॥

ક્રિયાસ્થાન તેરહ હૈ-(૧) અર્થદણ્ડ (સ્વપ્રયોજન કે લિયે

કરી લે તો અવધિ, મન પર્યય અને ડેવળ જ્ઞાનમાથી કોઈ એકની ઉત્પત્તિ થાય
છે, નહિ તો ઉન્મત્ત (પાગલ), દીર્ઘકાલિક દાહજ્વરાદિક રોગોથી પીડિત અને
કેવલિપ્રરૂપિત ધર્મથી પતિત થાય છે આ બાર ભિક્ષુપ્રતિમાઓમા ઓછી વધતી
શ્રદ્ધા પ્રરૂપણા વિગેરે દ્વારા જે કોઈ અતિચાર લાગ્યા હોય તો તેમાથી હું નિવૃત્ત
થાઉં છું (સૂ. ૧૧)

ક્રિયાસ્થાન તેર છે-(૧) અર્થદડ (પોતાના પ્રયોજન માટે ક્રિયા કરવી)
(૨) અનર્થદડ (કાચુ વિના ક્રિયા કરવી), (૩) હિંસાદડ, (૪) અકરમાતદડ

ऽनर्थदण्डः=सावयक्रियाऽनुष्ठानम् (२) हिंसैव दण्डः=हिंसादण्डः=प्राणाति-
पातस्वरूपः (३) । अकस्मात्=अन्यक्रिययाऽन्यदीयव्यापादनरूपो दण्डः=अक-
स्मादण्डः (४) । दृष्टेः=नेत्रस्य विपर्यास-दर्शनविभ्रान्तिः=रज्ज्वादिषु सर्पादि-
बुद्धिः-दृष्टिविपर्यासः, स चासौ दण्डश्च दृष्टिविपर्यासदण्डः-वाणादिना लोष्टा-
दिभ्रान्त्या तित्तिरिचटकादीना विहिंसनम् (५) । सद्भूतनिहवपूर्वका-ऽसद्भू-
तसमारोपणनिमित्तो मृपावादप्रात्ययिकः, 'मोसवत्तिए' इति पुस्त्व तु
दण्डविशेषणत्वाभिप्रायेण, एवमेवाग्रेऽपि (६) । अदत्तस्य=स्वाम्यादिभिरवि-
तीर्णस्य परकीयस्येति यावत् आदान=ग्रहणमदत्तादान=चौर्यप्रकारस्तन्नि-
मित्तः (७) । आत्मनीत्यभ्यात्म, तत्प्रात्ययिकोऽध्यात्मप्रात्ययिकः=स्वात्मनि-
मित्तको दण्डः, यतो दुःखभावो जनो निर्हेतुकमेव क्षतसकल्पश्चिन्तासन्तान-
समाक्रान्तस्वान्तो नितान्त 'दूनान्तस्तिष्ठति' (८) । जाति-कुल-उलरूपादि-
मदस्थानाष्टकाऽऽवेष्टितहृदयस्य परनीचत्वावल्लोकिनो योऽभिमानमूलको दण्डः
स मानप्रात्ययिकः (९) । मित्रकर्मकसन्तापजो दोषो मित्रदोषो मातृ-पितृ-
प्रभृतीनामल्पीयसाऽप्यपराधेनोग्रतमस्वरूपधारणया महाऽऽधिजनकचेष्टाविशेष-
रूपस्तन्निमित्तको दण्डो मित्रदोषप्रात्ययिकः (१०) । माया=परप्रतारणोपाय-

क्रिया करना), (२) अनर्थदण्ड (बिना प्रयोजन क्रिया करना), (३)
हिंसादण्ड, (४) अकस्मादण्ड (एकको मारते बीचमें दूसरे का मारा
जाना), (५) दृष्टिविपर्यासदण्ड (पत्थर समझकर तीतर, चटका
आदि का मारा जाना), (६) मृपाप्रात्ययिक (असत्य से लगने वाला
पाप), (७) अदत्तादानप्रात्ययिक, (८) अध्यात्मप्रात्ययिक (जिससे
मनुष्य स्वयं निष्कारण चिन्ता करे), (९) मानप्रात्ययिक, (१०)

(ओकने मारता वयभा भीमनी हिंसा थवी), (५) दृष्टिविपर्यासदण्ड (पत्थर
समझने तीतर थडकी आदिनी हिंसा थवी), (६) मृपाप्रात्ययिक (असत्यथी
लागवावाणु पाप), (७) अदत्तादानप्रात्ययिक, (८) अध्यात्मप्रात्ययिक (नेथी
भाणुम पोते नकाभी चिन्ता करे), (९) मानप्रात्ययिक, (१०) मित्रदोषप्रात्ययिक
(माता, पिता आदिने अल्प अपराधने लारे दंड देवे), (११) मायाप्रात्य

તિર્યકૃતે ઘોર ઉપસર્ગે સોઢેઽવધિ-મનઃપર્યય-કેવલજ્ઞાનામન્યતમસ્યૈકસ્ય કસ્ય
ચિજ્ઞાનસ્યોદયો જાયતે, ¹અન્યથા તૂન્માદાદિદૃષ્ટરોગસક્રમેણ શ્રમણસ્ય
કેવલિપ્રરૂપિતધર્માદ્વિપતિ પરિભ્રશનમ્ ॥ મૂં ૧૧ ॥

॥ મૂલમ્ ॥

તેરસહિ કિરિયાઠાણેહિં ॥ સૂં ૧૨ ॥

॥ છાયા ॥

ત્રયોદશભિઃ ક્રિયાસ્થાનૈઃ ॥ મૂં ૧૨ ॥

॥ ટીકા ॥

ત્રયોદશભિઃ ક્રિયાસ્થાનૈર્થો મયાઽતિચાર. કૃતઃ ઇત્યાદિસમ્બન્ધો
યથોક્તઃ । તત્ર ક્રિયાસ્થાનાન્યુક્તાનિ, યથા—“(૧) અઢાદઢે, (૨) અણઢાદઢે,
(૩) હિંસાદઢે, (૪) અક્રમ્હાદઢે, (૫) દિઢિવિપરિયાસિયાદઢે, (૬) મોસવત્તિણ,
(૭) અદિન્નાદાણવત્તિણ, (૮) અજ્ઞત્થવત્તિણ, (૯) માણવત્તિણ, (૧૦) મિત્તદોસ
વત્તિણ, (૧૧) માયાવત્તિણ, (૧૨) લોભવત્તિણ, (૧૩) ઇરિયાવહિણ” ઇતિ ।
તત્રાઽર્થાય=સ્વપ્રયોજનાય દણ્ડોઽર્થદણ્ડઃ (૧) અનર્થ=પ્રયોજનમન્તરેણ દણ્ડો

તિર્યેચ સમ્બન્ધી ઘોર ઉપસર્ગ યદિ સહન કરલે તો અવધિ,
મનઃપર્યય, ઓર કેવલજ્ઞાન મે સે કિસી ંક કી ઉત્પત્તિ હોતી હૈ, નહીં
તો ઉન્મત્ત (પાગલ), દીર્ઘકાલિક દાહજ્વરાદિ રોગો સે પીડિત
ઓર કેવલિપ્રરૂપિત ધર્મ સે ચ્યુત હો જાતા હૈ । ઇન બારહ ભિક્ષુ-
પ્રતિમાઓં મેં ન્યૂનાધિક શ્રદ્ધા-પ્રરૂપણા આદિ દ્વારા જો અતિચાર
કિયા હો તો ઉસ સે મેં નિવૃત્ત હોતા હૂં ॥સૂં ૧૧॥

ક્રિયાસ્થાન તેરહ હેં—(૧) અર્થદણ્ડ (સ્વપ્રયોજન કે લિયે

ઢરી લે તો અવધિ, મન પર્યય અને કેવળ જ્ઞાનમાથી કેઈ એઢની ઉત્પત્તિ થાય
છે, નહિ તો ઉન્મત્ત (પાગલ), દીર્ઘકાલિક દાહજ્વરાદિક રોગોથી પીડિત અને
કેવલિપ્રરૂપિત ધર્મથી પતિત થાય છે આ બાર ભિક્ષુપ્રતિમાઓમા એછી વધતી
શ્રદ્ધા પ્રરૂપણા વિગેરે દ્વારા જે કેઈ અતિચાર લાગ્યા હોય તો તેમાથી હું નિવૃત્ત
થાઉ છું (સૂં ૧૧)

ક્રિયાસ્થાન તેર છે—(૧) અર્થદડ (ખોતાના પ્રયોજન માટે ક્રિયા કરવી)
(૨) અનર્થદડ (કારણ વિના ક્રિયા કરવી), (૩) હિંસાદડ, (૪) અક્રમાતદડ

ऽनर्थदण्डः=सावयक्रियाऽनुष्ठानम् (२) हिंसैव दण्डः=हिंसादण्डः=प्राणाति-
पातस्वरूप. (३) । अकस्मात्=अन्यक्रिययाऽन्यदीयव्यापादनरूपो दण्डः=अक-
स्मादण्डः (४) । दृष्टेः=नेत्रस्य विपर्यास-दर्शनविभ्रान्तिः=रज्ज्वादिषु सर्पादि-
बुद्धि.-दृष्टिविपर्यासः, स चासौ दण्डश्च दृष्टिविपर्यासदण्डः-वाणादिना लोष्टा-
दिभ्रान्त्या तित्तिरिचटकादीना विहिंसनम् (५) । सद्भूतनिह्नवपूर्वका-ऽसद्भू-
तसमारोपणनिमित्तो मृषावादप्रात्ययिकः, 'मोसवत्तिण' इति पुस्त्व तु
दण्डविशेषणत्वाभिप्रायेण, एवमेवाग्रेऽपि (६) । अदत्तस्य=स्वाम्यादिभिरवि-
तीर्णस्य परकीयस्येति यावत् आदान=ग्रहणमदत्तादान=चौर्यप्रकारस्तन्नि-
मित्तः (७) । आत्मनीत्यभ्यात्म, तत्प्रात्ययिकोऽध्यात्मप्रात्ययिकः=स्वात्मनि-
मित्तको दण्डः, यतो दुःखभावो जनो निर्हेतुकमेव क्षतसकल्पश्चिन्तासन्तान-
समाक्रान्तस्वान्तो नितान्त 'दूनान्तस्तिष्ठति' (८) । जाति-कुल-उलरूपादि-
मदस्थानाष्टकाऽऽवेष्टितहृदयस्य परनीचत्वावलोकितो योऽभिमानमूलको दण्डः
स मानप्रात्ययिकः (९) । मित्रकर्मकसन्तापजो दोषो मित्रदोषो मातृ-पितृ-
प्रभृतीनामल्पीयसाऽप्यपराधेनोग्रतमस्वरूपधारणया महाऽऽधिजनकचेष्टाविशेष-
रूपस्तन्निमित्तको दण्डो मित्रदोषप्रात्ययिकः (१०) । माया=परप्रतारणोपाय-

क्रिया करना), (२) अनर्थदण्ड (विना प्रयोजन क्रिया करना), (३)
हिंसादण्ड, (४) अकस्मादण्ड (एकको मारते बीचमें दूसरे का मारा
जाना), (५) दृष्टिविपर्यासदण्ड (पत्थर समझकर तीतर, चटका
आदि का मारा जाना), (६) मृषाप्रात्ययिक (असत्य से लगने वाला
पाप), (७) अदत्तादानप्रात्ययिक, (८) अध्यात्मप्रात्ययिक (जिससे
मनुष्य स्वयं निष्कारण चिन्ता करे), (९) मानप्रात्ययिक, (१०)

(ओझने मारता वयभा भीजनी हिंसा थवी), (५) दृष्टिविपर्यासदण्ड (पत्थर
समझने तेतर अकली आदिनी हिंसा थवी), (६) मृषाप्रात्ययिक (असत्यथी
लागवावाणु पाप), (७) अदत्तादानप्रात्ययिक, (८) अध्यात्मप्रात्ययिक (नेथी
भाषुम पोते नकाभी चिन्ता करे), (९) मानप्रात्ययिक, (१०) मित्रदोषप्रात्ययिक
(माता, पिता आदिने अद्य अपराधने लारे दंड देवे), (११) मायाप्रात्य

स्वनिमित्तको दण्डो मायाप्रात्ययिकः (११) । लोभनिमित्तको दण्डो लोभ
प्रात्ययिकः (१२) । ईर्ष्यानिमित्तको दण्ड ईर्ष्याप्रात्ययिकः (१३) । व्यपेत
कपायस्य सर्वत्रोपयुक्तसमितिगुप्तिमतो भगवतो योगेनेर्ष्याप्रात्ययिको जायते ।
एषु च सर्वत्र प्रात्ययिकपदार्थस्य 'कर्मबन्ध' इति विशेष्यः स्वयमूढनीय ।
अत्र 'प्रात्ययिक' पदस्थाने 'प्रत्ययक' शब्देन व्याख्यायामौचित्य प्रतिभाति,
मृषा प्रत्ययो यस्येत्यादिरीत्या बहुव्रीहौ शेषाद्विभाषेति 'वैकल्पिककृतपत्त', तथा
सति विवक्षितोऽर्थो विस्पष्ट प्रतीयते । 'प्रत्यय' शब्दश्चात्र हेतुपर्यायः- 'प्रत्ययो
ऽधीनशपथज्ञाननिश्वासहेतुषु' इत्यमरः । 'प्रात्ययिक' इति पाठे भवानर्थे ठक्,
'प्रत्ययिक' इति पाठस्तु यथा न रोचते तथा प्रेक्षावन्त एव प्रमाणम् ॥ सू० १२ ॥

॥ मूलम् ॥

चउदसंहि भूयग्गामेहि । पन्नरसहि परमाहम्मिएहि । सोल-
सहि गाहासोलसएहि । सत्तरसविहे असजमे । अट्टारसविहे अवमे ।
एगूणवीसाए नायज्झयणेहि । वीसाए असमाहिट्टाणेहि ॥ सू० १३ ॥

॥-छाया ॥

चतुर्दशभिर्भूतग्रामैः । पञ्चदशभिः परमाधार्मिकैः । षोडशभिर्गाथाषोड-
शकैः । सप्तदशविधेऽसयमे । अष्टादशविधेऽब्रह्मणि । एकोनविंशत्या ज्ञाताध्य-
यनैः । विंशत्याऽसमाधिस्थानैः ॥ सू० १३ ॥

मित्रदोषप्रात्ययिक (माता, पिता आदि को अल्प अपराध का मारी
दण्ड देना), (११) मायाप्रात्ययिक, (१२) लोभप्रात्ययिक (१३)
ईर्ष्याप्रात्ययिक (कपायरहित, उपयोगसहित, समिति-गुप्ति के
धारक भगवान को योग से लगने वाला सामान्य कर्मबन्ध), इन
तेरह क्रियास्थानों द्वारा जो अनिचार लगा हो तो उससे मैं
निवृत्त होता हूँ ॥ सू० १२ ॥

यिक, (१२) लोभप्रात्ययिक, (१३) ईर्ष्याप्रात्ययिक (कपायरहित उपयोगसहित
समितिगुप्तिने धारणु करवावाणा भगवानने योगथी लागवावाणा सामान्य कर्म
बन्ध) आ तेर क्रियास्थानों द्वारा जो कौन अनिचार लागेल होय तो तेभाथी
हूँ निवृत्त थाउँ छु (सू० १२)

॥ ટીકા ॥

‘ચતુદ્દસર્હિ’ ચતુર્દશભિ, ‘મૂયગ્ગામેર્હિ’ ભૂતાનિ=જીવાસ્તેષા
ગ્રામા=સમુદાયાસ્તૈઃ, ગ્રામૈરિતિ વહુવચનેન મુક્ષ્મૈકેન્દ્રિયગ્રામ-વાદરૈકે-
ન્દ્રિયગ્રામ-દ્વીન્દ્રિયગ્રામ-ત્રીન્દ્રિયગ્રામ-સન્નિપન્નેન્દ્રિયગ્રામા-ડસન્નિપન્નેન્દ્રિયગ્રામાણા
પર્યાપ્તકાડપર્યાપ્તકભેદેન ચતુર્દશાના ગ્રહણમભિપ્રેતમ્ । એતત્સૂત્રસ્થાના
સર્વેષામેવ પદાના ‘યો મયાડતિચાર’ કૃત ’ ઇત્યાદિભિ પૂર્વોક્તૈઃ સમ્બન્ધઃ ।

‘પન્નરસર્હિ’ પન્નદશભિ, ‘પરમાર્હમ્મિર્હિ’ ધર્મે ચરન્તીતિ ધાર્મિકા
ન ધાર્મિકાઃ=અધાર્મિકા પરમાશ્વ તે અધાર્મિકા =પરમાધાર્મિકાઃ અતિકલુપિત-
હૃદયપરિણામા યમ-લોકપાલસેવકા અસુરકુમારદેવવિશેષાસ્તૈસ્તકૃતપાપાડનુ-
મોદનાદિભિરિત્યર્થઃ । તન્નામાનિ પ્રોક્તાનિ યથા—

(૧) ખવે, (૨) અવરિગ્ગી, (૩) સામે, (૪) સવલે, (૫) રુદ્દે,
(૬) ઉવરુદ્દે, (૭) કાલે, (૮) મહાકાલે, (૯) અસિપત્તે, (૧૦) ધણૂ, (૧૧)
કુમે, (૧૨) વાલૂ, (૧૩) વેયરણી, (૧૪) સ્વરસ્સરે, (૧૫) મહાધોસે ।

‘તત્ર ‘અમ્મ’ =અમ્મનામા પરમાધાર્મિકો, યો હિ નારકાન્ ગગનતલ

(૧) સૂક્ષ્મ એકેન્દ્રિય, (૨) વાદર એકેન્દ્રિય, (૩) દ્વીન્દ્રિય,
(૪) ત્રીન્દ્રિય, (૫) ચતુરિન્દ્રિય, (૬) અમ્મજિ પન્નેન્દ્રિય (૭) સન્નિ
પન્નેન્દ્રિય, હન સાતોં કે પર્યાપ્ત ઓર અપર્યાપ્ત કે ભેદ સે ચૌદહ
ભૂતગ્રામ (જીવસમૂહ) હોતે હૈં, હનકી વિરાધના આદિ સે જો
અતિચાર લગા હો ‘તો ઉમસે મેં નિવૃત્ત હોતા હૈં’

અત્યન્ત કલુપિત પરિણામ ચાલે હોને સે પરમાધાર્મિક
કહલોને ચાલે દેવ (૧૫) પન્નદશ પ્રકાર કે હૈં —

(૧) અમ્મ—નારકી જીવોં કો આકાશ મેં લે જાકર નીચે

(૧) સૂક્ષ્મ એકેન્દ્રિય, (૨) વાદર એકેન્દ્રિય (૩) દ્વીન્દ્રિય, (૪) ત્રીન્દ્રિય,
(૫) ચતુરિન્દ્રિય, (૬) અસન્નિ પન્નેન્દ્રિય, (૭) સન્નિ પન્નેન્દ્રિય, આ સાતેના પર્યાપ્ત
અને અપર્યાપ્તના ભેદથી ચૌદ ભૂતગ્રામ (જીવસમૂહ) હોય છે એઓની વિરાધના
આદિથી જે અતિચાર લાગ્યા હોય ‘તો તેથી હું નિવૃત્ત થાઉં છું’

અત્યન્ત કલુપિત પરિણામવાળા હોવાથી પરમાધાર્મિક કહેવાતા દેવ પદર
પ્રકારના છે—

स्वनिमित्तको दण्डो मायाप्रात्ययिकः (११) । लोभनिमित्तको दण्डो लोभ
प्रात्ययिकः (१२) । ईर्यानिमित्तको दण्ड ईर्याप्रात्ययिकः (१३) । व्यपेत
कपायस्य सर्वत्रोपयुक्तसमितिगुप्तिमतो भगवतो योगेनेर्याप्रात्ययिको जायते ।
एषु च सर्वत्र प्रात्ययिकपदार्थस्य 'कर्मबन्ध' इति विशेष्यः स्वयमूहनीय ।
अत्र 'प्रात्ययिक' पदस्थाने 'प्रत्ययक' शब्देन व्याख्यायामौचित्य प्रतिभाति,
मृपा प्रत्ययो यस्येत्यादिरीत्या बहुव्रीहौ शेषाद्विभाषेति त्रैकलिपिकुत्पत्तः, तथा
सति विवक्षितोऽर्थो विस्पष्ट प्रतीयते । 'प्रत्यय' शब्दश्चात्र हेतुपर्यायः— 'प्रत्ययो
ऽधीनशपथज्ञानविश्वासहेतुषु' इत्यमरः । 'प्रात्ययिकः' इति पाठे भवानर्थे ठक्,
'प्रत्ययिकः' इति पाठस्तु यथा न रोचते तथा प्रेक्षावन्त एव प्रमाणम् ॥ सू० १२ ॥

॥ मूलम् ॥

चउदसहिं भूयग्गामेहि । पन्नरसहिं परमाहम्मिएहि । सोल-
सहि गाहासोलसएहिं । सेत्तरसविहे असजमे । अट्टारसविहे अवमे ।
एगूणवीसाए नायज्झयणेहिं । वीसाए असमाहिट्टाणेहि ॥ सू० १३ ॥

॥-छाया ॥

चतुर्दशभिर्भूतग्रामैः । पञ्चदशभिः परमाधार्मिकैः । षोडशभिर्गार्थाषोड-
शकैः । सप्तदशविधेऽसयमे । अष्टादशविधेऽब्रह्मणि । एकोनविंशत्या ज्ञाताभ्य-
यनैः । विंशत्याऽसमाधिस्थानैः ॥ सू० १३ ॥

मित्रदोषप्रात्ययिक (माता, पिता आदि को अल्प अपराध का भारी
दण्ड देना), (११) मायाप्रात्ययिक, (१२) लोभप्रात्ययिक (१३)
ईर्याप्रात्ययिक (कपायरहित, उपयोगसहित, समिति-गुप्ति के
धारक भगवान को योग से लगने वाला सामान्य कर्मबन्ध), इन
तेरह क्रियास्थानों द्वारा जो अनिचार लगा हो तो उससे मैं
निवृत्त होता हूँ ॥ सू० १२ ॥

यिक, (१२) लोभप्रात्ययिक, (१३) ईर्याप्रात्ययिक (कपायरहित उपयोगसहित
समितिगुप्तिने धारण करवावाणा भगवानने योगशी लागवावाणा सामान्य कर्म
बन्ध) आ तेर क्रियास्थानों द्वारा जो कुछ अनिचार लागेल छाय तो तेमाथी
हु निवृत्त थाई छ (सू० १२)

॥ ટીકા ॥

‘ચતુદસર્હિ’ ચતુર્દશભિઃ, ‘મૃયગ્ગામેર્હિ’ મૃતાનિ=જીવાસ્તેષા
ગ્રામાઃ=સમુદાયાસ્તૈઃ, ગ્રામૈરિતિ વહુવચનેન સૂક્ષ્મૈકેન્દ્રિયગ્રામ-વાદરૈકે-
ન્દ્રિયગ્રામ-દ્વીન્દ્રિયગ્રામ-ત્રીન્દ્રિયગ્રામ-સન્નિપન્નેન્દ્રિયગ્રામા-ડસન્નિપન્નેન્દ્રિયગ્રામાણા
પર્યાપ્તકાડપર્યાપ્તકભેદેન ચતુર્દશાના ગ્રહણમભિપ્રેતમ્ । એતત્સૂત્રસ્થાના
સર્વેષામેવ પદાના ‘યો મયાડતિચાર’ કૃત ’ ઇત્યાદિભિઃ પૂર્વોક્તૈઃ સમ્બન્ધઃ ।

પન્નરસર્હિ’ પન્નરદશભિઃ, ‘પરમાહર્મિમ્પર્હિ’ ધર્મે ચરન્તીતિ ધાર્મિકા
ન ધાર્મિકાઃ=અધાર્મિકા પરમાશ્ચ તે અધાર્મિકા =પરમાધાર્મિકાઃ અતિકલુપિત
હૃદયપરિણામા યમ-લોકપાલસેવકા અસુરકુમારદેવવિશેષાસ્તૈસ્તકૃતપાપાડનુ-
મોદનાદિભિરિત્યર્થઃ । તન્નામાનિ પ્રોક્તાનિ યથા—

(૧) અગ્ને, (૨) અવરિમ્બી, (૩) સામે, (૪) સવલે, (૫) રુદ્રે,
(૬) ઉવરુદ્રે, (૭) કાલે, (૮) મહાકાલે, (૯) અસિપત્તે, (૧૦) ધણુ, (૧૧)
કુભે, (૧૨) વાલૂ, (૧૩) વેયરણી, (૧૪) સ્વરસ્સરે, (૧૫) મહાઘોસે ।

‘તત્ર ‘અમ્બઃ’=અમ્બનામા પરમાધાર્મિકો, યો હિ નારકાન્ ગગનતલ

(૧) સૂક્ષ્મ એકેન્દ્રિય, (૨) વાદર એકેન્દ્રિય, (૩) દ્વીન્દ્રિય,
(૪) ત્રીન્દ્રિય, (૫) ચતુરિન્દ્રિય, (૬) અસન્નિ પન્નેન્દ્રિય (૭) સન્નિ
પન્નેન્દ્રિય, ઇન સાતોં કે પર્યાપ્ત ઓર અપર્યાપ્ત કે ભેદ સે ચૌદહ
ભૂતગ્રામ (જીવસમૂહ) હોતે હૈં, ઇનકી વિરાધના આદિ સે જો
અતિચાર લગા હો ‘તો ડસસે મૈ નિવૃત્ત હોતા હૂં’

અત્યન્ત કલુપિત પરિણામ વાલે હોને સે પરમાધાર્મિક
કહલાને વાલે દેવ (૧૫) પન્નર પ્રકાર કે હૈં —

(૧) અગ્ન—નારકી જીવોં કો આકાશ મેં લે જાકર નીચે

(૧) સૂક્ષ્મ એકેન્દ્રિય, (૨) વાદર એકેન્દ્રિય (૩) દ્વીન્દ્રિય, (૪) ત્રીન્દ્રિય,
(૫) ચતુરિન્દ્રિય, (૬) અસન્નિ પન્નેન્દ્રિય, (૭) સન્નિ પન્નેન્દ્રિય, આ સાતેના પર્યાપ્ત
અને અપર્યાપ્તના ભેદથી ચૌદ ભૂતનામ (જીવસમૂહ) હોય છે એઓની વિરાધના
આદિથી જે અતિચાર લાગ્યા હોય ‘તો તેથી હું નિવૃત્ત થાઉં છું’

અત્યન્ત કલુપિત પરિણામવાળા હોવાથી પરમાધાર્મિક કહેવાતા દેવ પન્નર
પ્રકારના છે—

નીત્વા ડધસ્તાદ્વિમુચ્ચતિ, દત્ત્વા ચ ગલહસ્ત ગર્જે પાતયતિ, અધોમુખમમ્બરતલે સમુત્ક્ષિપ્ય પુનઃ પુનઃ પતન્તં શૂલાદિના ત્રિયતિ, પાપ સસ્માર્ય સસ્માર્ય ચાનેકથા ભૂયઃ ક્કર્થયતિ । ૧ ।

‘અમ્બરીષો’ નારકાન્ મુદ્ગરાદિના કુટ્ટયિત્વા વ્રજ્જાદિભિઃ સ્વઘ્નશઃ કૃત્વા ભ્રાણ્દ્રાદો પચતિ, હસ્તાઽઽહતતયા મૂર્ચ્છિતાંશ્ચ તાન્ કદલીસ્તમ્ભવચ્ચ મૃણામેકૈકે પુટપુત્પાદયોત્પાટય ક્કર્થયતિ । ૨ ।

‘શ્યામઃ’ કશાઘાતાદિના શાતયતિ, હસ્તપાદાદીન્ દુર્દર્શતયા છિનતિ, શૂલ-સૂચ્યાદિના વિધ્યતિ, ઉપરિતો વજ્રશિલાયા પાતયતિ, તથા રજ્જ્વાદિના

પટકને ચાલે, ગર્દનિયા દેકર (ગર્દન પકડ કર) ગરદે મેં ગિરાને ચાલે, ડલટે મુંદ આકાશ મેં ડછાલ કર ગિરતે સમય વર્છા આદિ ભોંકને ચાલે, ઓર પાપ કા ચારમ્વાર સ્મરણ કરાકર અનેક પ્રકાર સે પીડા પહુંચાને ચાલે ।

(૨) અવરીષ—નેરહયોં કો મુદ્ગર આદિ સે કૃટ કર કરોંત, કૈચી આદિ સે ટુકડે ૨ કર ભાડ મૂજને ચાલે તથા અધમરે કર કે કદલી સ્તમ્ભ કે સમાન ઇક ઇક ચર્મપુટ કો સ્વીચ કર દુઃસ્વી કરને ચાલે ।

(૩) શ્યામ કશા (કોડા) આદિ સે પીટને ચાલે, હાથ પૈર આદિ અવયવો કો વુરી તરહ કાટનેચાલે, શૂલ સુઈ આદિ સે વીધનેચાલે, ઉપર સે વજ્રશિલા પર પટકને ચાલે, ઓર રસી

(૧) અજ-નારકી જીવોને આકાશમા લઇ જઇને નીચે પછાડવાવાળા, ગરદન પકડીને ખાડામા ફેંકવાવાળા અવળા મોઢે આકાશમા ઊછાળીને પડતી વખતે ધરછી વિગેરે ભોંકવાવાળા, અને પાપનુ વારવાર સ્મરણ કરાવીને અનેક પ્રકારથી પીડા પહોંચાડવાવાળા

(૨) અવરીષ-નેરહયોને મુગદર આદિથી કૂટીને કરોત, કૈચી (કાતર) આદિથી ટુકડા ટુકડા કરીને લઈમા ફેંકવાવાળા તથા અધમુવા કરીને ફેળના થાભલાની જેમ એકેક ચર્મપુટને ખેંચીખેંચીને દુખી કરવાવાળા

(૩) શ્યામ-કશા (કોડા) આદિથી મારવાવાળા, હાથ પગ આદિ અવયવોને વુરી રીતે કાપવાવાળા, શૂળ સોય આદિથી વીધવાવાળા, ઉપરથી વજ્ર શિલા ઉપર

दृढं बद्ध्वा लतादिप्रहारपुरस्सरं भीषणयातनां नयति, अस्य श्यामाङ्गत्वाच्छ्याम-
नाम् । ३ ।

शबलः=वर्णेन कर्तुरः, अयं मुद्गरादिना नारकिणामस्थिसन्धिं चूर्णयति,
अन्त्रवसादीन्निष्कासयति च । ४ ।

‘रौद्रो’ रुद्रकर्मकरत्वात्, यतोऽयं नारकान् भ्रामयित्वा २ व्योम्नि
सुदूरमुत्क्षिप्य निपततस्तान् शक्त्यसितोमरादिषु प्रोतयति । ५ ।

उपरौद्रः=रौद्रकल्पः, एष च करचरणान्द्रोपाङ्गानि भनक्ति । ६ ।

‘कालः’ स यो नारकान् नानाविधेषु कुम्भ्यादिपात्रेषु पचति, अयं च
वर्णतोऽपि काल एव । ७ ।

महाकालः—पूर्वस्मिन् जन्मनि मासाहारिणो नारकांस्तदीयोत्कर्तितं पृष्ठा-
दिस्थं मासं कदर्थनया भक्षयति, अयं च वर्णेन महाश्यामत्वान्महाकाल उच्यते । ८ ।

आदि से मजबूत बांध कर लना (बैत) आदि के प्रहार से चमड़ा
उधेड़ने वाले ।

(४) शबल—मुद्गर आदि द्वारा नारकियों की हड्डी के जोड़ों
को चूर चूर करने वाले, तथा आँत और चरबी को निकालने
वाले । (५) रौद्र—नरकस्थ जीवों को खूब ऊँचे उछाल कर गिरते
समय, शक्ति, तलवार, भाले आदि में पिरोनेवाले । (६) उपरौद्र—
नारकीय जीवों के हाथ पैर तोड़ने वाले । (७) काल—कुभी आदिमें
पचानेवाले । (८) महाकाल—पूर्वजन्म के मासाहारी जीवों को
उन्हीं की पीठ आदिका मास काट काट कर खिलाने वाले । (९)

पछाडवावाणा અને દોરડા આદિથી બાંધીને લતા (નેતર) વિગેરેથી મારીને
ચામડું ઉઘેડનાર

(૪) શબલ—મુદ્ગર આદિ દ્વારા નારકીઓના હાડકાઓના ચૂરેચૂરા કરવાવાળા
તથા આંતરડા અને ચરબીને કાઢવાવાળા (૫) રૌદ્ર—નરકમાં રહેલા જીવોને ખૂબ
ઉંચે ઉછાળીને પડતી વખતે શક્તિ, તલવાર, બાલો વિગેરેમાં પિરોવવાવાળા (૬)
ઉપરૌદ્ર—નારકીય જીવોના હાથ પગ તોડવાવાળા (૭) કાલ—કુભી આદિમાં
પકાવવાવાળા (૮) મહાકાલ—પૂર્વજન્મના માસાહારી જીવોને તેમની જ પીઠનું
માસ કાપી કાપીને ખવરાવવાવાળા (૯) અસિપત્ર—તલવાર જેવા તીક્ષ્ણ પાદડાવાળા

નીત્વા ડધસ્તાદ્વિમુચ્યતિ, દત્ત્વા ચ ગલદસ્ત ગર્ને પાતયતિ, અધોમુખમમ્બરતલે સમુત્ક્ષિપ્ય પુનઃ પુનઃ પતન્ત શૂલાદિના વિચતિ, પાપ સસ્માર્ય સસ્માર્ય ચાનેકથા ભૂયઃ કદર્થયતિ । ૧ ।

‘અમ્બરીષો’ નારકાન્ મુદ્ગરાદિના કુટ્ટયિત્વા ક્રમ્પચાદિભિઃ સ્વપ્હશઃ કૃત્વા ભ્રાપ્ત્વાદો પચતિ, હતાઽહતતયા મૃન્નિઙ્ઠતાંશ્ચ તાન કદલીસ્તમ્ભવચ મૃણામેકૈક પુટમુત્પાદ્યોત્પાટ્ય કદર્થયતિ । ૨ ।

‘શ્યામઃ’ કશાઘાતાદિના શાતયતિ, હસ્તપાદાદીન્ દુર્દર્શતયા છિનત્તિ, શૂલ-સૂચ્યાદિના વિધ્યતિ, ઉપરિતો વજ્રશિલાયા પાતયતિ, તથા રજ્જ્વાદિના પટકને વાલે, ગર્દનિયા દેકર (ગર્દન પકડ કર) ગર્રદે મેં ગિરાને વાલે, ઉલટે મુંદ આકાશ મેં ઉછાલ કર ગિરતે સમય વર્છા આદિ ભોંકને વાલે, ઔર પાપ કા વારમ્વાર સ્મરણ કરાકર અનેક પ્રકાર સે પીડા પહુંચાને વાલે ।

(૨) અમ્બરીષ—નેરહયોં કો મુદ્ગર આદિ સે કૂટ કર કરોંત, કૈચી આદિ સે ટુકડે ૨ કર ખાડ ભૂજને વાલે તથા અધમરે કર કે કદલી સ્તમ્ભ કે સમાન એક એક ચર્મપુટ કો સ્વીચ કર દુઃસ્વી કરને વાલે ।

(૩) શ્યામ કશા (કોડા) આદિ સે પીટને વાલે, હાથ પૈર આદિ અવયવોં કો બુરી તરહ કાટનેવાલે, શૂલ સુઈ આદિ સે વીધનેવાલે, ઉપર સે વજ્રશિલા પર પટકને વાલે, ઔર રસ્સી

(૧) અખ-નારકી જીવોને આકાશમા લઇ જઈને નીચે પછાડવાવાળા, ગરદન પકડીને ખાડામા ફેંકવાવાળા અવળા મોઢે આકાશમા ઉછાળીને પડતી વખતે જરછી વિગેરે ભોંકવાવાળા, અને પાપનુ વારવાર સ્મરણ કરાવીને અનેક પ્રકારથી પીડા પહોંચાડવાવાળા

(૨) અમ્બરીષ-નેરહયોને મુગદર આદિથી કૂટીને કરોત, કૈચી (કાતર) આદિથી ટુકડા ટુકડા કરીને લઈમા શેકવાવાળા તથા અધમુવા કરીને કેળના થાસલાની જેમ એકેક ચર્મપુટને ખેંચીખેંચીને દુખી કરવાવાળા

(૩) શ્યામ-કશા (કોડા) આદિથી મારવાવાળા, હાથ પગ આદિ અવયવોને બુરી રીતે કાપવાવાળા, શૂળ સોય આદિથી વીધવાવાળા, ઉપરથી વજ્ર શિલા ઉપર

यिता क्षारोष्णजलभृता भयानका विकृतदर्शना नदीं विकृत्य नारकान्
क्लिशनाति । १३ ।

खरस्वरः—सचीत्कारमुच्चैराक्रोशतो नारकान् तीक्ष्णवज्रकण्टकाऽऽ-
कीर्णेषु शाल्मल्यादिप्राशुवृक्षेषु^१ समारोप्याऽऽकृषति, शिरस्सु च क्रकच निधाय
विदारयति, परशुभिर्वा खण्डयति । १४ ।

‘महाघोषः’—अयं परमपीडोत्पत्तिभीतान् मृगानिवेतस्ततः पलायमा-
नान् नारकान् घोरगर्जना कुर्वन् वाटक (व्रज) पशुनिव नरकाऽऽवास-
मवरुणद्धि । १५ ।

‘सोलसहिं’ षोडशभिः, ‘गाढासोलसएहि’ गाथानामक षोडशमध्य-

नरकके जीवों को डाल कर अनेक प्रकार से पीडित करनेवाले ।
(१४) खरस्वर—तीखे वज्रमय काँटेवाले ऊँचे शाल्मली (सेमल) वृक्षों
पर चढ़ाकर चिल्लाते हुए नारकी जीवों को खींचनेवाले, मस्तक पर
करोँत रखकर चीरनेवाले, तथा फरसा से खंडर करनेवाले ।

(१५) महाघोष—अत्यन्त वेदना के डरसे मृगोंकी तरह
इधर-उधर भागते हुए नारकी जीवों को वाडेमे पशुओंकी तरह
घोर गर्जना करके रोकनेवाले । इनके द्वारा होनेवाले पापकी अनु-
मोदना आदि से जो अतिचार लगा हो ‘तो मैं उससे निवृत्त
होता हूँ ।

सूत्रकृताङ्ग के प्रथम श्रुतस्कन्ध के सोलह अध्ययन इस

नरकना एवोने नाभीने अनेक प्रकारवा दुष्प्र देवावाणा (१४) खरस्वर-तीखा
वज्र जेवा काटावाणा उवा उवा शेमणना आउ उपर चढावीने शुभे पाउता
नारकी एवोने जेयवावाणा, माथा उपर करवत राभीने चीरवावाणा तथा इरसीथी
दुकडा दुकडा करवावाणा (१५) महाघोष-अत्यन्त वेदनाना डरथी डरछोनी जेम
न्या त्या भागता नारकी एवोने वाडोमा पशुओंनी भाइक घोर गर्जना करीने
रोकवावाणा जे परमाधार्मिक देवोथी यता पापनी अनुमोदना आदिथी जे अतिचार
लाग्या डाय ‘तो तेमाथी हु निवृत्त थाउ छु

सूत्रकृताङ्गना प्रथम श्रुतस्कन्धना सोलह अध्ययन आ प्रकारे छे

१ - ‘प्राशुरुच’ इत्यर्थः ।

२- रुपेर्द्विर्मकत्वादिदमरुचित कर्म ‘व्रजमवरुणद्धि गाम्’ इत्यादिवत् ।

‘असिपत्रः’ स देवो योऽसितुल्यपत्राणां वनं विरचय्य तच्छायाऽभि-
लापेण समागतान्नारकिणो विहृतयातान्दोलनपूर्वमसिपत्रपातनेन खण्ड्य-
श्छिनत्ति । ९ ।

धनुः—स यो धनुषो विनिर्मुक्तैरर्द्धचन्द्राकारैर्वाणैः कर्णोष्ठनासादीनवयवा-
न्नारकिणा छिनत्ति । १० ।

कुम्भः—विविधामृष्टिकायाकारास्तु कुम्भीषु नारकिणो भृशं पचति
हन्ति च । ११ ।

‘वालुः’—भ्राष्ट्रस्थतप्तवज्रवालुकास्तु नारकान् सतडटकारं चणकादीनिव
भर्जयति । १२ ।

वैतरणी—नरकस्थनदी, तदधिष्ठातृत्वेन तद्देवोऽपि तात्स्थ्यात् गृहा दारा
इतिवत्, स चातिपूतिगन्धिपूरुषधिरप्रवाहपरिपूरिता तप्तपुताम्रादिकलकला-

असिपत्र—तलवार जैसे तीखे पत्तों के वनकी विकुर्वणा करके
उस वनमें छायाकी इच्छा से आये हुए नारकी जीवों को वैक्रिय
वायुद्वारा पत्ते गिराकर छिन्नभिन्न करनेवाले । (१०) धनु—धनुष से
छोड़े हुए अर्द्धचन्द्राकार वाणों से आँख नाक आदि अवयवों को
छेदनेवाले । (११) कुम्भ—ऊँटनी आदि के आकारवाली कुम्भियों में
पचानेवाले । (१२) वालु—वज्रमय तप्तवालुका से चनों के समान
तडतडाहट करते हुए नारकी जीवों को भूननेवाले । (१३)
वैतरणी—अत्यन्त दुर्गन्धवाली राध लोहू से भरी हुई, एवं तपे
हुए जस्त और कथीर की उकलती हुई, अत्यन्त क्षार से युक्त
उष्ण पानी से भरी हुई वैतरणी नदी की विकुर्वणा करके उसमें

वनकी विकुर्वणा करीने ते वनमा छायाकी इच्छाथी आवेला नारकी जीवोने वैक्रिय
वायु द्वारा पाटडायेने जेरवीने छिन्नभिन्न करवावाणा । (१०) धनु—धनुष्यधी छोडल
अर्धचन्द्राकार वाणोधी आप नाक अदि अवयवोने छेदवावाणा । (११) कुल उटनी
(साठणी) आदिना आकारवाणी कुलियोमा पडाववावणा । (१२) वालू—वज्रमय तपेकी
रैतीमा यणानी समान तडतडाट करता नारकी जीवोने शेकवावाणा । (१३) वैतरणी—
भूष दुर्गन्धवाली राध बोहीथी बरेली, तपेला जस्त अने कथीरथी उकलती,
अत्यंत क्षार युक्त उना पाणीनी बरेली वैतरणी नदीनी विकुर्वणा करीने येमा

यिता क्षारोष्णजलभृता भयानका विकृतदर्शना नदीं विकृत्य नारकान्
क्लिश्नाति । १३ ।

खरस्वरः-सचीत्कारमुच्चैराक्रोशतो नारकान् तीक्ष्णवज्रकण्टकाऽऽ-
कीर्णेषु शाल्मल्यादिप्राशुवृक्षेषु^१ समारोप्याऽऽकर्षति, शिरस्सु च क्रकच निधाय
विदारयति, परशुभिर्वा खण्डयति । १४ ।

‘महाघोषः’-अयं परमपीडोत्पत्तिभीतान् मृगानिवेतस्ततः पलायमा-
नान् नारकान् घोरगर्जना कुर्वन् वाटक (व्रज) पशुनिव र्नरकाऽऽवास-
मवरुणद्धि । १५ ।

‘सोलसहिं’ षोडशभिः, ‘गाढासोलसएहि’ गाथानामक षोडशमध्य-
नरकके जीवों को डाल कर अनेक प्रकार से पीडित करनेवाले ।
(१४) खरस्वर-तीखे वज्रमय काँटेवाले ऊँचे शाल्मली (सेमल) वृक्षों
पर चढ़ाकर चिल्लाते हुए नारकी जीवों को खींचनेवाले, मस्तक पर
करोँत रखकर चीरनेवाले, तथा फरसा से खंडर करनेवाले ।

(१५) महाघोष-अत्यन्त वेदना के डरसे मृगोंकी तरह
इधर-उधर भागते हुए नारकी जीवों को वाडेमे पशुओंकी तरह
घोर गर्जना करके रोकनेवाले । इनके द्वारा होनेवाले पापकी अनु-
मोदना आदि से जो अतिचार लगा हो ‘तो मैं उससे निवृत्त
होता हूँ ।

सूत्रकृताङ्ग के प्रथम श्रुतस्कन्ध के सोलह अध्ययन इस

नरकना एवेने नाभीने अनेक प्रकारथा हुआ देवावाणा (१४) खरस्वर-तीखा
वज्र जेवा काटावाणा उथा उथा श्रेमणना आउ उपर चढावीने धुमे पाउता
नारकी एवेने जेयवावाणा, माथा उपर करवत राभीने चीरवावाणा तथा इरसीथी
टुकडा टुकडा करवावाणा (१५) महाघोष-अत्यन्त वेदनाना डरथी डरछोनी जेम
न्या त्या भागता नारकी एवेने वाडोभा पशुओंनी माइक घोर गर्जना करीने
रोकवावाणा जे परमाधार्मिक देवेथी यता पापनी अनुमोदना आदिथी जे अतिचार
लाग्या छाय तो तेमाथी हु निवृत्त थाउ हु

सूत्रकृताङ्गना प्रथम श्रुतस्कन्धना सोलह अध्ययन आ प्रकारे छे

१ - ‘प्राशुरुच्चः’ इत्यर्थः ।

२- रुपेर्द्विर्मकत्वादिदमकथित कर्म ‘व्रजमवरुणद्धि गाम्’ इत्यादिवत् ।

‘असिपत्रः’ स देवो योऽसितुल्यपत्राणां न विरचय्य तच्छायाऽभि-
छापेण समागताभारकिणी विरुतयातान्दोलनपूर्वकमसिपत्रपातनेन स्वप्न-
श्चिन्तति । ९ ।

धनुः—स यो धनुषो विनिर्मुक्तैरर्द्धचन्द्राकारैर्वाणैः कर्णोष्णासाग्नीनवयवा
भारकिणा छिनत्ति । १० ।

कुम्भः—विविधामूष्टिकाशकारासु कुम्भीषु नारकिणो भृशं पचति
हन्ति च । ११ ।

‘वालुः’—भ्राष्ट्रस्थतप्तवज्रवालुकासु नारकान् सतडत्कारं चणकादीनि
भर्जयति । १२ ।

वैतरणी—नरकस्थनदी, तदधिष्ठातृत्वेन तद्देवोऽपि तात्स्थ्यात् गृहा दारा
इतिवत्, स चातिपूतिगन्धिपूरुधिरप्रवाहपरिपूरिता तप्तपुताम्रादिकलकला

असिपत्र—तलवार जैसे तीखे पत्तों के वनकी विकुर्वणा करके
उस वनमें छायाकी इच्छा से आये हुए नारकी जीवों को वैक्रिय
वायुद्वारा पत्ते गिराकर छिन्नभिन्न करनेवाले । (१०) धनु—धनुष से
छोड़े हुए अर्द्धचन्द्राकार वाणों से आँख नाक आदि अवयवों को
छेदनेवाले । (११) कुम्भ—ऊँटनी आदि के आकारवाली कुम्भियों में
पचानेवाले । (१२) वालु—वज्रमय तप्तवालुका में चनों के समान
तडतडाहट करते हुए नारकी जीवों को भूननेवाले । (१३)
वैतरणी—अत्यन्त दुर्गन्धवाली राध लोहू से भरी हुई, एवं तपे
हुए जस्त और कथोर की उकलती हुई, अत्यन्त क्षार से युक्त
लवण पानी से भरी हुई वैतरणी नदी की विकुर्वणा करके उसमें

वनकी विकुर्वणा करीने ते वनमा छायानी छच्छाथी आवेला नारकी जीवोने वैक्रिय
वायु द्वारा पादछायेने जेरवीने छिन्नभिन्न करवावाणा । (१०) धनु—धनुष्यधी छोडल
अर्धचन्द्राकार वाणोथी आप नाक आदि अवयवोने छेदवावाणा । (११) कुम्भ उटनी
(साठणी) आदिना आकारवाणी कुम्भियोमा पकाववावाणा । (१२) वालू—वज्रमय तपेली
रेतीमा यथानी समान तडतडाट करता नारकी जीवोने शेकवावाणा । (१३) वैतरणी—
भूज दुर्गन्धवाली राध बोहीथी बरेली, तपेला जस्त अने कथोरथी उकलती,
अत्यंत क्षार युक्त उना पाणीनी बरेली वैतरणी नदीनी विकुर्वणा करीने ओमा

चतुर्थं कूर्मज्ञाताध्ययनम् । पञ्चमं शैलकराजपिज्ञाताध्ययनम् । षष्ठं तुम्बज्ञातम् । सप्तमं रोहिणीज्ञातम् । अष्टमम् मल्लीज्ञातम् । नवमं माकन्दीपुत्रज्ञातम् । दशमं चन्द्रज्ञातम् । एकादशं समुद्रनीरस्थदावद्ववृक्षचरित्रयुक्तत्वाद्दावद्वज्ञाताध्ययनम् । द्वादशमुदकज्ञाताध्ययनम्, अत्र नगरपरिखाजलवर्णनम् । त्रयोदशं मण्डूकज्ञाताध्ययनम् । अत्र नन्दनमणिकारश्रेष्ठिजीववृत्तान्तवर्णनम् । चतुर्दशं तेतलीप्रधानज्ञाताध्ययनम् । पञ्चदशं नन्दिवृक्षाख्यतरुफलवृत्तान्तसम्बन्धान्द्विफलज्ञाताध्ययनम् । षोडशममरकङ्काज्ञातम्, अमरकङ्का नाम धातकीखण्ड-भरतक्षेत्रराजधानी तत्सम्बन्धात् । सप्तदशमाकीर्णज्ञातम्-आकीर्णाः=आकीर्णजातीयाः समुद्रमध्यवर्त्तिनोऽश्वविशेषास्तत्सम्बन्धात् । अष्टादशं सुसुमाज्ञातं नाम । एकोनविंशतितमं पुण्डरीकज्ञातं नामाध्ययनम् ॥

‘वीसाए’ विंशत्या ‘असमादिष्टाणेहि’ समाधिश्चित्तैकाग्रता=मोक्षमार्गेऽवस्थान, न समाधिरसमाधि, यत्सेवनेन स्वपरोभयमोक्षसुखविच्छेदो जायते

(५) शैलकराजपि, (६) तुम्बलेप, (७) रोहिणी, (८) मल्लिनाथ, (९) माकन्दी, (१०) चन्द्र, (११) दावद्ववृक्ष, (१२) उदकनाम, (१३) मण्डूक, (१४) तेतलीप्रधान, (१५) नन्दीफल, (१६) अमरकका, (१७) आकीर्णजातीय अश्व, (१८) सुसुमा, (१९) पुण्डरीक, इन उन्नीस ज्ञाताध्ययनों की श्रद्धा-प्ररूपणादि में न्यूनाधिकता होने से जो कोई अतिचार किया गया हो तो उससे मैं निवृत्त होता हूँ ।

चित्तकी एकाग्रतापूर्वक मोक्षमार्ग में स्थित होने को समाधि कहते हैं, और इससे विपरीत को असमाधि कहते हैं, उसके बीस स्थान (ज्ञानादिरहित अप्रशस्तभाव वाले स्थान) हैं-

राजपि (५) तुम्बलेप, (७) रोहिणी, (८) मल्लिनाथ, (९) माकन्दी, (१०) चन्द्र, (११) दावद्ववृक्ष, (१२) उदकनाम, (१३) मण्डूक, (१४) तेतलीप्रधान, (१५) नन्दीफल, (१६) अमरकका, (१७) आकीर्णजातीय अश्व, (१८) सुसुमा, (१९) पुण्डरीक आ उन्नीस अध्ययनोनी श्रद्धा-प्ररूपणादिमा न्यूनाधिकता यवाना कारणे ने कोई अतिचार लाग्या होय ‘तो तेमाथी हु निवृत्त थाउ छु’

चित्तनी अग्रतापूर्वक मोक्षमार्गमा स्थित थयु तेने समाधि कहे छे, अने तेमाथी विपरीत स्थितिने असमाधि कहे छे तेना बीस स्थानके।

कुशलमनुष्ठानं ब्रह्म, न ब्रह्म = अब्रह्म = अर्थान्मैथुन, तस्मिन् अब्रह्मणि, एतद्धि औदारिक-
वैक्रियकशरीराभ्यां करणकारणाऽनुमोदनैर्वाद्मनःकायतोऽष्टादशविधं भवति,
अर्थादौदारिकं मनसा वाचा कायेन च स्वयं न करोतीति त्रिविधम्, मनसा
वाचा कायेन चाऽन्यद्वारा न कारयतीति त्रिविधमिति षड्विधम् । मनसा वाचा
कायेन च कुर्यान्तमप्यन्यं न समनुजानातीति च त्रिविधमिति सर्वसङ्कलनयोदारिक-
शरीरसम्बन्धिनो नव भेदाः । एवमेव वैक्रियकशरीरसम्बन्धिनोऽपीति मिलि-
त्वाऽष्टादशविधत्वम् ।

‘एगूणवीसाए’ एकोनविंशत्या ‘नायज्झयणेहि’ ज्ञातानि = उदाहर-
णानि, तत्प्रतिपादकान्यध्ययनानि = ज्ञाताभ्ययनानि तैः, एषु^१ यत्र परमेण वाह-
णेनाऽऽत्यन्तिककष्टसहनपूर्वकं मेघकुमारकर्तृकं हस्तिभवाधिकरणकं पादैकोत्क्षे-
पणरूपं वृत्तमुपनिबद्धं तदुत्क्षिप्तज्ञातं नाम प्रथममध्ययनम् । अस्य चैव ज्ञातत्वम्-
दयादिगुणशालिनो दन्दाहादिरष्टं सहन्ते समुत्क्षिप्तैकचरण-मेघकुमार-जीव-
हस्तिवदिति १ । यत्र श्रेष्ठि-तस्करयोरेकत्र बन्धनवृत्तान्तं उपनिबद्धस्तत्र
‘सघाटज्ञातं’ नाम द्वितीयमध्ययनम् । तृतीयं ‘मयूराण्डज्ञाताभ्ययनम् ।’

अनुमोदना की हो, इसी प्रकार (१०-१८) वैक्रिय शरीर से
मैथुन मन, वचन और काय से सेवन किया हो, कराया हो और
अनुमोदन की हो । इस अठारह प्रकार के अब्रह्मचर्य द्वारा जो
अतिचार किया गया हो तो उससे मैं निवृत्त होता हूँ ।

ज्ञाताधर्मकथा के उन्नीस अध्ययन—(१) मेघकुमार (उत्क्षिप्त),
(२) धन्ना सार्थवाह (सघाट), (३) मयूराण्ड, (४) कूर्म (कच्छप)

मन वचन अने कायाथी सेवन कर्तुं होय, करायु होय अने अनुमोदन
आप्पु होय, आ प्रकारे (१०-१८) वैक्रिय शरीरथी मैथुन मन वचन अने
कायाथी सेवन कर्तुं होय, करायु होय अने अनुमोदन आप्पु होय आ
अठार प्रकारना अब्रह्मचर्य द्वारा जे अतिचार लाग्या होय तो तेमाथी हु
निवृत्त थाउ छु

ज्ञाताधर्मकथाना ओगलीस अध्ययन (१) मेघकुमार (उत्क्षिप्त),
(२) धन्ना सार्थवाह (सघाट), (३) मयूराण्ड, (४) कूर्म (कच्छप), (५) शैव

चतुर्थं कूर्मज्ञाताध्ययनम् । पञ्चमं शैलकराजपिज्ञाताध्ययनम् । षष्ठं तुम्बज्ञातम् । सप्तमं रोहिणीज्ञातम् । अष्टमम् मल्लीज्ञातम् । नवमं माकन्दीपुत्रज्ञातम् । दशमं चन्द्रज्ञातम् । एकादशं समुद्रनीरस्थदावद्ववृक्षचरित्रयुक्तत्वादावद्वज्ञाताध्ययनम् । द्वादशमुदकज्ञाताध्ययनम्, अत्र नगरपरिखाजलवर्णनम् । त्रयोदशं मण्डूकज्ञाताध्ययनम् । अत्र नन्दनमणिकारश्रेष्ठिजीववृत्तान्तवर्णनम् । चतुर्दशं तेतलीप्रधानज्ञाताध्ययनम् । पञ्चदशं नन्दिदृक्षाख्यतरुफलवृत्तान्तसम्बन्धान्नन्दिफलज्ञाताध्ययनम् । षोडशममरकङ्काज्ञातम्, अमरकङ्का नाम धातुकीखण्ड-भरतक्षेत्रराजधानी तत्सम्बन्धात् । सप्तदशमाकीर्णज्ञातम्-आकीर्णः=आकीर्णजातीयाः समुद्रमध्यवर्त्तिनोऽवविशेषास्तत्सम्बन्धात् । अष्टादशं सुसुमाज्ञातं नाम । एकोनविंशतितमं पुण्डरीकज्ञातं नामाध्ययनम् ॥

‘त्रीसाण्’ विंशत्या ‘असमाहिद्विणेहिं’ समाधिश्चित्तेकाग्रता=मोक्षमार्गेऽवस्थानं, न समाधिरसमाधिः, यत्सेवनेन स्वपरोभयमोक्षसुखविच्छेदो जायते

(५) शैलकराजपि, (६) तुम्बलेप, (७) रोहिणी, (८) मल्लिनाथ, (९) माकन्दी, (१०) चन्द्र, (११) दावद्ववृक्ष, (१२) उदकनाम, (१३) मण्डूक, (१४) तेतलीप्रधान, (१५) नन्दीफल, (१६) अमरकका, (१७) आकीर्णजातीय अश्व, (१८) सुसुमा, (१९) पुण्डरीक, इन उन्नीस ज्ञाताध्ययनों की श्रद्धा-प्ररूपणादि में न्यूनाधिकता होने से जो कोई अतिचार किया गया हो तो उससे मैं निवृत्त होता हूँ ।

चित्तकी एकाग्रतापूर्वक मोक्षमार्ग में स्थित होने को समाधि कहते हैं, और इससे विपरीत को असमाधि कहते हैं, उसके बीस स्थान (ज्ञानादिरहित अप्रशस्तभाव वाले स्थान) हैं—

राजपि (५) तुम्बलेप, (७) रोहिणी, (८) मल्लिनाथ, (९) माकन्दी, (१०) चन्द्र, (११) दावद्ववृक्ष, (१२) उदकनाम, (१३) मण्डूक, (१४) तेतलीप्रधान, (१५) नन्दीफल, (१६) अमरकका, (१७) आकीर्णजातीय अश्व, (१८) सुसुमा, (१९) पुण्डरीक आ आगएीस अध्ययनानी श्रद्धा-प्ररूपणादिमा न्यूनाधिकता थवाना कारणे जे केई अतिचार लाया होय ‘तो तेभायी हु निवृत्त थाउ छु’

चित्तनी ऐकाग्रतापूर्वक मोक्षमार्गमा स्थित थवु तेने अभाधि कडे छे, अने तेभायी विपरीत स्थितिने असभाधि कडे छे तेना बीस स्थानके।

સઃ, તસ્ય સ્થાનાનિ=પદાન્યસમાધિસ્થાનાનિ-જ્ઞાનાદિરહિતાઽપ્રશસ્તભાવ
સમ્પન્નાનિ સ્થાનાનીત્યર્થસ્તૈઃ । તાનિ ક્રમેણ યથા-પ્રથમ દ્રુતદ્રુતચરણ=સયમવિરા
ધનામાત્મવિરાધના ચાનપેક્ષ્ય ગમનમ્ । દ્વિતીયમપમાર્જિતચરણમ્=અપમાર્જિતે=
રજોહરણેનાઽવિશુદ્ધીકૃતે માર્ગાદૌ ગમનમ્ । તૃતીય દુષ્પમાર્જિતચરણમ્=અસમ્યક્
પમાર્જિતે ગમનમ્ । ચતુર્થ મર્યાદાતિરિક્તશય્યાપીઠફલકાદિસેવનમ્ । પચ્ચમ
રત્નાધિકપરિભવ =ગુર્યાચાર્યાદીના પરાભવકરણમ્ । પષ્ઠ સ્થવિરાણા ઘાતચિન્ત-
નમ્ । સપ્તમ ભૂતાનામુપઘાતચિન્તનમ્ । અષ્ટમ પ્રતિક્ષણ ક્રોધકરણમ્ । નવમ પૃષ્ઠ-
તોઽવર્ણવાદ.=પરોક્ષ આક્ષેપવચનમ્ । દશમ શક્તિતેઽર્થે પુનઃ પુનર્નિશ્ચિતભાષણમ્ ।
एकादशमनुत्पन्ननूतनकलहकरणम् । द्वादश पुरातनोपशमितकलहोदीरणम् ।

(૧) દ્રવદ્રવ-જલ્દી જલ્દી ચલના (૨) વિના પૂજે ચલના, (૩)
સમ્યક્ પ્રકાર પૂજે વિના ચલના (પૂજના કહી ચલના કહી), (૪)
મર્યાદા સે અધિક પાટ પાટલા આદિ કા ઉપેભોગ કરના, (૫) ગુરુ
આદિ કે સાથ અવિનયપૂર્વક બોલના તથા ઉનકા પરાભવ કરના,
(૬) સ્થવિર (અપને સે બડે) કી ઘાત ચિન્તન કરના, (૭)
ભૂતો (જીવો) કી ઘાત ચિન્તન કરના, (૮) ક્ષણ ક્ષણ મેં
ક્રોધ કરના, (૯) પરોક્ષ મેં અવર્ણવાદ કરના, (૧૦) શક્તિ
વિષય મેં વાર વાર નિશ્ચયપૂર્વક બોલના, (૧૧) નવો
ક્લેશ ઉત્પન્ન કરના, (૧૨) ઉપશાન્ત ક્લેશ કી ઉદીરણા કરના, (૧૩)

(જ્ઞાનાદિ રહિત અપ્રશસ્ત ભાવવાળા સ્થાન) છે । (૧) દ્રવદ્રવ (જલ્દી જલ્દી)
ચાલવુ (૨) પૂજ્યા વિના ચાલવુ, (૩) સમ્યક્ પ્રકારે પૂજ્યા વિના ચાલવુ
(પૂજવુ કયાય અને ચાલવુ કયાય), (૪) મર્યાદાથી વધારે પ્રમાણુમા પાટ પાટલા
વગેરેનો ઉપભોગ કરવો, (૫) ગુરુ વગેરેની સાથે અવિનયપૂર્વક, બોલવુ તથા
તેમનો પરાભવ કરવો, (૬) સ્થવિર (પોતાનાથી મોટા)ની ઘાત કરવાનુ ચિન્તવન
કરવુ, (૭) ભૂતો (જીવોની) ઘાત કરવાનુ ચિન્તન કરવુ, (૮) ક્ષણુક્ષણુમા ક્રોધ
કરવો, (૯) પરોક્ષમા અવર્ણવાદ બોલવુ, (૧૦) શક્તિ હોય તેવા વિષયમા વાર-
વાર નિશ્ચયપૂર્વક બોલવુ, (૧૧) નવો કલેશ ઉત્પન્ન કરવો, (૧૨) ઉપશાન્ત
કલેશની ઉદીરણા કરવી, (૧૩) અકાલે સ્વાધ્યાય કરવો, (૧૪) સચિત્ત રમવાળા

ત્રયોદશમકાલે સ્વાધ્યાયકરણમ્ । ચતુર્દશ સરજસ્કચરણેનાઽસનાદાવુપવેશનમ્ ।
પચ્ચદશ રાત્રિપુ પ્રથમપ્રહરોત્તરમુચ્ચૈઃ સમ્ભાપણમ્, ગૃહસ્થભાષાભાપણ વા । પોઢશ
ગચ્છાદિપુ ભેદોત્પાદનમ્ । સપ્તદશ શ્લોકકરણમ્=ગણદુઃસ્વદ્ભાષાવ્યવહરણમ્ । અષ્ટા-
દશ કલહકરણમ્=યેન કેનચિત્ સઠ વિરોધાઽચરણમ્ । એકોનવિંશતિતમ સૂર્યો-
દયાદારભ્યાઽસ્ત યાવત્પૌનઃપુન્યેનાઽભ્યવહરણમ્ । વિંશતિતમમનેપણિકાહારાદિ-
સેવનમ્ ॥ સૂ. ૧૩ ॥

॥ મૂલમ્ ॥

एगवीसाए सवलेहि ॥ सू० १४ ॥

॥ छाया ॥

एकविंशत्या शवलैः ॥ सू० १४ ॥

॥ टीका ॥

यद्द्वारा चारित्र शवल=कर्तुर भवति तानि शवलानि, तेषामेकविंशति

અકાલ મેં સ્વા યાય કરના, (૧૪) સચિત્ત રજયુક્ત ચરણોં સે આસન
આદિ પર બેઠના, (૧૫) પ્રહરરાત્રિ વ્યતીત હોને કે વાદ જોર સે
બોલના અથવા ગૃહસ્થ જૈસી ભાષા બોલના, (૧૬) ગચ્છ આદિ મે
છેદ-ભેદ કરના, (૧૭) ગણ કો દુઃખ ઉત્પન્ન હો એસી ભાષા બોલના,
(૧૮) દરેક કે સાથ વિરોધ કરના, (૧૯) સૂર્યોદય સે સૂર્યાસ્ત
તક યાતે રહના, (૨૦) અનેપણિક આહાર આદિ કા સેવન કરના ।
इनके विषयमे अतिचार किया गया हो तो उससे मैं निवृत्त
होता हूँ ॥ सू० १३ ॥

जिनसे चारित्र शवल (कर्तुर) अर्थात् चारित्र दूषित हो

પગ વડે આસન વગેરે પર બેસવું, (૧૫) પ્રહર રાત્રી ગયા ઘાઠ ઊંચા સ્વરથી
બોલવું-અથવા ગૃહસ્થ જેવી ભાષા બોલવી, (૧૬) ગચ્છ, મધ વગેરેમાં છેદ-ભેદ
પડાવવો, (૧૭) ગણને દુઃખ ઉત્પન્ન થાય તેવી ભાષા બોલવી, (૧૮) દરેકની સાથે
વિરોધ કરવો, (૧૯) સૂર્યોદયથી લઈ સૂર્યાસ્ત અમય થાય ત્યાં સુધી ભોજન
કરતા રહેવું, (૨૦) અનેપણિક આહાર આદિનું સેવન કરવું, આ વિષે જે કોઈ
અતિચાર લાગ્યા હોય 'તો તેમાંથી હું નિવૃત્ત થાઉં છું' (સૂ. ૧૩)

જેના વડે ચારિત્ર શબલ-અર્થાત્ ચારિત્ર દૂષિત થાય છે તેને 'શબલ'

સઃ, તસ્ય સ્થાનાનિ=પદાન્યસમાધિસ્થાનાનિ-જ્ઞાનાદિરહિતાઽપશસ્તભાવ
સમ્પન્નાનિ સ્થાનાનીત્યર્થસ્તૈઃ । તાનિ ક્રમેણ યથા-પ્રથમ દ્રુતદ્રુતચરણ=સયમવિરા-
ધનામાત્મવિરાધના ચાનપેક્ષ્ય ગમનમ્ । દ્વિતીયમપ્રમાર્જિતચરણમ્=અપ્રમાર્જિતે=
રજોહરણેનાઽશિશુદ્ધીકૃતે માર્ગાદૌ ગમનમ્ । તૃતીય દુષ્પ્રમાર્જિતચરણમ્=અસમ્યક્
પ્રમાર્જિતે ગમનમ્ । ચતુર્થ મર્યાદાતિરિક્તગથ્યાપીઠફલકાદિસેવનમ્ । પશ્ચમ
રત્નાધિકપરિભવ =ગુર્યાચાર્યાદીના પરાભવકરણમ્ । પૃષ્ઠ સ્થવિરાણા ઘાતચિન્ત-
નમ્ । સપ્તમ ભૂતાનામુપઘાતચિન્તનમ્ । અષ્ટમ પ્રતિક્ષણ ક્રોધકરણમ્ । નવમ પૃષ્ઠ
તોઽવર્ણવાદ =પરોક્ષ આક્ષેપવચનમ્ । દશમ શક્તિતેઽર્થે પુનઃ પુનર્નિશ્ચિતભાષેણમ્ ।
एकादशमनुत्पन्ननूतनकलहकरणम् । द्वादश पुरातनोपशमितकलहोदीरणम् ।

(૧) દવદવ-જલ્દી જલ્દી ચલના (૨) વિના પૂજે ચલના, (૩)
સમ્યક્ પ્રકાર પૂજે વિના ચલના (પૂજના કહી ચલના કહી), (૪)
મર્યાદા સે અધિક પાટ પાટલા આદિ કા ઉપભોગ કરના, (૫) ગુરુ
આદિ કે સાથ અવિનયપૂર્વક બોલના તથા ઉનકા પરાભવ કરના,
(૬) સ્થવિર (અપને સે બડે) કી ઘાત ચિન્તન કરના, (૭)
ભૂતો (જીવો) કી ઘાત ચિન્તન કરના, (૮) ક્ષણ ક્ષણ મેં
ક્રોધ કરના, (૯) પરોક્ષ મેં અવર્ણવાદ કરના, (૧૦) શક્તિ
વિષય મેં બાર બાર નિશ્ચયપૂર્વક બોલના, (૧૧) નવીન
ક્લેશ ઉત્પન્ન કરના, (૧૨) ઉપશાન્ત ક્લેશ કી ઉદીરણા કરના, (૧૩)

(જ્ઞાનાદિ રહિત અપ્રશસ્ત ભાવવાળા સ્થાન) છે (૧) દવદવ (જલ્દી જલ્દી)
ચાલવુ (૨) પૂજ્યા વિના ચાલવુ, (૩) સમ્યક્ પ્રકારે પૂજ્યા વિના ચાલવુ
(પૂજવુ કયાય અને ચાલવુ કયાય), (૪) મર્યાદાથી વધારે પ્રમાણુમાં પાટ પાટલા
વગેરેનો ઉપભોગ કરવો, (૫) ગુરુ વગેરેની સાથે અવિનયપૂર્વક બોલવુ તથા
તેમનો પરાભવ કરવો, (૬) સ્થવિર (પોતાનાથી મોટા)ની ઘાત કરવાનું ચિન્તન
કરવુ, (૭) ભૂતો (જીવોની) ઘાત કરવાનું ચિન્તન કરવુ, (૮) ક્ષણક્ષણમાં ક્રોધ
કરવો, (૯) પરોક્ષમાં અવર્ણવાદ બોલવુ, (૧૦) શકા હોય તેવા વિષયમાં બાર-
બાર નિશ્ચયપૂર્વક બોલવુ, (૧૧) નવો ક્લેશ ઉત્પન્ન કરવો, (૧૨) ઉપશાન્ત
ક્લેશની ઉદીરણા કરવી, (૧૩) અકાલે સ્વાધ્યાય કરવો, (૧૪) સચિત્ત રજવાળા

मम् (१०), मातृस्थानशब्देनात्र कपट (माया) गृह्यते । शय्यातरपिण्डसेवन-
मेकादशम् (११), ज्ञात्वा प्राणातिपातकरण द्वादशम् (१२), ज्ञात्वा मृषावाद-
करण त्रयोदशम् (१३), ज्ञात्वाऽदत्ताऽऽदान चतुर्दशम् (१४), ज्ञात्वा सच्चित्त-
पृथिव्युपवेशनादि पञ्चदशम् (१५) स्निग्धपृथिव्यामुपवेशन षोडशम् (१६),
सजीवपीठफलकादिसेवन सप्तदशम् (१७), मूल-कन्द-स्कन्ध-त्वक्-प्रवाल-
पत्र-पुष्प-फल-बीज-हरितादीनां सेवनमष्टादशम् (१८), सवत्सराभ्यन्तरे
दशोदकलेपसेवनमेकोनविंशतितमम् (१९) सवत्सराभ्यन्तरे दशमातृस्थानसेवन
विंशतितमम् (२०), सच्चित्तोदकरजोव्याप्तहस्तादिना दत्तस्याऽऽहारादेः सेवनमेक-
विंशतितमम् (२१) ॥ सू० १४ ॥

आदि से उतरना), (१०) एक महीने में तीन मातृस्थान (कपट)
सेवन करना, (११) शय्यातर पिण्ड का सेवन करना, (१२) जान-
बूझ कर प्राणातिपात करना, (१३) जानबूझ कर झूठ बोलना,
(१४) जानबूझ कर चोरी करना, (१५) जानबूझ कर सच्चित्त पृथ्वी
पर बैठना, (१६) स्निग्ध (गीली) पृथ्वी पर बैठना, (१७) जीव
सहित पीठ फलक आदि का सेवन करना, (१८) मूल-कन्द-
स्कन्ध-त्वक्-प्रवाल-पत्र-पुष्प-फल-बीज और हरित, इन दश
प्रकार की सच्चित्त वनस्पति आदि का सेवन करना, (१९) एक
वर्ष में दश उदक लेप लगाना, (२०) एक वर्ष में दश मातृस्थान
सेवन करना, (२१) सच्चित्त उदक से भीगे हुए (गीले) हस्तपात्र

त्रयु वार पाणीनां लेप लगावो (नदी विगेरे उतरवा), (१०) ओक मासमा
त्रयु मातृस्थाननु (कपटनु) सेवन करवु, (११) शय्यातरपिड सेवन करवु, (१२)
जाणी छुजीने प्राणातिपात करवो, (१३) जाणी-समज्जने असत्य बोलवु, (१४)
जाणी-समज्जने चोरी करवी, (१५) जाणी-छुजीने सच्चित्त पृथ्वी उपर बिसवु,
(१६) पाणीथी बीजज्येदी जमीन पर बिसवु, (१७) एव सहित पीठफलक वगेरेनु
सेवन करवु, (१८) मूल, कंद, स्कन्ध, छाल, प्रवाल, पत्र, पुष्प, फल, बीज अने
हरित-लीली आ दस प्रकारनी सच्चित्त वनस्पतिनु सेवन करवु, (१९) ओक वर्षमा दस
पाणीनां लेप लगावो, (२०) ओक वर्षमा दस मातृस्थान (कपट) सेवन करवा, (२१)
सच्चित्त पाणीथी बीजज्येला हाथ-पात्र आदिथी आपेला आधार-आदिनु सेवन

ભેદા, તત્ર હસ્તકર્મકરણ પ્રથમમ્ (૧) અતિક્રમવ્યતિક્રમાતિચારૈમેયુનસેવન દ્વિતીયમ્, (૨) રાત્રિભોજન તૃતીયમ્ (૩) આધાર્મસેવન ચતુર્થમ્ (૪), રાજપિણ્ડ-(નૃપતિપુદ્ગિય નિષ્પાદિત) ગ્રહણ પચ્ચમમ્ (૫), દ્રવ્યાદિના સા વર્થ ક્રીતમુદ્ધારગૃહીતમનિચ્છતઃ પુત્રભૃત્યાદેર્હસ્તાદપહૃત્યાઽન્યસમ્યન્ધિસાધારણાઽઽઠા રાદિક તાનનાપૃચ્છ્ય સ્વકીયમપિ સ્વસ્થાનાદપહૃત્ય ત્રા સાધવે દીયમાન-મિત્યેષા પશ્ચાના પિણ્ડાના સેવન પઠમ્ (૬), પુનઃ પુનઃ પ્રત્યાર્યાનભજ્જન સપ્તમમ્ (૭), પળ્માસાભ્યન્તરે સ્વગચ્છાન્નિઃસૃત્ય ગચ્છાન્તરગમનમઠમમ્ (૮), માસા ભ્યન્તર ઉદકત્રયલેપસેવન નવમમ્ (૯) માસાભ્યન્તરે માતૃસ્થાનત્રયસેવન દશ

અન્હે ‘શબલ’ કહતે હૈં, વે હક્કીસ (૨૧) હૈં—(૧) હસ્તકર્મ કરના (૨) અતિક્રમ વ્યતિક્રમ ઓર અતિચાર સે મૈયુન સેવન કરના, (૩) રાત્રિ ભોજન કરના, (૪) આધાર્મી આહાર આદિકા સેવન કરના, (૫) રાજપિણ્ડ લેના (૬) ‘કીય’ (ક્રીત)–સાધુ કે નિમિત્ત સ્વરીદે હુએ, ‘પામિચ્છે’ (પ્રામિત્ય)=ઉધાર લિયે હુએ, ‘અચ્છિજ્જ’ (અચ્છેદ્ય)=પુત્ર ભૃત્ય આદિ કે હાથ સે છીને હુએ, ‘અણિસિદ્ધ’ (અનિસૃષ્ટ)=અનેક કે હિસેસે કા આહાર આદિ અનસે વિના પૂછે દિયે હુએ, તથા ‘આહટ્ટુ દિજ્જમાણ’ (આહૃત્ય દીયમાન) સ્વસ્થાન સે સામને લાકર દિયે હુએ, આહાર આદિ કા સેવન કરના, (૭) પ્રત્યાખ્યાન કા વારમ્વાર ભગ કરના, (૮) છઠ મહીને સે પહેલે અપના ગચ્છ છોડ કર દૂસરે ગચ્છ મે જાના, (૯) એક મહીનેમે ત્રીન વાર ઉદક કા લેપ લગાના (નદી

કહે છે તે એકવીશ પ્રકારના છે (૧) હસ્તકર્મ કરવું, (૨) અતિક્રમ, વ્યતિક્રમ અને અતિચારથી મૈયુન સેવન કરવું (૩) રાત્રિ-ભોજન કરવું, (૪) આધાર્મી આહાર વગેરેનું સેવન કરવું, (૫) રાજપિંડ ગ્રહણ કરવું (૬) ‘કીય’ (ક્રીત) સાધુના નિમિત્ત ખરીદ કરેલા, ‘પામિચ્છે’ (પ્રામિત્ય) ઉધાર લીધેલા, ‘અચ્છિજ્જ’ (અચ્છેદ્ય) પુત્ર-નોકર આદિના હાથમાંથી છીનવી લીધેલા, ‘અણિસિદ્ધ’ (અનિસૃષ્ટ) અનેક માણસોના ભાગને આહાર વગેરે તેઓને પૂછ્યા વિના આપેલા તથા ‘આહટ્ટુ દિજ્જમાણ’ (આહૃત્ય દીયમાનમ્) પોતાના સ્થાનથી સામા આવીને લાવી આપેલા આહાર આદિનું સેવન કરવું, (૭) પ્રત્યાખ્યાનનો વારવાર ભગ કરવો, (૮) છ માસ પૂર્વે પોતાનો ગચ્છ ત્યજી બીજા ગચ્છમાં જવું, (૯) એક મહિનામાં

मम् (१०), मातृस्थानशब्देनात्र कपट (माया) गृह्यते । शय्यातरपिण्डसेवन-
मेकादशम् (११), ज्ञात्वा प्राणातिपातकरण द्वादशम् (१२), ज्ञात्वा मृपावाद-
करण त्रयोदशम् (१३), ज्ञात्वाऽदत्ताऽऽदान चतुर्दशम् (१४), ज्ञात्वा सचित्त-
पृथिव्युपवेशनादि पञ्चदशम् (१५) स्निग्धपृथिव्यामुपवेशन षोडशम् (१६),
सजीवपीठफलकादिसेवन सप्तदशम् (१७), मूल-कन्द-स्कन्ध-त्वक्-प्रवाल-
पत्र-पुष्प-फल-बीज-हरितादीनां सेवनमष्टादशम् (१८), सवत्सराभ्यन्तरे
दशोदकलेपसेवनमेकोनविंशतितमम् (१९) सवत्सराभ्यन्तरे दशमातृस्थानसेवन
विंशतितमम् (२०), सचित्तोदकरजोव्याप्तहस्तादिना दत्तस्याऽऽहारादेः सेवनमेक-
विंशतितमम् (२१) ॥ सू० १४ ॥

आदि से उतरना), (१०) एक महीने में तीन मातृस्थान (कपट)
सेवन करना, (११) शय्यातर पिण्ड का सेवन करना, (१२) जान-
बूझ कर प्राणातिपात करना, (१३) जानबूझ कर झूठ बोलना,
(१४) जानबूझ कर चोरी करना, (१५) जानबूझ कर सचित्त पृथ्वी
पर बैठना, (१६) स्निग्ध (गीली) पृथ्वी पर बैठना, (१७) जीव
सहित पीठ फलक आदि का सेवन करना, (१८) मूल-कन्द-
स्कन्ध-त्वक्-प्रवाल-पत्र-पुष्प-फल-बीज और हरित, इन दश
प्रकार की सचित्त वनस्पति आदि का सेवन करना, (१९) एक
वर्ष में दश उदक लेप लगाना, (२०) एक वर्ष में दश मातृस्थान
सेवन करना, (२१) सचित्त उदक से भीगे हुए (गीले) हस्तपात्र

त्रयु वार पाणीनां लेप लगावो (नदी विगेरे उतरवा), (१०) ओक मासमा
त्रयु मातृस्थाननु (कपटनु) सेवन करवु, (११) शय्यातरपिंड सेवन करवु, (१२)
जाणी भुजीने प्राणातिपात करवो, (१३) जाणी-सभञ्जेने अमत्य भोववु, (१४)
जाणी-सभञ्जेने चोरी करवी, (१५) जाणी-भुजीने सचित्त पृथ्वी उपर भेसवु,
(१६) पाणीथी बीजअली जमीन पर भेसवु, (१७) शुव सहित पीठफलक वगेरेनु
सेवन करवु, (१८) मूल, कंद, स्कन्ध, छाल, प्रवाल, पत्र, पुष्प, फल, बीज अने
हरित-लीली आ दस प्रकारनी सचित्त वनस्पतिनु सेवन करवु, (१९) ओक वर्षमा दस
पाणीनां लेप लगावो, (२०) ओक वर्षमा दस मातृस्थान (कपट) सेवन करवा, (२१)
सचित्त पाणीथी बीजअली हाथ-पात्र आदिथी आपेला आधार-आदिनु सेवन

ભેદાં, તત્ત્વ હસ્તકર્મકરણ પ્રથમમ્ (૧) અતિક્રમવ્યતિક્રમાતિચારૈર્મૈથુનસેવન
 દ્વિતીયમ્, (૨) રાત્રિભોજન તૃતીયમ્ (૩) આધાકર્મસેવન ચતુર્થમ્ (૪),
 રાજપિણ્ડ-(નૃપતિમુદ્દિગ્ય નિષ્પાદિત) ગ્રહણ પચ્ચમમ્ (૫), દ્રવ્યાદિના સાન્નિધ્ય
 ક્રીતમુદ્ધારગૃહીતમનિચ્છતઃ પુત્રભૃત્યાદેર્ઘસ્તાદપહૃત્યાઽન્યસમ્પન્નિધિસાધારણાઽઘા-
 રાદિક તાનનાપૃચ્છ્ય સ્વકીયમપિ સ્વસ્થાનાદપહૃત્ય યા સાધવે દીયમાન
 મિત્યેષા પશ્ચાન્ના પિણ્ડાના સેવન પષ્ટમ્ (૬), પુનઃ પુનઃ પ્રત્યાખ્યાનભક્ત્યન સપ્તમમ્
 (૭), પળમાસાભ્યન્તરે સ્વગચ્છાન્નિઃસૃત્ય ગચ્છાન્તરગમનમષ્ટમમ્ (૮), માસા-
 ભ્યન્તર ઉદકત્રયલેપસેવન નવમમ્ (૯) માસાભ્યન્તરે માતૃસ્થાનત્રયસેવન દશ

અને 'શબલ' કહેતે હે, વે ઇક્ષીસ (૨૧) હૈ—(૧) હસ્તકર્મ કરના (૨)
 અતિક્રમ વ્યતિક્રમ ઓર અતિચાર સે મૈથુન સેવન કરના, (૩)
 રાત્રિ ભોજન કરના, (૪) આધાકર્મો આહાર આદિકા સેવન કરના,
 (૫) રાજપિણ્ડ લેના (૬) 'કીય' (ક્રીત)—સાધુ કે નિમિત્ત સ્વરીદે હુણ,
 'પામિચ્છે' (પ્રામિત્ય)=ઉધાર લિયે હુણ, 'અચ્છિજ્જ' (અચ્છેદ્ય)=પુત્ર ભૃત્ય
 આદિ કે હાથ સે છીને હુણ, 'અણિસિદ્ધ' (અનિસૃષ્ટ)=અનેક કે હિસ્સે
 કા આહાર આદિ ઉનસે વિના પૂછે દિયે હુણ, તથા 'આહટ્ટુ દિજ્જમાણ'
 (આહૃત્ય દીયમાન) સ્વસ્થાન સે સામને લાકર દિયે હુણ, આહાર
 આદિ કા સેવન કરના, (૭) પ્રત્યાખ્યાન કા વારંવાર ભગ કરના,
 (૮) છઠ મહીને સે પહેલે અપના ગચ્છ છોડ કર દૂસરે ગચ્છ મે
 જાના, (૯) એક મહીનેમે ત્રીન વાર ઉદક કા લેપ લગાના (નદી

કહે છે તે એકવીશ પ્રકારના છે (૧) હસ્તકર્મ કરવું, (૨) અતિક્રમ, વ્યતિક્રમ
 અને અતિચારથી મૈથુન સેવન કરવું (૩) રાત્રિ-ભોજન કરવું, (૪) આધાકર્મો
 આહાર વગેરેનું સેવન કરવું, (૫) રાજપિંડ ગ્રહણ કરવું (૬) 'કીય' (ક્રીત)
 સાધુના નિમિત્ત ખરીદ કરેલા, 'પામિચ્છે' (પ્રામિત્ય) ઉધાર લીધેલા, 'અચ્છિજ્જ'
 (અચ્છેદ્ય) પુત્ર-નોકર આદિના હાથમાંથી છીનવી લીધેલા, 'અણિસિદ્ધ' (અનિસૃષ્ટ)
 અનેક માણસોના ભાગનો આહાર વગેરે તેઓને પૂછ્યા વિના આપેલા તથા
 'આહટ્ટુ દિજ્જમાણ' (આહૃત્ય દીયમાનમ્) પોતાના સ્થાનથી સામા આવીને લાવી
 આપેલા આહાર આદિનું સેવન કરવું, (૭) પ્રત્યાખ્યાનનો વારંવાર ભગ કરવો,
 (૮) છ માસ પૂર્વે પોતાનો ગચ્છ ત્યજી બીજા ગચ્છમાં જવું, (૯) એક મહિનામાં

परिपहः (१९), प्रज्ञापरिपहः (२०), अज्ञानपरिपहः (२१), दर्शनपरिपहः (२२) श्वेति, सम्बन्धस्तु यो मयेत्यादिनैव सर्वत्रेति प्रागुक्तं न विस्मर्त्तव्यम् ॥ सू० १५ ॥

॥ मूलम् ॥

तेवीसाए सूअगडज्झयणेहिं । चउवीसाए देवेहिं । पणवीसाए भावणाहिं । छव्वीसाए दसाकप्पववहाराणं उद्देसणकालेहि । सत्तावीसाए अणगारगुणेहिं ॥ सू० १६ ॥

॥ अथा ॥

‘त्रयोविंशत्या सूत्रकृताध्ययनैः । चतुर्विंशत्या देवैः । पञ्चविंशत्या भावनाभिः । षड्विंशत्या दशाकल्पव्यवहाराणामुद्देशनकाले । सप्तविंशत्याऽनगारगुणैः ॥ सू० १६ ॥

॥ टीका ॥

‘तेवी०’ इति । सूत्रकृताङ्गप्रथमश्रुतस्कन्धस्य षोडशाध्ययनानि प्रागुक्तानि तद्व्यतिरिक्तानि च द्वितीयश्रुतस्कन्धस्य पुण्डरीकाध्ययन-क्रियास्थानाध्ययना-ऽऽहारपरिज्ञाध्ययन-प्रत्याख्यानक्रियान्ययना-ऽऽचारश्रुताध्ययना-ऽऽर्द्रकुमार-अध्ययन-नालन्दीयाध्ययनानि सप्तेति मिलित्वा त्रयोविंशतिः सूत्रकृताध्ययनानि तैः ।

दर्शन । इन परिपहों को सम्यक् प्रकार न सहने से जो अतिचार किया गया हो ‘तो उससे मैं निवृत्त होता हूँ’ ॥ सू० १५ ॥

सूत्रकृताङ्ग के प्रथमश्रुतस्कन्ध के पूर्वोक्त सोलह (१६) अध्ययन और द्वितीय श्रुतस्कन्ध के (१) पुण्डरीक, (२) क्रियास्थान, (३) आहारपरिज्ञा, (४) प्रत्याख्यानक्रिया, (५) आचारश्रुत, (६) आर्द्रकुमार और (७) नालन्दीय, ये सात मिलाकर तेईस अध्ययनोंमें श्रद्धा प्ररूपणा आदि की न्यूनाधिकतासे, तथा दस भवनपति, आठ

(२१) अज्ञान, (२२) दर्शन, आ णावीस परिपहोने सम्यक्-इडा प्रक्षरे सहन न करवायी ने काछ अतिचार लाग्या होय तो तेमाथा हु निवृत्त थाउ छु (सू० १५)

सूत्रकृताङ्गना प्रथम श्रुतस्कन्धना पूर्वोक्त १६ (सोल) अध्ययन अने भीम श्रुतस्कन्धना (१), पुण्डरीक (२) क्रियान्थान, (३) आहारपरिज्ञा, (४) प्रत्याख्यान क्रिया, (५) आचारश्रुत, (६) आर्द्रकुमार अने (७) नालन्दीय, आ सात अध्ययन मेणवीने कुल तेवीस (२३) अध्ययनोमा श्रद्धाप्ररूपणा-वगेरेनी न्यूनाधिकतायी, तथा दस भवनपति, आठ व्यतर, पाच न्योतिपी अने ओक

॥ મૂલમ્ ॥

વાવીસાણ પરિસહેહિં ॥ સૂ૦ ૧૫ ॥

॥ છાયા ॥

દ્વાવિંશત્યા પરિપદૈઃ ॥ સૂ૦ ૧૫ ॥

॥ ટીકા ॥

‘પરિસહેહિં’ પરિ=સમન્તાત્ સદ્યન્તે=ક્ષમ્યન્તે કર્મનિર્જરાર્થે મોક્ષાર્થિ-
ભિરિતિ પરિપદાસ્તૈઃ, તે યથા ક્ષુધાપરિપદઃ (૧), પિપાસાપરિપદઃ (૨), શીત
પરિપદઃ (૩), ઉષ્ણપરિપદઃ (૪), દશમશકપરિપદઃ (૫), અચેલપરિપદઃ (૬),
અરતિપરિપદઃ (૭), સ્ત્રીપરિપદઃ (૮), ચર્યા-(વિહાર) પરિપદઃ (૯), નૈષેધિ-
કીપરિપદઃ (૧૦), શય્યાપરિપદઃ (૧૧), આક્રોશપરિપદઃ (૧૨), વધપરિ-
પદઃ (૧૩), યાચનાપરિપદઃ (૧૪), અલાભપરિપદઃ (૧૫), રોગપરિપદઃ (૧૬),
તૃણસ્પર્શપરિપદઃ (૧૭), જલ [મલ]—પરિપદઃ (૧૮), ‘સત્કારપુરસ્કાર-

આદિ સે દિયે હુણ આહાર આદિ કા સેવન કરના, इनसे जो
अतिचार हुआ हो ‘तो उससे मैं निवृत्त होता हूँ’ ॥ સૂ૦ ૧૪ ॥

મોક્ષાર્થી જિન્હે કર્મોં કી નિર્જરા કે લિયે સહન કરતે હૈં
उन्हें ‘परिपद’ कहते हैं वे चाईस हैं—

(૧) ક્ષુધા, (૨) પિપાસા, (૩) શીત, (૪) ઉષ્ણ, (૫) દશમશક,
(૬) અચેલ, (૭) અરતિ, (૮) સ્ત્રી, (૯) ચર્યા (ચલના), (૧૦)
નૈષેધિકી (બેઠના), (૧૧) શય્યા, (૧૨) આક્રોશ, (૧૩) વધ,
(૧૪) યાચના, (૧૫) અલાભ, (૧૬) રોગ, (૧૭) તૃણસ્પર્શ, (૧૮)
મલ, (૧૯) સત્કારપુરસ્કાર, (૨૦) પ્રજ્ઞા, (૨૧) અજ્ઞાન, (૨૨)

કરવુ, -એ સર્વથી જે કોઈ અતિચાર લાગ્યા હોય તો તેમાંથી હું નિવૃત્ત થાઉં છું’
(સૂ૦ ૧૪)

મોક્ષાર્થી જીવો કર્મોની નિર્જરા કરવા માટે જે સહન કરે છે તેને
‘પરિપદ’ કહે છે અને તે પરિપદ બાવીસ-૨૨ પ્રકારના છે (૧) ક્ષુધા ભૂખ,
(૨) પિપાસા (તૃષ્ણા), (૩) શીત (ઠંડી), (૪) ઉષ્ણ (તાપ), (૫) દશમશક (ડાસ)
(મચ્છર), (૬) અચેલ, (૭) અરતિ, (૮) સ્ત્રી, (૯) ચર્યા (ચાલવું તે), (૧૦) નૈષેધિકી
(બેસવું), (૧૧) શય્યા, (૧૨) આક્રોશ, (૧૩) વધ, (૧૪) યાચના (૧૫) અલાભ,
(૧૬) રોગ, (૧૭) તૃણસ્પર્શ, (૧૮) મલ, (૧૯) સત્કારપુરસ્કાર, (૨૦) પ્રજ્ઞા,

૧-અત્ર સત્કારો વસ્ત્રાદિના, પુરસ્કારશ્વાભ્યુત્થાનાદિના ।

मपि वृक्षादीनामच्छेदनं^३, साधारणपिण्डस्याधिकतो न सेवनं^४, साधुवैयावृत्यकरणं^५ चेति
 पञ्च तृतीयमहाव्रतस्य (३)। स्त्री-पशु-पण्डकरहितवसतिसेवनं^१, स्त्रीकथावर्जनं^२, स्त्र्य-
 द्रोपाङ्गाऽनवलोकनं^३, पूर्वकृतसुरतरतेरस्मरणं^४, प्रतिदिन भोजनपरित्यागश्च^५ पञ्च
 चतुर्थमहाव्रतस्य (४)। प्रशस्ताऽप्रशस्तशब्द-रूप-गन्ध-रस-स्पर्शेषु^६ रागद्वेषवर्जनं,
 शब्दादिभेदात्पञ्च पञ्चममहाव्रतस्ये (५) ति मिलित्वा पञ्चविंशतिर्भावनास्ताभिः।
 'दसा कल्प व्यवहाराणां' दशा-कल्प व्यवहाराणां=दशाश्रुतस्कन्ध-बृहत्कल्प व्यवहारसू-
 त्राणां यथाक्रमं दश-पट्-दशसख्यकाध्ययनयुक्तानाम् 'उद्देशणकालेहि' उद्देश-
 नकालैः=पठनसमयैः। 'सत्तावीसाए' सप्तविंशत्या, 'अणगारगुणेहि' अविद्यमान-

पीठ फलक आदि के लिए भी वृक्षादि को नहीं काटना, (१४) साधारण
 पिण्डका अधिक सेवन नहीं करना, (१५) साधुकी वैयावृत्य (वैयावच्च)
 करना। चौथे महाव्रत की पाँच भावना-(१६) स्त्री-पशु-पण्डक-रहित
 स्थानका सेवन करना, (१७) स्त्रीकथा वर्जन करना, (१८) स्त्रियों
 के अगोपागका अवलोकन नहीं करना, (१९) पूर्वकृत काम भोगका
 स्मरण नहीं करना, (२०) प्रतिदिन सरस भोजन का त्याग करना।
 पाँचवे महाव्रत की पाँच भावना-(२१) इष्टानिष्ट शब्द, (२२) रूप,
 (२३) गन्ध, (२४) रस, और (२५) स्पर्शमें राग-द्वेष नहीं करना।
 इन पचीस भावनाओं के विषयमें तथा दशाश्रुतस्कन्ध के दस,
 बृहत्कल्पके छह और व्यवहारसूत्र के दस, इन छत्तीस अध्ययनों
 के पठनकालमें, और जिनके द्रव्यसे-मिट्टी आदिका बना हुआ

तृण-काष्ठानिर्मु अवग्रह देवु (१३) पीठ फलक आदि भाटे पणु वृक्षने कापणु
 नहि ते, (१४) साधारण पिण्डनु अधिक सेवन करवु नहि ते, (१५) साधुना
 वैयावृत्य (वैयावच्च) करवी योथा महाव्रतनी पाय लावना-(१६) स्त्री-पशु-पण्डक-
 रहित स्थानकनु सेवन करवु, (१७) स्त्रीकथा वर्जन करवु, (१८) स्त्रीयोना अगो-
 पागनु अवलोकन नहि करवु, (१९) पूर्वकृत कामभोगनु स्मरण नहि करवु, (२०)
 प्रतिदिन सरस भोजननो त्याग करवो पायभा महाव्रतनी पाय लावना-
 (२१) इष्टानिष्ट शब्द, (२२) रूप, (२३) गन्ध, (२४) रस अने (२५) स्पर्शभा
 राग-द्वेष नहि करवो आ पचीस भावनायोना विषयभा तथा दशाश्रुतस्कन्धना
 दस, बृहत्कल्पना छ अने व्यवहारसूत्रना दस, आ छत्तीस अध्ययननो पठन

‘ચતુવીસાણ દેવેહિ’ દશ મન્વનપતયઃ, અષ્ટૌ વ્યન્તરાઃ, પચ્ચ જ્યૌતિષિકાઃ, ઇકો વૈમાનિકઃ, ઇતિ મિલિત્વા ચતુર્વિંશતિર્દેવાસ્તૈઃ, અથવા ચતુર્વિંશતિર્તીર્થકરૈઃ । ‘પણ-વીસાણ ભાવણાહિ’ ભાવ્યતે=ગુણૈર્વાસ્યતે આત્મા યામિરિતિ, ભાવ્યન્તે=અભ્યસ્ય-

ન્તે કર્મમલક્ષાલનાર્થે મુમુક્ષુભિરિતિ ત્રા ભાવનાઃ—૧૨૩૪

નિક્ષેપરૂપાઃ પચ્ચ પ્રથમમહાવ્રતસ્ય (૧) । આલોચ્ય સમાપણ ક્રોધ-લોભ-ભય-

હાસ્યેષ્વનૃતવિવર્જનશ્ચેતિ પચ્ચ દ્વિતીયમહાવ્રતસ્ય (૨) । અષ્ટાદશવિધશુદ્ધવસતે-

યાચનાપૂર્વક^૧ સેવન પ્રતિદિનમવગ્રહ યાચિત્વા તૃણકાષ્ઠાદિગ્રહણ, પીઠફલકાર્થ-

વ્યન્તર, પાંચ જ્યોતિષી ઓર એક વૈમાનિક, હન ચૌવીસ પ્રકાર કે દેવોં કી અથવા ચૌવીસ તીર્થકરોં કી આશાતના સે જો અતિચાર લગા હો તો ઉસસે મેં નિવૃત્ત હોતા હું ।

જિસકે દ્વારા આત્મા ગુણયુક્ત હોતા હૈ અથવા કર્મમલ ધોને કે લિયે મોક્ષાર્થી જિસકા અભ્યાસ કરતે હૈ, ઉસે ભાવના કહતે હૈ । પ્રત્યેક મહાવ્રતકી પાંચ પાંચ ભાવનાઈ હોને સે વે સબ મિલકર પચીસ હૈ । ઉનમે પહેલે મહાવ્રત કી પાચ ભાવના—(૧) ઈર્ષ્યા, (૨) મન, (૩) વચન, (૪) એષણા, (૫) આદાનનિક્ષેપ । દૂસરે મહાવ્રતકી પાંચ ભાવના—(૬) વિચાર કર બોલના, (૭) ક્રોધ, (૮) લોભ, (૯) ભય, (૧૦) હાસ્યવશ અસત્ય નહીં બોલના । ત્રીસરે મહાવ્રતકી પાંચ ભાવના—(૧૧) અઠાર પ્રકાર કે શુદ્ધ સ્થાનકી યાચના કરકે સેવન કરના, (૧૨) પ્રતિદિન તૃણ કાષ્ઠાદિકા અવગ્રહ લેના, (૧૩)

વૈમાનિક, આ ચૌવીશ પ્રકારના દેવોની અથવા તો ચૌવીશ તીર્થકરોની આશાતનાથી જે અતિચાર લાગ્યા હોય તો તેમાંથી હું નિવૃત્ત થાઉં છું

જેના દ્વારા આત્મા, ગુણયુક્ત થાય છે, અથવા કર્મમલ ધોવા માટે મોક્ષાર્થી જીવો જેનો અભ્યાસ કરે છે તેને ભાવના કહે છે, પ્રત્યેક મહાવ્રતની પાચ-પાચ ભાવનાઓ હોવાથી તે સર્વ મલીને કુલ પચીસ ભાવના થાય છે તેમાં પહેલા મહાવ્રતની પાચ ભાવના (૧) ઈર્ષ્યા, (૨) મન, (૩) વચન, (૪) એષણા, (૫) આદાનનિક્ષેપ બીજા મહાવ્રતની પાચ ભાવના (૬) વિચારીને બોલવું, (૭) ક્રોધ, (૮) લોભ, (૯) ભય, (૧૦) હાસ્યવશ અસત્ય નહિ બોલવું તે ત્રીજા મહાવ્રતની પાચ ભાવના—(૧૧) અઠાર પ્રકારના શુદ્ધ સ્થાનની યાચના કરીને સેવન કરવું, (૧૨) પ્રતિદિન

मपि वृक्षादीनामच्छेदनं^३, साधारणपिण्डस्याधिकृतो न सेवनं^४, साधुवैयावृत्यकरणं^५ चेति पञ्च तृतीयमहाव्रतस्य (३)। स्त्री-पशु-पण्डकरहितवसतिसेवनं^१, स्त्रीकथावर्जनं^२, स्नान-द्रोपाङ्गाऽनवलोकनं^३, पूर्वकृतसुरतरतेरस्मरणं^४, प्रतिदिनं भोजनपरित्यागश्च^५ति पञ्च चतुर्थमहाव्रतस्य (४)। प्रशस्ताऽप्रशस्तशब्द-रूप-गन्ध-रस-स्पर्शेषु^६ रागद्वेषवर्जनं^७, शब्दादिभेदात्पञ्च पञ्चममहाव्रतस्ये (५) ति मिलित्वा पञ्चविंशतिर्भावनास्ताभिः। 'दसा रूप व्यवहाराणां' दशा कल्प व्यवहाराणां=दशाश्रुतस्कन्ध-वृहत्कल्प व्यवहारसूत्राणां यथाक्रमं दश-पङ्क्त-दशसंख्यकाध्ययनयुक्तानाम् 'उद्देशणकालेहि' उद्देशनकालैः=पठनसमयैः। 'सत्तावीसाए' सप्तविंशत्या, 'अणगारगुणेहि' अविग्रमान-

पीठ फलक आदि के लिए भी वृक्षादि को नहीं काटना, (१४) साधारण पिण्डका अधिक सेवन नहीं करना, (१५) साधुकी वैयावृत्य (वैयावच) करना। चौथे महाव्रत की पाँच भावना-(१६) स्त्री-पशु-पण्डक-रहित स्थानका सेवन करना, (१७) स्त्रीकथा वर्जन करना, (१८) स्त्रियों के अगोपागका अवलोकन नहीं करना, (१९) पूर्वकृत काम भोगका स्मरण नहीं करना, (२०) प्रतिदिन सरस भोजन का त्याग करना। पाँचवे महाव्रत की पाँच भावना-(२१) इष्टानिष्ट शब्द, (२२) रूप, (२३) गन्ध, (२४) रस, और (२५) स्पर्शमें राग-द्वेष नहीं करना। इन पच्चीस भावनाओं के विषयमें तथा दशाश्रुतस्कन्ध के दस, वृहत्कल्पके छह और व्यवहारसूत्र के दस, इन छत्तीस अध्ययनों के पठनकालमें, और जिनके द्रव्यसे-मिट्टी आदिका बना हुआ

तृथ-काष्ठादिनु अवग्रह लेवु (१३) पीठ फलक आदि माटे पशु वृक्षने कापवु नहि ते, (१४) साधारण पिंडनु अधिक सेवन करवु नहि ते, (१५) साधुना वैयावृत्य (वैयावच) करवी सोथा महाव्रतनी पाय भावना-(१६) स्त्री-पशु-पण्डक रहित स्थानकनु सेवन करवु, (१७) स्त्रीकथा वर्जन करवु, (१८) स्त्रीओना अगोपागनु अवलोकन नहि करवु, (१९) पूर्वकृत कामभोगनु स्मरण नहि करवु, (२०) प्रतिदिन सरस भोजनने त्याग करवो पायभा महाव्रतनी पाय भावना-(२१) इष्टानिष्ट शब्द, (२२) रूप, (२३) गन्ध, (२४) रस अने (२५) स्पर्शभा राग-द्वेष नहि करवो आ पच्चीस भावनाओना विषयभा तथा दशाश्रुतस्कन्धना दश, पृष्ठकल्पना छ अने व्यवहारसूत्रना दस, आ छ वीस अध्ययनने पठन

मगार=द्रव्यतो गृह भावतः कषायमोहनीय येषा तेऽनगाराः=साधवस्तेषा गुणाः= पञ्चमहाव्रतानि, पञ्चेन्द्रियनिग्रहाः, चत्वारः क्रोधादिविवेकाः, अन्तरात्मशुद्धिसञ्जात भावसत्य, प्रत्युपेक्षणादिक्रियायामुपयुक्तत्वं करणसत्य, योगाना मनआदीना यथार्थत्वं योगसत्यमिति भाव-करण-योगसत्यानि त्रीणि, क्षमैका, विरागितैका प्रमिद्धे इमे, अकुशलाना मनो-वाक्कायाना निरोधास्त्रयः, ज्ञान-दर्शन-चारित्र सम्पन्नतास्तिस्रः, शीतादिवेदनासहिष्णुत्वमेव, मारणान्तिकोपसर्गसहनशीलता चैकेति सङ्कलनेन सप्तविंशतिरनगारगुणास्तैः ॥ सू० १६ ॥

॥ मूलम् ॥

अष्टावीसाण आयारप्पकप्पेहि । एगूणतीसाण पावसुयप्पसगेहि ॥ सू० १७ ॥

अगार (घर) और भावसे-कषायमोहनीयरूप अगार नहीं है उन अनगार के (१-५) पाँच महाव्रत, (६-१०) पाँच इन्द्रियनिग्रह, (११-१४) चार कषायजय, (१५) भावसत्य (अन्तरात्मशुद्धि), (१६) करणसत्य (प्रतिलेखनादि क्रिया में उपयोग), (१७) योगसत्य (शुद्धमार्गमें मनयोग आदि की प्रवृत्ति करना), (१८) क्षमा, (१९) विरागिता-वैराग्य, (२०) अप्रशस्त मन (२१) वचन (२२) काय का निरोध, (२३) सम्यग् दर्शन, (२४) ज्ञान, (२५) चारित्र से युक्तता, (२६) शीत आदि वेदना का सहना, और (२७) मारणान्तिक उपसर्ग सहना । इन सत्ताईस अनगार गुणों के विषय में जो कोई अतिचार किया गया हो 'तो उससे मैं निवृत्त होता हूँ ॥ सू० १६ ॥

समयमा, અને જેના દ્રવ્યથી-માટી આદિનું બનેલું મકાન (ઘર) અને ભાવથી-કષાય મોહનીય રૂપ અગાર નથી તે અણુગારના (૧-૫) પાંચ મહાવ્રત (૬-૧૦) પાંચ ઇન્દ્રિયનિગ્રહ (૧૧-૧૪) ચાર કષાય-જય, (૧૫) ભાવસત્ય (અન્તરાત્મશુદ્ધિ), (૧૬) કરણસત્ય (પ્રતિલેખનાદિ ક્રિયામાં ઉપયોગ), (૧૭) યોગસત્ય (શુદ્ધ માર્ગમાં મનોયોગ આદિની પ્રવૃત્તિ કરવી), (૧૮) ક્ષમા, (૧૯) વૈરાગ્ય, (૨૦) અપ્રશસ્ત મન, (૨૧) વચન અને (૨૨) કાયાનું નિરોધ, (૨૩) સમ્યગ્દર્શન, (૨૪) જ્ઞાન અને (૨૫) ચારિત્રથી યુક્તતા, (૨૬) શીત આદિ વેદનાઓનું સહન કરવું અને (૨૭) મારણાન્તિક ઉપસર્ગ સહન કરવો આ સત્તાવીશ અણુગારના ગુણોના વિષયમાં જે કોઈ અતિચાર લાગ્યા હોય તો તેમાંથી હું નિવૃત્ત થાઉં છું' (સૂ. ૧૬)

॥ छाया ॥

अष्टाविंशत्याऽऽचारप्रकल्पैः । एकोनविंशता पापश्रुतप्रसङ्गैः ॥ सू० १७ ॥

॥ टीका ॥

‘अष्टावीसाए’ अष्टाविंशत्या, ‘आचारप्रकल्पेहि’ आचारः=आचाराङ्ग पञ्चविंशत्यध्ययनात्मक, तत्र (१) शस्त्रपरिज्ञा-(२) लोकविजय-(३)-शीतोष्णीय-(४) सम्यक्त्व-(५) लोकसार-(६) धूत-(७) विमोक्षो-(८) उपधानश्रुत-(९) महापरिज्ञारूपाध्ययननवकः प्रथमश्रुतस्कन्धः, (१-२) पिण्डैषणा-शम्ये-(३) श्र्या-(४) भाषा-(५) वस्त्रैषणा-(६-७) पात्रैषणाऽवग्रहप्रतिमाः, (८) स्थानसप्तैकिका (९) नैषेधिकीसप्तैकिका (१०) उच्चारप्रस्रवणसप्तैकिका (११) शब्दसप्तैकिका (१२) रूपसप्तैकिका (१३) परक्रियासप्तैकिका (१४)

आचाराङ्ग के दो श्रुतस्कन्ध हैं, उनमें प्रथम के नव अध्ययन हैं-(१) शस्त्रपरिज्ञाध्ययन (२) लोकविजयाध्ययन, (३) शीतोष्णनामाध्ययन, (४) सम्यक्त्वनामाध्ययन, (५) लोकसाराध्ययन, (६) धूताध्ययन, (७) विमोक्षाध्ययन, (८) उपधानश्रुताध्ययन, (९) महापरिज्ञाध्ययन । द्वितीय श्रुतस्कन्ध के सोलह-(१) पिण्डैषणाध्ययन, (२) शम्याध्ययन, (३) ईर्याध्ययन, (४) भाषाध्ययन, (५) वस्त्रैषणाध्ययन, (६) पात्रैषणाध्ययन, (७) अवग्रहप्रतिमाध्ययन, (८) स्थानसप्तैकिकाध्ययन, (९) नैषेधिकीसप्तैकिकाध्ययन, (१०) उच्चारप्रस्रवणसप्तैकिकाध्ययन, (११) शब्दसप्तैकिकाध्ययन, (१२) रूपसप्तैकिकाध्ययन, (१३) परक्रियासप्तैकिकाध्ययन, (१४) अन्योन्य-

आचाराङ्गना मे श्रुतस्कन्ध छे, तेभा प्रथमना नव अध्ययन छे (१) शस्त्रपरिज्ञाध्ययन (२) लोकविजयाध्ययन (३) शीतोष्णनामाध्ययन, (४) सम्यक्त्वनामाध्ययन, (५) लोकसाराध्ययन, (६) धूताध्ययन (७) विमोक्षाध्ययन, (८) उपधानश्रुताध्ययन, (९) महापरिज्ञाध्ययन । द्वितीय श्रुतस्कन्धना सोलह अध्ययन छे-(१) पिण्डैषणाध्ययन (२) शम्या, (३) ईर्या, (४) भाषा, (५) वस्त्रैषणा, (६) पात्रैषणा (७) अवग्रहप्रतिमाध्ययन, (८) स्थानसप्तैकिकाध्ययन, (९) नैषेधिकी सप्तैकिकाध्ययन (१०) उच्चारप्रस्रवणसप्तैकिकाध्ययन (११) शब्दसप्तैकिकाध्ययन (१२) रूपसप्तैकिकाध्ययन (१३) परक्रियासप्तैकिकाध्ययन (१४) अन्योन्यक्रिया

અન્યોન્યક્રિયાસપ્તૈકિકા, (૧૫) ભાવના, (૧૬) વિમુક્તિશ્ચેતિ પોઢશાધ્યયનાત્મકો દ્વિતીયશ્રુતસ્તન્ધ, इति मिलित्वा पञ्चविंशतिरभ्ययनानि, प्रकल्पः=प्रकृष्टः कल्पः स (१-२) चोद्धाताऽनुद्धाता-ऽऽ-(३) 'रोपणारूपाध्ययनत्रयात्मकनिशीथापर नामक इति सकल' सङ्कलनयाऽष्टाविंशतिरभ्ययनानि, तथा चाऽऽचारपदेन पञ्चविंशतेरध्ययनानां, प्रकल्पपदेन च त्रयाणामध्ययनानां ग्रहणमभिप्रेत्य आचाराश्च प्रकल्पाश्चेति द्वन्द्वेनाऽऽचारप्रकल्पास्तैरिति बहुवचनमुक्तम् ॥

‘एगूणतीसाए’ एकोनत्रिंशता, ‘पावसुयप्पसगेहि’ पातयन्त्यात्मान दुर्गताविति पापानि, श्रूयन्ते गुरुमुखादिति श्रुतानि=शास्त्राणि, पापानि=पापरूपाणि श्रुतानि, पापश्रुतानि तेषां प्रसङ्गाः=तद्विवेचनरूपास्तदभ्यसनरूपा वा पापश्रुत-प्रसङ्गास्तै, तत्र पापश्रुतानि यथा-भौमोत्पातस्वप्ना-ऽन्तरिक्षाद्ग-स्वर-व्यञ्जन-

ક્રિયાસપ્તૈકિકાધ્યયન, (૧૫) ભાવનાધ્યયન, (૧૬) વિમુક્તાધ્યયન, इस प्रकार दोनों मिलाकर पचीस अध्ययन हुए, और निशीथ के तीन—(१) उद्धात, (२) अनुद्धात, (३) आरोपणा, इन अट्ठाईस अध्ययनों की श्रद्धा प्ररूपणा आदिमें जो कोई अतिचार किया गया हो ‘तो उससे मैं निवृत्त होता हूँ’ ।

આત્મા કો દુર્ગતિ મેં ડાલનેવાલે કો ‘પાપ’ કહતે હૈં, જો ગુરુમુખ સે સુના જાય ઉસે ‘શ્રુત’ કહતે હૈં, ઓર પાપરૂપ શ્રુત કો ‘પાપશ્રુત’ કહતે હૈં, વહ ઉન્તીસ પ્રકાર કા હૈ—(૧) ભૌમ-ભૂકમ્પ આદિ કે ફલ કા પ્રતિપાદક શાસ્ત્ર, (૨) ઉત્પાત-અપને આપ

સપ્તૈકિકાધ્યયન (૧૫) ભાવનાધ્યયન, (૧૬) વિમુક્તાધ્યયન એ રીતે બન્ને મળીને પચીસ અધ્યયન થયા, અને નિશીથના ત્રણ (૧) ઉદ્ધાત, (૨) અનુદ્ધાત, (૩) આરોપણ એ પ્રમાણે એ અઠાવીસ અધ્યયનોની શ્રદ્ધા પ્રરૂપણા આદિમાં જે કાંઈ અતિચાર લાગ્યા હોય ‘તો તેમાંથી હું નિવૃત્ત થાઉ છું’

આત્માને દુર્ગતિમાં નાખનાર ક્રિયા તેને ‘પાપ’ કહે છે જે ગુરુના મુખથી સાંભળવામાં આવે તેને ‘શ્રુત’ કહે છે અને પાપરૂપ શ્રુતને ‘પાપશ્રુત’ કહે છે તે ઓગણત્રીસ પ્રકારના છે (૧) ભૌમ-ભૂકમ્પ વગેરેના ફલને કહેનારા શાસ્ત્ર (૨) ઉત્પાત-પોતાની મેળે-કુદરતી રીતે થનારી-લોહીની વૃષ્ટિના ફળને જણાવનારા

૧-‘સકલ’-આચાર-પ્રકલ્પયોરુભયોરિતિ ભાવ ।

लक्षणरूपाण्यष्टौ। प्रत्येकसूत्र (मूल)-वृत्ति (टीका) वार्तिक-(आकाङ्क्षिकदेशप्रण)
-भेदाच्चतुर्विंशतिः, विकथानुयोग-विद्यानुयोग-मन्त्रानुयोग-योगानुयोगा-ऽन्य-
तैर्यिःप्रवृत्तानुयोगाश्चेति मिलित्वा एकोनत्रिंशत् । तत्र भौम=भूकम्पादिफल-
प्रतिपादक शास्त्रम् । उत्पात=स्वाभाविकरुधिरवृष्ट्यादिफलप्रतिपादकम् । १स्वप्न=
स्वप्नफलप्रतिपादकम् । अद्भुतम्=अद्भुतस्फुरणादिफलप्रतिपादकम् । स्वर=जीवाजीव-
गतस्वरफलप्रतिपादकम् । व्यञ्जयतेऽनेनेति व्यञ्जन=चिह्न, तत्सम्बन्धान्छास्त्रमपि
व्यञ्जन, तच्च जन्मोत्तरकालजायमानशरीरस्थतिलमपाऽऽदिचिह्नविशेषशुभाशुभ-
फलसूचकम् । लक्षण=शरीरसदृजातमानोन्मानप्रमाणादिफलविधायकम् । इत्येव
चतुर्विंशतिः । तथा विकथानुयोग =कामोपायप्रतिपादकानि वात्स्यायनप्रणीत-

होनेवाली रुधिर आदि की वृष्टि के फल का कहनेवाला शास्त्र,
(३) स्वप्न-स्वप्नफलप्रतिपादक शास्त्र, (४) अन्तरिक्ष-आकाश में
ग्रहयुद्ध आदि के फलका सूचक शास्त्र, (५) अग फडकने के फल
का सूचक शास्त्र, (६) स्वर-जीव आदि के स्वर के फल का प्रदर्शक
शास्त्र, (७) व्यञ्जन-शरीर के तिल, मष आदि के फल का बोधक
शास्त्र, (८) लक्षण-शरीर के साथ होने वाले मान उन्मान और
प्रमाण के फलका प्रतिपादक शास्त्र ये आठ, सूत्र (मूल), वृत्ति
(अर्थ) और वार्तिक (आकाङ्क्षित अर्थ की पूर्ति) ऐसे एक एक
के तीन तीन भेद होने से आठत्रिक चौबीस हुए । (१) विकथा-
नुयोग-कामोदीपकशास्त्र वात्स्यायन प्रणीत कामसूत्र आदि, (२)

शास्त्र (३) स्वप्न-स्वप्नफलप्रतिपादन करनेवाला शास्त्र (४) अन्तरिक्ष-आका
शमा ग्रहयुद्ध आदिना इलने जलुवनाइ शास्त्र (५) अग फडके तेनु इण जलु
वनाइ शास्त्र (६) स्वर-जीव आदिना स्वरना इणने जलुवनाइ शास्त्र (७) व्य
ञ्जन-शरीरमा तिल, मषा आदिना इलने जलुवनाइ शास्त्र (८) लक्षण-शरीरना
साथे थवावाणा मान उन्मान अने प्रमाणना इलने जलुवनाइ शास्त्र ये आठ
सूत्र (मूल), वृत्ति (अर्थ) अने वार्तिक (आकाङ्क्षित अर्थनी पूर्ति) ये प्रमाणे
येक-येकना त्रयु-त्रयु लेह होवाथी त्रयु अद्भुत येवीश थाय छे, (१) विकथानु
योग-कामोदीपकशास्त्र-वात्स्यायन रचित कामसूत्रादि, (२) विद्यानुयोग-शिक्षणी

१-स्वप्नः=स्वप्नसम्बन्धिफलाफलविषयोऽस्मिन्नस्तीति स्वप्नम्, अर्श आदि-
त्वान्मत्वर्थीयोऽच्प्रत्ययस्तेन 'स्वप्न' इति जातम् ।

અન્યોન્યક્રિયાસપ્તૈકિકા, (૧૫) ભાવના, (૧૬) ત્રિમુક્તિશ્ચેતિ પોઢશાધ્યયનાત્મકો
 ઢિતીયશ્રુતસ્મન્ધઃ, ઇતિ મિલિત્યા પચ્ચવિંશતિરધ્યયનાનિ, પ્રકલ્પઃ=પ્રકૃષ્ટઃ કલ્પઃ
 સ (૧-૨) ચોદ્ધાતાઽનુદ્ધાતા-ઽઽ-(૩) 'રોપણારૂપાધ્યયનત્રયાત્મકનિશીથાપર
 નામક ઇતિ સકલ' સઙ્કલનયાઽષ્ટાવિંશતિરધ્યયનાનિ, તથા ચાઽઽચારપદેન
 પચ્ચવિંશતેરધ્યયનાના, પ્રકલ્પપદેન ચ ત્રયાણામધ્યયનાના ગ્રહણમભિપ્રેત્ય આચારાશ્ચ
 પ્રકલ્પાશ્ચેતિ દ્વન્દ્વેનાઽઽચારપ્રકલ્પાસ્તૈરિતિ વહુચ્ચનમુક્તમ્ ॥

‘एगूणतीसाए’ एकोनविंशता, ‘पावसुयप्पसगेहिं’ पातयन्त्यात्मान
 दुर्गताविति पापानि, श्रूयन्ते गुरुमुखादिति श्रुतानि=शास्त्राणि, पापानि=पापरूपाणि
 श्रुतानि, पापश्रुतानि तेषा प्रसङ्गा.=तद्विवेचनरूपास्तदभ्यसनरूपा वा पापश्रुत-
 प्रसङ्गास्तै, तत्र पापश्रुतानि यथा-भौमोत्पातस्वप्ना-ऽन्तरिक्षाङ्ग-स्वर-व्यञ्जन-

क्रियासप्तैકિકાધ્યયન, (૧૫) ભાવનાધ્યયન, (૧૬) વિમુક્તાધ્યયન,
 હસ પ્રકાર દોનોં મિલાકર પચ્ચીસ અધ્યયન હુણ, ઓર નિશીથ કે
 તીન—(૧) ઉદ્ધાત, (૨) અનુદ્ધાત, (૩) આરોપણા, इन अट्ठाईस
 अध्ययनों की श्रद्धा प्ररूपणा आदिमें जो कोई अतिचार किया गया
 हो ‘तो उससे मैं निवृत्त होता हूँ’ ।

આત્મા કો દુર્ગતિ મેં ડાલનેવાલે કો ‘પાપ’ કહતે હેં, જો
 ગુરુમુખ સે સુના જાય ઉસે ‘શ્રુત’ કહતે હે, ઓર પાપરૂપ શ્રુત
 કો ‘પાપશ્રુત’ કહતે હે, વહ ઉન્તીસ પ્રકાર કા હે—(૧) ભૌમ-
 ભૂકમ્પ આદિ કે ફલ કા પ્રતિપાદક શાસ્ત્ર, (૨) ઉત્પાત-અપને આપ

સપ્તૈકિકાધ્યયન (૧૫) ભાવનાધ્યયન, (૧૬) વિમુક્તાધ્યયન એ રીતે બન્ને મળીને
 પચ્ચીસ અધ્યયન થયા, અને નિશીથના ત્રણ (૧) ઉદ્ધાત, (૨) અનુદ્ધાત, (૩) આરો-
 પણા એ પ્રમાણે એ અઠાવીસ અધ્યયનોની શ્રદ્ધા પ્રરૂપણા આદિમા જે કાંઈ અતિચાર
 લાગ્યા હોય ‘તો તેમાથી હું નિવૃત્ત થાઉ છું’

આત્માને દુર્ગતિમા નાખનાર ક્રિયા તેને ‘પાપ’ કહે છે જે ગુરુના મુખથી
 સાભળવામા આવે તેને ‘શ્રુત’ કહે છે અને પાપરૂપ શ્રુતને ‘પાપશ્રુત’ કહે છે
 તે ઓગણત્રીસ પ્રકારના છે (૧) ભૌમ-ભૂકમ્પ વગેરેના ફલને કહેનારા શાસ્ત્ર
 (૨) ઉત્પાત-પોતાની મેળે-કુદરતી રીતે થનારી-લોહીની વૃષ્ટિના ફળને જણાવનારા

नीयशब्देन सामान्यतोऽष्टविध कर्म विशेषतश्चाष्टविधकर्मान्तर्गत चतुर्थं कर्म, तस्य स्थानानि=निमित्तानि मोहनीयस्थानानि=मोहनीयकर्मबन्धनजनकानीत्यर्थस्तैः । सम्बन्धस्तु यथापूर्वम् । तत्र त्रिंशत्स्थानानि यथा— (१) जले ब्रूयित्वा स्त्री-पुरुषादि-त्रसजीवानां हननम्, (२) श्वासाग्रवरोधेन हननम्, (३) अग्निधूम-प्रयोगेण हननम्, (४) प्रकृष्टप्रहारपूर्वकमस्तकस्फोटनेन हननम्, (५) आर्द्र-चर्मणा शिरो वेष्टयित्वा हननम्, (६) उन्मत्तादीन् मातुलुङ्गादिफलादिभिः पौनः-पुन्येन हत्वोपहसनम्, यद्वा तस्करमहासाहसिकादिवच्छलेन निर्जने बने नीत्वा हननम्, (७) गूढमायाचारित्व-मायया मायाऽऽच्छादन सूत्रार्थगोपन वा, (८) स्वात्मकृतस्य ऋषिघाताप्रकृत्यस्यान्यस्मिन्नारोपणम्, (९) सदसि मिश्रभाषास-भाषणम्, (१०) भूपस्यार्थाऽऽगमद्वारमवधूय तद्द्वारा राज्यादेः स्वायत्तीकरणम्,

मोहनीय कर्म के बन्ध का कारण है, उसे 'महामोहनीयस्थान' कहते हैं, उसके तीस भेद हैं— (१) त्रसजीव स्त्रीपुरुष आदि पञ्चेन्द्रियों को पानी में डुबाकर मारना, (२) श्वास आदि को रोक कर मारना, (३) अग्नि धूम आदि के प्रयोग से मारना, (४) लठ्ठ आदि से शिर फोड़ कर मारना, (५) गीले चमड़े से शिर बांध कर मारना, (६) पागल को नीबू आदि से मारकर हँसना, या चोर डाकूओं की तरह छल से निर्जन स्थान में लेजाकर मारना, (७) कपट में कपट करना अथवा सूत्र और अर्थको छिपाना, (८) अपने किये हुए ऋषिघातादि के पापका दूसरे पर आरोप करना, (९) सभा में मिश्र भाषा बोलना, (१०) राजा की आमदनी आदि

अथतु कारणं छे तेने महामोहनीय स्थान कहे छे, तेना त्रीश बेद छे (१) त्रसजीव स्त्री-पुरुष आदि पञ्चेन्द्रिय लुवोने पाणीमा डुबावी डुबावीने मारवा (२) श्वास वगेरे रोकने मारवा (३) अग्नि, धूमाडा वगेरेना प्रयोगथी मारवा ते (४) लाठी आदिथी माथु धेडीने मारवु (५) लीला आदिथी माथु बांधीने मारवु (६) गाडा माथुसने लिथुना इण वडे मारीने हसवु, अगर बोर-डाकुनी प्रभावे छल-कपट करी वगडाभा लछ नछने मारवु (७) कपटमा कपट करवु अथवा सूत्र-अर्थने छुपाववु (८) पोते करेला ऋषिघातादि पापने जीन उपर आरोप भूके (९) सभामा मिश्रभाषा बोलवी (१०) राजनी

कामसूत्रादीनि, विद्यानुयोगः=रोहिण्यादित्रिंशसाधनोपायप्रदर्शकानि शास्त्राणि । मन्त्रानुयोगः=भूतपिशाचादिसाधकमन्त्रप्रतिपादकानि शास्त्राणि । योगानुयोग = वशीकरणादिविधिवोधकानि हरमेखलादियोगप्रतिपादकानि शास्त्राणि । अन्यतैर्थिकप्रवृत्तानुयोगः=अन्ये च ते तैर्थिकाः=अन्यतैर्थिकाः=कपिला (साङ्ग्या)दयस्तेभ्यः प्रवृत्तः=अन्यतैर्थिकप्रवृत्तः स चासावनुयोग =स्वकीयाऽऽचारवस्तुतत्त्वानां विचार विशेषस्तत्करणार्थं शास्त्रसन्दर्भोऽपि तथा 'गृहा दारा' इतिप्रदिति । सम्बन्धस्तु 'यो मयाऽतिचारः कृतः' इत्यादिना प्रागुक्तवदेवेति बहुश उक्तमस्मामिः ॥सू० १७॥

॥ मूलम् ॥

तीसाए मोहणीयट्टाणेहि ॥ सू० १८ ॥

॥ छाया ॥

त्रिंशता मोहनीयस्थानैः ॥ सू० १८ ॥

॥ टीका ॥

‘तीसाए’ त्रिंशता=त्रिंशत्संख्यकै, ‘मोहणीयट्टाणेहि’ अत्र मोह-

विद्यानुयोग-रोहिणी आदि विद्या के साधन के उपाय का प्रदर्शक शास्त्र, (३) मन्त्रानुयोग-भूतपिशाच आदि के साधक मन्त्रों के शास्त्र, (४) योगानुयोग-वशीकरण आदि का बोधक, तथा हरमेखलादियोगप्रतिपादक शास्त्र, (५) अन्यतैर्थिकप्रवृत्तानुयोग-कपिल आदि के बनावे हुए साख्य आदि शास्त्र, इनकी श्रद्धा प्ररूपणा आदि करने से जो अनिचार किया गया हो ‘तो उससे मैं निवृत्त होता हूँ’ ॥ सू० १७ ॥

जो सामान्य रूप से आठ कर्मोंके और विशेषरूप से

आदि विद्या आदिना साधनाना उपायानु दर्शन करानाई शास्त्र, (३) मन्त्रानुयोग-भूत पिशाच आदिना साधक मन्त्रानु शास्त्र (४) योगानुयोग-वशीकरण आदिना बोध करानाई शास्त्र, तथा हर-मेखलादि योग प्रतिपादन करानाई शास्त्र (५) अन्यतैर्थिकप्रवृत्तानुयोग-कपिल आदिना बनावेला साख्यादि शास्त्र, तेनी श्रद्धा-प्ररूपणादि करवाथी ने केछ अतिचार लाग्या होय ‘तो तेभाथी हु निवृत्त थाई छु’ (सू० १७)

ने सामान्य रूपथी आठ कर्मोंना अने विशेषरूपथी मोहनीय कर्मना

नीयशब्देन सामान्यतोऽष्टविध कर्म विशेषतश्चाष्टविधकर्मान्तर्गत चतुर्थे कर्म, तस्य स्थानानि=निमित्तानि मोहनीयस्थानानि=मोहनीयकर्मबन्धनजनकानीत्यर्थस्तैः । सम्बन्धस्तु यथापूर्वम् । तत्र त्रिंशत्स्थानानि यथा- (१) जले व्रीडयित्वा स्त्री-पुरुषादि-त्रसजीवानां हननम्, (२) श्वासाद्यवरोधेन हननम्, (३) अग्निधूम-प्रयोगेण हननम्, (४) प्रकृष्टप्रहारपूर्वकमस्तकस्फोटनेन हननम्, (५) आर्द्र-चर्मणा शिरो वेष्टयित्वा हननम्, (६) उन्मत्तादीन् मातुलुङ्गादिफलादिभिः पौनः-पुन्येन हत्वोपहसनम्, यद्वा तस्करमहासाहसिकादिवच्छलेन निर्जने वने नीत्वा हननम्, (७) गूढमायाचारित्व-मायया मायाऽऽच्छादन सूत्रार्थगोपन वा, (८) स्वात्मकृतस्य ऋषिघाताद्यकृत्यस्यान्यस्मिन्नारोपणम्, (९) सदसि मिश्रभाषास-भाषणम्, (१०) भूपस्यार्थाऽऽगमद्वारमवधृत्य तद्द्वारा राज्यादेः स्वायत्तीकरणम्,

मोहनीय कर्म के बन्ध का कारण है, उसे 'महामोहनीयस्थान' कहते हैं, उसके तीस भेद हैं— (१) असजीव स्त्रीपुरुष आदि पञ्चेन्द्रियों को पानी में डुबाकर मारना, (२) श्वास आदि को रोक कर मारना, (३) अग्नि धूम आदि के प्रयोग से मारना, (४) लठ आदि से शिर फोड़ कर मारना, (५) गीले चमड़े से सिर बांध कर मारना, (६) पागल को नीबू आदि से मारकर हँसना, या चोर डाकुओं की तरह छल से निर्जन स्थान में लेजाकर मारना, (७) कपट में कपट करना अथवा सूत्र और अर्थको छिपाना, (८) अपने किये हुए ऋषिघातादि के पापका दूसरे पर आरोप करना, (९) सभा में मिश्र भाषा बोलना, (१०) राजा की आमदनी आदि

अधनुं कारण्यं छे तेने महामोहनीय स्थान ठहरे छे, तेना त्रीश भेद छे (१) असजीव स्त्री-पुरुष आदि पञ्चेन्द्रिय लवने पाणीमा डुवावी डुवावीने मारवा (२) श्वास वगेरे रोकने मारवा (३) अग्नि, धूमाडा वगेरेना प्रयोगधी मारवा ते (४) लाठी आदिधी माथु डेहीने मारवु (५) लीला आमडाधी माथु बाधीने मारवु (६) गाडा माथुसने लिपुना इण वडे मारीने हसवु, अगर चोर-डाकुनी प्रभावे छल-कपट करी वगडाभा लछ नछने मारवु (७) कपटमा कपट करवु अथवा सूत्र-अर्थने छुपाववु (८) पोते करेला ऋषिघातादि पापने पीला उपर आरोप भूखे (९) सभाभा मिश्रभाषा बोलवी (१०) राजनी

(૧૧) અકુમારબ્રહ્મચારિણઃ સતોઽપિ 'અહમસ્મિ કુમારબ્રહ્મચારી'—તિમાષ
 ણમ્, (૧૨) મૈથુનાદનિવૃત્તસ્ય સતોઽપિ 'બ્રહ્મચાર્યહ'—મિતિ સમાપણમ્, (૧૩)
 યદવલમ્પનેન તદ્દિમુપગતસ્તસ્યૈવ ત્રિભૂતિષુ પ્રલોભઃ, (૧૪) યૈઃ પૌરજનૈર્યઃ સ્વા
 મિપદે સમારોપિતસ્તેન તેપામનિષ્ટકરણમ્, (૧૫) સ્ત્રીયાણ્ડસમૂહસ્ય નાગિન્યેવ
 સ્વામિનો વ્યભિચારિણ્યા પત્ન્યેવ પોષયિતૂ રાજાદેર્દઃસચિયાદિનેત્રાઽઽશ્રયસ્ય
 સ્વેન હનનમ્, (૧૬) એકદેશાધિપતેર્ધાતચિન્તન ઘાતો વા, (૧૭) અનેકદેશ
 ધિપતેર્જહુજનનાયકસ્ય, દેયોપાદેયવસ્તુનિરૂપકધાર્મિકપુરુષસ્ય વા ઘાત-
 ચિન્તન ઘાતો વા, (૧૮) પ્રવ્રજ્યાદિગ્રહણરૂપધર્માર્થિમુગ્ધતમ્ય પુરુષસ્ય ધર્માદે-

રોકકર उसके राज्य आदि को अपने अधिकार में करना, (११)
 बालब्रह्मचारी न रहने पर भी अपने को बालब्रह्मचारी कहना,
 (१२) ब्रह्मचारी नहीं और ब्रह्मचारी नाम धराना, (१३) जिसके
 आश्रय से उन्नत हुआ हो उसीकी जड़ काटना, (१४) जिस जन-
 समुदाय से उच्च अधिकार पाया हो उसीका अनिष्ट करना, (१५)
 जैसे सर्पिणी अपने अण्डेका, व्यभिचारिणी स्त्री अपने पतिका और
 दुष्ट मन्त्री अपने राजाका सहार करते हैं उसी प्रकार अपने
 रक्षक का विनाश करना, (१६) एक देशके स्वामी राजा का घात-
 चिन्तन करना, या घात करना, (१७) अनेक देशके स्वामी राजा,
 या जनसमुदाय के नायक, अथवा धर्मात्मा पुरुष का घात-
 चिन्तन करना या घात करना, (१८) प्रव्रज्या लेने के लिये उद्यत

આમદાની વગેરે રાહીને તેના રાજ્યને પોતાના કબજામાં લેવું (૧૧) બાલબ્રહ્મ
 ચારી ન હોવા છતાંય પોતાને બાલબ્રહ્મચારી કહેવરાવવું, (૧૨) બ્રહ્મચારી ન
 હોય અને બ્રહ્મચારી કહેવરાવવું (૧૩) જેના આશ્રયે પોતાની ઉન્નતિ થઈ હોય
 તેજ માણસના મૂળ કાઢવા તે (૧૪) જે માણસના સમુદાયથી ઉચ્ચ અધિકાર
 મળ્યો હોય તેનું અનિષ્ટ કરવું (૧૫) જેવી રીતે સર્પિણી પોતાના ઇંડાને,
 વ્યભિચારિણી સ્ત્રી પોતાના પતિનો અને દુષ્ટ મંત્રી પોતાના રાજાનો સહાર કરે
 છે, તે પ્રમાણે પોતાના રક્ષકનો વિનાશ કરવો (૧૬) એક દેશના સ્વામી રાજાનો
 ઘાત ચિંતવવો અથવા ઘાત કરવો (૧૭) અનેક દેશના સ્વામી રાજા, અથવા
 જનસમુદાયના નાયક અથવા ધર્માત્મા પુરુષના ઘાતનું ચિન્તવન કરવું, અગર
 તે ઘાત કરવો (૧૮) પ્રવ્રજ્યા લેવા તૈયાર થએલા પુરુષના પરિણામને પાછા

भ्रंशनम्, (१९) वीतरागावर्णवादकरणम्, (२०) मोक्षमार्गस्यापकरणमवर्णवाद-
करण वा, (२१) येभ्य आचार्योपाध्यायेभ्यः सूत्रविनयादिकं गृहीत तेषामेव
निन्दनम्, (२२) आचार्योपाध्यायादीना यथाशक्ति वैयावृत्याऽकरणम्, विन-
यात्रकरण वा, (२३) अग्रश्रुतस्या ऽपि सतो 'बहुश्रुतोऽस्मी'—ति वचनम्'
(२४) अतपस्विन' सतोऽपि 'तपस्व्यहमस्मी' ति प्रवचनम्, (२५) ग्लानादीना
वैयावृत्याकरणम्, (२६) हिंसोपदेशदान सघच्छेदभेदादिकरण वा, (२७)
आत्मश्लाघार्थं मुहुर्मुहुरधार्मिकवशीकरणादिप्रयोगसाधनम्, (२८) ऐहिक-
पारलौकिककामभोगाना तीव्राभिलाषाऽऽविष्करणम्, (२९) क्रुद्ध्यादिमता

पुरुष के परिणामों को हटाना, (१९) वीतराग का अवर्णवाद
करना, (२०) मोक्षमार्गका अपकार, अथवा अवर्णवाद करना,
(२१) जिन आचार्य उपाध्याय आदिकों से सूत्र विनय आदि सीखे
हैं उन्हीं की निंदा करना, (२२) आचार्य उपाध्याय आदिकों की
यथाशक्ति वैयावृत्य विनय आदि का नहीं करना, (२३) बहुश्रुत
नही होने पर भी 'मैं बहुश्रुत हूँ' ऐसा कहना, (२४) तपस्वी न
होने पर भी तपस्वी नाम धराना, (२५) ग्लान आदिकी यथाशक्ति
वैयावृत्य नहीं करना, (२६) हिंसाका उपदेश देना या सघमें
छेद-भेद करना, (२७) अपनी बड़ाई के लिये बारबार वशीकरण
आदि अधार्मिक प्रयोगों का करना, (२८) इसलोक या परलोक
सम्बन्धी कामभोगों की तीव्र लालसा करना, (२९) क्रुद्धियुक्त

हुंसी देवा ते (१९) वीतरागता अवर्णवाद करवो। (२०) मोक्षमार्गनि। अपकार,
अथवा अवर्णवाद करवो। (२१) जे आचार्य उपाध्याय आदिथी सूत्र विनय
आदि शीष्या होय तेनी निन्दा करवी। (२२) आचार्य उपाध्याय वगेरेनी यथा-
शक्ति वैयावत्य विनय आदि नहि करवु ते। (२३) अग्रश्रुत नही होवा छताय
पद्यु 'हुं अग्रश्रुत हूँ' ऐम कहवु। (२४) तपस्वी नहि होवा छताय तपस्वी
नाम धराववु। (२५) ग्लान आदिनी यथाशक्ति वैयावृत्य नहि करवी। (२६) हिंसाने।
उपदेश आपवो। अथवा तो सघमा छेद-भेद पाडवो। (२७) पोतानी अडाध भाटे
बारबार वशीकरण आदि अधार्मिक प्रयोग करवो। (२८) आ लोक अथवा पर-
लोक सम्बन्धी कामभोगनी तीव्र लालसा करवी, (२९) क्रुद्धियुक्त देवाने। अव-

(૧૧) અકુમારબ્રહ્મચારિણઃ સતોઽપિ 'અહમસ્મિ કુમારબ્રહ્મચારી'—તિમાષ-
ણમ્, (૧૨) મૈથુનાદનિટ્ટસ્ય સતોઽપિ 'બ્રહ્મચાર્યહ'—મિતિ સમાષણમ્, (૧૩)
યદવલમ્બનેન વૃદ્ધિમુપગતસ્તસ્યૈવ ત્રિભૂતિષુ ગ્લોભઃ, (૧૪) યૈઃ પૌરજનૈર્યૈઃ સ્વા-
મિપદે સમારોપિતસ્તેન તેષામનિષ્ટકરણમ્, (૧૫) સ્ત્રીયાણ્ડસમૂહસ્ય નાગિન્યેવ
સ્વામિનો વ્યભિચારિણ્યા પત્ન્યેવ પોપયિતૂ રાજાદેર્દઃસચિવાદિનેવાઽઽશ્રયસ્ય
સ્વેન હનનમ્, (૧૬) એકદેશાધિપતેર્ઘાતચિન્તન ઘાતો વા, (૧૭) અનેકદેશ-
ધિપતેર્વહુજનનાયકસ્ય, હેયોપાદેયવસ્તુનિરૂપકધાર્મિકપુરુષસ્ય યા ઘાત-
ચિન્તન ઘાતો વા, (૧૮) પ્રવ્રજ્યાદિગ્રહણરૂપધર્માર્થિમુગ્ધતમ્ય પુરુષસ્ય ધર્માદે-

રોકકર ઉસકે રાજ્ય આદિ કો અપને અધિકાર મે કરના, (૧૧)
વાલબ્રહ્મચારી ન રહને પર મી અપને કો વાલબ્રહ્મચારી કહના,
(૧૨) બ્રહ્મચારી નહીં ઓર બ્રહ્મચારી નામ ધરાના, (૧૩) જિસકે
આશ્રય સે ઉન્નત હુઆ હો ઉસીકી જડ કાટના, (૧૪) જિસ જન-
સમુદાય સે ઉચ્ચ અધિકાર પાયા હો ઉસીકા અનિષ્ટ કરના, (૧૫)
જૈસે સર્પિણી અપને અણ્ડેકા, વ્યભિચારિણી સ્ત્રી અપને પતિકા ઓર
દુષ્ટ મન્ત્રી અપને રાજાકા સહાર કરતે હૈ ઉસી પ્રકાર અપને
રક્ષક કા વિનાશ કરના, (૧૬) એક દેશકે સ્વામી રાજા કા ઘાત-
ચિન્તન કરના, યા ઘાત કરના, (૧૭) અનેક દેશકે સ્વામી રાજા,
યા જનસમુદાય કે નાયક, અથવા ધર્મતિમા પુરુષ કા ઘાત-
ચિન્તન કરના યા ઘાત કરના, (૧૮) પ્રવ્રજ્યા લેને કે લિયે ઉચ્ચત

આમદાની વગેરે રાષ્ટ્રીને તેના રાજ્યને પોતાના કબજામાં લેવું (૧૧) બ્રહ્મચારી
ન હોવા છતાં પોતાને બ્રહ્મચારી કહેવરાવવું, (૧૨) બ્રહ્મચારી ન
હોય અને બ્રહ્મચારી કહેવરાવવું (૧૩) જેના આશ્રયે પોતાની ઉન્નતિ થઈ હોય
તેજ માણસના મૂળ કાઢવા તે (૧૪) જે માણસના સમુદાયથી ઉચ્ચ અધિકાર
મળ્યો હોય તેનું અનિષ્ટ કરવું (૧૫) જેવી રીતે સર્પિણી પોતાના ઇંડાને,
વ્યભિચારિણી સ્ત્રી પોતાના પતિનો અને દુષ્ટ મન્ત્રી પોતાના રાજાનો સહાર કરે
છે, તે પ્રમાણે પોતાના રક્ષકનો વિનાશ કરવો (૧૬) એક દેશના સ્વામી રાજાનો
ઘાત ચિંતવવો અથવા ઘાત કરવો (૧૭) અનેક દેશના સ્વામી રાજા, અથવા
જનસમુદાયના નાયક અથવા ધર્મતિમા પુરુષના ઘાતનું ચિન્તન કરવું, અગર
તો ઘાત કરવો (૧૮) પ્રવ્રજ્યા લેવા તૈયાર થએલા પુરુષના પરિણામને ધાણ

भ्रंशनम्, (१९) वीतरागावर्णवादकरणम्, (२०) मोक्षमार्गस्यापकरणमवर्णवाद-
करण वा, (२१) येभ्य आचार्योपाध्यायेभ्यः सूत्रविनयादिकं गृहीत तेषामेव
निन्दनम्, (२२) आचार्योपाध्यायादीनां यथाशक्ति वैयावृत्याऽकरणम्, विन-
यायकरण वा, (२३) बहुश्रुतस्याऽपि सतो 'बहुश्रुतोऽस्मी'-ति वचनम्'
(२४) अतपस्विनः सतोऽपि 'तपस्व्यहमस्मी' ति प्रकथनम्, (२५) ग्लानादीनां
वैयावृत्याकरणम्, (२६) हिंसोपदेशदानं सघच्छेदभेदादिकरणं वा, (२७)
आत्मश्लाघार्थं मुहुर्मुहुरधार्मिकवशीकरणादिप्रयोगसाधनम्, (२८) ऐहिक-
पारलौकिककामभोगानां तीव्राभिलाषाऽऽविष्करणम्, (२९) क्रुद्ध्यादिमता

पुरुष के परिणामों को हटाना, (१९) वीतराग का अवर्णवाद
करना, (२०) मोक्षमार्गका अपकार, अथवा अवर्णवाद करना,
(२१) जिन आचार्य उपाध्याय आदिकों से सूत्र विनय आदि सीखे
हैं उन्हीं की निंदा करना, (२२) आचार्य उपाध्याय आदिकों की
यथाशक्ति वैयावृत्य विनय आदि का नहीं करना, (२३) बहुश्रुत
नहीं होने पर भी 'मैं बहुश्रुत हूँ' ऐसा कहना, (२४) तपस्वी न
होने पर भी तपस्वी नाम धरना, (२५) ग्लान आदिकी यथाशक्ति
वैयावृत्य नहीं करना, (२६) हिंसाका उपदेश देना या सघमें
छेद-भेद करना, (२७) अपनी बड़ाई के लिये बारबार वशीकरण
आदि अधार्मिक प्रयोगों का करना, (२८) इसलोक या परलोक
सम्बन्धी कामभोगों की तीव्र लालसा करना, (२९) क्रुद्धियुक्त

हुआवी देवा ते (१९) वीतरागना अवर्णवाद करवो (२०) मोक्षमार्गना अपकार,
अथवा अवर्णवाद करवो (२१) जे आचार्य उपाध्याय आदिही सूत्र विनय
आदि सीखा होय तेनी निन्दा करवी (२२) आचार्य उपाध्याय वगेरेनी यथा-
शक्ति वैयावृत्य विनय आदि नहि करवु ते (२३) बहुश्रुत नहीं होवा छताय
पण 'हु बहुश्रुत हूँ' ओम कहवु (२४) तपस्वी नहि होवा छताय तपस्वी
नाम धराववु (२५) ग्लान आदिनी यथाशक्ति वैयावृत्य नहि करवी (२६) हिंसाने
उपदेश आपवो अथवा तो सघमा छेद-भेद पाडवो (२७) पोतानी गडाध भाटे
बारबार वशीकरण आदि अधार्मिक प्रयोग करवो (२८) आ लोक अथवा पर
लोक सम्बन्धी कामभोगनी तीव्र लालसा करवी, (२९) क्रुद्धियुक्त देवानो अव-

દેવાનામવર્ણનાદઃ, (૩૦) અપશ્યતોઽપિ 'પશ્યામ્યહ દેવાન્' ઇત્યુક્તિઃ, અજિન ત્વેઽપિ 'જિનોઽસ્મી' ત્યુક્તિર્વેતિ ॥ સૂ. ૧૮ ॥

॥ મૂલમ્ ॥

एगतीसाए सिद्धाद्गुणेहि । वत्तीसाए जोगसगहेहि ॥ सू० १९ ॥

॥ છાયા ॥

एकत्रिंशता सिद्धादिगुणैः । द्वात्रिंशता योगसङ्ग्रहैः ॥ सू० १९ ॥

॥ ટીકા ॥

‘एग०’ इति. ‘एगतीसाए’ एकत्रिंशता=एकत्रिंशत्सङ्ख्यकैः, ‘सिद्धाद्गुणेहि’ आदौ=सिद्धावस्थाप्राप्तिवेलायामेव योगपद्येन स्थायिनो न तु क्रमभाविनो गुणा आदिगुणाः, सिद्धानामादिगुणाः=सिद्धादिगुणास्तैः । सम्बन्धस्तूक्त एव । ते गुणा यथा—पञ्चविधज्ञानावरणीयक्षीणत्वानि पञ्च, नवविधदर्शनावरणीयक्षीणत्वानि नव, द्विविधवेदनीयक्षीणत्वे द्वे, द्विविधमोहनीयक्षीणत्वे द्वे, चतुर्विधायुःक्षीणत्वानि चत्वारि, द्विविधनामकर्मक्षीणत्वे द्वे, द्विविधगोत्रकर्मक्षीणत्वे द्वे, पञ्चविधान्तरायक्षीणत्वानि पञ्चेति मिलित्वैकत्रिंशदिति । ‘वत्ती-

देवોકા અવર્ણવાદ બોલના, (૩૦) દેવતા કો નહીં દેખતે હુણ મી ‘મૈ દેવતા કો દેખતા હું’ એસા કહના, હન તીસ મહામોહનીય સ્થાનોં કે દ્વારા જો કોઈ અતિચાર કિયા ગયા હો ‘તો મૈં ઉસસે નિવૃત્ત હોતા હું’ ॥ સૂ. ૧૮ ॥

સિદ્ધ અવસ્થા કી પ્રાપ્તિકે સમય સિદ્ધોં મેં એક સાથ રહને-વાલે ગુણોકો સિદ્ધાદિગુણ કહતે હેં, બે પાંચ જ્ઞાનાવરણીય, નૌ દર્શનાવરણીય, દો વેદનીય, દો મોહનીય, ચાર આયુ, દો ગોત્ર, દો નામ, પાંચ અન્તરાય, હન હકતીસ પ્રકૃતિયોં કે ક્ષયરૂપ હકતીસ

જીવાદ બોલવો (૩૦) દેવતાને નહિ જોવા છતાય ‘હુ દેવતાને જોઉં છું’ એ પ્રમાણે કહેવું તે આ ત્રીશ મહામોહનીય સ્થાનો દ્વારા જે કાઈ અતિચાર લાગ્યા હોય તો તેમાથી હુ નિવૃત્ત થાઉં છું’ (સૂ. ૧૮)

સિદ્ધ અવસ્થાની પ્રાપ્તિના સમયે સિદ્ધોમા એક સાથે રહેવાવાળા ગુણોને સિદ્ધાદિગુણ કહે છે તે પાંચ જ્ઞાનાવરણીય, નવ દર્શનાવરણીય, બે વેદનીય, બે મોહનીય, ચાર આયુ, બે ગોત્ર, બે નામ, પાંચ અન્તરાય, એ એકત્રીશ પ્રકૃ-

સાળ' દ્વાત્રિશતા=દ્વાત્રિશત્સખ્યકૈઃ 'જોગસગહેર્હિ' યોગાઃ=યોજનાનિ=મનોવા-
કાયવ્યાપારાસ્તે ચ યત્રપિ શુભાશુભભેદેન દ્વિવિધાસ્તથાપિ પ્રસન્નાદત્ર શુભા એવ
વિવક્ષિતા', તેષા સદ્ગ્રહાસ્તૈઃ, સમ્યન્ધો યથાપૂર્વમેવ, તે ચ સગ્રહા દ્વાત્રિશત્રથા-
(૧) ગુરુસમીપગમનપુર'સરપાપસમાલોચનરૂપમાલોચનમ્, (૨) અન્યપુરતો ગુરુ-
ણાપિ શિષ્યાનાલોચનરૂપો નિરપલાપ', (૩) આપત્સુ ધર્મદાઢ્યમ્, (૪) એહિક-
પારલૌકિકસુખાનિચ્છયા ક્રિયાનુષ્ઠાનરૂપમનિશ્ચિતોપધાનમ્, (૫) 'ગ્રહણાડસેવ-
નારૂપા શિક્ષા, (૬) શરીરાદિસસ્કારવર્જનરૂપા નિષ્પ્રતિકર્મતા, (૭) પ્રચ્છન્નતપઃ-

ગુણ હૈં, ડનકે વિષયમે જો અતિચાર કિયા ગયા હો 'તો મે ડસ
સે નિવૃત્ત હોતા હૈં ।

મન વચન કાયકે વ્યાપાર કો યોગ કહતે હૈં, વે યદ્યપિ
શુભ અશુભ કે ભેદ સે દો પ્રકાર કે હૈં, તથાપિ યહાપર પ્રકરણ
વશ શુભ યોગોં કા હી ગ્રહણ-હૈં, ડનકે સગ્રહ કો યોગસગ્રહ
કહતે હૈં, વે વત્તીસ હૈં—(૧) આલોચન-ગુરુ કે સમીપ જાકર પાપકી
આલોચના કરના, (૨) નિરપલાપ-દૂસરે કે સામને શિષ્યકી
આલોચના કા પ્રકાશિત ન કિયા જાના, (૩) આપત્તિ આને પર મી
ધર્મમે દૃઢ રહના, (૪) અનિશ્ચિતોપધાન- હહલોક-પરલોક સમ્યન્ધી
સુખ કી ઇચ્છા ન રલ્લકર ક્રિયાનુષ્ઠાન કરના, (૫) શિક્ષા-વિધિ
પૂર્વક સૂત્રાદિ-ગ્રહણ-રૂપ ગ્રહણા ઓર સમાચારીકા સમ્યક્પાલન-
રૂપ આસેવના (૬) નિષ્પ્રતિકર્મતા-શરીરસસ્કાર કા પરિત્યાગ,

તિઓના ક્ષયરૂપ એકત્રીશ ગુણુ છે તે વિષયમા જે કાઇ અતિચાર લાગ્યા હોય
તો 'તેમાથી હુ નિવૃત્ત થાઉ છુ'

મન, વચન અને કાયાના વ્યાપારને યોગ કહે છે તે શુભ-અશુભના
લેખી જે પ્રકારના હોય છે છતાં પણ આ સ્થળે પ્રકરણ વશ શુભયોગોનું ગ્રહણ
કરેલું છે તેઓમા સગ્રહને યોગસગ્રહ કહે છે તે ણત્રીશ પ્રકારના છે (૧)
આયોચન ગુરુના પાસે જઈને પાપની આલોચના કરવી, (૨) નિરપલાપ-ખીજના
પાસે શિષ્યોની આયોચના બાહેર નહિ કરવી, (૩) આપત્તિ આવવા છતાંય ધર્મમા
દૃઢ રહેવું, (૪) અનિશ્ચિતોપધાન-આ લોક-પરલોક સબધી સુખની ઇચ્છા નહિ
રાખના ક્રિયાનુષ્ઠાન કરવા, (૫) શિક્ષા-વિધિપૂર્વક સૂત્રાદિગ્રહણરૂપ ગ્રહણા અને સમાચારીનું

૧-યથાવિધિસૂત્રાદિગ્રહણલક્ષણા ગ્રહણા, સામાચાર્યા. સમ્યક્પાલનમાસેવના ।

દેવાનામવર્ણવાદઃ, (૩૦) અપશ્યતોઽપિ 'પશ્યામ્યહ દેવાન્' इत्युक्तिः, अजिन-
त्वेऽपि 'जिनोऽस्मी' त्युक्तिर्वेति ॥ सू० १८ ॥

॥ मूलम् ॥

एगतीसाए सिद्धाद्गुणेहि । वर्त्तीसाए जोगसगहेहि ॥ सू० १९ ॥

॥ छाया ॥

एकत्रिंशता सिद्धादिगुणैः । द्वात्रिंशता योगसङ्ग्रहैः ॥ सू० १९ ॥

॥ टीका ॥

‘एग०’ इति. ‘एगतीसाए’ एकत्रिंशता=एकत्रिंशत्सङ्ख्यकैः, ‘सिद्धा-
द्गुणेहि’ आदौ=सिद्धावस्थाप्राप्तिवेलायामेव यौगपद्येन स्थायिनो न तु क्रम-
भाविनो गुणा आदिगुणा, सिद्धानामादिगुणाः=सिद्धादिगुणास्तैः । सम्बन्धस्तू-
क्त एव । ते गुणा यथा-पञ्चविधज्ञानावरणीयक्षीणत्वानि पञ्च, नवविधदर्शनावर-
णीयक्षीणत्वानि नव, द्विविधवेदनीयक्षीणत्वे द्वे, द्विविधमोहनीयक्षीणत्वे द्वे,
चतुर्विधायुक्षीणत्वानि चत्वारि, द्विविधनामकर्मक्षीणत्वे द्वे, द्विविधगोत्रकर्म-
क्षीणत्वे द्वे, पञ्चविधान्तरायक्षीणत्वानि पञ्चेति मिलित्वैकत्रिंशदिति । ‘वर्त्ती

દેવોકા અવર્ણવાદ બોલના, (૩૦) દેવતા કો નહીં દેખતે હુણે મી
‘મેં દેવતા કો દેખતા હું’ એસા કહના, ઇન તીસ મહામોહનીય
સ્થાનોં કે દ્વારા જો કોઈ અતિચાર કિયા ગયા હો ‘તો મેં ઉસસે
નિવૃત્ત હોતા હું’ ॥ સૂ૦ ૧૮ ॥

સિદ્ધ અવસ્થા કી પ્રાપ્તિકે સમય સિદ્ધો મેં એક સાથ રહેને-
વાલે ગુણોકો સિદ્ધાદિગુણ કહતે હેં, બે પાંચ જ્ઞાનાવરણીય, નૌ
દર્શનાવરણીય, દો વેદનીય, દો મોહનીય, ચાર આયુ, દો ગોત્ર,
દો નામ, પાંચ અન્તરાય, ઇન ઇકતીસ પ્રકૃતિયોં કે ક્ષયરૂપ ઇકતીસ

ર્ણવાદ બોલવો. (૩૦) દેવતાને નહિ જોવા છતાય ‘હું દેવતાને જોઉં છું’
એ પ્રમાણે કહેવું તે આ ત્રીશ મહામોહનીય સ્થાનો દ્વારા જે કાંઈ અતિચાર
લાગ્યા હોય તો ‘તેમથી હું નિવૃત્ત થાઉં છું’ (સૂ૦ ૧૮)

સિદ્ધ અવસ્થાની પ્રાપ્તિના સમયે સિદ્ધોમા એક સાથે રહેવાવાળા ગુણોને
સિદ્ધાદિગુણ કહે છે તે પાંચ જ્ઞાનાવરણીય, નવ દર્શનાવરણીય, બે વેદનીય,
બે મોહનીય, ચાર આયુ, બે ગોત્ર, બે નામ, પાંચ અન્તરાય, એ એકત્રીશ પ્રકૃ-

व्युत्सर्गः, (२६) अप्रमादः, (२७) समुचितममयानतिक्रमेण सामाचार्यनुष्ठानरूपो लवालवः, (२८) आर्त्तरौद्रध्यानप्रहाणपूर्वकधर्मशुक्लध्यानसमादरणरूपो ध्यानसवरणयोगः, (२९) मारणान्तिकवेदनोदयेऽपि क्षोभराहित्यम्, (३०) ज्ञ-प्रत्याख्या नपरिज्ञया 'सगपरिज्ञान-सगवर्जनरूपा सद्गपरिज्ञा, (३१) प्रायश्चित्ताऽऽचरणम्, (३२) मरणान्ते (मरणसमये)ऽपि ज्ञानायाराधना चेति ॥ सू० १९ ॥

॥ मूलम् ॥

तित्तीसाए आसायणाए ॥ सू० २० ॥

॥ ज्ञया ॥

त्रयस्त्रिंशताऽऽशतनाभिः ॥ सू० २० ॥

॥ टीका ॥

‘तित्तीसाए’ त्रयस्त्रिंशता=त्रयस्त्रिंशत्सरयकाभिः, ‘आसायणाए’

व्युत्सर्गः, (२६) अप्रमादः, (२७) उचित समयमें सामाचारीका अनुष्ठानरूप लवालवः, (२८) आर्त्तरौद्ररूप ध्यान के परित्याग-पूर्वक धर्मशुक्ल ध्यानका आदररूप ध्यान सवरणयोग, (२९) मारणान्तिक उपसर्ग सहन करना, (३०) प्रत्याख्यानपरिज्ञा से सगपरित्यागरूप सगपरिज्ञा, (३१) प्रायश्चित्त करना, (३२) मरणपर्यन्त ज्ञानादिकी आराधना करना । इन बत्तीस योगसग्रहों का सम्यग् आराधन नहीं होने से जो कोई अतिचार किया गया हो ‘तो मैं उससे निवृत्त होता हूँ’ ॥ सू० १० ॥

जिससे ज्ञान आदिगुण नष्ट हो जाते हैं, अथवा सम्यग्

(२५) द्रव्य अने भावथी कायेत्सर्ग करवा इय व्युत्सर्गः, (२६) अप्रमादः, (२७) उचित समयमा सामाचारीना-अनुष्ठान इय लवा-लवः, (२८) आर्त्तरौद्र-इय ध्यानना परित्यागपूर्वक-धर्मशुक्ल ध्यानना आदर इय ध्यान सवरणयोगः, (२९) मारणान्तिक उपसर्ग सहन करवो, (३०) प्रत्याख्यानपरिज्ञाथी सग परित्यागइय सगपरिज्ञा, (३१) प्रायश्चित्त करवु ते (३२) मरण सुधी ज्ञानादिकनी आराधना करवी, आ प्रमाणे जत्रीश योगसग्रहनु सम्यक् प्रकारे आराधन नहि थवाथी ने काछ अतिचार थया होय तो ‘तेमाथी हु निवृत्त थाउ छु’ (सू० १६)

जेना कारणे ज्ञान आदि गुण नाश थउ जता होय, अथवा सम्यग्

કરણરૂપા અજ્ઞાતતા, (૮) અલોભઃ=લોભરાહિત્યમ્, (૯) પરિપહોપસર્ગાદિસહન-
રૂપા તિતિક્ષા, (૧૦) કૌટિલ્યત્યાગરૂપમાર્જવમ્, (૧૧) સયમવિષયકાતિચાર-
મલવર્જનરૂપા શુચિઃ, (૧૨) સમ્યક્ત્વશુદ્ધરૂપા સમ્યગ્દૃષ્ટિઃ, (૧૩) ચિત્તૈકા-
ગ્રતારૂપઃ સમાધિઃ, (૧૪) આચારઃ=માયારાહિત્યમ્, (૧૫) વિનયઃ=માનરાહિ-
ત્યમ્, (૧૬) ધૈર્યસહિતા યા મતિસ્તદ્રૂપા ધૃતિમતિઃ (૧૭) સસારાદ્યસ્ય મોક્ષા
ભિલાષસ્ય ચ ચત્કરણ તદ્રૂપઃ સવેગ (૧૮) માયાશલ્યવર્જનરૂપઃ પ્રણિધિઃ, (૧૯)
પ્રશસ્તક્રિયાપરાયણતાસ્વરૂપઃ સુવિધિઃ, (૨૦) આશ્રવનિરોધરૂપઃ સવરઃ, (૨૧)
આત્મદોષપરિહારઃ, (૨૨) કામપરિત્યાગઃ, (૨૩) મૂલગુણવિષયકપ્રત્યાખ્યાનમ્,
(૨૪) ઉત્તરગુણવિષયકપ્રત્યાખ્યાનમ્, (૨૫) દ્રવ્યભાવેન કાયોત્સર્ગકરણરૂપો

(૭) અજ્ઞાતતા-ગુપ્ત તપ કરના, (૮) અલોભ-લોભ ત્યાગના, (૯)
તિતિક્ષા-પરિપહ-ઉપસર્ગાદિકા સહન કરના, (૧૦) આર્જવ-કુટિલ
ભાવકા ત્યાગ કરના, (૧૧) શુચિ=અતિચારરહિત સયમ પાલના,
(૧૨) સમ્યગ્દૃષ્ટિ=સમકિતકી શુદ્ધિ, (૧૩) સમાધિ-ચિત્તકી
एकाग्रता, (૧૪) આચાર, (૧૫) વિનય, (૧૬) ધૃતિમતિ-ધૈર્યયુક્તમતિ,
(૧૭) સવેગ-સસાર સે ભય ઓર મોક્ષ કી ઇચ્છા, (૧૮) પ્રણિધિ-
માયાપરિત્યાગ, (૧૯) સુવિધિ-ઉત્તમ ક્રિયામેં તહીન રહના,
(૨૦) સવર-આશ્રવનિરોધ, (૨૧) આત્મદોષપરિહાર, (૨૨) કામપરિ-
ત્યાગ, (૨૩) મૂલગુણ-સમ્બન્ધી પ્રત્યાખ્યાન, (૨૪) ઉત્તરગુણ-
સમ્બન્ધી પ્રત્યાખ્યાન, (૨૫) દ્રવ્યભાવ સે કાયોત્સર્ગકરણરૂપ

સમ્યક્ પાલન કરવારૂપ આસેવના (૬) નિષ્પ્રતિકર્મતા-શરીરસંકારનો પરિત્યાગ
(૭) અજ્ઞાતતા ગુપ્તતપ કરવું, (૮) અલોભ-લોભનો ત્યાગ કરવો, (૯) તિતિક્ષા
પરિપહ-ઉપસર્ગનું સહન કરવું, (૧૦) આર્જવ-કુટિલભાવનો ત્યાગ કરવો,
(૧૧) શુચિ-અતિચારરહિત સયમનું પાલન કરવું, (૧૨), સમ્યગ્દૃષ્ટિ-સમકિતની
શુદ્ધિ, (૧૩) સમાધિ-ચિત્તની એકાગ્રતા, (૧૪) આચાર, (૧૫) વિનય, (૧૬)
ધૃતિમતિ-ધૈર્યયુક્ત મતિ, (૧૭) સવેગ-સસારનો ભય અને મોક્ષની ઇચ્છા,
(૧૮) પ્રણિધિ-માયાપરિત્યાગ, (૧૯) સુવિધિ-ઉત્તમ ક્રિયામાં તહીન રહેવું,
(૨૦) સવર આશ્રવનિરોધ, (૨૧) આત્મદોષપરિહાર, (૨૨) કામપરિત્યાગ,
(૨૩) મૂલગુણસમ્બન્ધી પ્રત્યાખ્યાન, (૨૪) ઉત્તરગુણસમ્બન્ધી પ્રત્યાખ્યાન,

व्युत्सर्गः, (२६) अप्रमादः, (२७) समुचितसमयानतिक्रमेण सामाचार्यनुष्ठानरूपो लवालवः, (२८) आर्त्तरौद्रध्यानप्रहाणपूर्वकधर्मशुक्लध्यानसमादरणरूपो ध्यानसवरणयोगः, (२९) मारणान्तिकवेदनोदयेऽपि क्षोभराहित्यम्, (३०) ज्ञ-प्रत्याख्या नपरिज्ञया 'सगपरिज्ञान-सगवर्जनरूपा सद्गपरिज्ञा, (३१) प्रायश्चित्ताऽऽचरणम्, (३२) मरणान्ते (मरणसमये)ऽपि ज्ञानागाराधना चेति ॥ सू० १९ ॥

॥ मूलम् ॥

तित्तीसाए आसायणाए ॥ सू० २० ॥

॥ ज्ञाया ॥

त्रयस्त्रिंशताऽऽशातनाभिः ॥ सू० २० ॥

॥ टीका ॥

‘तित्तीसाए’ त्रयस्त्रिंशता=त्रयस्त्रिंशत्सख्यकाभिः, ‘आसायणाए’

व्युत्सर्ग, (२६) अप्रमाद, (२७) उचित समयमें सामाचारीका अनुष्ठानरूप लवालव, (२८) आर्त्तरौद्ररूप ध्यान के परित्याग-पूर्वक धर्मशुक्ल ध्यानका आदररूप ध्यान सवरणयोग, (२९) मारणान्तिक उपसर्ग सहन करना, (३०) प्रत्याख्यानपरिज्ञा से सगपरित्यागरूप सगपरिज्ञा, (३१) प्रायश्चित्त करना, (३२) मरणपर्यन्त ज्ञानादिकी आराधना करना । इन बत्तीस योगसग्रहों का सम्यग् आराधन नहीं होने से जो कोई अतिचार किया गया हो ‘तो मैं उससे निवृत्त होता हूँ’ ॥ सू० १९ ॥

जिससे ज्ञान आदिगुण नष्ट हो जाते हैं, अथवा सम्यग्

(२५) द्रव्य अने भावधी कायेत्सर्ग करवा इप व्युत्सर्ग, (२६) अप्रमाद, (२७) उचित समयमा सामाचारीना-अनुष्ठान इप लवा-लव, (२८) आर्त्तरौद्र-इप ध्यानना परित्यागपूर्वक-धर्मशुक्ल ध्यानना आदर इप ध्यान सवरणयोग, (२९) मारणान्तिक उपसर्ग सहन करवे, (३०) प्रत्याख्यानपरिज्ञाथी सग परित्यागइप सगपरिज्ञा, (३१) प्रायश्चित्त करवु ते (३२) मरण सुधी ज्ञानादिकनी आराधना करवी, आ प्रमाणे पत्रीश योगसग्रहनु सम्यक् प्रकारे आराधन नहि थवाथी जे काछ अतिचार थया होय तो ‘तेमाथी हु निवृत्त थाडि छु’ (सू० १९)

जेना कारणे ज्ञान आदि गुण नाश थछ जाता होय, अथवा सम्यग्

આ=સમન્તાત્' શાત્યન્તે=અપનીયન્તે જ્ઞાનાદયો ગુણા યાભિરિતિ, યદ્વા નિરુક્ત-
રીત્યા આ=આયઃ સમ્યગ્જ્ઞાનાદિલાભસ્તસ્ય શાતના=સ્વઘ્ડનાઃ આશાતના-
સ્તાભિઃ । સમ્બન્ધસ્તુ પૂર્વવદેવ, અત્રૈકવચન ત્વાર્પત્વાત્, एतास्त्रयस्त्रिंशदाशातनाः
प्रकरणान्तरोक्ता गुरुसम्बन्धिन्यो बोद्धव्याः, ता यथा-(१) रात्रिकस्य पुरतो गम-
नम्, (२) पार्श्वतः समश्रेण्या गमनम्, (३) 'आसन्नतो गमनम्. एव (४) रात्रि-
कस्य पुरतोऽवस्थानम्, (५) पार्श्वतोऽवस्थानम्, (६) आसन्नावस्थानम्, (७)
पुरतो निपदनम्, (८) पार्श्वतो निपदनम्, (९) आसन्ननिपदन चेति नव । (१०)
सज्ञाभूमिं गतवतोर्गुरुशिष्ययोर्गुरुतः पूर्वमाचमनम्, (११) गमनागमनयो. पूर्व-
मालोचनम्, (१२) गुरुणा सलपितुमागतेन सह गुरुतः पूर्वं सलपनम्, (१३)
'को जागर्तीति कः स्वपितीति वा' रात्रौ गुरुणा पृष्ठस्य जाग्रतोऽपि शिष्यस्याऽ-

જ્ઞાનાદિ-રત્નત્રયકા લાભ જિસકે દ્વારા સ્વઘ્ડિત હોતા હૈ વહ ગુરુ-
સમ્બન્ધી 'આશાતના' તેતીસ પ્રકારકી હૈ—(૧) ગુરુ સે આગે ચલના,
(૨) બરાબર ચલના, (૩) અત્યન્ત નજદીક ચલના, (૪) ગુરુકે આગે સ્વડા
રહના, (૫) બરાબર સ્વડા રહના, (૬) અધિક પાસમેં સ્વડા રહના, (૭)
ગુરુકે આગે બેઠના, (૮) બરાબર બેઠના, (૯) અત્યન્ત સમીપ બેઠના,
(૧૦) ગુરુકે સાથ સજ્ઞાભૂમિ જાને પર ગુરુસે પહેલે શૌચ કરના,
(૧૧) ઉપાશ્રય મેં આકર ગુરુકે પહેલે હર્યાવહી-પ્રતિક્રમણ કરના,
(૧૨) ગુરુ સે વાર્તાલાપ કરને કે-લિપ આયે હુપ કે સાથ ગુરુ કે
પહેલે ઘોલના, (૧૩) 'કૌન સોયા કૌન જાગતા હૈ ?' હસ પ્રકાર

જ્ઞાનાદિ-રત્ન-ત્રયનો લાભ જેના દ્વારા ખડિત થતો હોય તે ગુરુ-સમ્બન્ધી
“આશાતના” તેત્રીસ પ્રકારની છે—

(૧) ગુરુની આગળ ચાલવું, (૨) બરાબર ચાલવું, (૩) અત્યન્ત નજીકમાં ચાલવું,
(૪) ગુરુની આગળ ઊભા રહેવું, (૫) બરાબર ઊભા રહેવું, (૬) એકદમ નજીકમાં ઊભા
રહેવું, (૭) ગુરુની આગળ બેસવું, (૮) બરાબર બેસવું, (૯) એકદમ નજીકમાં બેસવું,
(૧૦) ગુરુની સાથે સજ્ઞાભૂમિ જાતા ગુરુની પહેલા શૌચ કરવું, (૧૧) ઉપા-
શ્રયમાં આવીને ગુરુના પહેલા હર્યાવહી પ્રતિક્રમણ કરવું, (૧૨) ગુરુની સાથે
વાર્તાલાપ કરવા માટે આવેલાના સાથે ગુરુ વાત કરે તે પહેલા વાત કરવી,
(૧૩) કોણ સુતેલા છે ? કોણ જાગે છે ? આ પ્રમાણે રાત્રીએ ગુરુજી પૂછે ત્યારે

भाषणम्, (१४) अशनादिकमानीय पूर्वं लघोः पुरत आलोचनम्, (१५) एवमेवोपदर्शनम्, (१६) निमन्त्रण च, (१७) रात्निकमपृष्टा स्वेच्छयैवाहारादिकस्यान्येभ्यः प्रदानम्, (१८) गुरुणा सहाऽभ्यवहरणे अपशस्त विहाय प्रशस्तस्य वस्तुनो भोजनम्, (१९) सति प्रयोजने व्याहरता रात्निकेनाऽऽहृतस्यापि तूष्णींभावः, (२०) आसनासीनतयैव रात्निकाय प्रतिवाक्यदानम्, (२१) रात्निकाऽऽहृतेन शिष्येण 'तथेति' इति वक्तव्ये 'किमुच्यते ? न श्रुत पुनरुच्यताम्'—इत्यादिप्रलपनम्, (२२) प्रेरयन्त रात्निक प्रति त्वङ्कारशब्दोच्चारणम्, (२३) रत्नाधिकस्य पुरतः प्रयोजनादधिक निरर्थक कठोर वा सभाषणम्, (२४) ग्लाना-

रात्रिमे गुरु के पूछने पर जागते हुए भी उत्तर नहीं देना, (१४) आहार आदि लाकर प्रथम छोटे के पास आलोचना करना, (१५) आहारपानी आदि लाकर प्रथम छोटे को दिखाना, (१६) गुरु को पूछे बिना अपनी इच्छा से अन्य छोटे साधुओं की निमन्त्रणा करना, (१७) गुरु को पूछे बिना ही अपनी इच्छासे अन्य साधुओं को आहार आदि देना, (१८) गुरु के साथ आहार करता हुआ मनोज २ स्वयं खाजाना, (१९) कार्यवश गुरु के बोलाने पर चुप रह जाना, (२०) आसन पर बैठे हुए ही गुरु को उत्तर देना, (२१) गुरु के बुलाने पर 'तद्वत्ति' न बोल कर 'क्या कहते हैं !' क्या कहना है !' ऐसा बोलना, (२२) गुरुको 'तृ' शब्द बोलना, (२३) गुरु के सामने प्रयोजन से अधिक निरर्थक तथा कठोर बोलना,

जागता होवा छताय उत्तर नहि आपवो, (१४) आहार वगेरे लावीने प्रथम नानानी धामे आलोचना करवी, (१५) आहार-पाणी आदि लावीने प्रथम नाना होय तेने देखावो, (१६) गुरुछने पूछया बिना पोतानी छच्छाथीन अन्य नाना साधुने निमन्त्रण करवु, (१७) गुरुछने पूछया बिना पोतानी छच्छाथीन अन्य साधुछोने आहार आदि आपवु, (१८) गुरुनी साथे आहार करता पोताने जे साइ लागे ते पोतेन आछ नवु, (१९) कार्यवश गुरुछ मोलावे तो पण चुप रही नवु, (२०) आसन उपर भेडा भेडा उत्तर आपवो, (२१) गुरुछ मोलावे त्यारे " तद्वत्ति " नहि छडेता " शु छडो छे ? " शु छडेवु छे ? ओ प्रभावे नवाण आपवो, (२२) गुरुछने 'तृ' शब्दथी मोलाववा, (२३) गुरुनी सामे प्रयो

આ=સમન્તાત્' શાત્યન્તે=અપનીયન્તે જ્ઞાનાદયો ગુણા યાભિરિતિ, યદ્વા નિરુક્ત-
રીત્યા આ=આયઃ સમ્યગ્જ્ઞાનાદિલાભસ્તસ્ય શાતના'=સ્પન્ડનાઃ આશાતના
સ્તાભિઃ । સમ્બન્ધસ્તુ પૂર્વવદેવ, અત્રૈકવચન ત્વાર્પત્વાત્, एतास्त्रयस्त्रिंशदाशतनाઃ
પ્રકરણાન્તરોક્તા ગુરુસમ્બન્ધિન્યો વોદ્રવ્યાઃ, તા યથા-(૧) રાત્નિકસ્ય પુરતો ગમ-
નમ્, (૨) પાર્શ્વતઃ સમશ્રેણ્યા ગમનમ્, (૩) ¹આસન્નતો ગમનમ્, ²एव (૪) રાત્નિ-
કસ્ય પુરતોઽવસ્થાનમ્, (૫) પાર્શ્વતોઽવસ્થાનમ્, (૬) આસન્નાવસ્થાનમ્, (૭)
પુરતો નિપદનમ્, (૮) પાર્શ્વતો નિપદનમ્, (૯) આસન્નનિપદન ચેતિ ત્રય । (૧૦)
સજ્ઞાભૂમિ ગતવતોર્ગુરુશિષ્યયોર્ગુરતઃ પૂર્વમાચમનમ્, (૧૧) ગમનાગમનયોઃ પૂર્વ-
માલોચનમ્, (૧૨) ગુરુણા સલ્પિતુમાગતેન સહ ગુરતઃ પૂર્વે સલ્પનમ્, (૧૩)
'કો જાગર્તીતિ કઃ સ્વપિતીતિ વા' રાત્રૌ ગુરુણા પૃષ્ઠસ્ય જાગ્રતોઽપિ શિષ્યસ્યાઽ-

જ્ઞાનાદિ-રત્નત્રયકા લાભ જિસકે દ્વારા સ્પન્ડિત હોતા હૈ વહ ગુરુ-
સમ્બન્ધી 'આશાતના' તેત્રીસ પ્રકારકી હૈ—(૧) ગુરુ સે આગે ચલના,
(૨) ઘરાબર ચલના, (૩) અત્યન્ત નજદીક ચલના, (૪) ગુરુકે આગે સ્થડા
રહના, (૫) ઘરાબર સ્થડા રહના, (૬) અધિક પાસમે સ્થડા રહના, (૭)
ગુરુકે આગે બૈઠના, (૮) ઘરાબર બૈઠના, (૯) અત્યન્ત સમીપ બૈઠના,
(૧૦) ગુરુકે સાથ સજ્ઞાભૂમિ જાને પર ગુરુસે પહેલે શૌચ કરના,
(૧૧) ઉપાશ્રય મેં આકર ગુરુકે પહેલે ઇર્થાવહી-પ્રતિક્રમણ કરના,
(૧૨) ગુરુ સે વાર્તાલાપ કરને કે-લિં આયે હુએ કે સાથ ગુરુ કે
પહેલે ઘોલના, (૧૩) 'કૌન સોયા કૌન જાગતા હૈ ?' ઇસ પ્રકાર

જ્ઞાનાદિ-રત્ન-ત્રયનો લાભ જેના દ્વારા અકિત થતો હોય તે ગુરુ-સમ્બન્ધી
'આશાતના' તેત્રીસ પ્રકારની છે—

(૧) ગુરુની આગળ ચાલવું, (૨) બરાબર ચાલવું, (૩) અત્યન્ત નજીકમાં ચાલવું,
(૪) ગુરુની આગળ ઊભા રહેવું, (૫) બરાબર ઊભા રહેવું, (૬) એકદમ નજીકમાં ઊભા
રહેવું, (૭) ગુરુની આગળ બેસવું, (૮) બરાબર બેસવું, (૯) એકદમ નજીકમાં બેસવું,
(૧૦) ગુરુની સાથે સજ્ઞાભૂમિ જાતા ગુરુની પહેલા શૌચ કરવું, (૧૧) ઉપા-
શ્રયમાં આવીને ગુરુના પહેલા ઇર્થાવહી પ્રતિક્રમણ કરવું, (૧૨) ગુરુની સાથે
વાર્તાલાપ કરવા માટે આવેલાના સાથે ગુરુ વાત કરે તે પહેલા વાત કરવી,
(૧૩) કોણ સુતેલા છે ? કોણ જાગે છે ? આ પ્રમાણે રાત્રીએ ગુરુ પૂછે ત્યારે

भाषणम्, (१४) अशनादिकमानीय पूर्वं लघोः पुरत आलोचनम्, (१५) एवमेवोपदर्शनम्, (१६) निमन्त्रणं च, (१७) रात्निकमपृष्ट्वा स्वेच्छयैवाहारादिकस्यान्येभ्यः प्रदानम्, (१८) गुरुणा सहाऽभ्यवहरणे अप्रशस्तं विद्याय प्रशस्तस्य वस्तुनो भोजनम्, (१९) सति प्रयोजने व्याहरता रात्निकेनाऽऽहूतस्यापि तूष्णींभावः, (२०) आसनासीनतयैव रात्निकाय प्रतिवाक्यदानम्, (२१) रात्निकाऽऽहूतेन शिष्येण 'तथेति' इति वक्तव्ये 'किमुच्यते ?' न श्रुतं पुनरुच्यताम्, इत्यादिप्रल्पनम्, (२२) प्रेरयन्त रात्निकं प्रति त्वङ्कारशब्दोच्चारणम्, (२३) रत्नाधिकस्य पुरतः प्रयोजनादधिकं निरर्थकं कठोरं वा सभाषणम्, (२४) ग्लाना-

रात्रिमे गुरु के पूछने पर जागते हुए भी उत्तर नहीं देना, (१४) आहार आदि लाकर प्रथम छोटे के पास आलोचना करना, (१५) आहारपानी आदि लाकर प्रथम छोटे को दिखाना, (१६) गुरु को पूछे बिना अपनी इच्छा से अन्य छोटे साधुओं की निमन्त्रणा करना, (१७) गुरु को पूछे बिना ही अपनी इच्छासे अन्य साधुओं को आहार आदि देना, (१८) गुरु के साथ आहार करता हुआ मनोज्ञ स्वयं खाजाना, (१९) कार्यवश गुरु के बोलाने पर चुप रह जाना, (२०) आसन पर बैठे हुए ही गुरु को उत्तर देना, (२१) गुरु के बुलाने पर 'तदस्ति' न बोल कर 'क्या कहते हैं !' क्या कहना है !' ऐसा बोलना, (२२) गुरुको 'तृ' शब्द बोलना, (२३) गुरु के सामने प्रयोजन से अधिक निरर्थक तथा कठोर बोलना,

जगता छोवा छताय उत्तर नहि आपवो, (१४) आहार वगेरे लावीने प्रथम नानानी पास आलोचना करवी, (१५) आहार-पाणी आदि लावीने प्रथम नाना छोय तेने देखावो, (१६) गुरुछने पूछया बिना पोतानी छच्छाथीन अन्य नाना साधुने निमन्त्रण करवु, (१७) गुरुछने पूछया बिना पोतानी छच्छाथीन अन्य साधुछोने आहार आदि आपवु, (१८) गुरुनी साथे आहार करता पोताने ने साइ लागे ते पोतेन भाछ नवु, (१९) कार्यवश गुरुछ बोलावे तो पछु चुप रही नवु, (२०) आसन उपर भेठा भेठा उत्तर आपवो, (२१) गुरुछ बोलावे तारे " तदस्ति " नहि छहेता " शु छडो छे ? " शु छडेवु छे ? ओ प्रभाछे नवाण आपवो, (२२) गुरुछने 'तृ' शब्दथी बोलाववा, (२३) गुरुनी सामे प्रयो

દિપરિચર્યાર્થે પ્રેરકાય ગુરવે 'ત્વ કથ ન સપરિચરસિ'—ઇત્યાદિરીત્યોદીરણમ્, (૨૫) કથા કથયતો રાત્નિકસ્ય 'એવ વક્તવ્યમ્' इति कथनम्, (૨૬) કથા કથયતો રાત્નિકસ્ય 'નો સ્મરતિ ભવાન્' इति कथनम्, (૨૭) કર્મકથા શ્રાવયતિ રાત્નિકેઽન્યેમનસ્કતા, (૨૮) રાત્નિકકથાયા પરિપદ્ધેદનમ્, (૨૯) ધર્મકથાયા 'ગોચરીવેલા સમ્પ્રાપ્તા'—ઇત્યાદિવિપલાપઃ, (૩૦) અનુત્થિતાયા પરિપદિ રાત્નિકોક્તાયા એવ કથાયા મુહુર્મુહુ રુચિરરૂપેણ સ્વયભાષણમ્, (૩૧) રાત્નિકસમ્બન્ધિશય્યાસસ્તારકાદીના પાદાદિના સઘટ્ટનમ્, (૩૨) તસ્ય શય્યાદિષૂપવેશનાદિ, (૩૩) રાત્નિકાદુષ્ણાસને સમુપવેશનમિતિ ॥ સૂ. ૨૦ ॥

(૨૪) ગ્લાન આદિ કી વૈયાવૃત્ય કે લિયે ગુરુદ્વારા પ્રેરણા કરને પર 'આપ ક્યોં નહીં કરતે હો !' એસા ઉત્તર દેના । (૨૫) ધર્મકથા કરતે હુણ ગુરુ કો ટોકના અર્થાત્ 'ઘટ્ટ એસા નહીં હૈ એસા હૈ' इत्यादि कहना, (૨૬) ધર્મકથા કહતે હુણ ગુરુ કો 'આપકો યાદ નહીં હૈ કથા !' એસા કહના, (૨૭) ગુરુ કી ધર્મકથા સે પ્રસન્ન નહીં હોના, (૨૮) ગુરુ કી સભા મે છેદભેદ કરના, (૨૯) ધર્મકથા મેં 'ગોચરી કા સમય આ ગયા' इत्यादि बोलना, (૩૦) ઉપસ્થિત (વૈઠી હુઈ) સભામેં ગુરુ સે કહી ગઈ કથા કો દોહરા કર સુન્દર રૂપ સે કહના, (૩૧) ગુરુસમ્બન્ધી શય્યા-સયારે કા પૈર આદિ સે સઘટ્ટા કરના, (૩૨) ગુરુ કી શય્યા આદિ પર બૈઠના (૩૩) ગુરુ સે ઝચે આસન પર બૈઠના । इन तीस आशातनाओ

જનથી અધિક નિર્ર્થક તથા કઠોર બોલવુ, (૨૪) ગ્લાન આદિની વૈયાવૃત્ય કરવાની ગુરુદ્વારા આજ્ઞા મળતા "તમે કેમ કરતા નથી" ? એવો ઉત્તર આપવો, (૨૫) ધર્મકથા કરતા હોય ત્યારે ગુરુને ટોકવુ, અર્થાત્ "આ પ્રમાણે નથી" 'એ પ્રમાણે છે,' इत्यादि કહેવુ (૨૬) ધર્મકથા કરતા ગુરુજીને 'આપને યાદ નથી શુ' આવી રીતે કહેવુ, (૨૭) ગુરુની ધર્મકથાથી પ્રસન્ન નહીં થવુ, (૨૮) ગુરુજીની સભામા છેદભેદ કરવુ (૨૯) ધર્મકથામા ગોચરીને સમય થઇ ગયો છે' આ પ્રકારે બોલવુ, (૩૦) બેઠેલી સભામા ગુરુજીએ કહેલી કથાને બીજી વખત સુદર રૂપથી કહેવી (૩૧) ગુરુજી સમ્બન્ધી શય્યા સથાનાને પગ વડે ઠરીને સ્પર્શ કરવો. (૩૨) ગુરુજીની શય્યા વગેરે ઉપર બેસવુ, (૩૩) ગુરુજીના આસન કરતા ઉંચા આસન ઉપર બેસવુ. આ તેત્રીશ આશાતનાઓ

एव गुरुसम्बन्धिनीस्त्रयस्त्रिंशदाशातना अभिधाय सम्प्रति तदितरा
अप्याह-‘अरिहताण’ इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

अरिहताण आसायणाए, सिद्धाण आसायणाए, आयरियाणं
आसायणाए, उवज्झायाण आसायणाए, साहूण आसायणाए,
साहुणीण आसायणाए, सावयाण आसायणाए, सावियाण आसा-
यणाए, देवाण आसायणाए, देवीण आसायणाए, इहलोगस्स
आसायणाए, परलोगस्स आसायणाए, केवलीण आसायणाए,
केवल्लिपन्नत्तस्स धम्मस्स आसायणाए, सदेवमणुयासुरस्स लोगस्स
आसायणाए, सब्बपाणभूयजीवसत्ताण आसायणाए, कालस्स
आसायणाए, सुअस्स आसायणाए, सुयदेवयाए आसायणाए,
वायणायरियस्स आसायणाए, ज वाइच्च, वच्चामेलिय, हीणक्खर,
अच्चक्खर, पयहीण, विणयहीण, जोगहीण, घोसहीण, सुद्धुदिन्नं,
दुद्धुपडिच्छिय, अकाले कओ सज्झाओ, काले न कओ सज्झाओ,
असज्झाए सज्झाडय, सज्झाए न सज्झाडय, तस्स मिच्छा मि
दुक्कड ॥ सू० २१ ॥

॥ जया ॥

अर्हतामाशातनया, सिद्धानामाशातनया, आचार्याणामाशातनया, उपा-
ध्यायानामाशातनया, साधूनामाशातनया, साध्वीनामाशातनया, श्रावकाणा-
माशातनया, श्राविकाणामाशातनया, देवानामाशातनया, देवीनामाशातनया,
इहलोकस्याऽऽशातनया, परलोकस्याऽऽशातनया, केवल्लिनामाशातनया, केवलि-
सम्बन्धी कोई अतिचार किया गया हो तो ‘उससे मैं निवृत्त
होता हूँ ॥ सू० २० ॥

इस प्रकार गुरु सम्बन्धी तैंतीस (३३) आशातनाए कह कर
अब अरिहन्तादि की आशातनाए कहते हैं—

सम्बन्धी कोई अतिचार लाया होय ‘तो तेभायी हु निवृत्त थाउ छु (सू० २०)

आ प्रकारे गुरु सम्बन्धी तेन्तीश आशातनाओ कइल पछी हुवे अरि
हुतादिकनी आशातना कहे छे—

દિપરિચર્યાર્થ પ્રેરકાય ગુરવે 'ત્વ કથ ન સપરિચરસિ'—ઇત્યાદિરીત્યોદીરણમ્, (૨૫) કથા કથયતો રાત્નિકસ્ય 'એવ વક્તવ્યમ્' ઇતિ કથનમ્, (૨૬) કથા કથયતો રાત્નિકસ્ય 'નો સ્મરતિ ભવાન્' ઇતિ કથનમ્, (૨૭) કર્મકથા શ્રાવયતિ રાત્નિકેઽન્યમનસ્કતા, (૨૮) રાત્નિકકથાયા પરિપદ્ધેદનમ્, (૨૯) ધર્મકથાયા 'ગોચરીવેલા સમ્પ્રાપ્તા'—ઇત્યાદિવિપ્રલાપઃ, (૩૦) અનુત્થિતાયા પરિપદિ રાત્નિકોક્તાયા એવ કથાયા મુહુર્મુહ રુચિરરૂપેણ સ્વયભાષણમ્, (૩૧) રાત્નિકસમ્બન્ધિશય્યાસસ્તારકાદીના પાદાદિના સઘટ્ટનમ્, (૩૨) તસ્ય શય્યાદિષૂપવેશનાદિ, (૩૩) રાત્નિકાદુઘ્વાસને સમુપવેશનમિતિ ॥ સૂ. ૨૦ ॥

(૨૪) ગ્લાન આદિ કી વૈયાવૃત્ય કે લિયે ગુરુદ્વારા પ્રેરણા કરને પર 'આપ ક્યોં નહીં કરતે હો !' એસા ઉત્તર દેના । (૨૫) ધર્મકથા કરતે હુણ ગુરુ 'કો ટોકના અર્થાત્ 'યહ એસા નહીં હૈ એસા હૈ' ઇત્યાદિ કહના, (૨૬) ધર્મકથા કહતે હુણ ગુરુ કો 'આપકો યાદ નહીં હૈ કયા !' એસા કહના, (૨૭) ગુરુ કી ધર્મકથા સે પ્રસન્ન નહો હોના, (૨૮) ગુરુ કી સભા મેં છેદભેદ કરના, (૨૯) ધર્મકથા મેં 'ગોચરી કા સમય આ ગયા' ઇત્યાદિ બોલના, (૩૦) ઉપસ્થિત (બેઠી હુઈ) સભામેં ગુરુ સે કહી ગઈ કથા કો દોહરા કર સુન્દર રૂપ સે કહના, (૩૧) ગુરુસમ્બન્ધી શય્યા-સથારે કા પૈર આદિ સે સઘટ્ટા કરના, (૩૨) ગુરુ કી શય્યા આદિ પર બેઠના (૩૩) ગુરુ સે ઝચે આસન પર બેઠના । इन तीस आशातनाओं

જનથી અધિક નિર્થક તથા કઠોર બોલવું, (૨૪) ગ્લાન આદિની વૈયાવૃત્ય કરવાની ગુરુદ્વારા આજ્ઞા મળતા "તમે કેમ કરતા નથી" ? એવો ઉત્તર આપવો, (૨૫) ધર્મકથા કરતા હોય ત્યારે ગુરુને ટોકવું, અર્થાત્ "આ પ્રમાણે નથી" 'એ પ્રમાણે છે,' ઇત્યાદિ કહેવું (૨૬) ધર્મકથા કરતા ગુરુજીને 'આપને યાદ નથી શું' આવી રીતે કહેવું, (૨૭) ગુરુની ધર્મકથાથી પ્રસન્ન નહીં થવું, (૨૮) ગુરુજીની સભામાં છેદભેદ કરવું (૨૯) ધર્મકથામાં ગોચરીનો સમય થઈ ગયો છે' આ પ્રકારે બોલવું, (૩૦) બેઠેલી સભામાં ગુરુજીએ કહેલી કથાને બીજી વખત સુદર રૂપથી કહેવી (૩૧) ગુરુજી સમ્બન્ધી શય્યા સથારાને પગ વડે કરીને સ્પર્શ કરવો. (૩૨) ગુરુજીની શય્યા વગેરે ઉપર બેસવું, (૩૩) ગુરુજીના આસન કરતા ઉંચા આસન ઉપર બેસવું. આ તેત્રીશ આશાતનાઓ

પુણ્યપ્રકૃતિપ્રાહુલ્યેનાઽન્તઃસન્ત્યક્તનિર્વિલાઽસક્તિતયા કેવલમૌદાસીન્યેનૈવ,
તદપિ ચ સસારાવસ્થાયામેવ, એવ કેવલજ્ઞાને સમ્પ્રાપ્તેઽપિ મોહનીયકર્માભાવા-
દનિચ્છાયા સત્યામપિ સમવસરણાદિપ્રાપ્તિસ્તીર્થકરનામકર્મપ્રકૃતિફલભોગસ્ય
દુર્નિવારતયા તદુદયેનૈવ, નહ્યેતાવતા વીતરાગત્વપ્રાપ્ત્યુત્તર તેષા કિશ્ચિદ્ધીયતે વીત-
રાગત્વાદેવ । ‘સિદ્ધાણ૦’ ઇતિ, સિદ્ધાનામાશાતના યથા-ન સન્તિ સિદ્ધાથેષ્ટા-

લોગો કી તરહ ખાસક્ત હો કર નહી, કિન્તુ પૂર્વોપાર્જિત પુણ્ય-
પ્રકૃતિ કા પ્રવલ ઉદય હોને કે કારણ અનિવાર્ય ભોગો કો અના-
સક્ત હો કર ઉદાસીન ભાવસે ભોગા હૈ, હસી પ્રકાર મોહનીય
કર્મ કા અભાવ હોને સે સબ પ્રકાર કી ઇચ્છા સે રહિત ઓર
વીતરાગ હો જાને પર ભી તીર્થકરનામકર્મ પ્રકૃતિ કે ઉદય કે
કારણ દુર્નિવાર દેવકૃત સમવસરણાદિ સે યુક્ત હોતે હૈં । અતઃએવ
‘અર્હન્ત નહી હૈં’-ઇત્યાદિ કયન કરના આશાતના હૈ । સિદ્ધો કી
આશાતના સે, યહ આશાતના હમ પ્રકાર હોતી હૈ—‘સિદ્ધ નહી હૈં,’
કયોં કિ ઉનકે હલન-ચલન આદિ કિસી પ્રકાર કી ચેષ્ટા કા
અભાવ હૈ, ઓર યદિ વે હોં ભી તો રાગદ્વેષસે મુક્ત નહી હૈ, કયોં
કિ રાગ-દ્વેષ ધ્રુવ હોને કે કારણ કિસી સે નષ્ટ નહી કિયે જા
સકતે, ઓર સાથ હી યહ ભી કહ સકતે હૈ કિ જિનકો આપ
સિદ્ધ કહતે હૈ વે ભી અસર્વજ્ઞ હી હૈ, સર્વજ્ઞ નહીં હૈ, કયોં કિ

નહિ, પરન્તુ પૂર્વોપાર્જિત પુણ્ય પ્રકૃતિના પ્રણા ઉદય હોવાના કારણે અનિ-
વાર્ય લોગોને અનાસક્ત થઇને ઉદાસીનભાવથી લોગવ્યા છે, એ પ્રમાણે મોહનીય
કર્મનો અભાવ હોવાથી સર્વ પ્રકારની ઇચ્છાથી રહિત અને વીતરાગ થવા
પછી પણ તીર્થકર નામકર્મ પ્રકૃતિના ઉદયના કારણે દુર્નિવાર દેવકૃત સમવસરણાદિથી
યુક્ત હોય છે, એટલા માટે ‘અર્હન્ત નથી’ ઇત્યાદિ કહેવું તે આશાતના છે
સિદ્ધોની આશાતનાથી, તે આશાતના આ પ્રમાણે છે—‘સિદ્ધ નથી’ કારણ કે
તેને હલન-ચલન આદિ કોઇ પ્રકારની ચેષ્ટા કરવાપણું નથી, અને જો તેઓ હોય
તો પણ રાગ-દ્વેષથી તે મુક્ત નથી, કારણ કે રાગ-દ્વેષ ધ્રુવ હોવાના કારણે
કોઇથી નાશ થઇ શકતો નથી, અને સાથે-સાથે એ પણ કહી શકીએ છીએ કે -
આપ જેને સિદ્ધ કહો છો તે પણ અસર્વજ્ઞ છે, સર્વજ્ઞ નથી, કેમકે વસ્તુના સામાન્ય-

પણસ્ય ધર્મસ્યાઽઽશાતનયા, સદેવમનુજાઽઽસુરસ્ય લોકસ્યાઽઽશાતનયા, સર્વપાણ
 ભૂતજીવસત્ત્વાનામાશાતનયા, કાલસ્યાશાતનયા, શ્રુતસ્યાશાતનયા, શ્રુતદેવતાયા
 આશાતનયા, વાચનાચાર્યસ્યાઽઽશાતનયા, યદ્ વ્યારિદ્ર, વ્યત્યામેહિત, હીનાક્ષરમ્,
 અત્યક્ષર, પદહીન, વિનયહીન, યોગહીન ઘોષહીન, સુષ્ટુ દત્ત દુષ્ટુ પ્રતીચ્છિતમ્,
 અકાલે કૃતઃ સ્વાધ્યાયઃ, કાલે ન કૃતઃ સ્વાધ્યાયઃ, અસ્વાધ્યાયે સ્વાધ્યાયિત,
 સ્વાધ્યાયે ન સ્વાધ્યાયિત, તસ્ય મિથ્યા મયિ દુષ્કૃતમ્ ॥ સૂ. ૨૧ ॥

॥ ટીકા ॥

‘અરિહતાણ’ અર્હતામ્, કર્મણિ સમ્બન્ધસામાન્યે વા પટ્ટી, તેનાઽર્હત્વ-
 મિકયાઽર્હત્સમ્બધિન્યા વેત્યર્થ । એવમગ્રેઽપિ, આશાતના ચાઽન્ન-‘ન સત્યર્હન્ત
 સ્તત્પદવાન્યાનામપ્યસ્મદાદિવદ્ભોગાઽઽસક્તત્વાદ્’ ઇત્યાશુત્ત્યા જાયતે । નતુ નેય
 માશાતના તાત્ત્વિકત્વાત્ તથાહિ-શ્રૂયન્ત એવાઽર્હન્તોઽપિ ત્રિપમત્રિપક્ષભોગ-
 ભોગિનો, દેવકૃતૈઃ સમવસરણસ્ફટિકાદિસિંહાસનાદિભિરવિધમદાપાતિદાર્યૈશ્ચ યુક્તા,
 ઇતિ ચેન્ન, નહિ તે સરાગિણ ઇવાઽઽસક્ત્યા ભોગાન્ ભુજ્ઞતે સ્મ, અપિતુ પૂર્વાર્જિત-

અરિહતો કી આશાતના સે, યહ આશાતના ઇસ પ્રકાર
 હૈ—‘અર્હન્ત નહીં હૈં, ક્યોં કિ જિનકો હમ અર્હન્ત કહ રહે હૈ વે
 ભી કમી ભોગોં કા ફલ કહવા સમજતે હુએ ભી ભોગતે હી થે,
 તથા કેવલજ્ઞાન પ્રાપ્ત હોને પર ભી દેવકૃત સમવસરણ સ્ફટિકસિં-
 હાસન આદિ સે યુક્ત હોતે હી હૈં । યહાં પ્રશ્ન ઊઠતા હૈ કિ—‘યહ
 આશાતના કૈસે ? ક્યોં કિ એસા ઉલ્લેખ તો અર્હન્ત ભગવાન કે
 લિયે શાસ્ત્રોં મેં આતા હી હૈ ।’ હસકા ઉત્તર યહ હૈ કિ—‘અર્હન્ત
 ભગવાન ને જો સસાર અવસ્થામે ભોગાદિ ભોગા હૈ વહ સરાગી

અરિહતોની આશાતનાથી, તે આશાતના આ પ્રમાણે છે ‘અર્હન્ત નથી’
 કારણ કે જેને અમે અર્હન્ત કહીએ છીએ તે પણ કોઈ વખત ‘ભોગોનું ફલ
 કહ્યું છે’ એમ સમજતા છતાંય ભોગવતાજ હતા, તથા કેવલજ્ઞાન પ્રાપ્ત થવા
 છતાંય પણ દેવકૃત સમવસરણ સ્ફટિકસિંહાસન આદિથી યુક્ત હોયજ છે, અર્હિ
 પ્રશ્ન થાય છે કે—આ આશાતના કેવી રીતે ? કારણ કે એવો ઉલ્લેખ તો અર્હન્ત
 ભગવાન માટે શાસ્ત્રમાં આવે છેજ, તેનો ઉત્તર એ છે કે ‘અર્હન્ત ભગવાને
 જે સસાર-અવસ્થામાં ભોગાદિ ભોગવ્યા છે તે સરાગી લોકો પ્રમાણે આસક્ત થઈને

પુણ્યપ્રકૃતિગાહુલ્યેનાઽન્તઃસન્ત્યક્તનિશ્ચિલાઽસક્તિતયા કેવલમૌદાસીન્યેનૈવ,
તદપિ ચ સસારાવસ્થાયામેવ, એવ કેવલજ્ઞાને સમ્પ્રાપ્તેઽપિ મોહનીયકર્માભાવા-
દનિચ્છાયા સત્યામપિ સમવસરણાદિપ્રાપ્તિર્તીર્થકરનામકર્મપ્રકૃતિફલભોગસ્ય
દુર્નિવારતયા તદુદયેનૈવ, નહ્યેતાવતા વીતરાગત્વપ્રાપ્ત્યુત્તર તેષા કિશ્ચિદ્ધીયતે વીત-
રાગત્વાદેવ । ‘સિદ્ધાણ૦’ ઇતિ, સિદ્ધાનામાશાતના યથા-ન સન્તિ સિદ્ધાથેષ્ટા-

લોગો કી તરહ ખાસક્ત હો કર નહી, કિન્તુ પૂર્વોપાર્જિત પુણ્ય-
પ્રકૃતિ કા પ્રચલ ઉદય હોને કે કારણ અનિવાર્ય ભોગો કો અના-
સક્ત હો કર ઉદાસીન ભાવસે ભોગા હૈ, હસી પ્રકાર મોહનીય
કર્મ કા અભાવ હોને સે સવ પ્રકાર કી ઇચ્છા સે રહિત ઔર
વીતરાગ હો જાને પર ભી તીર્થઙ્કરનામકર્મ પ્રકૃતિ કે ઉદય કે
કારણ દુર્નિવાર દેવકૃત સમવસરણાદિ સે યુક્ત હોતે હૈ । અતઃપ્રવ
‘અર્હન્ત નહી હૈ’-ઇત્યાદિ કથન કરના આશાતના હૈ । સિદ્ધો કી
આશાતના સે, યહ આશાતના ઇમ પ્રકાર હોતી હૈ—‘સિદ્ધ નહી હૈ,’
ક્યોં કિ ઉનકે હલન-ચલન આદિ કિસી પ્રકાર કી ચેષ્ટા કા
અભાવ હૈ, ઔર યદિ વે હોં ભી તો રાગદ્વેષસે મુક્ત નહી હૈ, ક્યોં
કિ રાગ-દ્વેષ ધ્રુવ હોને કે કારણ કિસી સે નષ્ટ નહીં કિયે જા
સકતે, ઔર સાથ હી યહ ભી કહ સકતે હૈ કિ જિનકો આપ
સિદ્ધ કહતે હૈ વે ભી અસર્વજ્ઞ હી હૈ, સર્વજ્ઞ નહીં હૈ, ક્યોં કિ

નહિ, પરન્તુ પૂર્વોપાર્જિત પુણ્ય પ્રકૃતિના પ્રણય ઉદય હોવાના કારણે અનિ-
વાર્ય લોગોને અનાસક્ત થઇને ઉદાસીનભાવથી લોગવ્યા છે, એ પ્રમાણે મોહનીય
કર્મનો અભાવ હોવાથી સર્વ પ્રકારની ઇચ્છાથી રહિત અને વીતરાગ થવા
પછી પણ તીર્થંકર નામકર્મ પ્રકૃતિના ઉદયના કારણે દુર્નિવાર દેવકૃત સમવસરણાદિથી
યુક્ત હોય છે, એટલા માટે ‘અર્હન્ત નથી’ ઇત્યાદિ કહેવું તે આશાતના છે
સિદ્ધોની આશાતનાથી, તે આશાતના આ પ્રમાણે છે—‘સિદ્ધ નથી’ કારણ કે
તેને હલન-ચલન આદિ કોઇ પ્રકારની ચેષ્ટા કરવાપણુ નથી, અને જો તેઓ હોય
તો પણ રાગ-દ્વેષથી તે મુક્ત નથી, કારણ કે રાગ-દ્વેષ ધ્રુવ હોવાના કારણે
કોઇથી નાશ થઇ શકતો નથી, અને સાથે-સાથે એ પણ કહી શકીએ છીએ કે -
આપ જોને સિદ્ધ કહેા છે તે પણ અસર્વજ્ઞ છે, સર્વજ્ઞ નથી, કેમકે વસ્તુના સામાન્ય-

અદર્શનાદ્રાગદ્વેપયુક્તત્વાच्च, रागद्वेषौ हि धौव्यान् केनापि भवयितुं शक्येते, किञ्च ये सिद्धपदवाच्यास्तेऽपि त्रयमित्राऽसर्वज्ञा, यतः पदार्थानां सामान्यधर्मग्राहि दर्शनं, विशेषधर्मग्राहि च ज्ञानमिति सामान्यज्ञानोत्तरकाल एव विशेषज्ञानोत्पत्तेः सर्वत्र दृष्टत्वाच्चास्ति दर्शनज्ञानयोर्यौगपद्य (मेरुकालावच्छिन्नत्व) मिति ज्ञान-दर्शनयोः परस्पराऽऽन्तरकृतया ज्ञानोपयोगे दर्शनोपयोगस्य, दर्शनोपयोगे ज्ञानोपयोगस्य चाऽभाव एव, भावे वा ज्ञानदर्शनयोरेकत्वमापयेत्, तस्माज्ज्ञानत्व-सामान्यावच्छिन्नयोर्दर्शनज्ञानयोर्यौगपद्येनाऽयौगपद्येन वा भवदभिमतेषु सिद्धपद-वाच्येष्वसम्भवान्नास्ति तेषु सर्वज्ञताऽपीति । ननु कथमियमाशातना ? सिद्धाना-

वस्तु का सामान्यधर्मग्राही दर्शन और विशेषधर्मग्राही ज्ञान होता है, तथा पदार्थों का सामान्य ज्ञान हुए बिना विशेष ज्ञान हो नहीं सकता, अतः एक समयमें एक ही उपयोग सिद्ध होता है, कारण यह है कि दर्शनोपयोग के समयमें ज्ञानोपयोग नहीं और ज्ञानोपयोग के समयमें दर्शनोपयोग नहीं, इसलिये एक समयमें सामान्य-विशेषात्मक उभय धर्म का ज्ञान असंभव है, यदि संभव कहें तो ज्ञान और दर्शन में एकत्व हो जायगा, क्योंकि कि वैसी अवस्था में पदार्थस्वरूप जितना ज्ञानसे प्रतीत होगा दर्शन से भी उतना ही होगा, इस कारण ज्ञान दर्शन का यौगपद्य (एक साथ स्थिति) न रहने से 'सिद्ध असर्वज्ञ हैं'—इत्यादि ।

ધર્મગ્રાહી દર્શન અને વિશેષધર્મગ્રાહી જ્ઞાન હોય છે, તથા પદાર્થોનું સામાન્ય જ્ઞાન થયા વિના વિશેષ જ્ઞાન થઈ શકતું જ નથી એટલા કારણથી એક સમયમાં એકજ ઉપયોગ સિદ્ધ થાય છે, કારણ કે દર્શન-ઉપયોગના સમયમાં જ્ઞાન-ઉપયોગ હોય નહિ અને જ્ઞાન-ઉપયોગના સમયે દર્શનોપયોગ હોય નહિ, એટલા માટે એક સમયમાં સામાન્ય-વિશેષાત્મક બન્ને ધર્મનું જ્ઞાન થવું અસંભવિત છે, જો સંભવ છે એમ કહેશે તો જ્ઞાન અને દર્શનમાં એકત્વ આવી જશે, કારણ કે તેવી અવસ્થામાં પદાર્થસ્વરૂપ એટલા જ્ઞાનથી પ્રતીત થશે તેટલું જ દર્શનથી થશે, એ કારણથી જ્ઞાન-દર્શનનું યૌગપદ્ય-એક સાથેની સ્થિતિ નહિ રહેવાથી 'સિદ્ધ અસર્વજ્ઞ છે' ઇત્યાદિ

મુક્તાભ્ય એવ યુક્તિભ્યોઽસત્ત્વાત્, સત્ત્વેઽપિ વા તત્તદોપસમ્પૃક્તત્વાદિતિ ચેતુચ્છ-
મિદમ્, યતઃ ‘સિદ્ધાઃ’ ઇતિ પ્રાપ્તસ્યૈવ હિ પ્રતિષેધો ભવતિ, સિદ્ધાઃ સન્તીત્યત
એવ ભવતાઽપ્યુચ્યતે, ‘ન સન્તી’-તિ, પ્રસિદ્ધપ્રતિયોગિકસ્યૈવ હ્યભાવસ્ય સર્વત્ર
ગ્રહણ દૃશ્યતે, ગોશૃંગ નાસ્તીતિ વક્તુ શક્યતે યતો ગોશૃંગમન્યત્રોપલભ્યતે, યચ્ચ
નોપલભ્યતે ન તત્પ્રતિયોગિકાભાવો વક્તુ શક્યતે-‘શશશૃંગ નાસ્ત્યશ્વશૃંગ
નાસ્તીતિ । યત્રપિ પદપાર્થક્યે શશાદેઃ શૃંગાદેશ્ચ વાચ્યાઃ સન્ત્યેવ ઘટાદેશ્ચ,

યદિ કોઈ કહે કિ-યહ આશાતના કૈસે ? ક્યોંકિ ડપર
કહી હુઈ યુક્તિયોં સે યહ વાત સત્ય હી જાન પડતી હૈ’ તો હસ
કા ઉત્તર યહ હૈ કિ-‘તુમને જો કહા હૈ કિ-‘સિદ્ધ નહીં હૈ’-હસી સે
‘સિદ્ધ હૈ’-એસા સિદ્ધ હુઆ, ક્યોંકિ સત્ (વિદ્યમાન) વસ્તુ કા હી
નિષેધ કિયા જાતા હૈ, જો વસ્તુ વિદ્યમાન નહીં હૈ ઉસકા નિષેધ
ભી નહીં કિયા જાસકતા હૈ, ‘ગાયકે સીંગ નહીં હૈ’ એસા કહા
જાતા હૈ, હસલિય કિ ગાય કે સીંગ હોતે હૈ, જો વસ્તુ ત્રિકાલમેં
હોને કી નહીં, જૈસે ઘોડે યા યરગોશ કે સીંગ, તો એસી વસ્તુઓં
કા નિષેધ ભી પ્રાયઃ બુદ્ધિમાન મનુષ્યોં કે મુખ સે નહીં કિયા
જાતા, યોં તો શશશૃંગ આદિ પદોં કો અલગ ર રખને પર પ્રત્યેક
કા અર્થ પ્રસિદ્ધ હી રહતા હૈ, કિન્તુ ઇકઢા કર દેને પર ‘શશશૃંગ’
‘અશ્વશૃંગ’ આદિ શબ્દોં કા અર્થ હોગા ‘યરગોશ કે સીંગ’ ‘ઘોડે

ને કોઇ કહે કે - ‘આ આશાતના કેવી રીતે’ ? કેમકે ઉપર કહેવામા
આવેલી યુક્તિઓથી આ વાત તદન સત્યજ દેખાય છે, તો એનો ઉત્તર એ છે કે -
તમે ને કહ્યું કે ‘સિદ્ધ નથી,’ એ વાક્ય ઉપર સિદ્ધ છે, તેમ નિશ્ચય થયેલ છે
કારણ કે સત્-વિદ્યમાન-વસ્તુનોજ નિષેધ થઈ શકે છે, ને વસ્તુ વિદ્યમાન ન હોય
તેનો નિષેધ પણ કરી શકાતો નથી ‘ગાયને સીંગ નથી’ એમ કહેવામા આવે છે તે
એટલા માટે કે ‘ગાયને સીંગ હોય છે જ’ ને વસ્તુ ત્રિકાળમા હોયજ નહિ, જેમકે
‘ઘોડા અથવા યરગોશના સીંગ’ તો એવી વસ્તુઓનો નિષેધ પણ ઘણું કરી
બુદ્ધિમાન મનુષ્યના મુખથી કરવામા આવતો નથી જેમકે શશશૃંગ આદિ પદોને
જૂદા-જૂદા રાખવાથી પ્રત્યેકનો અર્થ પ્રસિદ્ધજ રહે છે પરન્તુ એકઠા કરવાથી
‘શશશૃંગ’ ‘અશ્વશૃંગ’ આદિ શબ્દોનો અર્થ થશે ‘યરગોશના સીંગ’ ‘ઘોડાના

અર્થનાદ્રાગદ્વેપયુક્તત્વાच्च, रागद्वेषौ हि ध्रौव्यान् केनापि 'द्वयितुं शक्येते, किञ्च ये सिद्धपदवाच्यास्तेऽपि वयमिवाऽसर्वज्ञा, यतः पदार्थानां सामान्यधर्मग्राहि दर्शन, विशेषधर्मग्राहि च ज्ञानमिति सामान्यज्ञानोत्तरकाल एव विशेषज्ञानोत्पत्तेः सर्वत्र दृष्टत्वाच्चास्ति दर्शनज्ञानयोर्यौगपद्य (मेककालावच्छिन्नत्व) मिति ज्ञान दर्शनयोः परस्पराऽऽवारकतया ज्ञानोपयोगे दर्शनोपयोगस्य, दर्शनोपयोगे ज्ञानोपयोगस्य चाऽभाव एव, भावे वा ज्ञानदर्शनयोरेकत्वमापयेत्, तस्माज्ज्ञानत्व-सामान्यावच्छिन्नयोर्दर्शनज्ञानयोर्यौगपद्येनाऽयौगपद्येन वा भवदभिमतेषु सिद्धपद-वाच्येष्वसम्भवान्नास्ति तेषु सर्वज्ञताऽपीति । ननु कथमियमाशातना ? सिद्धाना-

वस्तु का सामान्यधर्मग्राही दर्शन और विशेषधर्मग्राही ज्ञान होता है, तथा पदार्थों का सामान्य ज्ञान हुए बिना विशेष ज्ञान हो नहीं सकता, अतः एक समयमें एक ही उपयोग सिद्ध होता है, कारण यह है कि दर्शनोपयोग के समयमें ज्ञानोपयोग नहीं और ज्ञानोपयोग के समयमें दर्शनोपयोग नहीं, इसलिये एक समयमें सामान्य-विशेषात्मक उभय धर्म का ज्ञान असंभव है, यदि संभव कहें तो ज्ञान और दर्शन में एकत्व हो जायगा, क्योंकि कि वैसी अवस्था में पदार्थस्वरूप जितना ज्ञानसे प्रतीत होगा दर्शन से भी उतना ही होगा, इस कारण ज्ञान दर्शन का यौगपद्य (एक साथ स्थिति) न रहने से 'सिद्ध असर्वज्ञ हैं'—इत्यादि ।

ધર્મગ્રાહી દર્શન અને વિશેષધર્મગ્રાહી જ્ઞાન હોય છે, તથા પદાર્થોનું સામાન્ય જ્ઞાન થયા વિના વિશેષ જ્ઞાન થઈ શકતું જ નથી એટલા કારણથી એક સમયમાં એકજ ઉપયોગ સિદ્ધ થાય છે, કારણ કે દર્શન-ઉપયોગના સમયમાં જ્ઞાન-ઉપયોગ હોય નહિ અને જ્ઞાન-ઉપયોગના સમયે દર્શનોપયોગ હોય નહિ, એટલા માટે એક સમયમાં સામાન્ય-વિશેષાત્મક બન્ને વર્ત્તનું જ્ઞાન થવું અસંભવિત છે, જો સંભવ છે એમ કહેશે તો જ્ઞાન અને દર્શનમાં એકત્વ આવી જશે, કારણ કે તેવી અવસ્થામાં પદાર્થસ્વરૂપ જેટલા જ્ઞાનથી પ્રતીત થશે તેટલું જ દર્શનથી થશે, એ કારણથી જ્ઞાન-દર્શનનું યૌગપદ્ય-એક સાથેની સ્થિતિ નહિ રહેવાથી 'સિદ્ધ અસર્વજ્ઞ છે' ઇત્યાદિ

પ્રક્ષીણસકલકપાયાણા તેષા સમન્વતામેવ કુતઃ ? ન ચોપયોગયોગપદ્યમન્તરેણ સર્વજતા કથમિતિ વાચ્યમ્, યોગપદ્યેનોપયોગદ્વયાભાવસ્ય જીવસ્યામાવ્યાન્નયા-ભિપ્રેતત્વાન્ન, તયોરૈવથ તુ ન, વિભિન્નાઽઽવરણકૃત્વાત્ । દ્રવ્યાર્થિકનયેન જ્ઞાનદર્શનયોરેકત્વ, જ્ઞાનનયમાશ્રિત્ય સર્વમેવેદ જ્ઞાનમિતિ દર્શનનયમાશ્રિત્ય ચ સર્વમેવેદ દર્શનમિતિ નાસ્ત્યસર્વજ્ઞતાશઙ્કાલેશોઽપીતિ ।

‘આચરિયાણ’ આચાર્યાણામ્, ‘આસાયાણા’ આશાતનયા, આચાર્યા-શાતના ચ—‘બાલા અકુલીના અતિમન્દબુદ્ધયશ્ચેમે, અન્યોપદેશદક્ષા ન ચ કિશ્ચિ-દાચરન્તિ’ ઇત્યાદિવિકથનરૂપા । એવમુપાધ્યાયનામપ્યાશાતના યોદ્ધવ્યા ।

હૈં કિં ઉનકે સમ્પૂર્ણ કપાય નષ્ટ હો ગયે હૈં । એક સમય મેં દો ઉપયોગ નહીં હોતે હૈં, હસકા કારણ યહ હૈં કિં જીવકા સ્વભાવ હી એસા હૈં । જ્ઞાનોપયોગ ઓર દર્શનોપયોગ દોનોં કો એક તો હસલિયે નહીં કહ સકતે હૈં કિં દોનોંકા આવરણ ભિન્નર હૈં । રહી થાત અસ-ર્વજ્ઞતાકી, હસકા ઉત્તર યહ હૈં કિં દ્રવ્યાર્થિકનય કે મતસે જ્ઞાન ઓર દર્શનમેં એકતા હૈં ક્યોં કિં જ્ઞાનનય કી અપેક્ષા સર્વ જ્ઞાનમય હૈં ઓર દર્શનનય કી અપેક્ષા સર્વ દર્શનમય, હસલિયે સિદ્ધ સર્વજ્ઞ હૈં ।

આચાર્યકી આશાતનાસે, વહ હસ પ્રકાર—“યે બાલક હૈં, અકુલીન હૈં, અલ્પ-બુદ્ધિ હૈં, ઓરોં કો તો ઉપદેશ દેતે હૈં પર સ્વદ કુછ નહીં કરતે” ઇત્યાદિ । હસી પ્રકાર ઉપાધ્યાય કી આશાતના સમજ્ઞની ચાહિયે ।

કે —તેમના કપાયો સંપૂર્ણ નાશ થયા છે એક સમયમા બે ઉપયોગ થાય નહિ એનું કારણ એ છે કે — જીવનો સ્વભાવજ એવો છે જ્ઞાનોપયોગ અને દર્શનોપયોગ એ બન્નેને એટલા માટે એક કહેતા નથી કે બન્નેના આવરણ જૂદા જૂદા છે હવે અસર્વજ્ઞતાની વાત રહી, તેનો ઉત્તર એ છે કે દ્રવ્યાર્થિક નયના મતથી જ્ઞાન અને દર્શનમા એકતા છે, કેમ કે જ્ઞાનનયની અપેક્ષાએ સર્વ જ્ઞાનમય છે અને દર્શન-નયની અપેક્ષાએ સર્વ દર્શનમય છે, એ કારણે સિદ્ધ સર્વજ્ઞ છે

આચાર્યની આશાતનાથી, તે આ પ્રમાણે છે—‘આ બાલક છે, અકુલીન છે, અલ્પબુદ્ધિ છે, બીજાને ઉપદેશ આપે છે પણ પોતે કાંઈ કરતા નથી’—ઇત્યાદિ એ પ્રમાણે ઉપાધ્યાયની આશાતના સમજવી જોઈએ

તથાપિ મિથઃ સમ્પ્રદાના શશશૃંગાદીનામપ્રસિદ્ધિરેવ, અત એવ 'એવ વન્ધ્યા-
સુતો યાતિ, સ્વપુષ્પકૃતશેખરઃ । કર્મક્ષીરચયે સ્નાતઃ, શશશૃંગપ્રનુર્ધરઃ ॥'
ઇત્યાદિપુ સમુદિતાર્થાભાવેન પ્રાતિપદિકત્વાભાવાઽપત્તિમાશङ्ક્ય વન્ધ્યાપદાર્થ-
પુત્રપદાર્થાદેરેકૈકસ્ય પ્રસિદ્ધયા બૌદ્ધમર્થમાદાયાઽથવત્ત્યાત્પ્રાતિપદિસ્ત્વમિત્યાહુ-
ર્વૈયાકરણાઃ, તસ્માત્ 'સિદ્ધા ન સન્તી'—તિ દુષ્પ્રતિપાદમ્ । યદુક્ત 'નિશ્ચેષ્ટ
ત્વમિતિ' તદત્યન્તમસત્, તેષા સિદ્ધસકલકાર્યત્યાન્નિઃશરીરત્વાચ્ચ, રાગદ્વેષો તુ

કે સીંગ' ઇત્યાદિ, વહ અપ્રસિદ્ધ હૈ । યહી કારણ હૈ કિ 'એવ
વન્ધ્યાસુતો યાતિ' ઇત્યાદિ સ્થલોં મે યદ્યપિ અલગ ૨ રચને પર
વન્ધ્યા શબ્દ ઓર સુત શબ્દ કા અર્થ પ્રસિદ્ધ હી હૈ, પરન્તુ ઇકઠા
કર દેને પર 'વન્ધ્યાસુત' 'કર્મક્ષીર' (કલ્હુએકા દૂધ) આદિ શબ્દોં
કા અર્થ કુછ મી નહી હોતા હૈ, અતએવ અનર્થક હોને સે પ્રાતિ-
પદિક સજ્ઞાકા હોના અસમ્ભવ જાનકર વૈયાકરણોંને એક એક પદા
ર્થકી પ્રસિદ્ધિ રહને કે કારણ સમુદાયમેં બૌદ્ધ (બુદ્ધિકૃત) અર્થ કો
માનકર પ્રાતિપદિક સજ્ઞા આદિ કાર્ય કિયે હૈ, ઇસ કારણ 'સિદ્ધ
નહી હૈ' એસા કહના સર્વથા અસગત હૈ । દૂસરી વાત યહ હૈ કિ
આપને જો સિદ્ધોં કો નિશ્ચેષ્ટ કહા વહ મી ઠીક નહી હૈ, કારણ
યહ કિ સિદ્ધો કે કર્તવ્ય કોઈ વાકી રહા નહી ઓર શરીર મી
નહી જિસસે વે ચેષ્ટા કરે । રાગ-દ્વેષ મી ઉનમેં ઇસલિયે નહી

શીંગ' ઇત્યાદિ, તે પ્રસિદ્ધ નથી, એજ કારણે 'એવ વન્ધ્યાસુતો યાતિ'
ઇત્યાદિ સ્થળોમા યદ્યપિ જુદા જુદા રાખવા પર વન્ધ્યા શબ્દ અને સુત શબ્દનો
અર્થ પ્રસિદ્ધ છે પરન્તુ બન્ને શબ્દો એકઠા કરવાથી 'વન્ધ્યાસુત, 'કર્મક્ષીર' (કાચ
ખાનુ દૂધ) વગેરે શબ્દોનો કોઈ પણ અર્થ થશે નહિ, એટલા કારણથી અનર્થક
હોવાના કારણે પ્રાતિપદિક સજ્ઞાનો અસભવ જાણીને વૈયાકરણીઓએ એક એક
પદાર્થની પ્રસિદ્ધિ રહેવાના કારણે સમુદાયમા બૌદ્ધ (બુદ્ધિકૃત) અર્થ માનીને
પ્રાતિપદિક સજ્ઞા આદિ કાર્ય કરેલું છે એ કારણથી 'સિદ્ધ નથી' એમ કહેવું
તે સર્વથા અસગત છે બીજી વાત એ છે કે તમે સિદ્ધોને નિશ્ચેષ્ટ કહો છો તે
પણ ઠીક નથી, કારણ એ છે કે સિદ્ધોને કોઈ કર્તવ્ય બાકી રહેલું નથી, અને
શરીર પણ નથી કે જેનાથી એટા કરે, રાગ-દ્વેષ પણ તેમનામા એટલા માટે નથી

પ્રક્ષીણસકલકષાયાણા તેષા સમ્ભવતામેવ કુતઃ ? ન ચોપયોગયોગપદ્યમન્તરેણ સર્વજ્ઞતા કથમિતિ વાચ્યમ્, યોગપદ્યેનોપયોગદ્વયાભાવસ્ય જીવસ્વાભાવ્યાન્નયા-ભિમેતત્વાન્ન, તયોરૈવથ તુ ન, વિભિન્નાઽઽવરણકત્વાત્ । દ્રવ્યાર્થિકનયેન જ્ઞાનદર્શનયોરેકત્વ, જ્ઞાનનયમાશ્રિત્ય સર્વમેવેદ જ્ઞાનમિતિ દર્શનનયમાશ્રિત્ય ચ સર્વમેવેદ દર્શનમિતિ નાસ્ત્યસર્વજ્ઞતાશઙ્કાલેશોઽપીતિ ।

‘આચરિયાણ’ આચાર્યાણામ્, ‘આસાયણા’ આશાતનયા, આચાર્યા-શાતના ચ—‘બાલા અકુલીના અતિમન્દબુદ્ધયશ્ચેમે, અન્યોપદેશદક્ષા ન ચ કિશ્ચિ-દાચરતિ’ ઇત્યાદિવિકથનરૂપા । એવમુપાધ્યાયનામપ્યાશાતના વોદ્રવ્યા ।

હૈં કિં ઉનકે સમ્પૂર્ણ કષાય નષ્ટ હો ગયે હૈં । એક સમય મેં દો ઉપયોગ નહીં હોતે હૈં, ઇસકા કારણ યહ હૈં કિં જીવકા સ્વભાવ હી એસા હૈં । જ્ઞાનોપયોગ ઓર દર્શનોપયોગ દોનોં કો એક તો ઇસલિયે નહીં કહ સકતે હૈં કિં દોનોંકા આવરણ ભિન્નર હૈં । રહી વાત અસ-ર્વજ્ઞતાકી, ઇસકા ઉત્તર યહ હૈં કિં દ્રવ્યાર્થિકનય કે મતસે જ્ઞાન ઓર દર્શનમેં એકતા હૈં ક્યોં કિં જ્ઞાનનય કી અપેક્ષા સબ જ્ઞાનમય હૈં ઓર દર્શનનય કી અપેક્ષા સબ દર્શનમય, ઇસલિયે સિદ્ધ સર્વજ્ઞ હૈં ।

આચાર્યકી આશાતનાસે, વહ ઇસ પ્રકાર—“યે બાલક હૈં, અકુલીન હૈં, અલ્પ બુદ્ધિ હૈં, ઓરોં કો તો ઉપદેશ દેતે હૈં પર खुद कुछ नहीं करते” ઇત્યાદિ । ઇસી પ્રકાર ઉપાધ્યાય કી આશાતના સમજનીં ચાહિયે ।

કે —તેમના કષાયો સંપૂર્ણ નાશ થયા છે એક સમયમાં બે ઉપયોગ થાય નહિ એનું કારણ એ છે કે — જીવનો સ્વભાવજ એવો છે જ્ઞાનોપયોગ અને દર્શનોપયોગ એ બન્નેને એટલા માટે એક કહેતા નથી કે બન્નેના આવરણ જૂદા જૂદા છે હવે અસર્વજ્ઞતાની વાત રહી, તેનો ઉત્તર એ છે કે દ્રવ્યાર્થિક નયના મતથી જ્ઞાન અને દર્શનમાં એકતા છે, કેમ કે જ્ઞાનનયની અપેક્ષાએ સર્વ જ્ઞાનમય છે અને દર્શન-નયની અપેક્ષાએ સર્વ દર્શનમય છે, એ કારણે સિદ્ધ સર્વજ્ઞ છે

આચાર્યની આશાતનાથી, તે આ પ્રમાણે છે—‘આ બાલક છે, અકુલીન છે, અલ્પબુદ્ધિ છે, બીજાને ઉપદેશ આપે છે પણ પોતે કામ કરતા નથી’-ઇત્યાદિ એ પ્રમાણે ઉપાધ્યાયની આશાતના સમજવી જોઈએ

‘સાહુણ’ સાધૂનામ્, ‘આમાયણા’ આશાતનયા, સાધ્વાશાતના ચેત્થમ્-
 ‘એતે સાધવો તિરુપનેપથ્યા હીનસસ્કારા જડા વ્યર્થજીવના મુણ્ડિતમુણ્ડા
 મિક્ષામાત્રશરણાઃ’ इत्यादि । एवमेव साध्वीनामप्याशातना ज्ञातव्या । ‘साव
 याण’ श्रावकाणाम्, ‘आसायणा’ आशातनया, श्रावकाऽऽशातना च-
 ‘अहो इमेऽभिगतजीवाजीवा उपलब्धपुण्यपापा आश्रव-सवर-निर्जराक्रियाधि
 करणबन्धमोक्षकुशला जिनप्रवचनपरिज्ञानेन यथार्थं मानुष्यक-लब्धाऽपि न
 विरतिं श्रयन्ते धिग्धिग्’-इत्यादिरूपा । श्राविकाणामप्याशातनेदृश्येव । ‘देवाण’
 देवानाम्, ‘आसायणा’ आशातनया, सा च- ‘देवास्तु विषयवासनावसित-

સાધુ મુનિરાજકી આશાતના સે, વહ્ હસ પ્રકાર ‘યે સાધુ
 મૈલેકુચૈલે વસ્ત્રોકે ધારક, સસ્કારહીન, જડ, મૂઢ, સિર મુડાકર
 જીવન કો વ્યર્થ કરને વાલે હૈ, इत्यादि । इसी प्रकार साध्वीकी
 आशातना समझनी चाहिये ।

શ્રાવક કી આશાતના સે, વહ્ જૈસે-‘હાય ! જીવ અજીવ કે
 સ્વરૂપ ઔર પુણ્ય પાપકે મર્મ કો જાનને વાલે, તથા આશ્રવ સવર
 નિર્જરા ક્રિયા અધિકરણ બન્ધ ઔર મોક્ષ, इनमें हेय उपादेय का
 ज्ञान रखने वाले, एव जिन प्रवचन के यथार्थ ज्ञाता होकर भी ये
 श्रावक सर्वविरति को धारण नहीं करते हैं ‘धिक्कार है’ इत्यादि ।
 श्राविकाओं की भी आशातना इसी प्रकार की है ।

દેવોં કી આશાતના સે, વહ્ હસ પ્રકાર-“દેવતા તો વિષય

સાધુ મુનિરાજની આશાતનાથી, તે આ પ્રમાણે છે-‘એ સાધુ મેલા-ગધાતા
 કપડા ધારણ કરે છે, સસ્કારહીન, જડ, મૂઢ, શિર મુડાવી જીવનને વ્યર્થ કરનાર
 છે ઇત્યાદિ આ પ્રમાણે સાધ્વીની આશાતના સમજવી જોઈએ

શ્રાવકની આશાતનાથી, તે આ પ્રમાણે-હાય ? જીવ-અજીવના સ્વરૂપ અને
 પુણ્ય-પાપના મર્મને જાણવાવાળા, તથા આશ્રવ સવર નિર્જરા ક્રિયા અધિકરણ,
 બન્ધ અને મોક્ષ, તેમા હેય-ઉપાદેયનું જ્ઞાન રાખવાવાળા, એ પ્રમાણે જિન પ્રવચનને
 યથાર્થ જાણનાર હોઈને પણ તે શ્રાવક સર્વવિરતિને ધારણ કરતા નથી, ધિક્કાર છે
 ઇત્યાદિ શ્રાવિકાઓની આશાતના પણ આ પ્રમાણે જ છે

દેવોની આશાતનાથી, તે આ પ્રમાણે-દેવતા તો વિષયવાસનામા આસક્ત,

ત્રિતત્ત્વયોઽપ્રત્યાખ્યાના અવિરતાઃ શક્તિમન્તઃ સન્તોઽપિ શાસનસમુન્નતિમકુર્વાણા સન્તિઃ-ઇત્યેવરૂપા । દેવીનામપ્યાશાતનૈવમેવ । ‘ઇહલોગસ્સ’ ઇહલોકો=મનુષ્ય-લોકસ્તસ્ય ‘આસાયણા’ આશાતનયા ન્યૂનાધિકત્વનિરૂપણાદિલક્ષણયા ।

એવમેવ પરલોકસ્યાઽઽશાતનાઽપિ, અત્ર પરલોકઃ=સ્વર્ગનરકાદિલક્ષણઃ । ‘કેવલીણ’ કેવલિનામ્, ‘આસાયણા’ આશાતનયા=‘કેવલિનઃ’ કેવલ્યા-ત્કવલાહારાદિક ન કુર્વન્તિ-ઇત્યાદિરૂપયા । ‘કેવલિપન્નત્તસ્સ’ કેવલિપ્રજ્ઞપ્ત-સ્ય ‘ધમ્મસ્સ’ ધર્મસ્ય=જીવદયા-સત્યા-ઽસ્તેય-બ્રહ્મચર્ય-ક્ષાન્તિ-પચ્ચેન્દ્રિય-નિગ્રહરૂપસ્ય, ‘આસાયણા’ આશાતનયા=વિપરીતનિરૂપણસ્વરૂપયા । ‘સદે-વમણુયાસુરસ્સ’ સદેવમનુષ્યાસુરસ્ય=દેવ-મનુષ્યા-ઽસુરસહિતસ્ય, ‘લોગસ્સ’ લોકસ્ય, ‘આસાયણા’ આશાતનયા=ત્રિતથપ્રરૂપણસ્વરૂપયા । ‘સન્વપાણભૂ-યજીવસત્તાણ’ પ્રાણાઃ=પ્રાણિનો વ્યક્તેન્દ્રિયા દ્વિ-ત્રિ-ચતુરિન્દ્રિયલક્ષણાઃ, ભૂતા =

વાસનામેં આસક્ત, અપ્રત્યાખ્યાની, અવિરતી હેં, ઔર શક્તિમાન હોતે હુએ ખી શાસન કી ઉન્નતિ નહી કરતે હે” ઇત્યાદિ । ઇસી પ્રકાર દેવી કી ખી આશાતના સમજના ।

“ઇસ લોક કી ન્યૂનાધિકત્વ-નિરૂપણરૂપ આશાતનાસે, એસેહી ‘સ્વર્ગ નરક આદિ રૂપ પરલોક કી આસાતનાસે ।’

‘કેવલી કવલાહાર આદિ નહી કરતે હેં’ ઇત્યાદિ વિરુદ્ધ પ્રરૂપણારૂપ કેવલી કી આશાતના સે । કેવલિપ્રરૂપિત ધર્મકી વિપરીત પ્રરૂપણારૂપ આશાતના સે । દેવ મનુષ્ય ઔર અસુર સહિત લોકકી અસત્ય પ્રરૂપણારૂપ આશાતના સે । દ્વીન્દ્રિયાદિ પ્રાણી,

અપ્રત્યાખ્યાની, અવિરતિ છે, અને શક્તિમાન હોવા છતાય પણ શાસનની ઉન્નતિ કરતા નથી, ઇત્યાદિ એ પ્રમાણે દેવીની પણ આશાતના સમજવી

આ લોકની ન્યૂનાધિકત્વ નિરૂપણુ રૂપ આશાતનાથી, એવીજ રીતે સ્વર્ગ-નરક આદિ રૂપ પરલોકની આશાતનાથી

“કેવલી કવલ આહાર આદિ કરતા નથી” વગેરે વિરુદ્ધ પ્રરૂપણુરૂપ કેવલીની આશાતનાથી કેવલી પ્રરૂપિત ધર્મની વિપરીત પ્રરૂપણુ રૂપ આશાતનાથી દેવ-મનુષ્ય અને અસુર સહિત લોકની અસત્ય પ્રરૂપણુ રૂપ આશાતનાથી દ્વીન્દ્રિયાદિ પ્રાણી, વનસ્પતિશાયરૂપ ભૂત, પચેન્દ્રિયરૂપ છત્ર અને પૃથ્વી આદિ સર્વ, એ

‘સાદૂણ’ સાધૂનામ્, ‘આમાયણા’ આશાતનયા, સાધ્યાશાતના ચેત્યમ્-
 ‘એતે સાધવો વિરૂપનેપથ્યા હીનસસ્કારા જડા વ્યર્થજીવના મુણ્ડિતમુણ્ડા
 મિશામાત્રશરણાઃ’ इत्यादि । एवमेव साध्वीनामप्याशातना ज्ञातव्या । ‘साव
 याण’ श्रावकाणाम्, ‘आसायणा’ आशातनया, श्रावकाऽऽशातना च-
 ‘अहो इमेऽभिगतजीवाजीवा उपलब्धपुण्यपापा आश्रव-सवर-निर्जराक्रियाधि-
 करणबन्धमोक्षकुशला जिनप्रवचनपरिज्ञानेन यथार्थं मानुष्यक लब्धाऽपि न
 विरतिं श्रयन्ते धिग्धिग्’-इत्यादिरूपा । श्राविकाणामप्याशातनेदृश्येव । ‘देवाण’
 देवानाम्, ‘आसायणा’ आशातनया, सा च- ‘देवास्तु विषयवासनावासित

સાધુ મુનિરાજકી આશાતના સે, વહ હસ પ્રકાર ‘યે સાધુ
 મૈલેકુચૈલે વસ્ત્રોકે ધારક, સસ્કારહીન, જડ, મૂઢ, સિર મુઢાકર
 જીવન કો વ્યર્થ કરને વાલે હૈં, इत्यादि । इसी प्रकार साध्वीकी
 आशातना समझनी चाहिये ।

શ્રાવક કી આશાતના સે, વહ જૈસે-‘હાય ! જીવ અજીવ કે
 સ્વરૂપ ઔર પુણ્ય પાપકે મર્મ કો જાનને વાલે, તથા આશ્રવ સવર
 નિર્જરા ક્રિયા અધિકરણ બન્ધ ઔર મોક્ષ, इनमे हेय उपादेय का
 ज्ञान रखने वाले, एव जिन प्रवचन के यथार्थ ज्ञाता होकर भी ये
 श्रावक सर्वविरति को धारण नहीं करते हैं ‘धिक्कार है’ इत्यादि ।
 श्राविकाओं की भी आशातना इसी प्रकार की है ।

દેવોં કી આશાતના સે, વહ હસ પ્રકાર-“દેવતા તો વિષય

સાધુ મુનિરાજની આશાતનાથી, તે આ પ્રમાણે છે-‘એ સાધુ મેલા-ગધાતા
 કપડા ધારણ કરે છે, સસ્કારહીન, જડ, મૂઢ, શિર મુઢાવી જીવનને વ્યર્થ કરનાર
 છે ઇત્યાદિ આ પ્રમાણે સાધ્વીની આશાતના સમજવી જોઈએ

શ્રાવકની આશાતનાથી, તે આ પ્રમાણે-હાય ? જીવ-અજીવના સ્વરૂપ અને
 પુણ્ય-પાપના મર્મને જાણવાવાળા, તથા આશ્રવ સવર નિર્જરા ક્રિયા અધિકરણ,
 બન્ધ અને મોક્ષ, તેમા હેય-ઉપાદેયનું જ્ઞાન રાખવાવાળા, એ પ્રમાણે જિન પ્રવચનને
 યથાર્થ જાણનાર હોઈને પણ તે શ્રાવક સર્વવિરતિને ધારણ કરતા નથી, ધિક્કાર છે
 ઇત્યાદિ શ્રાવિકાઓની આશાતના પણ આ પ્રમાણે જ છે

દેવોની આશાતનાથી, તે આ પ્રમાણે-દેવતા તો વિષયવાસનામા આસક્ત,

ચિત્તવૃત્તયોઽપ્રત્યાખ્યાના અવિરતાઃ શક્તિમન્તાઃ સન્તોઽપિ શાસનસમુન્નતિમકુર્વાણા સન્તિ'—ઇત્યેવરૂપા । દેવીનામપ્યાશાતનૈવમેવ । 'ઇહલોગસ્સ' ઇહલોકો=મનુષ્ય-લોકસ્તસ્ય 'આસાયણા' આશાતનયા ન્યૂનાધિકત્વનિરૂપણાદિલક્ષણયા ।

એવમેવ પરલોકસ્યાઽઽશાતનાઽપિ, અત્ર પરલોકઃ=સ્વર્ગનરકાદિલક્ષણ' । 'કેવલીણ' કેવલિનામ્, 'આસાયણા' આશાતનયા='કેવલિનઃ કેવલ્યા-ત્કવલાહારાદિક ન કુર્વન્તિ'—ઇત્યાદિરૂપયા । 'કેવલિપદ્મત્તસ્સ' કેવલિપદ્મત્ત-સ્ય 'ધમ્મસ્સ' ધર્મસ્ય=જીવદયા-સત્યા-ઽસ્તેય-બ્રહ્મચર્ય-શાન્તિ-પચ્ચેન્દ્રિય-નિગ્રહરૂપસ્ય, 'આસાયણા' આશાતનયા=વિપરીતનિરૂપણસ્વરૂપયા । 'સદે-વમણુયાસુરસ્સ' સદેવમનુષ્યાસુરસ્ય=દેવ-મનુષ્યા-ઽસુરસહિતસ્ય, 'લોગમ્સ' લોકસ્ય, 'આસાયણા' આશાતનયા=વિતથપ્રરૂપણસ્વરૂપયા । 'સન્વપાણભૂ-યજીવસત્તાણ' પ્રાણા'=પ્રાણિનો વ્યક્તેન્દ્રિયા દ્વિ-ત્રિ-ચતુરિન્દ્રિયલક્ષણા, ભૂતા =

વાસનામેં આસક્ત, અપ્રત્યાખ્યાની, અવિરતી હેં, ઓર શક્તિમાન હોતે હુએ મી શાસન કી ઉન્નતિ નહી કરતે હેં" ઇત્યાદિ । ઇસી પ્રકાર દેવી કી 'મી આશાતના સમઙ્ગના ।

ઇસ લોક કી ન્યૂનાધિકત્વ-નિરૂપણરૂપ આશાતનાસે, એસેહી 'સ્વર્ગ નરક આદિ રૂપ પરલોક કી આસાતનાસે ।'

'કેવલી કવલાહાર આદિ નહી કરતે હેં' ઇત્યાદિ વિરુદ્ધ પ્રરૂપણારૂપ કેવલી કી આશાતના સે । કેવલિપ્રરૂપિત ધર્મકી વિપરીત પ્રરૂપણારૂપ આશાતના સે । દેવ મનુષ્ય ઓર અસુર સહિત લોકકી અસત્ય પ્રરૂપણારૂપ આશાતના સે । દ્વીન્દ્રિયાદિ પ્રાણી,

અપ્રત્યાખ્યાની, અવિરતિ છે, અને શક્તિમાન હોવા છતાય પણ શાસનની ઉન્નતિ કરતા નથી, ઇત્યાદિ એ પ્રમાણે દેવીની પણ આશાતના અમઙ્ગવી

આ લોકની ન્યૂનાધિકત્વ નિરૂપણ રૂપ આશાતનાથી, એવીજ રીતે સ્વર્ગ-નરક આદિ રૂપ પરલોકની આશાતનાથી

"કેવલી કવલ આહાર આદિ કરતા નથી" વગેરે વિરુદ્ધ પ્રરૂપણારૂપ કેવલીની આશાતનાથી કેવલી પ્રરૂપિત ધર્મની વિપરીત પ્રરૂપણ રૂપ આશાતનાથી દેવ-મનુષ્ય અને અસુર સહિત લોકની અસત્ય પ્રરૂપણ રૂપ આશાતનાથી દ્વીન્દ્રિયાદિ પ્રાણી, વનસ્પતિઘાયરૂપ ભૂત, પચ્ચેન્દ્રિયરૂપ જીવ અને પૃથ્વી આદિ સર્વ, એ

वनस्पतयः, जीवाः=पञ्चेन्द्रियाः, सत्त्वाः=पृथिव्यप्तेजोवायव ; प्राणाश्च भूताश्च जीवाश्च सत्त्वाश्चेत्येतेषामितरेतरयोगद्वन्द्वे प्राण भूत-जीव-सत्त्वाः, सर्वे च ते प्राण-भूत-जीव-सत्त्वाश्चेति सर्व-प्राण-भूत-जीव-सत्त्वाः, उक्त च—

‘प्राणा द्वि-त्रि-चतुः प्रोक्ता, भूतास्तु त्रयः स्मृता’ ।

जीवाः पञ्चेन्द्रिया ज्ञेयाः, शेषाः सत्त्वा इतीरिताः’ इति ।

तेषाम् ‘आसायणाए’ आशातनया=वितथप्ररૂપણાદિરૂપયા, વિતથ પ્રરૂપણા યથા—‘અદ્રુષ્ટપર્વમાત્રાત્મવન્તો દ્વીન્દ્રિયાદયઃ, ભૂતસત્ત્વા વનસ્પતિપૃથિ વ્યાદિરૂપા અજીવા એવ ચેતનગતસ્પન્દનાદિચેષ્ટારદિતત્ત્વાત્, જીવાસ્તુ ક્ષણિકા’ इत्यादि । ‘કાલસ્સ’ કાલસ્ય, ‘આસાયણાએ’ આશાતનયા, કાલાઽઽશાતના ચ—‘વર્તનાલક્ષણ કાલો નાસ્તિ’ इत्यपलापरूपा, કાલ એવ કર્તા યથા—‘કાલઃ પચતિ ભૂતાનિ, કાલ સહરતે પ્રજાઃ । કાલઃ સુષ્તેષુ જાગર્તિ, કાલો હિ દુરતિ ક્રમઃ ॥’ इत्येकान्तकालकर्तृत्वरूपया वा । ‘સુયસ્સ’ શ્રૂયતે इति श्रुत=भग

वनस्पतिकायरूप भूत, पञ्चेन्द्रियरूप जीव और पृथिवी आदि सत्त्व, इन सबकी असत्य प्ररूपणारूप आशातना से, वह असत्य प्ररूपणा जैसे—‘द्वीन्द्रिय आदिमे आत्मा अगूठे के पर्व (पोर) के बराबर होती है, वनस्पति और पृथिवी आदि तो हलन चलन आदि चेष्टा के न होने से अचेतन ही हैं और जीव भी क्षणिक ही हैं’ इत्यादि । वर्तनालक्षण काल नहीं है’ इस प्रकारकी, अथवा ‘काल ही सबकुछ करता है जीवों को पचाता है उनका सहार करता और ससार के सोये रहने पर जागता है अतएव काल दुर्निवार है’ इस प्रकार काल को एकान्त कर्त्ता माननेरूप आशातना से । भगवान महावीर के मुखचन्द्र से निस्सृत, गणधरके कर्णमें पहुँचा

સર્વના અસત્ય પ્રરૂપણા રૂપ આશાતનાથી, તે અસત્ય પ્રરૂપણા— જેમકે ‘દ્વીન્દ્રિય આત્મા આત્મા અગૂઠાના પર્વ (પોર)ની બરાબર હોય છે વનસ્પતિ અને પૃથ્વી વગેરે હલન-ચલન આદિ ચેષ્ટા કરતા નથી તેથી અચેતનજ છે, અને જીવ પણ ક્ષણિક છે’ इत्यादि वर्तनालक्षण काल नहीं है’ ‘આ પ્રકારની’ અથવા કાલજ સર્વ કાંઈ કરે છે જીવોને પચાવે છે તેમનો સહાર કરે છે અને સસાર સુવે છે ત્યારે તે કાલ જાગે છે, એટલા માટે ‘કાલ’ દુર્નિવાર છે’ એ પ્રમાણે કાલને એકાન્ત કર્તા માનવા રૂપ આશાતનાથી, ભગવાન મહાવીરના મુખચન્દ્રમાથી નિકળી ગણધરના

चन्द्रमुखसुधाशुनिःसृत-गणधरश्रवणपुटप्रविष्ट-विशिष्टार्थप्रदर्शकाऽजरामरत्वससाधक-
वाक्यपीयूषमात्र, तस्य, 'आसायणाए' आशातनया=वितथप्ररूपणादिलक्षणया ।
'सुयदेवयाए' श्रुताधिष्ठात्रीदेवता-श्रुतदेवता=जिनवाणी, तस्याः, 'आसायणाए'
आशातनया, अत्राऽऽशातना च-विपरीतश्रद्धानप्ररूपणादिरूपा । 'वायणायरियस्स'
वाचनाचार्यः श्रुताध्यापनाचार्यस्तस्य, 'आसायणाए' आशातनया='अयमध्यापको
विनयवन्दनार्थं मुहुर्मुहुर्मा प्रेरयति-इत्येवमादिप्रकथनस्वरूपया । 'ज चाइद्ध'
इत्यादिपदव्याख्या 'आगमे तिविहे' इत्यत्र पट्टिकाया गता ॥ सू० २१ ॥

एवमेकविधाऽसयमादारभ्य त्रयस्त्रिंशत्तमपर्यन्तैः स्थानैरहदायाशातना-

हुआ, सामान्य विशेषात्मक पदार्थों के बोधक और भव्य जीवों
को अजर अमर करनेवाले-वचनान्मृत स्वरूप श्रुतकी असत्य प्ररूपणा
आदि आशातना से । श्रुतदेवता की आशातना से । ये विनय
वन्दना आदि के लिये मुझे बारबार तग करते रहते हैं' इस
प्रकार की वाचनाचार्य की आशातना से तथा व्याविद्ध-क्रमरहित
(आगेपीछे बोलना), व्यत्याग्रेडित (अपनी मति से पाठ बनाकर
बोलना) आदि पूर्वोक्त (पृष्ट) दोषों से जो कोई अतिचार किया
गया हो तो मैं उससे निवृत्त होता हूँ और उसका 'मिच्छा मि
दुक्कड' देता हूँ ॥ सू० २१ ॥

इम प्रकार एकविध असयम से लेकर तेतीस (३३) स्थानों,
तथा अरिहन्त आदिकी आशातनाओं के द्वारा किये गये हुए अति-

कानमा पडोयेला सामान्य-विशेषात्मक पदार्थोना बोधक अने भव्य एवोने अजर-
अमर करवा वाणा वचनामृतस्वरूप श्रुतनी असत्य प्ररूपणा आदि आशातनाथी,
श्रुत देवनी आशातनाथी, 'अ विनय वदना आदि भाटे मने बारबार तग
कर्या करे छे, अ प्रमाणे वाचनाचार्यनी आशातनाथी तथा व्याविद्ध-क्रमरहित
(आगल पाछल बोलवु), व्यत्याग्रेडित (पोतानी छच्छाथी पाठ बनानी बोलवु) आदि
पूर्व कडेला (पृष्ट) दोषोथी जे कांछ अतिचार लाग्या होय तेनाथी निवृत्त थाई छु
अने तेना 'मिच्छा मि दुक्कड' आपु छु (सू० २१)

आ प्रमाणे अेक सयमथी लछने तेतीस (३३) स्थानो, तथा अरिहन्त
आदिनी आशातना द्वारा कियेला अतिचारोथी निवृत्त थछने करीथी अतिचार नहि

વનસ્પતયઃ, જીવાઃ=પञ्ચેન્દ્રિયાઃ, સત્ત્વાઃ=પૃથિવ્યજ્ઞેયોપાયત્ર ; પ્રાણાશ્ચ ભૂતાશ્ચ જીવાશ્ચ સત્ત્વાશ્ચેત્યેતેપામિતરેતરયોગદ્વન્દ્વે પ્રાણ ભૂત-જીવ-સત્ત્વાઃ, સર્વે ચ તે પ્રાણ-ભૂત-જીવ-સત્ત્વાશ્ચેતિ સર્વ-પ્રાણ-ભૂત-જીવ-સત્ત્વાઃ, ઉક્ત ચ—

‘પ્રાણા દ્વિ-ત્રિ-ચતુઃ પ્રોક્તા, ભૂતાસ્તુ તત્ર’ સ્મૃતાઃ ।

જીવાઃ પञ્ચેન્દ્રિયા જ્ઞેયાઃ, શેષાઃ સત્ત્વા ડત્તીરિતાઃ’ ઇતિ ।

તેષામ્ ‘આસાયણા’ આશાતનયા=વિતથપ્રરૂપણાદિરૂપયા, વિતથ પ્રરૂપણા યથા—‘અદ્ભુષ્ટપર્વમાત્રાત્મવન્તો દ્વીન્દ્રિયાદયઃ, ભૂતસત્ત્વા વનસ્પતિપૃથિ વ્યાદિરૂપા અજીવા એવ ચેતનગતસ્પન્દનાદિચેષ્ટારહિતત્વાત્, જીવાસ્તુ ક્ષણિકા’ ઇત્યાદિ । ‘કાલસ્સ’ કાલસ્ય, ‘આસાયણા’ આશાતનયા, કાલાડ્ડશાતના ચ—‘વર્તનાલક્ષણ. કાલો નાસ્તિ’ ઇત્યપલાપરૂપા, કાલ એવ કર્તા યથા—‘કાલઃ પચતિ ભૂતાનિ, કાલ. સહરતે પ્રજાઃ । કાલઃ સુષ્પેષુ જાગર્ત્તિ, કાલો હિ દુરતિ ક્રમ’ ॥’ ઇત્યેકાન્તકાલકર્તૃત્વરૂપયા વા । ‘સુયસ્સ’ શ્રૂયતે ઇતિ શ્રુત=ભગ

વનસ્પતિકાયરૂપ ભૂત, પञ્ચેન્દ્રિયરૂપ જીવ ઓર પૃથિવી આદિ સત્ત્વ, ઇન મવકી અસત્ય પ્રરૂપણારૂપ આશાતના સે, વહ અસત્ય પ્રરૂપણા જૈસે—‘દ્વીન્દ્રિય આદિમેં આત્મા અગૃઠે કે પર્વ (પોર) કે ઘરાબર હોતી હૈ, વનસ્પતિ ઓર પૃથિવી આદિ તો હલન ચલન આદિ ચેષ્ટા કે ન હોને સે અચેતન હી હૈ ઓર જીવ બી ક્ષણિક હી હૈ’ ઇત્યાદિ । વર્તનાલક્ષણ કાલ નહી હૈ’ હસ પ્રકારકી, અથવા ‘કાલ હી સવકુછ કરતા હૈ જીવોં કો પચાતા હૈ ડનકા સહાર કરતા ઓર સસાર કે સોયે રહને પર જાગતા હૈ અતએવ કાલ દુર્નિવાર હૈ’ હસ પ્રકાર કાલ કો એકાન્ત કર્તા માનનેરૂપ આશાતના સે । ભગવાન મહાવીર કે મુલચન્દ્ર સે નિસ્સૃત, ગણધરકે કર્ણમેં પહુંચા

સર્વના અસત્ય પ્રરૂપણારૂપ આશાતનાથી, તે અસત્ય પ્રરૂપણા—જેમકે ‘દ્વીન્દ્રિય આદિમા આત્મા અગૃઠાના પર્વ (પોર)ની ઘરાબર હોય છે વનસ્પતિ અને પૃથ્વી વગેરે હલન-ચલન આદિ ચેષ્ટા કરતા નથી તેથી અચેતનજ છે, અને એવ પણ ક્ષણિક છે’ ઇત્યાદિ વર્તનાલક્ષણ કાલ નથી’ ‘આ પ્રકારની’ અથવા કાલજ સર્વ કાઈ કરે છે એવાને પચાવે છે તેમનો સહાર કરે છે અને સસાર સુવે છે ત્યારે તે કાલ જાગે છે, એટલા માટે ‘કાલ’ દુર્નિવાર છે’ એ પ્રમાણે કાલને એકાન્ત કર્તા માનવા રૂપ આશાતનાથી, ભગવાન મહાવીરના મુખરૂપચન્દ્રમાથી નિકલી ગણધરના

त्रिविधेन प्रतिक्रामन्, वन्दे जिनाना चतुर्विंशतिम् ॥ २ ॥ ॥ मृ० २२ ॥

ભિશ્વાઽતિચારેભ્યઃ પ્રતિક્રાન્તઃ પુનરતિચારાકરણાર્થે પ્રતિચિક્રસયાઽઽદૌ નમસ્ક-
રોતિ - 'નમો ચતુવીસાણ' ઇત્યાદિના ।

॥ મૂલમ્ ॥

નમો ચતુવીસાણ તિત્થયરાણ ઉસમાઙ્ગમહાવીરપજ્જવસાણાણં ।
ઇણમેવ નિગ્ગથ પાવયણ સન્ન અણુત્તર કેવલિય પડિપુત્ત નેયા-
ઉયં સંસુદ્ધ સલ્લગત્તણ સિદ્ધિમગ્ગ મુત્તિમગ્ગ નિજ્ઞાણમગ્ગ નિવા-
ળમગ્ગ અવતિહમવિસધિ સઘ્વદુવ્વખપ્પહીણમગ્ગ । इत्थ ठिआ जीवा
सिज्झति बुज्झति मुच्चति परिनिव्वायति स्रव्वदुक्खाणमत करति ।
त धम्म सद्वहामि पत्तियामि रोएमि फासेमि पालेमि अणुपालेमि ।
त धम्म, सद्वहतो; पत्तियतो रोअतो फासतो पालतो अणुपालतो
तस्स धम्मस्स, केवल्लिपन्नत्तस्स अब्भुठिओमि आराहणाए विर-
ओमि विराहणाए, असजम परियाणामि, सजम उवसपज्जामि,
अवभं परियाणामि वभ उवसपज्जामि । अकप्प परियाणामि,
कप्प उवसपज्जामि । अन्नाण परियाणामि, नाण उवसपज्जामि ।
अकिरिय परियाणामि, किरियं उवसपज्जामि । मिच्छत्त परि-
याणामि, सम्मत्त उवसपज्जामि । अबोहिं परियाणामि, बोहिं
उवसपज्जामि । अमग्ग परियाणामि, मग्ग उवसपज्जामि । ज
सभराभिं ज च न सभरामि, ज पडिक्कमामि ज च न पडि-
क्कमामि तस्स સઘ્વસ્સ દેવસિયસ્સ અદ્યારસ્સ પડિક્કમामિ ।
સમણોહ સજયવિરયપડિહયપન્નવ્વકલાયપાવકમ્મો અનિયાણો દિદ્ધિ-
સપન્નો માયામોસવિવજ્જિઓ અઢાઙ્ગજ્જેસુ દીવસમુદ્દેસુ પન્નરસસુ
કમ્મભૂમીસુ જાવતિ કેઙ્ગ સાહૂ રયહરણમુહપત્તિયગોચ્છગપડિ-

ચારોં સે નિવૃત્ત હો કર ફિરસે અતિચાર ન કરને કે લિણ પ્રતિ-
ક્રમણ કરના જરૂરી હૈ, ઇસલિયે પ્રથમ નમસ્કાર કરતે હુણ પ્રતિ-
ક્રમણ કરતે હૈ—'નમો ચોવીસાણ' ઇત્યાદિ ।

કરવા માટે પ્રતિક્રમણ કરવું એ જરૂરની વસ્તુ છે, એટલા માટે નમસ્કાર કરીને
પ્રતિક્રમણ કરે છે 'નમો ચોવીસાણ' ઇત્યાદિ

ભિશ્વાઽતિચારેભ્યઃ પ્રતિક્રાન્તઃ પુનરતિચારાકરણાર્થં પ્રતિચિક્રસયાઽઽદ્યૌ નમસ્ક-
રોતિ - 'નમો ચતુવીસાણ' इत्यादिना ।

॥ મૂલમ્ ॥

નમો ચતુવીસાણ તિત્થયરાણ ઉસમાઙ્મહાવીરપજ્જવસાણાણ ।
ઇળમેવ નિગ્ગથ પાવયણ સચ્ચ અણુત્તર કેવલિય પડિપુત્ત નેર્યા-
ઉયં સસુદ્ધ સલ્લગત્તણ સિદ્ધિમગ્ગ મુત્તિમગ્ગ નિજ્ઞાણમગ્ગ નિવા-
ળમગ્ગ અવતિહમવિસધિ સઠ્ઠવદુવ્વખપ્પહીણમગ્ગ । इत्थं ठिआ जीवा
सिज्झति बुज्झति मुच्चति परिनिव्वायति स्रव्वदुक्खाणमतं करति ।
तं धम्मं सदहामि पत्तियामि रोएमि फासेमि पालेमि अणुपालेमि ।
तं धम्मं सदहतो पत्तियतो रोअतो फासतो पालतो अणुपालतो
तस्स धम्मस्स , केवलिपन्नत्तस्स अट्ठमुठिओमि आराहणाए विर-
ओमि विराहणाए, असजम परियाणामि, सजम उवसपज्जामि,
अवभ परियाणामि वभ उवसपज्जामि । अकप्प परियाणामि,
कप्प उवसपज्जामि । अन्नाण परियाणामि, नाणं उवसंपज्जामि ।
अकिरिय परियाणामि, किरिय उवसपज्जामि । मिच्छत्त परि-
याणामि, सम्मत्त उवसपज्जामि । अवोहिं परियाणामि, वोहिं
उवसपज्जामि । अमग्ग परियाणामि, मग्ग उवसपज्जामि । ज
सभराभि ज च न सभरामि, ज पडिक्कमामि ज च न पडि-
क्कमामि तस्स सઠ્ઠવ્વસ્સ દેવસિયસ્સ અદ્યારસ્સ પડિક્કમामિ ।
સમણોહ સજયવિરયપહિહયપચ્ચવ્વચ્ચાયાપાવકમ્મો અનિયાણો દિદ્ધિ-
સપન્નો માયામોસવિવજ્જિઓ અઢાઙ્ગેસુ દીવસમુદ્દેસુ પન્નરસસુ
કમ્મભૂમીસુ જાવતિ, કેઙ્ક સાહૂ રયહરણમુહપત્તિયગોચ્છગપડિ-

चारों से निवृत्त हो कर फिरसे अतिचार न करने के लिए प्रति-
क्रमण करना जरूरी है, इसलिये प्रथम नमस्कार करते हुए प्रति-
क्रमण करते हैं—'नमो चोवीसाण' इत्यादि ।

કરવા માટે પ્રતિક્રમણ કરવું એ જરૂરની વસ્તુ છે, એટલા માટે નમસ્કાર કરીને
પ્રતિક્રમણ કરે છે 'નમો ચોવીસાણ' इत्यादि

॥ टीका ॥

‘चउवीसाए०’ इति स्पष्टोऽयः । ‘उसभाइ०’ अत्र प्राकृताचतुर्थ्यै पृष्ठी, व्यक्तमन्यत् । एव नमस्कृत्य तीर्थङ्करप्रणीतप्रवचनप्रशसनपूर्वकं प्रकृतमाह-
 ‘इणमेव’ इदमेव नान्यत्, ‘निर्ग्रन्थ’ निर्ग्रन्थ-निर्गता ग्रन्थाः=द्रव्यतः स्वर्णा-
 दयो, भावतो मिथ्यात्वाऽविरत्यादिलक्षणा येभ्यस्ते, यद्वा ग्रन्थेभ्यो निष्क्रान्ता
 निर्ग्रन्थाः=मुनयस्तेषामिदम् ‘पात्रयण’ प्ररूपेण=यथार्थत उच्यन्ते पदार्था यत्र
 तत्प्रवचन तदेव ‘पात्रयणम्’-स्यार्थिकः प्रज्ञादिपाठादण । सामायिकप्रभृतिप्रत्या-
 ख्यानपर्यन्त द्वादशाङ्ग गणिपिटक वा, एतदेव विगिनष्टि-‘सच्च’ इत्यादिना,
 सन्तः=प्राणिनः पदार्था-मुनयो वा तेभ्यो हित, सत्सु=मुनिजीवादिपदार्थेषु यथा-
 क्रम मुक्तिप्रापकत्व-यथावस्थितचिन्तनाभ्यां साधु वा सत्यम्^१, यद्वा सन्तमर्थ-
 माययति=प्रत्यायतीति निरुक्तप्रक्रियया सत्यम् ।

‘अणुत्तर’ न उत्तरम्=उच्चतर (प्रधान) यस्मात्तदनुत्तरम्-अनन्यसदृश
 मित्यर्थः । ‘केवलिय’ केवलिना प्रोक्त यद्वा केवलमेव कैवलिकम्-अद्वितीयमि-

श्री ऋषभदेव स्वामी से लेकर श्री महावीर स्वामी पर्यन्त
 चौबीसो तीर्थङ्कर भगवान को मेरा नमस्कार हो । इस प्रकार नम-
 स्कार करके तीर्थङ्कर प्रणीत प्रवचनकी स्तुति करते हैं-यही निर्ग्रन्थ
 अर्थात् स्वर्ण रजत आदि द्रव्यरूप और मिथ्यात्व आदि भावरूप
 ग्रन्थ (गाँठ) से रहित-मुनिसम्बन्धी सामायिक आदि प्रत्याख्यान-
 पर्यन्त द्वादशाङ्ग गणिपिटकस्वरूप तीर्थङ्करों से उपदिष्ट प्रवचन,
 सत्य, सर्वोत्तम, अद्वितीय, समस्त गुणों से परिपूर्ण, मोक्षमार्ग

શ્રી ઋષભદેવ સ્વામીથી આરંભીને શ્રી મહાવીરસ્વામી સુધી ચોવીસ
 તીર્થંકરભગવાનને મારા નમસ્કાર છે આ પ્રમાણે ‘નમસ્કાર’ કરીને તીર્થંકર પ્રણીત
 પ્રવચનની સ્તુતિ કરે છે આ નિર્ગ્રન્થ-અર્થાત્ સોનું-ચાદી આદિ દ્રવ્યરૂપ અને
 મિથ્યાત્વ આદિ ભાવરૂપ ગ્રન્થ-ગાંઠથી રહિત-મુનિ સંબંધી સામાયિક આદિ પ્રત્યા-
 ખ્યાન પર્યન્ત આર અંગ ગણિપિટકસ્વરૂપ તીર્થંકરોથી ઉપદેશાએલું પ્રવચન, સત્ય,
 સર્વોત્તમ, અદ્વિતીય, સમસ્ત ગુણોથી પરિપૂર્ણ, મોક્ષમાર્ગપ્રદર્શક, અગ્નિમા

૧-‘તસ્મૈ હિત’-મિતિ, ‘તत्र साधु’-રિતિ વા યત્ પ્રત્યય. ।

૨-વોધયતિ ।

विभावः, 'पडिपुन्न' प्रतिपूर्ण सूत्रतोऽक्षरमात्रादिन्यूनतया, अर्थतोऽध्याहारा-
 ऽऽकाङ्क्षादिभिश्च रहित सर्वप्रमाणोपेतमपवर्गमापककृत्स्नगुणसयुत वा । 'नेयाउद'
 न्यायेन चरति न्यायमनुगच्छति न्यायमनतिक्रान्त न्याये भव वा नैयायिक-मोक्ष-
 गमकम् । 'समुद्ध' स=सामस्त्येन शुद्ध=कषायादिमलरहित निर्वरच्छेद-ताप-
 ताडन-कोटिविशुद्धहेमवनिर्दोषमिति यावत् । 'सल्लगतण' शल्य=मायादि पाप
 वा कृन्तति=छिनत्तीति, कृत्यते=छिन्यतेऽनेनेति वा शल्यकर्तनम् । वादिमत
 प्रतियोगि- 'सिद्धिमग' सिद्धि.=साध्यनिष्पत्तिः अविचलसुखमाप्तिस्तस्या
 मार्ग =उपायः-सिद्धिमार्गः । 'मुत्तिमग' मुक्ति.=अद्वितार्थकर्मप्रहाण, तस्य मार्ग ।
 विप्रतिपत्ति निरस्यति-'निज्जाणमग' निर्याण=सकलकर्मभ्य आत्मनो निःस-
 रण, तस्य मार्गो निर्याणमार्ग =विशिष्टनिर्वाणावाप्तिनिदानमित्यर्थः । 'निव्वाण-
 मग' निर्वाण=निर्वृति.=निखिलकर्मक्षयजन्य परमसुख, यद्वा निर्वायते=अपुनरा-
 वृत्ति गम्यतेऽस्मिन्निति, तस्य मार्गो निर्वाणमार्गः । वस्त्वन्तर पूर्वतः सुस्यमपि
 कालान्तरेण विक्रियते प्रवचन तु न तथा कालत्रयेऽप्यविकृतत्वादिति निगमयन्नाह-
 'अवितठ' अवितथ=तथ्यम्, आह- सत्याऽवितथयो, पर्यायत्वात् पौनरुक्त्य
 कथ नेति ? उच्यते-पूर्वं सत्यार्थप्रतिपादकत्वात्सत्यमित्युक्तमिदं तु सत्त्वस्वरूपत्वाद-
 वितथमिति 'अविसधि=अव्यवच्छिन्नम्, एतच्च विदेहक्षेत्रमपेक्ष्योक्त, भरतक्षेत्राय-

प्रदर्शक, अग्निमें तपाये हुए सोने के समान निर्मल (कषाय मलसे
 रहित), मायादि शल्यका नाशक, अविचल सुखका साधन मार्ग,
 कर्मनाशका मार्ग, आत्मा से कर्मको दूर करनेका मार्ग, शीतलीभूत
 होनेका मार्ग, अवितथ अर्थात् तीनों कालमें भी अविनाशी, महा-
 विदेह क्षेत्रकी अपेक्षा सदा और भरतक्षेत्र आदिकी अपेक्षा दृक्की
 हजार वर्ष रहनेवाला और सब दु खों का नाश करनेवाला मार्ग है ।

तपायेला सोना समान निर्मल (कषायमलथी रहित), मायादिशल्यनाशक,
 अविचल सुखने साधन-मार्ग, कर्मनाश करवाने मार्ग, आत्माने लागेला कर्मने दूर
 करवाने मार्ग, शीतलीभूत थवाने मार्ग, अवितथ अर्थात् त्रये कालमा अविनाशी,
 महाविदेह क्षेत्रनी अपेक्षा सदा अने भरतक्षेत्र आदिनी अपेक्षा अेकवीश हजार वर्ष
 रहेवावाणे अने सब दु खने नाश करवावाणे मार्ग छे

॥ ટીકા ॥

‘ચતુર્વીસાણં’ इति स्पष्टोऽयः । ‘उसभाइ०’ अत्र प्राकृताचतुर्थ्यै
 षष्ठी, व्यक्तमन्यत् । एव नमस्कृत्य तीर्थङ्करप्रणीतप्रवचनप्रससनपूर्वकं प्रकृतमार-
 ‘इणमेव’ इदमेव नान्यत्, ‘निर्ग्रन्थ’ नैर्ग्रन्थ-निर्गता ग्रन्थाः=द्रव्यतः स्वर्णं
 दयो, भावतो मिथ्यात्वाऽविरत्यादिलक्षणा येभ्यस्ते, यद्वा ग्रन्थेभ्यो निष्क्रान्ता
 निर्ग्रन्थाः=मुनयस्तेषामिदम् ‘पात्रयण’ प्रकर्षेण=यथार्थत उच्यन्ते पदार्था यत्र
 तत्प्रवचन तदेव भावचनम्-स्वार्थिकः प्रज्ञादिपाठादण् । सामायिकप्रभृतिप्रत्या-
 ख्यानपर्यन्त द्वादशाङ्ग गणिपिटक वा, एतदेव विगिनष्टि-‘सच्च’ इत्यादिना,
 सन्त.=प्राणिनः पदार्था-मुनयो वा तेभ्यो हित, सत्सु=मुनिजीवादिपदार्थेषु यथा-
 क्रम मुक्तिपापकृत्व-यथावस्थितचिन्तनाभ्या साधु वा सत्यम्^१, यद्वा सन्तमय-
 माययति=प्रत्यायतीति निरुक्तप्रक्रियया सत्यम् ।

‘अणुत्तर’ न उत्तरम्=उच्चतर (प्रधान) यस्मात्तदनुत्तरम्-अनन्यसदृश-
 मित्यर्थः । ‘केवलिय’ केवलિना प्रोक्त यद्वा केवलमेव कैवलिकम्-अद्वितीयमि-

श्री ऋषभदेव स्वामी से लेकर श्री महावीर स्वामी पर्यन्त
 चौबीसो तीर्थङ्कर भगवान को मेरा नमस्कार हो । इस प्रकार नम-
 स्कार करके तीर्थङ्कर प्रणीत प्रवचनकी स्तुति करते हैं-यही निर्ग्रन्थ-
 अर्थात् स्वर्ण रजत आदि द्रव्यरूप और मिथ्यात्व आदि भावरूप
 ग्रन्थ (गाँठ) से रहित-मुनिसम्बन्धी सामायिक आदि प्रत्याख्यान-
 पर्यन्त द्वादशाङ्ग गणिपिटकस्वरूप तीर्थङ्करों से उपदिष्ट प्रवचन,
 सत्य, सर्वोत्तम, अद्वितीय, समस्त गुणों से परिपूर्ण, मोक्षमार्ग

શ્રી ઋષભદેવ સ્વામીથી આરંભીને શ્રી મહાવીરસ્વામી સુધી ચોવીસ
 તીર્થ કરેલગર્વાનને મારા નમસ્કાર છે આ પ્રમાણે નમસ્કાર કરીને તીર્થ કરે પ્રણીત
 પ્રવચનની સ્તુતિ કરે છે આ નિર્ગ્રન્થ-અર્થાત્ સોનું-ચાદી આદિ દ્રવ્યરૂપ અને
 મિથ્યાત્વ આદિ ભાવરૂપ ગ્રન્થ-ગાંઠથી રહિત-મુનિ સંબંધી સામાયિક આદિ પ્રત્યા-
 ખ્યાન પર્યન્ત આર અંગ ગણિપિટકસ્વરૂપ તીર્થ કરેથી ઉપદેશાએણ પ્રવચન, સત્ય,
 સર્વોત્તમ, અદ્વિતીય, સમસ્ત ગુણોથી પરિપૂર્ણ, મોક્ષમાર્ગપ્રદર્શક, અગ્નિમા

૧-‘તસ્મૈ હિત’-મિતિ, ‘તત્ર સાધુ’-રિતિ વા યત્ પ્રત્યય ।

૨-બોધયતિ ।

तिभावः, 'पडिपुन्न' प्रतिपूर्ण सूत्रतोऽक्षरमात्रादिन्यूनतया, अर्थतोऽध्याहारा-
 ऽऽकाङ्क्षादिभिश्च रहित सर्वप्रमाणोपेतमपवर्गप्रापककृत्स्नगुणसयुत वा । 'नेयाउद'
 न्यायेन चरति न्यायमनुगच्छति न्यायमनतिक्रान्त न्याये भव वा नैयायिक-मोक्ष-
 गमकम् । 'समुद्ध' स=सामस्त्येन शुद्ध=कषायादिमलरहित निर्वर्णच्छेद-ताप-
 ताडन-कोटिविशुद्धहेमवन्निर्दोषमिति यावत् । 'सल्लगत्तण' शल्य=मायादि पाप
 वा कृन्तति=छिनत्तीति, कृत्यते=छिद्यतेऽनेनेति वा शल्यकर्त्तनम् । वादिमुत
 प्रतिक्षिपति-'सिद्धिमग' सिद्धिः=साध्यनिष्पत्तिः अविचलसुखमाप्तिस्तस्या
 मार्गः=उपायः-सिद्धिमार्गः । 'मुत्तिमग' मुक्तिः=अहितार्थकर्मप्रहाण, तस्य मार्गः ।
 विपतिपत्तिं निरस्यति-'निज्जाणमग' नियणि=सकलकर्मभ्य आत्मनो निःस-
 रण, तस्य मार्गो निर्याणमार्गः=विशिष्टनिर्वाणावाप्तिनिदानमित्यर्थः । 'निब्बाण-
 मग' निर्वाण=निर्वृतिः=निखिलकर्मक्षयजन्य परमसुख, यद्वा निर्वायते=अपुनरा-
 वृत्ति गम्यतेऽस्मिन्निति, तस्य मार्गो निर्वाणमार्गः । वस्त्वन्तर पूर्वतः सुस्थमपि
 कालान्तरेण विक्रियते प्रवचन तु न तथा कालत्रयेऽप्यविकृतत्वादिति निगमयन्नाह-
 'अवितठ' अवितथ=तथ्यम्, आह- सत्याऽवितथयो. पर्यायत्वात् पौनरुक्त्य
 कथ नेति ? उच्यते-पूर्वं सत्यार्थप्रतिपादकत्वात्सत्यमित्युक्तमिह तु सत्त्वस्वरूपत्वाद-
 वितथमिति 'अविसधि=अव्यवच्छिन्नम्, एतच्च विदेहक्षेत्रमपेक्ष्योक्त, भरतक्षेत्राय-

प्रदर्शक, अग्निमें तपाये हुए सोने के समान निर्मल (कषाय मलसे
 रहित), मायादि शल्यका नाशक, अविचल सुखका साधन मार्ग,
 कर्मनाशका मार्ग, आत्मा से कर्मको दूर करनेका मार्ग, शीतलीभूत
 होनेका मार्ग, अवितथ अर्थात् तीनों कालमें भी अविनाशी, महा-
 विदेह क्षेत्रकी अपेक्षा सदा और भरतक्षेत्र आदिकी अपेक्षा इक्कीस
 हजार वर्ष रहनेवाला और सब दु खों का नाश करनेवाला मार्ग है।

तपायेला सोना समान निर्मल (कषायमलथी रहित), मायादिशल्यनाशक,
 अविचल सुखनो साधन-मार्ग, कर्मनाश करवानो मार्ग, आत्माने लागेला कर्मने दूर
 करवानो मार्ग, शीतलीभूत थवानो मार्ग, अवितथ अर्थात् त्रये कालमा अविनाशी,
 महाविदेह क्षेत्रनी अपेक्षा सदा अने भरतक्षेत्र आदिनी अपेक्षा ऐकवीश हजार वर्ष
 रहेवावाणे अने सर्व दु खनो नाश करवावाणे मार्ग छे

પેક્ષયૈકવિંશતિસંહસ્રાચન્દિન્નરર્પણ્યેચ નિરપચ્છેદમયસ્યિતે । 'સર્વદુઃખપક્ષીણ-
મગ્ગ' સર્વદુઃખપક્ષીણ=નિઃશ્રેયસ તસ્ય માર્ગઃ=સર્વદુઃખપક્ષીણમાર્ગઃ ।

इत्थं प्रवचनस्य विशेषणमाहृत्येन यन्निर्गलितं तदाह—‘इत्थंठिया’
इत्थमिति ‘अत्र’ इत्यस्यार्थेऽव्ययम्, इत्थम्=अत्र=प्रोक्तविशेषणविशिष्टे निर्ग्रन्थ
प्रवचने स्थिता=वर्तमानाः जीवाः=प्राणिनः, ‘सिञ्जति’ सिंयन्ति=सिद्धिगतिं
प्राप्नुवन्ति ‘अणिमाग्रसिद्धियुक्ता भवन्ति वा । ‘बुज्झति’ बुज्यन्ते=केवलिनो
भवन्ति, ‘मुच्चति’ मुच्यन्ते=कर्मबन्धात्पृथग् भवन्ति ‘परिनिव्वायति’ परिनि-
र्वान्ति=सर्वथा सुखिनो भवन्ति । ‘सर्वदुःखाणामतं करति’ सर्वाणि च तानि
दुःखानि=सर्वदुःखानि=शारीरमानसादीनि तेषामन्तो नाशस्त कुर्वन्ति । ‘इत्थं
ज्ञात्वा ससारसागरं त्रितीर्षुरात्मानमुद्दिश्याऽऽह—‘त’ तम्=पूर्वोक्तविशेषण-
विशिष्टम्, ‘धम्म’ धम्म=निर्ग्रन्थप्रवचनस्वरूपम् ‘सहहामि’ श्रद्धा=अयमेव
केवलं ससारपारावारपारोत्तारक इति भावये । ‘पत्तियामि’ प्रत्येमि=विश्वा-

इस मार्गमें रहे हुए प्राणी सिद्धगति से, अथवा अणिमा
आदि आठ सिद्धियों से युक्त होते हैं, केवल पदको प्राप्त होते हैं,
कर्मबन्ध से मुक्त होते हैं, सर्व सुख को प्राप्त होते हैं और शारी-
रिक मानसिक सर्व दुखोंसे निवृत्त होते हैं । उस धर्मकी मैं श्रद्धा
करता हूँ अर्थात् एक यही ससार समुद्र से तारनेवाला है ऐसी
भावना करता हूँ, अन्तःकरण से प्रतीति करता हूँ, उत्साहपूर्वक
आसेवन करता हूँ, आसेवना द्वारा स्पर्श करता हूँ और प्रवृद्ध परि-

આ માર્ગમાં રહેલા પ્રાણી સિદ્ધગતિથી અથવા અણિમાદિ આઠ સિદ્ધિઓથી
યુક્ત હોય છે, કેવલપદને પ્રાપ્ત થાય છે, કર્મબન્ધથી મુક્ત થાય છે, ‘સર્વ’ સુખોને
પ્રાપ્ત કરે છે અને શારીરિક માનસિક દુખોથી નિવૃત્ત થાય છે-તે ધર્મની હું શ્રદ્ધા
કરું છું અર્થાત્ આ સસાર સમુદ્રથી તારવાવાળો તે એકજ છે એવી ભાવના કરું
છું, અન્તઃકરણથી પ્રતીતિ કરું છું ઉત્સાહપૂર્વક આસેવન કરું છું, આસેવના દ્વારા
સ્પર્શ કરું છું, અને પ્રવૃદ્ધ પરિણામ-ઉચ્ચ ભાવથી પાલન કરું છું, અને સર્વથા નિર-
તર આરાધના કરું છું તે ધર્મમાં શ્રદ્ધા કરતો થકો, પ્રતીતિ કરતો થકો, રુચિ રાખતો

૧- અણિમાદયો યથા-“અણિમા મહિમા ચવ ગરિમા હધિમા તથા ।
પ્રાપ્તિ પ્રાપ્તમ્યમીશિત્ય, યશિત્ય ચાણ્દ્રિય ” ઇતિ ॥

सभूमिं करोमि, यद्वा प्रतिपन्ने=पीत्या प्राप्नोमि । 'रोएमि' रोचयामि=उत्सा
हातिरेकेणाऽऽसेवनाभिमुखो भवामि 'फासेमि' सेवनाद्वारेण स्पृशामि । 'पालेमि'
प्रवृद्धपरिणामेन पालयामि । 'अणुपालेमि' अनु=अनुकूल पालयामि, यद्वा
सर्वतोभावेन करोमि । 'त धम्म' त धर्मम्, 'सद्दहतो' श्रद्धाधानः='प्रवचनमिदं
सत्यमस्ती'—त्येवमात्मपरिणाम कुर्वाणः, 'पत्तियतो' प्रतियन्=विश्वासभूमिं
कुर्वन्, यद्वा प्रतिपन्नमानः=पीत्या स्वीकुर्वाणः, 'रोएतो' रोचयमानः=
रुचिषिष्य कुर्वाणः, 'फासतो' स्पृशन्=आसेवमानः, 'पालतो' पालयन्=
प्रवृद्धपरिणामेन सेवमानः, 'अणुपालतो' अनुपालयन्=अनुकूल पालयन्, यद्वा
सर्वतोभावेन कुर्वन्, 'तस्स' तस्य=पूर्वोक्तस्य 'केवल्लिपन्नत्तस्स' केवल्लिपन्नस्य,
'धम्मस्स' धर्मस्य, 'अब्भुट्ठिओमि' अभ्युत्थितोऽस्मि=उत्थितो भवामि 'आरा-
हणाए' आराधनायामर्थादासेवनाविषये, 'विरओमि' विरतोऽस्मि,=निवृत्तोऽस्मि
'विराहणाए' विराधनाया=खण्डनायाम् । एष एवार्थो विभिद्योच्यते—यत्
एवमतः—'असज्जम परियाणामि' असयमः=प्राणातिपाताद्यकुशलानुष्ठानरूपः
सयमाभावस्त परिजानामि=ज्ञपरिज्ञावलेन ज्ञात्वा प्रत्याख्यानपरिज्ञया परित्यजामि ।
'सज्जम' सम्=शोभनाः यमाः प्राणातिपातादिनिवृत्तिरूपा यस्मिन्, यद्वा
सयम्यते=निवर्त्यते सावयानुष्ठानादात्मा येन स सयमस्तम् 'उवसपज्जामि'

णाम (उच्चभाव) से पालता हूँ और सर्वथा निरन्तर आराधना करता हूँ ।
उस धर्ममें श्रद्धा करता हुआ, प्रतीति करता हुआ, रुचि रखता हुआ,
स्पर्श करता हुआ, पालन करता हुआ और सम्यक् पालन करता
हुआ उस केवल्लि प्ररूपित धर्म की आराधना के लिए मैं उद्यत हुआ
हूँ, तथा सब प्रकार की विराधना से निवृत्त हुआ हूँ, अतएव
असयम (प्राणातिपात आदि अकुशल अनुष्ठान) की जपरिज्ञा से
जानकर और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से परित्याग कर सावय अनुष्ठान-

थडे, स्पर्श करतो थडे, पालन करतो थडे, अने सम्यक् पालन करतो थडे ते
केवल्लि-प्ररूपित धर्मनी आराधना भाटे हु तैयार थये छु, तथा सर्व प्रकारनी
विराधनाथी निवृत्त थये छु, अटला भाटे असयम (प्राणातिपात आदि अकुशल
अनुष्ठान) ने जपरिज्ञाथी जाणीने अने प्रत्याख्यानपरिज्ञाथी परित्याग करीने
सावय अनुष्ठान निवृत्तिइय सयमने स्वीकार करे छु मैथुनइय अकृत्यने छोडी

उपसम्पद्ये=स्वीकुर्वे । 'अत्रम' अत्रम=मैथुनलक्षणाऽकुशलकर्म, 'परियाणामि' परिजानामि=परित्यजामि । 'वम' ब्रह्म=मैथुनपरित्यागलक्षण कुशलकर्म=शीलमित्यर्थः, 'उपसपज्जामि' उपसम्पद्ये=अङ्गीकुर्वे । एवम्-'अकप्प' 'अकल्पम्'=सुमुधुभिरनाचरित 'कप्प' कल्पः=करण-चरणस्वरूप आचारस्तम्, 'अन्नाण' जीवादिवस्तुनो यथास्थितस्वरूपानिर्णयलक्षणमज्ञानम्, 'नाण' ज्ञायते=परिच्छिद्यते वस्त्वनेनास्माद्वेति ज्ञानम्=वस्तुयथावत्स्वरूपक, यद्वा ज्ञातिर्ज्ञान=वस्तुयथावत्स्वरूपानुभवस्तत्, 'अकिरिय' अक्रियाम्, नञोऽत्र दुरर्थकत्वाद्दुष्टा क्रियामिति, यद्वा अपाशस्त्यार्थकोऽत्र नञ्, तेनापशस्ता क्रिया नास्तिकवादस्वरूपामित्यर्थः, 'किरिय' क्रिया=सम्यग्व्यापारः, सम्यग्वादो वा ताम्, 'मिच्छत्त' मिथ्यात्व=तत्त्वार्थश्रद्धान=विपर्यस्तश्रद्धानमित्यर्थः, तथा चोक्तम्-'मिच्छत्त जिणधम्म विवरीय' इति । 'सम्मत्त' सम्यक्त्व=सामान्यविशेषाभ्यां जिनप्रणीतजीवादिपदार्थसार्थस्य श्रद्धानम् । 'अवोहि' अवोधिः=आत्मनो मिथ्यात्वपरिणामस्तम् । 'वोहि' वोधिः=आत्मनः सकलदुःखक्षयनिदानजिनधर्मप्राप्तिस्तम्, 'अमग्ग'

निवृत्तिरूप सद्यम को स्वीकार करता हूँ, मैथुनरूप अकृत्य को छोड़ कर ब्रह्मचर्यरूप शुभ अनुष्ठान को स्वीकार करता हूँ, अकल्पनीय को छोड़ कर करणचरणरूप कल्प को स्वीकार करता हूँ, अज्ञान को त्याग कर ज्ञान को अङ्गीकार करता हूँ, नास्तिकवादरूप अक्रिया को छोड़कर आस्तिकवाद रूप क्रिया को ग्रहण करता हूँ, मिथ्यात्व को त्याग कर सम्यक्त्व को स्वीकार करता हूँ, आत्मा के मिथ्यात्व परिणामरूप अबोधि को छोड़ कर सकल दुःखनाशक जिनधर्मप्राप्तिरूप बोधि को ग्रहण करता हूँ और जिनमतसे विरुद्ध पार्श्वस्थ निहव तथा कुतीर्थि-सेवित अमार्ग

ब्रह्मचर्यरूप शुभ अनुष्ठानको स्वीकार करूँ छु अकल्पनीयने छोड़ने करणचरणरूप कल्पको स्वीकार करूँ छु अज्ञानने छोड़ने ज्ञानने अङ्गीकार करूँ छु नास्तिकवादरूप अक्रियाने त्याग करीने आस्तिकवादरूप क्रियाने ग्रहण करूँ छु मिथ्यात्वने त्याग करीने सम्यक्त्वको स्वीकार करूँ छु आत्माना मिथ्यात्वपरिणामरूप अबोधने छोड़ने सकल दुःखने नाश करने जिनधर्मनी प्राप्तिरूप बोधिने ग्रहण करूँ छु, अने जिनमतथी विरुद्ध पार्श्वस्थ निहव तथा कुतीर्थि-

अमार्गः=जिनवचनविरुद्धपार्श्वस्थनिह्वादि कुतूहिससेवितलक्षणस्तम्, 'मग्ग' मार्गो=ज्ञानादिरत्नत्रयस्वरूपस्तम्, छद्मस्थत्वात्समस्तदोषशुद्धिमाह- 'ज सभरामि' यत्स्मरामि=स्मृतिपथमानयामि, 'ज च न सभरामि' यच्च न स्मरामि=छद्मस्थत्वेन विस्मृतिस्वाभाव्यात्स्मृतिपथ नाऽऽनयामि, 'ज पडिक्कमामि' यत्प्रतिक्रामामि=ज्ञात सत् प्रतिनिवर्त्तयामि परित्यजामि वा, 'ज च न पडिक्कमामि' यच्चाऽनाभोगादज्ञात मृक्षं न प्रतिक्रामितुं शक्नोमि, 'तस्स सव्वस्स देवसियस्स अइयारस्स पडिक्कमामि' निगदव्याख्यातमिदम् ।

इत्थं प्रतिक्रम्य सयतविरतादिविशेषणविशिष्टं स्वात्मानमनुस्मरन् सर्वसाधुवन्दनां करोति- 'समणोह' श्राम्यति=तपस्यतीति श्रमणः, तपश्चरणशीलः कश्चिदन्यो वा सम्भवतीत्यत आह- 'सजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मो' सयतः=वर्त्तमानकालिकसर्वसावधानुष्ठाननिवर्त्तकः, विरतः=अतीतकालिकपापाज्जुगुप्सापूर्वकं भविष्यति च सवरपूर्वकं निवृत्तः, अत एव प्रतिहतः=सम्यक्प्रकारेण

को छेड कर ज्ञानादि रत्नत्रय रूप मार्ग को स्वीकार करता हूँ । इसी प्रकार जो अतिचार स्मरण में आता है या छद्मस्थ अवस्था के कारण स्मरण में नहीं आता है तथा जिसका प्रतिक्रमण किया हो या अनजानवश जिसका प्रतिक्रमण नहीं किया हो उन सब दैवसिक अतिचारों से निवृत्त होता हूँ ।

इस प्रकार प्रतिक्रमण करके सयत-विरतादिरूप निज आत्मा का स्मरण करता हुआ सब साधुओं का वन्दना करता है ।

सयत (वर्त्तमान में सकल सावध व्यापारों से निवृत्त)
विरत (पहले किये हुए पापों की निन्दा और भविष्य काल के

सेवित अमार्गने छोडीने ज्ञानादि-रत्नत्रयइय मार्गने। हु स्वीकार कइ छु अ
प्रमाणे जे अतिचार स्मरणमा आवे छे अथवा छद्मस्थ अवस्थाना कारणे स्मरणमा
न आवे तथा जेनु प्रतिक्रमण कथुं छाय अथवा अज्ञापणथी जेनु प्रतिक्रमण न
कथुं छाय ते सर्व दैवसिक अतिचारथी निवृत्त थाउ छु

आ प्रमाणे प्रतिक्रमण करीने सयत-विरताइइय निज आत्मानु स्मरण करतो
थके। सर्व साधुआने वन्दना कइ छु

सयत (वर्त्तमानमा सर्व सावध व्यापारथी निवृत्त), विरत (प्रथम करेला

उपसम्पद्ये=स्वीकुर्वे । 'अत्रम' अत्रह्य=मैथुनलक्षणाऽकुशलकर्म, 'परियाणामि' परिजानामि=परित्यजामि । 'वभ' ब्रह्म=मैथुनपरित्यागलक्षण कुशलकर्म=शीलमित्यर्थः, 'उवसपज्जामि' उपसम्पद्ये=अङ्गीकुर्वे । एवम्-'अकप्प' 'अकल्पम्'=सुमुधुभिरनाचरित 'कप्प' कल्पः=करण-चरणस्वरूप आचारस्तम्, 'अन्नाण' जीवादिवस्तुनो यथावस्थितस्वरूपानिर्णयलक्षणमज्ञानम्, 'नाण' ज्ञायते=परिच्छिद्यते वस्त्वनेनास्माद्वेति ज्ञानम्=वस्तुयथावत्स्वरूपम्, यद्वा ज्ञातिर्ज्ञान=वस्तुयथावत्स्वरूपानुभवस्तत्, 'अकिरिय' अक्रियाम्, नञोऽत्र दुरर्थकत्वाद्दुष्टा क्रियामिति, यद्वा अपाशस्त्यार्थकोऽत्र नञ्, तेनाप्रशस्ता क्रिया नास्तिकवादस्वरूपामित्यर्थः, 'किरिय' क्रिया=सम्यग्व्यापारः, सम्यग्वादो वा ताम्, 'मिच्छत्त' मिथ्यात्व=तत्त्वार्थाश्रद्धान=विपर्यस्तश्रद्धानमित्यर्थः, तथा चोक्तम्-'मिच्छत्त जिणधम्म विवरीय' इति । 'सम्मत्त' सम्यक्त्व=सामान्यविशेषाभ्यां जिनप्रणीतजीवादि पदार्थसार्थस्य श्रद्धानम् । 'अवोहि' अवोधिः=आत्मनो मिथ्यात्वपरिणामस्तम् । 'वोहि' बोधिः=आत्मनः सकलदुःखक्षयनिदानजिनधर्मप्राप्तिस्तम्, 'अमग्ग'

निवृत्तिरूप सयम को स्वीकार करता हूँ, मैथुनरूप अकृत्य को छोड़ कर ब्रह्मचर्यरूप शुभ अनुष्ठान को स्वीकार करता हूँ, अकल्पनीय को छोड़ कर करणचरणरूप कल्प को स्वीकार करता हूँ, अज्ञान को त्याग कर ज्ञान को अङ्गीकार करता हूँ, नास्तिकवादरूप अक्रिया को छोड़कर आस्तिकवाद रूप क्रिया को ग्रहण करता हूँ, मिथ्यात्व को त्याग कर सम्यक्त्व को स्वीकार करता हूँ, आत्मा के मिथ्यात्व परिणामरूप अवोधि को छोड़ कर सकल दुःखनाशक जिनधर्मप्राप्तिरूप बोधि को ग्रहण करता हूँ और जिनमतसे विरुद्ध पार्श्वस्थ निहव तथा कुतीर्थि-सेवित अमार्ग

प्रत्ययार्थश्च शुभ अनुष्ठाननो स्वीकार कर्तुं एव अकल्पनीयने छोड़ने करणचरण इव कल्पनो स्वीकार कर्तुं एव अज्ञानने छोड़ने ज्ञानने अङ्गीकार कर्तुं एव नास्तिकवादश्च अक्रियानो त्याग करीने आस्तिकवादश्च क्रियाने ग्रहण कर्तुं एव मिथ्यात्वनो त्याग करीने सम्यक्त्वनो स्वीकार कर्तुं एव आत्माना मिथ्यात्वपरिणामश्च अवोधिने छोड़ने सकल दुःखनो नाश करनार जिनधर्मनी प्राप्तिश्च बोधिने ग्रहण कर्तुं एव, अने जिनमतस्य विरुद्ध पार्श्वस्थ निहव तथा कुतीर्थि-

વાહ્ય=પૃથિવ્યાદિરજઃ, આભ્યન્તર=વધ્યમાનકર્મસ્વરૂપ, કારણે કાર્યોપચારાત્,
નનુ-રજોહરણસ્પર્શવશાદલપકાયાના કુન્થુ-મત્કુળ-પિપીલિકા-મશકાદીના જીવાના
વિનાશસ્ય, યથેચ્છગમનભોજ્યાદિવ્યાધાતસ્ય પ્રમૃષ્ટરજઃપ્રભૃતિભિઃ વદાચિત્
પિપીલિકાદિવિવરાદિસમુદ્રણાદિનોપઘાતસ્ય પ્રાયઃ પ્રત્યક્ષસિદ્ધત્વાદ્રજોહરણ સયમ-
યોગાના ન કારણ પ્રત્યુતાઽનર્થસ્ય, તસ્માન્ન ધાર્યમિતિ,

હજાર શીલાઙ્ગરથ કે ધારક તથા આધાકર્મ આદિ ૪૨ દોષોં કો
ટાલ કર આહાર લેને વાલે, ૪૭ દોષ ટાલ કર આહાર ભોગને
વાલે, અસ્વપ્ન આચાર ચારિત્ર કો પાલને વાલે એસે સ્થવિરકલ્પી
જિનકલ્પી મુનિરાજોં કો 'તિક્ષ્ણુત્તો' કે પાઠ સે વન્દના કરતા હૂં ।

ઘટ્ટા પર રજોહરણ ધારણ કરને કે વિષયમે કોઈ શઙ્કા
કરતા હૈ કિ-રજોહરણ ધારણ કરના એક પ્રકાર કી હિંસા કા
કારણ હૈ, ક્યોં કિ રજોહરણ કે સ્પર્શ સે કુન્થુ, પિપીલિકા આદિ
છોટે ૨ જીવોં કે ઇચ્છાનુકૂલ ચલને ફિરને મેં બાધા હો સકતી હૈ,
ઔર હસકે દ્વારા એકત્રિત કી હુઈ ધૂલી આદિ સે પિપીલિકા
આદિ કા વિવર (દર) ઢક જાને પર ઉનકા ઉપઘાત હોના પ્રાયઃ
પ્રત્યક્ષ સિદ્ધ હૈ, હસલિયે રજોહરણ સયમ યોગ કા કારણ નહીં
હૈ પ્રત્યુત અનર્થ કા કારણ હૈ, અતઃ હસકા ધારણ કરના
ઉચિત નહી હૈ ।

૪૨ દોષોને ટાલી આહાર ગ્રહણ કરનારા, ૪૭ દોષ ટાલીને આહાર ભોગવવાવાળા,
અસ્વપ્ન આચાર ચારિત્ર પાલન કરવાવાળા એવા સ્થવિરકલ્પી જિનકલ્પી મુનિરાજોને
તિષ્ણુત્તાના પાઠથી વદના કરે છુ

અહીં રજોહરણ ધારણ કરવા વિષે કોઈ શંકા કરે છે કે-રજોહરણ ધારણ કરવું
એક પ્રકારની હિંસાનું કારણ છે કારણ કે રજોહરણના સ્પર્શથી કુન્થુ, ફીડી આદિ
નાના નાના જીવોને સ્વર્ધ્મશ્રાપ્રમાણે હરવા-ફરવામાં તકલીફ થઈ શકે છે અને એના
વડે એકઠી કરેલી ધૂલ આદિથી ફીડી આદિના દર (રહેવાના દર) ઢકાઈ જવાથી
તે જીવોનો ઉપઘાત થઈ જવું પ્રાય પ્રત્યક્ષ સિદ્ધ છે એટલા માટે રજોહરણ
સયમ યોગોનો સાધક નથી પરંતુ અનર્થનું કારણ છે, માટે એને ધારણ કરવું
ઉચિત નથી

नाशित प्रत्याख्यात च=पूर्वकृतस्याऽतिचारस्य निन्दया, भविष्यतोऽकरणेन च निराकृत पापकर्म=पापानुष्ठान येन स प्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा, सयतश्चासौ विरतश्च सयतविरतः, (विशेषणयोरपि परस्परविशेष्यविशेषणभावात्समासो गतप्रत्यागतादिवत्) सयतविरतश्चासौ प्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा चेति सयतविरतप्रतिह-
प्रत्याख्यातपापकर्मा, पुनः कीदृशोऽहम् ? 'अणियाणो' अनिदानः=अकृतनिदानः, एतादृशो मिथ्यादृष्टिरपि सम्भवति तस्मादाह—'दिद्विसपन्नो' दृष्टिसम्पन्नः=सम्यग्दर्शनसहितः, अतएव 'मायामोसविवर्जिओ' मायामृषाविवर्जितः=माया-
मृषावादाभ्या रहितः, एव भूत्वा 'अद्वाइज्जेसु दीयसमुद्देसु' 'अद्दवृतीयेषु द्वीप समुद्रेषु=जम्बूद्वीप-धातकीखण्ड-पुष्करार्द्धरूपेषु, 'पन्नरसकम्मभूमीसु' पञ्चदशसु कर्मभूमिषु=कर्म=कृपिवाणिज्यप्रभृति मोक्षानुष्ठान वा तत्प्रधाना भूमयः कर्मभूमयः भरतपञ्चकैरवतपञ्चक-महाविदेहपञ्चक-लक्षणास्तासु स्थिता इति शेषः, 'जावति' यावन्तः, 'केइ' केचित् 'रयहरणमुहपत्तियगोच्छगपडिग्गहधारा' रजः=बाह्याभ्यन्तर रजो द्रियते=अपनीयतेऽनेनेति, 'हरत्यपनयतीति वा रजोहरणम्, तत्र

लिये सवर करके सकल पापों से रहित), अतएव अतीत अनागत वर्त्तमान कालीन सब पापों से मुक्त, अनिदान-नियाणारहित, सम्यग्दर्शनसहित तथा माया मृषा का त्यागी ऐसा मैं श्रमण, अठार द्वीप पन्द्रह क्षेत्र (कर्मभूमियों) में विचरनेवाले, रजोहरण पूजनी पात्र को धारण करने वाले और डोरासहित मुखवस्त्रिका को मुख पर बाधनेवाले, पाच महाव्रत के पालनहार और अठारह

पापोंकी निन्दा करने लविष्य काल भाटे सवर करीने सर्व पापथी रहित), अटला भाटे अतीत, अनागत अने वर्त्तमान कालना सर्व पापथी मुक्त, अनिदान-नियाणा रहित, सम्यग्दर्शन सहित तथा मायामृषानो त्यागी अवेो हु श्रमण, अढी द्वीप समधी पहर क्षेत्रो (कर्मभूमि) मा विचरवावाणा, रजोहरण पूजणी पात्रने धारण करवावाणा अने डोरासहित मुखवस्त्रिकाने मुख पर बाधवावाणा, पाच महाव्रतना पालनहार अने अठार हुणर शीलगरथना धारण करनार तथा आधाकर्म आदि

१-अर्द्ध तृतीय येषु तेऽर्द्धतृतीयास्तेषु ।

२-अर्थमात्रप्रदर्शनमिदं, व्युत्पत्तिस्तु 'रजसो हरण'—मित्येवेति प्रेक्षवता सूक्ष्मेक्षिका ।

વાહ્ય=પૃથિવ્યાદિરજઃ, આશ્યન્તર=વધ્યમાનકર્મસ્વરૂપ, કારણે કાર્યોપચારાત્, નન્તુ-રજોહરણસ્પર્શવશાદલ્પકાયાના કુન્થુ મત્કુળ પિપીલિકા મશકાદીના જીવાના વિનાશસ્ય, યથેચ્છગમનભોજ્યાદિવ્યાધાતસ્ય પ્રમૃટ્પરજઃપ્રભૃતિભિઃ કદાચિત્ પિપીલિકાદિવિવરાદિસમુદ્રણાદિનોપઘાતસ્ય પ્રાયઃ પ્રત્યક્ષસિદ્ધત્વાદ્રજોહરણ સયમ-યોગાના ન કારણ પ્રત્યુતાઽનર્થસ્ય, તસ્માન્ન ધાર્યમિતિ,

હજાર શીલાઙ્ગરથ કે ધારક તથા આધાકર્મ આદિ ૪૨ દોષોં કો ટાલ કર આહાર લેને વાલે, ૪૭ દોષ ટાલ કર આહાર ભોગને વાલે, અઘ્વળ આચાર ચારિત્ર કો પાલને વાલે એસે સ્થવિરકલ્પી જિનકલ્પી મુનિરાજોં કો 'તિવ્લુત્તો' કે પાઠ સે વન્દના કરતા હૂં ।

યહા પર રજોહરણ ધારણ કરને કે વિષયમેં કોઈ શઙ્કા કરતા હૈ કિ-રજોહરણ ધારણ કરના એક પ્રકાર કી હિંસા કા કારણ હૈ, ક્યોં કિ રજોહરણ કે સ્પર્શ સે કુન્થુ, પિપીલિકા આદિ છોટે ૨ જીવોં કે હચ્છાનુકૂલ ચલને ફિરને મે વાધા હો સકતી હૈ, ઓર ડસકે દ્વારા એકત્રિત કી હુઈ ધૂલી આદિ સે પિપીલિકા આદિ કા વિવર (દર) ઢક જાને પર ઉનકા ઉપઘાત હોના પ્રાયઃ પ્રત્યક્ષ સિદ્ધ હૈ, હસલિયે રજોહરણ સયમ યોગ કા કારણ નહી હૈ પ્રત્યુત અનર્થ કા કારણ હૈ, અતઃ હસકા ધારણ કરના ઉચિત નહી હૈ ।

૪૨ દોષોને ટાલી આહાર અહણ કરનારા, ૪૭ દોષ ટાલીને આહાર ભોગવવાવાળા, અઘ્વળ આચાર ચારિત્ર પાલન કરવાવાળા એવા સ્થવિરકલ્પી જિનકલ્પી મુનિરાજોને તિષ્ણુતાના પાઠથી વદના કરે છુ

અહીં રજોહરણ ધારણ કરવા વિષે કોઈ શકા કરે છે કે-રજોહરણ ધારણ કરવું એક પ્રકારની હિંસાનું કારણ છે કારણ કે રજોહરણના સ્પર્શથી કુન્થુ, ફીડી આદિ નાના નાના જીવોને સ્વર્ધમ્બાપ્રમાણે હરવા-ફરવામાં તકલીફ થઈ શકે છે અને એના વડે એકઠી કરેલી ધૂલ આદિથી ફીડી આદિના દર (રહેવાના દર) ઢકાઈ જવાથી તે જીવોનો ઉપઘાત થઈ જવું પ્રાય પ્રત્યક્ષ સિદ્ધ છે એટલા માટે રજોહરણ સયમ યોગોનો સાધક નથી પરન્તુ અનર્થનું કારણ છે, માટે એને ધારણ કરવું ઉચિત નથી

અત્રોચ્યતે-અપરિજ્ઞાતરજોહરણગ્રહણાઽઽશયત્વાદ્ભ્રાન્તોઽસિ, યેન નેત્રે ડહુલિદાનતો દ્વિચન્દ્રાદિપ્રતિભાનવદ્વજોહરણધારણસ્યાઽન્યથાત્વમિત્યમાશંક્યસે, હન્ત વિકૃતાઙ્ગ ! નાસૌ ત્વત્પક્ષઃ ક્ષોદક્ષેમક્ષમઃ, નહિ વય ધૃતરજોહરણા યૂયમિવ ગજનિમીલિકયા સશ્વરામઃ પર્યટામોઽપ્યદ્વા તિચ્છિદ્વચવહરામો, યેન રજોહરણ સ્પર્શાદિના જીવક્લેશલેશોઽપિ સમુત્પદ્યેત, ચક્ષુષા સમીક્ષ્ય કુન્થુપિપીલિકાદીના મનુપલમ્બે સતિ ઉપલમ્બેઽપિ વા તદ્રક્ષણસક્ષણતયૈવ તત્રાઽપ્યતિકોમલોર્ણાદિરચિતેન રજોહરણેન પ્રમાર્જમ્મં ઇતિ કથમુપઘાતાદિસમ્ભવઃ ? ન હપથ્યાશિનોઽપરિપાકાદિ-કાયદોષમઙ્ગાવાત્પથ્યાશન કેનાપિ સદ્વિવેકજુષા વિદુષા પરિહીયતે, જીવાગ્રવ-

इस शका (प्रश्न) का उत्तर देते हैं-अरे भ्राता ! रजोहरण धारण करने के आशय से अनभिज्ञ होने के कारण आप भ्रान्त हैं । इस कारण आपका पक्ष तर्क की कसौटी पर खरा (बराबर) नहीं उतरता, क्योंकि कि बाह्य-पृथ्वी आदि रज और आभ्यन्तर-बाधे हुए कर्मरूपी रज जिससे दूर किया जाय उसे रजोहरण कहते हैं । उस सुकोमल रजोहरण द्वारा हम उपयोग-सहित यत्नायुक्त प्रमार्जन करते हैं, इसलिये प्रमार्जन (पूजने) से जीवोपघात होने की सम्भावना नहीं हो सकती ।

यदि किसी को अपथ्य भोजन से अजीर्ण होजाय तो क्या पथ्याहारी लोग पथ्य भोजन करना छोड़ देंगे ! कदापि नहीं । इसी प्रकार यदि कदाचित् असद्यमी द्वारा प्रमार्जन करते जीवोपघात

આ શકાનો ઉત્તર આપે છે કે-અરે ભ્રાતા ! રજોહરણ ધારણ કરવાના આશયથી અનભિજ્ઞ હોવાના કારણે તૂ ભ્રાન્ત છે તેથી તમારો પક્ષ તર્કની કસોટી ઉપર ખરોખર નથી ઉતરતો, કેમ કે બાહ્ય-પૃથ્વી આદિ રજ અને આભ્યન્તર-બાધેલા કર્મરૂપી રજ જેનાથી દૂર કરી શકાય તેને રજોહરણ કહે છે તે સુકોમલ રજોહરણ દ્વારા ઉપયોગ સહિત યતનાયુક્ત પ્રમાર્જન કરીએ છીએ, એ કારણે પ્રમાર્જન (પૂજવા)થી જીવોપઘાતક થવાની સંભાવના નથી

જો કદાચિત કોઈને અપથ્ય આહારથી અજીર્ણ થઈ જાય તો શું પથ્ય આહાર કરવાવાળા માણસે આજુ છોડી દેશે ? ન જ છોડે એજ રીતે જો કદાચિત અસદ્યમી દ્વારા પ્રમાર્જન કરવામાં આવે તો જીવોપઘાત થઈ જાય તો શું સદ્યમી રજોહરણનો

લોકનપૂર્વકેડપિ પ્રમાર્જનેત્વત્કલિપતેન સમ્ભાવિતોપઘાતેન તુ ત્રયનાડપરાગ્યામો, ન
વા શાસ્ત્રસિદ્ધાન્તગન્ધોડપિ તથા, યતો રજોહરણધારણતત્પ્રમાર્જનાદિકમસ્યાભિર્જન્તુ-
જાતત્રાણાર્થમેવ ક્રિયતે નતૂપઘાતધિયા, અત એવ વ્યાપિગ્રસ્તાના પ્રાણિનામુપકારાર્થ
ચિન્તિત્સતા વિજ્ઞેન વિહિતે ચિકિત્સાપ્રયોગે કદાચિત્તેપા વ્યાપત્તૌ સત્યામપિ
નાસૌ પ્રાયશ્ચિત્તાર્હશ્ચિકિત્સકઃ । કિન્ન ચદિ સમ્માર્જનાદિના કદાચિત્સમ્ભાવિત
દોષમપેક્ષ્ય રજોહરણગ્રહણપ્રતિષેધાડગ્રહગ્રહિલોડસિ, તદા મન્યે ત્વયાડશન-પાન-

હો જાય તો ક્યા સયમી રજોહરણ કા ત્યાગ કરદે ! કદાપિ નહી !
ક્યોં કિ સયમી દ્વારા જીવોપઘાત હોને કી સમ્ભાવનાહી નહીં હૈ ।
જીવોં કો દેખકર યત્નાપૂર્વક પ્રમાર્જન કરને પર મી તુમને જો
કલ્પના કી ડસ સમ્ભાવિત જીવોપઘાત કા અપરાધ હમેં નહી લગ
સકતા, ડસ કારણ તુમ્હારી શઙ્કા જરા મી શાસ્ત્રાનુકૂલ નહીં હૈ,
ક્યોં કિ જીવોં કી રક્ષા કે લિયે હી સયમી રજોહરણ ધારણ
કરતે હેં એવ ડસકે દ્વારા પ્રમાર્જન કરતે હેં, ડપઘાત કે લિયે
નહીં । યદિ ડપકાર કી દૃષ્ટિ સે રોગિયોં કી ચિકિત્સા કરને વાલે
વૈદ્ય કી ચિકિત્સા સે કિસી રોગી કો કિસી મી પ્રકાર કી ક્ષતિ
પહુચ મી જાય તો મી વહ વૈદ્ય અપરાધી નહીં હો સકતા, ક્યોં
કિ વૈદ્ય રોગી કી હિતબુદ્ધિ સે હી ચિકિત્સા કરતા હૈ ।

હસ પર મી યદિ તુમ રજોહરણ ધારણ કરને મેં આપત્તિ
સમજ્ઞતે હો તો મેં માનતા હૂં કિ તુમ્હેં અશન, પાન, ભ્રમણ,

ત્યાગ કરી દે । ન જ કરે કેમકે સયમી દ્વારા જીવોપઘાત થવાની સમ્ભવનાજ
નથી જીવોને જોતા થકા યત્નાપૂર્વક પ્રમાર્જન કર્યા છતા તમે જે કલ્પના કરી
તે સમ્ભાવિત જીવોપઘાતનો અપરાધ અમને નથી લાગી શકતો, એ કારણે તમારી
શકા જરાય શાસ્ત્રાનુકૂલ નથી, કેમ કે સયમી મુનિ જીવોની રક્ષા અર્થેજ
રજોહરણ ધારણ કરે છે તેમજ તેના વડે પ્રમાર્જન કરે છે, જીવોપઘાત માટે નહી
જે ડપકારની દૃષ્ટિથી રોગિઓની ચિકિત્સા કરવાવાળા વૈદ્યની ચિકિત્સાથી કોઈ
રોગીને કોઈ પણ જાતની હાનિ પહોચી પણ જાય તો પણ વૈદ્ય અપરાધી થઈ
શકતો નથી, કારણ કે વૈદ્ય તો રોગીની હિતબુદ્ધિથીજ ચિકિત્સા કરવાવાળો છે

તે છતા જો તમે રજોહરણ ધારણ કરવામા આપત્તિ માનશે તો મને માનવું

અત્રોચ્યતે-અપરિજ્ઞાતરજોહરણગ્રહણાઽઽશયત્વાદ્ભ્રાન્તોઽસિ, યેન નેત્રે-
 ઽદ્ભુલિદાનતો દ્વિચન્દ્રાદિપ્રતિભાનવદ્રજોહરણધારણસ્યાઽન્યથાત્વમિત્યમાશંક્યસે, દન્ત
 વિકૃતાઙ્ગ ! નાસૌ ત્વત્પક્ષઃ ક્ષોદક્ષેમક્ષમઃ, નહિ વય ધૃતરજોહરણા યૂયમિવ
 ગજનિમીલિકયા સશ્વરામઃ પર્યટામોઽન્યદ્વા ત્રિચ્ચિદ્વ્યવહરામો, યેન રજોહરણ
 સ્પર્શાદિના જીવક્લેશલેશોઽપિ સમુત્પદ્યેત, ચક્ષુષા સમીક્ષ્ય કુન્થુપિપીલિકાદીના
 મનુષલમ્બે સતિ ઉપલમ્બેઽપિ વા તદ્રક્ષણસક્ષણતયૈવ તત્રાઽપ્યતિકોમલોર્ણાદિરચિતેન
 રજોહરણેન પ્રમાર્જ્યમ્મં ઇતિ કથમુપઘાતાદિસમ્ભવઃ ? ન હ્યપથ્યાશિનોઽપરિપાકાદિ-
 કાયદોષમદ્ધાવાત્પથ્યાશન કેનાપિ સદ્ધિવેકજુષા વિદુષા પરિહીયતે, જીવાશ્ચ

इस शका (प्रश्न) का उत्तर देते हैं-अरे भ्राता ! रजोहरण
 धारण करने के आशय से अनभिज्ञ होने के कारण आप भ्रान्त
 हैं । इस कारण आपका पक्ष तर्क की कसौटी पर खरा (बराबर)
 नहीं उतरता, क्योंकि कि बाह्य-पृथ्वी आदि रज और आभ्यन्तर-
 बाधे हुए कर्मरूपी रज जिससे दूर किया जाय उसे रजोहरण
 कहते हैं । उस सुकोमल रजोहरण द्वारा हम उपयोग-सहित
 यत्नायुक्त प्रमार्जन करते हैं, इसलिये प्रमार्जन (पूजने) से जीवो-
 पघात होने की संभावना नहीं हो सकती ।

यदि किसी को अपथ्य भोजन से अजीर्ण होजाय तो क्या
 पथ्याहारी लोग पथ्य भोजन करना छोड़ देंगे ! कदापि नहीं । इसी
 प्रकार यदि कदाचित् असयमी द्वारा प्रमार्जन करते जीवोपघात

આ શકાનો ઉત્તર આપે છે કે-અરે ભ્રાતા ! રજોહરણ ધારણ કરવાના
 આશયથી અનભિજ્ઞ હોવાના કારણે તૂ ભ્રાન્ત છે તેથી તમારો પક્ષ તર્કની કસોટી
 ઉપર ખરોબર નથી ઉતરતો, કેમ કે બાહ્ય-પૃથ્વી આદિ રજ અને આભ્યન્તર-બાધેલા
 કર્મરૂપી રજ જેનાથી દૂર કરી શકાય તેને રજોહરણ કહે છે તે સુકોમલ રજોહરણ
 દ્વારા ઉપયોગ સહિત યતનાયુક્ત પ્રમાર્જન કરીએ છીએ, એ કારણે પ્રમાર્જન
 (પૂજવા)થી જીવોપઘાતક થવાની સંભાવના નથી

જો કદાચિત કોઈને અપથ્ય આહારથી અજીર્ણ થઈ જાય તો શું પથ્ય આહાર
 કરવાવાળા માણસો પથ્ય ખાવું છોડી દેશે ! ન જ છોડે એજ રીતે જો કદાચિત
 અસયમી દ્વારા પ્રમાર્જન થતા જીવોપઘાત થઈ જાય તો શું સયમી રજોહરણનો

॥ छाया ॥

केऽपि भणन्ति मूढाः, सयमयोगाना कारण नैवम् ।
 रजोहरणमिति प्रमार्जनादिभिरुपघातभावात् ॥ १ ॥
 मूङ्गलिकादीना, विनाशसन्तानभोग्यविरहादयः ।
 रजोदरिस्थगनससर्जनादिना भवत्युपघातः ॥ २ ॥
 प्रत्युपेक्ष्य प्रमार्जनं, -मुपघातः कथं नु तत्र भवेत् ।
 अप्रमृज्य च दोषा वर्ज्या आदावागाढव्युत्सर्गे ॥ ३ ॥
 आत्मपरपरित्यागो द्विधापि शास्त्रस्य (शासितुः) अकौशल नूनम् ।
 ससर्जनादिदोषा देहे इव अविधिना नो भवन्ति ॥ ४ ॥

इत्यास्ता विस्तरः, प्रकृतमनुस्त्रियते-मुखवस्त्रिका-वायुकायादियतनार्थं
 मुखोपरि दवरकेण वन्त्रनीयमष्टपुटमुपकरणम्, गुच्छकः=पात्रादिप्रमार्जनीविशेषः,
 पूँजनी' इति भाषाप्रसिद्धः, प्रतिगृह्णाति=भक्तपानादिकं स्वस्मिन्नाधत्त इति
 प्रतिग्रहः=भक्तपानादिपात्रम्, रजोहरणं च मुखवस्त्रिका च, गुच्छकश्च प्रतिग्रहश्चेति
 रजोहरणमुखवस्त्रिकागुच्छकप्रतिग्रहास्तान् धरन्ते ये ते रजोहरण-मुखवस्त्रिका-
 गुच्छक-प्रतिग्रहधारा ^१ । इत्थं ^२निह्नुवादयोऽपि सभवन्तीति तदपाकरणार्थमाह-
 'पञ्चमहव्यधारा' पञ्चमहाव्रतानि=प्राणातिपाताऽनृतभाषणाऽदत्ताऽऽदाना-ऽब्रह्म-
 चर्यपरिग्रहव्युपरमलक्षणानि धरन्त इति पञ्चमहाव्रतधारा ^३ । न केवलमेत एव
 किन्तूक्तगुणविशिष्टाः सन्तोऽपि-'अद्वारससहस्रसीलगधारा' अष्टादशसहस्र-
 शीलाङ्गधारा । अष्टादशशीलाङ्गसहस्राणि तु यथा-यो न करोति मनसाऽऽहार-
 सञ्ज्ञाविषयुत श्रोत्रेन्द्रियसमृतः क्षान्तिसम्पन्नः पृथिवीकायारम्भम् (१), एव-
 मप्कायारम्भम् (२), तेजस्कायारम्भम् (३), वायुकायारम्भम् (४), वनस्प-
 तिकायारम्भम् (५), द्वीन्द्रियारम्भम् (६), त्रीन्द्रियारम्भम् (७), चतुरिन्द्रिया-
 रम्भम् (८), पञ्चेन्द्रियारम्भम् (९), अजीवारम्भं च (१०) । एते क्षान्तिपदेन

१-' धारा.' कर्मण्यण् ।

२-निह्नुवत इति निह्नुवाः, पचादेराकृतिगणत्वात्कर्त्तर्यच्, यद्वा निह्वः=
 अपलापोऽस्त्येषामिति निह्नुवाः, निह्वशब्दादर्श आदित्वान्मत्वर्थीयोऽच्,
 सञ्ज्ञेय तान्त्रिकी ।

३-' धारा.' कर्मण्यण् ।

અમણ-ભાષણો-ત્યાન-પાર્શ્વપરિવર્તન-મલમૂત્રત્યાગાદિકાઃ ક્રિયા અપિ પરિ-
હરણીયા એવ સ્યુઃ, ત્વત્સમ્ભાવિતસ્યોક્તદોષસ્ય કદાચિત્તાભ્યોઽપિ સન્નાવાદિતિ
કથ જીવસિ ? કથ વા ન નિગૃહીતોઽસીતિ દૂહિ, તૂર્ણીં વાઽઽસ્સ્વ, ત્વત્પક્ષે
જીવદયાસ્વરૂપમેવ ગગનકુસુમાયત ઇતિ વિભાવય ચ । તસ્માન્મુનીના સયમ
નિર્વાહાર્થ રજોહરણાશુપકરણગ્રહણ પરમાવશ્યકમિતિ બોધ્યમ્ ।

અત્ર સક્ષિપ્તપૂર્વોત્તરપક્ષસદ્ગ્રહગાથા અપ્યન્યત્રોક્તા યથા—

‘કેઈ ભળતિ મૂઢા, સજમજોગાળ કારણ નેવ ।

રયહરણતિ પમજ્જણ,—માઈહુવઘાયભાવાઓ ॥ ૧ ॥

મૂઝગલિઆઈણ, વિનાસસનાળભોગવિરહાઈ ।

રયદરિથગળ—સસ,—જ્જણાઽઽઈણા હોઈ ઉવઘાઓ ॥ ૨ ॥

પડિલેહિઉ પમજ્જણ,—મુવઘાઓ કહણુ તત્થ હોજ્જાઉ ? ।

અપ્પમજ્જિઉ ચ દોમા, વજ્જાઽઽદાગાઢવોસિરણે ॥ ૩ ॥

આયપરપરિચ્છાઓ, દુઢાવિ સત્થસ્સઽકોસલ નૂળ ।

સસજ્જણાઈદોસા, દેહેન્વઽવિહીણ ણો હુતિ ॥ ૪ ॥

ભાષણ, ઉત્યાન (ઉઠના), શયન, પાર્શ્વપરિવર્તન (કરવટ બદલના) ઓર મલ-મૂત્ર-પરિત્યાગ આદિ ક્રિયાઓં કોં ભી છોડના હોગા, કયોં કિ તુમ્હારે દ્વારા કથિત દોષ હન ક્રિયાઓં મેં ભી આસકતા હૈ તો ફિર બતાઓ કિ જીવિત હી કૈસે રહ સકોગે ? તુમ્હારે કથનમે જીવદયા કા સ્વરૂપ આકાશકુસુમ કે સમાન હો જાયગા, યહ ભી સોચો । હસલિયે ‘કિસી ભી જીવકો કિસી પ્રકારકા કષ્ટ ન પહુંચને પાવે’ હસી હેતુ મુનિયોંકો રજોહરણ આદિ ઉપ-કરણ ધારણ કરના સયમનિર્વાહ કે લિયે અત્યન્ત આવશ્યક હૈ !

પડશે કે તમેને અશન, પાન, અમણ, ભાષણ, ઉત્યાન (ઉઠવુ), શયન, પાર્શ્વપરિવર્તન (પડણુ ફેરવવુ) અને મલમૂત્ર પરિત્યાગ આદિ ક્રિયાઓને છોડી દેવી પડશે કારણ કે તમારા તરફથી કથિત (કહેલ) દોષ એ સર્વ ક્રિયાઓમા પણ આવી શકે છે, તો પછી કહો કે જીવિતજ કઈ રીતે રહી શકશે ! તમારા કથનમા જીવદયાનું સ્વરૂપ આકાશ-કુસુમ સમાન થઈ જશે આ માટે ‘કોઈપણ જીવને કોઈ પ્રકારનું કષ્ટ ન પહોંચે’ આ હેતુથી મુનિયોને રજોહરણ આદિ ઉપકરણ ધારણ કરવું સયમનિર્વાહ અર્થે અત્યંત આવશ્યક છે

॥ छाया ॥

केऽपि भणन्ति मूढाः, समययोगाना कारण नैवम् ।
 रजोहरणमिति प्रमार्जनादिभिरुपघातभावात् ॥ १ ॥
 मूङ्गलिकादीना, विनाशसन्तानभोग्यविरहादयः ।
 रजोदरिस्थगनससर्जनादिना भवत्युपघातः ॥ २ ॥
 प्रत्युपेक्ष्य प्रमार्जन, -मुपघातः कथं नु तत्र भवेत् ।
 अपमृज्य च दोषा वर्ज्या आदावागाद्व्युत्सर्गे ॥ ३ ॥
 आत्मपरपरित्यागो द्विधापि शास्त्रस्य (शासितुः) अकौशल नूनम् ।
 ससर्जनादिदोषा देहे इव अविधिना नो भवन्ति ॥ ४ ॥

इत्यास्ता विस्तरः, प्रकृतमनुस्त्रियते-मुखवस्त्रिका-वायुकायादियतनार्थं
 मुखोपरि दवरकेण वन्त्रनीयमष्टपुटमुपकरणम्, गुच्छकः=पात्रादिप्रमार्जनीविशेषः,
 'पूजनी' इति भाषाप्रसिद्धः, प्रतिगृह्णाति=भक्तपानादिक स्वस्मिन्नाधत्त इति
 प्रतिग्रहः=भक्तपानादिपात्रम्, रजोहरणं च मुखवस्त्रिका च, गुच्छकश्च प्रतिग्रहश्चेति
 रजोहरणमुखवस्त्रिकागुच्छकप्रतिग्रहास्तान् धरन्ते ये ते रजोहरण-मुखवस्त्रिका-
 गुच्छक-प्रतिग्रहधारा १ । इत्थं २निहन्वादयोऽपि सभवन्तीति तदपाकरणार्थमाह-
 'पञ्चमहव्ययधारा' पञ्चमहाव्रतानि=प्राणातिपाताऽनृतभाषणाऽदत्ताऽऽदाना-ऽब्रह्म-
 चर्यपरिग्रहव्युपरमलक्षणानि धरन्त इति पञ्चमहाव्रतधारा ३ । न केवलमेत एव
 किन्तूक्तगुणविशिष्टा. सन्तोऽपि-'अष्टारससहस्ससीलगधारा' अष्टादशसहस्र-
 शीलाङ्गधारा । अष्टादशशीलाङ्गसहस्राणि तु यथा-यो न करोति मनसाऽऽहार-
 सञ्ज्ञाविमयुत श्रोत्रेन्द्रियसंवृत क्षान्तिरसम्पन्न. पृथिवीकायारम्भम् (१), एव-
 मप्कायारम्भम् (२), तेजस्कायारम्भम् (३), वायुकायारम्भम् (४), वनस्प-
 तिकायारम्भम् (५), द्वीन्द्रियारम्भम् (६), त्रीन्द्रियारम्भम् (७), चतुरिन्द्रिया-
 रम्भम् (८), पञ्चेन्द्रियारम्भम् (९), अजीवारम्भं च (१०) । एते क्षान्तिपदेन

१-' धाराः' कर्मण्यण् ।

२-निहन्नुवत इति निहन्वाः, पचादेराकृतिगणत्वात्कर्त्तर्यच्, यद्वा निहन्.=
 अपलापोऽस्त्येषामिति निहन्वा., निहन्वशब्दादर्श आदित्वान्मत्वर्थीयोऽच्,
 सञ्ज्ञेय तान्त्रिकी ।

३-' धारा.' कर्मण्यण् ।

ભ્રમણ-ભાષણો-ત્યાગ-પાર્શ્વપરિવર્તન-મલમૂત્રત્યાગોદિકા. ક્રિયા અપિ પરિ-
હરણીયા એવ સ્યુઃ, ત્વત્સમ્ભાવિતસ્યોક્તદોષસ્ય કદાચિત્તાભ્યોઽપિ સન્નાવાદિતિ
કથ જીવસિ ? કથ વા ન નિગૃહીતોઽસીતિ વ્રૂહિ, તૂર્ણીં વ્રાઽઽસ્સ્વ, ત્વત્પક્ષે
જીવદયાસ્વરૂપમેવ ગગનકુસુમાયત્ત્વમિતિ વિભાવય ચ । તસ્માન્મુનીના સયમ
નિર્વાહાર્થે રજોહરણાદ્યુપકરણગ્રહણ પરમાવશ્યકમિતિ' વોખ્યમ્ ।

અત્ર સક્ષિપ્તપૂર્વોત્તરપક્ષસદ્ગ્રહણાથા અપ્યન્યત્રોક્તા યથા—

‘કેઈ ભળતિ મૂઢા, સજમજોગાળ કારણ નેવ ।

રયહરણતિ પમજ્જણ,—માઈહુવઘાયભાવાઓ ॥ ૧ ॥

મૂઢગલિઆઈણ, વિણાસસતાળભોગવિરહાઈ ।

રયદરિથગણ—સસ,—જ્જણાઽઽઈણા હોઈ ઉવઘાઓ ॥ ૨ ॥

પહિલેહિઉ પમજ્જણ,—મુવઘાઓ કહણુ તત્થ હોજ્જાઉ ? ।

અપ્પમજ્જિઉ ચ દોમા, વજ્જાઽઽદાગાઢવોસિરણે ॥ ૩ ॥

આયપરપરિચ્છાઓ, દુઢાવિ સત્થસ્સઽકોસલ નૂણ ।

સસજ્જણાઈદોસા, દેહેવ્વઽવિહીણ ણો હુતિ ॥ ૪ ॥

ભાષણ, ઉત્થાન (ઉઠના), શયન, પાર્શ્વપરિવર્તન (કરવટ બદલના)
ઔર મલ-મૂત્ર-પરિત્યાગ આદિ ક્રિયાઓં કોં ભી છોડના હોગા,
કયોં કિ તુમ્હારે દ્વારા કથિત દોષ इन ક્રિયાઓં મેં ભી આસકતા
હે તો ફિર બતાઓ કિ જીવિત હી કૈસે રહ સકોગે ? તુમ્હારે
કથનમેં જીવદયા કા સ્વરૂપ આકાશકુસુમ કે સમાન હો જાયગા,
યહ ભી સોચો । इसलिये ‘કિસીં ભી જીવકો કિસીં પ્રકારકા
કષ્ટ ન પહુંચને પાવે’ इसी हेतु मुनियोंको रजोहरण आदि उप-
करण धारण करना समयनिर्वाह के लिये अत्यन्त आवश्यक है !

પડશે કે તમેને અશન, પાન, ભ્રમણ, ભાષણ, ઉત્થાન (ઉઠવું), શયન, પાર્શ્વપરિવર્તન
(પડવું ફેરવવું) અને મલમૂત્ર પરિત્યાગ આદિ ક્રિયાઓને છોડી દેવી પડશે કારણ કે
તમારા તરફથી કથિત (કહેલ) દોષ એ સર્વ ક્રિયાઓમા પણ આવી શકે છે, તો પછી
કહેા કે જીવિતજ કઈ રીતે રહી શકશે ! તમારા કથનમા જીવદયાનું સ્વરૂપ આકાશ-
કુસુમ સમાન થઈ જશે આ માટે ‘કોઈપણ જીવને કોઈ પ્રકારનું કષ્ટ ન પહોંચે’ આ
હેતુથી મુનિયોને રજોહરણ આદિ ઉપકરણ ધારણ કરવું સયમનિર્વાહ અર્થે અત્યંત
આવશ્યક છે

अतएव, 'अखयाचारचरित्ता' आचारः=आधाकर्मादिदोषपरित्यागः, चारित्र=सामायिकादि, आचारश्च चारित्र चेत्याचारचारित्रे, अक्षते=अखण्डिते आचारचारित्रे येषां ते-अक्षताऽऽचारचारित्राः देशतः सर्वतथाऽविप्लुताऽऽचार-चारित्रा इत्यर्थः । सम्प्रत्युपसञ्जिहीर्षयाऽऽह- 'ते सव्वे' तान् सर्वान्=गच्छगताँ-स्तन्निर्गताँश्च जिनकल्पिकादीन् साधून् 'सिरसा' शिरसा=करशिरःसयोगेनेति भावः, अग्रे 'मत्थएण' (मस्तकेन) इत्यस्योपादानात्, 'मणसा' मनसा=हृदयेन, 'मत्थएण' मस्तकेन=शिरसा नतेनेति शेषः, अतएव 'सिरसा' 'मत्थ-एण' इत्यनयोः पर्यायत्वेऽपि न पौनरुक्त्यम्, यत्तु पौनरुक्त्यभयाद्बहुलिकाप्रवा-हेण वा 'मत्थएण वदामि' इति वाचा वदेदिति व्याख्यानं तदत्यन्ताऽसामञ्ज-स्यात्सूत्राक्षराभिप्रायापरिज्ञानाद्वा विद्वदश्रद्धेयमेवेति सहृदयाः प्रमाणम् । न च- 'सिरसा' इत्यनेन कायिकस्य 'मणसा' इत्यनेन मानसिकस्य च वन्दनस्योक्तौ वाचिकस्यापि तस्योपादानमावश्यकमेवेति युक्तमेवेति वाच्यम्, 'तान् सर्वान् शिरसा मनसा मस्तकेन वन्दे' इत्युक्तौ वाचिकवन्दनम्याऽर्थापत्तिलभ्यत्वात्, नहि वाक्प्रयोगं विनैवमुक्तिः 'समस्तीत्यास्ता तावत् । इत्थं सर्वसाधून्भिवन्त्य निखिल-लपाणिजातक्षमापणपूर्वकं मैत्रीमभिव्यनक्ति- 'सव्व०' इति 'सव्वजीवे' सर्वे च ते जीवाः सर्वजीवास्तान्=क्षुद्रक्षुद्रेतराखिलपाणिनः, 'खामेमि' क्षमयामि=सर्वेभ्यो जीवेभ्यः क्षमामभिकाङ्क्षामीत्यर्थः, 'सव्वे जीवा' सर्वे जीवाः 'मे' मम अज्ञानादिवशाज्जातमपराधमिति शेषः 'खमतु' क्षमेरन् । 'मे' मम, 'सव्वभूएसु' सर्वभूतेषु, 'मिच्ची' मैत्री=मित्रभावः अस्तीत्यध्याह्रियते, 'यत्र

इस प्रकार सन्त मुनिराजों को वन्दना करके समस्त जीवों की क्षमापनापूर्वक मित्रभावना प्रकट करते हैं— 'मै सब जीवों से अपने अपराध की क्षमा मागता हूँ और वे सभी मेरे अपराध की

मे प्रमाणे सन्त मुनिराजनेने वन्दना करीने समस्त जीवोनी क्षमापनापूर्वक मित्रभावना प्रकट करे छे 'हु सर्व' जीवो पासे भारा अपराधनी क्षमा मागु छु, अने

जाता दश । एव मुक्ति (निर्लोभता) पदेन (१०), आर्जवेन (१०), मार्दवेन (१०), लाघवेन (१०), सत्येन (१०), सयमेन (१०), तपसा (१०), त्यागेन (१०), ब्रह्मचर्येण च (१०); जाताः सर्वे श्रोत्रेन्द्रियपदेन शतमेकम् (१००) । एव चक्षुषा (१००), घ्राणेन (१००), रसनया (१००), स्पर्शेन च (१००), जाताः सर्वे आहारसंज्ञापदेन शतानि पञ्च (५००) । एव भयसंज्ञापदेन (५००), मैथुनसंज्ञापदेन (५००), परिग्रहसंज्ञापदेन च (५००) । जाताः सर्वे 'न करोति' पदेन सहस्रद्वयम् (२०००), ए 'न कारयति' पदेन (२०००), 'नानुजानाति' पदेन (२०००), जाताः सर्वे 'मनसा' पदेन षट् सहस्राणि (६०००) । एव वचसा (६०००), कार्येण च (६०००), जाताः सर्वेऽष्टादश सहस्राणि शीलाङ्गानि, तानि धरन्ते इत्यष्टादशशीलाङ्गसहस्रधारा इति । उक्तं च—

जोए^१ करणे सण्णा, इदिय भोम्माइ समणधम्मो य ।

अण्णोण्णेहिं अब्भत्था, अट्ठारह सीलसहस्साइ ॥ १ ॥

^३ छाया—योगाः ^३ करणानि ^४ सज्ञा ^५ इन्द्रियाणि ^{१०} भूम्यादयः ^{१०} श्रमणधर्माश्च ।

अन्योन्यैरभ्यस्ता अष्टादशशीलसहस्राणि ॥ १ ॥

अठारह हजार शीलाङ्गरथ ये हैं—१-पृथ्वीकाय आरम्भ, २-अपकाय आरम्भ, ३-तेजस्काय आरम्भ, ४-वायुकाय आरम्भ, ५-वनस्पतिकाय आरम्भ, ६-बेन्द्रिय आरम्भ, ७-तेन्द्रिय आरम्भ, ८-चतुरिन्द्रिय आरम्भ, ९-पंचेन्द्रिय आरम्भ, १०-अजीव आरम्भ, ये १० भेद क्षान्ति के हुए, इसी प्रकार मुक्ति के (१०), आर्जव के (१०), मार्दव के (१०), लाघव के (१०), सत्य के (१०), सयम के (१०), तप के (१०), त्याग के (१०), ब्रह्मचर्य के (१०), ये सब श्रोत्रेन्द्रिय के १०० भेद हुए, इसी प्रकार चक्षुरिन्द्रिय के १००, घ्राणेन्द्रिय के १००, रसेन्द्रिय के १००, स्पर्शेन्द्रिय के १००, ये सब आहार सज्ञा के ५०० भेद हुए, इसी प्रकार भयसज्ञा के ५००, मैथुनसज्ञा के ५००, और परिग्रहसज्ञा के ५०० हुए, इस प्रकार सब २००० भेद हुए, इन्हें न करने, न कराने और न अनुमोदन करने के द्वारा तिगुना करने पर ६००० भेद हुए, इन्हें फिर मन, वचन, काया से तिगुना करने पर १८००० होते हैं ।

अतएव, 'अखयाचारचरित्ता' आचारः=आधाकर्मादिदोषपरित्यागः, चारित्र=सामायिकादि, आचारश्च चारित्र चेत्याचारचारित्रे, अक्षते=अखण्डिते आचारचारित्रे येषां ते-अक्षताऽऽचारचारित्राः देशतः सर्वतश्चाऽविप्लुताऽऽचार-चारित्रा इत्यर्थः । सम्प्रत्युपसञ्जिहीर्षयाऽऽह- 'ते सव्वे' तान् सर्वान्=गच्छगताँ-स्तन्निर्गताँश्च जिनकल्पिकादीन् साधून् 'सिरसा' शिरसा=करशिरःसयोगेनेति भावः, अग्रे 'मत्थएण' (मस्तकेन) इत्यस्योपादानात्, 'मणसा' मनसा=हृदयेन, 'मत्थएण' मस्तकेन=शिरसा नतेनेति शेषः, अतएव 'सिरसा' 'मत्थ-एण' इत्यनयोः पर्यायत्वेऽपि न पौनरुक्त्यम्, यत्तु पौनरुक्त्यभयाद्बहुलिकाप्रवा-हेण वा 'मत्थएण वदामि' इति वाचा वदेदिति व्याख्यानं तदत्यन्ताऽसामञ्ज-स्यात्सूत्राक्षराभिप्रायापरिज्ञानाद्वा विद्वदश्रद्धेयमेवेति सहृदयाः प्रमाणम् । न च- 'सिरसा' इत्यनेन कायिकस्य 'मणसा' इत्यनेन मानसिकस्य च वन्दनस्योक्तौ वाचिकस्यापि तस्योपादानमावश्यकमेवेति युक्तमेवेति वाच्यम्, 'तान् सर्वान् शिरसा मनसा मस्तकेन वन्दे' इत्युक्तौ वाचिकवन्दनस्याऽर्थापत्तिलभ्यत्वात्, नहि वाक्प्रयोगं विनैवमुक्तिः 'समस्तीत्यास्ता तावत् । इत्थं सर्वसाधून्भिवन्द्य निखिल-लपाणिजातक्षमापणपूर्वकं मैत्रीमभिव्यनक्ति- 'सव्वं' इति 'सव्वजीवे' सर्वे च ते जीवाः सर्वजीवास्तान्=क्षुद्रक्षुद्रेतराखिलपाणिनः, 'खामेमि' क्षमयामि=सर्वेभ्यो जीवेभ्यः क्षमामभिवाङ्क्षामीत्यर्थः, 'सव्वे जीवा' सर्वे जीवाः 'मे' मम अज्ञानादिवशाज्जातमपराधमिति शेषः 'खमतु' क्षमेरन् । 'मे' मम, 'सव्वभूएसु' सर्वभूतेषु, 'मिच्ची' मैत्री=मित्रभावः अस्तीत्यध्याह्रियते, 'यत्र

इस प्रकार सन्त मुनिराजों को वन्दना करके समस्त जीवों की क्षमापनापूर्वक मित्रभावना प्रकट करते हैं— 'मैं सब जीवों से अपने अपराध की क्षमा मागता हूँ और वे सभी मेरे अपराध की

औ प्रमाणे सन्त मुनिराजोंने वन्दना करीने समस्त जीवों की क्षमापनापूर्वक मित्रभावना प्रकट करे छे 'हु सर्व जीवो पासे मारा अपराधनी क्षमा मागु छु, अने

जाता दश । एव मुक्ति (निर्लोभता) पदेन (१०), आर्जवेन (१०), मार्दवेन (१०), लाघवेन (१०), सत्येन (१०), सयमेन (१०), तपसा (१०), त्यागेन (१०), ब्रह्मचर्येण च (१०); जाताः सर्वे श्रोत्रेन्द्रियपदेन शतमेकम् (१००) । एव चक्षुषा (१००), घ्राणेन (१००), रसनया (१००), स्पर्शेन च (१००), जाताः सर्वे आहारसंज्ञापदेन शतानि पञ्च (५००) । एव भयसंज्ञापदेन (५००), मैथुनसंज्ञापदेन (५००), परिग्रहसंज्ञापदेन च (५००) । जाताः सर्वे 'न करोति' पदेन सहस्रद्वयम् (२०००), ए 'न कारयति' पदेन (२०००), 'नानुजानाति' पदेन (२०००), जाताः सर्वे 'मनसा' पदेन षट् सहस्राणि (६०००) । एव वचसा (६०००), कायेन च (६०००), जाताः सर्वेऽष्टादश सहस्राणि शीलाङ्गानि, तानि धरन्ते इत्यष्टादशशीलाङ्गसहस्रधारा इति । उक्तं च—

जोए^१ करणे सण्णा, इदिय भोम्माइ समणधम्मो य ।

अण्णोण्णेहिं अब्भत्था, अट्ठारह सीलसहस्साइ ॥ १ ॥

^३ छाया—योगाः ^३ करणानि ^४ सज्ञा ^५ इन्द्रियाणि ^{१०} भूम्यादयः ^{१०} श्रमणधर्माश्च ।

अन्योन्यैरभ्यस्ता अष्टादशशीलसहस्राणि ॥ १ ॥

अठारह हजार शीलाङ्गरथ ये हैं—१-पृथ्वीकाय आरम्भ, २-अप्काय आरम्भ, ३-तेजस्काय आरम्भ, ४-वायुकाय आरम्भ, ५-वनस्पतिकाय आरम्भ, ६-वेन्द्रिय आरम्भ, ७-तेन्द्रिय आरम्भ, ८-चतुरिन्द्रिय आरम्भ, ९-पचेन्द्रिय आरम्भ, १०-अजीव आरम्भ, ये १० भेद क्षान्ति के हुए, इसी प्रकार मुक्ति के (१०), आर्जव के (१०), मार्दव के (१०), लाघव के (१०), सत्य के (१०), सयम के (१०), तप के (१०), त्याग के (१०), ब्रह्मचर्य के (१०), ये सब श्रोत्रेन्द्रिय के १०० भेद हुए, इसी प्रकार चक्षुरिन्द्रिय के १००, घ्राणेन्द्रिय के १००, रसेन्द्रिय के १००, स्पर्शेन्द्रिय के १००, ये सब आहार सज्ञा के ५०० भेद हुए, इसी प्रकार भयसज्ञा के ५००, मैथुनसज्ञा के ५००, और परिग्रहसज्ञा के ५०० हुए, इस प्रकार सब २००० भेद हुए, इन्हें न करने, न कराने और न अनुमोदन करने के द्वारा तिगुना करने पर ६००० भेद हुए, इन्हें फिर मन, वचन, काया से तिगुना करने पर १८००० होते हैं ।

चतुर्विंशतिसख्यकान् 'जिणे' जिनेष्वन् रागद्वेषादिकर्मशत्रुजेतृन् 'वन्दे' वन्दे= स्तौम्यभिवादये च । चतुर्विंशतिजिनवन्दनयाऽ ययनसमापनमङ्गलार्थम् ॥ सू० २२ ॥

इति श्रीविश्वविख्यात-जगद्वल्लभ-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषाकलितललित-
कलापाऽऽलापक-प्रविशुद्धगन्धपत्रनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-श्रीशाहू-
उन्नपतिकोल्हापुरराजप्रदत्त 'जैनशास्त्राचार्य'-पदभूषित-कोल्हापुर-
राजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-
घासीलाल-व्रतिविरचिताया श्रीश्रमणसूत्रस्य मुनि-
तोषण्याख्याया व्याख्याया चतुर्थे
प्रतिक्रमणाख्यमध्ययन समाप्तम् ॥ ५ ॥

इत्यादि रूप) करके तीन करण और तीन योग से निर्मल बना हुआ मैं चौबीसों जिनेश्वरों को नमस्कार करता हूँ ॥ ॥ सू० २२ ॥

॥ इति चतुर्थ अध्ययन सम्पूर्ण ॥

અને ત્રણ યોગથી નિર્મલ બનેલો હું ચોવીસ જિનેશ્વરોને નમસ્કાર કરું છું (સૂ. ૨૨)

इति चोथु अध्ययन स पूर्ण



काचन क्रिया नास्ति तत्रास्तिर्भवन्तीपरः' प्रयोक्तव्य'—इति वैयाकरणसिद्धान्तात् । 'केणवि' केनापि सह, सहार्थे तृतीया, ननु सहशब्दस्य तदर्थकशब्दान्तरस्य वा प्रयोगाभावेन कथं सहार्थे तृतीयेति चेन्मैत्रम्, 'पृथग्विनानानामिस्तृतीयाऽन्यतरस्या'—मित्यादाविव 'सहेनाऽप्रधाने' इतिन्यासेनैव योगार्थलाभे सिद्धे 'सहयुक्तेऽप्रधाने' इत्यत्र युक्तग्रहण 'सहशब्दाभावेऽपि तदर्थमात्रसत्त्वेऽपि तृतीये'—ति बोधनार्थम्, अत एव 'वृद्धो यूने'—त्यादयो निर्देशा अपि सगच्छन्ते, एतेन 'वीरो २युभ्यति कर्मभिः' इत्यादिषु तृतीया कथमिति प्रत्युक्तमित्यलमिहातिप्रसङ्गेन, 'मज्झ' मम, 'वेर' वैर=विरोधः, 'न' नहि अस्तीतीहापि पूर्ववदध्याहृत ज्ञेयम् । उक्तः क्षमापणापूर्वको मैत्रीभावः, सम्प्रति मङ्गलमयमुपसंहारमाह—'एवमह' एवम्=उक्तैः प्रकारैः अहमित्यात्मनिर्देशे, 'सम्म' सम्यक्=यथावत् सम्यगित्यस्य सर्वैः क्तान्तैः सह सम्बन्धः, 'आलोइय' आलोच्य=आलोचनाविषयीकृत्य, 'निंदिय' निन्दित्वा=स्वसाक्षिक सम्यग्निन्द्य, 'गरहिय' गर्हित्वा=गुरुसाक्षिक सम्यग्विनिन्द्य, 'दुगुछिय' जुगुप्सित्वा='धिङ्मा पापकर मूढधिय' मित्यादिभर्त्सनापूर्वक निन्दित्वा, 'तिविहेण' त्रयो विधाः=प्रकारा यस्य स त्रिविधस्तेन=त्रिप्रकारेण वाङ्-मन-काय-लक्षणेन कृत-कारिता-ऽनुमोदित-लक्षणेन चेत्यर्थः । 'पडिक्कतो' प्रतिक्रान्तः=क्षालिताखिलातिचारमलतया परमशुचित्वमाप्तः, 'चउव्वीस' चतुर्विंशतिम्=

क्षमा करे, कथो कि सब जीवों के साथ मेरा मित्रभाव है, किसी के भी साथ वैरभाव नहीं है । इस तरह विधिपूर्वक आलोचना, निन्दा, गर्हा और जुगुप्सा (पापकारी मुझ मूढात्मा को धिक्कार है

ते सर्व जीवों मेरा अपराधनी क्षमा करे, कारण के सर्व जीवों साथ मेरे मित्रभाव छे, कोधनी साथ मेरे वैरभाव नहीं छे प्रभावे विधिपूर्वक आलोचना, निन्दा, गर्हा अने जुगुप्सा (पापकारी मेरा मूढात्माने धिक्कार छे इत्यादि ३५) करीने त्रय करण

२-भवन्तीपरः=लट्परः भवन्तीति लट् सज्ञा पूर्वाचार्याणाम् ।

३-युध धातोरात्मनेपदित्वाद्युभ्यतीति युधमिच्छतीति क्यजिति सिद्धातकीमुदी ।

चतुर्विंशतिसख्यकान् 'जिणे' जिनान् रागद्वेषादिकर्मशत्रुजेतृन् 'वन्दे' वन्दे=स्तौम्यभिवादये च । चतुर्विंशतिजिनवन्दनयाऽययनसमापनमङ्गलार्थम् ॥ सू० २२ ॥

इति श्रीविश्वविख्यात-जगद्वल्लभ-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषाकलितललित-
कलापाऽऽलापक-प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-श्रीशाहू-
उत्तपतिकोल्हापुरराजप्रदत्त 'जैनशास्त्राचार्य'-पदभूषित-कोल्हापुर-
राजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-
घासीलाल-व्रतिविरचिताया श्रीश्रमणसूत्रस्य मुनि-
तोषण्याख्याया व्याख्याया चतुर्थे
प्रतिक्रमणाख्यमध्ययन समाप्तम् ॥ ५ ॥

इत्यादि रूप) करके तीन करण और तीन योग से निर्मल बना हुआ मैं चौबीसों जिनेश्वरों को नमस्कार करता हूँ ॥ ॥ सू० २२ ॥

॥ इति चतुर्थ अध्ययन सम्पूर्ण ॥

અને ત્રણ યોગથી નિર્મલ બનેલો હું ચોવીસ જિનેશ્વરોને નમસ્કાર કરું છું (સૂ. ૨૨)

ઇતિ ચોથું અધ્યયન સંપૂર્ણ



કાચન ક્રિયા નાસ્તિ તત્રાસ્તિર્ભવન્તીપરઃ^૧ પ્રયોક્તવ્ય'—ઇતિ વૈયાકરણસિદ્ધાન્તાત્ । 'કેણચિ' કેનાપિ સહ, સહાર્થે તૃતીયા, નન્તુ સહશબ્દસ્ય તદર્થકશબ્દાન્તરસ્ય વા પ્રયોગાભાવેન કથ સહાર્થે તૃતીયેતિ चेन्मैवम् , 'पृथग्विनानानामिस्तृतीयाऽन्यतरस्या'—मित्यादाविव 'सहेनाऽप्रधाने' इतिन्यासेनैव योगार्थलाभे सिद्धे 'सहयुक्तेऽप्रधाने' इत्यत्र युक्तग्रहण 'सहशब्दाभावेऽपि तदर्थमात्रसत्त्वेऽपि तृतीये'—ति बोधनार्थम्, अत एव 'वृद्धो यूने'—त्यादयो निर्देशा अपि सगच्छन्ते, एतेन 'वीरो रघुभ्यति कर्मभिः' इत्यादिषु तृतीया कथमिति प्रत्युक्तमित्यलमिहातिप्रसङ्गेन, 'मज्झ' मम, 'वेर' वैर=विरोधः, 'न' नहि अस्तीतीहापि पूर्ववदध्याहत ज्ञेयम् । उक्तः क्षमापणापूर्वको मैत्रीभावः, सम्प्रति मङ्गलमयमुपसहारमाह—'एवमह' एवम्=उच्चैः प्रकारैः अहमित्यात्मनिर्देशे, 'सम्म' सम्यक्=यथावत् सम्यगित्यस्य सर्वैः क्तान्तैः सह सम्बन्धः, 'आलोइय' आलोच्य=आलोचनाविषयीकृत्य, 'निंदिय' निन्दित्वा=स्वसाक्षिक सम्यग्ग्विनिन्द्य, 'गरहिय' गर्हित्वा=गुरुसाक्षिक सम्यग्विनिन्द्य, 'हुगुछिय' जुगुप्सित्वा='धिङ्मा पापकर मूढधिय' मित्यादिभर्त्सनापूर्वक निन्दित्वा, 'तिविहेण' त्रयो विधाः=प्रकारा यस्य स त्रिविधस्तेन=त्रिप्रकारेण वाङ्-मनः-काय-लक्षणेन कृत-कारिता-ऽनुमोदित-लक्षणेन चेत्यथः । 'पडिक्कतो' प्रतिक्रान्तः=क्षालिताखिलातिचारमलतया परमशुचित्वमाप्त, 'चउव्वीस' चतुर्विंशतिम्=

ક્ષમા કરે, કયોં કિ સચ જીવોં કે સાથ મેરા મિત્રભાવ હૈ, કિસી કે ભી સાથ વૈરભાવ નહીં હૈ । હસ તરહ વિધિપૂર્વક આલોચના, નિન્દા, ગર્હાં ઓર જુગુપ્સા (પાપકારી મુદ્ધ મૂઢાત્મા કો ધિક્કાર હૈ

તે સર્વ જીવોં મારા અપરાધની ક્ષમા કરે, કારણ કે સર્વ જીવોં સાથે મારે મિત્રભાવ છે, કોઈની સાથે મારે વૈરભાવ નથી એ પ્રમાણે વિધિપૂર્વક આલોચના, નિન્દા, ગર્હાં અને જુગુપ્સા (પાપકારી મારા મૂઢાત્માને ધિક્કાર છે ઇત્યાદિ રૂપ) કરીને ત્રણ કરણ

૨-ભવન્તીપરઃ=લટ્પરઃ ભવન્તીતિ લટ્ સજ્ઞા પૂર્વાચાર્યાણામ્ ।

૩-યુધ ધાતોરાત્મનેપદિત્વાયુધ્યતીતિ યુધમિન્ઙતીતિ કયજિતિ સિદ્ધાન્તમૌમુદી ।

સિંહાસન, અશોકવૃક્ષ, કુસુમવૃષ્ટિ, દેવદુન્દુભિ, ક્ષત્ર ધરાવે, ચંચર વિજાવે, પુરુષાકાર પરાક્રમ કે ધરણહાર, અઢાઈ દ્વીપ પન્દ્રહક્ષેત્ર મે વિચરે, જઘન્ય દો ક્રોડ કેવલી ઔર ઉત્કૃષ્ટ નવ ક્રોડ કેવલી કેવલજ્ઞાન કેવલદર્શન કે ધરણહાર સર્વ દ્રવ્ય ક્ષેત્ર કાલ ભાવ કે જ્ઞાનનહાર ।

એસે શ્રી અરિહન્ત ભગવન્ત દીનદયાલ મહારાજ આપકી (દિવસ સમ્બન્ધી) અવિનય આશાતના કી હો તો ચારમ્ચાર હે અરિહન્ત ભગવન્ ! મેરા અપરાધ ક્ષમા કરિયે । હાથ જોડ, માન મોડ, શીસ નમાકર ૧૦૦૮ વાર નમસ્કાર કરતા હૂં ।

તિસ્તુત્તો આયાહિણં પયાહિણ (કરેમિ) વન્દામિ નમસામિ સકારેમિ સમ્માણેમિ કલ્હાણ મગલ દેવય ચેડય પજ્જુવાસામિ મત્થણ્ણ વદામિ ।

આપ માગલિક હો, ઉત્તમ હો, હે સ્વામી ! હે નાથ ! આપકા હસ ભવ, પર ભવ, ભવ ભવ મેં સદા કાલ શરણ હો ।

ઋષભાનન સ્વામી (૮) શ્રી અનતવીર્ય સ્વામી, (૯) શ્રી સુરપ્રભ સ્વામી, (૧૦) શ્રી વિશાલપ્રભ સ્વામી, (૧૧) શ્રી વજ્રધર સ્વામી, (૧૨) શ્રી ચદ્રાનન સ્વામી, (૧૩) શ્રી ચદ્રબાહુ સ્વામી, (૧૪) શ્રી ભુજગદેવ સ્વામી (૧૫) શ્રી ઇશ્વર સ્વામી, (૧૬) શ્રી નેમપ્રભ સ્વામી, (૧૭) શ્રી વીરસેન સ્વામી, (૧૮) શ્રી મહાભદ્ર સ્વામી, (૧૯) શ્રી દેવરાજ સ્વામી (૨૦) શ્રી અન્જિતસેન સ્વામી

તે જઘન્ય તીર્થ કર ૨૦ અને ઉત્કૃષ્ટ હોય તો ૧૬૦ અગર ૧૭૦ તેમને મારી તમારી સમય સમયની વદના હોજી ।

તે સ્વામીનાથ કેવા છે ! માગ તમારા મન મનની વાત જાણી દેખી રહ્યા છે, ઘટધટની વાત જાણી દેખી રહ્યા છે, સમય સમયની વાત જાણી દેખી રહ્યા છે, ચોદ રાજીનોડ અજલીજલ પ્રમાણે જાણી દેખી રહ્યા છે તે સ્વામીને અનત જ્ઞાન છે, અનત દર્શન છે, અનત ચારિત્ર છે, અનત તપ છે, અનત વૈર્ય છે, અને અનત વીર્ય છે, એ વટ (છ) ગુણે કરી સહિત છે ચોત્રીશ અતિશયે કરી જિરાજમાન છે, પાત્રીગ પ્રકારની અત્ય વચન વાણીના ગુણો કરી સહિત છે એક હજારને અષ્ટ ઉત્તમ લક્ષણે કરી સહિત છે, અઢાર દોષ રહિત છે, બાર ગુણે કરી સહિત છે, ચાર કર્મ ધનધાતિ

। अथ पञ्चममध्ययनम् ।

अथ 'इच्छामि खमासमणो' इति पट्टिका द्विः पठित्वा परमेष्ठिना भाव-
वन्दना विधातव्या, तदनु 'अनन्त चउवीसी जिन नमो' इत्यादि पठेत् । ततश्च

॥ अथ पञ्चम अध्ययन ॥

‘નમો ચઉવીસ૦’ કી પટ્ટી (પાટી) પૂરી હોને કે બાદ ‘ઇચ્છામિ
ખમાસમણો’ કી પટ્ટી દો વાર ઘોલકર પચપરમેષ્ઠી કી ભાવવન્દના
કરની ચાહિયે ।

પાચ પદોં કી વદના ।

ટિ० ૧—પહિલે પદ શ્રી અરિહન્તજી જઘન્ય ઘીસ તીર્થકરજી
ઉત્કૃષ્ટ એક સૌ સાઠ તથા એક સૌ સિત્તર દેવાધિદેવજી ઉન મેં
ઘર્તમાન કાલ મેં ઘીસ વિહરમાનજી મહાવિદેહક્ષેત્ર મેં વિચરતે હેં એક
હજાર આઠ લક્ષણ કે ધારણહાર, ચૌતીસ અતિશય, પૈતીસ વાળી
કરકે વિરાજમાન, ચૌસઠ હન્દ્રોં કે વન્દનીય, અંઠારહ દોષ રહિત,
ધારહ ગુણ સહિત અનન્ત-જ્ઞાન, અનન્ત-દર્શન, અનન્ત-ચારિત્ર,
અનન્ત-બલવીર્ય, અનન્તસુખ, દિવ્યધ્વનિ, મામણ્ડલ, સ્ફટિક-

अथ पञ्चममध्ययन

“નમો ચઉવીસાણ”ની પાટી પૂરી થયા પછી “ઇચ્છામિ ખામાસમણો”
ની પાટી બે વાર ઘોલીને પચ પરમેષ્ઠીની ભાવવદના કરવી જોઇએ ।

પહેલા ખામણા-શ્રી અરિહત દેવને

(બન્ને હાથણ નીચા ઢાળી ખામણા ઘોલવા)

પહેલા ખામણા શ્રી પચ મહાવિદેહ ક્ષેત્રને વિષે જયવતા તીર્થ કર દેવ બિરાજે
છે, તેમને કર છુ તે સ્વામીના ગુણગ્રામ કરતા જઘન્ય રસ ઉપજે તેા કર્મની કોડી
ખયે અને ઉત્કૃષ્ટો રસ ઉપજે તેા આ જીવ તીર્થકર નામ ગોત્ર ઉપાજે હાલ
બિરાજતા વીથ તીર્થકરોના નામ —

(૧) શ્રી સીમધર સ્વામી, (૨) શ્રી જુગધર સ્વામી, (૩) શ્રી બાહુ સ્વામી, (૪)
શ્રી સુબાહુ સ્વામી (૫) શ્રી સુન્દત સ્વામી, (૬) શ્રી સ્વયમ્ભ સ્વામી, (૭) શ્રી

સિંહાસન, અશોકવૃક્ષ, કુસુમવૃષ્ટિ, દેવદુન્દુભિ, ક્ષત્ર ધરાવે, ચંચર વિજાવે, પુરુષાકાર પરાક્રમ કે ધરણહાર, અઢાઈ ઢીપ પન્દ્રહક્ષેત્ર મે વિચરે, જઘન્ય દો ક્રોડ કેવલી ઓર ઉત્કૃષ્ટ નવ ક્રોડ કેવલી કેવલજ્ઞાન કેવલદર્શન કે ધરણહાર સર્વ દ્રવ્ય ક્ષેત્ર કાલ ભાવ કે જાનનહાર ।

એસે શ્રી અરિહન્ત ભગવન્ત દીનદયાલ મહારાજ આપકી (દિવસ સમ્બન્ધી) અવિનય આશાતના કી હો તો વારમ્બાર હે અરિહન્ત ભગવન્ ! મેરા અપરાધ ક્ષમા કરિયે । હાથ જોડ, માન મોડ, શીસ નમાકર ૧૦૦૮ વાર નમસ્કાર કરતા હૈ ।

તિવ્રલુત્તો આયાહિણ પયાહિણ (કરેમિ) વન્દામિ નમસામિ સકારેમિ સમ્માણેમિ કલ્હાણ મગલ દેવય ચેડુય પજ્જુવાસામિ મત્થણ વદામિ ।

આપ માગલિક હો, ઉત્તમ હો, હે સ્વામી ! હે નાથ ! આપકા હસ ભવ, પર ભવ, ભવ ભવ મેં સદા કાલ શરણ હો ।

ઋષભાનન સ્વામી (૮) શ્રી અનતવીર્ય સ્વામી, (૯) શ્રી સુરપ્રભ સ્વામી, (૧૦) શ્રી વિશાલપ્રભ સ્વામી, (૧૧) શ્રી વજ્રધર સ્વામી, (૧૨) શ્રી ચદ્રાનન સ્વામી, (૧૩) શ્રી ચદ્રબાહુ સ્વામી, (૧૪) શ્રી ભુજગદેવ સ્વામી (૧૫) શ્રી ઇશ્વર સ્વામી, (૧૬) શ્રી નેમપ્રભ સ્વામી, (૧૭) શ્રી વીરસેન સ્વામી, (૧૮) શ્રી મહાભદ્ર સ્વામી, (૧૯) શ્રી દેવરાજ સ્વામી (૨૦) શ્રી અનિતસેન સ્વામી

તે જવન્ય તીર્થ કર ૨૦ અને ઉત્કૃષ્ટ હોય તો ૧૬૦ અગર ૧૭૦ તેમને મારી તમારી સમય સમયની વદના હોજો ।

તે સ્વામીનાથ કેવા છે । માગ તમારા મન મનની વાત જાણી દેખી રહ્યા છે, ઘટધટની વાત જાણી દેખી રહ્યા છે, સમય સમયની વાત જાણી દેખી રહ્યા છે, ચોદ રાજુનોક અજલીજલ પ્રમાણે જાણી દેખી રહ્યા છે તે સ્વામીને અનત જ્ઞાન છે, અનત દર્શન છે, અનત ચારિત્ર છે, અનત તપ છે, અનત વૈર્ય છે, અને અનત વીર્ય છે, એ પટ (છ) ગુણે કરી સહિત છે ચોત્રીશ અતિશયે કરી ગિરાજમાન છે, પાત્રીગ પ્રકારની મત્ય વચન વાણીના ગુણે કરી સહિત છે એક હજારને અષ્ટ ઉત્તમ લક્ષણે કરી સહિત છે, અઢાર દોષ રહિત છે, જાર ગુણે કરી સહિત છે, ચાર કર્મ ધનધાતિ

। અથ પञ્ચમમધ્યયનમ્ ।

અથ 'ઈચ્છામિ સ્વમાસમણો' ઇતિ પટ્ટિકા દ્વિઃ પઠિત્વા પરમેષ્ઠિના ભાવ વન્દના વિધાતવ્યા, તદનુ 'અનન્ત ચત્વીસી જિન નમો' ઇત્યાદિ પઠેત્ । તતશ્ચ

॥ અથ પञ્ચમ અધ્યયન ॥

'નમો ચત્વીસ૦' કી પટ્ટી (પાટી) પૂરી હોને કે બાદ 'ઈચ્છામિ સ્વમાસમણો' કી પટ્ટી દો વાર બોલકર પચપરમેષ્ઠી કી ભાવવન્દના કરની ચાહિયે ।

પાચ પદોં કી વદના ।

ટિ૦ ૧- પહિલે પદ શ્રી અરિહન્તજી જઘન્ય વીસ તીર્થકરજી ઉત્કૃષ્ટ એક સૌ સાઠ તથા એક સૌ સિત્તર દેવાધિદેવજી ઉન મેં વર્તમાન કાલ મેં વીસ વિહરમાનજી મહાવિદેહક્ષેત્ર મેં વિચરતે હેં એક હજાર આઠ લક્ષણ કે ધારણહાર, ચૌતીસ અતિશય, પૈતીસ વાળી કરકે વિરાજમાન, ચૌસઠ હન્દ્રોં કે વન્દનીય, અઠારહ દોષ રહિત, ધારહ ગુણ સહિત અનન્ત-જ્ઞાન, અનન્ત-દર્શન, અનન્ત-ચારિત્ર, અનન્ત-બલવીર્ય, અનન્તસુખ, દિવ્યધ્વનિ, ભામળડલ, સ્ફટિક-

અથ પચમઅધ્યયન

“નમો ચત્વીસાણ”ની પાટી પૂરી થયા પછી “ઈચ્છામિ સ્વમાસમણો” ની પાટી બે વાર બોલીને પચ પરમેષ્ઠીની ભાવવદના કરવી જોઈએ ।

પહેલા ખામણા-શ્રી અરિહંત દેવને

(બન્ને ઢીચણ નીચા ઢાળી ખામણા બોલવા)

પહેલા ખામણા શ્રી પચ મહાવિદેહ ક્ષેત્રને વિષે જયવતા તીર્થ કર દેવ બિરાજે છે, તેમને કર છુ તે સ્વામીના ગુણગ્રામ કરતા જઘન્ય રસ ઉપજે તેા કર્મની કોડી ખર્ચે અને ઉત્કૃષ્ટો રસ ઉપજે તેા આ જીવ તીર્થ કર નામ ગોત્ર ઉપાજે હાલ બિરાજતા વીથ તીર્થ કરોના નામ —

(૧) શ્રી સીમધર સ્વામી, (૨) શ્રી જુગધર સ્વામી, (૩) શ્રી બાહુ સ્વામી, (૪) શ્રી સુબાહુ સ્વામી (૫) શ્રી સુબત સ્વામી, (૬) શ્રી સ્વયંભુ સ્વામી, (૭) શ્રી

(૧૨) અન્યલિંગસિદ્ધા (૧૩) ગૃહસ્થલિંગસિદ્ધા (૧૪) એકસિદ્ધા (૧૫) અનેકસિદ્ધા, જહા જન્મ નહીં, જરા નહી, મરણ નહીં, ભય નહીં, રોગ નહીં, શોક નહીં, દુઃખ નહીં, દારિદ્ર્ય નહીં, કર્મ નહી, કાયા નહીં, મોહ નહીં, માયા નહી, ચાકર નહી, ઠાકર નહી, ભૂલ નહીં, તૃષ્ણા નહીં, જોત મેં જોત વિરાજમાન, સકલ કાર્ય સિદ્ધ કરકે ચવદે પ્રકારે પન્દર ભેદે અનન્ત સિદ્ધ ભગવન્ત હુણ. અનન્તસુખોં મેં તલ્લીન, અનન્તજ્ઞાન, અનન્તદર્શન, નિરાવાધ, ક્ષાયિક સમક્તિ, અટલ અવગાહના, અમૃતી, અગુરુલઘુ, અનન્તવીર્ય, યહ આઠ ગુણ કરકે સહિત હે ।

એસે શ્રી સિદ્ધ ભગવન્તજી મહારાજ આપકી અવિનય-આશાતના કી હો તો વારમ્વાર હે સિદ્ધ ભગવન્ ! મેરા અપરાધ ક્ષમા કરિયે, હાથ જોડ, માન મોડ, શીસ નમાકર તિલ્લુત્તા કે પાઠ સે ૧૦૦૮ વાર નમસ્કાર કરતા હૂં ।

(૭) શ્રી સુપાર્શ્વનાથ સ્વામી, (૮) શ્રી ચદ્રપ્રભ સ્વામી, (૯) શ્રી સુવિધિનાથ સ્વામી, (૧૦) શ્રી શીતલનાથ સ્વામી, (૧૧) શ્રી શ્રેયાસનાથ સ્વામી, (૧૨) શ્રી વાસુપૂજ્ય સ્વામી, (૧૩) શ્રી વિમળનાથ સ્વામી, (૧૪) શ્રી અનંતનાથ સ્વામી, (૧૫) શ્રી ધર્મનાથ સ્વામી, (૧૬) શ્રી શાંતિનાથ સ્વામી, (૧૭) શ્રી કુશુનાથ સ્વામી, (૧૮) શ્રી અરનાથ સ્વામી, (૧૯) શ્રી મલ્લિનાથ સ્વામી, (૨૦) શ્રી મુનિસુવ્રત સ્વામી, (૨૧) શ્રી નગિનાથ સ્વામી, (૨૨) શ્રી નેમીનાથ સ્વામી, (૨૩) શ્રી પાર્શ્વનાથ સ્વામી, (૨૪) શ્રી (વીર વર્ધમાન) મહાવીર સ્વામી

આ એક ચોવીસી અનંત ચોવીશી પદર લેહે મીઝી યુઝી, આઠ કર્મક્ષય કરી મોક્ષ પધાર્યા, તેમને મારી તમારી સમય સમયની વદના હોજો ! આઠ કર્મના નામ-જ્ઞાના-વરણીય, દર્શનાવરણીય, વેદનીય, મોહનીય, આયુષ્ય, નામ, ગોત્ર અને અતરાય, એ આઠે કર્મક્ષય કરી મુક્તિ શિલાએ પહોંચ્યા છે, તે મુક્તિશિલા કયા છે ।

સમપૃથ્વીથી ૭૬૦ જોજન ઉચપણે તારા મહાળ આવે ત્યાથી દશ જોજન ઉચે સૂર્યનું વિમાન છે, ત્યાથી ૮૦ જોજન ઉચપણે ચદ્રમાનું વિમાન છે, ત્યાથી ચાર જોજન ઉચપણે નક્ષત્રના વિમાન છે, ત્યાથી ચાર જોજન ઉચપણે યુધનો તારો છે, ત્યાથી ત્રણ જોજન ઉચપણે શુકનો તારો છે, ત્યાથી ત્રણ જોજન ઉચપણે બૃહસ્પતિનો

દૂજે પદ શ્રી સિદ્ધ ભગવાન મહારાજ પન્દ્રહ મેદે અનન્ત સિદ્ધ હૈં । આઠ કર્મ સ્વપાપ કે મોક્ષ પહુંચે હૈં । (૧) તીર્થસિદ્ધા (૨) અતીર્થસિદ્ધા, (૩) તીર્થકરસિદ્ધા, (૪) અતીર્થકરસિદ્ધા (૫) સ્વય ઘુદ્ધસિદ્ધા (૬) પ્રત્યેઋત્વ સિદ્ધા (વુદ્ધયોધિતસિદ્ધા), (૮) સ્ત્રીલિંગસિદ્ધા, (૯) પુરુષલિંગસિદ્ધા, (૧૦) નપુસકલિંગસિદ્ધા, (૧૧) સ્વલિંગસિદ્ધા,

ક્ષય કર્યા છે બાકીના ચાર કર્મ પાતળા પડ્યા છે મુક્તિ જવાના કામી થકા વીચરે છે, ભવ્ય જીવના સદેહ ભાગે છે સનેગી, સશરીરી, કેવળજ્ઞાની, યથાખ્યાત ચારિત્રના ધરણુહાર છે, ક્ષાયિક સમક્રિત, શુકલલેશ્યા, શુભધ્યાન, શુભજોગ સહિત છે, ૬૪ ઇન્દ્રોના પૂજનીક, વદનિક અર્થનિક છે પડિત વીર્થ આદિ અનંત ગુણે કરી સહિત છે

ધન્ય તે ગ્રામ, નગર, રાજધાની, પુર, પાટણ જ્યા જ્યા પ્રભુ દેશના દેતા થકા વિચરતા હશે ત્યા ત્યા રાઈસર, તલવર, માડબી, ઠેકાડબી, શેઠ, સેનાપતિ, ગાથાપતિ આદિ, સ્વામીની દેશના સાભળી કર્ણ પવિત્ર કરતા હશે, સ્વામીના દર્શન દેદાર કરી નેત્ર પવિત્ર કરતા હશે, અશનાદિક ચૌદ પ્રકારનું દાન દઈ કર પવિત્ર કરતા હશે, ચરણે મસ્તક નમાવી કાયા પવિત્ર કરતા હશે ત્રત પચ્ચખ્યાણ આદરી આત્માને નિર્મળ કરતા હશે અને પ્રશ્ન પૂછી મનના સદેહ દૂર કરતા હશે, તેમને ધન્ય છે સ્વામીનાથ ! આપશ્રી પથ મહાવિદેહ ક્ષેત્રમા ધિરાન્તે છે, હું અપરાધી, દીનકિકર, ગુણહીન, અહીંયા બેઠો છું આજના દિવસ સભધી આપના જ્ઞાન, દર્શન ચારિત્ર, તપને વિષે અવિનય, આશાતના, અભકિત, અપરાધ કીધો હોય તો હાથ નેડી, માન મોડી, મસ્તક નમાવી, ભુજે ભુજે (વારવાર) કરી ખમાવુ છું (અહિં તિષ્ઠતાનો પાઠ ત્રણવાર બોલવો)

બીજા ખામણા-શ્રી સિદ્ધ ભગવતોને

બીજા ખામણા અનંતા સિદ્ધ ભગવતજીને કરૂ છું તે ભગવતજીના ગુણગ્રામ કરતા જધન્ય રસ ઉપજે તો કર્મની ક્રોડી ખપે, અને ઉત્કૃષ્ટો રસ ઉપજે તો જીવ તીર્થ કરનામગોત્ર ઉપાજે આ ભરતક્ષેત્રને વિષે આ ચોવીશીમા ચોવીશ તીર્થ કરો સદ્ થયા, તેમના નામ કહું છું -

(૧) શ્રી ઋષભદેવ સ્વામી, (૨) શ્રી અન્જિતનાથ સ્વામી, (૩) શ્રી સભવનાથ સ્વામી, (૪) શ્રી અભિનદન સ્વામી, (૫) શ્રી સુમતિનાથ સ્વામી, (૬) શ્રી પદ્મપ્રભ સ્વામી

(૧૨) અન્યલિંગસિદ્ધા (૧૩) ગૃહસ્થલિંગસિદ્ધા (૧૪) એકસિદ્ધા (૧૫) અનેકસિદ્ધા, જ્યાં જન્મ નહીં, જરા નહીં, મરણ નહીં, ભય નહીં, રોગ નહીં, શોક નહીં, દુઃખ નહીં, દારિદ્ર્ય નહીં, કર્મ નહીં, કાયા નહીં, મોહ નહીં, માયા નહીં, ચાકર નહીં, ઠાકર નહીં, ભૂખ નહીં, તૃષ્ણા નહીં, જોત મેં જોત વિરાજમાન, સકલ કાર્ય સિદ્ધ કરકે ચવદે પ્રકારે પન્દર મેદે અનન્ત સિદ્ધ ભગવન્ત હુણ. અનન્તસુખોં મેં તલ્લીન, અનન્તજ્ઞાન, અનન્તદર્શન, નિરાવાધ, ક્ષાયિક સમક્તિ, અટલ અવગાહના, અમૃતી, અગુરલણુ, અનન્તવીર્ય, યહ આઠ ગુણ કરકે સહિત હૈ.

એસે શ્રી સિદ્ધ ભગવન્તજી મહારાજ આપકી અવિનય-આશાતના કી હો તો વારમ્યાર હૈ સિદ્ધ ભગવન્ ! મેરા અપરાધ ક્ષમા કરિયે, હાથ જોડ, માન મોડ, શીસ નમાકર તિવરુત્તા કે પાઠ સે ૧૦૦૮ વાર નમસ્કાર કરતા હૂં.

(૭) શ્રી સુપાર્શ્વનાથ સ્વામી, (૮) શ્રી ચદ્રપ્રભ સ્વામી, (૯) શ્રી સુવિધિનાથ સ્વામી, (૧૦) શ્રી શીતલનાથ સ્વામી, (૧૧) શ્રી શ્રેયાસનાથ સ્વામી, (૧૨) શ્રી વાસુપૂજ્ય સ્વામી, (૧૩) શ્રી વિમળનાથ સ્વામી, (૧૪) શ્રી અનંતનાથ સ્વામી, (૧૫) શ્રી ધર્મનાથ સ્વામી, (૧૬) શ્રી શાંતિનાથ સ્વામી, (૧૭) શ્રી કૃત્યુનાથ સ્વામી, (૧૮) શ્રી અરનાથ સ્વામી, (૧૯) શ્રી મલિનાથ સ્વામી, (૨૦) શ્રી મુનિસુવ્રત સ્વામી, (૨૧) શ્રી નગિનાથ સ્વામી, (૨૨) શ્રી નેમીનાથ સ્વામી, (૨૩) શ્રી પાર્શ્વનાથ સ્વામી, (૨૪) શ્રી (વીર વર્ધમાન) મહાવીર સ્વામી

આ એક ચોવીસી અનંત ચોવીસી પદર લેહે સીઝી બુઝી, આઠ કર્મક્ષય કરી મોક્ષ પધાર્યાં, તેમને મારી તમારી સમય સમયની વદના હોજો. આઠ કર્મના નામ-જ્ઞાના-વરણીય, દર્શનાવરણીય, વેદનીય, મોહનીય, આયુષ્ય, નામ, ગોત્ર અને અતરાય, એ આઠે કર્મક્ષય કરી મુક્તિ શિલાએ પહોંચ્યા છે, તે મુક્તિગિલા કયા છે.

સમપૃથ્વીથી ૭૬૦ જોજન ઉચપણે તારા મડળ આવે ત્યાથી દશ જોજન ઉચે સૂર્યનું વિમાન છે, ત્યાથી ૮૦ જોજન ઉચપણે ચદ્રમાનું વિમાન છે, ત્યાથી ચાર જોજન ઉચપણે નક્ષત્રના વિમાન છે, ત્યાથી ચાર જોજન ઉચપણે બુધનો તારો છે, ત્યાથી ત્રણ જોજન ઉચપણે શુક્રનો તારો છે, ત્યાથી ત્રણ જોજન ઉચપણે બૃહસ્પતિનો

તીજે પદ શ્રી આચાર્યજી છત્તીસ ગુણ કરકે વિરાજમાન પાંચ મહાવ્રત પાલે, પાંચ આચાર પાલે, પાંચ ઇન્દ્રિય જીતે, ચાર કષાય ટાલે, નવ-વાહ-સહિત શુદ્ધ બ્રહ્મચર્ય પાલે, પાંચ સમિતિ ત્રીન ગુપ્તિ શુદ્ધ આરાધે, યદ્ ૩૬ ગુણ ઓર આઠ સમ્પદા (૧ આચારસમ્પદા, ૨ શ્રુતસમ્પદા, ૩ શરીરસમ્પદા, ૪ વચનસમ્પદા, ૫ વાચનાસમ્પદા, ૬ મતિસમ્પદા, ૭ પ્રયોગસમ્પદા, ૮ સંગ્રહપરિજ્ઞા-સમ્પદા) સહિત હૈં ।

એસે આચાર્ય મહારાજ ન્યાય પક્ષવાલે, મદ્રિકપરિણામી, પરમ પૂજ્ય, કલ્પનીય અચિત્ત વસ્તુ કે ગ્રહણદાર, સચિત્ત કે ત્યાગી, વૈરાગી, મહાગુણી, ગુણ કે અનુરાગી, સૌભાગી હૈં । એસે શ્રી આચાર્યજી મહારાજ આપકી (દિવસસમ્બન્ધી) અવિનય-આશાતના કી હો તો બારમ્બાર હે આચાર્યજી મહારાજ ! મેરા અપરાધ ક્ષમા કરિયે, હાથ જોડ માન મોડ, શીસ નમાકર તિવરુત્તા કે પાઠ સે ૧૦૦૮ વાર નમસ્કાર કરતા હૈં ।

તારો છે, ત્યાથી ત્રણ જોજન ઉચપણે મ ગળનો તારો છે, ત્યાથી ત્રણ જોજન ઉચપણે છેલ્લો શનિશ્ચરનો તારો છે એમ નવસો જોજન લગી જ્યોતિષયંક છે

ત્યાથી અસખ્યાતા જોજન કોડા કોડી ઉચપણે બાર દેવલોક આવે છે તેના નામ - સુધર્મ, ઇશાન, સનતકુમાર, માહેન્દ્ર બ્રહ્મચૈક, લાતક, મહાશુક, સહસ્રાર, આણુત, પ્રાણુત, આરણુ અને અચ્યુત, ત્યાથી અસખ્યાતા જોજનની કોડા કોડી ઉચપણે ચડીએ ત્યારે નવ ઐવેયક આવે, તેના નામ - ભદ્રે, સુભદ્ર, સુભાએ, સુમાણુસે, પ્રિયદસણે, આમેહિ, સુપડિણદ્રે અને જસોધરે, તેમા ત્રણત્રિક છે, પહેલી ત્રિકમા ૧૧૧ વિમાન છે, બીજીમા ૧૦૭ અને ત્રીજીમા ૧૦૦ વિમાન છે ત્યાથી અસખ્યાતા જોજનની કોડાકોડી ઉચપણેએ ચડીએ ત્યારે પાંચ અનુત્તર વિમાન આવે, તેના નામ - વિજય, વિજયત જયત અપરાજિત અને સર્વાર્થસિદ્ધ

આ સર્વાર્થસિદ્ધ મહાવિમાનની ધ્વજાથી બાર જોજન ઉચપણે મુકિતશિલા છે તે મુકિતશિલા કેવી છે ? પીગ્તાલીશ જોજનની લાખી પહોળી છે, મધ્યે આઠ જોજનની જાડી છે ઉતરતા છેડે માખીની પાખ કરતા પણ પાતળી છે ગોક્ષીર, શખ, ચદ્ર, અકરત્ન, રૂપાનો પટ, મોતીનો હાર અને ક્ષીર સાગરના પાણી થકી પણ અધિક ઉજળી છે

ચૌથે પદ શ્રી ઉપાધ્યાયજી, પચ્ચીસ ગુણ કરકે સહિત (ગ્યારહ અગ, વારહ ઉપાંગ, ચરણસત્તરી, કરણસત્તરી-इन पच्चीस गुण करके सहित), ગ્યારહ અગ કા પાઠ અર્થ સહિત સમ્પૂર્ણ જાને, ૧૪ પૂર્વ કે પાઠક ઓર નિમ્નોક્ત વત્તીસ સૂત્ર કે જાનકાર હૈં।

તે સિદ્ધશિલા ઉપર એક જોજન, તેના છેલ્લા ગાઉના છઠ્ઠા ભાગને વિષે સિદ્ધ ભગવતજી નિરજન નિરાકાર બિરાજી રહ્યા છે તે ભગવતજી કેવા છે ? અવલો, અગધે, અગ્ને, અક્ષરે, અમૃતિ, અવિનાશી, ભૂખ નહિ, દુઃખ નહિ, રોગ નહિ, શોક નહિ, જન્મ નહિ, જરા નહિ, મરણ નહિ, કાયા નહિ, કર્મ નહિ, અનંત અનંત આત્મિક સુખની લહેરમા બિરાજી રહ્યા છે ધન્ય સ્વામીનાથ ? આપ શ્રી સિદ્ધક્ષેત્રને વિષે બિરાજો છો, હું અપરાધી દીનકંકર, ગુણહીન અહીં બેઠો છું, આપના જ્ઞાન દર્શનને વિષે આજના દિવસમળધી અવિનય, અશાંતના, અભક્તિ અપરાધ થયો હોય તો હાથ જોડી, માન મોડી, મસ્તક નમાવી ભુજો ભુજો કરી ખમાવુ છું (અહીં તિષ્ઠતાનો પાઠ ત્રણ વખત કહેવો)

ત્રીજા ખામણા-કેવળી ભગવાનેને

ત્રીજા ખામણા પત્ર મહાવિદેહ ક્ષેત્રને વિષે બિરાજતા જયવતા કેવળી ભગવાનેને કહ્યું છે તે સ્વામી જધન્ય હોય તો બે કોડ અને ઉત્કૃષ્ટા હોય તો નવકોડ કેવળી, તે સર્વને મારી તમારી સમય સમયની વદના હોજો તે સ્વામી કેવા છે ? મારા તમારા મન મનની વાત જાણી દેખી રહ્યા છે, ઘટ ઘટની વાત જાણી દેખી રહ્યા છે, સમય સમયની વાત જાણી દેખી રહ્યા છે, ચૌદરાજી લોક અજલિ-જલ-પ્રમાણે જાણી દેખી રહ્યા છે, અનંત જ્ઞાન છે, અનંત દર્શન છે, અનંત ચારિત્ર છે, અનંતો તપ છે, અનંત ધૈર્ય છે, અનંત વીર્ય છે-એ વટે (છ) ગુણે કરી સહિત છે ચાર કર્મ ધનધાતી ક્ષય કર્યા છે, બાકીના ચાર કર્મ પાતળા પડ્યા છે મુક્તિ જવાના કામી થકા વિચરે છે, ભવ્ય શ્રવેના સ દેહ ભાગે છે સંજોગી, સશરીરી, કેવળજ્ઞાની, કેવળદર્શની, યથાખ્યાત ચારિત્રના ધરણુદાર છે, ક્ષાયિક સમક્તિ, શુકલ ધ્યાન, શુકલ લેશ્યા, શુભ ધ્યાન, શુભ જોગ, પડિત વીર્ય આદિ અનંત ગુણે કરી સહિત છે

ધન્ય તે સ્વામી ગામાગર, નગર, ગયહાણી, જ્યાં જ્યાં દેશના દેતા થકા વિચરતા હશે, ત્યાં ત્યાં રાઇસગ, તલવર, માડબી, કોડબી, શેઠ, મેનાપતિ, ગાથાપતિ આદિ સ્વામીની દેશના સામળી કર્ણ પવિત્ર કરતા હશે, તેમને ધન્ય છે ? સ્વામીના દર્શન

ગ્યારહ અગ-આચારાગ, સૂયગઢાગ, ઠાળાગ, સમવાયાગ, ભગવતી, જ્ઞાતાધર્મકથા, ઉવાસગદસા, અતગઢદસા, અણુસરોવવાઈ, પ્રશ્નવ્યાકરણ, વિપાકસૂત્ર ।

ધારહ ઉપાગ-ઉવવાઈ, રાયપ્પસેળી, જીવાભિગમ, પન્નવળા, જમ્બૂદ્વીવપન્નત્તી, ચન્દપન્નત્તી, સૂરપન્નત્તી, નિરયાવલિયા, કપ્પવહસિયા, પુપ્ફિયા, પુપ્ફચૂલિયા, વણ્હિદસા ।

ચાર મૂલસૂત્ર-ઉત્તરાધ્યયન, દશવૈકાલિકસૂત્ર, નન્દીસૂત્ર, અનુયોગદ્વાર ।

ચાર છેદ-દશાશ્રુતસ્કન્ધ, વૃહત્કલ્પ, વ્યવહારસૂત્ર, નિશીથ સૂત્ર, ઔર વત્તીસવા આવશ્યક, इत्यादि अनेक स्वसमय परसमय के जानकर, सात नय, निश्चय, व्यवहार, चार प्रमाण आदि स्वमत

દેદાર કરી નેત્ર પવિત્ર કરતા હશે તેમને ધન્ય છે સ્વામીને અશનાદિક ચૌદ પ્રકારનું દાન દઈ કર પવિત્ર કરતા હશે, તેમને પણ ધન્ય છે

ધન્ય સ્વામીનાથ ! આપ પચ મહાવિદેહ ક્ષેત્રને વિષે બિરાજે છે, હું અપરાધી દીનકંકર ગુણહીન અહીં બેઠો છું આજના દિવસ સખધી આપના જ્ઞાન, દર્શન, ચારિત્ર તપને વિષે અવિનય, આશાતના, અભક્તિ, અપરાધ થયો હોય, તો હાથ નેડી, માન મોડી, મરતક નમાવી બુલે બુલે કરી ખમાવું છું (અહીં તિષ્ઠતાના પાઠ ત્રણ વખત કહેવે)

ચોથા ખામણ

ચોથા ખામણ ગણધરણ, આચાર્યણ, ઉપાધ્યાયણને કરૂ છું ગણધરણ ખાવન ગુણે કરી સહિત છે, આચાર્યણ છત્રીશ ગુણે કરી સહિત છે, ઉપાધ્યાયણ પચ્ચીશ ગુણે કરી સહિત છે, માન તમારા ધર્મશુર, ધર્માચાર્ય, ધર્મ ઉપદેશના દાતા, પડિતરાજ, મુનિરાજ મહાપુરુષ, ગીતાર્થ, બહુસૂત્રી, સૂત્રસિદ્ધાતના પારગામી, તરણ-તારણ, તારણી નાવા સમાન, સફરી જહાજ સમાન, રત્નચિંતામણિ સમાન, જિન શાસનના શણગાર, ધર્મના નાયક, સધના મુખી, સધના નાયક આદિ અનેક ઉપમાએ કરી બિરાજમાન હતા ઘણા સાધુ-સાધ્વીએ આલોવી, પડિક્કમી, નિન્દી, નિ શક્ય થઈને પ્રાય દેવલોક પધાર્યા છે તેમનો ઘણો ઘણો ઉપકાર છે

આજ વર્તમાન
રત્નચિંતામણિ -

જુ, તારણ, તારણી નાવા સમાન, સફરી જહાજ સમાન,
આ શણગાર, ધર્મના નાયક, સધના મુખી, સધના

तथा अन्यमत के जानकार मनुष्य या देवता कोई भी विवाद में जिनको छलने में समर्थ नहीं, जिन नहीं पण जिन सरीखे, केवली नहीं पण केवली सरीखे हैं।

ऐसे उपाध्यायी महाराज मिथ्यात्वरूप अधिकार के मेटन-हार, समकित रूप उद्द्योत के करनहार, धर्म से डिगते प्राणी को स्थिर करे, सारए, वारए, धारए इत्यादि अनेक गुण करके सहित हैं। ऐसे श्री उपाध्यायी महाराज आपकी अविनय-आशातना की हो तो हे उपाध्यायी महाराज ! मेरा अपराध चारम्बार क्षमा करिये, हाथ जोड़, मान मोड़, जीस नमाकर तिकखुत्ता के पाठ से १००८ वार नमस्कार करता हूँ।

पाचवें पद “णमो लोए सन्वसाहूण”-अढाईद्वीप पन्द्रह क्षेत्र

नायक आदि अनेक उपमाये करी णिराजमान जे जे साधु-साध्वी वीतराग देवनी आशामा णिराजता होय, तेभने भारी तभारी समय समयनी वदना होन्ते

ते स्वामी देवा छे ? पथ भद्रात्रतना पालनहार छे, पाथ सभितिये अने त्रण शुभितिये सहित, छकायना पियर, छकायना नाथ, सात बयना टालणहार, आठ भदना गालणहार, नववाठ विशुद्ध प्रह्वथर्यना पालणहार, दशविध यति धर्मना अजवाणक, गार लेहे तपश्चर्याना करणहार, सत्तर लेहे समयमना धरणहार, गायीश परिषदना जितणहार, सत्तावीश साधुछना गुणु करी सङ्गीत ४२-४७-६६ दोष रहित आहार पाणीन लेनार, भावन अनाचारना टालणहार, सचित्तना त्यागी, अचेतना लोगी, कथन-कामिनीना त्यागी, माया-भभताना त्यागी, सभताना सागर, दयाना आगर, आदि अनेज गुणु करी सङ्गीत छे

धन्य महाराज ! आप गाम, नगर, पुर, पाटणने विषे विचरो छे, अमे अपराधी, हीनकिंकर, गुणुडीन अहाँ भेठा छीये आनना द्विससजधी आपना ज्ञान, दर्शन, चरित्र, तपने विषे अविनय, आशातना, असकित अपराध थयो होय, तो हाथ जोडी, मान मोडी, भरतक नमावी बुन्ते बुन्ते करी अभायु छु (अहाँ तिकखुत्ताने पाठ त्रण वणत कहेवे)

पायभा आभणु

पायभा आभणु पाय भरत, पाय धरवत पाय भद्राविदेहु अ अढी द्वीप

ગ્યારહ અગ-આચારાંગ, સૂયગઢાગ, ઠાળાગ, સમવાયાગ, ભગવતી, જ્ઞાતાધર્મકથા, ઉવાસગદસા, અતગઢદસા, અણુસરોવવાઈ, પ્રશ્નવ્યાકરણ, વિપાકસૂત્ર ।

વારહ ઉપાગ-ઉવવાઈ, રાયપ્પસેણી, જીવાભિગમ, પન્નવળા, જમ્બૂદ્વીવપન્નત્તી, ચન્દપન્નત્તી, સૂરપન્નત્તી, નિરયાવલિયા, કપ્પવહસિયા, પુપ્ફિયા, પુપ્ફચૂલિયા, વણ્હિદસા ।

ચાર મૂલસૂત્ર-ઉત્તરાધ્યયન, દશવૈકાલિકસૂત્ર, નન્દીસૂત્ર, અનુયોગદ્વાર ।

ચાર હેદ-દશાશ્રુતસ્કન્ધ, વૃહત્કલ્પ, વ્યવહારસૂત્ર, નિશીથ સૂત્ર, ઔર વત્તીસવા આવશ્યક, इत्यादि अनेक स्वसमय परसमय के जानकर, सात नय, निश्चय, व्यवहार, चार प्रमाण आदि स्वमत

દેહાર કરી નેત્ર પવિત્ર કરતા હશે તેમને ધન્ય છે સ્વામીને અશનાદિક ચૌદ પ્રકારનું દાન દઈ કર પવિત્ર કરતા હશે, તેમને પણ ધન્ય છે

ધન્ય સ્વામીનાથ ! આપ પચ મહાવિદેહ ક્ષેત્રને વિષે બિરાજે છે, હું અપરાધી દીનકિંકર ગુણહીન અહીં બેઠો છું આજના દિવસ સખધી આપના જ્ઞાન, દર્શન, ચારિત્ર તપને વિષે અવિનય, આશાતના, અભક્તિ, અપરાધ થયો હોય, તો હાથ નોડી, માન મોડી, મસ્તક નમાવી બુજે બુજે કરી ખમાવું છું (અહીં તિષ્ઠતાના પાઠ ત્રણ વખત કહેવો)

ચોથા ખામણ

ચોથા ખામણ ગણધરજી, આચાર્યજી, ઉપાધ્યાયજીને કરૂં છું ગણધરજી ખાવન ગુણે કરી સહિત છે, આચાર્યજી છત્રીશ ગુણે કરી સહિત છે, ઉપાધ્યાયજી પચ્ચીશ ગુણે કરી સહિત છે, મારા તમારા ધર્મગુરુ, ધર્માચાર્ય, ધર્મ ઉપદેશના દાતાર, પડિતરાજ, મુનિરાજ મહાપુરુષ, ગીતાર્થ, બહુસૂત્રી, સૂત્રસિદ્ધાતના પારગામી, તરણ-તારણ, તારણી નાવા સમાન, સફેરી જહાજ સમાન, રત્નચિંતામણિ સમાન, જિન શાસનના શણગાર, ધર્મના નાયક, સધના મુખી, સધના નાયક આદિ અનેક ઉપમાએ કરી બિરાજમાન હતા ઘણા સાધુ-સાધ્વીએ આલોવી, પડિછમી, નિન્દી, નિ શદ્ય થઈને પ્રાય દેવલોક પધાર્યા છે તેમનો ઘણો ઘણો ઉપકાર છે

આજ વર્તમાન કાળે તરણ, તારણ, તારણી નાવા સમાન, સફેરી જહાજ સમાન, રત્નચિંતામણિ સમાન, જિનશાસનના શણગાર, ધર્મના નાયક, સધના મુખી, સધના

એસે મુનિરાજ મહારાજ આપકી અવિનય આશાતના કી હો
તો હે મુનિરાજ ! મેરા અપરાધ વારમ્વાર ક્ષમા કરિયે । હાથ જોડ,
માન મોડ, શીસ નમાકર, તિલ્લુત્તા કે પાઠ સે ૧૦૦૮ વાર
નમસ્કાર કરતા હૂં ।

॥ દોહા ॥

અનન્ત ચૌવીસી જિન નમ્, સિદ્ધ અનન્તા કોડ !
કેવલ જ્ઞાની ગણધરા, વન્દૂ વે કર જોડ ॥ ૧ ॥
દોય કોડિ કેવલધરા, વિહરમાન જિન વીસ ।
સહસ્રયુગલ કોડી નમ્, સાધુ નમ્ નિશદીસ ॥ ૨ ॥
ધન સાધુ ધન સાધવી. વન ધન હૈ જિન ધર્મ ।
યે સમયાં પાતક ફરે, દૂટે આઠો કર્મ ॥ ૩ ॥
અરિહત સિદ્ધ સમરુસદા, આચારજ ઉવજ્ઞાય ।
સાધુ સકલ કે ચરણ કો, વન્દૂ શીસ નમાય ॥ ૪ ॥
અગૂટે અમરિત વસે, લવ્ધિ તળા મળ્હાર ।
શ્રી ગુરુ ગૌતમ સમરિયે, વાછિત ફલ દાતાર ॥ ૫ ॥
લોભી ગુરુ તારે નહી, તિરે સો તારણ હાર ।
જો તૂ તિરિયો ચાહ તો, નિરલોભી ગુરુ ધાર ॥ ૬ ॥
ગુરુ દીપક ગુરુ નાદળો, ગુરુ વિન ઘોર અધાર ।
પલક ન વિસરુ તુમમળી, ગુરુમુદ્ર પ્રાણ અધાર ॥ ૭ ॥

હાથ જોડી, મસ્તક નમાવી જુલે જુલે કરી ખમાવુ છુ (અહીં તિલ્લુત્તાનો પાઠ ત્રણ વખત કહેવો)

અને સાધુ-સાધ્વીજી ગિરાજતા હોય, તે નીચેની ગાથા બોલી ત્રણ વખત સવિધિ વદના કરવી

માધુ વદે તે સુખીયા થાય, ભવે ભવના તે પાતક જાય,
ભાવ ધરીને વદે જોડ, વહેલો સુકતે જશે તેડ

છઠ્ઠા ખામણા

(છઠ્ઠા ખામણા અઢીદ્વીપ માંડે અઢીદ્વીપ બહાર અસખ્યાતા શ્રાવક-શ્રાવિકાને
કરુ છુ તે શ્રાવજી કેવા છે ?

રૂપ લોક કે વિષે સર્વ સાધુજી જઘન્ય દો હજાર કરોડ, ઉત્કૃષ્ટ નવ હજાર કરોડ જયવન્તા વિચરે । પાંચ મહાવ્રત પાલે, પાંચ ઇન્દ્રિય જીતે, ચાર કપાય ટાલે, ભાવસચ્ચે, કરણસચ્ચે, જોગસચ્ચે, ક્ષમાવન્ત, વૈરાગ્યવન્ત, મનસમાધારણીયા, વધસમાધારણીયા, કાયસમાધારણીયા, નાણસમ્પન્ના, દસણસમ્પન્ના, ચારિત્તસમ્પન્ના, વેદનીયસમાઅહિયાસનીયા, મરણાતિકસમાઅહિયાસનીયા હૈ-એસે સત્તાઈસ ગુણ કરકે સહિત, પાંચ આચાર પાલે, છઠ કાય કી રક્ષા કરે, સાત કુવ્યસન, આઠ મદ છોડે, નવવાડ સહિત બ્રહ્મચર્ય પાલે, દસ પ્રકાર યતિધર્મ ધારે, બારહ ભેદે તપસ્યા કરે, સત્રહ ભેદે સયમ પાલે, અઠારહ પાપો કો ત્યાગે, વાઈસ પરિષહ જીતે, તીસ મહામોહનીય કર્મ નિવારે, તેતીસ આશાતના ટાલે, વચાલીસ દોષ ટાલ કે આહાર પાની લેવે, સૈતાલીસ દોષ ટાલ કે ભોગે, વાવન અનાચાર ટાલે, તેહિયા (બુલાયા) આવે નહીં, નાતિયા જીમે નહી, સચિત્ત કે ત્યાગી, અચિત્ત કે ભોગી, લોચ કરે, નગે પૈર ચાલે-હત્યાદિ કાયાક્લેશ કરે ઓર મોહ-મમતા-રહિત હૈ ।

ક્ષેત્રને વિષે બિરાજતા સાધુ સાધ્વીજીને ૩૩ છુ તેઓ જઘન્ય હોય તો એ હજાર કોડ સાધુ-સાધ્વી, અને ઉત્કૃષ્ટ હોય તો નવ હજાર કોડ સાધુ-સાધ્વી, તેમને મારી તમારી સમય સમયની વદના હોજો

તે સ્વામી કેવા છે ? પાંચ મહાવ્રતના પાલણુદાર છે, પાંચ સમિતિઓ અને ત્રણ ગુપ્તિઓ સહિત, છ કાયના પિયર, છ કાયના નાથ, સાત ભયના ટાલણુદાર, આઠ મદના ગાલણુદાર, નવવાડવિશુદ્ધ બ્રહ્મચર્યના પાલણુદાર, દશવિધ યતિધર્મના અજવાલક, બાર ભેદે તપશ્ચર્યાના કરણુદાર, સત્તર ભેદે સયમના ધરણુદાર, બાવીશ પરિષહના જીતણુદાર, સતાવીશ સાધુજીના ગુણે કરી સહિત, ૪૨-૪૭-૬૬ દોષ રહિત આહાર પાણીના લેવણુદાર, બાવન અનાચારના ટાલણુદાર, સચિત્તના ત્યાગી, અચેતના ભોગી, કચન કામિનીના ત્યાગી, માયા-મમતાના ત્યાગી, સમતાના સાગર, દયાના આગર, આદિ અનેક ગુણે કરી સહિત છે

ધન્ય સ્વામીનાથ ! આપ ગામ, નગર, પૂર, પાટણને વિષે બિરાજો છો, હું અપરાધી, દીન કંકર, ગુણહીન અહીં બેઠો છું આજના દિવસસખધી આપના જ્ઞાન, દર્શન, ચારિત્ર, તપને વિષે અવિનય, આશાતના અશક્તિ, અપરાધ કીધો હોય તો

ચતુરશીતિલક્ષયોનિગતાન્ જીવાન્ ક્ષમાપ્ય સાર્દસપ્તનવતિલક્ષાત્રિકૈકકોટિ
કુલકોટિવિરાધનાસમ્બન્ધિ મિથ્યાદુષ્કૃત દત્ત્વા પાપાષ્ટાદશરૂપટ્ટિકામુચ્ચાર્ય
કાવોત્સર્ગાભિધસ્ય પશ્ચમાવશ્યકસ્યાજ્ઞા ગૃહીયાત્ । તત્ર પૂર્વસ્મિન્નન્યયને મૂલોત્તર-

અનન્તર ‘અનન્તચતુર્વીસી જિન નમો’ ઇત્યાદિ પદે, ચાદ મેં
ચૌરાસી લાખ યોનિ ગત જીવોં સે ક્ષમાપના કરકે ઇક કરોડ સાઢે
સત્તાનવેલાખ (૧૯૭૫૦૦૦૦) કુલ કોટિ (કોઢી) જીવોં કી વિરાધના-
સમ્બન્ધી મિથ્યાદુષ્કૃત દેકર ઓર અઠારહ પાપમ્યાન કી પટ્ટી ચોલકર
ગુરુ સે કાવોત્સર્ગ નામક પાંચવેં આવશ્યક કી આજ્ઞા ગ્રહણ કરે ।

ત્યાગ બાદ ‘અનન્ત ચતુર્વીસી જિન નમો’ ઇત્યાદિ બોલે, પછી ચૌરાસી લાખ
યોનિગત જીવોની પામે ક્ષમાપના માગીને એક કરોડ સાડા અત્તાણુ લાખ
(૧૯૭૫૦૦૦૦) કુલ કોટી (કોઢી) જીવોની વિરાધના સબધી મિથ્યા દુષ્કૃત આપીને
અને અઠાર પાપ સ્થાનની પાટી બોલીને ગુરુપાસે કાવોત્સર્ગ નામના પાપમા
આવશ્યકની અજ્ઞા ગ્રહણ કરવી

હજાર ઇક સૌ વીસ (૧૮૨૪૧૨૦) પ્રકારે “તસ્મ મિચ્છામિ દુક્કડ” ।

આમેમિ સવ્વે જીવા, સવ્વે જીવા અમતુ મે ।

મિત્તી મે સવ્વભૂએસુ, વેરં મજ્ઞં ન કેણહ ॥

એવમહ આલોહય, નિદિય ગરહિય દુગછિડ સમ્મ ।

તિવિહેણ પડિક્કતો, વદામિ જિણે ચતુર્વીસ ॥

છેધા હોય, લેવા હોય, પરિતાપના-કિલામના ઉપજાવી હોય, તો અરિહન્ત અનતા
સિદ્ધ ભગવતની આખે “તસ્મ મિચ્છામિ દુક્કડ”

આમેમિ સવ્વે જીવા
અવ્વે જીવા અમતુ મે
મિત્તીમે સવ્વભૂએસુ
વેરં મજ્ઞં ન કેણહ
એવમહ આલોહય
નિદિયગરહિયદુગછિડ સમ્મ,

તિવિહેણ પડિક્કતો

વદામિ જીણે ચતુર્વીસ

ખમાવુ છુ સર્વ જીવોને,
અર્વ જીવો મને ક્ષમા આપજો
સર્વ જીવો સાથે મારે મિત્રતા છે
કોઈની સાથે મારે વેર નથી
એ પ્રકારે હું આલોચના કરી,
નિંદા કરી, (ગુરુની સાક્ષીએ) વિશેષે
નિંદા કરી, દુગછા કરી
સમ્યક્ પ્રકારે, ત્રણ પ્રકારે (મન, વચન,
કાયાએ) પ્રતિક્રમણ કર્તો થકો
ચોવિશ જીનેશ્વર પ્રભુને વદુ છુ

॥ ચૌરાસી લાખ જીવ યોનિ કા પાઠ ॥

સાત લાખ પૃથ્વીકાય, સાત લાખ અપ્કાય, સાત લાખ તેડકાય, સાત લાખ વાયુકાય, દશ લાખ પ્રત્યેક વનસ્પતિકાય, ચૌદ લાખ સાધારણ વનસ્પતિકાય, દો લાખ વેદન્દ્રિય, દો લાખ તેદન્દ્રિય, દો લાખ ચરન્દ્રિય, ચાર લાખ નારકી, ચાર લાખ દેવતા, ચાર લાખ તિર્યજ્વ પચેન્દ્રિય, ચૌદ લાખ મનુષ્યકી જાત એસે ચાર ગતિ મેં ચૌરાસી લાખ જીવ-યોનિ કે સૂક્ષ્મ ચાદર પર્યાસિ અપર્યાસિ જીવોં મેં સે હાલતે ચાલતે ઉઠતે બેઠતે સોતે કિસી જીવ કા હનન કિયા હો, કરાયા હો, હનતા પ્રતિ અનુમોદન કિયા હો, છેદા હો, ભેદા હો, કિલામણા ઉપજાઈ હો, મન વચન કાયા કરકે અઠારહ લાખ ચૌવીસ

હુ થી તમથી, દાને, શીયળે, તપે, ભાવે, ગુણે કરી અધિક છે, બે વખત આવશ્યક્ય પ્રતિક્રમણના કરનાર છે, મહિનામા બે, ચાર અને છ પોવાના કરનાર છે, સમકિત સહિત બાર વ્રતધારી, અગિયાર પડિમાના સેવણુદાર છે, ત્રણ મનોરથના ચિંતવનાર છે, દુખળા-પાતળા જીવની દયાના આણુનાર છે, જીવ અજીવ આદિ નવ તત્વના જાણુનાર છે, એકવીશ શ્રાવકજીના ગુણે કરી સહિત છે, પરધન પત્થર બનાબર લેખે છે, પરસ્ત્રા માત બેન સમાન લેખે છે, દૈધર્મી, પ્રિયધર્મી, દેવતાના ડગાવ્યા ડગે નહિ એવા છે, ધર્મનો રંગ હાડ હાડની મીઠાએ લાગ્યો છે એવા શ્રાવક, શ્રાવિકા, સવર, પોષા, પ્રતિક્રમણમા બિરાજતા હશે તેમને આજના દિવસ સળધી અવિનય, આશાતના, અભકિત, અપરાધ કર્યો હોય, તો હાથ ભેડી, માન મોડી, મસ્તક નમાવી બુજે બુજે કરી ખમાવુ છુ)

સાધુ-સાધ્વીને વાફુ છુ, શ્રાવક-શ્રાવિકાને ખમાવુ છુ, ચૌરાસી લાખ જીવાંનેના જીવને ખમાવુ છુ -

૭ લાખ પૃથ્વીકાય, ૭ લાખ અપકાય, ૭ લાખ તેડકાય ૭ લાખ વાયુકાય, ૧૦ લાખ પ્રત્યેક વનસ્પતિકાય, ૧૪ લાખ સાધારણ વનસ્પતિકાય, ૨ લાખ બે દ્રિય, ૨ લાખ તેદ્રિય, ૨ લાખ ચારેદ્રિય, ૪ લાખ નારકી, ૪ લાખ દેવતા, ૪ લાખ તિર્યચ પચેદ્રિય, ૧૪ લાખ મનુષ્ય જાતિ, એ ચૌરાસી લાખ જીવાંનેના જીવને હાલતા, ચાલતા, ઉઠતા, બેસતા જાણુતા, અજાણુતા, હણ્યા હોય, હણ્યાવ્યા હોય,

ચતુરશીતિલક્ષયોનિગતાન્ જીવાન્ ક્ષમાપ્ય સાર્દસમ્પન્નવતિલક્ષાપિકૈવકોટિ
કુલકોટિવિરાધનાસમ્બન્ધિ મિથ્યાદુષ્કૃત દત્ત્વા પાપાઘાદશકપટ્ટિકામુચાર્ય
કાયોત્સર્ગાભિધસ્ય પશ્ચમાવશ્યકસ્યાજ્ઞા ગૃહીયાત્ । તત્ર પૂર્વસ્મિન્નભ્યયને મૂલોત્તર-

અનન્તર ‘અનન્તચત્વીસી જિન નમો’ ઇત્યાદિ પઢે, વાદ મેં
ચૌરાસી લાખ યોનિ ગત જીવોં સે ક્ષમાપના કરકે એક કરોડ સાઢે
સત્તાનવેલાખ (૧૯૭૫૦૦૦૦) કુલ કોટિ (કોડી) જીવોં કી વિરાધના-
સમ્બન્ધી મિથ્યાદુષ્કૃત દેકર ઓર અઠારહ પાપમ્યાન કી પટ્ટી ચોલકર
શુરુ સે કાયોત્સર્ગ નામક પાંચવેં આવશ્યક કી આજ્ઞા ગ્રહણ કરે ।

ત્યાર બાદ ‘અનન્ત ચત્વીસી જિન નમો’ ઇત્યાદિ બોલે, પછી ચૌરાસી લાખ
યોનિગત જીવોની પાસે ક્ષમાપના માગીને એક કરોડ સાડા સત્તાણુ લાખ
(૧૯૭૫૦૦૦૦) કુલ કોટી (કોડી) જીવોની વિરાધના સબ્બધી મિથ્યા દુષ્કૃત આપીને
અને અઠાર પાપ સ્થાનની પાટી બોલીને શુરુપાસે કાયોત્સર્ગ નામના પાત્રમા
આવશ્યકની આજ્ઞા ગ્રહણ કરવી

હજાર એક સૌ વીસ (૧૮૨૪૧૨૦) પ્રકારે “તસ્મ મિચ્છામિ દુક્કડ” ।

સ્વામેમિ સવ્વે જીવા, સવ્વે જીવા સ્વમતુ મે ।

મિત્તી મે સવ્વભૂએસુ, વેર મજ્ઝ ન કેણહ ॥

એવમહ આલોહય, નિદિય ગરહિય દુગછિહ સમ્મ ।

તિવિહેણ પડિક્કતો, વદામિ જિણે ચત્તવીસ ॥

હેવા હોય, લેવા હોય, પરિતાપના-કિલામના ઉપજાવી હોય, તો અરિહન્ત અનતા
સિદ્ધ ભગવતની સાથે “તસ્મ મિચ્છામિ દુક્કડ”

ખામેમિ સવ્વે જીવા
સવ્વે જીવા ખમતુ મે
મિત્તીમે સવ્વભૂએસુ
વેર મજ્ઝ ન કેણહ
એવમહ આલોહય
નિદિયગરહિયદુગછિહ સમ્મ,

તિવિહેણ પડિક્કતો

વદામિ જીણે ચત્તવીસ

ખમાવુ છું સર્વ જીવોને,
સર્વ જીવો મને ક્ષમા આપજો
સર્વ જીવો સાથે મારે મિત્રતા છે
કેડની સાથે મારે વેર નથી
એ પ્રકારે હું આલોચના કરી,
નિંદા કરી, (શુરુની સાક્ષીએ) વિશેષે
નિંદા કરી, દુગછા કરી
સમ્યક્ પ્રકારે, ત્રણ પ્રકારે (મન, વચન,
કાયાએ) પ્રતિક્ષમણ કરતો થકો
ચોવિશ જીનેશ્વર પ્રભુને વદુ છું

ગુણેષુ સ્વલિતમ્ય નિન્દાઽભિહિતા, ઇહ ત્યાચારપસ્પલિતસ્ય ચારિત્રપુરુષસ્યાતિચાર
લક્ષણવ્રણોત્પત્તિસમ્ભવાત્તચિકિત્સારૂપં કાયોત્સર્ગં ઉચ્યતે, અથવા પ્રોક્તે ગતિ
ક્રમણાધ્યયને મિથ્યાત્વાપિરત્યાદિપञ्ચવિધપ્રતિક્રમણદ્વારા કર્માઽગમપ્રતિરોધ
ઉપપાદિતં, ઇહ તુ કાયોત્સર્ગવિધિના પૂર્વસન્નિતાના કર્મણા પ્રક્ષયો ભવતીતિ
પ્રતિપાદ્યતે—‘ઇચ્છામિ ણ’ ઇત્યાદિ—

॥ મૂલમ્ ॥

ઇચ્છામિ ણ ભતે તુભેહિ અવ્ભણુણાણ સમાણે ।
દેવસિયપાયચ્છિત્તવિસોહણદ્વ કરેમિ કાઉસ્સમ્મ ॥ ૧ ॥

॥ છાયા ॥

ઇચ્છામિ સ્વલુ ભગવન્ યુગ્મામિરમ્યનુજ્ઞાતં સન્ ।
દૈવસિકપાયચ્છિત્તવિશોધનાર્થં કરોમિ કાયોત્સર્ગમ્ ॥ ૧ ॥

॥ ટીકા ॥

વ્યાખ્યા પ્રસ્ફુટા ॥ ૧ ॥

પૂર્વ (ચૌથે) અધ્યયન મેં મૂલ ઓર ઉત્તર ગુણો મે સ્વલિત
કી નિન્દા કહી હૈ, ઇસ પાંચવેં અધ્યયન મેં આચાર સે, સ્વલિત
ચારિત્રરૂપ પુરુષ કે અતિચારરૂપ વ્રણ (ઘાવ) હોને કે સંભવ સે ઉસ
કી ચિકિત્સારૂપ કાયોત્સર્ગ કહા જાતા હૈ । અથવા પ્રતિક્રમણા-
ધ્યયન મેં મિથ્યાત્વ આદિ પાંચ પ્રકાર કે પ્રતિક્રમણ દ્વારા કર્મોં કે
આગમન કા પ્રતિરોધ ક્રિયા ગયા હૈ, ઓર યહાં કાયોત્સર્ગ દ્વારા
પૂર્વસન્નિત કર્મોં કા ક્ષય દિશ્વલાયા જાતા હૈ—‘ઇચ્છામિ ણ ભતે’
ઇત્યાદિ ।

પ્રથમ પહેલા (ચોથા) અધ્યયનમા મૂલ અને ઉત્તર ગુણોમા સ્વલિતની
નિન્દા કહી છે આ પાંચમા અધ્યયનમા આચારથી સ્વલિત ચારિત્રરૂપ પુરુષના
અતિચાર રૂપ વ્રણ (ઘા) થવાના સંભવથી તેની ચિકિત્સારૂપ કાયોત્સર્ગ કહેયો
છે, અથવા પ્રતિક્રમણાધ્યયનમા મિથ્યાત્વ આદિ પાંચ પ્રકારના પ્રતિક્રમણ દ્વારા
કર્મોના આવવાપણું કરવામા આવે છે, અને અહીં કાયોત્સર્ગ દ્વારા
પૂર્વ સન્નિત વધવામા આવેલ છે (ઇચ્છામિ ણ ભતે) ઇત્યાદિ

‘ કરેમિ ભતે ? સામાઈય૦ ’ ‘ ઇચ્છામિ ઠામિ કાઉસ્સગ્ગ૦ ’ ‘ તસ્સો-
ત્તરીકરણેણ૦ ’ इत्येताः सर्वाः पट्टिकाः पठित्वा कायोत्सर्गं विदध्यात् , तत्र
‘लोगस्स उज्जोयगरे०’ इति पट्टिका वारचतुष्टय मनसा सस्मृत्य सनमस्कार
कायोत्सर्गं समाप्य च पुनरपि ‘लोगस्स उज्जोयगरे०’ इत्यादि पट्टिका पूर्णा-
मुच्चारयेत्, ततः ‘इच्छामि समासमणो०’ इति पट्टिका द्विः पठित्वा गुरुसमीपे
प्रत्याचक्षीत ॥ १ ॥

इति श्रीविश्वविख्यात-जगद्बल्लभ-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषाकलितललित-
कलापाऽऽलापक-प्रविशुद्धग्रन्थनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-श्रीशाहू-
छत्रपतिकोल्हापुरराजप्रदत्त ‘जैनशास्त्राचार्य’-पदभूषित-कोल्हापुर-
राजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-
घासीलाल-व्रतिविरचिताया श्रीश्रमणसूत्रस्य मुनि-
तोषण्यारयाया व्याख्याया पञ्चम
कायोत्सर्गारयम ययन समाप्तम् ॥ ५ ॥

उसमें प्रथम ‘इच्छामि ण भते’ की पट्टी से कायोत्सर्ग की प्रतिज्ञा
करके ‘करेमि भते ! सामाईय०’ और ‘इच्छामि ठामि काउस्सगग०’ तथा
‘तस्सोत्तरीकरणेण०’ बोलकर कायोत्सर्ग करे’ और कायोत्सर्गमें
चार ‘लोगस्स०’ मनमें गिन कर नमस्कारपूर्वक कायोत्सर्ग की
समाप्ति करे, फिर ‘लोगस्स०’ की पट्टी प्रगट बोलें । तदनन्तर
‘इच्छामि खमासमणो०’ की पट्टी दो बार बोल कर गुरुके निकट
प्रत्याख्यान करें ॥ १ ॥

॥ इति पञ्चमअध्ययन समाप्त ॥

તેમા પ્રથમ ‘ઇચ્છામિ ણભત્તે,’ ની પાટીથી કાયોત્સર્ગની પ્રતિજ્ઞા કરીને
‘કરેમિ ભત્તે સામાઈય’ અને ‘ઇચ્છામિ ઠામિ કાઉસ્સગ્ગ’ તથા ‘તસ્સોત્તરીકરણેણ’
બોલીને કાયોત્સર્ગ કરવો અને કાયોત્સર્ગમાં ચાર ‘લોગસ્સ’ મનમાં ઉચ્ચારણુ વગર
બોલીને નમસ્કારપૂર્વક કાયોત્સર્ગની સમાપ્તિ કરવી, અને પછી ‘લોગસ્સ’ની પાટી
પ્રગટ બોલવી, તે પછી ‘ઇચ્છામિ સમાસમણો’ ની પાટી બે વાર બોલીને ગુરુ
સમીપે પ્રત્યાખ્યાન કરવું (૧)

ઇતિ પાચમુ અધ્યયન સ પૂર્ણુ.

ગુણેષુ સ્વલિતમ્ય નિન્દાઽભિહિતા, इह त्वाचारमस्त्रलितस्य चारित्रपुरुषस्यातिचार
लक्षणत्रणोत्पत्तिसम्भवात्तच्चिकित्सारूपं कायोत्सर्गं उच्यते, अथवा प्रोक्ते प्रति
क्रमणाभ्ययने मिथ्यात्वाविरत्यादिपञ्चविधप्रतिक्रमणद्वारा कर्माऽऽगमप्रतिरोध
उपपादितः, इह तु कायोत्सर्गविधिना पूर्वसञ्चिताना कर्मणा प्रक्षयो भवतीति
प्रतिपाद्यते—‘इच्छामि ण’ इत्यादि—

॥ मूलम् ॥

इच्छामि ण भते तुव्मेहि अब्भणुण्णाए समाणे ।
देवसियपायच्छित्तविसोहणह् करेमि काउस्सग्ग ॥ १ ॥

॥ छाया ॥

इच्छामि खलु भगवन् युष्माभिरभ्यनुज्ञात सन् ।
दैवसिकप्रायश्चित्तविशोधनार्थं करोमि कायोत्सर्गम् ॥ १ ॥

॥ टीका ॥

व्याख्या प्रस्फुटा ॥ १ ॥

पूर्व (चौથે) અધ્યયન મેં મૂલ ઓર ઉત્તર ગુણો મે સ્વલિત
કી નિન્દા કહી છે, ઇસ પાંચવેં અધ્યયન મેં આચાર સે સ્વલિત
ચારિત્રરૂપ પુરુષ કે અતિચારરૂપ વ્રણ (ઘાવ) હોને કે સંભવ સે ડસ
કી ચિકિત્સારૂપ કાયોત્સર્ગ કહા જાતા છે । અથવા પ્રતિક્રમણા-
ધ્યયન મેં મિથ્યાત્વ આદિ પાંચ પ્રકાર કે પ્રતિક્રમણ દ્વારા કર્મો કે
આગમન કા પ્રતિરોધ કિયા ગયા છે, ઓર યહા કાયોત્સર્ગ દ્વારા
પૂર્વસંચિત કર્મો કા ક્ષય દિખલાયા જાતા છે—‘इच्छामि णं भते’
इत्यादि ।

પ્રથમ પહેલા (ચોથા) અધ્યયનમાં મૂલ અને ઉત્તર ગુણોમાં સ્વલિતની
નિન્દા કહી છે આ પાંચમા અધ્યયનમાં આચારથી સ્વલિત ચારિત્રરૂપ પુરુષના
અતિચાર રૂપ વ્રણ (ઘા) થવાના સંભવથી તેની ચિકિત્સારૂપ કાયોત્સર્ગ કહેલો
છે, અથવા પ્રતિક્રમણાધ્યયનમાં મિથ્યાત્વ આદિ પાંચ પ્રકારના પ્રતિક્રમણ દ્વારા
કર્મોના આવવાપણાનો પ્રતિરોધ કરવામાં આવે છે, અને અહીં કાયોત્સર્ગ દ્વારા
પૂર્વ સંચિત કર્મોનો ક્ષય બતાવવામાં આવેલ છે (इच्छामि णं भते) इत्यादि.

(६) परिमाणकृत (७) निरवशेषम् (८) । सङ्केत (९) चैव अद्वायाः
(१०) प्रत्याख्यान भवति दशधा ॥ सू० १ ॥

॥ टीका ॥

‘पञ्चवखाणे’ प्रत्याख्यायते=गुरुसाक्षिक तदभावे स्वसाक्षिक वा प्रति-
पिध्यते हेयस्तु, अनागतपाप वा येनेति ‘प्रत्याख्यानम्’ । ‘दसविहे’ दशविध
‘पणत्ते’ प्रज्ञप्त भगवतेत्यर्थात् । ‘तजहा’ तथथा—

भविष्यमें लगनेवाले पापों से निवृत्त होने के लिये गुरु-
साक्षी या आत्मसाक्षी से हेय वस्तु के त्याग करने को प्रत्याख्यान
कहते हैं, वह दस प्रकार का है—

लविध्यभा लागवावाणा पापेधी निवृत्त थवा भाटे गुरुनी साक्षी अथवा
ते आत्मनी साक्षीथी हेय वस्तुने त्याग करवो तेने प्रत्याख्यान कहे छे, ते दस
प्रकारना छे—

१—‘प्रत्याख्यानम्’ अत्र करणे, यद्वा भावे प्रत्याङ्-पूर्वकात् चक्षिङ् व्यक्ताया
वाचि इत्यस्माल्ल्युटि, तस्यार्द्धधातुक्त्वात्तस्मिन् परे चक्षिङ् ख्शाब्बादेशे, ख्शाब्बः
शकारस्य ‘शस्य यो चे’ ति यादेशे प्रत्याख्यानम् । यत्तु ‘ख्या प्रकथने’ इत्यस्य
प्रत्याङ्पूर्वकस्य ल्युङन्तस्य प्रत्याख्यान भवती’—ति ‘तथा प्रत्याख्यातीति
प्रत्याख्याते’—ति च केचिदाहुस्तद्व्याकरणाज्ञानमूलकम्, ‘ख्या प्रकथने’ इत्यस्य
सार्वधातुक्मात्रविषयकत्वात्, तदुक्त ‘सस्थानत्व नम. ख्यात्रे’ इति वार्तिके
व्याकरणमहाभाष्यकारपतञ्जलिना—‘नमः ख्यात्रे’ इत्यत्र चक्षिङ् ख्शाब्बादेशे
शकारस्य ‘शस्य यो चे’ ति कृतो यादेश. ‘शर्परे विसर्जनीय’ इति सूत्र प्रत्यसिद्ध
शर्परखर्परत्वाद्विसर्गस्य विसर्ग एव भवति न तु ‘कुप्त्रो ऋ क ऋ पौ चे’—ति सस्थानत्व
(जिह्वामूलीयत्व) मिति ‘नम. ख्यात्रे’ इत्यत्र सस्थानत्वाभावश्चक्षिङ् ख्शाब्बादेशस्य
प्रयोजनमितरथा जिह्वामूलीयस्य दुर्वारत्वात्, यदि तु ‘ख्या प्रकथने’ इत्यस्य
तजादौ प्रयोग स्यात्तदास्मात्तृचि ‘नम ख्यात्रे’ इत्यत्र ‘शर्परे०’ इत्यस्यापप्त्या
जिह्वामूलीयो दुर्वार स्यादिति भाष्यासङ्गति स्पष्टैव । अतएव ‘पुख्यानम्’
इत्यत्र ‘पुम खग्यम्परे’ इति रु, ‘सौप्रख्ये भव’ इत्यर्थे ‘योषाद्गुरु-
पोत्तमादि’—ति वुञ्, ‘आख्यातम्’ इत्यादौ ‘सयोगांदरातो धातोर्यण्वत्’ इति-
निष्ठानत्वम्, ‘पर्याख्यानम्, इत्यादौ णत्व च ‘शस्य यो चे’—त्यस्याऽसिद्धत्वेन
नेति पपञ्चितमन्यत्र विस्तरेण ।

। અથ પષ્ટમધ્યયનમ્ ।

અનન્તરોક્તે પશ્ચમાભ્યયને પૂર્વસશ્ચિતાના કર્મણા પ્રક્ષયઃ પ્રતિપાદિત', સમ્પ્રતીઠ પષ્ટાધ્યયને આગન્તૂના કર્મણા નિરોધઃ પ્રોચ્યતે, અથવા પૂર્વત્ર કાયોત્સર્ગદ્વારા વ્રણચિકિત્સા સમ્પ્રોક્તા, ચિકિત્સોત્તર ચ ગુણપ્રતિપત્તિર્ભવતીતીઠ ગુણધારણાપરાઽઽરુચે પ્રત્યાખ્યાનાધ્યયને મૂલોત્તરગુણધારણામાદ—‘દસવિહે’ इत्यादि ।

॥ મૂલમ્ ॥

દસવિહે પચ્ચક્ષાણે પપ્પણ્તે તજહા—

‘અણાગયમઙ્કત, કોડીસહિય નિયટિય ચેવ ।

સાગારમણાગાર, પરિમાણકડ નિરવસેસ ।

સકેય ચેવ અદ્ધાણ, પચ્ચક્ષાણ ભવે દસહા ॥સૂ૦ ૧॥

॥ છાયા ॥

દશવિધ પ્રત્યાખ્યાન પ્રજ્ઞપ્ત તથા—અનાગતમ્—(૧) અતિક્રાન્તમ્ (૨) કોટિસહિત (૩) નિયન્ત્રિત (૪) ચેવ । સાકારમ્ (૫) આનાકાર

અથ છઠા અધ્યયન

પાંચવે અધ્યયનમેં પૂર્વસશ્ચિત કર્મોં કા ક્ષય કહા ગયા હૈ । હસ છઠે અધ્યયનમેં નવીન બન્ધનેવાલે કર્મોં કા નિરોધ કહા જાતા હૈ । અથવા પાંચવે અધ્યયનમેં કાયોત્સર્ગ દ્વારા અતિચારરૂપ વ્રણ કી ચિકિત્સા કા નિરૂપણ કિયા ગયા હૈ । ચિકિત્સાકે અનન્તર ગુણ કી પ્રાપ્તિ હોતી હૈ, હસલિયે ‘ગુણધારણ’ નામક હસ પ્રત્યાખ્યાન અ યયનમેં મૂલોત્તર ગુણ કી ધારણા કહતે હૈ—‘દસવિહે પચ્ચક્ષાણે’ इत्यादि ।

અથ છઠું અધ્યયન

પાચમા અધ્યયનમા પૂર્વસશ્ચિત કર્મેનો ક્ષય કહેવામા આવ્યુ છે હવે આ છઠા અધ્યયનમા નવીન બન્ધ થવાવાળા કર્મેનો નિરોધ કહેવામા આવે છે અથવા પાચમા અધ્યયનમા કાયોત્સર્ગ દ્વારા અતિચાર રૂપ વ્રણ-ધાવની ચિકિત્સાનું નિરૂપણ કરવામા આવ્યુ છે, ચિકિત્સા કર્યા પછી ગુણની પ્રાપ્તિ થાય છે, એ માટે “ગુણધારણ” નામના આ પ્રત્યાખ્યાન અધ્યયનમા મૂલોત્તર ગુણની ધારણા કહે છે ‘દસવિહે પચ્ચક્ષાણે’ इत्यादि

(६) परिमाणकृत (७) निर्वशेषम् (८) । सङ्केत (९) चैव अद्यायाः
(१०) प्रत्याख्यान भवति दशधा ॥ सू० १ ॥

॥ टीका ॥

‘पञ्चवखाणे’ प्रत्याख्यायते=गुरुसाक्षिक तदभावे स्वसाक्षिक वा प्रति-
पिध्यते हेयवस्तु, अनागतपाप वा येनेति ‘प्रत्याख्यानम्’ । ‘दसविहे’ दशविध
‘पणत्ते’ प्रज्ञप्त भगवतेत्यर्थात् । ‘तजहा’ तत्रथा-

भविष्यमें लगनेवाले पापों से निवृत्त होने के लिये गुरु-
साक्षी या आत्मसाक्षी से हेय वस्तु के त्याग करने को प्रत्याख्यान
कहते हैं, वह दस प्रकार का है—

भविष्यमा लागवावाणा पापेधी निवृत्त थवा भाटे गुरुनी साक्षी अथवा
तो आत्मनी साक्षीथी हेय वस्तुने त्याग करवे तेने प्रत्याख्यान कडे छे, ते दस
प्रकारना छे-

१-‘प्रत्याख्यानम्’ अत्र करणे, यद्वा भावे प्रत्याङ्-पूर्वकात् चक्षिङ् व्यक्ताया
वाचि इत्यस्माल्ल्युटि, तस्यार्द्धधातुकत्वात्तस्मिन् परे चक्षिङ् ख्शाब्बादेशे, ख्शाब्बः
शकारस्य ‘शस्य यो वे’ ति यादेशे प्रत्याख्यानम् । यत्तु ‘रया प्रकथने’ इत्यस्य
प्रत्याङ्पूर्वकस्य ल्युडन्तस्य प्रत्याख्यान भवती’—ति ‘तथा प्रत्याख्यातीति
प्रत्याख्याते’—ति च केचिदाहुस्तद्व्याकरणाज्ञानमूलकम्, ‘रया प्रकथने’ इत्यस्य
सार्वधातुकमात्रविषयकत्वात्, तदुक्त ‘सस्थानत्व नम. ख्यात्रे’ इति वार्तिके
व्याकरणमहाभाष्यकारपतञ्जलिना—‘नमः ख्यात्रे’ इत्यत्र चक्षिङः ख्शाब्बादेशे
शकारस्य ‘शस्य यो वे’ ति कृतो यादेश ‘शर्परे विसर्जनीयः’ इति सूत्र प्रत्यसिद्धः
शर्परखर्परत्वाद्विसर्गस्य विसर्ग एव भवति न तु ‘कुप्त्रो × क × पौ चे’—ति सस्थानत्व
(जिह्वामूलीयत्व) मिति ‘नम ख्यात्रे’ इत्यत्र सस्थानत्वाभावश्चक्षिङः ख्शाब्बादेशस्य
प्रयोजनमितरथा जिह्वामूलीयस्य दुर्वारत्वात्, यदि तु ‘रया प्रकथने’ इत्यस्य
तनादौ प्रयोग. स्यान्नादास्मात्तृचि ‘नम ख्यात्रे’ इत्यत्र ‘शर्परे०’ इत्यस्याप्राप्त्या
जिह्वामूलीयो दुर्वार स्यादिति भाष्यासङ्गतिः स्पष्टैव । अतएव ‘पुख्यानम्’
इत्यत्र ‘पुमः खग्यम्परे’ इति रु, ‘सौप्रख्ये भवः’ इत्यर्थे ‘योपवादगुरु-
पोत्तमादि’—ति वुञ्, ‘आख्यातम्’ इत्यादौ ‘सयोगादिरातो धातोर्यञ्वतः’ इति-
निष्ठानत्वम्, ‘पर्याख्यानम्, इत्यादौ णत्व च ‘शस्य यो वे’—त्यस्याऽसिद्धत्वेन
नेति प्रपञ्चितमन्यत्र विस्तरेण ।

‘અણાગય’ અનાગત=વૈયાટ્ત્યાદિકારણવશાન્નિર્દિષ્ટસમયાત્પ્રાગેત્વ તપઃ
 કરણમ્ (૧) ‘અશ્કત’ અતિક્રાન્ત=નિર્દિષ્ટસમયમતિક્રમ્ય તપોવિધાનમ્ (૨)।
 ‘કોટીસહિય’ કોટિસહિતમ્=યયા કોટયા તપઃ સમારબ્ધ તયૈવ તસ્ય
 પરિસમાપનમ્, અર્થાચ્ચતુર્ભક્તાદિના સમારબ્ધ તપશ્ચતુર્ભક્તાદિનૈવ સમાપનીયમ્।
 ‘ણિયટિય’ નિતરા યન્ત્રિત=પ્રતિજ્ઞયા પ્રતિવદ્ધ નિયન્ત્રિતમ્=વૈયાટ્ત્યાદિપ્રગાઢ-
 કારણસદ્ભાવેઽપિ ‘મયાઽવશ્યમેવામુકદિવસે તપઃ કર્તવ્ય’-મિતિ પ્રતિજ્ઞાયા
 કૃતાયા કારણે સત્યપિ નિયમિતતપશ્ચરણમ્ (૪)। એતચ્ચ વજ્રર્ષભનારાચસહન
 નધારિણાઽનગારેણૈવ ત્રિયતે। ‘સાગાર’ ઉત્સર્ગાઽપવાદહેતુગર્ભેણાઽઽકારેણ સહ
 વર્તત્ત્વમિતિ સાકારમ્, ઇહોત્સર્ગપક્ષેઽનાભોગ-સહસાકારાભ્યામવશ્ય ભાવ્યમ્,
 અપવાદપક્ષે ચ મહત્તરાધાકારૈ (૫)। ‘અણાગાર’ અવિદ્યમાના આકારાઃ=

(૧) અનાગત-વૈયાટ્ત્ય (વૈયાવચ્ચ) આદિ કારણવશ નિયત
 સમય સે પહેલે તપ કરના, (૨) અતિક્રાન્ત-નિયત સમયકે બાદ તપ
 કરના, (૩) કોટિસહિત-જિસ કોટિ (ચતુર્ભક્ત આદિ ક્રમ) સે
 પ્રારમ્ભ કિયા ઉસીસે સમાપ્ત કરના, (૪) નિયન્ત્રિત-વૈયાટ્ત્ય (વૈયાવચ્ચ)
 આદિ પ્રબલ કારણોં કે હો જાને પર ભી સકલ્પિત તપ કા પરિત્યાગ
 ન કરના, યહ પ્રત્યાખ્યાન વજ્રક્રપભનારાચસહનનધારી અનગાર
 હી કર સકતે હૈ। (૫) સાગાર-જિસમે ઉત્સર્ગ અવશ્ય રાખને યોગ્ય
 અણત્યણાભોગ ઔર સહસાગાર રૂપ તથા અપવાદ (મહત્તર આદિ)
 રૂપ આગાર હો ઉસે સાગાર કહતે હૈ, (૬) અણાગાર-જિસમે ઉક્ત

(૧) અનાગત-વૈયાટ્ત્ય (વૈયાવચ્ચ) આદિ કારણ વશ નિયત (નિર્ણય
 કરેલા) સમય પહેલા તપ કરવું, (૨) અતિક્રાન્ત નિયત (નિર્ણય કરેલા) સમય
 પછી તપ કરવું, (૩) કોટિસહિત-જે કોટિ (ચતુર્ભક્ત આદિ ક્રમ) થી પ્રારભ
 કર્યો તેનાથીજ સમાપ્ત કરવું, (૪) નિયન્ત્રિત-વૈયાટ્ત્ય આદિ પ્રબલ કારણો
 બની જાય તોપણ સકલ્પ કરેલા તપનો પરિત્યાગ ન કરવો, આ પ્રત્યાખ્યાન
 વજ્રક્રપભનારાચ-સહનન-ધારી અણગારજ કરી શકે છે, (૫) સાગાર-જેમા
 ઉત્સર્ગ અવશ્ય રાખવા યોગ્ય “અણત્યણાભોગ” અને “સહસાગાર રૂપ”
 તથા અપવાદ (મહત્તર આદિ) રૂપ આગાર હોય તેને સાગાર કહે છે
 (૬) અણાગાર-જેમા રૂપ આગાર (છટ) રાખવામા નહિ આવે

અનાભોગસહસાકારવ્યતિરિક્તા મહત્તરાદયો યત્ર તદનાકારમ્ (૬) । ‘પરિમાણકૃત’ પરિમાણ=દત્ત્યાદિરૂપ કૃત=વિઠિત ચ્ચસ્મિસ્તત્ (૭) । ‘નિરવશેષ’ નિર્ગતાનિ અવશેષાણિ=અવશિષ્ટાન્યશનપાનાદીનિ યત્ર તત્, સર્વથાઽશનાદિપરિત્યાગરૂપમિત્યર્થઃ (૮) । ‘સકેય’ સકેતઃ=અઙ્ગુલ્યાદિચાલનસ્વરૂપશ્ચિહ્નવિશેષઃ, સોઽસ્મિન્નસ્તીતિ સકેતમ્^૧ -અઙ્ગુલ્યાદિસકેતાવધિકૃમિત્યર્થઃ, મુષ્ટિમોચનાઽઙ્ગુલ્યાદિપરિચાલનાદિક્રિયાતઃ પ્રાગેય પ્રત્યાખ્યાનમિતિ ભાવઃ (૯) । ‘અદ્દાણ’ અદ્દા=કાલો=મુહૂર્ત્તપૌરુષ્યાદિકસ્તસ્યા (૧૦) । પ્રત્યાખ્યાનમિતિ દશસ્વપિ સમ્વધ્યતે । અદ્દાપ્રત્યાખ્યાન ચાનેકયા તદુપદર્શ્યતે—

(૧) નમોક્કારસહિયપચ્ચક્ષાણ—

ઉગ્ગાણ સૂરે નમુક્કારસહિય પચ્ચક્ષામિ ચઉવિહપિ આહાર અસણ
પાણ યાહમ સાહમ અન્નતથણાભોગેણ (૧) સહસાગારેણ
(૨) વોસિરામિ ।

અપવાદ રૂપ આગાર (છૂટ) ન રક્ષે જાય્ઁ ઉસે અણાગાર કહતે હૈં,
(૭) પરિમાણકૃત—જિસમેં દત્તિ (દાત) આદિકા પરિમાણ ક્રિયા જાય ।
(૮) નિરવશેષ—જિસમેં અશનાદિ કા સર્વથા ત્યાગ હો । (૯) સકેત—
જિસમે મુટ્ઠી ખોલ્ને આદિ કા સકેત હો, જૈસે—‘મેં જતક મુટ્ઠી
નહીં ખોલ્લૂંગા તત્કાલ મેરે પ્રત્યાખ્યાન હૈં’ ઇત્યાદિ । (૧૦) અદ્દા-
પ્રત્યાખ્યાન—મુહૂર્ત્ત પૌરુષી આદિ કાલ સમ્બન્ધી પ્રત્યાખ્યાન । ઇસકે
અનેક ભેદ હૈં, ઉનમેં સે મુખ્ય ૨ દસ ભેદ કહતે હૈં જો સસ્કૃત
ટીકા મે સ્પષ્ટ હૈં ॥ સૂ. ૧ ॥

તેને અણાગાર કહે છે (૭) પરિમાણકૃત—જેમા દત્તિ (દાત) અદિનું પરિમાણ
કરવામા આવે (૮) નિરવશેષ—જેમા અશનાદિનો સર્વથા ત્યાગ હોય (૯) સકેત—
જેમા મુઠ્ઠી ખોલવા આદિનો સકેત હોય, જેવી રીતે કે — “હું જ્યાં સુધી મુઠ્ઠી
નહિ ખોલુ ત્યાં સુધી મારે પ્રત્યાખ્યાન છે” ઇત્યાદિ. (૧૦) અદ્દાપ્રત્યાખ્યાન—
મુહૂર્ત્તપૌરુષી આદિ કાલ સમ્બન્ધી પ્રત્યાખ્યાન તેના અનેક ભેદ છે, તેમા મુખ્ય
મુખ્ય દસ ભેદ કહે છે જે સસ્કૃત ટીકામા સ્પષ્ટ છે (સૂ.૧)

૧ અર્શ આદિત્વાન્મત્વર્થીયોઽચ્ ।

‘અણાગય’ અનાગત=વૈયાવૃત્ત્યાદિકારણવશાદિર્દિષ્ટસમયાત્પાગેત્ર તપઃ
 કરણમ્ (૧) ‘અદ્વિત’ અતિક્રાન્ત=નિર્દિષ્ટસમયમતિક્રમ્ય તપોવિધાનમ્ (૨)।
 ‘કોટીસહિય’ કોટિસહિતમ્=યયા કોટયા તપઃ સમારબ્ધ તયૈવ તસ્ય
 પરિસમાપનમ્, અર્થાચ્ચતુર્ભક્તાદિના સમારબ્ધ તપશ્ચતુર્ભક્તાદિનૈવ સમાપનીયમ્।
 ‘ણિયટિય’ નિતરા યન્ત્રિત=પતિજ્ઞયા પતિવદ્ધ નિયન્ત્રિતમ્=વૈયાવૃત્ત્યાદિપ્રગાઢ-
 કારણસદ્ભાવેડપિ ‘મયાડવશ્યમેવામુકદિવસે તપઃ વર્તવ્ય’-મિતિ પ્રતિજ્ઞાયા
 કૃતાયા કારણે સત્યપિ નિયમિતતપશ્ચરણમ્ (૪)। એતન્ન વજ્રર્ષભનારાચસહન
 નધારિણાડનગારેણૈવ ક્રિયતે। ‘સાગાર’ ઉત્સર્ગાડપવાદદેતુગર્ભેનાડકારેણ સહ
 વર્તત્ત્વમ્ ઇતિ સાકારમ્, ઇહોત્સર્ગપક્ષેડનાભોગ-સહસાકારાભ્યામવશ્ય ભાવ્યમ્,
 અપવાદપક્ષે ચ મહત્તરાધાકારૈ (૫)। ‘અણાગાર’ અવિચ્છિન્ના આકારા=

(૧) અનાગત-વૈયાવૃત્ત્ય (વેયાવચ્ચ) આદિ કારણવશ નિયત
 સમય સે પહેલે તપ કરના, (૨) અતિક્રાન્ત-નિયત સમય કે બાદ તપ
 કરના, (૩) કોટિસહિત-જિસ કોટિ (ચતુર્ભક્ત આદિ ક્રમ) સે
 પ્રારમ્ભ કિયા ઉસીસે સમાપ્ત કરના, (૪) નિયન્ત્રિત-વૈયાવૃત્ત્ય (વેયાવચ્ચ)
 આદિ પ્રબલ કારણો કે હો જાને પર ભી સકલ્પિત તપ કા પરિત્યાગ
 ન કરના, યહ પ્રત્યાખ્યાન વજ્રક્રષ્ણભનારાચસહનનધારી અનગાર
 હી કર સકતે હૈ। (૫) સાગાર-જિસમે ઉત્સર્ગ અવશ્ય રાખને યોગ્ય
 અણત્યણાભોગ ભૌર સહસાગાર રૂપ તથા અપવાદ (મહત્તર આદિ)
 રૂપ આગાર હો ઉસે સાગાર કહતે હૈ, (૬) અણાગાર-જિસમે ઉક્ત

(૧) અનાગત-વૈયાવૃત્ત્ય (વેયાવચ્ચ) આદિ કારણ વશ નિયત (નિર્ણય
 કરેલા) સમય પહેલા તપ કરવું, (૨) અતિક્રાન્ત નિયત (નિર્ણય કરેલા) સમય
 પછી તપ કરવું, (૩) કોટિસહિત-જે કોટિ (ચતુર્ભક્ત આદિ ક્રમ) થી પ્રારંભ
 કર્યો તેનાથીજ સમાપ્ત કરવું, (૪) નિયન્ત્રિત-વૈયાવૃત્ત્ય આદિ પ્રબલ કારણો
 બની બીજા તોપણ સકલ્પ કરેલા તપનો પરિત્યાગ ન કરવો, આ પ્રત્યાખ્યાન
 વજ્રક્રષ્ણભનારાચ-સહનન-ધારી અણગારજ કરી શકે છે, (૫) સાગાર-જેમા
 ઉત્સર્ગ અવશ્ય રાખવા યોગ્ય “અણત્યણાભોગ” અને “સહસાગાર રૂપ”
 તથા અપવાદ (મહત્તર-મોટા આદિ) રૂપ આગાર હોય તેને સાગાર કહે છે
 (૬) અણાગાર-જેમા કહેલા અપવાદ રૂપ આગાર (છટ) રાખવામા નહિ આવે

અનાભોગસહસાકારવ્યતિરિક્તા મહત્તરાદયો યત્ર તદનાકારમ્ (૬) । ‘પરિમાણકૃત’ પરિમાણ=દત્ત્યાદિરૂપ કૃત=વિઠિત યસ્મિન્નત્ (૭) । ‘નિરવશેષ’ નિર્ગતાનિ અવશેષાણિ=અવશિષ્ટાન્યશનપાનાદીનિ યત્ર તત્, સર્વથાઽશનાદિપરિત્યાગરૂપમિત્યર્થઃ (૮) । ‘સકેય’ સદ્કેતઃ=અદ્ભુલ્યાદિચાલનસ્વરૂપશ્ચિહ્નવિશેષ, સોઽસ્મિન્નસ્તીતિ સદ્કેતમ્^૧ -અદ્ભુલ્યાદિસદ્કેતાવધિકમિત્યર્થઃ, મુષ્ટિમોચનાઽદ્ભુલ્યાદિપરિચાલનાદિ-ક્રિયાતઃ પ્રાગેવ પ્રત્યાખ્યાનમિતિ ભાવઃ (૯) । ‘અદ્દાપ્’ અદ્દા=કાલો=મુદ્દૂર્તપૌરુષ્યાદિકસ્તસ્યાઃ (૧૦) । પ્રત્યાખ્યાનમિતિ દશસ્વપિ સમ્બન્ધ્યતે । અદ્દાપ્રત્યાખ્યાન ચાનેકથા તદુપદર્શ્યતે—

(૧) નમોક્કારસહિયપચ્ચક્ષાણ—

ઉગ્ગાપ્ સૂરે નમુક્કારસહિય પચ્ચક્ષામિ ચત્તવિહપિ આહાર અસણ
પાણ ખાડમ સાડમ અન્નતથણાભોગેણ (૧) સહસાગારેણ
(૨) વોસિરામિ ।

અપવાદ રૂપ આગાર (છૂટ) ન રક્ષે જાય્ઁ ઉસે અણાગાર કહતે હૈં,
(૭) પરિમાણકૃત—જિસમેં દત્તિ (દાત) આદિકા પરિમાણ ક્રિયા જાય ।
(૮) નિરવશેષ—જિસમે અશનાદિ કા સર્વથા ત્યાગ હો । (૯) સકેત—
જિસમે મુટ્ઠી ખોલને આદિ કા સકેત હો, જૈસે—‘મેં જવતક મુટ્ઠી
નહીં ખોલ્લુંગા તવતક મેરે પ્રત્યાખ્યાન હૈં’ ઇત્યાદિ । (૧૦) અદ્દા-
પ્રત્યાખ્યાન—મુદ્દૂર્ત પૌરુષી આદિ કાલ સમ્બન્ધી પ્રત્યાખ્યાન । ઇસકે
અનેક ભેદ હૈં, ઉનમેં સે મુખ્ય ૨ દસ ભેદ કહતે હૈં જો સસ્કૃત
ટીકા મે સ્પષ્ટ હૈં ॥ સૂ. ૧ ॥

તેને અણાગાર ઝહે છે (૭) પરિમાણકૃત—જેમા દત્તિ (દાત) આદિનુ પરિમાણ
કરવામા આવે (૮) નિરવશેષ—જેમા અશનાદિનો સર્વથા ત્યાગ હોય (૯) સકેત—
જેમા મુઠ્ઠી ખોલવા આદિનો સકેત હોય, જેવી રીતે કે — “હુ જ્યા મુઠ્ઠી મુઠ્ઠી
નહિ ખોલુ ત્યા મુઠ્ઠી મારે પ્રત્યાખ્યાન છે” ઇત્યાદિ (૧૦) અદ્દાપ્રત્યાખ્યાન—
મુદ્દૂર્તપૌરુષી આદિ કાલ સમ્બન્ધી પ્રત્યાખ્યાન તેના અનેક ભેદ છે, તેમા મુખ્ય
મુખ્ય દસ ભેદ કહે છે જે સસ્કૃત ટીકામા સ્પષ્ટ છે (સૂ. ૧)

૧ અર્શ આદિત્વાન્મત્વર્થીયોઽચ્ ।

(९) अभिगहपञ्चक्खाणं—

उग्गए सूरे गठिसहियं मुट्टिसहियं पञ्चक्खामि-चउव्विहपि
आहारं असण पाणं खाइमं साइमं अन्नत्थणाभोगेणं (१),
सहसागारेणं (२), महत्तरागारेणं (३), सव्वसमाहिवत्तियागारेणं
(४) वोसिरामि ।

(१०) निव्विगयपञ्चक्खाणं—

उग्गए सूरे निव्विगइय पञ्चक्खामि-चउव्विहपि आहार-असणं
पाणं खाइम-साइम अन्नत्थणाभोगेणं (१), सहसागारेणं
(२), लेवालेवेणं (३), गिहत्थससट्ठेणं (४) उक्खित्तविवेगेणं
(५), पडुच्चमक्खिण्णं (६), पारिट्ठावणियागारेणं (७), महत्तरा-
गारेण (८), सव्वसमाहिवत्तियागारेणं (९) वोसिरामि ॥ सू० १ ॥



प्रत्याख्यानों के आगारों का यन्त्र

आगार	अन्वत्य	सहसा	पच्छन	दिसा	साहु	सन्व	महत्तरा	सागा	आउ-	गुरु	पारिडा-	ले	गिह-	उकिखत्ता	पडुच्च	आगार
सख्या	प्रत्याख्यान	भागेण	गारेण	कालेण	मोहेण	वयणेण	वत्तिया	गारेण	रिया	पसारेण	गारेण	वणिया-	ले	ले	सद्वेण	सख्या
१	नवकारमी	१	१	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	२
२	पौरुषी	१	१	१	१	१	१	०	०	०	०	०	०	०	०	६
३	पुरिमवद	१	१	१	१	१	१	०	०	०	०	०	०	०	०	७
४	एकाशन	१	१	०	०	०	१	१	१	१	१	०	०	०	०	८
५	एकलठाण	१	१	०	०	०	१	१	०	१	१	०	०	०	०	७
६	आबिल	१	१	०	०	०	१	१	०	०	१	१	१	१	०	८
७	चउत्थ भक्त	१	१	०	०	०	१	१	०	०	१	०	०	०	०	५
८	दिवसचरिम	१	१	०	०	०	१	१	०	०	०	०	०	०	०	४
९	अभिग्रह	१	१	०	०	०	१	१	०	०	०	०	०	०	०	४
१०	नीची	१	१	०	०	०	१	१	०	०	१	१	१	१	१	९

પ્રત્યાખ્યાનના આગારના ચન્દ્ર

આગાર સખ્યા	પ્રત્યાખ્યાન	અવત્ય બાહ્ય ગોળ	સહસાપચ્છન્ન ગારેણકાલેણ	દિસા સહિ ણ	સાહિ વય ણેણ	સંવ સમા હિ વસિયા	મહત્ત રા ગારેણગારેણ	કાકિહિ વસા રેણ	પુરુ કાકિ હિ	પારિહા વિયા ગારેણ	સેવા સેવેણ	ક સ રેણ	વિવેકિ પુરુ તા	પરુચ્ચ મદિખિ- એણ	આગાર સખ્યા
૧	નવકારસી	૧	૧	૦	૦	૦	૦	૦	૦	૦	૦	૦	૦	૦	૨
૨	પોરથી	૧	૧	૧	૧	૧	૦	૦	૦	૦	૦	૦	૦	૦	૬
૩	પુરિમહદ	૧	૧	૧	૧	૧	૧	૦	૦	૦	૦	૦	૦	૦	૭
૪	એકાશન	૧	૧	૦	૦	૧	૧	૧	૧	૧	૦	૦	૦	૦	૮
૫	એકલઠાણુ	૧	૧	૦	૦	૧	૧	૦	૧	૧	૦	૦	૦	૦	૭
૬	આમિલ	૧	૧	૦	૦	૧	૧	૦	૦	૧	૧	૧	૧	૦	૮
૭	ચઉચ્ચમકત	૧	૧	૦	૦	૧	૧	૦	૦	૧	૦	૦	૦	૦	૫
૮	દિવસચરિમ	૧	૧	૦	૦	૧	૧મ	૦	૦	૦	૦	૦	૦	૦	૪
૯	અમિત્રહ	૧	૧	૦	૦	૧	૧મ	૦	૦	૦	૦	૦	૦	૦	૪
૧૦	નીવી	૧	૧	૦	૦	૧	૨	૦	૦	૧	૧	૧	૧	૧	૯

एव यथाशक्ति प्रत्याख्याय गुरोरभिमुखस्तदभावे पूर्वोभिमुख उत्तराभिमुखो वा भूत्वा दक्षिण जानु भूमौ सस्थाप्य वाम चोर्ध्वीकृत्य साञ्जलिपुट 'नमोत्थु ण' इति पठेत्, तथाहि—

॥ मूलम् ॥

नमोत्थुण अरिहताणं भगवताणं आङ्गराण तित्थयराण
सयसबुद्धाणं पुरिसुत्तमाण पुरिससीहाण पुरिसवरपुण्डरीआण
पुरिसवरगन्धहत्थीणं लोगुत्तमाण लोगनाहाण लोगहियाण लोग-
पईवाण लोगपज्जोअगराण अभयदयाण चक्खुदयाणं मग्गदयाण
सरणदयाणं जीवदयाण वोहिदयाण धम्मदयाण धम्मदेसयाण
धम्मनायगाणं धम्मसारहीण धम्मवरचाउरतचक्खवट्ठीण दीवो
ताण सरण गई पडट्ठा अप्पडिहयवरनाणदसणधराण विअट्ठ-
छउमाणं जिणाण जावयाण तिन्नाणं तारयाणं बुद्धाणं वोहयाणं
मुत्ताणं मोयगाण सव्वन्नूण सव्वदरिसीण सिवमयलरुमयमणंत-
मक्खयमव्वावाहमपुणरावित्तिसिद्धिगडनामधेय ठाणं सपत्ताण
नमो जिणाण जियभयाणं ॥ सू० २ ॥

॥ छाया ॥

नमोऽस्तु अर्हद्भ्यो भगवद्भ्य आदिकरेभ्यस्तीर्थकरेभ्यः स्वयसबुद्धेभ्यः
पुरुषोत्तमेभ्यः पुरुषसिंहेभ्यः पुरुषवरपुण्डरीकेभ्यः पुरुषवरगन्धहस्तिभ्यो लोको-

इस प्रकार यथाशक्ति प्रत्याख्यान करके गुरुके निकट और उनके न रहने पर पूर्व या उत्तर दिशा की ओर मुँह करके बैठे, और दाहिने जानु (घुटने) को जमीनसे अडा कर बायें जानु को ऊँचा रखकर उसके उपर अञ्जलिपुट धरकर 'नमोत्थु ण' का पाठ बोले—

आ प्रमाणे यथाशक्ति प्रत्याख्यान करीने गुरुनी पासे अने तेओनी डाङ्गरी न डाय तो पूर्व अथवा उत्तरदिशा तरफ मुण राणीने भेभु अने नभया पगना घुटणुने नमीनथी अडावी अर्थात् नीथो राणी तथा डाणा घुटणुने उथो राणी तेना उपर भे डाय नेडी “नमोत्थु णं” ने पाठ बोलवो—

ક્ષમેભ્યો લોકનાથેભ્યો લોકહિતેભ્યો લોકપ્રદીપેભ્યો લોકપ્રત્યોત્કરેભ્યઃ, અભય-
 દયેભ્યશ્ચહુર્દયેભ્યો માર્ગદયેભ્યઃ શરણદયેભ્યો જીવદયેભ્યો बोधिदयेभ्यो धर्म-
 दयेभ्यो धर्मदेशकेभ्यो धर्मनायकेभ्यो धर्मसारथिभ्यो धर्मवरचातुरन्तचक्रवर्त्ति-
 भ्यो द्वीपस्त्राण शरण गतिः प्रतिष्ठा अप्रतिद्वतरज्ञानदर्शनधरेभ्यो व्यावृत्तच्छब्दभ्यो
 जिनेभ्यो जापकेभ्यस्तीर्णेभ्यस्तारकेभ्यो जुद्धेभ्यो बोधकेभ्यो मुक्तेभ्यो मोचके
 भ्यः सर्वज्ञेभ्यः सर्वदर्शिभ्यः शिवमचलमरुजमनन्तमक्षयमव्यायाधमपुनरा
 वृत्तिसिद्धिगतिनामधेय स्थान सम्प्राप्तभ्यो नमो जिनेभ्यो जितभयेभ्यः ॥ सू० २ ॥

॥ टीका ॥

‘નમોત્યુ ણ’ નમોઽસ્તુ ‘ણ’ ઇતિ વાચ્યાલઙ્કારેઽવ્યયમ્ । ‘અરિહતાણ’
 અરીન્=રાગાદિરૂપાન્ શત્રૂન્ ઘ્નન્તિ=નાશયન્તીતિ વ્યુત્પત્ત્યાઽન્ન સિદ્ધાઽર્હતોરુમયોરરિ-
 હન્તૃપદેન ગ્રહણ બોધ્ય, તેભ્યોઽરિહન્તૃભ્યઃ, એવમગ્રેઽપિ સર્વત્રેદૃશસ્થલે । ‘ભગવતાણ’
 વ્યાખ્યાતો ભગવચ્છબ્દાર્થઃ । ‘આહ્ગરાણ’ આદૌ=પ્રથમતઃ સ્વસ્વશાસનાપેક્ષયા
 શ્રુતચારિત્રધર્મલક્ષણકાર્યકુર્વતિ તત્ચ્છીલા આદિકંરાસ્તેભ્યઃ ‘તિત્થયરાણ’તીર્થતે=
 પાર્યતે સસારમોહમહોદધિર્યેન યસ્માન્નસ્મિન્વેતિ તીર્થ=ચતુર્વિધઃ સદ્વસ્તત્કરણ-
 શીલત્વાત્ તીર્થકરાસ્તેભ્યઃ । ‘સયસબુદ્ધાણ’ સ્વય=પરોપદેશમન્તરેણ સમ્બુદ્ધાઃ=
 સમ્યક્તયા બોધ પ્રાપ્તાઃ-સ્વયસમ્બુદ્ધાસ્તેભ્ય । ‘પુરિસુત્તમાણ’ પુરુષેષુ ઉત્તમાઃ
 શ્રેષ્ઠા જ્ઞાનાન્યનન્તગુણવત્ત્વાત્ ઇતિ પુરુષોત્તમાસ્તેભ્ય । પુરિસસીહાણ’પુરુષેષુ સિંહા

કર્મ રૂપ શત્રુકો જીતને વાલે અરિહન્ત ઓર સિદ્ધ ભગવાન
 કો નમસ્કાર હો । શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મકી આદિ કરનેવાલે, જિસસે
 સસાર સમુદ્ર તિરા જાય ઉસે ‘તીર્થ’ કહતે હૈં, વહ તીર્થ ચાર પ્રકાર
 કા હૈ-સાધુ સાધ્વી આવક આવિકા ! હસ ચતુર્વિધ સઘ કી
 સ્થાપના કરને વાલે, સ્વય બોધકો પાને વાલે, જ્ઞાનાદિ અનન્ત ગુણોંકે

કર્મરૂપ શત્રુને જીતવાવાળા અરિહન્ત અને સિદ્ધ ભગવાનને નમસ્કાર થાય
 શ્રુતચારિત્ર રૂપ ધર્મની આદિ કરવાવાળા, જેનાથી સસારસમુદ્ર તરી શકાય તેને
 “તીર્થ” કહે છે, તે તીર્થ ચાર પ્રકારના છે, સાધુ-સાધ્વી, આવક અને આવિકા,
 એ ચતુર્વિધ સઘની સ્થાપના કરવાવાળા, સ્વય બોધને પ્રાપ્ત કરવાવાળા, જ્ઞાનાદિ
 અનન્ત ગુણોના ધારક હોવાથી પુરુષોત્તમા શ્રેષ્ઠ, રાગદ્વેષ આદિ શત્રુઓને પરાજય

૧-કુઓ હેતુતાચ્છીલ્યેતિ કર્તરિ ટઃ ।

रागद्वेषादिशत्रुपराजये दृष्टाद्भुतपराक्रमत्वादिति, यद्वा पुरुषाः सिंहा इवेति पुरुष-
सिंहास्तेभ्यः । 'पुरिसवरपुण्डरीयाण' पुण्डरीक=धवलकमल, वर च तत्पुण्डरीकं वर-
पुण्डरीक=धवलकमलप्रधान, पुरुषो वरपुण्डरीकमिवेत्युपमितसमासे पुरुषवरपुण्डरीक,
पुरुषवरपुण्डरीक च पुरुषवरपुण्डरीक च पुरुषवरपुण्डरीक चेत्यादिरीत्यैकशेषे
पुरुषवरपुण्डरीकाणि, तेभ्यः, भगवतो वरपुण्डरीकोपमा च विनिर्गताऽशुभमलीम-
सत्वात् सर्वैः शुभानुभावैः परिशुद्धत्वाच्च, यद्वा यथा पुण्डरीकाणि पद्माज्जाता-
न्यपि सलिले वर्द्धितान्यपि चोभयसम्बन्धमपहाय निर्लेपानीव जलोपरि रमणी-
यानि सन्दृश्यन्ते निजानुपमगुणगणत्रयेन सुरासुरनरनिकरशिरोधारणीयतयाऽ-
तिमहनीयानि परमसुगन्धास्पदानि च भवन्ति तथेमे भगवन्तः कर्मपद्माज्जाता
भोगाभ्योवर्द्धिताः सन्तोऽपि निर्लेपास्तदुभयतिवर्त्तन्ते गुणसम्पदाऽऽस्पदतया
च केवलादिगुणभावादखिलभव्यजनशिरोधारणीया भवन्तीति, विस्तरस्त्वत्र
शास्त्रान्तरेभ्योऽवलोकनीयः । 'पुरिसवरगन्धद्वयीण' गन्धयुक्ता हस्तिनो गन्ध-

धारक होनेसे पुरुषों में श्रेष्ठ, राग द्वेष आदि शत्रुओंका पराजय
करनेमें अलौकिक पराक्रम शाली होनेसे पुरुषों में सिंह के समान,
समस्त अशुभ रूप मलसे रहित होने के कारण विशुद्ध, श्वेतकमल
के समान निर्मल, अथवा जैसे कीचड़ से उत्पन्न और जलके योग
से बढा हुआ होकर भी कमल उन दोनों के ससर्ग को छोड़ कर
सदा निर्लेप रहा करता है और अपने अलौकिक सुगन्धि आदि
गुणों से देव मनुष्य आदि के शिरोभूषण बनता है, वैसेही भगवान्
कर्मरूप कीचड़ से उत्पन्न और भोगरूप जलसे बढे हुए होकर भी
उन दोनों के ससर्ग को छोड़कर निर्लेप रहते हैं, और केवलज्ञान
आदि गुणों से परिपूर्ण रहने के कारण भव्यजनों के शिरोधार्य होते

करवाभा अलौकिक पराक्रमशाली होवाथी पुरुषोभा सिंह समान, सर्व प्रकारना अशुभ
रूप मलथी रहित होवाना कारणे विशुद्ध श्वेत कमलना जेवा निर्मल, अथवा जेम
कादवभाथी उत्पन्न अने जल-पाणीना योगथी वधेवो होवा छता कमल ओ जन्नेनो
ससर्ग त्यल्ल हुमेशा निर्लेप रहे छे अने पोताना अलौकिक सुगन्ध आदि गुणोथी
देव मनुष्य आदिना शिरनु आभूषणु अने छे तेवी न्नी रीते सगवान् कर्मरूप कादवथी
उत्पन्न अने सोगरूप जलथी वधीने पणु ओ जन्नेनो ससर्ग त्यल्ल निर्लेप रहे
छे, अने केवल ज्ञान आदि गुणोथी परिपूर्ण रहेवाना कारणे सव्य लोवोने शिरोधार्य

ક્ષમેભ્યો લોકનાથેભ્યો લોકહિતેભ્યો લોકપ્રદીપેભ્યો લોકપ્રયોત્તરેભ્યઃ, અમય
 દયેભ્યશ્ચક્ષુર્દયેભ્યો માર્ગદયેભ્યઃ શરણદયેભ્યો જીવદયેભ્યો बोधिदयेभ्यो धर्म-
 दयेभ्यो धर्मदेशकेभ्यो धर्मनायकेभ्यो धर्मसारथिभ्यो धर्मवरचातुरन्तचक्रवर्ति-
 भ्यो द्वीपस्त्राण शरण गतिः प्रतिष्ठा अप्रतिहतपरज्ञानदर्शनधरेभ्यो व्यावृत्तच्छद्मभ्यो
 जिनेभ्यो जापकेभ्यस्तीर्णेभ्यस्तारकेभ्यो बुद्धेभ्यो बोधकेभ्यो मुक्तेभ्यो मोचके
 भ्यः सर्वज्ञेभ्यः सर्वदर्शिभ्यः शिवमचलमरुजमनन्तमक्षयमव्यायाधमपुनरा-
 वृत्तिसिद्धिगतिनामधेय स्थान सम्प्राप्तभ्यो नमो जिनेभ्यो जितभयेभ्यः ॥ सू० २ ॥

॥ टीका ॥

‘નમોત્યુ ણ’ નમોઽસ્તુ ‘ણ’ इति वाङ्मालङ्कारेऽव्ययम् । ‘अरिहताण’
 अरीन्=रागादिरूपान् शत्रून् घ्नन्ति=नाशयन्तीति व्युत्पत्त्याऽत्र सिद्धाऽर्हतोरुभयोररि-
 हन्तृपदेन ग्रहण बोध्य, तेभ्योऽरिहन्तृभ्यः, एवमग्रेऽपि सर्वत्रेदृशस्थले । ‘भगवताण’
 व्याख्यातो भगवच्छब्दार्थः । ‘आइगराण’ आदौ=प्रथमतः स्वस्वशासनापेक्षया
 श्रुतचारित्रधर्मलक्षणकार्यकुर्वन्ति तच्छीला आदिकं रास्तेभ्यः । ‘तित्थयराण’ तीर्थं=ते=
 पार्यते ससारमोहमहोदधिर्येन यस्मात्प्रस्मिन्वेति तीर्थं=चतुर्विधं सङ्घस्तत्करण-
 शीलत्वात् तीर्थकरास्तेभ्यः । ‘सयसबुद्धाण’ स्वयं=परोपदेशमन्तरेण सम्बुद्धाः=
 सम्यक्तया बोध प्राप्ताः-स्वयंसम्बुद्धास्तेभ्यः । ‘पुरिसुत्तमाण’ पुरुषेषु उत्तमाः
 श्रेष्ठा ज्ञानाद्यनन्तगुणवत्त्वात् इति पुरुषोत्तमास्तेभ्यः । ‘पुरिससीहाण’ पुरुषेषु सिंहा

કર્મ રૂપ શત્રુકો જીતને વાલે અરિહન્ત ઓર સિદ્ધ ભગવાન
 કો નમસ્કાર હો । શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મકી આદિ કરનેવાલે, જિસસે
 સસાર સમુદ્ર તિરા જાય ઉસે ‘તીર્થ’ કહતે હૈ, વહ તીર્થ ચાર પ્રકાર
 કા હૈ-સાધુ સાધ્વી શ્રાવક શ્રાવિકા ! હસ ચતુર્વિધ સઘ કી
 સ્થાપના કરને વાલે, સ્વયં બોધકો પાને વાલે, જ્ઞાનાદિ અનન્ત ગુણોકે

કર્મરૂપ શત્રુને હાતવાવાળા અરિહન્ત અને સિદ્ધ ભગવાનને નમસ્કાર થાય
 શ્રુતચારિત્ર રૂપ ધર્મની આદિ કરવાવાળા, જેનાથી સસારસમુદ્ર તરી શકાય તેને
 “તીર્થ” કહે છે, તે તીર્થ ચાર પ્રકારના છે, સાધુ-સાધ્વી, શ્રાવક અને શ્રાવિકા,
 એ ચતુર્વિધ સઘની સ્થાપના કરવાવાળા, સ્વયં બોધને પ્રાપ્ત કરવાવાળા, જ્ઞાનાદિ
 અનન્ત ગુણોના ધારક હોવાથી પુરુષોત્તમ શ્રી, રાગદ્વેષ આદિ શત્રુઓનો પરબંધ

૧-કૃત્વો હેતુતાચ્છીલ્યેતિ કર્તરિ ટ. ।

नाहाण' लोकानां=भव्यानां नाथाः=नेतारो योग^{१-२}क्षेमकरत्वादिति लोकनाथा-
स्तेभ्यः, 'लोगहियाण' लोकः=एकेन्द्रियादिः सर्वप्राणिगणस्तस्मै हिताः रक्षोपाय-
पथप्रदर्शकत्वालोकहितास्तेभ्यः । 'लोगपईवाण' लोकस्य=भव्यजनसमुदायस्य
प्रदीपास्तन्मनोऽभिनिविष्टानादिमिथ्यात्वतम पटलव्यपगमेन विशिष्टात्मतत्त्वप्रकाशक-
त्वादीपतुल्यास्तेभ्यः, यथा प्रदीपस्य सकलजीवार्थं तुल्यप्रकाशकत्वेऽपि चक्षु-
ष्मन्त एव तत्प्रकाशसुखभाजो भवन्ति न त्वन्धास्तथा भव्या एव भगवदनु-
भावसमुद्भूतपरमानन्दसन्दोहभाजो भवन्ति नाभव्या इति प्रतिबोधयितुं
प्रदीपदृष्टान्तः, अत एव च लोकपदेन भव्यानामेव ग्रहणम् । 'लोगपज्जोयगराण'
लोकशब्देनात्र-लोक्यते=दृश्यते केवलाऽऽलोकेन यथावस्थिततयेति व्युत्पत्त्या

और लब्ध रत्नत्रय के पालनरूप क्षेम के कारण होनेसे भव्य जीवों
के नायक । एकेन्द्रिय आदि सकल प्राणिगण के हितकारक । जिस
प्रकार दीपक सबके लिये समान प्रकाशकारी है तो भी नेत्रवाले ही
उससे लाभ उठा सकते हैं, नेत्रहीन नहीं, उसी प्रकार भगवान का
उपदेश सबके लिये समान हितकर होने पर भी भव्यजीव ही
उससे लाभ उठाते हैं, अभव्य नहीं, अतएव भव्यो के हृदय में
अनादिकालसे रहे हुए मिथ्यात्वरूप अन्धकार को मिटाकर आत्माके
यथार्थ स्वरूप को प्रकाशित करनेवाले । 'लोक' शब्दसे यहाँ लोक
और अलोक दोनों का ग्रहण है, अतएव केवलज्ञान रूपी आलोक

अलब्ध रत्नत्रयना लालक्ष्य योग अने लब्ध रत्नत्रयना पालनरूप क्षेमना कारण
होवाथी लब्ध होवोना नायक, एकेन्द्रिय आदि सकल प्राणिगणना हितकारक
ने प्रमाणे दीपक सर्वने भाटे समान प्रकाश आपनार छे तो पण नेत्रवाणा
होवे न तेने लाभ प्राप्त करी शके छे, पण नेत्र हीन प्राप्त करी शकता नथी,
ते प्रमाणे भगवानने उपदेश सोना भाटे समान हितकर होवा छताय लब्ध
होवे न तेने लाभ पाभी शके छे, अलब्ध होवे पाभी शकता नथी अटला भाटे
लब्ध होवोना हृदयमा अनादि कालधी रहल मिथ्यात्वरूप अन्धकारने निवारण
करी आत्माना यथार्थ स्वरूपने प्रकाशित करवावाणा लोक शब्दधी आ स्थणे

१-२—अलब्धलाभो योग, लब्धपरिरक्षण क्षेम, इह च प्रकरणादलब्ध-
लब्धपदाभ्यां रत्नत्रयस्य ग्रहणम् ।

હસ્તિનઃ, વરાધ, તે ગન્ધહસ્તિનો વરગન્ધહસ્તિનઃ, પુરુષા વરગન્ધહસ્તિનઃ
પુરુષવરગન્ધહસ્તિનસ્તેભ્યઃ । ગન્ધહસ્તિલક્ષણ યથા—

“યસ્ય ગન્ધ સમાધાય, પલાયન્તે પરે ગજાઃ ।

ત ગન્ધહસ્તિન વિગ્રાન્વૃપતેર્વિજયાવદ્મ” ॥ ઇતિ ।

અતઃ એવ યથા ગન્ધહસ્તિગન્ધમાધાય ગજાન્તરાણીતસ્તતો દ્રુત પલાય
ક્વાપિ નિલિલીપન્તે તદ્વદચિન્ત્યાતિશયપ્રભાવવશાદ્ગવદ્વિઠરણસમીરણગન્ધ
સમ્બધઃ^૧ગન્ધતો^૨પીતિ^૩—હમર—મરકાદય ઉપદ્રવા દ્રાગ્ દિશુ પ્રદ્રવન્તીતિ, ગન્ધ-
ગજાશ્રિતરાજવદ્ગવદાશ્રિતો ભવ્યગણઃ સર્વદા વિજયવાન્ ભવતીતિ ભવત્યુભયો-
ર્યુક્ત સાદૃશ્યમ્, ^૩એતદ્દેહ સર્વત્ર ચન્દ્રમુખાદિવદેકદેશિકૃતયૈવ ન સર્વવ્યાપકતયેતિ
નાત્ર કશ્ચિદપિ વિપશ્ચિતા કેનાપિ કર્તુ ક્ષમઃ ક્ષોદક્ષેમઃ । ‘લોગુત્તમાણ’ લોકેષુ=
ભવ્યસમાજેષુ ઉત્તમાશ્વતુર્લ્લિશદતિશય—પશ્ચત્રિંશદ્વાણીગુણોપેતત્વાત્ તેભ્યઃ । ‘લોગ-

હૈં । જિસકા ગન્ધ સૂંઘતે હી સબ હાથી હર કે મારે ભગ જાતે હૈં
ઉસ હાથી કો ‘ગન્ધહસ્તી’ કહતે હૈં, ઉસ ગન્ધહસ્તી કે આશ્રય
સે જૈસે રાજા સદા વિજયી હોતા હૈં ઉસી પ્રકાર ભગવાનકે અતિશય
સે દેશકે અતિવૃષ્ટિ—અનાવૃષ્ટિ આદિ સ્વચક્ર—પરચક્ર—ભયપર્યન્ત—છહ
પ્રકાર કી હૈતિ, ઓર મહામારી આદિ સમી ઉપદ્રવ તત્કાલ દૂર
હોજાતે હૈં, ઓર આશ્રિત ભવ્યજીવ સદા સબ પ્રકાર સે વિજયી હોતે
હૈં । ચોતીસ અતિશયોં ઓર વાણી કે પૈતીસ ગુણો સે યુક્ત હોને
કે કારણ લોગો મે ઉત્તમ, અલભ્ય રત્નત્રય કે લાભરૂપ યોગ

થાય છે જેનો ગંધ સુઘતાજ સર્વ હાથી હરીને ભાગી જાય છે તે હાથીને “ગન્ધ
હસ્તી” કહે છે તે ગંધહસ્તીના આશ્રયથી જેમ રાજા હમેશા વિજયી થાય છે તે
પ્રમાણે ભગવાનના અતિશયથી દેશ ॥ અતિવૃષ્ટિ અનાવૃષ્ટિ આદિ સ્વચક્ર પરચક્ર
—ભય પર્યન્ત છ પ્રકારની હૈતિ અને મહામારી આદિ સર્વ ઉપદ્રવો તત્કાલ દૂર થઈ
જાય છે, અને આશ્રિત ભવ્ય જીવો સદાય સર્વ પ્રકારથી વિજયવાન્ થાય છે ચોતીસ
અતિશયો અને વાણીના પાત્રીશ ગુણોથી યુક્ત હોવાના કારણે લોકોમાં ઉત્તમ,

૧-ગન્ધત=લેશત્વ ઇત્યર્થ, “ગન્ધો ગન્ધક આમોદે લેશે સવન્ધગર્વયો” ઇતિ કોશાત્ ।

૨-ઈતયો યથા—“અતિવૃષ્ટિરનાવૃષ્ટિર્મૂષિકા શલમા સ્વગા” । પ્રત્યાસન્નાશ્ર
રાજાનં પદેતા ઇતયં સ્મૃતા ॥” ઇતિ ।

૩-સાદૃશ્યમ્ ।

प्रदर्शयति, तथा भगवन्तोऽपि भवाऽरण्ये रागद्वेषलुण्ठाकलुण्ठिताऽऽत्मगुणधनेभ्यो
दुराग्रहपट्टिकाऽऽच्छादितज्ञानचक्षुर्भ्यो मिथ्यात्वोन्मार्गे पातितेभ्यस्तदपनयन-
पूर्वकं ज्ञानचक्षुर्दत्त्वा मोक्षमार्गे प्रदर्शयन्ति । एतदेव भद्रचन्तरेणाऽऽह-‘मग्गदयाण’
मार्गः=सम्यग्गत्तत्रयलक्षणः शिवपुरपथः, यद्वा विशिष्टगुणस्थानावापकः क्षयो-
पशमभावो मार्गस्तस्य दयाः=दातारस्तेभ्यः । ‘सरणदयाण’ शरण=परित्राण,
कर्मरिपुवशीकृततया व्याकुलानां प्राणिना रक्षणस्थानं वा तस्य दयास्तेभ्यः ।
‘जीवदयाण’ जीवेषु=एकेन्द्रियादिसमस्तप्राणिषु दया=सङ्कटमोचनलक्षणा
येषामिति, यद्वा जीवन्ति मुनयो येन स जीवः=सयमजीवित तस्य दयास्तेभ्यः ।
‘धम्मदयाण’ धर्मः=दुर्गतिप्रपतज्जन्तुसरक्षणलक्षणः श्रुतचारित्रात्मकस्तस्य दया-

(अरण्य) में राग-द्वेषरूप लुटेरो से ज्ञानादि गुण लुटाये हुए तथा
कदाग्रह रूप पट्टे से ज्ञाननेत्र को ढक कर मिथ्यात्व के गड्ढे में
गिराये हुए उन भव्य जीवों के उस कदाग्रह रूप पट्टे को दूर कर
उन्हे ज्ञान नेत्र देने वाले, अतएव सम्यक्करत्नत्रयस्वरूप मोक्ष
मार्ग, अथवा विशिष्ट गुण को प्राप्त कराने वाला क्षयोपशमभाव
रूप मार्ग को देनेवाले, कर्मशत्रुओं से दुःखित प्राणियों को शरण
(आश्रय) देनेवाले, पृथिव्यादि पञ्चजीवनिकाय में दया रखने वाले,
अथवा मुनियों के जीवनाधारस्वरूप सयमजीवित को देनेवाले,
सम-सवेग आदि के प्रकाशक, अथवा जिनवचन में रुचि को
देनेवाले, दुर्गति में पड़ते हुए प्राणियों के धारक, अथवा श्रुत-चारित्र
रूप धर्म को देनेवाले, धर्म के उपदेशक, धर्म के नायक अर्थात्

तथा कदाग्रह रूपी पाटा गांधी ज्ञाननेत्रने ढाँकीने मिथ्यात्व रूप पाठाभा नाथेवा
ते भव्य लोकोना कदाग्रह रूप पाटाने दूर करी तेमने ज्ञाननेत्र आपवावाणा, ओटले
के सभ्यक्ष रत्नत्रयस्वरूप मोक्षमार्ग, अथवा विशिष्ट गुण प्राप्त करानेवाले क्षयोपशम
भाव रूप मार्गना आपवावाणा कर्मशत्रुओधी दुःखित प्राणीओने शरण-आश्रय
देनार, पृथ्वी आदि पञ्चजीवनिकायमा दया राखवावाणा, अथवा मुनियोना लोवनाधार
स्वरूप सयमलोवनना देवावाणा सम सवेग आदिना प्रकाशक, अथवा जिनवचनमा
रुचि आपनार, दुर्गतिमा पडता लोकोने धारण करनार, अथवा श्रुत-चारित्र रूप
धर्मना देवावाणा धर्म उपदेशक धर्मना नायक अर्थात् प्रवर्तक धर्मना सारथी

લોકાલોકયોરુભયોર્ગ્રહણ, તેન લોકસ્ય=લોકાલોકલક્ષણસ્ય સકલપદાર્થસ્ય પ્રયોતઃ-લોકાલોકપ્રયોતસ્ત કર્તુ શીલ યેષા તે લોકાલોકપ્રયોતકરાઃ=સર્વલોક-પ્રકાશકરણશીલાસ્તેભ્યઃ, તાચ્છીલ્યે કર્તરિ ટઃ પ્રત્યયઃ । ‘અભયદયાણ’ ન ભયમભય ભયાનામ^૧ભાવો વા અભયમક્ષોભલક્ષણ આત્મનોડપ્રસ્થાવિશેષો મોક્ષ-સાધનભૂતમુત્કૃષ્ટધૈર્યમિતિ યાવત્, દયન્તે=દદતીતિ દયાઃ^૨, અભયસ્યાભય^૩ વા દયાઃ અભયદયા^૪, યદ્વા-અભયા=ભયવિરહિતા દયા=સર્વજીવસદ્કૃતપ્રતિમોચન-સ્વરૂપાડનુકમ્પા યેષા તેડભયદયાસ્તેભ્યઃ । ‘ચક્ષુદયાણ’ ચક્ષુઃ=જ્ઞાન નિશ્ચિલ-વસ્તુતત્ત્વાડવભાસકતયા ચક્ષુસાદૃશ્યાત્, તસ્ય દયાઃ=દાયકાચ્ચક્ષુર્દયાસ્તેભ્યઃ, યથા હરિણાદિશરણ્યેડરણ્યે લુપ્ટાકલુપ્ટિતેભ્યઃ પટ્ટિકાદિદાનેન ચક્ષુષિ પિધાય ઇસ્તપાદાદિ વદ્ધ્વા તૈર્ગતૈ પાતિતેભ્યઃ કશ્ચિત્પટ્ટિકાવપનોદનેન ચક્ષુર્દત્ત્વા માર્ગે

(પ્રકાશ)સે સમસ્ત લોકાલોક કે પ્રકાશ કરને ચાલે । મોક્ષ કે સાધક, ઉત્કૃષ્ટ ધૈર્યરૂપી અભય કો દેનેવાલે, અથવા સમસ્ત પ્રાણિયોં કે સકટ કો છુડાનેવાલી દયા (અનુકમ્પા)કે ધારક । જ્ઞાન નેત્ર કે દાયક, અર્થાત્ જૈસે કિસી ગહન વનમેં લુટેરોં સે લૂટે ગયે ઓર આંખોં પર પટ્ટી બાધકર તથા હાથ-પૈર પકડકર ગડ્ડે મેં ગિરાયે ગયે પથિક કે સબ બન્ધનો કો તોડકર કોઈ દયાલુ નેત્ર ચ્હોલ દેતા હૈ, હસી પ્રકાર ભગવાન મી સસારરૂપી અપાર કાન્તાર

લોક અને અલોક બન્નેનુ શ્રદ્ધા કરેલુ છે, એટલા માટે કેવળજ્ઞાન રૂપી આલોક (પ્રકાશ) થી સમસ્ત લોકાલોકનો પ્રકાશ કરવાવાળા મોક્ષના સાધક, ઉત્કૃષ્ટ ધૈર્યરૂપી અભયના દેવાવાળા, અથવા સમસ્ત પ્રાણીઓના સકટને છોડાવવાવાળી દયા (અનુકમ્પા)ના ધારક જ્ઞાન નેત્રના આપવાવાળા, અર્થાત્ જેમ કોઈ ગાઢ વનમા લુટારાથી લુટાએલા અને નેત્ર ઉપર પાટા બાધીને તથા હાથ પગને પકડીને ગહરા ખાડામા ફેંકી દીધા હોય તેવા મુમાક્ષરને કોઈ દયાળુ માણસ આવીને તેના તમામ બન્ધનો તોડીને નેત્રને ખોલી આપે છે, એ પ્રમાણે ભગવાન પણ સસાર રૂપી વિષમ વનમા રાગ-દ્વેષ રૂપી લુટારાઓથી જ્ઞાનાદિ ગુણ લુટાએલા

૧- ‘અવિઘ્ન’-મિત્યાદિવદભાવાર્થકનજા ‘અવ્યય વિભક્તી’-ત્યવ્યયીભાવ^૫ ।

૨- ‘દયા’-પચાદેરાકૃતિગણત્વાદચ્ ।

૩- અવ્યયીભાવપક્ષે પશુથા ‘નાવ્યયીભાવાદતોડમ્ત્વપશ્ચમ્યા’ ઇત્યમાદેશ ।

प्रदर्शयति, तथा भगवन्तोऽपि भवाऽरण्ये रागद्वेषलुण्टाकलुण्टिताऽऽत्मगुणधनेभ्यो
दुराग्रहपट्टिकाऽऽच्छादितज्ञानचक्षुर्भ्यो मिथ्यात्वोन्मार्गे पातितेभ्यस्तदपनयन-
पूर्वकं ज्ञानचक्षुर्दत्त्वा मोक्षमार्गं प्रदर्शयन्ति । एतदेव भङ्गचन्तरेणाऽऽह-‘मग्गदयाण’
मार्गः=सम्यग्दत्तत्रयलक्षणः शिवपुरपथः, यद्वा विशिष्टगुणस्थानावापकः क्षयो-
पशमभावो मार्गस्तस्य दयाः=दातारस्तेभ्यः । ‘सरणदयाण’ शरण=परित्राण,
कर्मरिपुवशीकृततया व्याकुलानां प्राणिना रक्षणस्थानं वा तस्य दयास्तेभ्यः ।
‘जीवदयाण’ जीवेषु=एकेन्द्रियादिसमस्तप्राणिषु दया=सङ्कटमोचनलक्षणा
येषामिति, यद्वा जीवन्ति मुनयो येन स जीवः=सयमजीवित तस्य दयास्तेभ्यः ।
‘धम्मदयाण’ धर्मः=दुर्गतिपपतज्जान्तुसरक्षणलक्षणः श्रुतचारित्रात्मकस्तस्य दया-

(अरण्य) में राग-द्वेषरूप लुटेरो से ज्ञानादि गुण लुटाये हुए तथा
कदाग्रह रूप पट्टे से ज्ञाननेत्र को ढक कर मिथ्यात्व के गड्ढे में
गिराये हुए उन भव्य जीवों के उस कदाग्रह रूप पट्टे को दूर कर
उन्हे ज्ञान नेत्र देने वाले, अतएव सम्यक्दत्तत्रयस्वरूप मोक्ष
मार्ग, अथवा विशिष्ट गुण को प्राप्त कराने वाला क्षयोपशमभाव
रूप मार्ग को देनेवाले, कर्मशत्रुओं से दुःखित प्राणियों को शरण
(आश्रय) देनेवाले, पृथिव्यादि पञ्चजीवनिकाय में दया रखने वाले,
अथवा मुनियों के जीवनाधारस्वरूप सयमजीवित को देनेवाले,
सम-सवेग आदि के प्रकाशक, अथवा जिनवचन में रुचि को
देनेवाले, दुर्गति में पडते हुए प्राणियों के धारक, अथवा श्रुत-चारित्र्य
रूप धर्म को देनेवाले, धर्म के उपदेशक, धर्म के नायक अर्थात्

तथा कदाग्रह इपी पाटा णाथी ज्ञाननेत्रने ढाडीने मिथ्यात्व इप णाडाभा नाथेवा
ते भव्य एवेना कदाग्रह इप पाटाने दूर करी तेमने ज्ञाननेत्र आपवावाणा, ओट्टे
ठे सम्यक् दत्तत्रयस्वरूप मोक्षमार्ग, अथवा विशिष्ट गुण प्राप्त करावनार क्षयोपशम
भाव इप मार्गना आपवावाणा कर्मशत्रुओथी दुःखित प्राणीओने शरण-आश्रय
देनार, पृथ्वी आदि पञ्चजीवनिकायमा दया राखवावाणा, अथवा मुनियोना एवनाधार
स्वरूप सयमजीवनना देवावाणा सम सवेग आदिना प्रकाशक, अथवा जिनवचनमा
रुचि आपनार, दुर्गतिमा पडता एवेने धारण करनार, अथवा श्रुत-चारित्र्य उप
धर्मना देवावाणा धर्म उपदेशक धर्मना नायक अर्थात् प्रवर्तक धर्मना सारथी

स्तेभ्यः^१ । ‘धम्मदेसयाण’ धर्मः प्रारूपतिपादितलक्षणस्तस्य देशकाः=उपदेश-
कास्तेभ्यः । ‘धम्मनायगाण’ धमस्य नायकाः=नेतारः प्रभव इति यावत्
धर्मनायकास्तेभ्यः । ‘धम्मसारहीण’ धर्मस्य सारथयः धर्मसारथयस्तेभ्यः, भग
वत्सु सारथित्वाऽऽरोपेण धर्मे रथत्वाऽऽरोपो व्यज्यत इति परम्परितरूपकमलङ्कार-
स्तस्माद् यथा सारथयो रथद्वारा तत्स्थमध्वनीन सुखपूर्वकमभीष्ट स्थान नयन्त्यु-
न्मार्गगमनादितश्च गतिरुन्धन्ति तथा भगवन्तो धर्मद्वारा मोक्षस्थानमिति भावः ।
‘धम्मवरचाउरतचक्कवट्टीण’ दान-शील-तपो-भावैः चतसृणां=नरकादिगतीनां
चतुर्णां वा कषायाणामन्तो=नाशो यस्मात्, अथवा चतस्रो गतीश्चतुरः कषायान्
वा अन्तयति=नाशयतीति, यद्वा चतुर्भिर्दान-शील-तपो-भावैः कृत्वा अन्तो^२=
रम्यः, अथवा चत्वारः=दानादयः अन्ताः=अवयवा यस्य, यद्वा चत्वारि=दाना-
दीनि अन्तानि=स्वरूपाणि यस्य, ‘अन्तोऽवयवे स्वरूपे च’ इति हेमचन्द्रः, स

प्रवर्त्तक, धर्म के सारथी अर्थात् जिस प्रकार रथपर चढ़े हुए को
सारथी रथके द्वारा सुखपूर्वक उसके अभीष्ट स्थान पर पहुँचाता
है उसी प्रकार भव्य प्राणियों को धर्मरूपी रथ के द्वारा सुखपूर्वक
मोक्ष स्थान पर पहुँचाने वाले, दान-शील-तप और भाव से नरक
आदि चार गतियों का अथवा चार कषायों का अन्त करने वाले,
अथवा चार दान शील तप और भाव से अन्त-रमणीय, या दान आदि
चार अन्त - अवयव वाले, अथवा दान आदि चार अन्त - स्वरूप वाले,

अर्थात् जेवी रीते रथ पर बैठेवाने सारथी रथ द्वारा सुखपूर्वक तेना धारेला स्थानके
पहुँचाये छे ते प्रमाणे लव्य प्राणीओने धर्मरूपी रथ वडे सुखपूर्वक मोक्ष स्थान
पर पहुँचायेवावाणा दान-शील-तप अने भावथी नरक आदि चार गतिओने।
अथवा चार कषायेने। अन्त करवावाणा, अथवा चार दान-शील-तप अने
भावथी अन्त-रमणीय, अथवा दान आदि चार अन्त-अवयववाणा, अथवा
दान आदि चार अन्त-स्वरूपवाणा श्रेष्ठ धर्मने “धर्मवरयातुरन्त” कहे छे, जेज

१-इहोक्तेषु सर्वत्र ‘त दयन्ते’ इत्यपव्याख्यानम् ‘अधीगर्थदयेशाम्-इति
कर्मणि पष्ठ्युपपत्तेः, शेषत्वाविवक्षाया द्वितीयाया सत्त्वेऽपि वा ‘कर्मण्यण्’ (३ ।
२ । १) इत्यणुत्पत्त्या ‘अभयदायेभ्य’ इत्याग्रनिष्ठमयोगापत्तेर्दुर्वारत्वादित्यास्तामिदम् ।

२-अन्तोः=रम्यः—‘मृताववसिते रम्ये समाप्तावन्त इप्यते’ इति विश्वकोषः ।

ચતુરન્તઃ, સ એવ ચાતુરન્તઃ^૧, સ્વાર્થિકઃ પ્રજ્ઞાઘણ, ચાતુરન્ત એવ ચક્ર જન્મ-જરા-
-મરણોચ્છેદકત્વેન ચક્રતુલ્યત્વાત્, વર ચ તત્ ચાતુરન્તચક્ર વરચાતુરન્તચક્ર,
વરપદેન રાજચક્રાપેક્ષયાઽસ્ય શ્રેષ્ઠત્વ વ્યજ્યતે, લોકદ્વયસાધકત્વાત્, ધર્મ એવ
વરચાતુરન્તચક્ર ધર્મવરચાતુરન્તચક્ર તાદૃશસ્ય ધર્માતિરિક્તસ્યાસમ્ભવાત્, અત
એવ સૌગતાદિધર્માભાસનિરાસઃ, તેષા તાત્ત્વિકાર્થપ્રતિપાદકત્વાભાવેન શ્રેષ્ઠત્વા-
ભાવાત્, ધર્મવરચાતુરન્તચક્રેણ વર્તિતુ શીલ યેષામિતિ ધર્મવરચાતુરન્તચક્ર-
વર્તિનસ્તેભ્યઃ, ચક્રવર્તિપદેન પદ્મચ્છંડાધિપતિસાદૃશ્ય વ્યજ્યતે, તથાહિ ચત્વારઃ=
ઉત્તરદિશિ હિમવાન્, શેષદિક્ષુ ચોષાધિભેદેન સમુદ્રાઃ અન્તાઃ=સીમાનસ્તેષુ સ્વામિત્વેન
ભવાશ્ચાતુરન્તાઃ, ચક્રેણ=રત્નભૂતપ્રહરણવિશેષેણ વર્તિતુ શીલ યેષા તે ચક્રવર્તિનઃ,
ચાતુરન્તાશ્ચ તે ચક્રવર્તિનશ્ચાતુરન્તચક્રવર્તિનઃ, ધર્મેણ=ન્યાયેન વરાઃ=શ્રેષ્ઠા
ઇતરરાજાપેક્ષયેતિ ધર્મવરાઃ ‘ધર્મા. પુણ્ય-યમ-ન્યાય-સ્વાભાવાઽઽચાર-સોમપાઃ’
ઇત્યમરઃ, તે ચ તે ચાતુરન્તચક્રવર્તિનશ્ચેતિ ધર્મવરચાતુરન્તચક્રવર્તિનઃ, યદ્વા
ચાતુરન્ત ચ તચ્ચક્ર-ચાતુરન્તચક્ર વર ચ તચ્ચાતુરન્તચક્ર-વરચાતુરન્તચક્ર, ધર્મો

શ્રેષ્ઠ ધર્મનો ‘ધર્મવરચાતુરન્ત’ કહેતે હૈં, યહી જન્મ જરા મરણ કે નાશક
હોને સે ચક્ર કે સમાન હૈ, અતએવ ધર્મવરચાતુરન્ત રૂપ ચક્ર કે ધારક ।
યહાં પર ‘વર’ પદ દેને સે રાજચક્ર કી અપેક્ષા ધર્મચક્ર કી ઉત્કૃષ્ટતા
સૂચિત કી ગયી હૈ, તથા સૌગત આદિ ધર્મ કા નિરાકરણ કિયા
ગયા હૈ, ક્યોં કિ રાજચક્ર કેવલ ઇસ લોકકા સાધક હૈ પરલોકકા
નહીં, તથા સૌગત આદિ ધર્મ યથાર્થ તત્ત્વોં કા નિરૂપક ન હોને સે
વહ શ્રેષ્ઠ નહીં હૈ । ‘ચક્રવર્તી’ પદ દેને સે તીર્થઙ્કરોં કો છદ્મ ચ્છંડ કે
અધિપતિ રાજા કી ઉપમા દી ગઈ હૈ, ક્યોં કિ વહ રાજા ભી ચાર
અર્થાત્ ઉત્તર દિશામેં હિમવાન ઓર પૂર્વ-દક્ષિણ-પશ્ચિમ દિશામેં

જન્મ જરા અને મરણનું નાશક હોવાથી ચક્ર સમાન છે એટલે ધર્મવરચાતુરન્ત રૂપ
ચક્રના ધારક અહિંઆ ‘વર’ પદ આપવાથી રાજચક્રની અપેક્ષા ધર્મચક્રની ઉત્કૃષ્ટતા
તથા સૌગત આદિ ધર્મનું નિરાકરણ કરવામા આ યુ છે કારણ કે -રાજચક્ર કેવલ આ
લોકનું સાધન છે, પરલોકનું નથી, તથા સૌગત આદિ ધર્મ યથાર્થ તત્ત્વનું નિરૂપક ન
હોવાથી તે શ્રેષ્ઠ નથી ‘ચક્રવર્તી’ પદ આપવાથી તીર્થઙ્કરોંને છ ખડના અધિપતિ રાજાની
ઉપમા આપી છે કારણ કે તે રાજા પણ ચાર અર્થાત્ ઉત્તર દિશામા હિમવાન્ અને

વરચાતુરન્તચક્રમિત્ર-ધર્મચરચાતુરન્તચક્ર તેન વર્તિતુ વર્તયિતુ વા શીલમેષામિતિ ।
 ‘દીવો’ દ્વીપઃ સસારસમુદ્રે નિમજ્જતા દ્વીપતુલ્યત્વાત્, ‘ત્રાણ’ ત્રાણ=કર્મ-
 કદર્થિતાના ભવ્યાના રક્ષણસક્ષણઃ, અત એવ તેષા ‘સરણગર્હ’ શરણગતિ:=
 આશ્રયસ્થાનમ્, ‘પદ્ધાણ’ પ્રતિષ્ઠાન=કાલત્રયેઽપ્યવિનાશિત્વેન સ્થિતઃ, ‘દીવો’-
 इत्यादीनि ‘પદ્ધા’ इत्यन्तानि સૌન્દર્યવાચતુર્થ્યર્થે પ્રથમૈકવચનાન્તાનિ, ‘ત્રાણ’-
 મિતિ નપુમસત્વ ‘પ્રતિષ્ઠે’-તિ સ્ત્રીત્વ ચ ભગવતઃ સર્વશક્તિમત્ત્વપ્રદર્શનાય । ‘અપ્પ-
 હિદ્ધવરનાણદસણધરાણ’ પ્રતિહત=ભિત્ત્યાધાવરણસ્વલ્પિત, ન પ્રતિહતમપ્રતિહત
 જ્ઞાન ચ દર્શન ચેતિ જ્ઞાનદર્શને, વરે=ત્રેષ્ઠે ચ તે જ્ઞાનદર્શને વરજ્ઞાનદર્શને=કેવલ
 જ્ઞાનકેવલદર્શને અપ્રતિહતે વરજ્ઞાનદર્શને-અપ્રતિહતવરજ્ઞાનદર્શને, ધરન્તીતિ ધરા
 અપ્રતિહતવરજ્ઞાનદર્શનયોર્ધરાઃ-અપ્રતિહતવરજ્ઞાનદર્શનધરા =આવરણરહિતકેવલજ્ઞાન-
 કેવલદર્શનધારિણસ્તેભ્યઃ । ‘પિઅદ્ધુહુમાણ’ ડાપ્યતે=આપ્રિયતે કેવલજ્ઞાનકેવલ
 દર્શનાદ્યાત્મનોઽનેતિ હુહુ=ઘાતિકર્મમૃન્દ જ્ઞાનાવરણીયાદિરૂપ વા કર્મજાતમ્,
 વ્યાવૃત્ત=નિવૃત્ત હુહુ યેભ્યસ્તે વ્યાવૃત્તહુહુજ્ઞાનસ્તેભ્યઃ । ‘જિણાણ’ જિનેભ્ય=
 સ્વય-રાગ-દ્વેષ-શત્રુજેતૃભ્યઃ । ‘જાવયાણ’ જાપયન્તિ=જયન્ત ભવ્યજીવગણ

લવણ સમુદ્ર છે સીમા जिसकी ऐसे भरतक्षेत्र पर एकशासन
 राज्य करता है । ससार समुद्रमें डूबते हुए जीवोंके एक मात्र
 आश्रय होने से द्वीप समान, कर्मों से सन्नत भव्य जीवों की
 रक्षामें दक्ष होने से त्राणरूप, उनको शरण देने के कारण शरण-
 गति-आश्रयस्थान । तीनों कालमें अविनाशी स्वरूपवाले होने से
 प्रतिष्ठानरूप । आवरण रहित केवलज्ञान केवलदर्शन के धारक ।
 ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का नाश करने वाले । राग-द्वेषरूप शत्रु

पूर्व-दक्षिण-पश्चिम दिशामा લવણ સમુદ્ર છે સીમા જેની એવા ભરત ક્ષેત્ર પર એક-
 शासन राज्य करे છે ससारसमुद्रमा डूबता एवोंने એકમાત્ર આશ્રય હોવાથી
 द्वीप समान, कर्मोंથી સત્તાપ પામેલા ભવ્ય એવાની રક્ષામા દક્ષ હોવાથી (કુશળ
 હોવાથી) ત્રાણરૂપ, તેઓને શરણ દેવાવાળા હોવાથી શરણગતિ-આશ્રયસ્થાન ત્રણે
 કાલમા અવિનાશી સ્વરૂપવાળા હોવાથી પ્રતિષ્ઠાન રૂપ આવરણરહિત કેવલજ્ઞાન
 કેવલ દર્શનના ધારક જ્ઞાનાવરણીય આદિ કર્મોના નાશ કરવાવાળા રાગ-દ્વેષરૂપ

धर्मदेशनादिना प्रेरयन्तीति जापकाः^१, तेभ्यः । 'तिन्नाण' स्वय ससारौघ तीर्णा-
स्तेभ्यः । 'तारयाण' तारयन्त्यन्यानिति तारकास्तेभ्यः । 'बुद्धाण' बुद्धेभ्यः=स्वय
बोध प्राप्तेभ्यः । 'बोहयाण' बोधयन्त्यन्यानिति बोधकास्तेभ्यः । 'मुत्ताण'
अमोचिपत स्वय कर्मपञ्चरादिति मुक्तास्तेभ्यः । 'मोयगाण' मुच्यमानानन्यान्
प्रेरयन्तीति मोचकास्तेभ्यः । 'सव्वन्नूण' सर्वे=सकलद्रव्य-गुण-पर्याय-
लक्षण वस्तुजात याथातथ्येन जानन्तीति सर्वज्ञास्तेभ्यः । 'सव्वदरिसीण' सर्वे=
समस्तपदार्थस्वरूप सामान्येन द्रष्टु शील येषा ते सर्वदर्शिनस्तेभ्यः । 'सिव'
शिव निखिलोपद्रवरहितात्वाच्छिव (कल्याण) मयम्, स्थानमित्यस्य विशेषण-
मिदम्, शिवादीना सर्वेषा द्वितीयान्तानामग्रेतनेन 'सम्प्राप्तेभ्य' इत्यनेन
सम्बन्धः । 'अयल' अचलम्=स्वाभाविकप्रायोगिकचलनक्रियाशून्यम् । 'अरुय'
अरुजम्-अविद्यमाना रुजा यस्मिंस्तत्, तत्रात्मनामविद्यमानशरीरमनस्कत्वादाधि-
व्याप्तिरहितमित्यर्थः । 'अणत्' अविद्यमानोऽन्तो=नाशो यस्य तत् । अत एव
'अक्खय' नास्ति लेशतोऽपि क्षयो यस्य तत्-अविनाशीत्यर्थः । 'अव्वावाह'
न विद्यते व्यावाधा=पीडा द्रव्यतो भावतश्च यत्र तत् । 'अपुणरावित्ति' अवि-
द्यमाना पुनरावृत्तिः=ससारे पुनरवतरण यस्मात् तत्, यत्र गत्वा न कदाचिद-
प्यात्मा विनिवर्त्तते, समाम्नातमन्यत्रापि-'न स पुनरावर्त्तते न स पुनरावर्त्तते'
इति । इत्थमुक्तशिवत्वादिविशेषणविशिष्टम् 'सिद्धिगइनामप्रेय' सिद्धिगतिरिति

को स्वय जीतने वाले और दूसरों को जीताने वाले । भवसमुद्र को
स्वय तैरने वाले और दूसरों को तिराने वाले । स्वय बोध को प्राप्त
करने वाले और दूसरों को प्राप्त कराने वाले । स्वय मुक्त होने
वाले और दूसरे को मुक्त कराने वाले । सर्वज्ञ, सर्वदर्शी तथा
निरुपद्रव, निश्चल, कर्मरोगरहित, अनन्त, अक्षय, बाधारहित,
पुनरागमनरहित, ऐसे सिद्धिस्थान अर्थात् मोक्ष को प्राप्त सिद्ध

शत्रुओंने पीतेज् एतवावाणा अने भील्लओंने एताववावाणा भवसमुद्रने
पीते तारवावाणा अने भील्लने तारवावाणा, स्वय बोध प्राप्त करनाश अने
भील्लने बोध प्राप्त करावनाश, स्वय मुक्त थवावाणा अने भील्लने मुक्त करनाश
सर्वज्ञ, सर्वदर्शी तथा निरुपद्रव, निश्चल, कर्मरोग रहित, अनन्त, अक्षय,

વરચાતુરન્તચક્રમિવ-ધર્મવરચાતુરન્તચક્ર તેન વર્તિતુ ર્તયિતુ વા શીલમેષામિતિ ।
 ‘દીવો’ દ્વીપઃ સસારસમુદ્રે નિમજ્જતા દ્વીપતુલ્યત્વાત્, ‘ત્રાણ’ ત્રાણ=કર્મ-
 કદર્થિતાના ભવ્યાના રક્ષણસક્ષણઃ, અત એવ તેષા ‘સરણગઈ’ શરણગતિઃ=
 આશ્રયસ્થાનમ્, ‘પદ્ધાણ’ પ્રતિષ્ઠાન=કાલત્રયેઽપ્યવિનાશિત્વેન સ્થિતઃ, ‘દીવો’-
 ઇત્યાદીનિ ‘પદ્ધા’ ઇત્યન્તાનિ સૌત્ત્વાચ્ચતુર્થ્યર્થે પ્રથમૈકવચનાન્તાનિ, ‘ત્રાણ’-
 મિતિ નપુમ્નકત્વ ‘પ્રતિષ્ઠે’-તિ સ્ત્રીત્વ ચ ભગવત્. સર્વશક્તિમત્ત્વપ્રદર્શનાય । ‘અપ્પ-
 હિદયવરનાણદસણધરાણ’ પ્રતિહત=ભિત્ત્યાઘાવરણસ્થલિત, ન પ્રતિહતમપ્રતિહત
 જ્ઞાન ચ દર્શન ચેતિ જ્ઞાનદર્શને, વરે=શ્રેષ્ઠે ચ તે જ્ઞાનદર્શને વરજ્ઞાનદર્શને=કેવલ-
 જ્ઞાનકેવલદર્શને અપ્રતિહતે વરજ્ઞાનદર્શને-અપ્રતિહતવરજ્ઞાનદર્શને, ધરન્તીતિ ધરા’
 અપ્રતિહતવરજ્ઞાનદર્શનયોર્ધરા’-અપ્રતિહતવરજ્ઞાનદર્શનધરા =આવરણરહિતકેવલજ્ઞાન-
 કેવલદર્શનધારિણસ્તેભ્યઃ । ‘પિઅટ્ટહુમાણ’ ડાપ્પતે=આત્રિયતે કેવલજ્ઞાનકેવલ-
 દર્શનાત્પાત્મનોઽનેતિ હ્લ્લ=ઘાતિકર્મમૃન્દ જ્ઞાનાવરણીયાદિરૂપ વા કર્મજાતમ્,
 વ્યાટ્ત=નિવૃત્ત હ્લ્લ યેભ્યસ્તે વ્યાટ્તચ્છજ્ઞાનસ્તેભ્યઃ । ‘જિણાણ’ જિનેભ્યઃ=
 સ્વય-રાગ-દ્વેષ-શત્રુજેતૃભ્યઃ । ‘જાવયાણ’ જાપયન્તિ=જયન્ત ભવ્યજીવગણ

લવણ સમુદ્ર છે સીમા जिसकी ऐसे भरतक्षेत्र पर एकशासन
 राज्य करता है । ससार समुद्रमें डूबते हुए जीवोंके एक मात्र
 आश्रय होने से द्वीप समान, कर्मों से सत्रस्त भव्य जीवों की
 रक्षामें दक्ष होने से त्राणरूप, उनको शरण देने के कारण शरण-
 गति-आश्रयस्थान । तीनों कालमें अविनाशी स्वरूपवाले होने से
 प्रतिष्ठानरूप । आवरण रहित केवलज्ञान केवलदर्शन के धारक ।
 ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का नाश करने वाले । राग-द्वेषरूप शत्रु

પૂર્વ-દક્ષિણ-પશ્ચિમ દિશામાં લવણ મસુદ્ર છે સીમા જેની એવા ભરત ક્ષેત્ર પર એક-
 શાસન રાજ્ય કરે છે સસારસમુદ્રમાં ડૂબતા એવોને એકમાત્ર આશ્રય હોવાથી
 દ્વીપ સમાન, કર્મોથી સતાપ પામેલા ભવ્ય એવોની રક્ષામાં દક્ષ હોવાથી (દ્રુશણ
 હોવાથી) ત્રાણરૂપ, તેઓને શરણ દેવાવાળા હોવાથી શરણગતિ-આશ્રયસ્થાન ત્રણે
 કાલમાં અવિનાશી સ્વરૂપવાળા હોવાથી પ્રતિષ્ઠાન રૂપ આવરણરહિત કેવલજ્ઞાન
 કેવલ દર્શનના ધારક જ્ઞાનાવરણીય આદિ કર્મોનો નાશ કરવાવાળા રાગ-દ્વેષરૂપ

धर्मदेशनादिना प्रेरयन्तीति जापकाः^१, तेभ्यः । 'तिन्नाण' स्वय ससारौघ तीर्ण-
स्तेभ्यः । 'तारयाण' तारयन्त्यन्यानि तारकास्तेभ्यः । 'बुद्धाण' बुद्धेभ्यः=स्वय
बोध प्राप्तेभ्यः । 'बोद्धयाण' बोधयन्त्यन्यानि बोधकास्तेभ्यः । 'मुक्ताण'
अमोचिपत स्वय कर्मपञ्जरादिति मुक्तास्तेभ्यः । 'मोयगाण' मुच्यमानानन्यान्
प्रेरयन्तीति मोचकास्तेभ्यः । 'सव्वन्नूण' सर्वे=सकलद्रव्य-गुण-पर्याय-
लक्षण वस्तुजात याथातथ्येन जानन्तीति सर्वज्ञास्तेभ्यः । 'सव्वदरिसीण' सर्वे=
समस्तपदार्थस्वरूप सामान्येन द्रष्टु शील येषां ते सर्वदर्शिनस्तेभ्यः । 'सिव'
शिव निखिलोपद्रवरहितात्वाच्छिव (कल्याण) मयम्, स्थानमित्यस्य विशेषण-
मिदम्, शिवादीनां सर्वेषां द्वितीयान्तानामग्रेतनेन 'सम्प्राप्तेभ्य' इत्यनेन
सम्बन्धः । 'अयल' अचलम्=स्वाभाविकप्रायोगिकचलनक्रियाशून्यम् । 'अरुय'
अरुजम्-अविद्यमाना रजा यस्मिंस्तत्, तत्रात्मनामविद्यमानशरीरमनस्कत्वादाधि-
व्याधिरहितमित्यर्थः । 'अणत्' अविद्यमानोऽन्ती=नाशो यस्य तत् । अत एव
'अक्खय' नास्ति लेशतोऽपि क्षयो यस्य तत्-अविनाशीत्यर्थः । 'अव्वावाह'
न विद्यते व्यावाधा=पीडा द्रव्यतो भावतश्च यत्र तत् । 'अपुणरावित्ति' अवि-
द्यमाना पुनरावृत्ति=ससारे पुनरवतरण यस्मात् तत्, यत्र गत्वा न कदाचिद-
प्यात्मा विनिवर्त्तते, समाप्नातमन्यत्रापि- 'न स पुनरावर्त्तते न स पुनरावर्त्तते'
इति । इत्थमुक्तशिवत्वादिविशेषणविशिष्टम् 'सिद्धिगइनामप्रेय' सिद्धिगतिरिति

को स्वय जीतने वाले और दूसरों को जीताने वाले । भवसमुद्र को
स्वय तैरने वाले और दूसरों को तिराने वाले । स्वय बोध को प्राप्त
करने वाले और दूसरों को प्राप्त कराने वाले । स्वय मुक्त होने
वाले और दूसरे को मुक्त कराने वाले । सर्वज्ञ, सर्वदर्शी तथा
निरुपद्रव, निश्चल, कर्मरोगरहित, अनन्त, अक्षय, बाधारहित,
पुनरागमनरहित, ऐसे सिद्धिस्थान अर्थात् मोक्ष को प्राप्त सिद्ध

शत्रुओंने पीतेज् छुतावावाणां अने भीज्तेज्ने छुतावावावाणां भवसमुद्रने
पीते तारवावाणां अने भीज्तेने तारवावाणां, स्वय बोध प्राप्त करनाश अने
भीज्तेने बोध प्राप्त करावनाश, स्वय मुक्त थावावाणां अने भीज्तेने मुक्त करनाश
सर्वज्ञ, सर्वदर्शी तथा निरुपद्रव, निश्चल, कर्मरोग रहित, अनन्त, अक्षय,

નામધેય=નામ યસ્ય તત્ । ‘ઠાણ’ સ્થીયતેઽસ્મિન્નિતિ સ્થાન લોકાગ્રલક્ષણ
 ‘સપન્નાણ’ સમ્પ્રાપ્તેભ્યઃ=સમાશ્રિતેભ્યઃ । ‘નમો જિનાણ’ નમો જિનેભ્યઃ,
 કીદરેભ્યઃ ? ‘જિયમયાણ’ જિત મય યૈસ્તેભ્ય ઇતિ સિદ્ધપક્ષે, અર્હત્પક્ષે તુ
 ‘નમોત્થુણ જાત્ર સપાવિડમામસ્સ’ નમ્મેઽસ્તુ યાવત્સિદ્ધિગતિનામક સ્થાન
 સમ્પ્રાપ્તુકામાય, ‘ણ’ ઇતિવાક્યાલઙ્કારેઽવ્યયપદમ્ ॥ સૂ૦ ૨ ॥

ઇત્ય નમસ્કારાન્ત પ્રત્યાખ્યાનપ્રકરણ પરિસમાપ્ય સમ્પ્રતિ તત્પારણ
 સમાપનવિધિરુચ્યતે—‘ફાસિય’ ઇત્યાદિ ।

॥ મૂલમ્ ॥

ફાસિય (૧) પાલિય (૨) સોહિય (૩) તીરિય (૪)
 કિદ્દિય (૫) આરાહિય (૬) અણુપાલિય (૭) ભવઙ્, જ ચ ન
 ભવઙ્, તસ્સ મિચ્છા મિ-દુક્કહ ॥ સૂ૦ ૩ ॥

॥ છાયા ॥

સ્પૃષ્ઠ (૧) પાલિત (૨) શોધિત (૩) તીરિત (૪) કીર્તિતમ્ (૫)
 આરાધિતમ્ (૬) આજ્ઞયાઽનુપાલિત (૭) ભવતિ, યચ્ચ ન ભવતિ, તસ્ય મિથ્યા
 મયિ દુષ્કૃતમ્ ॥ સૂ૦ ૩ ॥

॥ ટીકા ॥

મયા સ્વીકૃત પ્રત્યાખ્યાનમિતિ શેષઃ, ‘ફાસિય’ સ્પૃષ્ઠ=કાયાદિના
 ભગવાન કો તથા મોક્ષ કો પ્રાપ્ત હોનેવાલે અરિહન્ત ભગવાન કો
 નમસ્કાર હો ॥ સૂ૦ ૨ ॥

હસ પ્રકાર નમસ્કારપર્યન્ત પ્રત્યાખ્યાન કી વિધિ કહ્કર અવ
 ઉસકે પારણ કી વિધિ દિશ્વલાતે હૈ—‘ફાસિય’ ઇત્યાદિ ।

મુઙ્ગ સે સ્વીકૃત પ્રત્યાખ્યાન કા કાય આદિ સે સેવન, વાર
 વાર ઉપયોગ દેકર સરક્ષણ, અતિચાર શોધન, સમાપ્તિકા સમય હો

બાધા રહિત, પુનરાગમન રહિત, એવા સિદ્ધ સ્થાન અર્થાત્ મોક્ષને પ્રાપ્ત થયેલા
 સિદ્ધ ભગવાનને તથા મોક્ષને પામવાવાળા અરિહન્ત ભગવાનને નમસ્કાર છે (સૂ૦૨)

આ પ્રમાણે નમસ્કારપર્યન્ત પ્રત્યાખ્યાનની વિધિ કહીને હવે તેને પાળવાની
 વિધિ બતાવે છે “ફાસિય” ઇત્યાદિ

માન્યથી સ્વીકૃત પ્રત્યાખ્યાનનું શરીર આદિથી સમ્યક્ સેવન, વાર વાર ઉપયોગ

सेवित (१), 'पालिय' पालित=मुहुर्मुहुरूपयोगदानेन सरक्षितम् (२), 'सोदिय' शोधित=तद्रताऽतिचारपरिमार्जनं कृतम् (३), 'तीरिय' तीरित=प्रत्याख्या-
नावधौ सम्पूर्णता गतेऽपि कश्चित्कालमवस्थाय तीर नीतमित्यर्थः (४), 'किदिय' कीर्तित=प्रत्याख्यानेऽस्मिन्निदं च कर्तव्यं मया कृतमित्येव तत्तन्नामोपादाय
गुरुपुरतो विनिवेदितमित्यर्थः (५), 'आराहिय' आ=समन्तात् राधितमा-
राधितम्=उत्सर्गापवादादिभिः समर्पादमन्तःकरणेन सेवितम् (६), 'आणाए
अणुपालिय' आज्ञयाऽनुपालित=श्रीजिनेन्द्रोक्तरीत्याऽनुष्ठितम् (७), 'भवइ'
भवति=अस्ति । 'ज च' यत् 'प्रागुक्तेषु स्पृष्टादिषु मन्त्रे' इत्यर्थात् चकारः

जाने पर भी कुछ देर विश्राम, 'प्रत्याख्यान में अमुक अमुक विधि
करनी चाहिये सो मैंने सब करली' इस प्रकार नामग्रहणपूर्वक
गुरुके समक्ष निवेदन, मर्यादापूर्वक अन्तःकरण से सेवन तथा
भगवान की आज्ञा के अनुसार पालन किया गया है तो भी
प्रमादवश उसमें जो कुछ त्रुटि रह गई हो तो 'तस्स मिच्छा मि

राभीने सरक्षय, अतिचार शोधन, समाप्ति समय था छताय थोड़ीवार विश्राम,
'प्रत्याख्यानमा अमुक अमुक विधि करवी लेछ्ये ते मे सर्व करी लीधी' के प्रमाणे
नाम-ग्रहण-पूर्वक गुरुनी पास निवेदन, मर्यादापूर्वक अन्तःकरण से सेवन तथा
भगवान की आज्ञा प्रमाणे पालन कर्तुं छे तो पण प्रमाद रहेवाथी तेमा ने कुछ त्रुटि
रही गछ छाय तो "तस्स मिच्छा मि दुक्कड" ते सम्बन्धी भाइ पाप निश्चय

નામધેય=નામ યસ્ય તત્ । ‘ઠાણ’ સ્થીયતેઽસ્મિન્નિતિ સ્થાન લોકાગ્રલક્ષણ
 ‘સપનાણ’ સમ્પ્રાપ્તેભ્યઃ=સમાશ્રિતેભ્યઃ । ‘નમો જિનાણ’ નમો જિનેભ્યઃ,
 કીદૃશેભ્યઃ ? ‘જિયમયાણ’ જિત મય યૈસ્તેભ્ય ઇતિ સિદ્ધપક્ષે, અર્ઠત્પક્ષે તુ
 ‘નમોત્થુણ જાત્ર સપાવિહમમસ્સ’ નમ્પોઽસ્તુ યાવત્તિસદ્ધિગતિનામક સ્થાન
 સમ્પ્રાપ્તુકામાય, ‘ણ’ ઇતિવાક્યાલઙ્કારેઽવ્યયપદમ્ ॥ સૂ૦ ૨ ॥

ઇત્ય નમસ્કારાન્ત પ્રત્યાખ્યાનપ્રકરણ પરિસમાપ્ય સમ્પ્રતિ તત્પારણ
 સમાપનવિધિરુચ્યતે—‘ફાસિય’ ઇત્યાદિ ।

॥ મૂલમ્ ॥

ફાસિય (૧) પાલિય (૨) સોહિય (૩) તીરિય (૪)
 કિટ્ઠિયં (૫) આરાહિય (૬) અણુપાલિય (૭) મવઙ્, જ ચ ન
 મવઙ્, તસ્સ મિચ્છા મિ-દુક્કહ ॥ સૂ૦ ૩ ॥

॥ છાયા ॥

સ્પૃષ્ઠ (૧) પાલિત (૨) શોવિત (૩) તીરિત (૪) કીર્તિતમ્ (૫)
 આરાધિતમ્ (૬) આજ્ઞયાઽનુપાલિત (૭) મવતિ, યચ્ચ ન મવતિ, તસ્ય મિથ્યા
 મયિ દુષ્કૃતમ્ ॥ સૂ૦ ૩ ॥

॥ ટીકા ॥

મયા સ્વીકૃત પ્રત્યાખ્યાનમિતિ શેષ, ‘ફાસિય’ સ્પૃષ્ઠ=કાયાદિના

ભગવાન કો તથા મોક્ષ કો પ્રાપ્ત હોનેવાલે અરિહન્ત ભગવાન કો
 નમસ્કાર હો ॥ સૂ૦ ૨ ॥

ઇસ પ્રકાર નમસ્કારપર્યન્ત પ્રત્યાખ્યાન કો વિધિ કહ્કર અવ
 ઉસકે પારણ કો વિધિ દિશ્વલાતે હૈ—‘ફાસિય’ ઇત્યાદિ ।

મુઙ્ગ સે સ્વીકૃત પ્રત્યાખ્યાન કા કાચ આદિ સે સેવન, વાર
 વાર ઉપયોગ દેકર સરક્ષણ, અતિચાર શોધન, સમાપ્તિકા સમય હો

બાધા રહિત, પુનરાગમન રહિત, એવા સિદ્ધ મ્યાન અર્થાત્ મોક્ષને પ્રાપ્ત થયેલા
 સિદ્ધ ભગવાનને તથા મોક્ષને પામવાવાળા અરિહન્ત ભગવાનને નમસ્કાર છે (સૂ૦૨)

આ પ્રમાણે નમસ્કારપર્યન્ત પ્રત્યાખ્યાનની વિધિ કહીને હવે તેને પાળવાની
 વિધિ બતાવે છે “ફાસિય” ઇત્યાદિ.

મારાથી સ્વીકૃત પ્રત્યાખ્યાનનું શરીર આદિથી સમ્પદ્ સેવન, વાર વાર ઉપયોગ

हिन्दी-परिशिष्ट

॥ वारह व्रतों के अतिचार सहित पाठ ॥

पहिला अणुव्रत-यूलाओ पाणाइवायाओ वेरमण, ब्रसजीव-वेडदिय तेडदिय चउरिंदिय पचिंदिय जानके पहिचानके सङ्कल्प करके उसमे स्वसम्बन्धी-शरीर के भीतर में पीडाकारी सापराधी को छोड निर-पराधी को आकुष्टी की बुद्धि (हनने की बुद्धि) से हनने का पच-क्खाण जावज्जीवाए दुविह तिबिहेण न करेमि, न कारवेमि, मणसा वयसा कायसा, ऐसे पहिले स्थूल प्राणातिपात-विरमण-व्रत के पंच अइयारा पेयाला जाणियव्वा, न समायरियव्वा, तजहा-ते आलोड वधे वहे उविच्छेए अइभारे भत्तपाणविच्छेए, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

दूजा अणुव्रत-यूलाओ मुसावायाओ वेरमण, कन्नालिए, गोवालिए, भोमालिए, णासावहारो (थापणमोसो) कूडसक्खिवज्जे (कूडी साख,) इत्यादिक मोटा झूठ बोलने का पचक्खाण जावज्जीवाए दुविह तिबिहेण न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा, कायसा, एव दूजा स्थूल मृपावाद विरमणव्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तजहा-ते आलोड सहसब्भक्खाणे, रहस्सब्भक्खाणे, सदारमंतभेए, मोसोवएसे, कूडलेहकरणे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

तीजा अणुव्रत-यूलाओ अदिन्नाटाणाओ वेरमणं, खात खनकर, गाठ खोलकर, ताले पर कुजी लगाकर, मार्ग मे चलते को लुट कर, पडी हुई धणियाती मोटी वस्तु जानकर लेना इत्यादि मोटा अद-त्तादान का पचक्खाण, सगे-सम्बन्धी, व्यापार-सवधी तथा पडी निर्भमी वस्तु के उपरान्त अदत्तादान का पचक्खाण जावज्जीवाए दुविह तिबिहेण न करेमि न कारवेमि, मणसा वयसा कायसा, एव तीजा स्थूल अदत्तादान विरमणव्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तजहा-ते आलोड तेनाहडे तक्करप्पओगे, विह्वरज्जा-इक्कमे, कूडतुले, कूडमाणे, तप्पडिरुवगववहारे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

१ 'स्वदारसन्तोष' ऐसा पुरुष को गोलना चाहिये, और स्त्री को स्वपतिसन्तोष ऐसा बोलना चाहिये ।

समुच्चयार्थ', 'न भवद्' न भवति=न जायते, 'तस्स मिच्छा मि दुक्कड' व्याख्यातपूर्वमिदमित्यलमात्रेडितेन ॥ सू० ३ ॥

इति श्रीविश्वविख्यात-जगद्वल्लभ-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषाकलितललित-
कलापाऽऽलापक-प्रविशुद्धग्रन्थपत्रनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-श्रीशाह-
छत्रपतिकोल्हापुरराजप्रदत्त 'जैनशास्त्राचार्य'-पदभूषित-कोल्हापुर-
राजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-
घासीलाल-व्रतिविरचितायाम् आवश्यकसूत्रस्य मुनि-
तोषण्याख्याया व्याख्याया षष्ठ
प्रत्याख्यानारख्यमभ्ययन समाप्तम् ॥ ६ ॥

॥ सम्पूर्णमिद सूत्रम् ॥



दुक्कड' उस सम्बन्धी मेरा पाप निष्फल हो-इत्यादि अर्थ पहले
की तरह जान लें ॥ सू० ३ ॥

॥ इति छठा अध्यायन सम्पूर्ण ॥
इति आवश्यक सूत्र की
मुनितोषणी टीका का
हिन्दी भवार्थ
सम्पूर्ण.



याओ। इत्यादि अर्थ प्रथम प्रमाणे नही लेवे। (सू० ३)

इति छठु अध्ययन स पूर्ण

इति आवश्यक सूत्रनी मुनितोषणी टीकाने शुद्धराती अनुवाद स पूर्ण



हिन्दी-परिशिष्ट

॥ वारह व्रतों के अतिचार सहित पाठ ॥

पहिला अणुव्रत-थूलाओ पाणाइवायाओ वेरमण, असजीव-वेडदिय तेडदिय चउरिंदिय पचिंदिय जानके पहिचानके सङ्कल्प करके उसमें स्वसम्बन्धी-शरीर के भीतर में पीडाकारी सापराधी को जेड निर-पराधी को आकुट्टी की बुद्धि (हनने की बुद्धि) से हनने का पञ्च-कखाण जावज्जीवाए दुविह तिबिहेण न करेमि, न कारवेमि, मणसा वयसा कायसा, ऐसे पहिले स्थूल प्राणातिपात-विरमण-व्रत के पंच अडयारा पेयाला जाणियव्वा, न समायरियव्वा, तजहा-ते आलोउ वधे वहे छविच्छेए अडभारे भत्तपाणविच्छेए, जो मे देवसिओ अडयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

दूजा अणुव्रत-थूलाओ मुसावायाओ वेरमण, कन्नालिए, गोवालिए, भोमालिए, नासावहारो (थापणमोसो) कूडसक्खिवज्जे (कूडी साख,) इत्यादिक मोटा झूठ बोलने का पञ्चकखाण जावज्जीवाए दुविह तिबिहेण न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा, कायसा, एवं दूजा स्थूल मृपावाद विरमणव्रत के पंच अडयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तजहा-ते आलोउ सहसब्भकखाणे, रहससब्भकखाणे, सदारमंतभेए, मोसोवएसे, कूडलेहकरणे, जो मे देवसिओ अडयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

तीजा अणुव्रत-थूलाओ अदिन्नाटाणाओ वेरमण, खात खनकर, गाठ ग्वोलकर, ताले पर कुजी लगाकर, मार्ग में चलते को लूट कर, पडी हुई धनियाती मोटी वस्तु जानकर लेना इत्यादि मोटा अदत्तादान का पञ्चकखाण, सगे-सम्बन्धी, व्यापार-सवधी तथा पडी निर्भ्रमी वस्तु के उपरान्त अदत्तादान का पञ्चकखाण जावज्जीवाए दुविह तिबिहेण न करेमि न कारवेमि, मणसा वयसा कायसा, एवं तीजा स्थूल अदत्तादान विरमणव्रत के पंच अडयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तजहा-ते आलोउ तेनाहडे तक्करप्पओगे, विम्हरज्जा-इक्कमे, कूडतुले, कूडमाणे, तप्पडिरुवगववहारे, जो मे देवसिओ अडयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

१ 'स्वदारसन्तोष' ऐसा पुरुष को बोलना चाहिये, और स्त्री को स्वपतिसन्तोष ऐसा बोलना चाहिये ।

चौथा अणुव्रत-थूलाओ मेहुणाओ वेरमण, ^१ सदारसतोसिए, अवसेसमेहुणविहिं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, देवदेवी सम्बन्धी दुविह तिविहेण न करेमि, न कारवेमि, मणसा वयसा कायसा, तथा मनुष्य-तिर्यञ्च-सम्बन्धी एगविह एगविहेण न करेमि कायसा, एव चौथा स्थूल मेहुणवेरमणव्रत के पच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तजहा ते आलोउ इत्तरियपरिग्गहियागमणे, अपरिग्गहियागमणे, अनगकीडा, परविवाहकरणे, कामभोगतिव्वाभिलासे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

पाचवा अणुव्रत-थूलाओ परिग्गहाओ वेरमण, खेत्त-वत्थु का यथापरिमाण, हिरणसुवणण का यथापरिमाण, धनधान्य का यथापरिमाण, दुपयचउप्पय का यथापरिमाण, कुवियधातु का यथापरिमाण, जो परिमाण किया है, उसके उपरान्त अपना करके परिग्रह रखने का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए, एगविह तिविहेण न करेमि मणसा वयसा कायसा, एवं पाचवा स्थूलपरिग्रह परिमाण-व्रत के पच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तजहा-ते आलोउ खेत्तवत्थुप्पमाणाइक्कमे हिरणसुवणणप्पमाणाइक्कमे धणधनप्पमाणाइक्कमे, दुपयचउप्पयप्पमाणाइक्कमे, कुवियप्पमाणाइक्कमे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

१२/११ छठा दिशिब्रत-उद्धदिशि का यथापरिमाण, अहोदिशि का यथापरिमाण किया है, इसके उपरान्त स्वेच्छा काया से आगे जाकर पाचआस्रव सेवन का पच्चक्खाण जावज्जीवाए^१ दुविह तिविहेण न करेमि न कारवेमि, मणसा वयसा कायसा, एव छठे दिशिब्रत के पच अइयारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा, तजहा ते आलोउ उद्धदिसिप्पमाणाइक्कमे, अहोदिसिप्पमाणाइक्कमे, तिरिअदिसिप्पमाणाइक्कमे, वित्तबुद्धी, सहअन्तरद्धा, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

सातवां व्रत-उवभोगपरिभोगविहिं पच्चक्खायमाणे उल्लुणियाविहि १, दतणविहि २, फलविहि ३, अवभगणविहि ४, उवट्टणविहि ५, मज्जणविहि ६, वत्थविहि ७, विलेवणविहि ८, पुप्फविहि ९, आभरणविहि १०, धूवविहि ११, पेज्जविहि १२, भक्खणविहि १३, ओदणविहि १४, सूपविहि १५, विगयविहि १६, सागविहि १७, महुरविहि १८, जीमणविहि १९, पाणीअविहि २०, मुखवासविहि २१, वाहणविहि २२, उवाणहविहि २३, सयणविहि २४, सच्चित्तविहि २५, दन्वविहि २६, इत्यादि का यथापरिमाण किया है, इसके उपरान्त उवभोगपरिभोग वस्तु को भोगनिमित्त से भोगने का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए एगविह तिविहेण, न करेमि मणसा वयसा कायसा, एव सातवा उवभोगपरिभोग दुविहे पन्नत्ते, तजहा-भोयणाओ य, कम्मओ य । भोयणाओ समणोवासएणं पच्च अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तजहा-ते आलोउ सच्चित्ताहारे, सच्चित्तपडिबद्धाहारे, अप्पउलिओसहिभक्खणया, दुप्पउलिओसहिभक्खणया, तुच्छोसहिभक्खणया, कम्मओण समणोवासएण पन्नरस कम्मादाणाइ जाणियव्वाइ न समायरियव्वाइ, तजहा ते आलोउ इगाल कम्मे, वणकम्मे साडीकम्मे भाडीकम्मे, फोडीकम्मे दतवाणिज्जे, लक्खवाणिज्जे, केसवाणिज्जे, रसवाणिज्जे, विसवाणिज्जे, जतपीलणकम्मे, निल्लउणकम्मे, दवग्गिदावणया सरदहतलायसोसणया, असईजणपोसणया, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

आठवा अणट्ठादण्डविरमणव्रत-चउन्विहे अणट्ठादण्डे पण्णत्ते, तजहा-अवज्झाणायरिए, पमायायरिए, हिंसप्पयाणे, पावकम्मोवणसे, एव आठवा अणट्ठादण्ड सेवन का पच्चक्खाण (जिसमें आठ आगार-आए वा, राए वा, नाए वा, परिवारे वा, देवे वा, नागे वा, जक्खे वा, भूए वा, एत्तिएहिं आगारेहिं अन्नत्थ) जावज्जीवाए दुविह तिविहेण न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा, एवं आठवा अणट्ठादण्ड, विरमणव्रत के पच्च अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तजहा-ते आलोउ कदप्पे, कुक्कुहण, मोहरिए सजुत्ताहिगरणे,

चौथा अणुव्रत-थूलाओ मेहुणाओ वेरमण, 'सदारसतोसिए, अवसेसमेहुणविहिं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, देवदेवी सम्बन्धी दुविह तिविहेण न करेमि, न कारवेमि, मणसा वयसा कायसा, तथा मनुष्य-तिर्यञ्च-सम्बन्धी एगविह एगविहेण न करेमि कायसा, एव चौथा स्थूल मेहुणवेरमणव्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समाधरियव्वा, तजहा ते आलोउ इत्तरियपरिगगहियागमणे, अपरिगगहियागमणे, अनगकीडा, परविवाहकरणे, कामभोगतिव्वाभिलासे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

पाचवा अणुव्रत-थूलाओ परिगगहाओ वेरमण, खेत्त-वत्थु का यथापरिमाण, हिरणसुवणण का यथापरिमाण, धनधान्य का यथापरिमाण, दुपयचउप्पय का यथापरिमाण, कुवियधातु का यथापरिमाण, जो परिमाण किया है, उसके उपरान्त अपना करके परिग्रह रखने का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए, एगविह तिविहेण न करेमि मणसा वयसा कायसा, एव पाचवा स्थूलपरिग्रह परिमाण-व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समाधरियव्वा, तजहा-ते आलोउ खेत्तवत्थुप्पमाणाइक्कमे हिरणसुवणणप्पमाणाइक्कमे धणधन्नप्पमाणाइक्कमे, दुपयचउप्पयप्पमाणाइक्कमे, कुवियप्पमाणाइक्कमे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

छठा दिशिव्रत-उद्धदिशि का यथापरिमाण, अहोदिशि / का यथापरिमाण किया है, इसके उपरान्त स्वेच्छा काया से आगे जाकर पाचआस्रव सेवन का पच्चक्खाण जावज्जीवाए' दुविह तिविहेण न करेमि न कारवेमि, मणसा वयसा कायसा, एव छठे दिशिव्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा, न समाधरियव्वा, तजहा ते आलोउ उद्धदिसिप्पमाणाइक्कमे, अहोदिसिप्पमाणाइक्कमे, तिरिअदिसिप्पमाणाइक्कमे, गित्तयुद्धी, सहअन्तरद्धा, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

पच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तजहा ते आलोउ अप्प-
डिलेहिय-दुप्पडिलेहिय - सेज्जासथारण, अप्पमज्जिय-दुप्पमज्जिय-
सेज्जासथारण, अप्पडिलेहिय - दुप्पडिलेहिय - उच्चारपासवणभूमि,
अप्पमज्जिय-दुप्पमज्जिय - उच्चारपासवणभूमि, पोसहस्स सम्म
अणणुपालणया, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

वारहवा अतिथिसविभागव्रत-समणे निग्गथे फासुयएसणि-
ज्जेणं-असणपाणखाइमसाइमवत्थपडिग्गहकवलपायपुँछणेण पडिहारि-
यपीढफलगसेज्जासथारण ओसहभेसज्जेण पडिलाभेमाणे विहरामि,
ऐसी मेरी सहहणा परूपणा है, साधु साध्वी का योग मिलने पर
निर्दोष दान दू तब शुद्ध होउ । एव वारहवें अतिथिसविभागव्रत
के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तजहा-ते आलोउ-
सचित्तनिक्खेवणया, सचित्तपिहणया, कालाइक्कमे, परववएसे,
मच्छरिआए, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

। बड़ी सलेखना का पाठ ।

अह भते अपच्छिममारणन्तियसलेहणाञ्जसणा आराहणा पोषधशाला
पूजे, पूज के उच्चारपासवण भूमिका पडिलेहे, पडिलेह के गमणागमणे पडिक्कमे,
पडिक्कमे के दर्भादिक सथारा सथारे, सथार के दर्भादिक सथारा दुरूहे, दुरूह
के पूर्व तथा उत्तरदिशि सन्मुख पल्यकादिक आसन से बैठे, बैठ के करय-
लसपरिग्गहिय सिरसावत्त मत्थए अजलि कट्टु एव वयासी-‘नमोत्थु ण अरि-
हन्ताण भगवताण जाव सपत्ताण’ ऐसे अनन्त सिद्धो को नमस्कार करके,
‘नमोत्थुण अरिहन्ताण भगवताण जाव सम्पाविउकामाण’ जयवते वर्तमान-
काले महाविदेह क्षेत्र में विचरते हुए तीर्थङ्करों को नमस्कार करके अपने
धर्माचार्यजी को नमस्कार करता हू । साधु प्रमुख चारो तीर्थ को खमाके,
सर्वजीवराशि को खमा के पहिले जो व्रत आदरे हैं उनमें जो अतिचार दोष
लगे हो, वे सर्व आलोच के पडिक्कमे करके निंद के निःशल्य हो करके, सब्ब
पाणाइवाय पच्चक्खामि, सब्ब मुसावाय पच्चक्खामि, सब्ब अदिन्नादाण पच्चक्खामि,
सब्ब मेहुण पच्चक्खामि, सब्ब परिग्गह पच्चक्खामि, सब्ब कोह माण जाव मिच्छा-
दसणसल्ल सब्ब अरुणिज्जजोग पच्चक्खामि, जावज्जीवाए तिविह तिविहेण न करेमि

उवभोगपरिभोगाडरित्ते, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

नववा सामायिकव्रत-सव्वसावज्ज जोग पच्चक्खामि जावनियम पज्जुवासामि, दुविह तिविहेण न करेमि न कारवेमि मणसा, वयसा, कायसा, ऐसी सदहणा परूपणा तो है सामायिक का अवसर आये सामायिक करू तब फरसना करके शुद्ध होऊँ, एव नववें सामायिक व्रत के पच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तजहा-ते आलोउ मणदुप्पणिहाणे, वयदुप्पणिहाणे, कायदुप्पणिहाणे, सामाइ यस्स सह अकरणया सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणया जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

दसवां देसावगासिकव्रत-दिन प्रति प्रभात से प्रारंभ करके पूर्वादिक छहों दिशा की जितनी भूमिका की मर्यादा रखली हो उसके उपरान्त स्वेच्छा काया से आगे जाकर पाच आश्रव सेवने का पच्चक्खाण, जाव अहोरत्त दुविह तिविहेण न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा, जितनी भूमिका की हद रखली उसमे जो द्रव्यादिक की मर्यादा की है उसके उपरान्त उपभोग परिभोग निमित्त से भोगने का पच्चक्खाण जाव अहोरत्त एगविह तिविहेण न करेमि मणसा वयसा कायसा, एव दशवें देसावगासिक व्रत के पच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तजहा-ते आलोउ आणवणप्पओगे, पेसवणप्पओगे, सदाणुवाए, रुवाणुवाए, बहिया पुग्गलपक्खेवे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

ग्यारहवा पडिपुत्त पोपधव्रत-असण पाण खाइम साइम का पच्चक्खाण, अवंम सेवन का पच्चक्खाण, अमुक मणि सुवर्ण का पच्चक्खाण, मालावन्नग-चिलेवण का पच्चक्खाण, सत्यमुसलादिक सावज्जोग सेवन का पच्चक्खाण, जाव अहोरत्त पज्जुवासामि, दुविह तिविहेण न करेमि न कारवेमि, मणसा, वयसा कायसा ऐसी सदहणा परूपणा तो है पोमह का अवसर आये पोमह करू तब फरसना करके शुद्ध होऊँ, एव ग्यारवा पडिपुत्त पोपधव्रत का

બાર વ્રતના અતિચાર સહિત પાઠ

ગુજરાતી-પરિશિષ્ટ

પહેલું અણુવ્રત થૂલાઓ પાણાઈવાયાઓ વેરમણ, ત્રમણવ, બે ઇન્દ્રિય, તે ઇન્દ્રિય, અઉર્વિન્દ્રિય, પચ્ચેન્દ્રિય, જીવ, જાણીપીછી, સ્વસળધી, શરીર માહેલા પીડાકારી, સઅપરાધી, વિગદેન્દ્રિય વિના, આકુટિ, હણુવાનિમિત્તે, હણુવાના પચ્ચક્ષણાણુ, તથા સૂક્ષ્મ એકેન્દ્રિય પણ હણુવાના પચ્ચક્ષણાણુ, જીવજીવણાણુ, દુવિહ, તિવિહેણુ, ન કરેમિ, ન કારવેમિ, મણુસા, વયસા, કાયસા, એહવા, પહેલા, થલ પ્રાણાતિપાત વેરમણ વ્રતના પચ્ચ અઈયારા, પેયાલા જાણિયંવા, ન સમાયરિયંવા, ત જહા, તે આલોઉ, જ ધે, વહે, છવિન્દ્રેઓ, અઈભારે, ભત્તપાણુવોન્દ્રેઓ, તસ્સ મિન્દ્રા મિ દુહ્કડ

બીજું અણુવ્રત, થૂલાઓ મુસાવાયાઓ વેરમણ, કન્નાલિક, ગોવાલિક, ભોમાલિક, થાપણુમોસો, મોટકી કુડીસાખ

ઈત્યાદિ મોટકુ જૂઠું જોલવાના પચ્ચક્ષણાણુ જીવજીવણાણુ દુવિહ, તિવિહેણુ ન કરેમિ, ન કારવેમિ, મણુસા, વયસા, કાયસા, એવા બીજા થૂલ મૃષાવાદ વેરમણ વ્રતના પચ્ચ અઈયારા, જાણિયંવા ન સમાયરિયંવા, ત જહા-તે આલોઉ

સહસ્સાભક્ષણાણુ, રહસ્સાભક્ષણાણુ, સદારમતલેઓ, મોસોવઓસે, કૂડલેહકનણુ તસ્સ મિન્દ્રા મિ દુહ્કડ

ત્રીજું અણુવ્રત, થૂલાઓ અદિન્નાદાણાઓ વેરમણ, ખાતર-ખણી, ગાઠડી છોડી, તાણુ પર કુચી કરી, પડી વસ્તુ ધણીઆતી જાણી,

ઈત્યાદિ મોટકુ અદત્તાદાન લેવાના પચ્ચક્ષણાણુ, સગાસળધી તથા વ્યાપાર-સળધી નભરમી વસ્તુ ઉપરાત અદત્તાદાન લેવાના પચ્ચક્ષણાણુ, જીવ જીવણાણુ, દુવિહ તિવિહેણુ, ન કરેમિ ન કારવેમિ, મણુસા, વયસા, કાયસા એવા ત્રીજા થૂલ અદત્તાદાન વેરમણ વ્રતના પચ્ચ અઈયારા, જાણિયંવા, ન સમાયરિયંવા ત જહા, તે આલોઉ

તેના હડે, તઠ્ઠરપઓગે, વિરુદ્ધ રજ્જાઈકરમે, કૂડતોલે કૂડમાણુ, તપ્પડિરૂ વગવહારે, તસ્સ મિન્દ્રા મિ દુહ્કડ,

ચોથું અણુવ્રત, થૂલાઓ મેહુણાઓ વેરમણ, સદારસતોપિઓ, અવસેસ મેહુણુવિહિ ના પચ્ચક્ષણાણુ

અને જે શ્રીપુરુષને મૂળ થકી કાયાઓ કરી મેહુણુ સેવવાના પચ્ચક્ષણાણુ

न कारवेमि करंतपि अन्नं न समणुजाणामि, मणसा वयसा कायसा, ऐसे अठारह पापस्थानक पच्चक्खके सब्ब असण पाण खाइम साइम चउव्विह पि आहार पच्चक्खामि जावज्जीवाए, ऐसे चारो आहार पच्चक्ख के ज पि य इम शरीर इह, कत, पिय मणुण्ण, मणाम, धिज्ज, विमासिय समय, अणुमय, बहुमय, भण्डकरण्डसमाण, रयणकरण्डगभूय, मा ण सीय, मा ण उण्ह, मा ण खुहा, माण पिवासा, माण वाला, मा ण चोरा, मा ण दसमसगा, मा ण वाहिय, पित्तिय, कप्फिय, सभीम सन्निवाइय विविहा रोगायका परिसहा उवसग्गा फासा फुसतु-एव पि य ण चरमेहिं उस्सासनिस्सासेहिं वोसिरामि त्ति कट्ठु ऐसे शरीर वोसिरा के, काल अणवक्खमाणे विहरामि, ऐसी मेरी सहहणा परूपणा तो है, फरसना करू तो शुद्ध होऊ ऐसे अपन्डित्तम-मारणतिय-सलेहणा झुमणा-अराहणाए पच अइयारा जाणियव्वा, त जहा-इहलोगाससप्पओगे परलोगाससप्पओगे, जीवियाससप्पओगे, मरणाससप्पओगे कामभोगाससप्पओगे तस्स मिच्छा मि दुक्कं ।

तस्स धम्मस्स का पाठ ।

तस्स धम्मस्स केवलपन्नत्तस्स अब्भुट्ठिओमि आराहणाए विरओमि विराहणाए तिविहेण पडिक्कतो वदामि जिणचउव्वीस ।



બાર વ્રતના અતિયાર સહિત પાઠ.

ગુજરાતી-પરિશિષ્ટ

પહેલુ અણુવ્રત થૂલાઓ પાણાઈવાયાઓ વેરમણ, ત્રસજીવ, બે ઇન્દ્રિય, તે ઇન્દ્રિય, અઊરિન્દ્રિય, પચેન્દ્રિય, જીવ, જાણીપીછી, સ્વસજીધી, શરીર માહેલા પીડાકારી, સઅપરાધી, વિગલેન્દ્રિય વિના, આકુટિ, હણુવાનિમિત્તે, હણુવાના પચ્ચક્રખાણુ, તથા સૂક્ષ્મ એકેન્દ્રિય પણ હણુવાના પચ્ચક્રખાણુ, જાવજીવવાએ, દુવિહ, તિવિહણુ, ન કરેમિ, ન કારવેમિ, મણસા, વયસા, કાયસા, એહવા, પહેલા, થલ પ્રાણાતિપાત વેરમણુવ્રતના પચ અઈયારા, પેયાલા જાણિયંવા, ન સમાયરિયંવા, ત જહા, તે આલોઉ, જ ધે, વહે, છવિરેએ, અઈભારે, ભતપાણુવેરેએ, તસ્સ મિચ્છા મિ દુક્કડ

ખીજી અણુવ્રત, થૂલાઓ મુસાવાયાઓ વેરમણ, કન્નાલિક, ગોવાલિક, ભોમાલિક, થાપણુમેસો, મોટકી કુડીસાખ

ઇત્યાદિ મોટકુ જૂઠું બોલવાના પચ્ચક્રખાણુ જાવજીવવાએ દુવિહ, તિવિહણુ ન કરેમિ, ન કારવેમિ, મણસા, વયસા, કાયસા, એવા ખીજી થૂલ મૃષાવાદ વેરમણુ વ્રતના પચ અઈયારા, જાણિયંવા ન સમાયરિયંવા, ત જહા-તે આલોઉ

સહસ્સાભક્રખાણુ, રહસ્સાભક્રખાણુ, સદારમ તલેએ, મોસોવએસે, કૂડલેહક્રખાણુ તસ્સ મિચ્છા મિ દુક્કડ

ત્રીજી અણુવ્રત, થૂલાઓ અદિનાદાણુઓ વેરમણ, ખાતર-ખણી, ગાઠડી છોડી, તાલુ પર કુચી કરી, પડી વસ્તુ ધણીઆતી જાણી,

ઇત્યાદિ મોટકુ અદત્તાદાન લેવાના પચ્ચક્રખાણુ, સગાસજીધી તથા વ્યાપાર-સજીધી નભરમી વસ્તુ ઉપરાત અદત્તાદાન લેવાના પચ્ચક્રખાણુ, જાવ જીવવાએ, દુવિહ તિવિહણુ, ન કરેમિ ન કારવેમિ, મણસા, વયસા, કાયસા એવા ત્રીજી થૂલ અદત્તાદાન વેરમણુ વ્રતના પચ અઈયારા, જાણિયંવા, ન સમાયરિયંવા તજહા, તે આલોઉ

તેના હડે, તક્કરપએગે, વિરુદ્ધ રજ્જાઈકમ્મે, કૂડતોલે કૂડમાણુ, તખ્પડિર વગવહારે, તસ્સ મિચ્છા મિ દુક્કડ,

ચોથુ અણુવ્રત, થૂલાઓ મેહુણુઓ વેરમણ, સદારમ તોપિએ, અવસેસ મેહુણુવિહિ ના પચ્ચક્રખાણુ

અને જે સ્ત્રીપુરુષને મૂળ થકી કાયાએ કરી મેહુણુ મેવવાના પચ્ચક્રખાણુ

હોય તેને દેવતા, મનુષ્ય, તિર્યચ સળધી મેહુણના પચ્ચક્ષ્માણુ, જાવજાણી, દેવતા સળધી દુવિહ, તિવિહેણુ ન કરેમિ, ન કારવેમિ, મણુસા, વયસા કાયસા મનુષ્ય તિર્યચ સળધી

એગવિહ, એગવિહેણુ, ન કરેમિ કાયસા

એવા એથા થૂલ મેહુણુવેરમણુ મતના પચ અધ્યારા, જાણિયંવા, ન સમાયરિયંવા, તજહા તે આલોઉ

ઇત્તરિયપરિગ્ગહિયાગમણુ, અપરિગ્ગહિયાગમણુ, અનગકીડા, પરવિવાહકરણુ, કામભોગેસુ તિંવાલિલાસા, તસ્સ મિચ્છા મિ દુક્કંડ

પાચમુ અણુમત થૂલાઓ પરિગ્ગહાઓ વેરમણુ, ખેત્તવત્થુનું યથાપરિમાણુ, હિરણ્યસુવણ્ણનું યથાપરિમાણુ, ધનધાન્યનું યથાપરિમાણુ, દુપદ્વયઉપદ્વનું યથાપરિમાણુ, કુવિયનું યથાપરિમાણુ

એ યથાપરિમાણુ કીધુ છે, તે ઉપરાત પોતાને પરિગ્રહ કરી રાખવાના પચ્ચક્ષ્માણુ જાવજાણી

એગવિહ, તિવિહેણુ, ન કરેમિ, મણુસા, વયસા, કાયસા એવા પાચમા થૂલપરિગ્રહ-પરિમાણુ-વેરમણુ મતના પચ અધ્યારા જાણિયંવા, ન સમાયરિયંવા, તજહા-તે આલોઉ, ખેત્તવત્થુપમાણાધકમ્મે, હિરણ્યસુવણ્ણપમાણાધકમ્મે, ધનધાન્યપમાણાધકમ્મે, દુપદ્વયઉપદ્વપમાણાધકમ્મે, કુવિયપમાણાધકમ્મે, તસ્સ મિચ્છા મિ દુક્કંડ

છટ્ટુ દિશિમન, ઉડ્ઠદિશિનું યથાપરિમાણુ, અધોદિશિનું યથાપરિમાણુ, તિરિયદિશિનું યથાપરિમાણુ

એ યથાપરિમાણુ કીધુ છે, તે ઉપરાત સમગ્રજાએ કાયાએ જઈને પાચ આશ્રવ સેવવાના પચ્ચક્ષ્માણુ, જાવજાણી, દુવિહ, તિવિહેણુ, ન કરેમિ, ન કારવેમિ, મણુસા, વયસા, કાયસા એવા છઠા દિશિવેરમણુ મતના પચ અધ્યારા, જાણિયંવા, ન સમાયરિયંવા, તજહા તે આલોઉ

ઉડ્ઠદિસિ પમાણાધકમ્મે, અધોદિસિ પમાણાધકમ્મે, તિરિયદિસિ પમાણાધકમ્મે ખેત્તવુડ્ઠી, સમ્પઅતરહા, તસ્સ મિચ્છા મિ દુક્કંડ

સાતમુ મત, ઉવભોગપરિભોગવિહિં પચ્ચક્ષ્માયમાણુ, ઉલ્લણિયાવિહિં, દત્તણ્ણવિહિં, દ્વલવિહિં, અપ્પભગણ્ણવિહિં ઉવટ્ઠણ્ણવિહિં મજ્જણ્ણવિહિં, વત્થવિહિં, વિલ્લેવણ્ણવિહિં, પુખ્કવિહિં, આભરણ્ણવિહિં, ધૂપવિહિં, પેજ્જવિહિં, ભક્ષણ્ણવિહિં,

ઓદણવિહિં, સૂપવિહિં, વિગયવિહિં, સાગવિહિં, માહુરયવિહિં, જેમણવિહિં,
પાણિયવિહિં, મુહવાસવિહિં, વાહણવિહિં, વાણહવિહિં, સયણવિહિં, સચિત્તવિહિં,
હંવવિહિં

ઇત્યાદિકનુ યથાપરિમાણ કીધુ છે, તે ઉપરાત ઉવલોગપરિભોગ, ભોગનિમિત્તે
ભોગવવાના પચ્ચક્ષ્ણાણુ જાવજાણવાએ ઐગવિહ, તિવિહેણુ ન કરેમિ, મણુસા,
વયસા, કાયસા એવા સાતમા ઉવલોગ પરિભોગ.

દુવિહે પત્રત્તે, ત જહા, ભોયણાઉય, કમ્મઉય, ભોયણાઉ, સમણોવાસએણુ
પચ અર્ધયારા, જાણિયંવા ન સમાયરિયંવા, ત જહા—તે આલોઉ

મચિત્તાહારે, સચિત્તપડિગદ્ધાહારે, અપ્પોલિઓસહિલક્ષણણુયા, દુપ્પોલિ
ઓસહિલક્ષણણુયા, તુરોસહિલક્ષણણુયા, કમ્મઉણુ સમણોવાસએણુ, પત્રરસ
કમ્માદાણુઈ

જાણિયંવા, ન સમાયરિયંવા, ત જહા—તે આલોઉ,

ઇગાલકમ્મે, વણુકમ્મે, સાડીકમ્મે, ભાડીકમ્મે, રોડીકમ્મે, દત્તવાણિજ્જે,
કેસવાણિજ્જે, રસવાણિજ્જે, લક્ષણવાણિજ્જે, વિસવાણિજ્જે, જતપિટલણુ-
કમ્મે, નિલલણુકમ્મે, દવગ્ગિદાવણુયા, સરદહતલાગપરિસોસણુયા, અસર્ધજણુ-
પોસણુયા, તસ્સ મિચ્છા મિ દુકકકક

આઠમુ વ્રત-અનર્થદ ડનું વેરમણુ, ચઉવિહે અનત્યાદકે પત્રત્તે, ત જહા,
અવજાણુચરિય પમાયાચરિય હિંસપયાણુ, પાવકમ્મેવએમ એવા આઠમા
અનર્થદડ સેવવાના પચ્ચક્ષ્ણાણુ જાવજાણવાએ દુવિહ તિવિહેણુ ન કરેમિ, ન
કારવેમિ, મણુસા, વયસા, કાયસા

એવા આઠમા અનર્થ દડ વેરમણુ વ્રતના પચ અર્ધયારા જાણિયંવા, ન
સમાયરિયંવા, ત જહા—તે આલોઉ

કદપ્પે, કુકુકુપ્પે, મોહરિએ, સજ્જુત્તાહિગરણુ, ઉવલોગપરિભોગઅર્ધરિત્તે,
તસ્સ મિચ્છા મ દુકકકક

નવમુ સામાયિક વ્રત, વજ્જનજ્જેગનું વેરમણુ જાવ નિયમ પજ્જુવાસામિ,

દુવિહ તિવિહેણુ, ન કરેમિ ન કારવેમિ, મણુસા, વયસા, કાયમા

એવી મારી-તમારી મદહણા પ્રરૂપણા સામાયિકનો અવસર આવે અને
સામાયિક કરીએ ત્યારે સ્પર્શનાએ કરી શુદ્ધ હોજો !

એવા નવમા સામાયિક પ્રતના પચ અર્ધયારા જાણિયંવા, ન સમાયરિ
યંવા, ત જહા તે આલોઉ મણુદુપ્પણિહાણે, વયદુપ્પણિહાણે, કાયદુપ્પણિહાણે,
સામાર્ધયસ્સ સર્ધ અકરણ્યાએ, સામાર્ધયસ્સ અણુવટ્ટિયસ્સ કરણ્યાએ, તસ્સ
મિચ્છા મિ દુકકક

દશમુ દેશાવગાસિક પ્રત

દિન પ્રત્યે પ્રભાત થકી પ્રારભીને પૂર્વાદિક છ દિશિ જેટલી ભૂમિકા મોકળી
રાખી છે, તે ઉપરાત સર્ધજાએ કાયાએ જઈને પાચ આશ્રવ સેવવાના પચ્ચક્ખાણુ
જાવઅહોરત્ત

દુવિહ તિવિહેણુ, ન કરેમિ ન કારવેમિ, મણુસા વયસા કાયસા, જેટલી
ભૂમિકા મોકળી રાખી છે, તે માહિ જે દ્રવ્યાદિકની મર્યાદા કીધી છે તે ઉપરાત
ઉવલોગ, પરિલોગ, લોગ નિમિત્તે લોગવવાના પચ્ચક્ખાણુ જાવ અહોરત્ત, એગવિહ
તિવિહેણુ ન કરેમિ મણુસા વયસા કાયસા એવા દશેમા દેશાવગાસિક વેરમણુ પ્રતના
પચ અર્ધયારા જાણિયંવા ન સમાયરિયંવા, ત જહા-તે આલોઉ

આણુવણુપ્પઓગે, પેસવણુપ્પઓગે, સદાણુવાએ, રૂવાણુવાએ, બહિઆ પોગ્ગલ
પકખેવે, તસ્સ મિચ્છા મિ દુક્કક

અગિયારમુ પરિપૂર્ણ પોષધ પ્રત, ‘અસણુ’ પાણુ, ખાઈમ, સાઈમ’ના
પચ્ચક્ખાણુ અખલના પચ્ચક્ખાણુ, મણિસોવનના પચ્ચક્ખાણુ, માલાવજ્જગવિલેવણુના
પચ્ચક્ખાણુ, સત્થમુસલાદિક સાવજ્જ જોગના પચ્ચક્ખાણુ, જાવ અહોરત્ત
પજ્જુવાસામિ

દુવિહ તિવિહેણુ ન કરેમિ ન કારવેમિ, મણુસા વયસા કાયસા એવી મારી
સદ્દહણા પ્રરૂપણા પોષાનેા અવસર આવે અને પોષા કરીએ, તે વારે સ્પર્શનાએ
કરી શુદ્ધ હોને, એવા અગિયારમા પરિપૂર્ણ પોષધ પ્રતના પચ અર્ધયારા જાણિય
ંવા નસમાયરિયંવા ત જહા તે આલોઉ

અપ્પડિલેહિય-દુપ્પડિલેહિય-સેજ્જસથારએ, અપ્પમન્નિજય-દુપ્પમન્નિજય-
સેજ્જસથારએ, અપ્પડિલેહિય-દુપ્પડિલેહિય-ઉચ્ચારપાસવણુભૂમિ, અપ્પમન્નિજય-
દુપ્પમન્નિજય-ઉચ્ચાર-પાસવણુભૂમિ, પોસહસ્સ સમ્મ અણુણુપાલણુયા, તસ્સ
મિચ્છ મિ દુકકક

ગારમુ અતિયિસવિભાગ પ્રત, સમણે નિગ્ગથે કાશુએણુ એસણિજિજેણુ

અસણુ પાણુ ખાઈમ સાઈમ વત્થપડિગ્ગહકબલપાયપુચ્છણેણુ, પાઠિયાઝ પીઠ-
ફલગ-સેજ્જ-સથારણેણુ, ઉસહલેસજ્જેણુ, પડિલાલેમાણે, વિહરિસ્સામિ

એવી મારી સદ્દેહણા પ્રરૂપણાએ કરી સુપાત્ર સાધુ-સાધ્વીજની જોગવાઈ
મળે અને નિર્દોષ આહાર પાણી વહોરાવુ, તે વારે સ્પર્શનાએ કરી શુદ્ધ હોજે !

એવા જારમા અતિથિ સવિભાગ વ્રતના પચ અઈયારા જાણિયંવા ન
સમાયરિયંવા, તજ્જહા-તે આલોઉ

સચિત્તનિરૂપેવણુયા સચિત્તપેહણુયા કાલાઈકકમે પરોવએસે મન્ઠરિયાએ
તસ્સ મિચ્છા મિ હુકકક

નમો અરિહતાણુ, નમો સિદ્ધાણુ, નમો આયરિયાણુ, નમો ઉવજ્જાયાણુ,
નમો લોએ સંવસાહુણુ

સંથારા (અણુસણુ-અનશન) નો પાઠ

અપન્નિમ મારણુન્તિય સલેહણા, પોષધશાળા પોજીને, ઉચ્ચાર પાસવણુ
ભૂમિકા પડિલેહીને, ગમણાગમણે પડિકકમીને, સથારો હુરૂહીને, પૂર્વ તથા
ઉત્તર દિશિ પલ્લકાદિક આસને બેસીને, કરચલ સપરિગ્ગહિય સિરસાવત્તય મત્થએ
અજલિ કટ્ટુ એવ વયાસી, નમોત્થુણુ અરિહતાણુ ભગવતાણુ જાવ સપત્તાણુ

એમ અનતા સિદ્ધને નમસ્કાર કરીને, વર્તમાન પોતાના ધર્મગુરુ-ધર્મા
ચાર્યને નમસ્કાર કરીને પૂર્વ જે વ્રત આદર્યા છે, તે

આલોવી, પડિકકમિ, નિંદી, નિશલ્ય થઈને, સંવ પાણાઈવાય પચ્ચક્ખામિ,
સંવ મુસાવાય પચ્ચક્ખામિ, સંવ અદિન્નાદાણુ પચ્ચક્ખામિ, સંવ મેહુણુ
પચ્ચક્ખામિ, સંવ પરિગ્ગહ પચ્ચક્ખામિ, સંવ કોહ પચ્ચક્ખામિ જાવ
મિચ્છા દસણુ સદલ, અકરણિન્નજ જોગ પચ્ચક્ખામિ જાવજાણવાએ, તિવિહ,
તિવિહેણુ, ન કરેમિ, ન કારવેમિ, કરતપિ અન્ન ન સમણુજાણામિ, મણુસા વયસા
કાયસા, એમ અઠારે પાપ થાનક પચ્ચક્ખીને, સંવ અસણુ પાણુ ખાઈમ-
સાઈમ ચઉવિહ આહાર પચ્ચક્ખીને, જાવજાણવાએ, એમ ચારે આહાર
પચ્ચક્ખીને, જપિય ઇમ સરીર ઇદ્દ કત પિય મણુન્ન મણુમ ધિન્ન
વિસાસિય સમય અણુમય જહુમય જહકરડગસમાણુ રચણુકરડગભૂય માણુ સીય
માણુ ઉણ્હ, માણુ પુહા, માણુ પીવાસા, માણુ જાલા, માણુ ચોરા, માણુ દસા,
માણુ વાહિય પિત્તિય સલિમ સન્નિવાઈય વિવિહા રોગાયકા પરિસહોવસજ્જા

કાસા કુસતિ, એયપિણ ચરમેહિં ઉસ્સાસનિસ્સાસેહિં વોસિરામિ ત્તિ કંદુ એમ
શરીર વોસિરાવીને, કાલ અણુવકખમાણે વિહરિસ્સામિ,

એવી સદહણા પ્રરૂપણાએ કરી, અણુસણુનો અવસર આળે, અણુસણુ કંડ
તે વારે સ્પર્શનાએ કરી શુદ્ધ હોળે

એવા અપરિછિન્ન મારણુતિય સલેહણા હુસણા આરાહણના પથ
અર્ધચારા જાણિયળવા ન સમાયરિયળવા ત જહા તે આલોઉં

ઈહલોગાસ સંપ્પઓગે, પરલોગાસ સંપ્પઓગે, જીવિયાસ સંપ્પઓગે, મરણા
સ સંપ્પઓગે, કામલોગાસ સંપ્પઓગે, તસ્સ મિચ્છા મિ દુકકકક

એમ સમકિતપૂર્વક બાર વ્રત સલેખણા સહિત તથા નવાણુ અતિચાર એને
વિષે જે કોઈ અતિક્રમ, વ્યતિક્રમ, અતિચાર, અણુચાર, જાણુતા અજાણુતા મન,
વચન, કાયાએ કરી સેવ્યા હોય, સેવરાવ્યા હોય, સેવતા પ્રત્યે અનુમોદા હોય, તે
અરિહત, અનત સિદ્ધ લગવાનની સાથે તસ્સ મિચ્છા મિ દુકકકક

૧ પ્રાણાતિપાત, ૨ મૃષાવાદ, ૩ અદત્તાદાન, ૪ મૈત્રુન, ૫ પરિશ્રદ્ધ, ૬ ક્રોધ
૭ માન, ૮ માયા, ૯ લોભ, ૧૦ રાગ, ૧૧ દ્વેષ, ૧૨ કલહ, ૧૩ અભ્યાખ્યાન,
૧૪ પૈશુન્ય, ૧૫ પરપરિવાદ, ૧૬ રઘઅરઘ, ૧૭ માયામેસો, ૧૮ મિચ્છા
દસણુસલ, તસ્સ મિચ્છા મિ દુકકકક

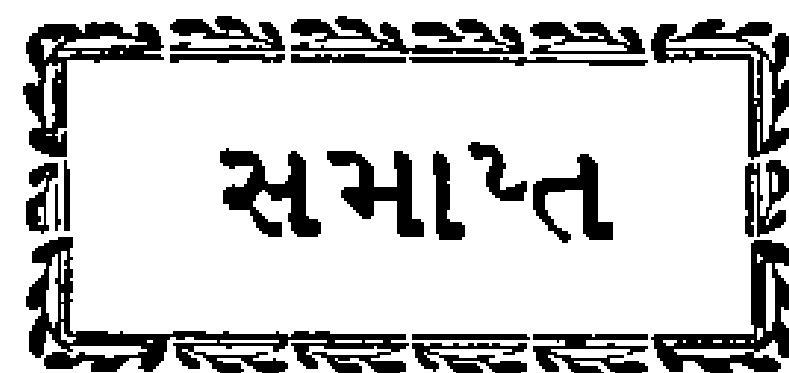
૨૫ પ્રકારના મિથ્યાત્વ

૧ અભિગ્રહિક મિથ્યાત્વ, ૨ અણુભિગ્રહિક મિથ્યાત્વ, ૩ અભિનિવેશિક
મિથ્યાત્વ, ૪ સાશયિક મિથ્યાત્વ ૫ અણુભોગ મિથ્યાત્વ, ૬ લોકિક મિથ્યાત્વ,
૭ લોકોત્તર મિથ્યાત્વ, ૮ કુપ્રાવચન મિથ્યાત્વ, ૯ જીવને અજીવ સરધે તે મિથ્યાત્વ
૧૦ અજીવને જીવ સરધે તે મિથ્યાત્વ, ૧૧ સાધુને કુસાધુ સરધે તે મિથ્યાત્વ,
૧૨ કુસાધુને સાધુ સરધે તે મિથ્યાત્વ, ૧૩ આઠ કર્મથી મૂકાણા, તેને નથી મૂકાણા
સરધે તે મિથ્યાત્વ, ૧૪ આઠ કર્મથી નથી મૂકાણા, તેને મૂકાણા સરધે તે મિથ્યાત્વ,
૧૫ ધર્મને અધર્મ સરધે તે મિથ્યાત્વ, ૧૬ અધર્મને ધર્મ સરધે તે મિથ્યાત્વ,
૧૭ જિનમાર્ગને અન્ય માર્ગ સરધે તે મિથ્યાત્વ, ૧૮ અન્ય માર્ગને જિનમાર્ગ
સરધે તે મિથ્યાત્વ, ૧૯ જિન માર્ગથી ઓછુ પ્રરૂપે તે મિથ્યાત્વ, ૨૦ જિન માર્ગથી
અધિકુ પ્રરૂપે તે મિથ્યાત્વ, ૨૧ જિનમાર્ગથી વિપરીત પ્રરૂપે તે મિથ્યાત્વ, ૨૨
અવિનયમિથ્યાત્વ, ૨૩ અકિરિયામિથ્યાત્વ, ૨૪ અજ્ઞાનમિથ્યાત્વ, ૨૫ આશાતના-
મિથ્યાત્વ, તસ્સ મિચ્છા મિ દુકકકક

ચોદ પ્રકારના સમૂર્વિષમ

ઉચ્ચારેસુ પાસવણેસુ ખેલેસુ સિંધાણેસુ વતેસુ પિત્તેસુ પૂએસુ સોણિએસુ
સુકકેસુ સુકકપોગ્ગાલપગ્ગિસાડિએસુ વિગયજીવકલેવરેસુ, ઇત્થીપુરિસસનેગેસુ, નગર
નિહમણેસુ, સંવેસુ ચેવ અસુધકાણેસુ વા તસ્સ મિચ્છા મિ હુકકડ

આ ઠેકાણે ‘ઇચ્છામિ ઠામિ આલોઉ ને મે દેવસિઓ અઇઆરો કચ્ચો’થી
‘જ ખડિય જ વિરાહિય તસ્સ મિચ્છામિ હુકકડ’ સુધીનો પાઠ કહેવો પછી નવકાર
મત્ર અને ‘કરેમિ ભતે સામાઈય’થી ‘અપ્પાણ વોસિરામિ’ સુધી પાઠ કહેવો



જ્ઞાસા કુસતિ, એયપિ છુ ચરમેહિં ઉસ્સાસનિસ્સાસેહિં વોસિરામિ ત્તિ કટ્ટુ, એમ શરીર વોસિરાવીને, કાલ અણુવકખમાણુ વિહરિસ્સામિ,

એવી સદ્દેહણા પ્રરૂપણાએ કરી, અણુસણુનો અવસર આવ્યે, અણુસણુ કંઈ તે વારે સ્પર્શનાએ કરી શુદ્ધ હોજે

એવા અપરિચિત્તમ મારણુનિય સલોહણા ઝુસણા આરાહણના પથ અર્ધચારા જાણિયન્વા ન સમાયરિયન્વા ત જહા તે આલોઉ

ઇહલોગાસ સપ્પઓગે, પરલોગાસ સપ્પઓગે, જીવિયાસ સપ્પઓગે, મરણા સ સપ્પઓગે, કામલોગાસ સપ્પઓગે, તસ્સ મિચ્છા મિ દુકકકક

એમ સમકિતપૂર્વક ધાર વ્રત સલેખણા સહિત તથા નવાણુ અતિચાર એને વિષે જે કોઈ અતિક્રમ, વ્યતિક્રમ, અતિચાર, અણુચાર, જાણુતા અજાણુતા મન, વચન, કાયાએ કરી સેવ્યા હોય, સેવરાવ્યા હોય, સેવતા પ્રત્યે અનુમોદા હોય, તે અરિહંત, અનત સિદ્ધ લગવાનની સાથે તસ્સ મિચ્છા મિ દુકકકક

૧ પ્રાણાતિપાત, ૨ મૃધાવાદ, ૩ અદ્વૈતાદાન, ૪ મૈયુન, ૫ પરિશ્રદ્ધ, ૬ ક્રોધ ૭ માન, ૮ માયા, ૯ લોભ, ૧૦ રાગ, ૧૧ દ્વેષ, ૧૨ કલહ, ૧૩ અભ્યાખ્યાન, ૧૪ પૈશુન્ય, ૧૫ પરપરિવાદ, ૧૬ રઈઅરઈ, ૧૭ માયામોસો, ૧૮ મિચ્છા દસણુસલ્લ, તસ્સ મિચ્છા મિ દુકકકક

૨૫ પ્રકારના મિથ્યાત્વ

૧ અભિગ્રહિક મિથ્યાત્વ, ૨ અણુભિગ્રહિક મિથ્યાત્વ, ૩ અભિનિવેશિક મિથ્યાત્વ, ૪ સાશયિક મિથ્યાત્વ ૫ અણુલોગ મિથ્યાત્વ, ૬ લૌકિક મિથ્યાત્વ, ૭ લોકોત્તર મિથ્યાત્વ, ૮ કુપ્રાવચન મિથ્યાત્વ, ૯ જીવને અજીવ સરથે તે મિથ્યાત્વ ૧૦ અજીવને જીવ સરથે તે મિથ્યાત્વ, ૧૧ સાધુને કુસાધુ સરથે તે મિથ્યાત્વ, ૧૨ કુસાધુને સાધુ સરથે તે મિથ્યાત્વ, ૧૩ આઠ કર્મથી મૂકાણા, તેને નથી મૂકાણા સરથે તે મિથ્યાત્વ, ૧૪ આઠ કર્મથી નથી મૂકાણા, તેને મૂકાણા સરથે તે મિથ્યાત્વ, ૧૫ ધર્મને અધર્મ સરથે તે મિથ્યાત્વ, ૧૬ અધર્મને ધર્મ સરથે તે મિથ્યાત્વ, ૧૭ જિનમાર્ગને અન્ય માર્ગ સરથે તે મિથ્યાત્વ, ૧૮ અન્ય માર્ગને જિનમાર્ગ સરથે તે મિથ્યાત્વ, ૧૯ જિન માર્ગથી ઓછુ પ્રરૂપે તે મિથ્યાત્વ, ૨૦ જિન માર્ગથી અધિકુ પ્રરૂપે તે મિથ્યાત્વ, ૨૧ જિનમાર્ગથી વિપરીત પ્રરૂપે તે મિથ્યાત્વ, ૨૨ અવિનયમિથ્યાત્વ, ૨૩ અકિરિયામિથ્યાત્વ, ૨૪ અજ્ઞાનમિથ્યાત્વ, ૨૫ આશાતના-મિથ્યાત્વ, તસ્સ મિચ્છા મિ દુકકકક

દાતાઓની નામાવલી

આદ્ય સુરજીશ્રી, સુરજીશ્રી, મહાયજ્ઞ મેરખરે
તથા મેરખરેની યાદી



ગામવાર કક્કાવાગી લીધ



તા. ૧૮-૧૦-૪૪ થી તા ૨૮-૨-૫૮ સુધીના
દાખલ થએલ મેરખરે,



(રૂ. ૨૫૦ થી ઓછી રકમો આ યાદીમાં સામેલ કરી નથી)

શ્રી અખિલ ભારત જ્વેતામખર સ્થાનકવાસી
જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ

ગરેડીઆ કુવા રોડ - ગ્રીન લોજ પાસે

રાજકોટ

શાસ્ત્રોની માહિતી.

૧	શ્રી ઉપાસક દશાગ સૂત્ર	પહેલી આવૃત્તિ	ખલાસ	
	„	ખીજી	તૈયાર છે	૮-૮-૦
૨	„ દશ વૈકલ્પિક „ ભાગ ૧	પહેલી	ખલાસ	
	„	ખીજી	તૈયાર છે	૧૦-૦-૦
૩	„ દશવૈકલ્પિક „ ભાગ ૨	પહેલી		૭-૮-૦
૪	„ નિરયાવલિકા „ ભાગ ૧ થી ૫	પહેલી		૭-૮-૦
૫	„ આચારાગ „ ભાગ ૧	પહેલી	ખલાસ	
	„	ખીજી	તૈયાર છે	૧૦-૦-૦
૬	„ આચારાગ „ ભાગ ૨	પહેલી		૧૦-૦-૦
૭	„ આચારાગ „ ભાગ ૩	પહેલી		૧૦-૦-૦
૮	„ આવશ્યક „	પહેલી	ખલાસ	
	„	ખીજી	તૈયાર છે	૭-૮-૦
૯	„ વિષાક „	પહેલી	ખલાસ	
	„	ખીજી	છપાય છે	૧૦-૦-૦
૧૦	„ દશાશ્રુત સ્કંધ „	પહેલી	ખલાસ	
	„	ખીજી	છપાય છે	૭-૦-૦
૧૧	„ અન્તકૃત દશાગ „	પહેલી	ખલાસ	
	„	ખીજી	છપાય છે	૫-૦-૦
૧૨	„ અનુત્તરોપપાતિક „	પહેલી	ખલાસ	
	„	ખીજી	છપાય છે	૩-૮-૦
૧૩	„ નદી „	પહેલી	છપાય છે	
૧૪	„ ઉવવાઈ „	પહેલી	છપાય છે	
૧૫	„ ઉત્તરાધ્યયન „	પહેલી	છપાય છે	
૧૬	„ કદપ „	પહેલી	છપાય છે	૩૫-૦-૦

(પત્રાકારે)

(અગાઉથી ગ્રાહક થનારને માટે રૂા ૨૫-૦-૦)

રાજકોટ તા ૧૫-૩-૫૮



દાતાઓની નામાવલી

આઘ સુરબીશ્રી, સુરબીશ્રી, સહાયક મેમ્બરો
તથા મેમ્બરોની યાદી



ગામવાર કક્કાવાગી લીટ



તા. ૧૮-૧૦-૪૪ થી તા ૨૮-૨-૫૮ સુધીના
દાખલ થએલ મેમ્બરો,



(રૂ. ૨૫૦ થી ઓછી રકમો આ યાદીમાં સામેલ કરી નથી)

શ્રી અખિલ ભારત શ્વેતામ્બર સ્થાનકવાસી
જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ

ગરેડીઆ કુવા રોડ - ગ્રીન લોજ પાસે

રાજકોટ

શાસ્ત્રોની માહિતી.

૧	શ્રી ઉપાસક દશાગ સૂત્ર	પહેલી આવૃત્તિ ખલાસ	
	„	ખીજી „ તૈયાર છે	૮-૮-૦
૨	„ દશ વૈકલિક „ ભાગ ૧	પહેલી „ ખલાસ	
	„	ખીજી „ તૈયાર છે	૧૦-૦-૦
૩	„ દશવૈકલિક „ ભાગ ૨	પહેલી „	૭-૮-૦
૪	„ નિરયાવલિકા „ ભાગ ૧ થી ૫	પહેલી „	૭-૮-૦
૫	„ આચારાગ „ ભાગ ૧	પહેલી „ ખલાસ	
	„	ખીજી „ તૈયાર છે	૧૦-૦-૦
૬	„ આચારાગ „ ભાગ ૨	પહેલી „	૧૦-૦-૦
૭	„ આચારાગ „ ભાગ ૩	પહેલી „	૧૦-૦-૦
૮	„ આવશ્યક „	પહેલી „ ખલાસ	
	„	ખીજી „ તૈયાર છે	૭-૮-૦
૯	„ વિપાક „	પહેલી „ ખલાસ	
	„	ખીજી „ છપાય છે	૧૦-૦-૦
૧૦	„ દશાશ્રુત સ્કંધ „	પહેલી „ ખલાસ	
	„	ખીજી „ છપાય છે	૭-૦-૦
૧૧	„ અન્તકૃત દશાગ „	પહેલી „ ખલાસ	
	„	ખીજી „ છપાય છે	૫-૦-૦
૧૨	„ અનુત્તરોપપાતિક „	પહેલી „ ખલાસ	
	„	ખીજી „ છપાય છે	૩-૮-૦
૧૩	„ નદી „	પહેલી „ છપાય છે	
૧૪	„ ઉવવાઈ „	પહેલી „ છપાય છે	
૧૫	„ ઉત્તરાધ્યયન „	પહેલી „ છપાય છે	
૧૬	„ કંઠપ „	પહેલી „ છપાય છે	૩૫-૦-૦

(પત્રાકારે)

(અગાઉથી ગ્રાહક યનારને માટે રૂા ૨૫-૦-૦)

રાજકોટ તા ૧૫-૩-૫૮



૧૬	શેઠ આત્મારામ માણેકલાલ	અમદાવાદ	૧૦૦૧
૧૭	શેઠ માણેકલાલ ભાણુભાઈ	પોરબંદર	૧૦૦૧
૧૮	શ્રીમાન ચંદ્રસિંહજી મહેતા (રિટવે મેનેજર સાહેબ)	કલકત્તા	૧૦૦૧
૧૯	મહેતા સોમચંદ નેણુસીભાઈ (કરાચીવાલા)	મોઝી	૧૦૦૧
૨૦	શાહ હરીલાલ અનોપચંદભાઈ	ખંભાત	૧૦૦૧
૨૧	કોઠારી છબીલદાસ હરખચંદભાઈ	મુળઈ	૧૦૦૦
૨૨	કોઠારી રંગીલદાસ હરખચંદભાઈ	શિહોર	૧૦૦૦

સહાયક મેમ્બરો-૩૬

(ઓછામાં ઓછી રૂ. ૫૦૦ ની રકમ આપનાર)

૧	શાહ રંગજીભાઈ મોહનલાલ	અમદાવાદ	૭૫૧
૨	મોદી કેશવલાલ હરીચંદ્ર	સાબરમતી	૭૫૦
૩	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈનસંઘ હા. શેઠ ઝુઝાભાઈ વેલસીભાઈ વઢવાણ શહેર		૭૫૦
૪	શેઠ નરોત્તમદાસ ઓઘડભાઈ	જોરાવરનગર	૭૦૦
૫	શેઠ રતનશી હીરજીભાઈ હા. ગોરધનદાસભાઈ	જામજોધપુર	૫૫૫
૬	ખાટવીયા ગીરધર પ્રભાણુદ હા. અમીચંદભાઈ	ખાખીજાળીઆ	૫૨૭
૭	મોરખીવાળા સઘવી દેવચંદ નેણુસીભાઈ તથા તેમના ધર્મપત્ની અ. સૌ મણીભાઈ તરફથી હા. મુળચંદ દેવચંદ (કરાચીવાલા) મલાડ		૫૧૧
૮	વોરા મણીલાલ પોપટલાલ	અમદાવાદ	૫૦૨
૯	ગોસલીયા હરીલાલ લાલચંદ તથા અ. સૌ ચ. પાળેન ગોસલીયા અમદાવાદ		૫૦૨
૧૦	પ્રેમચંદ માણેકચંદ તથા અ. સૌ સમરતળેન (રાજસીતાપુરવાળા) અમદાવાદ		૫૦૨
૧૧	શેઠ ઈશ્વરલાલ પુરૂષોત્તમદાસ	અમદાવાદ	૫૦૧
૧૨	શેઠ ચંદુલાલ છગનલાલ	અમદાવાદ	૫૦૧
૧૩	શાહ શાન્તીલાલ માણેકલાલ	અમદાવાદ	૫૦૧
૧૪	શેઠ શીવલાલ ડમરભાઈ (કરાચીવાળા)	લીંબડી	૫૦૧
૧૫	કામદાર તાગચંદ પોપટલાલ ધોરાજીવાળા	રાજકોટ	૫૦૦
૧૬	મહેતા મોહનલાલ કપુરચંદ	રાજકોટ	૫૦૦
૧૭	શેઠ ગોર્વીંદજી પોપટભાઈ	રાજકોટ	૫૦૦
૧૮	શેઠ રામજી શામજી વીરાણી	રાજકોટ	૫૦૧
૧૯	સ્વ. પિતાશ્રી નદાજીના સ્મરણાર્થે હા. વેણીચંદ શાન્તીલાલ (જામખાવાળા)	મેઘનગર	૫૦૧
૨૦	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈનસંઘ હા. શેઠ ઠાકરશી કરસનજી	થાનગઢ	૫૦૦
૨૧	શેઠ તારાચંદજી પુખરાજજી	ઔરંગાબાદ	૫૦૦

આદ્યમુરખીશ્રીઓ-૪

(યોછામા યોછી રૂા ૫૦૦૦ ની રકમ આપનાર)

નંબર	નામ	ગામ	રૂપિયા
૧	શેઠ શાન્તીલાલ મગજદાસભાઈ જાણીતા મીલમાલીક	અમદાવાદ	૧૦૦૦૦
૨	શેઠ હરખચદ કાલીદાસભાઈ વારીયા હા શેઠ લાલચદભાઈ, જેચદભાઈ, નગીનભાઈ, વૃંજલાલભાઈ તથા વલ્લભદાસભાઈ	ભાણુવડ	૬૦૦૦
૩	કોઠારી જેચદભાઈ અજરામર હા હરગોવિંદભાઈ જેચદભાઈ	રાજકોટ	૫૨૫૧
૪	શેઠ ધારશીભાઈ જીવનભાઈ	સોલાપુર	૫૦૦૧

મુરખીશ્રીઓ-૨૨

(યોછામા યોછી રૂા ૧૦૦૦ ની રકમ આપનાર)

૧	વકીલ જીવરાજભાઈ વર્ધમાન કોઠારી હા કહાનદાસભાઈ તથા વેણીલાલભાઈ	જેતપુર	૩૬૦૫
૨	દોશી પ્રભુદાસ મૂળજીભાઈ	રાજકોટ	૩૬૦૪
૩	મહેતા જીલાળચદ પાનાચદ	રાજકોટ	૩૨૮૬૧૧
૪	સ્વ પિતાશ્રી છગનલાલ શામળદાસના સ્મરણાર્થે હા ભાવસાર ભોતીલાલ છગનલાલ	અમદાવાદ	૩૨૫૧
૫	મહેતા માણેકલાલ અમુલખરાય	ઘાટકોપર	૩૨૫૦
૬	સઘવી પીતામ્બરદાસ જીલાળચદ	જામનગર	૩૧૦૧
૭	શેઠ શામજીભાઈ વેલજીભાઈ વીરાણી	રાજકોટ	૨૫૦૦
૮	નામદાર ઠાકોર સાહેબ લખધીરસિંહજી બહાદુર	મોરબી	૨૦૦૦
૯	શેઠ દહેરચંદ કુવરજી હા શેઠ ન્યાલચદ દહેરચંદ	સિદ્ધપુર	૨૦૦૦
૧૦	શાહ છગનલાલ હેમચંદ વસા હા મોહનલાલભાઈ તથા મોતીલાલભાઈ	મુબઇ	૨૦૦૦
૧૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સઘ	મોરબી	૧૬૬૩
૧૨	મહેતા સોમચંદ જીવસીદાસ તથા તેમના ધર્મપત્ની અ. સૌ મણીગોરી મગનલાલ	રતલામ	૧૫૦૦
૧૩	મહેતા પોપટલાલ માવજીભાઈ	જામજોધપુર	૧૩૦૧
૧૪	દોશી કપુરચંદ અમરશી હા દવપતરામભાઈ	જામજોધપુર	૧૦૦૨
૧૫	ભગડીઆ જગજીવનદાસ રતનગી	દામનગર	૧૦૦૨

૧૬	શેઠ આત્મારામ માણેકલાલ	અમદાવાદ	૧૦૦૧
૧૭	શેઠ માણેકલાલ ભાણુભાઈ	પોરબંદર	૧૦૦૧
૧૮	શ્રીમાન ચંદ્રસિંહજી મહેતા (રિલ્વે મેનેજર સાહેબ)	કલકત્તા	૧૦૦૧
૧૯	મહેતા સોમચંદ નેણુમીભાઈ (કરાચીવાલા)	મોરબી	૧૦૦૧
૨૦	શાહ હરીલાલ અનોપચંદભાઈ	ખભાત	૧૦૦૧
૨૧	કેઠારી છબીલદાસ હરખચંદભાઈ	મુળઈ	૧૦૦૦
૨૨	કેઠારી રંગીલદાસ હરખચંદભાઈ	શિહોર	૧૦૦૦

સહાયક મેમ્બરો-૩૬

(ઓછામાં ઓછી રૂ. ૫૦૦ ની રકમ આપનાર)

૧	શાહ રંગભાઈ મોહનલાલ	અમદાવાદ	૭૫૧
૨	મોદી કેશવલાલ હરીચંદ્ર	સાબરમતી	૭૫૦
૩	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈનસંઘ હા. શેઠ ઝુઝાભાઈ વેલસીભાઈ વઢવાણ શહેર		૭૫૦
૪	શેઠ નરોત્તમદાસ ઓઘડભાઈ	જોરાવરનગર	૭૦૦
૫	શેઠ રતનશી હીરજીભાઈ હા. ગોરધનદાસભાઈ	જામજોધપુર	૫૫૫
૬	ખાટવીયા ગીરધર પ્રમાણુદ હા. અમીચંદભાઈ	ખાખીજાળીઆ	૫૨૭
૭	મોરબીવાળા સંઘવી દેવચંદ નેણુશીભાઈ તથા તેમના ધર્મપત્ની અ. સૌ મણીજાઈ તરફથી હા. મુળચંદ દેવચંદ (કરાચીવાલા) મલાડ		૫૧૧
૮	વોરા મણીલાલ પોપટલાલ	અમદાવાદ	૫૦૨
૯	ગોસલીયા હરીલાલ લાલચંદ તથા અ. સૌ ચ. પાળેન ગોસલીયા અમદાવાદ		૫૦૨
૧૦	પ્રેમચંદ માણેકચંદ તથા અ. સૌ સમરતળેન (રાજસીતાપુરવાળા) અમદાવાદ		૫૦૨
૧૧	શેઠ ઇશ્વરલાલ પુરૂષોત્તમદાસ	અમદાવાદ	૫૦૧
૧૨	શેઠ ચંદુલાલ છગનલાલ	અમદાવાદ	૫૦૧
૧૩	શાહ શાન્તીલાલ માણેકલાલ	અમદાવાદ	૫૦૧
૧૪	શેઠ શીવલાલ ડમરભાઈ (કરાચીવાળા)	લીંબડી	૫૦૧
૧૫	કામદાર તારાચંદ પોપટલાલ ધોરાજીવાળા	રાજકોટ	૫૦૦
૧૬	મહેતા મોહનલાલ કપુરચંદ	રાજકોટ	૫૦૦
૧૭	શેઠ ગોર્ધાજી પોપટભાઈ	રાજકોટ	૫૦૦
૧૮	શેઠ રામજી શામજી વીરાણી	રાજકોટ	૫૦૧
૧૯	સ્વ. પિતાશ્રી નદાજીના સ્મરણાર્થે હા. વેણીચંદ શાન્તીલાલ (જામખાવાળા)	મેઘનગર	૫૦૧
૨૦	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈનસંઘ હા. શેઠ ઠાકરશી કરસનજી	થાનગઢ	૫૦૦
૨૧	શેઠ તારાચંદજી પુખરાજજી	ઓરગાખાદ	૫૦૦

આદ્યમુરખીશ્રીઓ-૪

(ઓછામાં ઓછી રૂ. ૫૦૦૦ ની રકમ આપનાર)

નંબર	નામ	ગામ	રૂપિયા
૧	શેઠ શાન્તીલાલ મગળદાસભાઈ જાણીતા-મીલમાલીક	અમદાવાદ	૧૦૦૦૦
૨	શેઠ હરખચદ કાલીદાસભાઈ વારીયા હા શેઠ લાલચદભાઈ, જેચદભાઈ, નગીનભાઈ, વૃંજલાલભાઈ તથા વટલભદાસભાઈ	ભાણુવડ	૬૦૦૦
૩	કેઠારી જેચદભાઈ અજરમર હા હરગોવીંદભાઈ જેચદભાઈ	રાજકોટ	૫૨૫૧
૪	શેઠ ધારશીભાઈ જીવનભાઈ	સોલાપુર	૫૦૦૧

મુરખીશ્રીઓ-૨૨

(ઓછામાં ઓછી રૂ. ૧૦૦૦ ની રકમ આપનાર)

૧	વકીલ જીવરાજભાઈ વર્ધમાન કેઠારી હા કહાનદાસભાઈ તથા વેણીલોલભાઈ	જેતપુર	૩૬૦૫
૨	દોશી પ્રભુદાસ મૂળજીભાઈ	રાજકોટ	૩૬૦૪
૩	મહેતા ગુલાબચંદ પાનાચંદ	રાજકોટ	૩૨૮૬૧૧
૪	સ્વ પિતાશ્રી છગનલાલ શામળદાસના સ્મરણાર્થે હા ભાવસાર ભોતીલાલ છગનલાલ	અમદાવાદ	૩૨૫૧
૫	મહેતા માણેકલાલ અમુલખરાય	ઘાટકોપર	૩૨૫૦
૬	સઘવી પીતાજીરદાસ ગુલાબચંદ	જામનગર	૩૧૦૧
૭	શેઠ શામજીભાઈ વેલજીભાઈ વીરાણી	રાજકોટ	૨૫૦૦
૮	નામદાર ઠાકોર સાહેબ લખધીરસિંહજી બહાદુર	મોરબી	૨૦૦૦
૯	શેઠ દહેરચંદ કુવરજી હા શેઠ ન્યાલચંદ દહેરચંદ	સિદ્ધપુર	૨૦૦૦
૧૦	શાહ છગનલાલ હેમચંદ વસા હા મોહનલાલભાઈ તથા મોતીલાલભાઈ	મુળધ	૨૦૦૦
૧૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સઘ	મોરબી	૧૬૬૩
૧૨	મહેતા સોમચંદ જીવસીદાસ તથા તેમના ધર્મપત્ની અ. સો મણીગોરી મગનલાલ	રતલામ	૧૫૦૦
૧૩	મહેતા પોપટલાલ માવજીભાઈ	જામજોધપુર	૧૩૦૧
૧૪	દોશી કપુરચંદ અમરશી હા દવપતરામભાઈ	જામજોધપુર	૧૦૦૨
૧૫	ભગડીઆ જગજીવનદાસ રતનગી	દામનગર	૧૦૦૨

૬	શેઠ પ્રેમચંદ સાકરચંદ	૨૫૦
૭	શાહ રતીલાલ વાડીલાલ	૨૫૧
૮	શેઠ લાલભાઈ મગળદાસ	૨૫૧
૯	સ્વ અમૃતલાલ વર્ધમાનના સ્મરણાર્થે હા કાનજીભાઈ અમૃતલાલ દેશાઈ	૨૫૧
૧૦	ભાવસાર ભોગીલાલ જમનાદાસ (પાટણવાળા)	૨૫૧
૧૧	શાહ નટવરલાલ ચંદુલાલ	૨૫૧
૧૨	શાહ નરસિંહદાસ ત્રીલોચનદાસ	૨૫૧
૧૩	શ્રી શાહપુર દરીયાપુરી આઠકોટી સ્થા જૈન ઉપાશ્રય હા વહીવટ કર્તા શેઠ ઈશ્વરલાલ પુરૂષોત્તમદાસ	૨૫૧
૧૪	શ્રી છીપાપોળ દરીયાપુરી આઠકોટી સ્થા જૈનસંઘ હા ચંદુલાલ અમૃતલાલ	૨૫૧
૧૫	શાહ ચીનુભાઈ ખાલાભાઈ C/o શાહ ખાલાભાઈ મહાસુખરામ	૨૫૧
૧૬	શાહ ભાઈલાલ ઉજ્જમશી	૨૫૧
૧૭	શ્રી મુખલાલ ડી શેઠ હા ડા કુ સરસ્વતીબહેન શેઠ	૨૫૧
૧૮	શ્રી સૌરાષ્ટ્ર સ્થા જૈનસંઘ હા શાહ કાન્તીલાલ જીવણલાલ	૨૫૧
૧૯	મેઢી નાથાલાલ મહાદેવદાસ	૨૫૧
૨૦	શાહ મોહનલાલ ત્રીકમદાસ	૨૫૧
૨૧	શ્રી છકોટી સ્થા જૈનસંઘ હા શાહ પોચાલાલ પીતામ્બરદાસ	૨૫૧
૨૨	શેઠ પોપટલાલ હસરાજના સ્મરણાર્થે હા શેઠ જાણુલાલ પોપટલાલ	૨૫૧
૨૩	દેશાઈ અમૃતલાલ વર્ધમાન જાપોદરાવાળા હા ભાઈલાલ અમૃતલાલ દેશાઈ	૨૫૧
૨૪	શાહ નવનીતલાલ અમુલખરાય	૨૫૧
૨૫	શાહ મણીલાલ આશારામ	૨૫૧
૨૬	શાહ ચીનુભાઈ સાકરચંદ	૨૫૧
૨૭	શાહ વરજીવનદાસ ઉમેદચંદ	૨૫૧
૨૮	શાહ રજનીકાન્ત કસ્તુરચંદ	૨૫૧
૨૯	મધવી જીવણલાલ છગનલાલ (સ્થા જૈન)	૨૫૧
૩૦	શાહ શાંતિલાલ મોહનલાલ ધાગધાવાળા	૨૫૧
૩૧	અ સો જૈન રતનભાઈ નાદેચા હા શાહ ધુલાજી ચપાલાલજી	૨૫૧
૩૨	શાહ હરિલાલ જેઠાલાલ ભાડલાવાળા	૨૫૧
૩૩	શ્રી સરસપુર દરીયાપુરી આઠકોટી સ્થા જૈન ઉપાશ્રય હા ભાવસાર ભોગીલાલ છગનલાલ	૨૫૧
૩૪	શેઠ પુખરાજજી સમતીરામજી સાદડીવાળા	૨૫૧
૩૫	શેઠ લાલચંદ મીશ્રીલાલ	૨૫૧

૨૨	શ્રી સ્થાકવાસી જૈનસંઘ	ઓર ગાખાદ	૫૦૦
	૧૫૦ શેઠ શેષમલજી જીવરાજજી		
	૧૨૫ શેઠ અનરાજજી લાલચદજી		
	૧૨૫ ધુકડચદજી રૂપચદજી		
	૧૦૦ દગડુમલજી ચાદમલજી		
	<u>૫૦૦</u>		
૨૩	મહેતા મૂળચંદ રાઘવજી હા મગનલાલભાઈ તથા દુર્લભજીભાઈ	ધાક્ષા	૫૦૦
૨૪	શેઠ હરખચંદ પુરૂષોત્તમ હા ઈન્દુકુમાર	ચોરવાડ	૫૦૧
૨૫	શેઠ કેસરીમલજી વસંતીમલજી શુભલીયા	રાણાવાસ	૫૦૧
૨૬	સ્થા જૈનસંઘ હા બાટવીઆ અમીચંદ ગીરધરભાઈ આખીજળીઆ		૫૦૧
૨૭	શેઠ ખીમજીભાઈ બાવાભાઈ હા કુલચંદભાઈ, નાગરદાસભાઈ તથા જમનાદાસભાઈ	મુળઈ	૫૦૧
૨૮	શેઠ મણીલાલ મોહનલાલ ડગલી હા મુળજીભાઈ મણીલાલ	મુળઈ	૫૦૧
૨૯	સ્વ કાંતીલાલભાઈના સ્મરણાર્થે હા, શેઠ બાલચંદ સાકરચંદ	મુળઈ	૫૦૧
૩૦	કામદાર રતીલાલ દુર્લભજી (જેતપુરવાળા)	મુળઈ	૫૦૧
૩૧	શાહ જયતીલાલ અમૃતલાલ	શીવ	૫૦૧
૩૨	વોરા મણીલાલ લક્ષ્મીચંદ	શીવ	૫૦૧
૩૩	શેઠ ગુલાબચંદ ભુદરભાઈ	ખારરોડ	૫૦૧
૩૪	મહાન ત્યાગી બેન ધીરજકુવર ચુનીલાલ મહેતા	ભાણુવડ	૫૦૧
૩૫	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈનસંઘ	ધાક્ષા	૫૦૧
૩૬	શ્રી મગનલાલ છગનલાલ શેઠ	રાજકોટ	૫૦૧



૩૧૬ મેમ્બરોનું ગામ વાર લીસ્ટ

અમદાવાદ તથા પરાઓ

૧	શેઠ ગીરધરલાલ કરમચંદ	૨૫૧
૨	શેઠ છોટાલાલ વખતચંદ હા રૂકીરચંદભાઈ	૨૫૧
૩	શાહ કાન્તીલાલ ત્રીલોચનદાસ	૨૫૧
૪	શાહ પોચાલાલ પીતામ્બરદાસ	૨૫૧
૫	શાહ પોપટલાલ મોહનલાલ	૨૫૧

- ૬ પૂજ્ય પિતાશ્રી મોતીલાલજી મહેતાના સ્મરણાર્થે
હા રણુજીતલાલજી મોતીલાલજી મહેતા ૨૫૧
૭ શેઠ હગનલાલ ખાગરેયા ૨૫૧

ઉમરગાવરોડ

- ૧ શાહ મોહનલાલ પોપટલાલ પાનેલીવાળા ૨૫૧

ઉપલેટા

- ૧ શેઠ જેઠાલાલ ગોવિંદદાસ ૨૫૧
૨ સ્વ બેન સતોકબેન કચરા હા, ચોતમચદભાઈ,
છોટાલાલભાઈ તથા અમૃતલાલભાઈ વાલજી (કલ્યાણવાળા) ૨૫૧
૩ શેઠ ખુશાલચંદ કાનજીભાઈ હા શેઠ પ્રતાપભાઈ ૨૫૧
૪ મધાણી મૂળશંકર હરજીવનભાઈના સ્મરણાર્થે
હા તેમના પુત્રો જયતીલાલભાઈ તથા રમણીકલાલ ૨૫૧

એડન કેમ્પ

- ૧ શાહ ગોકળદાસ શામજી ઉદાણી ૨૫૧

કલોલ

- ૧ શેઠ મોહનલાલ જેઠાભાઈના સ્મરણાર્થે હા શેઠ આત્મારામ મોહનલાલ ૨૫૧
૨ ડો માયાચંદ મગનલાલ શેઠ હા ડો રતનચંદ મયાચંદ ૨૫૧
૩ સ્વ નાથાલાલ ઊમેદચંદના સ્મરણાર્થે હા શાહ રતીલાલ નાથાલાલ ૨૫૧
૪ શાહ મણીલાલ તલકચંદના સ્મરણાર્થે હા મારફતીયા ચંદુલાલ મણીલાલ ૨૫૧

કડી

- ૧ શ્રી સ્થા દરીયાપુરી જૈન સઘ હા ભાવચાર દામોદરદાસ ધંધરભાઈ ૨૫૧

કોલકી

- ૧ પટેલ ગોવિંદલાલ ભગવાનજી ૨૫૧
૨ પટેલ ખીમજી જેઠાભાઈ વાઘણી (તેમના સ્વ સુપુત્ર રામજીભાઈના સ્મરણાર્થે) ૩૦૨

ખીચન

- ૧ શેઠ કીશનલાલ પૃથ્વીરાજ ૨૫૧

ખભાત

- ૧ શેઠ માણેકલાલ ભગવાનદાસ ૨૫૧
૨ શ્રી સ્થા જૈન સઘ હા પટેલ કાન્તીલાલ અબાલાલ ૨૫૧
૩ શાહ સાકરચંદ મોહનલાલ ૨૫૧
૪ શાહ ચંદુલાલ હરીલાલ ૨૫૧

૩૬	સ્વ પિતાશ્રી જવાહીરલાલજી તથા પૂજ્ય ચાચાજી હનરીમલજી ખરડીયાના સ્મરણાર્થે હા મૂળચંદ જવાહરલાલ	૨૫૧
૩૭	સ્વ ભાવસાર બખાભાઈ (મગળદાસ) પાનાચંદના સ્મરણાર્થે હા તેમના ધર્મપત્ની પુરીબેન	૨૫૧
૩૮	સ્વ પિતાશ્રી રવજીભાઈ તથા સ્વ માતૃશ્રી મૂળીબાઈના સ્મરણાર્થે હા કકલભાઈ કોઠારી	૩૦૧
૩૯	ભાવસાર કેશવલાલ મગનલાલ	૨૫૧
૪૦	શાહ કેશવલાલ નાનચંદ બખડાવાળા હા પાર્વતીબેન	૨૫૧
૪૧	શાહ જીતેન્દ્રકુમાર વાડીલાલ માણેકચંદ રાજસીતાપુરવાળા (સાબરમતી)	૨૫૧
૪૨	શ્રી સ્થા જૈન સંઘ (સાબરમતી)	૨૫૦
૪૩	ખીપીનચંદ્ર તથા ઉમાકાંત ચુનીલાલ ગોપાણી (રાણપુરવાળા)	૩૦૧

અમલનેર

૧	શાહ નાગરદાસ વાઘજીભાઈ	૨૫૧
૨	શ્રી સ્થા જૈનસંઘ હા શાહ ગાડાલાલ ભીખાલાલ	૨૫૧

આણુ દ

૧	શેઠ રમણીકલાલ એ કપાસી હા મનસુખલાલભાઈ	૨૫૧

આસનસોલ

૧	બાવીસી મણીલાલ ચત્રભુજના સ્મરણાર્થે તેમના ધર્મપત્ની મણીબાઈ તરફથી હા રમણીકલાલ, અનીલકાંત, વિનોદરાય	૨૫૧

આટકોટ

૧	શાહ ચુનીલાલ નારણજી	૩૦૧

ઉદેપુર

૧	શેઠ મોતીલાલજી રણજીતલાલજી હોંગડ	૨૫૧
૨	શેઠ મગનલાલજી બાગરેયા	૨૫૧
૩	અ સો જડેન ચંદ્રાવતી તે શ્રીમાન બહોતલ લજી નાહરના ધર્મપત્ની હા શેઠ રણજીતલાલજી હોંગડ	૨૫૧
૪	સ્વ શેઠ કળુવાલજી લોઢાના સ્મરણાર્થે હા શેઠ દોલતસિંહજી લોઢા	૨૫૧
૫	સ્વ શેઠ પ્રતાપમલજી સાખલાના સ્મરણાર્થે હા પ્રણુલાલ દ્વીરાલાલ સાખલા	૨૫૧

જુનાગઢ

- ૧ શાહ મણીલાલ મીઠાભાઈ હા હેરીલાલભાઈ (હાટીના માળીઆવાળા) ૨૫૧

જુનારદેન (મધ્ય પ્રાત)

- ૧ વેલાણી ત્રીકમજી લાધાભાઈ ૨૫૧

જેતપુર

- ૧ શેઠ અમૃતલાલ હીરજીભાઈ હા નરસેરામભાઈ (જસાપુરવાળા) ૨૫૧

- ૨ દોશી છોટાલાલ વનેચદ ૨૫૧

- ૩ કેઠારી ડાલરકુમાર વેણીલાલ ૨૫૧

જેતલસ

- ૧ શાહ લક્ષ્મીચદ કપુરચદ ૨૫૧

- ૨ કામદાર લીલાધર જીવરાજના સ્મરણાર્થે તેમના ધર્મપત્નિ જળકબેન તરફથી
હા શાન્તીલાલભાઈ ગોડલવાળા ૨૫૧

ડભાસ

- ૧ સ્વ તુરખીઆ લહેરચદ માણેકચદના સ્મરણાર્થે તેમના ધર્મપત્નિ
જીવતીબાઈ તરફથી હા જયતીભાઈ ૨૫૧

ડાડાઈચા

- ૧ શ્રી સ્થા જૈન સંઘ હા શેઠ ચપાલાલજી મારવે ૨૫૦

થાનગઢ

- ૧ શાહ ઠાકરશીભાઈ કરશનજી ૨૫૧

- ૨ શેઠ જેઠાલાલ ત્રીભોવનદાસ ૨૫૧

- ૩ શાહ ધારશી પાશવીર હા સુખલાલભાઈ ૨૫૧

દહાપ રોડ (થાણા)

- ૧ શાહ હરજીવનદાસ ઓઘડ ખધાર (કરાચીવાળા) ૨૫૧

દિલ્હી

- ૧ લાલા પૂર્ણચંદજી જૈન (સેન્ટ્રલ બેંકવાળા) ૩૫૧

વાગ (મધ્યપ્રાત)

- ૧ શેઠ આગરમલજી પનાલાલજી ૨૫૧

ગુદા

- ૧ સ્વ મહેતા પુત્રમચદ ભવાનભાઈના સ્મરણાર્થે
હા તેમના ધર્મપતિ દીવાળીબેન લીલાધર ૨૫૧

ગોડલ

- ૧ સ્વ બાખડા વચ્છરાજ તુલસીદાસના ધર્મપતિ કમળબાઈ તરફથી
હા માણેકચદભાઈ તથા કપુરચદભાઈ ૨૫૧
- ૨ પીપળીઆ લીલાધર દામોદર તરફથી તેમના ધર્મપત્ની અ સો
લીલાવતી સાકરચદ કેઠારીના બીજા વરસીતપની ખુશાલીમા ૩૦૧
- ૩ કામદાર જુઠાલાલ કેશવજીના સ્મરણાર્થે હા હરીલાલ જુઠાભાઈ ૩૦૧

ગોધરા

- ૧ શાહ ત્રીભોવનદાસ છગનલાલ ૩૦૧

ઘટકેણુ

- ૧ શાહ ચ દુલાલ કેશવલાલ ૨૫૧

ઘોલવાડ (થાણા)

- ૧ મહેતા ગુલાબચદજી ગભીરલાલજી ૩૦૦

ચુડા (ઝાલાવાડ)

- ૧ શ્રી સ્થા જૈનસઘ હા રતીલાલ ગાધી પ્રમુખ ૨૫૧

જલેસર (બાલાસોર)

- ૧ સઘવી નાનચદ પોપટભાઈ થાનગઢવાળા ૨૫૧

જામજોધપુર

- ૧ શ્રી સ્થા જૈનસઘ ૩૮૭
- ૨ શાહ ત્રીભોવનદાસ ભગવાનજી પાનેલીવાળા ૨૫૧

જામનગર

- ૧- શેઠ છોટાલાલ કેશવજી ૨૫૧
- ૨ શેઠ ચતુરદાસ ઠાકરશી ૨૫૧
- ૩ વેરા ચીમનલાલ દેવજીભાઈ ૨૫૧

જામખલાળીઆ

- ૧ શેઠ વસનજી નારણજી ૨૫૧
- ૨ શ્રી સ્થા જૈનસઘ હા મહેતા રણછોડદાસ પરમાણુ ૨૫૧
- ૩ સઘવી પ્રાણલાલ લવજીભાઈ ૨૫૧

જુનાગઢ

- ૧ શાહ મણીલાલ મીઠાભાઈ હા હરીલાલભાઈ (હાટીના માળીઆવાળા) ૨૫૧

જુનારદેર (મધ્ય પ્રાત)

- ૧ વેલાણી ત્રીકમજી લાધાભાઈ ૨૫૧

જેતપુર

- ૧ શેઠ અમૃતલાલ હીરજીભાઈ હા નરભેરામભાઈ (જસાપુરવાળા) ૨૫૧

- ૨ દોશી છોટાલાલ વનેચદ ૨૫૧

- ૩ કેઠારી ડાલરકુમાર વેણીલાલ ૨૫૧

જેતલસ

- ૧ શાહ લક્ષ્મીચંદ કપુરચંદ ૨૫૧

- ૨ કામદાર લીલાધર જીવરાજના સ્મરણાર્થે તેમના ધર્મપતિ જળકળેન તરફથી
હા શાન્તીલાલભાઈ ગોડલવાળા ૨૫૧

ડભાસ

- ૧ સ્વ તુરખીઆ લહેરચંદ માણેકચંદના સ્મરણાર્થે તેમના ધર્મપતિ
જીવતીબાઈ તરફથી હા જયતીભાઈ ૨૫૧

ડાડાઈચા

- ૧ શ્રી સ્થા જૈન સઘ હા શેઠ ચપાલાલજી મારવે ૨૫૦

થાનગઢ

- ૧ શાહ ઠાકરશીભાઈ કરશનજી ૨૫૧

- ૨ શેઠ જેઠાલાલ ત્રીભોવનદાસ ૨૫૧

- ૩ શાહ ધારશી પાશવીર હા મુખલાલભાઈ ૨૫૧

દહાપ રોડ (થાણા)

- ૧ શાહ હરજીવનદાસ ઓઘડ ખધાર (કરાચીવાળા) ૨૫૧

દિલ્હી

- ૧ લાલા પૂર્ણચંદજી જૈન (સેન્ટ્રલ બેંકવાળા) ૩૫૧

વાર (મધ્યપ્રાત)

- ૧ શેઠ માગરમલજી પનાલાલજી ૨૫૧

ગુ હા

- ૧ સ્વ મહેતા પુનમચદ ભવાનભાઈના સ્મરણાર્થે
હા તેમના ધર્મપત્નિ દીવાળીબેન લીલાધર ૨૫૧

ગોડલ

- ૧ સ્વ બાબડા વચ્છરાજ તુલસીદાસના ધર્મપત્નિ કમળબાઈ તરફથી
હા માણેકચદભાઈ તથા કપુરચદભાઈ ૨૫૧
- ૨ પીપળીઆ લીલાધર દામોદર તરફથી તેમના ધર્મપત્ની અ સૌ
લીલાવતી સાકરચદ કોઠારીના બીજા વરસીતપની ખુશાલીમા ૩૦૧
- ૩ કામદાર જુઠાલાલ કેશવજીના સ્મરણાર્થે હા હરીલાલ જુઠાભાઈ ૩૦૧

ગોધરા

- ૧ શાહ ત્રીલોવનદાસ છગનલાલ ૩૦૧

ઘટકેણુ

- ૧ શાહ ચ દુલાલ કેશવલાલ ૨૫૧

ઘોલવાડ (થાણા)

- ૧ મહેતા શુલાળચદજી ગ બીરલાલજી ૩૦૦

ચુડા (ઝાલાવાડ)

- ૧ શ્રી સ્થા જૈનસઘ હા રતીલાલ ગાધી પ્રમુખ ૨૫૧

જલેસર (બાલાસોર)

- ૧ સઘવી નાનચદ પોપટભાઈ થાનગઢવાળા ૨૫૧

જામજેઘપુર

- ૧ શ્રી સ્થા જૈનસઘ ૩૮૭
- ૨ શાહ ત્રીલોવનદાસ ભગવાનજી પાનેલીવાળા ૨૫૧

જામનગર

- ૧ શેઠ છોટાલાલ કેશવજી ૨૫૧
- ૨ શેઠ ચતુરદાસ ઠાકરશી ૨૫૧
- ૩ વોરા ચીમનલાલ દેવજીભાઈ ૨૫૧

જામખ ભાળીઆ

- ૧ શેઠ વસનજી નારણજી ૨૫૧
- ૨ શ્રી સ્થા જૈનસઘ હા મહેતા રણઉડદાસ પરમાજી ૨૫૧
- ૩ સઘવી પ્રાણલાલ લવજીભાઈ ૨૫૧

બગસરા (ભાયાણી)

- ૧ સ્વ પૂજ્ય માતૃશ્રી જકલબાઈના સ્મરણાર્થે
હા દેશાઈ મજલાલ કાળીદાસ ૨૫૧
- ૨ શેઠ પોપટલાલ રાઘવજી રાયડીવાળા હા શેઠ માનસંગ ત્રેમચંદ ૨૫૧

બેરાળ (કચ્છ)

- ૧ શેઠ ગાગજી કેશવજી (જ્ઞાનભંડાર માટે) ૨૫૧

બોટાદ

- ૧ સ્વ વસાણી હરગોવીંદદાસ છગનલાલના સ્મરણાર્થે
હા તેમના ધર્મપત્નિ છબલબેન ૨૫૧
- ૨ શ્રી સ્થાનકવાસી જૈનસંઘ (૨૫૦ બાકી) ૨૫૧

બોડલી

- ૧ શાહ અવીણ્ણયદ્ર નરસીદાસ (સાણુદવાળા) ૨૫૧
- ૨ શાહ ગીરધરલાલ સાકરચંદ ૨૫૧

ભાણુવડ

- ૧ શેઠ જેચદભાઈ માણેકચંદ ૩૦૧
- ૨ સઘવી માણેકચંદ માધવજી ૨૫૧
- ૩ શેઠ લાલજીભાઈ માણેકચંદ (લાલપુરવાળા) ૨૫૧
- ૪ શેઠ રામજી જીણાભાઈ ૨૫૧
- ૫ શેઠ પદમશી ભીમજી ફેફરીઆ ૨૫૧
- ૬ ફેફરીઆ ગાડાલાલ કાનજીભાઈ હા અ સૌ શાતાબેન વસનજી ૨૫૧

મદ્રાસ

- ૧ શેઠ મેઘરાજજી દેવીચંદજી ૨૫૧

મનોર (થાણા)

- ૧ શાહ શેરમલજી દેવીચંદજી જસવતગઢવાળા
હા પૂનમચંદજી શેરમલજી બોટયા ૨૫૧

માનકુના (કચ્છ)

- ૧ સ્વ મહેતા કુવરજી નાથાલાલના સ્મરણાર્થે
હા તેમના ધર્મપત્નિ કુવરબાઈ હરખચંદ
(માનકુવા સ્થાનકવાસી જૈનસંઘ માટે) ૨૫૧

ધાગામા

૧	શ્રી સ્થા જૈન મોટા સઘ હા શેઠ માવજીભાઈ જીવરાજ	૨૫૧
૨	સઘવી નારણદાસ વખતચંદ	૩૦૧
૩	ઠંકર નારણદાસ હરગોવીંદદાસ	૨૫૧

ધોરાજી

૧	મહેતા પ્રભુદાસ મૂળજીભાઈ	૩૫૧
૨	સ્વ પિતાશ્રી ભગવાનજી કચરાભાઈના સ્મરણાર્થે	
૧	હા પટેલ દલીપચંદ ભગવાનજી	૨૫૧
૩	અ સો બચીબેન બાબુભાઈ	૨૫૧
૪	ધી નવ સૌરાષ્ટ્ર જોઈલ મીલ પ્રા લીમીટેડ	૨૫૧
૫	સ્વ રાયચંદ પાનાચંદ શાહના સ્મરણાર્થે હા ચીમનલાલ રાયચંદ	૩૦૧
૬	ગાધી પોપટલાલ જેચંદ	૨૫૦

ધ ધુકા

૧	ભાવસાર ખોડીદાસ ગણેશભાઈ	૨૫૧
૨	શેઠ પોપટલાલ ધારશી	૨૫૧
૩	સ્વ ગુલાબચંદભાઈના સ્મરણાર્થે હા વેરા પોપટલાલ નાનચંદ	૨૫૧
૪	વસાણી ચત્રભુજ વાઘજીભાઈ	૨૫૧

ન દુરખાર

૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સઘ હા શેઠ પ્રેમચંદ ભગવાનલાલ	૨૫૦

પોણસણા

૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સઘ	૨૫૧

પાલજીપુર

૧	લક્ષ્મીબેન હા મહેતા હરીલાલ પીતામ્બરદાસ	૨૫૧
૨	શ્રી લોકાગચ્છ સ્થાનકવાસી જૈન પુસ્તકાલય	૨૫૧

પાલેજ

૧	સ્વ મનસુખલાલ મોહનલાલ સઘવીના સ્મરણાર્થે	
	હા ભાઈ ધીરજલાલ મનસુખલાલ	૩૦૧

ખરવાળા (વિલાશા)

૧	સ્વ મોહનલાલ નરસીદાસના સ્મરણાર્થે	
	હા તેમના ધર્મપતિ સુરજબેન મોરારજી	૨૫૧

બેંગલોર (ભાયાણી)

- ૧ સ્વ પૂજ્ય માતુશ્રી જકલબાઈના સ્મરણાર્થે
હા દેશાઈ મજલાલ કાળીદાસ ૨૫૧
- ૨ શેઠ પોપટલાલ રાઘવજી રાયડીવાળા હા શેઠ માનસજ પ્રેમચંદ ૨૫૧

બેરાળ (કચ્છ)

- ૧ શેઠ ગાગજી કેશવજી (જાનભડાર માટે) ૨૫૧

બોટાદ

- ૧ સ્વ વસાણી હરગોવીંદદાસ છગનલાલના સ્મરણાર્થે
હા તેમના ધર્મપત્નિ છગલબેન ૨૫૧
- ૨ શ્રી સ્થાનકવાસી જૈનસંઘ (૨૫૦ બાકી) ૨૫૧

બોડલી

- ૧ શાહ પ્રવીણચંદ્ર નરસીદાસ (સાણુદવાળા) ૨૫૧
- ૨ શાહ ગીરધરલાલ સાકરચંદ ૨૫૧

ભાણુવડ

- ૧ શેઠ જ્યેષ્ઠભાઈ માણેકચંદ ૩૦૧
- ૨ સઘવી માણેકચંદ માધવજી ૨૫૧
- ૩ શેઠ લાલજીભાઈ માણેકચંદ (લાલપુરવાળા) ૨૫૧
- ૪ શેઠ રામજી જીજ્ઞાભાઈ ૨૫૧
- ૫ શેઠ પદમશી ભીમજી ફેફરીઆ ૨૫૧
- ૬ ફેફરીઆ ગાડાલાલ કાનજીભાઈ હા અ સૌ શાતાબેન વસનજી ૨૫૧

મદ્રાસ

- ૧ શેઠ મેઘરાજજી દેવીચંદજી ૨૫૧

મનોર (થાણા)

- ૧ શાહ શેરમલજી દેવીચંદજી જસવતગઢવાળા
હા પૂનમચંદજી શેરમલજી બોલ્યા ૨૫૧

માનકુવા (કચ્છ)

- ૧ સ્વ મહેતા કુવરજી નાથાલાલના સ્મરણાર્થે
હા તેમના ધર્મપત્નિ કુવરબાઈ હરખચંદ
(માનકુવા સ્થાનકવાસી જૈનસંઘ માટે) ૨૫૧

ધાગધા

૧	શ્રી સ્થા જૈન મોટા સઘ હા શેઠ માવજીભાઈ જીવરાજ	૨૫૧
૨	સઘવી નારણદાસ વખતચંદ	૩૦૧
૩	ઠકકર નારણદાસ હરગોવીંદદાસ	૨૫૧

ધોરાજી

૧	મહેતા પ્રભુદાસ મૂળજીભાઈ	૩૫૧
૨	સ્વ પિતાશ્રી ભગવાનજી કચરાભાઈના સ્મરણાર્થે	
	હા પટેલ દલીપચંદ ભગવાનજી	૨૫૧
૩	અ સૌ બચીએન બાણુભાઈ	૨૫૧
૪	ધી નવ સૌરાષ્ટ્ર ઓઈલ મીલ પ્રા લીમીટેડ	૨૫૧
૫	સ્વ રાયચંદ પાનાચંદ શાહના સ્મરણાર્થે હા ચીમનલાલ રાયચંદ	૩૦૧
૬	ગાધી પોપટલાલ જેચંદ	૨૫૦

ધ ધુકા

૧	ભાવસાર ખોડીદાસ ગણેશભાઈ	૨૫૧
૨	શેઠ પોપટલાલ ધારશી	૨૫૧
૩	સ્વ ગુલાબચંદભાઈના સ્મરણાર્થે હા વેરા પોપટલાલ નાનચંદ	૨૫૧
૪	વસાણી ચત્રભુજ વાઘજીભાઈ	૨૫૧

ન દુરબાર

૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સઘ હા શેઠ પ્રેમચંદ ભગવાનલાલ	૨૫૦

પાણસણા

૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સઘ	૨૫૧

પાલજીપુર

૧	લક્ષ્મીએન હા મહેતા હરીલાલ પીતામ્બરદાસ	૨૫૧
૨	શ્રી લોકાગચ્છ સ્થાનકવાસી જૈન પુસ્તકાલય	૨૫૧

પાલેજ

૧	સ્વ મનમુખલાલ મોહનલાલ સઘવીના સ્મરણાર્થે	
	હા ભાઈ ધીરજલાલ મનમુખલાલ	૩૦૧

બરવાળા (વિલાયા)

૧	સ્વ મોહનલાલ નરસીદાસના સ્મરણાર્થે	
	હા તેમના ધર્મપતિ સુરજએન મોરારજી	૨૫૧

- ૨૬ સ્વ કાનજી મૂળજીના સ્મરણાર્થે તથા માતૃશ્રી દિવાળીજાઈના ૧૬
ઉપવાસના પારણા પ્રસંગે હા જયતીલાલ કાનજી કાળાવડવાળા (મલાડ) ૨૫૧
- ૨૭ શેઠ ખુશાલભાઈ ખેગારભાઈ ૨૫૦
- ૨૮ શાહ પ્રેમજી માલશી ગગર (મલાડ) ૨૫૧
- ૨૯ સ્વ પિતાશ્રી પત્તભાઈ મોનાભાઈના સ્મરણાર્થે હા કાનજી પત્તભાઈ મલાડ ૨૫૧
- ૩૦ શાહ વેલજી જોશીંગભાઈ છાસરાવાળા તરફથી તેમના
ધર્મપત્નિ અ સૌ સ્વ નાનજાઈના સ્મરણાર્થે ૩૦૧
- ૩૧ સ્વ પિતાશ્રી રામશી વેલજીના સ્મરણાર્થે હા શાહ દામજી રામશી (મલાડ) ૩૦૧
- ૩૨ શેઠ ત્રણકલાલ કમ્તુરચંદ લીંગડીવાળા તરફથી
શ્રી અજરામર શાસ્ત્રલકાર લીંગડી માટે (માટુગા) ૨૫૧
- ૩૩ સ્વ પિતાશ્રી ભીમજી ડોરશી તથા માતૃશ્રી પાલાજાઈના સ્મરણાર્થે
હા શાહ ઉમરશીભાઈ ભીમશી કમ્પતરીવાળા (મલાડ) ૩૦૧
- ૩૪ શેઠ ચુનીલાલ નરભેરામ વેકરીવાળા ૨૫૧
- ૩૫ શાહ વૃન્નગભાઈ શીવજી (મલાડ) ૨૫૧
- ૩૬ રતીલાલ ભાઈચંદ મહેતા ૨૫૧
- ૩૭ શાહ ખીમજી મૂળજી પૂન્ન (મલાડ) ૨૫૧
- ૩૮ મેસર્સ સવાણી ટ્રાન્સપોર્ટ ડપની હા શેઠ માણેકલાલ વાડીલાલ ૨૫૧
- ૩૯ ઘેલાણી વલભજી નરભેરામ હા નરસીભાઈ વલભજી ૨૫૧
- ૪૦ અ સૌ સમતાળેન શાન્તીલાલ C/o શાન્તીલાલ ઉજ્જમશી શાહ (મલાડ) ૨૫૧
- ૪૧ તેજાણી કુબેરદાસ પાનાચંદ ૨૫૧
- ૪૨ કપાસી મોહનલાલ શીવલાલ ૨૫૧
- ૪૩ સ્વ પિતાશ્રી કેશવલાલ વછરાજ કોઠારીના સ્મરણાર્થે
સુરજબેન તરફથી હા તનમુખલાલભાઈ (મલાડ) ૨૫૧
- ૪૪ દડીયા અમૃતલાલ મોતીચંદ (ઘાટકોપર) ૨૫૧
- ૪૫ શેઠ સરદારમલજી દેવીચંદજી કાવેડીયા (સાદડીવાળા) ૨૫૧
- ૪૬ દોશી ચત્રભુજ સુદરજી (ઘાટકોપર) ૨૫૧
- ૪૭ દોશી જુગલકીશોર ચત્રભુજ (ઘાટકોપર) ૫૨૧
- ૪૮ દોશી પ્રવીણચંદ્ર ચત્રભુજ (ઘાટકોપર) ૨૫૧
- ૪૯ શાહ ત્રીલોવનદાસ માનસિંગ દોઢીવાળાના સ્મરણાર્થે
હા શાહ હરખચંદ ત્રીલોવનદાસ ૨૫૧
- ૫૦ શાહ જોઠાલાલ ડામરશી ધાગધાવાળા હા શાહ વાડીલાલ જોઠાલાલ ૨૫૦
- ૫૧ શાહ ચંદુલાલ કેશવલાલ ૨૫૧

સુ ખંધ તથા પરાઓ

૧	શેઠ છગનલાલ નાનજીભાઈ	૨૫૧
૨	શાહ હરજીવન કેશવજી	૨૫૧
૩	ઘેલાણી પ્રભુલાલ ત્રીકમજી (ભોરીવલી)	૨૫૨
૪	શેઠ છોટુભાઈ હરગોવિંદદાસ કટોરીવાલા	૨૫૧
૫	શ્રી વર્ધમાન સ્થા જૈનસઘ હા કેસરીમલજી અનોપચ દજી ગુગળીયા(મલાડ)	૨૫૧
૬	શેઠ ડુગરશી હસરાજ વીસરીયા	૨૫૧
૭	શાહ રમણીકલાલ કાળીદાસ તથા અ સૌ કાન્તાબેન રમણીકલાલ	૨૫૧
૮	શાહ હિંમતલાલ હરજીવનદાસ	૨૫૧
૯	શાહ રતનશી મોણશીની કુપની	૨૫૧
૧૦	શાહ શીવજી માણેક (કચ્છ બેરાળવાળા)	૨૫૧
૧૧	શાહ પાનાચદ સઘજી હા શાહ ત્રળકલાલ રતીલાલ	૨૫૧
૧૨	સ્વ પૂ પિતાશ્રી વીગ્યદ જેસીગભાઈ લખતરવાળાના સ્મરણાર્થે હા કેશવલાલ વીરચદ શેઠ	૨૫૧
૧૩	શા કુવરજી હસરાજ	૨૫૧
૧૪	સ્વ માતૃશ્રી માણેકબેનના સ્મરણાર્થે હા શેઠ વલ્લભદાસ નાનજી (પોરબદરવાળા)	૩૦૧
૧૫	શેઠ દેવરાજજી જીતમલજી પૂનમીયા સાદડીવાળા	૨૫૧
૧૬	એક સદ્ગૃહસ્થ હા શેઠ સુદરલાલ માણેકચદ	૨૫૧
૧૭	અ સૌ પાનજાઈ હા શેઠ પદમશી નરસિંભાઈ (મલાડ)	૨૫૧
૧૮	શ્રીચુત અમૃતલાલ વર્ધમાન બાપોદરાવાળા હા દલીચદ અમૃતલાલ	૨૫૧
૧૯	સ્વ શાહ નાગશી સેજપાળ ગુઢાળાવાળાના સ્મરણાર્થે હા રામજી નાગશી (મલાડ)	૩૦૧
૨૦	શાહ રામજી કરશનજી થાનગઢવાળા	૨૫૧
૨૧	શાહ નગીનદાસ કલ્યાણજી વેરાવળવાળા	૨૫૧
૨૨	શીવલાલ ગુલાબચદ શેઠ મેવાવાળા	૨૫૧
૨૩	સ્વ જટાશકર દેવજી દોશીના સ્મરણાર્થે હા રણછોડદાસ (બાપુલાલ) જટાશકર દોશી	૩૦૧
૨૪	સ્વ ગોડા વણારશી ત્રીભોવન સરસઈવાળાના સ્મરણાર્થે હા જગજીવન વણારશી ગોડા (મલાડ)	૨૫૧
૨૫	સ્વ ત્રીભોવનદાસ પ્રજપાળ વીંછીયાવાળાના સ્મરણાર્થે હા હરગોવિંદદાસ ત્રીભોવનદાસ અજમેરા	૨૫૧

- ૨૬ સ્વ કાનજી મૂળજીના સ્મરણાર્થે તથા માતૃશ્રી દિવાળીબાર્ધના ૧૬
ઉપવાસના પારણા પ્રસંગે હા જયતીલાલ કાનજી કાળાવડવાળા (મલાડ) ૨૫૧
- ૨૭ શેઠ ખુશાલભાઈ ખેગારભાઈ ૨૫૦
- ૨૮ શાહ પ્રેમજી માલશી ગગર (મલાડ) ૨૫૧
- ૨૯ સ્વ પિતાશ્રી પત્તુભાઈ મોનાભાઈના સ્મરણાર્થે હા કાનજી પતુભાઈ મલાડ ૨૫૧
- ૩૦ શાહ વેલજી નેશીંગભાઈ છાસરાવાળા તરફથી તેમના
ધર્મપત્નિ અ સો સ્વ નાનજીના સ્મરણાર્થે ૩૦૧
- ૩૧ સ્વ પિતાશ્રી રામશી વેલજીના સ્મરણાર્થે હા શાહ દામજી રામશી (મલાડ) ૩૦૧
- ૩૨ શેઠ ત્રણકલાલ કસ્તુરચંદ લીંબડીવાળા તરફથી
શ્રી અજરામર શાસ્ત્રલકાર લીંબડી માટે (માટુગા) ૨૫૧
- ૩૩ સ્વ પિતાશ્રી લીમજી ડોરશી તથા માતૃશ્રી પાલાબાર્ધના સ્મરણાર્થે
હા શાહ ઉમરશીભાઈ લીમશી કચ્છપતરીવાળા (મલાડ) ૩૦૧
- ૩૪ શેઠ ચુનીલાલ નરસેરામ વેકરીવાળા ૨૫૧
- ૩૫ શાહ વૃન્નગભાઈ શીવજી (મલાડ) ૨૫૧
- ૩૬ રતીલાલ ભાઈચંદ મહેતા ૨૫૧
- ૩૭ શાહ ખીમજી મૂળજી પૂન્ન (મલાડ) ૨૫૧
- ૩૮ મેસર્સ મવાણી ટ્રાન્સપોર્ટ કંપની હા શેઠ માણેકલાલ વાડીલાલ ૨૫૧
- ૩૯ ઘેલાણી વલ્લભજી નરસેરામ હા નરસીભાઈ વલ્લભજી ૨૫૧
- ૪૦ અ સો સમતાએન શાન્તીલાલ C/o શાન્તીલાલ ઉજ્જમશી શાહ (મલાડ) ૨૫૧
- ૪૧ તેજાણી કુમેરદામ પાનાચંદ ૨૫૧
- ૪૨ કપાસી મોહનલાલ શીવલાલ ૨૫૧
- ૪૩ સ્વ પિતાશ્રી કેશવલાલ વછરાજ કોઠારીના સ્મરણાર્થે
સુરજબેન તરફથી હા તનસુખલાલભાઈ (મલાડ) ૨૫૧
- ૪૪ દડીયા અમૃતલાલ મોતીચંદ (ઘાટકોપર) ૨૫૧
- ૪૫ શેઠ નરદાસમલજી દેવીચંદજી કાવેડીયા (સાદડીવાળા) ૨૫૧
- ૪૬ દોશી ચત્રભુજ સુદરજી (ઘાટકોપર) ૨૫૧
- ૪૭ દોશી જુગલકીશોર ચત્રભુજ (ઘાટકોપર) ૫૨૧
- ૪૮ દોશી પ્રવીણચંદ્ર ચત્રભુજ (ઘાટકોપર) ૨૫૧
- ૪૯ શાહ ત્રીલોવનદાસ માનસિંગ દોઢીવાળાના સ્મરણાર્થે
હા શાહ હરખચંદ ત્રીલોવનદાસ ૨૫૧
- ૫૦ શહ નેઠાલાલ ડામરશી ધાગધાવાળા હા શાહ વાડીલાલ નેઠાલાલ ૨૫૦
- ૫૧ શાહ ચંદુલાલ કેશવલાલ ૨૫૧

૫૨	સ્વ પિતાશ્રી શામળજી કલ્યાણજી ગોડલવાળાના સ્મરણાર્થે તેમના પુત્રો તરફથી હા વૃજલાલ શામળજી બાવીશી	૩૦૧
૫૩	શાહ પ્રેમજી હીરજી ગાલા	૨૫૧
૫૪	સ્વ પિતાશ્રી લગવાનજી હીરાચંદ જસાણીના સ્મરણાર્થે હા લક્ષ્મીચંદ તથા કેશવલાલભાઈ	૩૦૧
૫૫	સ્વ પિતાશ્રી હસરાજ હીરાના સ્મરણાર્થે હા દેવશી હસરાજ કન્હ બીડાલાવાળા (મલાડ)	૨૫૧
૫૬	સ્વ માતૃશ્રી ગોમતીબાઈના સ્મરણાર્થે હા શાહ પોપટલાલ પાનાચંદ	૨૫૧
૫૭	શેઠ નેમચંદ સ્વરૂપચંદ ખભાતવાળા હા ભાઈ જેઠાલાલ નેમચંદ	૨૫૧
૫૮	સ્વ પિતાશ્રી શાહ અબાલાલ પરસોતમ પાણુશણવાળાના સ્મરણાર્થે તેમના પુત્રો તરફથી હા બાપાલાલભાઈ	૨૫૧
૫૯	મેન કેશરભાઈ ચંદુલાલ જેસીંગલાલ શાહ	૨૫૧
૬૦	દડીયા જેસીંગલાલ ત્રીકમજી	૨૫૧
૬૧	શાહ કાન્તીલાલ મગનલાલ (ઘાટકોપર)	૨૫૧
૬૨	કોઠારી સુખલાલજી પૂનમચંદજી (ખાર)	૨૫૧
૬૩	સ્વ માતૃશ્રી કડવીબાઈના સ્મરણાર્થે હા તેમના પૌત્ર હકમીચંદ તારાચંદ દોશી (કાદીવલી)	૨૫૧
૬૪	શેઠ સારાભાઈ ચીમનલાલ	૨૫૧
૬૫	શાહ કેરશીભાઈ હીમજીભાઈ	૩૦૧
૬૬	પિતાશ્રી કુદનમલજી મોતીલાલજીના સ્મરણાર્થે હા મોતીલાલ જુગરમલ (અહમદનગરવાળા)	૨૫૧
૬૭	શ્રી વર્ધમાન શ્વેતાન્બર સ્થા જૈન સઘ હા શેઠ રૂપચંદ શીવલાલ કામદાર (અ ધેરી)	૨૫૧
૬૮	અ સૌ કમળાબેન કામદાર હા રૂપચંદ શીવલાલ (અ ધેરી)	૨૫૧
૬૯	ધી મરીના મોડર્ન હાઈસ્કુલ ટ્રસ્ટ ફંડ હા શાહ મણીલાલ ઠાકરશી	૨૫૧
૭૦	સ્વ માતૃશ્રી જીવીબાઈના સ્મરણાર્થે હા શામજી શીવજી કન્હ શુદાળાવાળા (ગોરેગાવ)	૨૫૧
૭૧	શાહ રવજીભાઈ તથા ભાઈલાલભાઈની ક પની (કાદીવલી)	૨૫૧
૭૨	અ સૌ. લાહુબેન હા રવજી શામજી (કાદીવલી)	૨૫૧
૭૩	અ સૌ. મેન કુદનગૌરી મનહરલાલ સઘવી (ખારચેડ)	૨૫૧
૭૪	શાહ કરચન લધુભાઈ (દાદર)	૩૦૧
૭૫	અ સૌ. રજનગૌરી ચંદુલાલ શાહ C/o ચંદુલાલ લક્ષ્મીચંદ (માદુગા)	૨૫૧
૭૬	મહેતા મોટર સ્ટોર્સ હા અનોપચંદ ડી મહેતા (અ બધ)	૨૫૧

માડવી (કચ્છ)

૧ શ્રી સ્થા છ કેટી જેન સઘ હા મહેતા ચુનીલાલ વેલજી ૨૭૭

મેસાણા

૧ શાહ પદમશી સુરચ દના સ્મરણાર્થે હા શીવલાલ પદમશી વીરમગામવાળા ૨૫૧

મોખાસા

૧ શાહ દેવરાજ પેથરાજ ૨૫૦
૨ શ્રીચુત નાથલાલ ડી મહેતા ૨૫૧

યાદગીરી

૧ શેઠ બાદરમલજી સૂરજમલજી બેન્કર્સ ૨૫૦

રાણપુર (ઝાલાવાડ)

૧ શ્રીમતી માતુશ્રી અમૃતબાઈના સ્મરણાર્થે હા ડા નરોત્તમદાસ ચુનીલાલ ૨૫૧

રાણાવાસ (મારવાડ)

૧ શેઠ જવાનમલજી નેમીચદજી હા બાબુરીખળચદજી ૩૦૧

રાજકોટ

૧ ધી વાડીલાલ કાઈગ એન્ડ પ્રિન્ટીંગ વર્ક્સ ૪૦૦
૨ શેઠ રતીલાલ ન્યાલચદ ૨૫૧
૩ બાબુ પરશુરામ છગનલાલ શેઠ (ઉદેપુરવાળા) ૨૫૦
૪ શેઠ મનુભાઈ મુળચદ (એન્જનીઅર સાહેબ) ૨૫૧
૫ શેઠ શાન્તીલાલ પ્રેમચદ તેમના ધર્મપત્નિના વરસીતપ પ્રસ ગે ૨૫૧
૬ ઉદાણી ન્યાલચદ હાકેમચદ વકીલ ૨૫૧
૭ શેઠ પ્રજારામ વીઠ્ઠલજી ૨૫૧
૮ શેઠ હકમીચદ દીપચદ (ગોડલવાળા) સ્ટેશનમાસ્ટર ૨૫૧
૯ બહેન સચુબાળા નોત્તમલાલ જસાણી (વરસીતપની ખુશાલી) ૨૫૧
૧૦ મોદી સૌભાગ્યચદ મોતીચદ ૨૫૧
૧૧ બદાણી ભીમજી વેલજી તરફથી તેમના ધર્મપત્નિ
અ સૌ સમસ્તબેનના વરસીતપની ખુશાલી ૨૫૧
૧૨ દોશી મોતીચદ ધારશીભાઈ (રીટાયર્ડ એન્જનીઅર સાહેબ) ૨૫૧
૧૩ કામદાર ચંદુલાલ જીવરાજ ૨૫૦
૧૪ હેમાણી ઘેલુભાઈ સવચદ ૨૫૧

રજુન

- ૧ કામદાર ગોરધનદાસ મગનલાલના ધર્મપતિન અ સૌ કમળાબેન ૨૫૧

લખતર

- ૧ શાહ રાયચંદ ઠાકરશીના સ્મરણાર્થે હા શાહ શાન્તીલાલ રાયચંદ ૨૫૧
 ૨ ભાવસાર હરજીવનદાસ પ્રભુદાસના સ્મરણાર્થે
 હા ભાઈ ત્રીભોવનદાસ હરજીવનદાસ ૨૫૧
 ૩ શાહ તલકશી હીરાચંદના સ્મરણાર્થે હા ભાઈ અમૃતલાલ તલકશી ૨૫૧
 ૪ શાહ ચુનીલાલ માણેકચંદ ૨૫૧
 ૫ શાહ જાદવજી ઓઘડભાઈ સદાદવાળાના સ્મરણાર્થે
 હા ભાઈ શાન્તીલાલ જાદવજી ૨૫૧
 ૬ દોશી ઠાકરશી ગુલાબચંદના સ્મરણાર્થે તેમના ધર્મપતિ સમરતબેન
 વૃજલાલ તરફથી હા જયતીલાલ ઠાકરશી ૨૫૧

લાવપુર

- ૧ શેઠ નેમચંદ સવજીભાઈ મોદી હા મગનલાલભાઈ ૨૫૧
 ૨ શેઠ મુળચંદ પોપટલાલ હા મણીલાલભાઈ તથા જેસીંગલાલભાઈ ૨૫૧

લાખેરી (રાજસ્થાન)

- ૧ માસ્તર જેઠાલાલ મોનજીભાઈ હા મહેતા અમૃતલાલ જેઠાલાલ
 (સીવીલ એન્જનીઅર સાહેબ) ૨૫૧

લોમડી (પચમહાલ)

- ૧ શાહ કુવરજી ગુલાબચંદ ૨૫૧
 ૨ છાજેડ ધાસીરામ ગુલાબચંદ ૨૫૧

લોનાવવા

- ૧ શેઠ ધનરાજજી મૂળચંદજી મૂથા ૨૫૧

વઢનાપ શહેર

- ૧ શાહ દીલીપકુમાર સવાઈલાલ હા સવાઈલાલ ત્રબકલાલ શાહ ૨૫૧
 ૨ શાહ મગનલાલ ગોકળદાસ હા રતીલાલ મગનલાલ કામદાર ૨૫૧
 ૩ સઘવી મુળચંદ ભેચરભાઈ હા ભાઈ જીવણલાલ ગફલદાસ ૨૫૧
 ૪ શેઠ વૃજલાલ મુખવાલ ૨૫૧
 ૫ શેઠ કાન્તીલાલ નાગરદાસ ૨૫૧

૬	વોરા ચત્રભુજ મગનલાલ	૨૫૧
૭	સઘવી શીવલાલ હીમજીભાઈ	૨૫૧
૮	શાહ દેવશી દેવકરણ	૨૫૧
૯	વોરા ડોસાભાઈ લાલચદ સ્થા જૈન સઘ હા વોરા નાનચદ શીવલાલ	૨૫૧
૧૦	વોરા ધનજીભાઈ લાલચદ સ્થા જૈન સઘ હા વોરા પાનાચદ ગોળગદામ	૨૫૧
૧૧	દોશી વીરચદ સુરચદ હા દોશી નાનચદ ઉજમશી	૨૫૧
૧૨	સ્વ વોરા મણીલાલ મગનલાલ હા વોરા ચત્રભુજ મગનલાલ	૨૫૧

વટામણ

૧	શ્રી વટામણ સ્થા જૈનસઘ હા શ્રી ડાહ્યાભાઈ હલુભાઈ પટેલ	૨૫૧

વલસાડ

૧	શાહ ખીમચદ મૂળજીભાઈ	૨૫૧

વણી

૧	મહેતા નાનાલાલ છગનલાલના ધર્મપત્નિ સ્વ ચચળમેન તથા પુરીમેનના અમગ્ધાર્યે હા ભાઈ મનહરલાલ નાનાલાલ	૨૫૧

વડોદરા

૧	કામદાર કેશવલાલ હિમતરામ પ્રેક્ષેસર સાહેબ (ગોડલવાળા)	૨૫૧
૨	વકીલ મણીલાલ કેશવલાલ શાહ	૨૫૧
૩	સ્વ પિતાશ્રી શાહ ફકીરચદ પુલ્લભાઈના સ્મરણાર્થે હા શાહ રમણલાલ ફકીરચદ	૨૫૧

વડીયા

૧	પચ્ચમીયા લવાનભાઈ કાળાભાઈ (જેતપુરવાળા)	૨૫૧

વાડાનેર

૧	માસ્તર કાન્તીલાલ ત્રબકલાવ ખ ઢેરીના	૨૫૧
૨	શ્રી સ્થા જૈન સઘ (રૂ. ૨૫૦ બાકી)	૨૫૧
૩	દફતરી ચુનીલ લ પોપટભાઈ મોરખીવાળા હા ભાઈ પ્રાણુલાલ ચુનીલાલ	૨૫૧

વીંછીયા

૧	શ્રી સ્થા જૈન સઘ હા અજમેરા રાયચદ વૃજપાળ	૨૫૧

રજુન

- ૧ કામદાર ગોરધનદાસ મગનલાલના ધર્મપતિ અ સૌ કમળામેન ૨૫૧

લખતર

- ૧ શાહ રાયચંદ ઠાકરશીના સ્મરણાર્થે હા શાહ શાન્તીલાલ રાયચંદ ૨૫૧
 ૨ ભાવસાર હરજીવનદાસ પ્રભુદાસના, સ્મરણાર્થે
 હા ભાઈ ત્રીભોવનદાસ હરજીવનદાસ ૨૫૧
 ૩ શાહ તલકશી હીરાચંદના સ્મરણાર્થે હા ભાઈ અમૃતલાલ તલકશી ૨૫૧
 ૪ શાહ ચુનીલાલ માણેકચંદ ૨૫૧
 ૫ શાહ જાદવજી ઓઘડભાઈ સદાદવાળાના સ્મરણાર્થે
 હા ભાઈ શાન્તીલાલ જાદવજી ૨૫૧
 ૬ દોશી ઠાકરશી ગુલાબચંદના સ્મરણાર્થે તેમના ધર્મપતિ સમસ્તમેન
 વૃજલાલ તરકશી હા જયતીલાલ ઠાકરશી ૨૫૧

લાવપુર

- ૧ શેઠ નેમચંદ સવજીભાઈ મોદી હા મગનલાલભાઈ ૨૫૧
 ૨ શેઠ મુળચંદ પોપટલાલ હા મણીલાલભાઈ તથા જેસીંગલાલભાઈ ૨૫૧

લાખેરી (રાજસ્થાન)

- ૧ માસ્તર જેઠાલાલ મોનજીભાઈ હા મહેતા અમૃતલાલ જેઠાલાલ
 (સીવીલ એન્જનીઅર સાહેબ) ૨૫૧

લોમડી (પચમહાલ)

- ૧ શાહ કુવરજી ગુલાબચંદ ૨૫૧
 ૨ છાજેડ ઘાસીરામ ગુલાબચંદ ૨૫૧

લોનાવલા

- ૧ શેઠ ધનરાજજી મૂળચંદજી મૂથા ૨૫૧

વઢનાપુ શહેર

- ૧ શાહ દીલીપકુમાર સવાઈલાલ હા સવાઈલાલ ત્રબકલાલ શાહ ૨૫૧
 ૨ શાહ મગનલાલ ગોકળદાસ હા રતીલાલ મગનલાલ કામદાર ૨૫૧
 ૩ સઘવી મુળચંદ ભેચરભાઈ હા ભાઈ જીવણલાલ ગફલદાસ ૨૫૧
 ૪ શેઠ વૃજલાલ સુખલાલ ૨૫૧
 ૫ શેઠ માન્તીલાલ નાગરદાસ ૨૫૧

સતારા

- ૧ સ્વ મદનલાલજી કુંદનમલજી કોઠારીના સ્મરણાર્થે
હા તેમના ધર્મપત્નિ રાજકુવરબાઈ મદનલાલજી ૨૫૧

સાલબની (બગાળ)

- ૧ દોશી ચુનીલાલ કુલચંદ મોરબીવાળા ૨૫૦

સાણંદ

- ૧ શાહ હીરાચંદ છગનલાલ હા શાહ ચીમનલાલ હીરાચંદ ૩૦૧
૨ અ સો ચપાબેન હા દોશી જીવરાજ લાલચંદ ૨૫૧
૩ પટેલ મહાસુખલાલ ડોસાભાઈ ૨૫૧
૪ શાહ સાકરચંદ કાનજીભાઈ ૨૫૧
૫ પુરીબેન ચીમનલાલ કલ્યાણજી સઘવી લીંબડીવાળાના સ્મરણાર્થે
હા વાડીલાલ મોહનલાલ કોઠારી ૨૫૧
૬ પારેખ નેમચંદ મોતીચંદ મુળીવાળાના સ્મરણાર્થે
હા પારેખ લીખાલાલ નેમચંદ ૨૫૧
૭ સઘવી નારણદાસ ધરમશીના સ્મરણાર્થે હા ભાઈ જયતીલાલ નારણદાસ ૨૫૧

સુરત

- ૧ શ્રી સ્થા જૈન સઘ હા શાહ છોટુભાઈ અભેચંદ ૨૫૧

સુવઘ (કચ્છ)

- ૧ સાવળા શામજી હીરજી તરફથી સદાનદી જૈન મુનીશ્રી છોટાલાલ
મહારાજના ઉપદેશથી સુવઘ સ્થા જૈન સઘ જ્ઞાનભડારને ભેટ ૨૫૧

સુરેન્દ્રનગર

- ૧ શેઠ આપશીભાઈ સુખલાલ ૨૫૧
૨ ભાવસાર ચુનીલાલ ત્રેમચંદ ૨૫૧
૩ સ્વ કેશવલાલ મૂળજીભાઈના ધર્મપત્નિ અમૃતબાઈના સ્મરણાર્થે
હા શાહ ભાઈલાલ કેશવલાલ (યાનગઢવાળા) ૨૫૧
૪ શાહ ન્યાલચંદ હરખચંદ ૨૫૧

વીરમગામ

૧	શાહ વાડીલાલ નેમચદ વઢીલ	૨૫૦
૨	શાહ વીઠલભાઈ મોઢી માસ્તર	૨૫૧
૩	શાહ નાગરદાસ માણુકચદ	૨૫૧
૪	શાહ મણીલાલ જીવણલાલ (શાહપુરવાળા)	૨૫૧
૫	શાહ અમુલખ (જયુભાઈ) નાગરદાસના ધર્મપતિ અ સૌ બેન લીલાવતીના વરસીતપના પારણાની ખુશાલીમા હા ભાઈ કાન્તીલાલ નાગરદાસ	૩૦૦
૬	સ્વ શેઠ ઉજ્જમશી નાનચદના સ્મરણાર્થે તેમના પુત્રો તરફથી હા શેઠ ચુનીલાલ નાનચદ	૨૫૧
૭	સ્વ શેઠ મણીલાલ લક્ષ્મીચદના સ્મરણાર્થે તેમના પુત્રો તરફથી હા ખીમચદભાઈ (ખારાધોડાવાળા)	૨૫૧
૮	સ્વ શેઠ હરીલાલ પ્રભુદાસના સ્મરણાર્થે હા શેઠ અનુભાઈ હરીલાલ	૨૫૧
૯	સઘવી જેચદભાઈ નારણદાસ	૨૫૧
૧૦	સ્વ શાહ વેલશીભાઈ સાકરચદભાઈના સ્મરણાર્થે હા ચીમનલાલ વેલશી (કત્રાસવાળા)	૨૫૧
૧૧	પારેખ મણીલાલ ટોકરશી લાતીવાળા તરફથી (મોટી બેનના સ્મરણાર્થે)	૨૫૧
૧૨	શાહ નારણદાસ નાનજીભાઈના સુપુત્ર વાડીલાલભાઈના ધર્મપતિ અ સૌ નારગીબેનના વરસીતપ નિમીત્તે હા શાન્તીભાઈ	૨૫૧
૧૩	સ્વ છખીલદાસ ગોકળદાસના સ્મરણાર્થે તેમના ધર્મપતિ અ સૌ કમળાબેન તરફથી હા મજીલાકુમારી	૨૫૧
૧૪	શ્રી સ્થા જૈન શ્રાવિકાસઘ હા પ્રમુખ અ સૌ રલાબેન વાડીલાલ	૨૫૧
૧૫	સ્વ ત્રીલોવનદાસ દેવચદ તથા સ્વ અ સૌ ચચગબેનના સ્મરણાર્થે હા ડા હિમતલાલ સુખલાલ	૨૫૧
૧૬	શાહ મૂળચદ કાનજીભાઈ તરફથી હા શાહ નાગરદાસ ઓઘડભાઈ	૨૫૧
૧૭	શેઠ મોહનલાલ ખીતાબરદાસ હા ભાઈ કેશવલાલ તથા મનસુખલાલભાઈ	૨૫૧
૧૮	શ્રીમતી હીરાબેન નથુભાઈના વરસીતપ નિમીત્તે હા નથુભાઈ નાનચદ શાહ	૩૦૧
૧૯	સ્વ મણીયાર પરસોતમદાસ સુદરજીના સ્મરણાર્થે હા શેઠ માકરચદ પરસોતમદાસ	૨૫૧
૨૦	શેઠ મણીલાલ શીવલાલ	૨૫૧

વેરાવલ

૧	શાહ કેશવલાલ જેચદભાઈ	૨૫૧
૨	શાહ ખીમચદ સોભાચચદ વસનજી	૨૫૧

સતારા

- ૧ સ્વ મદનલાલજી કુદનમલજી કોઠારીના સ્મરણાર્થે
હા તેમના ધર્મપત્નિ રાજકુવરબાઈ મદનલાલજી ૨૫૧

સાલબની (બગાળ)

- ૧ દોશી ચુનીલાલ કુલચંદ મોરખીવાળા ૨૫૦

સાણુદ

- ૧ શાહ હીરાચંદ છગનલાલ હા શાહ ચીમનલાલ હીરાચંદ ૩૦૧
૨ અ સો ચપાબેન હા દોશી જીવરાજ લાલચંદ ૨૫૧
૩ પટેલ મહાસુખલાલ ડોસાભાઈ ૨૫૧
૪ શાહ સાકરચંદ કાનજીભાઈ ૨૫૧
૫ પુરીબેન ચીમનલાલ કલ્યાણજી સઘવી લીંબડીવાળાના સ્મરણાર્થે
હા વાડીલાલ મોહનલાલ કોઠારી ૨૫૧
૬ પારેખ નેમચંદ મોતીચંદ મુળીવાળાના સ્મરણાર્થે
હા પારેખ ભીખાલાલ નેમચંદ ૨૫૧
૭ સઘવી નારણદાસ ધરમશીના સ્મરણાર્થે હા ભાઈ જયતીલાલ નારણદાસ ૨૫૧

સુરત

- ૧ શ્રી સ્થા જૈન સઘ હા શાહ છોટુભાઈ અભેચંદ ૨૫૧

સુવધ (કચ્છ)

- ૧ સાવળા શામજી હીરજી તરફથી સદાનદી જૈન મુનીશ્રી છોટાલાલ
મહારાજના ઉપદેશથી સુવધ સ્થા જૈન સઘ જ્ઞાનભડારને ભેટ ૨૫૧

સુરેન્દ્રનગર

- ૧ શેઠ ચાપશીભાઈ સુખલાલ ૨૫૧
૨ ભાવસાર ચુનીલાલ ત્રેમચંદ ૨૫૧
૩ સ્વ કેશવલાલ મૂળજીભાઈના ધર્મપત્નિ અમૃતબાઈના સ્મરણાર્થે
હા શાહ ભાઈલાલ કેશવલાલ (યાનગઢવાળા) ૨૫૧
૪ શાહ ન્યાલચંદ હરખચંદ ૨૫૧